॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

१६४

प्रौढ

अनुवाद-रत्नाकरः

(अनुवाद-व्याकरण-निबन्धादि-संवलितः)

लेखकः

डॉ० रमाकान्त त्रिपाठी, एम० ए०, पी-एच० डी०

स्वामी देवानन्द डिग्री कालेज मठ-लार, देवरिया

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९७३

THE
VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA
164
*****

Dr. Ghan Shyam Malav

ANUVĀDA-RATNĀKARA

(With Vyākaraṇa and Nibandha Etc.)

By
DR. RAMĀKĀNTA TRIPĀṬHĪ M. A., Ph. D.
S. D. Degree College Math-Lār, Deoriā.

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1973

आत्मनिवेदन

जिस तन्त्र से साधु शब्द का ज्ञान होता है, उसे 'व्याकरण' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है (व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्)। इसी को 'शब्दानुशासन' भी कहते हैं। संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण को सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। इसे वेद का मुख-रूप प्रधान अङ्ग माना जाता है।

'मुखं व्याकरणम्·········।'

व्याकरण-ज्ञान के अभाव में किसी भी शास्त्र में प्रवेश नहीं हो सकता है। भास्कराचार्य ने ठीक ही कहा है—

> यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग्,
> ब्राह्मयाः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
> यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य विद्वान्,
> शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी॥

इस प्रकार व्याकरण के अध्ययन का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है। वैसे संस्कृत व्याकरण के सम्बन्ध में कोई मौलिक बात कहना असम्भव है, फिर भी विषय-प्रतिपादन में कुछ नवीनता का समावेश किया जा सकता है। संस्कृत भाषा को अत्यन्त ही सरल, सुगम एवं सुबोध बनाने के लिए, व्याकरण के रटने की क्रिया को दूर करने के लिए यह 'अनुवाद-रत्नाकर' ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है। संक्षेप में इस ग्रन्थ की कुछ अपनी विशेषतायें हैं, जो निम्नलिखित हैं।

(१) छात्रों को अनुवाद करने का नियम नवीन वैज्ञानिक ढंग से समझाया गया है और तदनुसार अनुवादार्थ अभ्यास भी दिए गए हैं।

(२) संस्कृत भाषा के ज्ञान के लिए सम्पूर्ण व्याकरण, अनुवाद और अभ्यासों के द्वारा अत्यन्त सरल रीति से समझाया गया है।

(३) समस्त आवश्यक शब्दों तथा धातुओं के रूप निबद्ध किए गए हैं।

(४) संस्कृत भाषा में पत्र-लेखन, प्रस्ताव, अनुमोदन आदि करना समझाया गया है।

(५) वाग्व्यवहार के प्रयोग एवं संस्कृत सूक्तियों का हिन्दी अनुवाद, अँग्रेजी लोकोक्तियों के संस्कृत पर्याय एवम् अंग्रेजी-संस्कृत शब्दावली भी प्रस्तुत की गयी है।

(६) अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध करने का विशेष अभ्यास कराया गया है। पुनश्च संस्कृत व्यावहारिक शब्दों को एकत्रित किया गया है।

(७) संस्कृत में निबन्ध लिखने के लिए आवश्यक निर्देश दिये गये हैं एवं अत्युपयोगी विषयों पर निबन्ध भी लिखे गये हैं।

(८) अनुवादार्थ हिन्दी संदर्भ प्रस्तुत किये गये हैं।

(९) धातुकोष में इस ग्रंथ में प्रयुक्त समस्त धातुओं के ९ लकारों के रूप दिये गये हैं।

(१०) छन्द-विधान पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

(११) हिन्दी-संस्कृत शब्दकोष भी प्रस्तुत किया गया है।

(१२) व्याकरण सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों को विस्तार के साथ समझाया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का ठीक अभ्यास हो जाने पर छात्र निःसन्देह शुद्ध रूप से साहित्यिक संस्कृत लिख सकता है और धारा प्रवाह बोल सकता है। एम० ए० कक्षा तक के लिए यह पुस्तक पर्याप्त है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना में सम्पूर्ण बुद्धि योग, व्याकरण के कठिन मार्ग पर उँगली पकड़कर चलाने वाले पूज्य पिता जी पं० रामनाथ शास्त्री का ही है, मैं तो निमित्त मात्र हूँ। संस्कृत के वरिष्ठ विद्वान् और उदयपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष, गुरुवर्य डॉ० रामचन्द्रद्विवेदी ने व्यस्त होकर भी पुस्तक की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि को देखने का कष्ट किया। एतदर्थ मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। प्रिय अनुज उमाकान्त त्रिपाठी ने भी सामयिक योग देकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। सत्य, शील एवम् आस्तिकता की मूर्ति धर्मपत्नी श्रीमती रामकुमारी त्रिपाठी ने भी समय-समय पर सत्परामर्श और प्रोत्साहन देकर मुझे उत्साहित किया। चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के संचालक बन्धुओं को अनेक धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपावश प्रस्तुत कृति पाठकों तक पहुँच रही है।

अपने अज्ञानवश या प्रमादवश हुई रचनागत सब प्रकार की त्रुटियों के लिए विद्वज्जनों के सम्मुख नतमस्तक हूँ।

गुरुपूर्णिमा
वि० सं० २०३०

विनयावनत
रमाकान्त त्रिपाठी

भूमिका

संस्कृत भाषा में व्याकरण-शास्त्र का जितना सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन हुआ है उतना विश्व की अन्य किसी भी भाषा में नहीं। ईसा से ८०० वर्ष पूर्व यास्क मुनि ने शब्द निरुक्ति सम्बन्धी सर्वप्रथम एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। इन्होंने ही सर्वप्रथम शब्दों के चतुर्विध विभाजन (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) की स्थापना की एवं धातु-समूह को ही समस्त शब्दों का आधार सिद्ध करने का सराहनीय प्रयास किया है। तदुपरान्त इसी ग्रन्थ के आधार पर महर्षि पाणिनि ने अपनी अनूठी पुस्तक अष्टाध्यायी का निर्माण किया।

अष्टाध्यायी में ४००० सूत्र हैं और वे आठ अध्यायों में विभाजित हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। समस्त शब्द जालों को संक्षिप्त करने के लिए पाणिनि को मुख्य रूप से छः साधनों का आश्रय लेना पड़ा है—(१) प्रत्याहार (२) अनुबन्ध (३) गण (४) संज्ञाएँ (घ, षष्, श्लु, लुक्, हि, घु प्रभृति) (५) अनुवृत्ति (६) स्थान-स्थान पर कई सूत्रों के लागू होने वाले स्थानों के लिए पूर्वत्राऽसिद्धम् (८।२।१) सदृश नियमों की स्थापना।

संस्कृत-व्याकरण को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक एवं अत्युपयोगी समस्त पारिभाषिक शब्दों का यहाँ पर संग्रह किया जा रहा है। विद्यार्थी इनको बहुत सावधानी से स्मरण कर लें।

(१) प्रत्याहार—(संक्षिप्त कथन) इनका आधार निम्नलिखित चौदह माहेश्वर सूत्र हैं—अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल्। अक्, इक् आदि प्रत्याहार हैं। उदाहरणार्थ अ इ उण् से अ को लेकर और ऋलृक् से इत्संज्ञक क् को लेकर अक् प्रत्याहार बनता है जो 'अ इ उ ऋ लृ' समुदाय का बोधक होता है। तस्य लोपः (१।३।९) सूत्र से ण् और क्—जो इत्संज्ञक हैं—स्वयं व्यर्थ होकर केवल प्रत्याहार बनाने के काम आते हैं। इसी प्रकार झश् प्रत्याहार द्वारा 'झभघढधजब गडद' समुदाय का बोध होता है।

(२) अनुबन्ध—प्रत्यय आदि के आरम्भ और अन्त में कुछ स्वर या व्यञ्जन इस कारण जुटे रहते हैं कि उस प्रत्यय के होने पर गुण, वृद्धि, संप्रसारण, कोई विशेष स्वर उदात्तादि या अन्य कोई विशेष कार्य हो। ऐसे सहेतुक वर्णों को अनुबन्ध कहा जाता है। ये 'इत्' होते हैं अर्थात् इनका लोप हो जाता है। यथा—क्तवतु में क् और उ। शतृ में श् और ऋ। अतः क्तवतु को कित् कहेंगे, शतृ को शित् या उगित्।

(३) गणपाठ—कतिपय शब्दों में एक ही प्रत्यय लगता है। ऐसे शब्दों को एक गण में रखा गया है। ऐसे शब्द-संग्रह को गण पाठ कहते हैं। यथा—नद्यादिभ्यो ढक् (४।२।९७)

(४) संज्ञाएँ व परिभाषाएँ—

(१) वृद्धि—आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं—वृद्धिरादैच् (१।१।१)

(२) गुण—अ, ए, ओ गुण कहलाते हैं—अदेङ् गुणः (१।१।४५)

(३) सम्प्रसारण—य, व, र, ल के स्थान पर इ, उ, ऋ, लृ का हो जाना सम्प्रसारण कहलाता है—इग्यणः सम्प्रसारणम् (१।१।२)

(४) टि—किसी भी शब्द के अन्तिम स्वर से लेकर अन्त तक का अक्षर समुदाय टि कहा जाता है। यथा शकन्धु एवं मनीषा इत्यादि शब्दों में 'शक' में क का अकार तथा मनस् में अस् टि है। (अचोऽन्त्यादि टि (१।१।६४।)

(५) उपधा—अन्तिम स्वर के तुरन्त पहले आने वाले स्वर को उपधा कहते हैं—अलोन्त्यात्पूर्व उपधा (१।१।६५)

(६) प्रातिपदिक—(अ) (अर्थवदधातुरप्रत्ययःप्रातिपदिकम्, १।२।४५) सार्थक शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं। यही विभक्ति लगने पर प्रत्यय बनता है।

(ब) (कृत्तद्धितसमासाश्च, १।२।४६) कृत् और तद्धित प्रत्ययान्त तथा समास-युक्त शब्द भी प्रातिपदिक होते हैं।

(७) पद—(सुप्तिङन्तं पदम् १।४।१४) सुप् और तिङ् प्रत्ययों से युक्त होने पर बनता है। प्रातिपदिक में लगने वाले प्रत्ययों को सुप् तथा धातु में लगनेवाले प्रत्ययों को तिङ् कहते हैं।

(८) सर्वनामस्थान—सुडनपुंसकस्य (१।१।४३) पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग शब्दों के आगे लगने वाले सुट्—सु औ जस्, अम् तथा औट् विभक्ति प्रत्यय सर्वनाम—स्थान कहलाते हैं।

(९) पद—स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (१।४।१७) सु से लेकर कप् तक के प्रत्ययों में सर्वनाम स्थान को छोड़कर अन्य प्रत्ययों के आगे जुड़ने पर पूर्व शब्द की 'पद' संज्ञा होती है।

(१०) भ—यचि भम् (१।४।१८) पद संज्ञा प्राप्त कराने वाले उपर्युक्त प्रत्ययों में यकार अथवा स्वर से आरम्भ होनेवाले प्रत्ययों के आगे जुड़ने पर पूर्व शब्द की 'पद' संज्ञा न होकर 'भ' संज्ञा होती है।

(११) घु—दाधाघ्वदाप् (१।१।२०) दाप् को छोड़कर दा और धा धातु की 'घु' संज्ञा होती है।

(१२) घ—तरप्तमपौ घः (१।१।२२) तरप् और तमप् इन प्रत्ययों का नाम 'घ' है।

(१३) विभाषा—न वेति विभाषा (१।१।४४) जहाँ पर होने और न होने दोनों की सम्भावना रहती है, वहाँ पर विभाषा (विकल्प) है, ऐसा कहा जाता है।

(१४) निष्ठा—क्तक्तवतू निष्ठा (१।१।२६) क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं।

(१५) संयोग—हलोऽनन्तराः संयोगः (१।१।७) स्वरों से अव्यवहित होकर हल् संयुक्त कहे जाते हैं।

(१६) संहिता—परः सन्निकर्षः संहिता (१।४।१०९) वर्णों की अत्यन्त समीपता ही संहिता कही जाती है।

(१७) प्रगृह्य—ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् (१।१।११) ईकारान्त, ऊकारान्त, एकारान्त द्विवचन-पद प्रगृह्य कहे जाते हैं।

(१८) सार्वधातुक प्रत्यय—तिङ् शित् सार्वधातुकम् (३।४।११३) धातुओं के बाद जुड़ने वाले प्रत्ययों में तिङ् प्रत्यय एवं वे प्रत्यय जिनमें श् इत्संज्ञक हो जाता है, सार्वधातुक प्रत्यय कहलाते हैं।

(१९) आर्धधातुक प्रत्यय—आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४) धातुओं में जुड़ने वाले सार्वधातुक के अतिरिक्त प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं।

(२०) सत्—तौ सत् (३।२।१२७) शतृ और शानच् का सामूहिक नाम सत् है।

(२१) अनुनासिक—मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः (१।१।८) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों के मेल से होता है, उन्हें अनुनासिक कहते हैं।

वर्गों के पञ्चमाक्षर, ङ ञ ण न म अनुनासिक ही हैं। अच् और य व ल अनुनासिक और अननुनासिक दोनों प्रकार के हैं।

(२२) सवर्ण—तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् (१।१।९) जब दो या उससे अधिक वर्णों के उच्चारण स्थान (मुख विवर में स्थित ताल्वादि) और आभ्यन्तर प्रयत्न समान या एक हों तो उन्हें सवर्ण कहते हैं।

(२३) अक्षर—अविनाशी और व्यापक होने के कारण स्वर और व्यञ्जन वर्णों को अक्षर कहते हैं।

(२४) अच्—स्वरों को अच् कहते हैं।

(२५) अजन्त—(अच् + अन्त) स्वरान्त शब्द या धातु आदि।

(२६) उदात्त (उच्चैरुदात्तः) जो स्वर तालु आदि के उच्च भाग से बोला जाता है, उसे उदात्त कहते हैं।

(२७) अनुदात्त—(नीचैरनुदात्तः ।१।२।३०) जिस स्वर को तालु आदि के नीचे भाग से बोला जाता है, उसे अनुदात्त कहते हैं।

(२८) स्वरित—(समाहारः स्वरितः । १।२।३१।) उदात्त और अनुदात्त के बीच की ध्वनि को स्वरित कहते हैं।

(२९) अन्वादेश—(किंचित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः) पूर्वोक्त व्यक्ति आदि के पुनः किसी काम के लिए उल्लेख करने को अन्वादेश कहते हैं।

(३०) आगम—शब्द या धातु के बीच या अन्त में जो अक्षर या वर्ण और जुड़ जाते हैं उन्हें आगम कहते हैं।

(३१) अपवाद—विशेष नियम। यह सामान्य नियम का बाधक होता है।

(३२) आख्यात—(नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च) धातु और क्रिया को आख्यात कहते हैं।

(३३) अपृक्त—(अपृक्त एकाल् प्रत्ययः, १।२।४१) एक अल् (स्वर या व्यञ्जन) मात्र शेष प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं। यथा सु का स्, ति का त्, सि का स्।

(३४) उणादि—(उणादयो बहुलम्। ३।३।१) धातुओं से उण् आदि प्रत्यय होते हैं। उण् प्रत्यय के ही कारण व्याकरण में इस प्रकरण को उणादि-प्रकरण कहते हैं।

(३५) उपपद विभक्ति—किसी पद को मानकर जो विभक्ति होती है, उसे उपपद—विभक्ति कहते हैं। यथा—"रामाय नमः" में नमः पद के कारण चतुर्थी विभक्ति है।

(३६) कारकविभक्ति—क्रिया को मानकर जो विभक्ति होती है, उसे कारक-विभक्ति कहते हैं। यथा—"पुस्तकं पठति" में पठति क्रिया के आधार पर द्वितीया विभक्ति है।

(३७) कर्म प्रवचनीय—(कर्मप्रवचनीयाः, १।४।८३) अनु, उप्, प्रति आदि उपसर्ग कुछ अर्थों में कर्मप्रवचनीय होते हैं। इनके योग में द्वितीया आदि विभक्ति होती है।

(३८) कृदन्त—जिन शब्दों के अन्त में कृत् प्रत्यय लगे होते हैं, उन्हें कृदन्त कहते हैं।

(३९) गण—धातुओं को दस भागों में बाँटा गया है, उन्हें गण कहते हैं।

(४०) निपात—(चादयोऽसत्त्वे ।१।४।५७।) च वा ह आदि निपात कहलाते हैं। सभी निपात अव्यय होने के कारण एकरूप रहते हैं।

(४१) आत्मनेपद—(तङानावात्मनेपदम् ।१।४।१००) तङ् (ते, एते, अन्ते आदि) शानच्, कानच् ये आत्मनेपद होते हैं। जिन धातुओं के अन्त में ते एते अन्ते आदि लगते हैं, वे धातुएँ आत्मनेपदी कहलाती हैं।

(४२) परस्मैपद—(लः परस्मैपदम् ।१।४।९९) लकारों के स्थान पर होनेवाले ति, तः, अन्ति आदि प्रत्ययों को परस्मैपद कहते हैं।

(४३) मुनित्रय—पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि को मुनित्रय कहते हैं।

(४४) यौगिक—वे शब्द कहलाते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ निकलता है। यथा—पाचकः—पच् + अकः, पकाने वाला।

(४५) वीप्सा—दो वार पढ़ने को वीप्सा कहते हैं, यथा स्मृत्वा-स्मृत्वा।

(४६) समानाधिकरण—एक आधार को समानाधिकरण कहते हैं।

(४७) विकल्प—ऐच्छिक नियम को विकल्प कहते हैं।

(४८) वार्तिक—कात्यायन तथा पतञ्जलि द्वारा बनाये गए व्याकरण नियम वार्तिक कहलाते हैं।

(४९) बहुलम्—विकल्प या ऐच्छिक नियम बहुलम् कहलाते हैं।

(५०) रूढ—उन शब्दों को कहते हैं जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ नहीं निकलता है। यथा, नूपुर।

(५१) स्पर्श—(कादयो मावसानाः स्पर्शाः) क से लेकर म तक वर्ण स्पर्श वर्ण कहलाते हैं।

(५२) स्वर—(अचः स्वराः) अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ को स्वर कहते हैं।

(५३) हल्—क से ह तक के वर्णों को हल् कहते हैं।

(५४) हलन्त—ऐसे शब्दों या धातुओं को हलन्त कहते हैं जिनके अन्त में हल् अर्थात् व्यञ्जन होते हैं।

(५५) स्थान—उच्चारण-स्थान कण्ठ-तालु आदि का संक्षिप्तनाम स्थान है।

(५६) सूत्र—शब्दों के संस्कारक नियम सूत्र कहलाते हैं।

(५७) स्त्री प्रत्यय—स्त्रीलिङ्ग के ज्ञापक टाप् (आ), ङीप् (ई) आदि स्त्री प्रत्यय हैं।

(५८) श्वास—वर्गों के प्रथम एवं द्वितीय अक्षर (क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ), विसर्ग, श, ष, स ये श्वास वर्ण हैं। इनके उच्चारण में श्वास बिना रगड़ खाए बाहर आता है।

(५९) विशेष्य—जिस व्यक्ति या वस्तु आदि की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं।

(६०) विशेषण—व्यक्ति अथवा वस्तु आदि की विशेषता बताने वाले गुण या द्रव्य के बोधक शब्दों को विशेषण कहते हैं।

(६१) उत्सर्ग—साधारण नियमों को उत्सर्ग कहते हैं।

(६२) आम्रेडित—द्विरुक्ति वाले स्थानों पर उत्तरार्ध को आम्रेडित कहते हैं।

(६३) मात्रा—स्वरों के परिमाण मात्रा कहे जाते हैं।

(६४) प्रकृति—शब्द या धातु जिससे कोई प्रत्यय होता है, उसे प्रकृति कहते हैं।

(६५) प्रकृतिभाव—इसका अर्थ है कि वहाँ पर कोई सन्धि नहीं होती।

(६६) प्रत्याहार—(आदिरन्त्येन सहेता। १।१।७१) प्रत्याहार का अर्थ संक्षेप में कथन। अच्, हल्, सुप्, तिङ् आदि प्रत्याहार हैं।

(६७) प्रेरणार्थक—दूसरों से काम कराना।

(६८) श्लु—प्रत्यय के लोप का ही एक नाम श्लु है।

(६९) व्यधिकरण—एक से अधिक आधार या शब्दादि में होने वाले कार्य को व्यधिकरण कहते हैं।

(७०) अवग्रह—सूत्र से किये गए कार्य के बोधक चिह्न अवग्रह हैं। ऽ इसका संकेतक है कि यहाँ से अ हटा है। पदों या अवयवों के विच्छेदक भी अवग्रह कहलाते हैं।

(७१) षट् (ष्णान्ताः षट्। १।१।२४।) ष् और न् अन्त वाली संख्याओं को षट् कहते हैं।

(७२) सकर्मक—जिन धातुओं के साथ कर्म आता है, उन्हें सकर्मक धातु कहते हैं।

(७३) अकर्मक—जिन धातुओं के साथ कर्म नहीं आता है, उन्हें अकर्मक कहते हैं।

(७४) अव्यय—जिनके रूप में कभी परिवर्तन नहीं होता है, उन्हें अव्यय कहते हैं।

(७५) घोष—अच् (स्वर) और हश् प्रत्याहार अर्थात् वर्ग के तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्ण एवं ह य व र ल घोष हैं।

(७६) दन्त्य—लृ, तवर्ग, ल, स को दन्त्य वर्ण कहते हैं क्योंकि इनका उच्चारण स्थान दन्त है।

(७७) दीर्घ—आ, ई, ऊ, ॠ दीर्घ स्वर हैं।

(७८) ह्रस्व—अ, इ, उ, ऋ, लृ को ह्रस्व स्वर कहते हैं।

(७९) सन्धि—स्वरों, व्यञ्जनों या विसर्ग के परस्पर मिलाने को सन्धि कहते हैं।

(८०) संज्ञा—व्यक्ति या वस्तु आदि के नाम को संज्ञा कहते हैं।

(८१) अल्पप्राण—वर्गों के प्रथम, तृतीय और पञ्चम अक्षर तथा य र ल व अल्प प्राण हैं।

(८२) अन्तःस्थ—य र ल व को अन्तःस्थ कहते हैं।

(८३) गति—उपसर्गों को गति कहते हैं। कुछ अन्य शब्दों को भी गति कहते हैं।

—रमाकान्त त्रिपाठी

प्राक्कथन

संस्कृत भाषा की महत्ता का अनुमान इतने ही से लगाया जा सकता है कि भू-मण्डल की समस्त प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं में इसी भाषा को देव भाषा के अभिधान से अभिहित होने का गौरव प्राप्त है। हमारी संस्कृति जो अनेक घोर उथल-पुथल मचाने वाली विनाशक परिस्थितियों को पार करती हुई आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है इसका मूल कारण हमारी संस्कृत भाषा है। यही हमारे आचार-विचार, सभ्यता तथा पूर्वजों के चिर-संचित ज्ञान-विज्ञान का भाण्डार है। जब हम अपने को सच्चा भारतीय कहते हैं उस समय इस कथन का वास्तविक अभिप्राय यह होता है कि सम्पूर्ण जगत् में देव-वाणी संस्कृत से अनुप्राणित हमारा ही जीवन दिव्य है और हमारे ही अन्दर परमपूत देव-वाणी द्वारा आद्योपान्त सम्पादित दैवी संस्कार विद्यमान हैं। आज भी इसका साहित्य विश्व-साहित्य में अत्यन्त समृद्ध एवम् अद्वितीय है और समस्त विश्व के साहित्यकार संस्कृत-साहित्यकारों का लोहा मानते हैं। व्यापकता की दृष्टि से हम संस्कृत को अपनी राष्ट्रभाषा कह सकते हैं। पूरे भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में इसके बोलने और समझने वाले मिलते हैं। इसकी व्यापकता का ही परिणाम है कि भारत की सभी देशी भाषाओं में तत्सम अथवा तद्भव रूप में इसके शब्द पाये जाते हैं। हिन्दी तो संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य रखने के कारण संस्कृत भाषा की पुत्री ही कही जाती है जो आज राष्ट्र-भाषा के सिंहासन पर आरूढ है।

जिस प्रकार देव भाषा संस्कृत का विश्व की भाषाओं में गौरव-पूर्ण स्थान है उसी प्रकार इसकी लिपि देवनागरी भी समस्त लिपियों में अपना प्रमुख स्थान रखती है। यह संसार में सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक एवं पूर्ण लिपि मानी जाती है। भारतीय हिन्दू लिपियों को छोड़कर संसार की अन्य लिपियों में अक्षरों का नाम कुछ है और उच्चारण कुछ होता है, लिखा कुछ जाता है और पढ़ा कुछ जाता है किन्तु देवनागरी लिपि में अक्षरों के नाम तथा उच्चारण एक ही हैं और जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है।

हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी की भी यही देवनागरी लिपि है। इसकी प्रशंसा में हिन्दी के एक कवि की उक्ति पढ़िए—

सुन्दर-सुडौल-अनमोल जिसके सुवर्ण, नागर-विलोचन विलोक सुख पाते हैं।
जिसकी सरलता-सुघरता-मधुरता पै, अपने, पराए बिन मोल बिक जाते हैं।
जिसे अपना के अल्प काल में अपढ़, सूर-तुलसी के सागर औ मानस थहाते हैं।
उसी देवनागरी गुणागरी पदों में 'दिव्य' सादर सभक्ति सुमनाञ्जलि चढ़ाते हैं॥

(श्री भवानी भीख त्रिपाठी 'दिव्य')

वर्ण-विचार

यदि हम अपने उच्चारित किसी शब्द का विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि उसमें एक या कई ध्वनियाँ निश्चित क्रम से मिली होती हैं। जैसे—'विधान' शब्द का उच्चारण करते समय हमारे मुख से व् + इ + ध् + आ + न् + अ ये छः ध्वनियाँ निकलती हैं। इस प्रकार विभिन्न शब्दों के उच्चारण करने में मुख से निकली इन्हीं विभिन्न ध्वनियों को अक्षर कहते हैं क्योंकि इनका क्षर (विनाश) कभी नहीं होता। इन्ही अक्षरों (ध्वनियों) को लिखकर प्रकट करने के लिए अलग-अलग जो चिह्न कल्पित कर लिए गए हैं उन्हें वर्ण कहते हैं। अक्षर और वर्ण में यही सूक्ष्म भेद है किन्तु सामान्यतः वर्ण और अक्षर समानार्थक ही माने जाते हैं।

संस्कृत भाषा में वर्णों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है—

१. स्वर—जिन वर्णों का उच्चारण बिना किसी दूसरे वर्ण की सहायता के ही स्वयं होता है उन्हें स्वर कहते हैं। यथा अ, इ, उ, ए इत्यादि।

२. व्यञ्जन—जिन वर्णों का उच्चारण बिना स्वर की सहायता के नहीं हो पाता है उन्हें व्यञ्जन कहते हैं। यथा क, ख, ग। आदि।

स्वरों के भेद

स्वर तीन प्रकार के होते हैं,—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत।

समय के परिमाण—विशेष (चुटकी बजाने अथवा पलक गिरने मे जितना समय लगता है) को मात्रा कहते हैं। एक साधारण वर्ण के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे एक मात्रा, उससे दूने को दो मात्रा, तिगुने को तीन मात्रा कहा जाता है।

१. ह्रस्व स्वर—अ, इ, उ, ऋ, ऌ। इनके उच्चारण में एक मात्रा समय लगता है।

२. दीर्घस्वर—आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ। इनके उच्चारण मे दो मात्रा समय लगता है। ए, ऐ, ओ, औ को मिश्रित स्वर भी कहते हैं क्योंकि ये दो-दो स्वरों के मेल से बनते हैं।

(अ + इ,) से ए, (अ + ए) से ऐ, (अ + उ) से ओ, (अ + ओ) से औ।

विशेष—अ, इ, उ, ऋ इन ह्रस्व स्वरों से संस्कृत व्याकरण मे ह्रस्व तथा दीर्घ दोनों स्वरों का ग्रहण होता है। जहाँ ऐसा अभीष्ट नहीं होता है, वहाँ स्वर के आगे 'त्' अथवा 'कार' लगाकर उच्चारण करते हैं। यथा—अत् या अकार (ह्रस्व अ)। इत् या इकार (ह्रस्व इ)। उत् या उकार (ह्रस्व उ)। ऋत् या ऋकार (ह्रस्व ऋ)। आत् या आकार (दीर्घ आ) इत्यादि।

व्यञ्जन

व्यञ्जनों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) स्पर्श व्यञ्जन—क से म तक २५ वर्ण स्पर्श कहे जाते हैं क्योंकि इनके उच्चारण में जिह्वा का अग्र, मध्य और मूलभाग द्वारा कण्ठ, तालु आदि स्थानों का स्पर्श होता है। इन स्पर्श वर्णों को पाँच भागों में बांटा गया है और प्रत्येक वर्ग का नाम उसके प्रथम वर्ण के आधार पर रखा गया है।

यथा—

क, ख, ग, घ, ङ—कवर्ग अथवा कु।
च, छ, ज, झ, ञ—चवर्ग अथवा चु।
ट, ठ, ड, ढ, ण—टवर्ग अथवा टु।
त, थ, द, ध, न—तवर्ग अथवा तु।
प, फ, ब, भ, म—पवर्ग अथवा पु।

(ख) अन्तःस्थ—अन्तःस्थ का मतलब है बीच वाला। 'य, व, र, ल' स्वर और व्यञ्जन के बीच के हैं अतः वे अन्तःस्थ कहे जाते हैं।

(ग) ऊष्मा—जिन वर्णों के उच्चारण में गर्म वायु का प्राधान्य हो उन्हें ऊष्म वर्ण कहते हैं।

इस प्रकार स्वरों की संख्या १३ और व्यञ्जनों की संख्या ३३ है। क्ष, त्र, ज्ञ आदि की गणना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ये स्वतंत्र व्यञ्जन नहीं हैं। ये दो व्यञ्जनों के मेल से बने हैं। क् + ष = क्ष। त् + र = त्र। ज् + ञ = ज्ञ। इस प्रकार दो-दो, तीन-तीन व्यञ्जन मिलाकर अनेक संयुक्त व्यञ्जन बनाये जा सकते हैं।

यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक व्यञ्जन में अकार जो जुड़ा हुआ है व्यञ्जनों के उच्चारण की सुविधा की दृष्टि से ही। वास्तव में इनका शुद्ध रूप क्, ख्, ग् आदि ही है।

ध्वनि-माधुर्य की दृष्टि से वर्गों के प्रथम, द्वितीय वर्ण तथा श, ष, स को परुष (कठोर) वर्ण कहते हैं और वर्गों के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण तथा य, र, ल, व, ह को मृदु व्यञ्जन कहते हैं। ङ, ञ, ण, न, म को अनुनासिक भी कहते हैं।

प्रत्येक वर्ण का शुद्ध उच्चारण शुद्ध, स्पष्ट तथा सुन्दर लिखना योग्य गुरु से सीखें और अभ्यास करें।

वर्णों का उच्चारण स्थान और प्रयत्न

अक्षरों का उच्चारण मुख के विभिन्न स्थानों से होता है अतः उन्हें अक्षरों का उच्चारण स्थान कहते हैं।

(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) अ, कवर्ग, ह तथा विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ है और ये अक्षर कण्ठ्य कहे जाते हैं। (इचुयशानां तालु) इ, चवर्ग, य और

श का उच्चारण स्थान तालु है और इन अक्षरों को तालव्य कहते हैं। (ऋटुरषाणां मूर्धा) ऋ, टवर्ग, र और ष का उच्चारण स्थान मूर्धा है अतः इन्हें मूर्द्धन्य कहते है। (लृतुलसानां दन्ताः) लृ , तवर्ग, ल, स का दन्त स्थान है अतः इन्हे दन्त्य कहते है। (उपूपध्मानीयानामोष्ठौ) उ, पवर्ग और उपध्मानीय (≍ प ≍ फ) का ओष्ठ स्थान है अतः ये ओष्ठ्य वर्ण कहे जाते हैं। (ञमङणनानां नासिका च) ञ, म, ङ, ण और न का क्रमशः पूर्वोक्त कण्ठ, तालु, मूर्धा और दन्त स्थान के अतिरिक्त नासिका भी उच्चारण स्थान है अतः ये अनुनासिक कहे जाते हैं। (एदैतोः कण्ठ तालु) ए और ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठ और तालु दोनों है अतः इन्हें कण्ठ्य तालव्य कहते हैं। (ओदौतोः कण्ठोष्ठम्) ओ तथा औ का उच्चारण स्थान कण्ठ और ओष्ठ दोनों है अतः इन्हें कण्ठ्योष्ठ कहते हैं। (वकारस्य दन्तोष्ठम्) वकार का उच्चारण स्थान दन्त और ओष्ठ दोनों है अतः इसे दन्त्योष्ठ्य वर्ण कहते हैं। (जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्) जिह्वामूलीय (≍ क ≍ ख) का उच्चारण स्थान जिह्वामूल (जीभ का मूल भाग) है अतः इसे जिह्वामूलीय कहते हैं। (नासिकानुस्वारस्य) अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है।

अक्षरों के उच्चारण में हमे जो प्रयत्न करना पड़ता है वह दो प्रकार का होता है।

(१) आभ्यन्तर प्रयत्न—वर्णोच्चारण के पूर्व हमें हृदय में जो प्रयत्न करना पड़ता है उसे आभ्यन्तर प्रयत्न कहते हैं। इस प्रयत्न का अनुभव उच्चारण करने वाला ही कर पाता है।

(२) वाह्य प्रयत्न—मुख से वर्ण निकलते समय जो प्रयत्न किया जाता है उसे वाह्य प्रयत्न कहते हैं। इस प्रयत्न का अनुभव सुनने वाले को भी होता है। आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार का होता है—

(१) स्पृष्ट प्रयत्न—स्पर्श (क से म तक) वर्णों का होता है।

(२) ईषत् स्पृष्ट—अन्तःस्थ (य, र, ल, व) वर्णों का होता है।

(३) ईषद् विवृत—शल् अथवा ऊष्म (श, ष, स, ह) वर्णों का होता है।

(४) विवृत—स्वरों का होता है। ह्रस्व अकार का प्रयोगावस्था में विवृत और साधनिका अवस्था में [५] संवृत प्रयत्न होता है।

वाह्य प्रयत्न ११ प्रकार का होता है—

[१] विवार :—वर्णों के उच्चारण मे जब कण्ठ को फैलाना पडता है तब विवार प्रयत्न होता है।

[२] संवार :—विवार के विपरीत अर्थात् जब कण्ठ नहीं फैलाना पड़ता है तब संवार प्रयत्न होता है।

[३] श्वास :—वर्णों के उच्चारण में जब श्वास चलता है तब श्वास प्रयत्न होता है।

[४] नाद :—वर्णों के उच्चारण में जब नाद [विशेष प्रकार की अव्यक्त ध्वनि] होता है तब नाद प्रयत्न होता है।

[५] घोष :—वर्णों के उच्चारण में जब गूँज हो तो घोष प्रयत्न होता है।

[६] अघोष :—घोष के विपरीत अर्थात् जब गूँज न हो तो अघोष प्रयत्न होता है।

[७] अल्पप्राण :—वर्णों के उच्चारण में जब प्राण का अल्प उपयोग हो तब अल्पप्राण।

[८] महाप्राण :—प्राण वायु का अधिक उपयोग हो तो महाप्राण प्रयत्न होता है।

[९] उदात्त :—तालु आदि स्थानों के ऊर्ध्व भाग में उच्चरित अच् (स्वर) उदात्त कहलाता है, अतः तदुच्चारण सम्बन्धी प्रयत्न उदात्त होता है।

[१०] अनुदात्त :—तालु आदि स्थानों के अधोभाग में उच्चरित [अच्] स्वर अनुदात्त कहा जाता है और उसके उच्चारण में भी अनुदात्त प्रयत्न होता है।

[११] स्वरित :—उदात्त और अनुदात्त जिस स्वर में सम्मिलित हो उसे स्वरित कहते हैं और उसके प्रयत्न को भी स्वरित कहते हैं।

खर् प्रत्याहार [ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स] अर्थात् वर्गों के प्रथम, द्वितीय वर्ण तथा श, ष, स का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न हैं।

हश् [ह, य, व, र, ल, ञ म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द] अर्थात् वर्गों के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण तथा य, र, ल, व, ह का संवार, नाद, घोष प्रयत्न होता है।

वर्गों के प्रथम, तृतीय, पञ्चम तथा य, व, र, ल का अल्प प्राण और वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ तथा ऊष्म वर्णों का महाप्राण प्रयत्न होता है।

तुम हिन्दी वाक्यों का संस्कृत में सरलता से अनुवाद कर सको, इसके लिए सर्व प्रथम हिन्दी भाषा के व्याकरण सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय, क्रिया, कारक, काल, पुरुष, लिङ्ग, वचन, वाच्य आदि) का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लो। अनुवाद के लिए संस्कृत व्याकरण के जो नियम बताये जायँ, हिन्दी व्याकरण से तुलना करते हुए उनका अध्ययन करो। इस प्रकार संस्कृत-व्याकरण के नियम सरलता से समझ में आ जाते हैं और अपने आप याद भी हो जाते हैं।

यदि विचारपूर्वक देखो तो तुम्हें हिन्दी वाक्य में संस्कृत के तत्सम [शुद्ध] अधिकांश मिलेंगे। जहाँ ऐसा न हो, उन शब्दों को शुद्ध संस्कृत में बदल लो, इसके बाद हिन्दी के कारक-चिह्नों [विभक्तियों] तथा क्रिया को संस्कृत में बदलना ही शेष रह जाता है।

हिन्दी की तरह संस्कृत में भी कर्ता, कर्म आदि सात कारक होते हैं। जैसे हिन्दी में प्रत्येक कारक के लिए चिह्न [विभक्तियाँ] हैं, उसी तरह संस्कृत में भी प्रत्येक कारक के लिए विभक्तियाँ हैं। 'सम्बोधन' भी दोनों भाषाओं में होता है। हिन्दी और

संस्कृत दोनों में तीन पुरुष—प्रथम पुरुष [हिन्दी में अन्य पुरुष भी कहा जाता है], मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष होते है। संस्कृत में प्रत्येक पुरुष में तीन वचन—एक वचन, द्विवचन और बहुवचन होते है, हिन्दी में द्विवचन नहीं होता केवल एक वचन और बहुवचन होते हैं।

कारक (Cases) संस्कृत विभक्ति	(Case signs) चिह्न
कर्ता (Nominative) प्रथमा	ने [कहीं प्रकट, कहीं लुप्त रहता है]
कर्म (Accusative) द्वितीया	को [कहीं प्रकट, कहीं लुप्त रहता है]
करण (Instrumental) तृतीया	से, द्वारा
सम्प्रदान (Dative) चतुर्थी	को, के लिए
अपादान (Ablative) पञ्चमी	से
सम्बन्ध (Genitive) षष्ठी	का, की, के, रा, री, रे, ना, नी, ने
अधिकरण (Locative) सप्तमी	में, पर
सम्बोधन (Vocative) सम्बोधन	हे, अरे आदि

संस्कृत में पुरुष और वचन

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः [वह]	तौ [वे दोनो]	ते [वे]
मध्यम पुरुष	त्वम् [तू]	युवाम् [तुम दोनों]	यूयम् [तुम, तुम लोग]
उत्तम पुरुष	अहम् [मैं]	आवाम् [हम दोनों]	वयम् [हम, हम लोग]

हिन्दी वाक्य तथा संस्कृत वाक्य की तुलना

प्रथम पुरुष एकवचन	लड़का जाता है	बालकः गच्छति
,, ,, बहुवचन	लड़के जाते हैं	बालकाः गच्छन्ति
मध्यम पुरुष एकवचन	तू जाता है	त्वं गच्छसि
,, ,, बहुवचन	तुम जाते हो	यूयं गच्छथ
उत्तम पुरुष एकवचन	मैं जाता हूं	अहं गच्छामि
,, ,, बहुवचन	हम जाते हैं	वयं गच्छामः

[१] हिन्दी में कर्ता का चिह्न यहाँ लुप्त है [किन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं होता]। संस्कृत में कर्ता 'बालक' के साथ एकवचन में [:] तथा बहुवचन में [ाः] विभक्तियां लगी हुई हैं।

[२] हिन्दी में बहुवचन में 'लड़का' का रूप 'लड़के' हो गया और संस्कृत में भी बहुवचन मे 'बालकः' को 'बालकाः' हो गया।

[३] हिन्दी में 'जाना' अर्थ में 'जा' धातु के आगे एक वचन में 'ता है' प्रत्यय और बहुवचन में 'ते हैं' प्रत्यय जुड़ने से 'जाता है', 'जाते हैं' क्रिया पद बनते हैं। संस्कृत

में 'जाना' अर्थ में 'गच्छ्' धातु से एकवचन में 'अति' एवं बहुवचन में 'अन्ति' जुड़ने से 'गच्छति' और 'गच्छन्ति' क्रियापद बनते हैं।

इसी प्रकार मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के वाक्यों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि हिन्दी और संस्कृत दोनों में कर्ता के पुरुष और वचन के अनुसार, क्रिया पद के विभिन्न रूप होते हैं—उसके रूप में परिवर्तन हुआ करता है, एवं संज्ञा सर्वनाम आदि शब्द अपने लिङ्ग वचन तथा कारक के अनुसार विभिन्न रूप धारण किया करते हैं।

अन्तर केवल इतना ही है कि संस्कृत के संज्ञा आदि शब्दों के आगे प्रयुक्त प्रत्यय [विभक्तियाँ] अपने शब्दों में मिली रहती हैं तथा क्रिया पद में धातु के आगे प्रयुक्त प्रत्यय धातु में मिली रहती हैं।

हिन्दी मातृभाषा होने के कारण उपर्युक्त वाक्यों के व्याकरण सम्बन्धी नियम तुम्हें सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु कोई अंग्रेजी मातृभाषा वाला अंग्रेज जब हिन्दी सीखता है तो उसे हिन्दी भाषा के उक्त नियमों के समान अनेक नियम सीखने पड़ते हैं। संस्कृत सीखने में जो तुम्हारी स्थिति है उसकी अपेक्षा हिन्दी सीखने वाले अंग्रेज की स्थिति कहीं अधिक दयनीय है क्योंकि हिन्दी और संस्कृत का तो घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु अंग्रेजी और हिन्दी में कोई सम्बन्ध नहीं है।

इतने पर भी यदि तुम संस्कृत को जटिल तथा रटी जाने वाली भाषा कहते हो तो कोई अन्य भाषा भाषी हिन्दी को भी ऐसी ही भाषा कह सकता है। अस्तु, मातृभाषा के अतिरिक्त किसी भी भाषा को सीखने में धैर्यपूर्वक उसके नियमों का मातृभाषा के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन तथा पुनः पुनः अभ्यास की आवश्यकता होती है। अपने व्यवहार में उसी भाषा का निरन्तर प्रयोग करते रहने से उसकी जटिलता का अनुभव नहीं होता है।

संस्कृत भाषा के संज्ञा, सर्वनाम आदि शब्दों के तथा धातुओं के रूपों को याद करने के लिए तुम स्वयं विचार सम्बन्ध बना सकते हो और एक शब्द अथवा धातु के रूपों को भली-भांति कण्ठस्थ कर लेने पर उसके समान जितने भी शब्द अथवा धातु हैं, सबके रूप स्वयं बना लोगे। यथा—राम शब्द के प्रत्येक विभक्ति तथा वचन के रूप ध्यान पूर्वक पढ़ो और मूलशब्द राम से उसकी तुलना करो तो अनेक नियम ज्ञात कर सकते हो।

प्रथमा विभक्ति राम:, रामौ, रामा:।

मूल शब्द [राम] की अपेक्षा, इसके एक वचन में (:) अधिक है। अतः तुम कह सकते हो कि प्रथमा एकवचन में राम शब्द से जुड़ी विभक्ति विसर्ग हो जाती है अथवा शब्द का अन्तिम वर्ण अकार और विभक्ति मिलाकर 'अ:' हो जाता है, अथवा अन्तिम वर्ण हटाकर 'अ:' जोड़ दिया जाता है।

इसी प्रकार द्विवचन में 'औ' जोड़कर अ + औ = औ वृद्धि सन्धि कर दी गई है

अथवा अन्तिम वर्ण हटाकर 'औ' जोड़ दिया गया है। इसी प्रकार बहुवचन के रूप के विषय में भी नियम बना सकते हो। एक रूप के लिए सभी संभावित नियमों में से, जिसे चाहो, किसी एक को अपना लो और अकारान्त (जिसका अन्तिम वर्ण 'अ' है) पुल्लिंग सभी शब्दों के रूप इसी प्रकार से बना सकते हो। यथा—गज शब्द का गजः, गजौ, गजाः। ऐसा ही सभी विभक्तियों के विषय में विचार-सम्बन्ध बना लो। पठ् धातु के रूप—'पठति, पठतः, पठन्ति' की तुलना मूल धातु पठ् से करो तो समझ सकते हो कि एकवचन में अति, द्विवचन में अतः, बहुवचन में अन्ति जोड़ा गया है। इस प्रकार धातुओं के रूप इसी तरह से बनेंगे।

संस्कृत व्याकरण की समस्त धातुओं को दस भागों में बांट दिया गया है। एक गण की धातुओं के रूप प्रायः समान चलते हैं। इन गणों के नाम उनकी पहिली धातु के आधार पर रक्खे गए हैं। यथा—

प्रथमगण	भ्वादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः 'भू' धातु की तरह।
द्वितीयगण	अदादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः 'अद्' धातु की तरह।
तृतीयगण	जुहोत्यादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः जुहोति ('हु' धातु) की तरह।
चतुर्थगण	दिवादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः 'दिव्' धातु की तरह।
पञ्चमगण	स्वादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः 'सु' धातु की तरह।
षष्ठगण	तुदादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः 'तुद्' धातु की तरह।
सप्तमगण	रुधादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः 'रुध्' धातु की तरह।
अष्टमगण	तनादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः 'तन्' धातु की तरह।
नवमगण	क्र्यादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः 'क्री' धातु की तरह।
दशमगण	चुरादिगण	इस गण की धातुओं के रूप प्रायः 'चुर्' धातु की तरह।

उपर्युक्त गणों की अन्य विशेषताएँ आगे यथास्थान बताणी गयी हैं।

संस्कृत भाषा में दस काल अथवा वृत्तियां हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) वर्तमान काल	लट्	(Present tense)
(२) अनद्यतनभूत	लङ्	(Past imperfect tense)
(३) सामान्यभूत	लुङ्	(Aorist)
(४) परोक्षभूत	लिट्	(Past Perfect tense)
(५) सामान्य भविष्य	लृट्	(simple future)
(६) अनद्यतन भविष्य	लुट्	(First future)
(७) आज्ञा	लोट्	(Imperative mood)
(८) विधिलिङ्	विधिलिङ्	(Potential mood)
(९) आशीर्लिङ्	आशीर्लिङ्	(Benedictive).
(१०) क्रियातिपत्ति	लृङ्	(Conditional)

उपर्युक्त लकार क्रियासूचक एवं आज्ञादिसूचक दोनों प्रकार के हैं।

वर्तमान काल का प्रयोग वर्तमान समय में होने वाले कार्य का वोध कराने के लिए किया जाता है।

अतीत समय का वोध कराने के लिए तीन लकार हैं—(१) अनद्यतनभूत (लङ्) (२) परोक्षभूत (लिट्) (३) सामान्यभूत (लुङ्)। आज से पूर्व हुए कार्य का वोध कराने के लिए अनद्यतनभूत (लङ्) का प्रयोग किया जाता है। ऐसे भूतकाल का वोध कराने के लिए जिसे वक्ता ने न देखा हो, परोक्षभूत (लिट् लकार) का प्रयोग किया जाता है। साधारणतया समस्त प्रकार के भूतकाल का वोध कराने के लिए लुङ् लकार का प्रयोग किया जाता है।

भविष्यकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो लकार हैं—अनद्यतन भविष्य दूरवर्ती भविष्य की क्रिया के लिए प्रयुक्त होता है, जवकि सामान्य भविष्य (लृट्) का प्रयोग आज ही होने वाली क्रिया के लिए होता है।

किसी को कुछ करने की आज्ञा, प्रार्थना, मृदु उपदेश या मंत्रणा के अर्थ में आज्ञा (लोट्) का प्रयोग होता है।

विधिलिङ् का प्रयोग किसी को आदेश देने के लिए होता है। लोट् लकार का प्रयोग मृदुता प्रकट करता है और विधिलिङ् का प्रयोग कठोरता।

आशीर्लिङ् का प्रयोग आशीर्वाद देने के लिए होता है। लृङ् लकार का प्रयोग ऐसे समय पर होता है जवकि एक क्रिया का प्रयोग होना दूसरी क्रिया पर निर्भर करता है।

इन दस लकारों के प्रत्यय परस्मैपद और आत्मेनपद दोनों में दिये जाते हैं। जो जो धातुयें परस्मैपदी हैं उनमे परस्मैपद के प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। आत्मनेपदी धातुओं मे आत्मनेपद का प्रत्यय एवं उभयपदी धातुओ मे परस्मैपद और आत्मनेपद दोनो के प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं।

मूलविभक्तियाँ और प्रत्यय

संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण शब्दो के आगे निम्नलिखित प्रत्यय लगते है जिनको 'विभक्ति' कहते हैं। इन शब्दों के रूपों मे वे ही विभक्तियाँ कहीं अपना सव कुछ परिवर्तित कर अथवा कहीं शुद्धरूप मे मिली रहती हैं।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु (:)	औ	जस् (अस् अर्थात् अः)
द्वितीया	अम्	औट् (औ)	शस् (अस् अर्थात् अः)
तृतीया	टा (आ)	भ्याम्	भिस् (भिः)
चतुर्थी	ङे (ए)	,,	भ्यस् (भ्यः)
पञ्चमी	ङसि (अस् अर्थात् अः)	,,	,,

षष्ठी	ङस् (अस् अर्थात् अः)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	"	सुप् (सु)

चूँकि ये विभक्तियाँ 'सु' से आरम्भ होकर 'प्' पर समाप्त हो जाती है अतः सामूहिक रूप से सम्पूर्ण विभक्तियों को 'सुप्' कहते हैं और इन विभक्तियों से बने शब्द-रूपों को सुबन्त (पद) कहते है।

धातुओं से क्रिया पद बनाने के लिए निम्नलिखित प्रत्यय जुडते हैं।

	पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
परस्मैपद प्रत्यय	प्रथम पुरुष	तिप् (ति)	तस् (तः)	झि (अन्ति)
	मध्यम पुरुष	सिप् (सि)	थस् (थः)	थ
	उत्तम पुरुष	मिप् (मि)	वस् (वः)	मस् (मः)
आत्मनेपद प्रत्यय	प्रथम पुरुष	त	आप्ताम्	झ (अन्त)
	मध्यम पुरुष	थास् (थाः)	आथाम्	ध्वम्
	उत्तम पुरुष	इट् (इ)	वहि	महिङ् (महि)

इन अठारह प्रत्ययों को, सामूहिक बोध के लिए तिङ् प्रत्यय कहते हैं क्योंकि इनका आरम्भ 'ति' से होकर समाप्ति 'ङ्' पर होती है। इनसे बने धातु रूपों को तिङन्त पद कहते है। प्रथम ९ प्रत्यय परस्मैपद कहलाते हैं। ये जिन धातुओं में लगते हैं उन्हें परस्मैपदी धातु कहते हैं। दूसरे ९ प्रत्यय आत्मनेपद कहलाते है। ये जिन धातुओं मे लगते हैं उन्हें आत्मनेपदी धातु कहते है। जिन धातुओं में दोनों प्रकार के प्रत्यय लगते हैं उन्हें उभयपदी धातु कहते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि किसी संज्ञा आदि शब्दों में जब विभक्ति लग जाती है और इस प्रकार निष्पन्न रूप सुबन्त पद बन जाता है तभी उसका प्रयोग वाक्य मे होता है। यही बात धातु के लिए भी है। उसमे प्रत्यय लगाकर निष्पन्न रूप को तिङन्त पद बना दे तभी वाक्य में प्रयोग करे। अतः कहा गया है—'अपदं न प्रयुञ्जीत' इति।

संस्कृत में लिङ्ग और वचनों का विचार

संस्कृत में लिङ्गो के विषय में बडा मनमानापन है। लिङ्ग-निर्णय में बडी कठिनाई होती है। इसका मुख्य कारण है कि संस्कृत में लिङ्ग का सम्बन्ध केवल शब्द से रहता है अर्थात् उस शब्द से व्यक्त होने वाले अर्थ से लिङ्ग का सम्बन्ध नहीं रहता है। यथा—'दार' शब्द पुंल्लिङ्ग है किन्तु इसका अर्थ पत्नी स्त्रीलिङ्ग' है। अतः किसी शब्द के लिङ्ग का निर्णय उसके अर्थ के आधार पर नहीं किया जा सकता है। इसका पूर्ण ज्ञान व्याकरणशास्त्र का सम्यक् अध्ययन कर चुकने पर ही होता है। कोष-काव्य के अध्ययन से भी इसके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

संस्कृत में तीन वचन होते हैं। एकवचन से 'एक' का बोध होता है। जाति या वर्ग का बोध कराना हो तो चाहे एकवचन बोले चाहे बहुवचन। दार (पत्नी), अप् (जल), वर्षा, सिकता (बालू), असु (प्राण), प्राण (प्राण) इत्यादि शब्द बहुवचनान्त होते हैं। परन्तु अर्थ में 'एक ही का बोध कराते हैं। आदरणीय व्यक्ति के विषय में आदर प्रकट करने के लिए कभी-कभी बहुवचन का प्रयोग करते हैं।

द्विवचन से 'दो' का बोध होता है। द्वय, द्वितय, युगल, युग, द्वन्द्व इत्यादि शब्द 'दो', का बोध कराते हैं, परन्तु एकवचनान्त ही प्रयोग किए जाते हैं।

किसी देश का नाम बहुवचनान्त होता है, परन्तु यदि नाम के साथ 'देश' शब्द अथवा 'देश' शब्द का पर्यायवाची शब्द लगा होता है तो एकवचनान्त ही होता है। यथा—मगधेषु, मगधदेशे।

—रमाकान्त त्रिपाठी

विषय-सूची

अनुवाद-रत्नाकर

(प्रौढ अनुवाद-चन्द्रिका)

प्रथम सोपान

सन्धि-प्रकरण

तुम धाराप्रवाह बोलते समय ऐसा अनुभव करते होगे कि दो निकटवर्ती वर्णों का बिना रुके उच्चारण करने समय मुख-सुख के कारण उनकी ध्वनि में एक प्रकार का विकार या परिवर्तन अपने-आप आ जाता है। 'चोर ले गया' इस वाक्य को 'चोल्ले गया', 'मार डाला' को 'माड्डाला' बोलते हुए तुम ध्वनि के इस विकार या परिवर्तन का भलीभांति अनुभव कर सकते हो।

संस्कृत-भाषा में भी इसी प्रकार जब दो वर्ण पास-पास होते हैं तब कभी-कभी उनके उच्चारण में स्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है। इति और आदि इन दोनों शब्दों का बिना रुके तुम यदि एक साथ उच्चारण करो तो इनका उच्चारण 'इत्यादि' अपने आप हो जाता है। इस प्रकार,

दो वर्णों के पास-पास आने पर उनमें जो विकार (परिवर्तन) उत्पन्न हो जाता है, संस्कृत में उसी विकार को 'सन्धि' कहते हैं।

यह परिवर्तन तीन रूप में मिलता है। (१) कहीं दोनों अक्षरों में परिवर्तन होता है जैसे—वाक् + हरिः = वाग्घरिः। यहां पास-पास वर्तमान क् और ह् दोनों अक्षरों का क्रमशः ग् और घ् के रूप में परिवर्तन हो गया है। (२) कहीं एक में परिवर्तन देखा जाता है। जैसे—इति + आदि = इत्यादि। यहाँ निकटवर्ती 'इ' और 'आ' दो अक्षरों में केवल एक ही अर्थात् 'इ' का परिवर्तन 'य्' के रूप में हुआ है। (३) कहीं दोनों वर्णों के स्थान पर एक तीसरा ही अक्षर हो जाता है। यथा—रमा + ईशः = रमेशः। यहाँ 'आ' और 'ई' दोनों के स्थान पर एक तीसरा वर्ण 'ए' हो गया है।

सन्धि की व्यवस्था

एक पद में, धातु और उपसर्ग की तथा समास में नित्यसन्धि होती है, किन्तु वाक्य में विवक्षा की अपेक्षा रखती है अर्थात् वाक्य में वक्ता की इच्छा पर सन्धि होती है।

'संहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

उदाहरण :—

एक पद में :—ने + अनम् = नयनम्। भो + अति = भवति।

धातु और उपसर्ग में :—अधि + आगच्छति = अध्यागच्छति।

समास में :—राज्ञः + अश्वः = राजाश्वः।

वाक्य में :—द्वाविंशे एव वर्षे इन्दुमती अधिजगाम स्वर्गम्।

सन्धि के भेद

सन्धि तीन प्रकार की होती है। (१) अच् सन्धि या स्वर सन्धि (२) हल् सन्धि या व्यञ्जन सन्धि (३) विसर्ग सन्धि।

अच् सन्धि या स्वर सन्धि—जब दो स्वरों के पास-पास होने पर विकार होता है तब उसे स्वर सन्धि या अच् सन्धि कहते हैं। यथा—इति + अलम् = इत्यलम्।

हल् सन्धि या व्यञ्जन सन्धि—व्यञ्जन के बाद स्वर या व्यञ्जन के होने पर व्यञ्जन में जो विकार उत्पन्न होता है उसे व्यञ्जन सन्धि कहते हैं। यथा—

सन् + आह = सन्नाह। जगत् + नाथः = जगन्नाथः।

विसर्ग सन्धि—जब विसर्ग के बाद कोई स्वर या व्यञ्जन वर्ण आने पर विसर्ग में विकार उत्पन्न होता है, तब विकार को विसर्ग सन्धि कहते हैं। यथा—

रामः + अवदत् = रामोऽवदत्। बालकः + गच्छति = बालको गच्छति।

स्वर-सन्धि

१—दीर्घसन्धि

(१) अकः सवर्णे दीर्घः। ६।१।१०१।

पूर्व स्वर 'अ' (ह्रस्व या दीर्घ) और पर (बाद वाला) स्वर भी 'अ' (ह्रस्व या दीर्घ) हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ आ। इसी प्रकार पूर्वस्वर 'इ' (ह्रस्व या दीर्घ) और पर स्वर भी 'इ' (ह्रस्व या दीर्घ) हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ ई। पूर्व स्वर 'उ' (ह्रस्व या दीर्घ) और पर स्वर भी 'उ' (ह्रस्व या दीर्घ) हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ ऊ। पूर्वस्वर ऋ (ह्रस्व या दीर्घ) और पर स्वर भी ऋ (ह्रस्व या दीर्घ) हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ ॠ हो जाता है। संक्षेप में—

ह्रस्व अथवा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद क्रमशः ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ आये तो उन दोनों के स्थान पर क्रमशः आ, ई, ऊ, ॠ हो जाते हैं। यथा—

अ + अ = आ	असुर + अरिः = असुरारिः।
अ + आ = आ	औषध + आलयः = औषधालयः।
आ + अ = आ	विद्या + अर्थी = विद्यार्थी।
आ + आ = आ	विद्या + आलयः = विद्यालयः।
इ + इ = ई	कवि + इन्द्रः = कवीन्द्रः।
इ + ई = ई	कपि + ईशः = कपीशः।
ई + इ = ई	नदी + इदम् = नदीदम्।
ई + ई = ई	गौरी + ईशः = गौरीशः।
उ + उ = ऊ	भानु + उदयः = भानूदयः।
उ + ऊ = ऊ	धेनु + ऊधस्यम् = धेनूधस्यम्।
ऊ + उ = ऊ	वधू + उल्लासः = वधूल्लासः।
ऊ + ऊ = ऊ	चमू + ऊर्जः = चमूर्जः।
ऋ + ऋ = ॠ	पितृ + ऋणम् = पितॄणम्।
	हृ + ऋकारः = हॄकारः।

२—गुण सन्धि

(२) अदेङ् गुणः । १।१।२। आद्गुणः । ६।१।८७।

जब अ अथवा आ के बाद ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, ऌ आयें तो अ + इ मिलकर ए, अ + उ मिलकर ओ, अ + ऋ मिलकर अर् और अ + ऌ मिलकर अल् हो जाते हैं। यथा—

अ + इ = ए	नर + इन्द्रः = नरेन्द्रः ।
आ + इ = ए	महा + इन्द्रः = महेन्द्रः ।
अ + ई = ए	नर + ईशः = नरेशः ।
आ + ई = ए	रमा + ईशः = रमेशः ।
अ + उ = ओ	सूर्य + उदयः = सूर्योदयः ।
आ + उ = ओ	गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम् ।
अ + ऊ = ओ	नव + ऊढा = नवोढा
आ + ऊ = ओ	रम्भा + ऊरुः = रम्भोरुः ।
अ + ऋ = अर्	कृष्ण + ऋद्धिः = कृष्णर्द्धिः ।
आ + ऋ = अर्	महा + ऋषिः = महर्षिः ।
अ + ऌ = अल्	तव + ऌकारः = तवल्कारः ।

गुण के अपवाद—

(अक्षादूहिन्यामुपसङ्ख्यानम् वा०) अक्ष + ऊहिनी में गुण स्वर 'ओ' न होकर वृद्धिस्वर 'औ' हुआ है। यहाँ पर 'न' के स्थान पर 'ण' कैसे हुआ है, यह आगे बताया जायगा।

(स्वादीरेरिणोः वा०) जब 'स्व' शब्द के बाद 'ईर' और 'ईरिन्' आते हैं तो गुण न होकर वृद्धि होती है। यथा—

स्व + ईरः = स्वैरः (स्वेच्छाचारी)

स्व + ईरिणी = स्वैरिणी । स्व + ईरम् = स्वैरम् ।

स्व + ईरी = स्वैरी (जिसका स्वेच्छानुसार आचरण करने का स्वभाव हो)

(प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु वा०) जब प्र के बाद ऊह, ऊढ, ऊढि, एष, एष्य आते हैं तो गुणस्वर न होकर वृद्धिस्वर होता है। यथा—

प्र + ऊहः = प्रौहः ।

प्र + ऊढः = प्रौढः ।

प्र + ऊढिः = प्रौढिः । ये उदाहरण 'आद्गुणः' के अपवाद हैं।

प्र + एषः = प्रैषः ।

प्र + एष्यः = प्रैष्यः । ये दो उदाहरण 'एङि पररूपम्' के अपवाद हैं।

(उपसर्गादृति धातौ । ६।१।९१।) यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद ऐसी धातु आवे

जिसके आदि में ह्रस्व 'ऋ' हो तो 'अ' और 'ऋ' के स्थान पर 'आर्' हो जाता है। यथा—

उप + ऋच्छति = उपार्च्छति।

प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति।

किन्तु

(वा सुप्यापिशलेः। ६।१।९२।) यदि नामधातु हो तो 'आर्' विकल्प से होता है। यथा—

प्र + ऋषभीयति = प्रार्षभीयति।

अथवा प्रर्षभीयति। (बैल की तरह आचरण करना है)

(ऋते च तृतीया समासे वा०) जब ऋत के साथ किसी पूर्वगामी शब्द का तृतीया समास हो तब भी पूर्वगामी अकारान्त शब्द के अ और ऋत के ऋ से मिलकर आर् बनेगा, अर् नहीं। यथा—

सुखेन ऋतः = सुख + ऋतः = सुखार्त।

(ऋत्यकः। ६।१।२८) (ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वत्)।

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ तथा ऌ जब किसी पद के अन्त में रहें और इनके बाद ह्रस्व 'ऋ' आवे तो पदान्त अक् विकल्प से ह्रस्व हो जाते हैं। यह नियम गुण सन्धि का विकल्प प्रस्तुत करता है। यथा—

ब्रह्मा + ऋषिः = ब्रह्मर्षिः अथवा ब्रह्मऋषिः।

सप्त + ऋषीणाम् = सप्तर्षीणाम्, सप्तऋषीणाम्।

३—वृद्धि सन्धि

(३) वृद्धिरेचि। ६।१।८८। वृद्धिरादैच्। १।१।१।

ह्रस्व अथवा दीर्घ 'अ' के बाद 'ए' अथवा 'ऐ' आवे तो दोनों मिलकर 'ऐ' हो जाते हैं। ह्रस्व अथवा दीर्घ 'अ' के बाद 'ओ' अथवा 'औ' आवे तो दोनों मिलकर 'औ' हो जाते हैं। यथा—

अ + ए = ऐ	तव + एव = तवैव।
आ + ए = ऐ	सदा + एव = सदैव।
अ + ऐ = ऐ	देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्।
आ + ऐ = ऐ	महा + ऐश्वर्यम् = महैश्वर्यम्।
अ + ओ = औ	उष्ण + ओदनम् = उष्णौदनम्।
आ + ओ = औ	गङ्गा + ओघ = गङ्गौघः।
अ + औ = औ	कृष्ण + औत्कण्ठ्यम्=कृष्णौत्कण्ठ्यम्।
आ + औ = औ	महा + औषधम् + महौषधम्।

इत्यादि।

अपवाद—नियम—(एङि पररूपम् । ६।१।९४) यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद एकारादि या ओकारादि धातु आवे तो दोनों के स्थान में 'ए' या 'ओ' हो जाता है । यथा—

प्र + एजते = प्रेजते ।

उप + ओषति = उपोषति ।

किन्तु—

(वा सुपि) यदि वह नामधातु हो तो विकल्प से वृद्धि होती है । यथा—

उप + एडकीयति = उपेडकीयति या उपैडकीयति ।

प्र + ओषधीयति = प्रोषधीयति या प्रौषधीयति ।

(एवे चानियोगे वा०) एव के साथ भी जब अनिश्चय का बोध हो तो पूर्वगामी अकारान्त शब्द का 'अ' और एव का 'ए' मिलकर 'ए' ही रह जायँगे । यथा—

क्व + एव भोक्ष्यसे = क्वेव भोक्ष्यसे (कहीं ही खाओगे) । जब अनिश्चय नहीं रहेगा तब ऐ ही होगा, यथा—तव + एव = तवैव ।

(शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् वा० । तच्च टेः वा) शक + अन्धुः, कुल + अटा, मनस् + ईषा इत्यादि उदाहरणों में भी परवर्ती शब्द के आदि स्वर का ही अस्तित्व रहता है । पूर्ववर्ती शब्द के 'टि' का पररूप (लोप) हो जाता है । इनमें प्रथम दो उदाहरण 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से होने वाली सवर्ण दीर्घ सन्धि के अपवाद हैं ।

शक + अन्धुः = शकन्धुः ।

कुल + अटा = कुलटा ।

मनस् + ईषा = मनीषा ।

(सीमन्तः केशवेशे) बालों में माँग अर्थ में सीम + अन्तः=सीमन्तः होगा, अन्यथा सीमान्तः (हद) रूप होगा ।

(सारङ्गः पशुपक्षिणोः) पशु-पक्षी के अर्थ में सार + अङ्गः = सारङ्गः, अन्यथा साराङ्गः रूप बनेगा ।

(ओत्वोष्ठयोः समासे वा) समास में ओतु और ओष्ठ के परे रहते हुए विकल्प से पररूप होता है । यथा—

स्थूल + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः ।

बिम्ब + ओष्ठः = बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः ।

४—यण् सन्धि

(४) इको यणचि ।६।१।७७।

ह्रस्व अथवा दीर्घ इ, उ, ऋ, ऌ के बाद कोई भिन्न स्वर आवे तो इ को य्, उ को व्, ऋ को र् और ऌ को ल् हो जाता है । यथा—

इति + आह = इत्याह ।

पार्वती + आराधनम् = पार्वत्याराधनम् ।

मधु + अरिः = मध्वरिः ।

पितृ + आज्ञा = पित्राज्ञा ।
लृ + आकृतिः = लाकृतिः ।
यदि + अपि = यद्यपि ।
दधि + अत्र = दध्यत्र ।
प्रति + उपकारः = प्रत्युपकारः ।
अनु + अयः = अन्वयः ।
प्रभु + आज्ञा = प्रभ्वाज्ञा ।
कलि + आगमः = कल्यागमः ।
धातृ + अंशः = धात्रंशः ।

५—अयादि चतुष्टय

(५) एचोऽयवायावः ।६।१।७८।

यदि ए, ऐ, ओ, औ के बाद कोई स्वर आवे तो 'ए' के स्थान पर 'अय्', 'ऐ' के स्थान पर 'आय्', 'ओ' के स्थान पर 'अव्' और 'औ' के स्थान पर 'आव्' हो जाता है। यथा—

ने + अनम् = न् + अय् + अनम् = नयनम् ।
नै + अकः = न् + आय् + अकः = नायकः ।
पो + इत्रः = प् + अव् + इत्रः = पवित्रः ।
पौ + अकः + प् + आव् + अकः = पावकः । इत्यादि ।

(अ) लोपः शाकल्यस्य ।८।३।१९।

पदान्त य् या व् के ठीक पूर्व यदि अ या आ रहे और पश्चात् कोई स्वर आवे तो य् और व् का लोप करना या न करना अपनी इच्छा पर निर्भर रहता है; यथा—

हरे + एहि = हरयेहि अथवा हर एहि ।
विष्णो + इह = विष्णविह अथवा विष्ण इह ।
तस्यै + इमानि + तस्यायिमानि अथवा तस्या इमानि ।
श्रियै + उत्सुकः = श्रियायुत्सुकः अथवा श्रिया उत्सुकः ।
गुरौ + उत्कः = गुरावुत्कः अथवा गुरा उत्कः ।
रात्रौ + आगतः = रात्रावागतः अथवा रात्रा आगतः ।
ऋतौ + अन्नम् = ऋतावन्नम् अथवा ऋता अन्नम् ।

(ब) (पूर्वत्रासिद्धमिति लोपशास्त्रस्यासिद्धत्वान्न स्वरसन्धिः) मध्यस्थ व्यञ्जन या विसर्ग के लोप हो जाने पर जब कोई दो स्वर समीप आ जायँ तो उनकी परस्पर सन्धि नहीं होती ।

(स) (वान्तो यि प्रत्यये ।६।१।७९।) जब ओ या और के बाद यकारादि प्रत्यय (ऐसा प्रत्यय जिसके आरम्भ में 'य' हो) आवे तो 'ओ' और 'औ' के स्थान में क्रम से अव् और आव् हो जाते हैं। यथा—

गोर्विकारो (गो + यत्) = गव्यम् ।

नावा तार्यं (नौ + यत्) = नाव्यम् ।

(द) (गोर्यूतौ, अध्वपरिमाणे च वा०) गो शब्द के 'ओ' को 'अव्' होता है बाद में यूति शब्द हो तो, मार्ग की लम्बाई के अर्थ में । यथा—

गो + यूतिः = गव्यूतिः

(य) (धातोस्तन्निमित्तस्यैव) जब यकारादि प्रत्यय बाद में होता है, तब धातु के 'ओ' को अव् और 'औ' को आव् होता है । किन्तु यह तभी होगा जब ओ या औ प्रत्यय के कारण हुआ हो । यथा—

लो + यम् = लव्यम् ।

भौ + यम् = भाव्यम् ।

६—पूर्वरूप

(१) एङः पदान्तादति ।६।१।१०९।

यदि ए अथवा ओ पद के अन्त में स्थित हो और उसके बाद स्वर ह्रस्व अ हो तो ऐसी स्थिति में अयादि सन्धि न करके उस ह्रस्व अ का लोप कर दिया जाता है । सन्धि दिखाने के लिए लुप्त अकार के स्थान ऽ चिह्न लगा दिया जाता है । इस चिह्न को अर्द्ध अकार अथवा खण्ड अकार कहते हैं । यथा—

हरे + अव ।

यहाँ 'हरे' हरि शब्द के सम्बोधन का रूप है अतः पद है और 'ए' उस पद के अन्त में स्थित है । उसके बाद स्वर ह्रस्व अ है, ऐसी स्थिति में ए को अय् नहीं होगा अपितु ह्रस्व अ का पूर्वरूप (लोप) हो जायगा और उसके स्थान पर ऽ चिह्न बना दिया जायगा । इस प्रकार हरे + अव = हरेऽव (हे हरि ! रक्षा कीजिए) रूप बनेगा ।

इसी प्रकार—

विष्णो + अव = विष्णोऽव ।

वृक्षे + अस्मिन् = वृक्षेऽस्मिन् ।

वने + अत्र = वनेऽत्र ।

लोको + अयम् = लोकोऽयम् ।

विद्यालये + अस्मिन् = विद्यालयेऽस्मिन् ।

गुरो + अव = गुरोऽव ।

अपवाद—

(अ) (सर्वत्र विभाषा गोः ।६।१।१२२) गो-शब्द के बाद अ हो तो विकल्प से उसे प्रकृतिभाव होता है । यथा—

गो + अग्रम् = गो अग्रम्, गोऽग्रम् ।

(ब) (अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३।) स्वर बाद में हो तो गो-शब्द के ओ को विकल्प से अवङ् (अव) हो जाता है । यथा—

गो + अग्रम् = गवाग्रम् , गोऽग्रम् , गो अग्रम् ।

(स) (इन्द्रे च ।६।१।१२४।) यदि इन्द्र शब्द बाद में हो तो गो के ओ को अवङ् (अव) हो जाता है । यथा—

गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः ।

७—प्रकृतिभाव

(७) ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् । १।१।११।

किसी शब्द के द्विवचन के रूप के अन्त में दीर्घ ई, ऊ अथवा ए हो और उसके बाद कोई स्वर आवे तो किसी प्रकार की भी सन्धि नहीं होगी। इसी को प्रकृतिभाव कहते हैं । यथा—

हरी + इमौ = हरी इमौ ।

यहाँ 'हरी' हरि-शब्द के प्रथमा द्विवचन का रूप है जिसके अन्त में 'ई' है और बाद में 'इ' स्वर है । ई + इ = ई अर्थात् दीर्घसन्धि (देखो नियम १) प्राप्त होते हुए भी नहीं हुई । इसी प्रकार

कवी + अमू = कवी अमू ।
भानू + उद्गच्छतः = भानू उद्गच्छतः ।
साधू+ एतौ = साधू एतौ ।
गंगे + अमू = गंगे अमू ।

अपवाद—

(अ) (अदसो मात् । १।१।१२।) जब अदस् शब्द के म् के बाद ई या ऊ आते हैं तो वे प्रगृह्य होते हैं । यथा—

अमी + ईशाः = अमी ईशाः ।
अमू + आसाते = अमू आसाते ।

(ब) (निपात एकाजनाङ् ।१।१।१४।) आङ् के अतिरिक्त अन्य एकस्वरात्मक अव्ययों की भी प्रगृह्य संज्ञा होती है । यथा—

इ इन्द्रः, उ उमेशः, आ एवं नु मन्यसे ।

(स) (ओत् ।१।१।१५।) जब अव्यय ओकारान्त हो तो ओ को प्रगृह्य कहते हैं । यथा—अहो ईशाः ।

(द) (सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे ।१।१।१६।) संज्ञा शब्दों के सम्बोधन के अन्त के ओकार के बाद 'इति' शब्द आवे तो सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार की विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है । यथा—

विष्णो + इति = विष्णो इति, विष्णविति, विष्ण इति ।

(य) प्लुतों के साथ भी सन्धि नहीं होती । यथा—

एहि कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति ।

व्यञ्जन-सन्धि

(८) स्तोः श्चुना श्चुः । ८।४।४०

स् या तवर्ग से पहिले या बाद में श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् को श् और तवर्ग को चवर्ग हो जाता है। यथा—

रामस् + शेते = रामश्शेते ।

हरिस् + च = हरिश्च ।

दुस् + चरित्रः = दुश्चरित्रः ।

तत् + च = तच्च ।

शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय ।

अपवाद—(शात् । ८।४।४४।) श् के बाद तवर्ग हो तो तवर्ग को चवर्ग नहीं होता। यथा—

विश् + नः = विश्नः ।

प्रश् + नः = प्रश्नः ।

(९) ष्टुना ष्टुः । ८।४।४१ ।

स् या तवर्ग से पहिले या पीछे ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् को ष् और तवर्ग को टवर्ग हो जाता है। यथा—

रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः ।

इष् + तः = इष्टः ।

दुष् + तः = दुष्टः ।

रामस् + टीकते = रामष्टीकते ।

पेष् + ता = पेष्टा ।

अपवाद—

(अ) (न पदान्ताट्टोरनाम् ।८।४।४२।)

पद के अन्तिम टवर्ग के बाद 'नाम्' प्रत्यय के नकार को छोड़कर कोई तवर्ग वर्ण या सकार हो तो उसके स्थान में टवर्ग या षकार आदेश नहीं होता है। यथा—

षट् + सन्तः = षट् सन्तः । षट् + ते = षट् ते ।

किन्तु नाम् , नवति अथवा नगरी शब्द के रहने पर सन्धि होगी ही। यथा—

षट् + नाम् = षण्णाम् ।

षट् + नवतिः = षण्णवतिः ।

षड् + नगर्यः + षण्णगर्यः ।

(ब) (तोः षि ।८।४।४३ ।)

तवर्ग के बाद ष् हो तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होता। यथा—

सन् + षष्ठः = सन् षष्ठः ।

(१०) झलां जशोऽन्ते ।८।२।३९।

पद के अन्त में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४ वर्ण और श्, ष्, स्, ह्,) स्थित हो तो उसे जस (अपने वर्ग का तृतीय अक्षर) हो जाता है। यथा—

अच् + अन्तः = अजन्तः ।

सुप् + अन्तः = सुबन्तः ।

वाक् + दानम् = वाग्दानम् ।

जगत् + ईशः = जगदीशः ।

षट् + आननः = षडाननः ।

चित् + आनन्दः = चिदानन्दः ।

(११) झलां जश् झशि ।८।४।५३।

अपदान्त में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४ तथा ऊष्म) को जश् (अपने वर्ग का तृतीय अक्षर) हो जाता है यदि बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हो। यथा—

लभ् + धः = लब्धः ।

दुघ् + धम् = दुग्धम् ।

बुध् + धिः = बुद्धिः ।

दघ् + धः = दग्धः ।

क्षुभ् + धः = क्षुब्धः ।

आरभ् + धम् = आरब्धम् ।

सूचना—यह नियम पद के बीच में लगता है।

(१२) यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ।८।४।४५।

पदान्त यर् (ह के अतिरिक्त समस्त व्यञ्जन) के बाद अनुनासिक (वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो य र् को अपने वर्ग का पंचम वर्ण हो जायगा। यह नियम ऐच्छिक है। अर्थात विकल्प है

(प्रत्यये भाषायां नित्यम् वा०) यदि प्रत्यय का 'म' इत्यादि बाद में होगा तो यह नियम ऐच्छिक नहीं होगा, अपितु नित्य लगेगा। यथा—

दिक् + नागः = दिङ्नागः । सद् + मतिः = सन्मतिः । तद् + न = तन्न ।

पद् + नगः = पन्नगः । तत् + मयम् = तन्मयम् । षट् + मुखः = षण्मुखः ।

वाक् + मयम् = वाङ्मयम् । एतद् + मुरारिः = एतन्मुरारिः । इत्यादि ।

(१३) तोर्लि ।८।४।६०।

यदि तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के बाद ल आवे तो तवर्ग के स्थान पर ल् हो जाता है। यथा—

विद्युत् + लता = विद्युल्लता ।

तद् + लीनः = तल्लीनः ।

तद् + लयः = तल्लयः ।

विशेष—यदि न् के बाद ल आता है तो न् के स्थान पर अनुनासिक ल हो जाता है और ल से पूर्व स्वर के ऊपर चन्द्रबिन्दु का प्रयोग किया जाता है। यथा—

विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति।

गुणवान + लुण्ठति = गुणवाँल्लुण्ठति।

(१४) उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य।८।४।६१।

यदि उद् के पश्चात् स्था या स्तम्भ् धातु हो तो द् को त और स् को थ् का आदेश होगा। यथा—

उद् + स्थानम् = उत्थानम्।

उद् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्।

(१५) झरो झरि सवर्णे।८।४।६५।

व्यञ्जन के बाद झर् (वर्ग के १, २, ३, ४ और श, ष, स) का विकल्प से लोप होता है, यदि बाद में सवर्ण झर् हो तो। यथा—

उद् + थ् थानम् = उत्थानम्।

रुन्ध् + धः = रुन्धः।

कृष्णर् + धिः = कृष्णर्धिः।

(१६) झयो होऽन्यतरस्याम्।८।४।६२।

यदि वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्णों के पश्चात् ह् आवे तो ह् के स्थान में उसी वर्ग का चौथा अक्षर कर देना या न कर देना अपनी इच्छा पर है। यथा—

वाक् + हरिः = वाग्हरिः अथवा वाग्घरिः।

(१७) खरि च।८।४।५५। वावसाने।८।४।५६।

झलों (१, २, ३, ४, ऊष्म) को चर् (उसी वर्ग के प्रथम अक्षर) होते हैं बाद में खर् (१, २, श, ष, स) हों तो। यथा—

सद् + कारः = सत्कारः। उद् + पन्नः = उत्पन्नः। तद् + परः = तत्परः।

उद् + साहः = उत्साहः। तज् + छिवः = तच्छिवः। दिग् + पालः = दिक्पालः।

(१८) शश्छोऽटि।८।४।६३।

पदान्त झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद 'श' हो तो उसको छ् हो जाता है, यदि उस श् के बाद अट् (स्वर, ह्, य्, व्, र्,) हो तो श् को छ् होने पर पूर्ववर्ती द् को 'स्तोः श्चुना श्चुः' से ज् और ज् को 'खरि च' से च् हो जाता है। पूर्ववर्ती त् होने पर 'स्तोः श्चुना श्चुः' से च् हो जाता है। यह नियम विकल्प से लगता है। यथा—

तद् (तत्) + शिवः = तच्छिवः, तच्शिवः।

" " + शिला = तच्छिला, तच्शिला।

सत् + शीलः = सच्छीलः।

उत् + श्वासः = उच्छ्वासः।

(१९) मोऽनुस्वारः । ८।३।२३ ।

पदान्त में स्थित म् के बाद भी व्यञ्जन हो तो 'म्' को अनुस्वार (ं) हो जाता है। यथा—

गृहम् + गच्छति = गृहं गच्छति ।

रामम् + नमामि = रामं नमामि ।

त्वम् + पठसि = त्वं पठसि ।

कार्यम् + कुरु = कार्यं कुरु ।

सत्यम् + वद = सत्यं वद ।

धर्मम् + चर = धर्मं चर ।

(२०) नश्चापदान्तस्य झलि । ८।४।२४।

यदि बाद में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४ ऊष्म) हो तो अपदान्त न् और म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है। यथा—

यशान् + सि = यशांसि ।

पयान् + सि = पयांसि ।

नम् + स्यति = नंस्यति ।

आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते ।

सूचना—यह नियम पद के बीच में लगता है।

(२१) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । ८।४।५८।

अपदान्त अनुस्वार के बाद वर्ग का कोई अक्षर अथवा य्, र्, ल्, व् हो तो अनुस्वार को उस अक्षर का सवर्ण अनुनासिक होता है। यथा—

शाम् + तः = शान्तः । कं + ठः = कण्ठः । अन् + कितः = अङ्कितः ।

शं + का = शङ्का । गुं + फितः = गुम्फितः । अं + चितः = अञ्चितः ।

(२२) वा पदान्तस्य । ८।४।५९।

पदान्त में यह परसवर्ण (अगले वर्ण का पञ्चम अक्षर) विकल्प से होता है। यथा—

गृहम् + चलति = गृहञ्चलति अथवा गृहं चलति ।

फलम् + चिनोति = फलञ्चिनोति अथवा फलं चिनोति ।

त्वम् + करोषि = त्वङ्करोषि अथवा त्वं करोषि ।

(२३) मो राजि समः क्वौ । ८।२।२५।

जब राज् धातु परे हो और उसमें क्विप् प्रत्यय जुड़ा हो तब पूर्ववर्ती सम् के म का म् ही रहता है, अनुस्वार नहीं होता है। यथा—

सम् + राट् = सम्राट् ।

(२४) ङ्णोः कुक्टुक्शरि । ८।३।२८।

ङ् या ण् के अनन्तर शर् (श, ष, स) हो तो विकल्प से बीच में क् या ट् जुड़ जाते हैं। ङ् के बाद क् और ण् के बाद ट् जुड़ते हैं। यथा—

प्राङ् + षष्ठः = (प्राङ्-क् षष्ठः) प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः ।

सुगण् + षष्ठः = सुगण्ट्षष्ठः, सुगण्षष्ठः ।

(२५) डः सि धुट् । ८।३।२९।

ड् के बाद स हो तो बीच में ध् विकल्प से जुड़ जाता है। "खरि च" से ध को त् होता है। यथा—सन + सः = सन्त्सः, सन्सः ।

(२६) शि तुक् । ८।३।३१।

पदान्त न् के बाद श हो तो विकल्प से बीच में त् जुड़ जाता है। "शश्छोऽटि" से श् को छ् हो जाता है। यथा—

सन + शम्भुः = सञ्च्छम्भुः । अथवा सञ्छम्भुः ।

(२७) ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् । ८।३।३२।

ह्रस्व स्वर के बाद ङ्, ण्, न् हों और बाद में कोई स्वर हो तो बीच में एक ङ्, ण्, न् और जुड़ जाता है। यथा—

प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा ।

सुगण् + ईशः = सुगण्णीशः ।

सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः ।

(२८) समः सुटि । ८।३।५। अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा । ८।३।२।

अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः । ८।३।४। (संपुंकानां सो वक्तव्यः वा०)

सम् + स्कर्ता में म् के स्थान पर र् होकर स् हो जाता है और उससे पहले अनुस्वार (ं) या अनुनासिक (ँ) लग जाता है। बीच के एक स् का लोप भी हो जाता है। यथा—सम् + स्कर्ता = सँस्कर्ता, संस्कर्ता ।

सम् + कृ धातु होने पर इसी प्रकार (ं) स् लगाकर सन्धि होगी। संस्करोति संस्कृतम्, संस्कारः आदि ।

(२९) पुमः खय्यम्परे ।८।३।६।

यदि बाद में कोकिलः, पुत्रः आदि शब्द हों तो पुम् के म् को र् होकर "समः सुटि" से स् हो जायगा। स् से पहले ं या ँ लग जाएँगे। यथा—

पुम् + कोकिलः = पुंस्कोकिलः ।

पुम् + पुत्रः = पुंस्पुत्रः ।

(३०) नश्छव्यप्रशान् ।८।३।७।

यदि प्रशान् शब्द के अतिरिक्त पदान्त न् के बाद छव् (च्, छ्, ट्, ठ्, त् और थ्) हो और छव् के बाद अम् (कोई स्वर, ह्, य्, व्, र्, ल् या किसी वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो न् को अनुस्वार हो जाता है और च्, छ्, ट्, ठ्, त् और थ् के स्थान पर क्रमशः श्च, श्छ, ष्ट, ष्ठ, स्त एवं स्थ हो जाता है। यथा—

शार्ङ्गिन् + छिन्धि = शार्ङ्गिंश्छिन्धि ।

महान् + टङ्कारः = महांष्टङ्कारः ।

कस्मिन् + चित् = कस्मिंश्चित् ।

तस्मिन् + तथा = तस्मिंस्तथा ।

धीमान् + च = धीमांश्च ।

(३१) कानाम्रेडिते ।८।३।१२।

कान् + कान् में पहले कान् के न् को र् होकर स् हो जाता है और उससे पहले ँ या ं होगा। यथा कान् + कान् = काँस्कान्, कांस्कान् ।

(३२) छे च ।६।१।७३।

ह्रस्व स्वर के बाद छ हो तो बीच में त् लग जाता है। तदनन्तर "स्तोः श्चुना श्चुः" से त् को च् हो जायगा। यथा—

स्व + छाया = स्वच्छाया ।

शिव + छाया = शिवच्छाया ।

स्व + छन्दः = स्वच्छन्दः ।

(३३) दीर्घात् ।६।१।७५

दीर्घ स्वर के बाद छ हो तो भी बीच में त् लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। यथा चे + छियते = चेच्छियते ।

(३४) पदान्ताद् वा । ६।१।७६।

पद के अन्तिम दीर्घ अक्षर के बाद छ हो तो विकल्प से त् लगेगा। यथा—

लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया ।

(३५) आङ्माङोश्च । ६।१।७४।

आ और मा के बाद छ होगा तो त् नित्य होगा। त् को च् पूर्ववत् होगा। यथा—

आ + छादयति = आच्छादयति ।

मा + छिदत् = माच्छिदत् ।

विसर्ग-सन्धि

(३६) ससजुषो रुः । ८।२।६६।

पदान्त स् और सजुष् शब्द के ष् को रु होता है। (सूचना—इस रु को 'खरव-सानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होकर विसर्ग ही शेष रहता है)। यथा—

राम + स् = रामः । कृष्ण + स् = कृष्णः ।

इसी विसर्ग को "अतो रोरप्लुतादप्लुते", "हशि च", "भो भगोअघोअपूर्वस्य योऽशि" से उ या य् होता है। जहाँ उ या य् नहीं होता है, वहां र् शेष रहता है। अतः अ आ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद स् या विसर्ग का र् शेष रहता है, यदि बाद में कोई स्वर या व्यञ्जन (वर्ग के ३, ४, ५) हों। जैसे—

हरिः + अवदत् = हरिरवदत् ।

शिशुः + आगच्छत् = शिशुरागच्छत् ।

पितुः + इच्छा = पितुरिच्छा ।
वधूः + एषा = वधूरेषा ।
गुरोः + भाषणम् = गुरोर्भाषणम् ।
हरेः + द्रव्यम् = हरेर्द्रव्यम् ।

(३७) खरवसानयोर्विसर्जनीयः । ८।३।१५

यदि आगे खर् प्रत्याहार (वर्गों के प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श, ष, स) का कोई वर्ण हो अथवा कोई भी वर्ण न हो, तो र् के स्थान में विसर्ग हो जाता है । यथा—

पुनर् + पृच्छति = पुनः पृच्छति ।
राम + स् (र्) = रामः ।

सूचना—पुं शब्दों के एक० में जो विसर्ग रहता है, वह स् का ही विसर्ग है, उसको "ससजुषो रुः" से रु (र्) होता है और "खरवसान०" से र् को विसर्ग (:) होता है ।

(३८) विसर्जनीयस्य सः । ८।३।३४ ।

विसर्ग के बाद खर् (वर्गों के प्रथम, द्वितीय अक्षर, श, ष, स) हो तो विसर्ग को स् हो जाता है । (श् या चवर्ग बाद में हो तो "स्तोः श्चुना श्चुः" से श्चुत्व सन्धि भी होती है), यथा—

हरि = त्रायते = हरिस्त्रायते । विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता ।
रामः + तिष्ठति = रामस्तिष्ठति । जनाः + तिष्ठन्ति = जनास्तिष्ठन्ति ।
कः + चित् = कश्चित् । बालः + चलति = बालश्चलति ।

(३९) वा शरि । ८।३।३६ ।

यदि विसर्ग के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विसर्ग को विसर्ग और स् दोनों होते हैं । श्चुत्व अथवा ष्टुत्व यथोचित होंगे । यथा—

हरिः + शेते = हरिःशेते, हरिश्शेते । रामः + षष्ठः = रामष्षष्ठः ।
रामः + शेते = रामःशेते, रामश्शेते । बालः + स्वपिति = बालस्स्वपिति ।

(४०) शर्परे विसर्जनीयः । ८।३।३५।

यदि विसर्ग के पश्चात् आने वाले खर् प्रत्याहार के वर्ण के अनन्तर शर् (श्, ष्, स्) प्रत्याहार का कोई वर्ण आवे तो विसर्ग के स्थान में स् नहीं होता । यथा— कः + त्सरुः = कःत्सरुः ।

(४१) सोऽपदादौ । ८।३।३८। पाशकल्पककाम्येष्विति वाच्यम् । वा० ।

यदि पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्यय बाद में हों तो विसर्ग को स् हो जाता है ।

यथा— पयः + पाशम् = पयस्पाशम् । यशः + कम् = यशस्कम् ।
यशः + कल्पम् = यशस्कल्पम् । यशः = काम्यति = यशस्काम्यति ।

(४२) इणः षः । ८।३।३९।

यदि पाश, कल्प, क, काम्य प्रत्यय बाद में हों तो विसर्ग को ष् हो जाता है, यदि वह विसर्ग इ, उ के बाद हो। यथा—

सर्पिष्पाशम्, सर्पिष्कल्पम्, सर्पिष्कम्। आदि।

(४३) कस्कादिषु च। ८।३।४८।

कस्क आदि शब्दों में विसर्ग से पूर्व अ या आ होने पर विसर्ग को स् हो जाता है, इण् (इ, उ) होने पर ष् हो जाता है। यथा—

कः + कः = कस्कः।

कौतः + कुतः = कौतस्कुतः। सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका।

भाः + करः = भास्करः। धनुः + कपालम् = धनुष्कपालम्।

(४४) नमस्पुरसोर्गत्योः। ८।३।४०।

यदि बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो गतिसंज्ञक नमस् और पुरस् के विसर्ग को स् हो जाता है। यथा—नमः करोति = नमस्करोति।

पुरः + करोति = पुरस्करोति।

सूचना—कृ धातु बाद में होती है तो नमस्, पुरस् गतिसंज्ञक होते हैं।

(४५) इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य। ८।३।४१।

यदि बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो उपधा (अन्तिम से पूर्ववर्ण) में इ या उ होने पर, उसके विसर्ग को ष् होता है (यह विसर्ग प्रत्यय का नहीं होना चाहिए) यथा—

निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्। आविः + कृतम् = आविष्कृतम्।

निः + क्रान्तः = निष्क्रान्तः। दुः + कृतम् = दुष्कृतम्।

(४६) तिरसोऽन्यतरस्याम्। ८।३।४२।

यदि कवर्ग या पवर्ग बाद में हों तो तिरस् के विसर्ग को स् विकल्प से होता है। यथा—

तिरः + करोति = तिरस्करोति अथवा तिरः करोति।

तिरः + कृतम् = तिरस्कृतम् अथवा तिरः कृतम्।

(४७) इसुसोः सामर्थ्ये। ८।३।४४।

यदि कवर्ग या पवर्ग बाद में हों तो इस् और उस् के विसर्ग को विकल्प से ष् होता है किन्तु ष् तभी होगा जब दोनों पदों में मिलने की सामर्थ्य हो। यथा—

सर्पिः + करोति = सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति।

धनुः + करोति = धनुष्करोति, धनुः करोति।

(४८) नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य। ८।३।४५।

यदि कवर्ग या पवर्ग बाद में हों तो समास होने पर इस् और उस् के विसर्ग को नित्य ष् होगा। इस् और उस् वाला शब्द उत्तरपद में नहीं होना चाहिए। यथा—

सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका।

(४९) द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ।८।३।४३।

यदि पौनःपुन्य वाचक द्विः, त्रिः और चतुः क्रियाविशेषण अव्ययों के बाद क्, ख्, प्, फ् आवें तो विसर्ग के स्थान में विकल्प करके ष् हो जाता है। यथा—

द्विः + करोति = द्विष् + करोति = द्विष्करोति या द्विः करोति।

इसी प्रकार त्रिः + खादति = त्रिष्खादति या त्रिः खादति।

चतुः + पठति = चतुष्पठति या चतुः पठति।

किन्तु चतुः + कपालम् = चतुष्कपालम् नहीं होगा, क्योंकि यहाँ चतुः क्रियाविशेषण अव्यय नहीं है।

(५०) अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ।८।३।४६।

यदि अ के पश्चात् समास में कृ, कम् आदि हों तो विसर्ग को स् नित्य होता है, किन्तु वह विसर्ग न तो अव्यय का होना चाहिए और न उत्तरपद में होना चाहिए। यथा—

अयः + कारः = अयस्कारः। अयः + कामः = अयस्कामः।

इसी प्रकार अयस्कंसः, अयस्कुम्भः, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा आदि।

(५१) अतो रोरप्लुतादप्लुते ।६।१।११३।

यदि बाद में ह्रस्व अ हो तो र को उ हो जाता है। (इस उ को पूर्ववर्ती अ के साथ "आद् गुणः" से गुण (ओ) हो जाता है और बाद में अ को "एङः पदान्तादति" से पूर्वरूप संधि होती है। अतएव अः + अ = ओऽ होता है।) यथा—

शिवः + अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः। नृपः + अवदत् = नृपोऽवदत्।
बालः + अस्ति = बालोऽस्ति। देवः + अधुना = देवोऽधुना।
कः + अपि = कोऽपि। रामः + अस्ति = रामोऽस्ति।
कः + अयम् = कोऽयम्।

(५२) हशि च ।६।१।११४।

यदि बाद में हश् (वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पंचम, ह, अन्तःस्थ) हो तो ह्रस्व अ के बाद र (स् के र् या :) को उ हो जाता है। (सन्धि नियम) "अतो रोरप्लुतादप्लुते" तब लगता है जब बाद में अ हो और "हशि च" तब लगता है जब बाद में हश् हो। उ करने के पश्चात् "आद् गुणः" से अ + उ को गुण होकर ओ होगा। (अतएव अः + हश् = ओ + हश् होगा, अर्थात् अः को ओ होगा।) यथा—

शिवः + वन्द्यः = शिवो वन्द्यः। गजः + गच्छति = गजो गच्छति।
रामः + वदति = रामो वदति। बालः + हसति = बालो हसति।

(५३) भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ।८।३।१७।

भोः, भगोः, अघोः शब्द और अ या आ के बाद रु (स् या र् या :) को य् होता है, यदि बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो।

सूचना—इसके उदाहरण आगे "लोपः शाकल्यस्य" में देखें।

(५४) हलि सर्वेषाम् ।८।३।२२।

भोः, भगोः, अघोः और अ या आ के बाद य् का लोप अवश्य हो जाता है। यदि बाद में व्यञ्जन हो।

सूचना—इसके उदाहरण आगे "लोपः शाकल्यस्य" में देखें।

(५५) लोपः शाकल्यस्य ।८।३।१९।

अ या आ पहले हो तो पदान्त य् और व् का लोप विकल्प से होता है, बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के तृ० च० पं०) हो तो। (भोभगोअघो० के य् के बाद व्यञ्जन होने पर "हलि सर्वेषाम्" से य् का लोप अवश्य होता है। य् के बाद कोई स्वर होने पर "लोपः शाकल्यस्य" से य् का लोप ऐच्छिक होता है। य् का लोप होने पर कोई दीर्घ, गुण, वृद्धि आदि सन्धि नहीं होती है।) यथा—

भोः + देवाः = भो देवाः।　　नराः + गच्छन्ति = नरा गच्छन्ति।

देवाः + नम्याः = देवा नम्याः।　　देवाः + इह = देवा इह, देवायिह।

नराः + यान्ति = नरा यान्ति।　　सुतः + आगच्छति = सुत आगच्छति।

(५६) (क) रोऽसुपि ।८।२।६९।

यदि बाद में कोई सुप् (विभक्ति) न हो तो अहन् के न् को र् होता है। यथा—

अहन् + अहः = अहरहः।　　अहन् + गणः = अहर्गणः।

(ख) (रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम् वा०) यदि रूप, रात्रि, रथन्तर बाद में हों तो अहन् के न् को रु होगा। उसको "हशि च" से उ होगा और "आद् गुणः" से गुण होकर ओ होगा। यथा—

अहन् + रूपम् = अहो रूपम्। अहन् + रात्रः + अहोरात्रः।

इसी प्रकार अहो रथन्तरम्।

(ग) (अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः। वा०) अहर् आदि के र् के बाद पति आदि हों तो र् को र् विकल्प से होता है। यथा—

अहर् + पतिः = अहर्पतिः। इसी प्रकार गीर्पतिः, धूर्पतिः।

(५७) रो रि ।८।३।१४।

र् के बाद र् हो तो पहले र् का लोप हो जाता है।

(५८) ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ।८।३।१११।

ढ् या र् का लोप हुआ हो तो उससे पूर्ववर्ती अ, इ, उ को दीर्घ हो जाता है। यथा—उढ् + ढः = ऊढः, लिढ् + ढः = लीढः।

पुनर् + रमते = पुना रमते। अन्तर् + राष्ट्रियः = अन्ताराष्ट्रियः।

हरिर् + रम्यः = हरी रम्यः। गुरुर् + रुष्टः = गुरू रुष्टः।

शम्भुर् + राजते = शम्भू राजते। शिशुर् + रोदिति = शिशू रोदिति।

(५९) एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ।६।१।१३२।

यदि बाद में कोई व्यंजन हो तो सः और एषः के विसर्ग या स् का लोप होता है।

यथा—

सः + पठति = स पठति । एषः + विष्णुः = एष विष्णुः ।

सूचना—सकः, एषकः, असः, अनेषः के विसर्ग का लोप नहीं होता है ।

सः, एषः के बाद अ होने पर "अतो रोरप्लुतादप्लुते" से 'ओऽ' होता है । अन्य स्वर बाद में होंगे तो "भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि" और "लोपः शाकल्यस्य" से विसर्ग का लोप होगा ।

(६०) सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ६।१।१३४।

यदि सस् के सकार के परे स्वर हो और पद्य के पाद की पूर्ति इस लोप के द्वारा ही हो तो स् का लोप हो जाता है । यथा—सः + एषः = सैषः ।

सैष दाशरथी रामः सैष राजा युधिष्ठिरः ।

णत्वविधान

(अ) (१) यदि 'र' के बाद 'न' आवे तो 'ण' हो जाता है । यथा—चतुर्णाम् ।

(२) यदि 'ष' के बाद 'न' आवे तो 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—पुष्णाति ।

(३) 'र' अथवा 'ष' तथा 'न' के बीच अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ औ, अं, य, र, व, ह, क, ख, ग, घ, ङ, प, फ, ब, भ, म आवें तो 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—

गुरुणा, ऋषिणा, रामेण, सर्वेण, कराणाम् , करिणा, गुरुणा, मूर्खेण, गर्वेण आदि ।

परन्तु पदान्त दन्त्य नकार को मूर्द्धन्य णकार नहीं होता है । यथा—रामान् ।

(४) 'गिरि' एवं 'नदी' आदि शब्दों में 'न' को 'ण' विकल्प से होता । यथा—

गिरि + नदी = गिरिणदी अथवा गिरिनदी ।

स्वर् + नदी = स्वर्णदी अथवा स्वर्नदी ।

(५) यदि उपसर्ग के र् के बाद धातु का 'न' आवे तो 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—

प्र + नमति = प्रणमति । प्र + मानम् = प्रमाणम् ।

(६) ओषधिवाचक और वृक्षवाचक शब्दों के बाद 'वन' शब्द के 'न' को विकल्प से 'ण' होता है । यथा—माषवनं अथवा माषवणं बदरीवनं अथवा बदरीवणम् ।

(७) यदि पर, पार, उत्तर, चान्द्र और नारा शब्द के बाद 'अयन्' शब्द आवे तो 'अयन्' के 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—परायणम् , पारायणम् , उत्तरायणम् , चान्द्रायणम् , नारायणः ।

(८) यदि 'अग्र' और 'ग्राम' शब्द के बाद 'नी' आवे तो 'नी' के 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—अग्रणीः, ग्रामणीः ।

(९) यदि 'र्' एवं 'ष्' के बाद 'पान' शब्द आवे तो 'पान' शब्द के 'न' को 'ण' विकल्प से होता है । यथा—क्षीरपाणम् अथवा क्षीरपानम् , विषपाणम् अथवा विषपानम् ।

(१०) प्र, परा, परि, निर् और अन्तर् शब्द के बाद नम् , नद् , नश् , नह् , नी, नु, नुद् , अन और हन धातु आवे तो 'न' को 'ण' हो जाता है। यथा—प्रणमति, प्रणुदति आदि। परन्तु जब नश् धातु का तालव्य 'श्' मूर्धन्य 'ष्' में बदल जाता है और 'हन्' धातु के 'ह' के स्थान पर 'घ' हो जाता है, तब 'न' को 'ण' नहीं होता है। यथा—प्रनष्टः, प्रघ्नन्ति आदि।

(११) यदि गद्, नद्, पत्, पद्, दा, धा, हन, दाण्, दो, सो, दे, घे, मा, या, द्रा, सा, वप्, शम्, चि, दिह् धातु के पूर्व 'नि' उपसर्ग हो तो 'नि' उपसर्ग के 'न' को 'ण' हो जाता है। यथा—प्रणिधानम्, प्रणिपतति आदि।

(ब) (१) यदि ऋ, र्, ष् और न के बीच में किसी दूसरे वर्ग के अक्षर आवें तो 'न' को 'ण' नहीं होता है। यथा—अर्चना। यहाँ 'र' और 'न' के बीच में चवर्ग आने के कारण 'न' को 'ण' नहीं हुआ। इसी प्रकार अर्चेन, किरीटिन, स्पर्शेन, रसेन आदि शब्द भी हैं।

(२) यदि प्रथम पद में ऋ, ॠ, र् और ष् हो एवं द्वितीय पद में 'न' हो तो 'ण्' नहीं होता है। यथा—नृयानम्, रघुनन्दनः आदि।

(३) पक्व, युवन्, अहन, भगिनी, कामिनी, भामिनी एवं यूना आदि शब्दों के 'न' को 'ण' नहीं होता है। यथा—परकामिनी, पितृभगिनी आदि।

(४) पूर्व पद के अन्त में मूर्द्धन्य 'ष' होने से उत्तर पद के 'न' को 'ण' नहीं होता है। यथा—निष्पानम्, दुष्पानम् आदि।

षत्वविधान

(अ) (१) 'अ' और 'आ' को छोड़कर किसी स्वर के बाद अथवा 'क्' और 'र्' के बाद आने वाले प्रत्यय और विभक्ति के सकार को षकार होता है। यथा—मुनिषु, गुरुषु, भानुषु, गोषु, वधूषु, देवेषु, दिक्षु आदि।

(२) अनुस्वार, विसर्ग, श्, ष् एवं स् के बीच में आ जाने पर भी स् को ष् हो जाता है। यथा—हवींषि, धनूंषि, आशीःषु, आयुःषु आदि।

(३) अ और आ के अतिरिक्त किसी दूसरे स्वर से युक्त उपसर्ग के बाद धातु के 'स' को 'ष' हो जाता है। यथा—वि + सन्न = विषण्ण।

(४) कुछ समासान्त शब्दों में भी 'स' को 'ष' हो जाता है, यदि पूर्वपद में अ और आ को छोड़कर कोई दूसरा शब्द रहता है। यथा—युधिष्ठिरः।

(५) सिध् , सू , स्तु, स्निह् , स्वप् , सिच् , सेव् , सो एवं स्था आदि षोपदेश धातु के द्वित्व करने पर भी 'ष्' होता है, यदि धातु के भाग का सू , इ, उ, ए एवं ओ के पर हो। यथा—सिषेध, सिषेच आदि।

(६) परि, नि एवं वि पूर्वक सेव् , सिव् और सह् धातु के 'स्' को 'ष्' हो जाता

है। यथा—परिषिञ्चते आदि। परन्तु सह् धातु को 'सोढ' होने से 'ष' नहीं होता है। यथा—परिसोढुम्।

(ङ) (१) अर्थात अर्थ में प्रयुक्त होने वाले सात् प्रत्यय के सकार को षकार नहीं होता है। यथा—अग्निसात्, वायुसात्, पितृसात् आदि।

(२) यदि धातु के बाद सन् प्रत्यय का 'ष' हो तो उस धातु के 'स्' को 'ष्' नहीं होता है। यथा—सिसेविषते, सिसिक्षति इत्यादि।

अभ्यास

हिन्दी में अनुवाद करो और विच्छेद करके सन्धि-नियम बताओ।

१—नरैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्राः सुरेन्द्रनीतैः पवनोपनीतैः। घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमाना स्वपश्रियं स्वामिव दर्शयन्ति। २—शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते। ३—सैवान्येवा-वारिम संवृता विमाज्ञां चंचलां श्रियम्। ४—स्वयंभुवे नमस्तेऽस्तु प्रभूताद्भुतधर्मणे। यस्य संख्याप्रभावाभ्यास गुणेष्वस्ति निश्चयः। ५—अवद्यापारितसाधुस्त्वं त्वमकार्षवत्सलः। ६—अन्तर्निविष्टोज्ज्वलरत्नभासो गवाक्षजालैरभिनिष्पितन्त्यः। हिमाद्रिटंकादिव भान्ति यस्यां गंगाम्बुपातप्रतिमा गृहेभ्यः। ७—स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थ-गौरवम्। रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्। ८—विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया। ९—यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयम्। १०—प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता। अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि। ११—हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षैरपहृतमपविद्धं पीतमुन्मीलितं च। १२—परिच्छेदातीतः सकलवचनानामविषयः पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभव-पथं यो न गतवान। विवेकप्रध्वंसादुपचितमहामोहगहनो विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च तनुते। १३—परिच्छेदव्यक्तिर्न भवति पुरःस्थेऽपि विषये, भवत्यभ्यस्तेऽपि स्मरणमतथाभावविरसम्। १४—पिबन्त्येवोदकं गावो मण्डूकेषु रुवत्स्वपि। १५—को नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृणः सभासु।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—सज्जन कार्य से अपनी उपयोगिता बताते हैं, न कि मुँह से। २—मैं तुम्हारा शिष्य हूँ[1], तुम्हारी शरण में आया हूँ, तुम मुझे शिक्षा दो। ३—ऐश्वर्य के चाहने वाले[2] मनुष्य को ये ६ दोष छोड़ देने चाहिए, निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दरिद्रता। ४—मानी लोग हर्ष से अपने प्राण और सुख छोड़ देते हैं, पर न माँगने के व्रत को नहीं छोड़ते[3]। ५—सम्पत्ति और कीर्ति चतुर में रहती है, आलसी में नहीं[4]। ६—पार्वती ने हृदय से अपने रूप की निन्दा की,[5] क्योंकि मदन के दाह के कारण वह रूप से शिव

---

१. शिष्यस्तेऽहम्। २. भूतिमिच्छता।

३. त्यजन्त्यसून् शर्म च मानिनो वरं, त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम्।

४. नालसे। ५. रूपं निनिन्द।

को न जीत सकती थी।[१] ७—किसको सदा सुख मिला है और किसको सदा दुःख[२] ? ८—गुरुओं के साथ विनयपूर्वक व्यवहार करे (वृत्)। ९—समुद्र में जहाज के के टूटने पर भी समुद्री व्यापारी तैरकर उसे पार करना चाहता है[३]। १०—नवयौवन से कषैले मनवालों को वे ही विषय मधुरतर प्रतीत होते हैं जिनका वे आस्वादन कर चुके हैं[४]। ११—अतिपरिचय से अपमान होता है और किसी के यहां अधिक जाने से अनादर होता है[५]। १२—धीर लोग अपने निश्चय से नहीं हटते हैं। १३—धर्मवृद्धों की आयु नहीं देखी जाती। १४—भाग्य से ही धन मिलता है और नष्ट होता है। १५—होनहार होकर ही रहती है[६]।

---
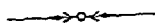
१. न जेतुं शशाक। २. कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। ३. याते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव। ४. नवयौवनकषायितात्मनश्च तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। ५. अतिपरिचयादवज्ञा, सन्ततगमनादनादरो भवति। ६. भवितव्यतानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।

द्वितीय सोपान

संज्ञा-विचार

विभिन्न कारकों को व्यक्त करने के लिए प्रातिपदिकों में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें सुप् एवं विभिन्न क्रियाओं का अर्थ व्यक्त करने के लिए धातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें तिङ् कहते हैं—यह प्राक्कथन में कह आए हैं। इन्हीं सुप् और तिङ् को विभक्ति की संज्ञा से अभिहित किया जाता है[1]। विभक्ति सूचक प्रत्ययों का भी प्राक्कथन में उल्लेख किया गया है।

यद्यपि इन विभक्तिसूचक प्रत्ययों के जोड़ने की विधि बड़ी जटिल है। तथापि यह इतनी सुव्यवस्थित है कि एक बार समझ लेने पर शब्दों के रूप बनाने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। इन प्रत्ययों के जोड़ने की निम्नलिखित विधि है—

(१) जस् के ज् , शस् के श् , टा के ट् , ङे, ङसि ङस् और ङि के ङ को 'लशक्वतद्धिते' एवं 'चुटू' नियमों के अनुसार इत्संज्ञा होकर इनका लोप हो जाता है।

(२) (अ) अकारान्त से टा, ङसि और ङस् को क्रम से इन, आत् और स्य आदेश होते हैं[2]।

(ब) अकारान्त शब्द से भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश होता है[3]।

(स) अकारान्त शब्द से ङे को य आदेश होता है[4]।

(द) नदीसंज्ञक और सखि शब्दों को छोड़कर ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द में टा जुड़ने पर उसे ना आदेश होता है[5]।

(य) ङस् , ङसि, ङे, ङि इन प्रत्ययों के परवर्ती होने पर ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त सखिभिन्न और अनदीसंज्ञक शब्दों के अन्त में आने वाले स्वर को गुण होता है[6] यथा हरि + ङे = हरि + ए = हरे + ए = हरये।

(फ) इ और उ के पश्चात् ङि की इ को औ आदेश होता है एवं इ तथा उ के स्थान में अकार हो जाता है[7]।

(च) ऋकारान्त प्रातिपदिक के पश्चात् जब ङस् या ङसि आवें तो ऋ को उ आदेश होता है[8]।

(छ) जब आकारान्त शब्द में औङ् (औ) जुड़ता है तो औङ् के स्थान में (शी) का आदेश होता है[9]।

---

१. सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः। २. टाङसिङसामिनात्स्याः ।७।१।१२।

३. अतो भिस ऐस् ।७।१।९। ४. ङेर्यः ।७।१।१३।

५. आङो नाऽस्त्रियाम् ।७।३।१२०। ६. घेर्ङिति ।७।३।१११।

७. अच्च घेः ।७।३।११९। ८. ऋत उत् ।६।१।१११।

९. औङ आपः ।७।१।१८।

(ज) जब आकारान्त शब्द में आङ् (टा तृतीया एकवचन) और ओस् जुड़ते हैं तो आ के स्थान पर ए का आदेश होता है[1]।

(झ) आकारान्त शब्द से ङे, ङसि, ङस् और ङि के जुड़ने पर आ के पश्चात् या का आगम होता है[2]।

(ञ) आकारान्त सर्वनाम के पश्चात् ङे, ङसि, ङस् और ङि के जुड़ने पर आकार का अकार हो जाता है तथा प्रत्यय और प्रातिपादिक के बीच में स्या का आगम होता है[3]।

(ट) अकारान्त नपुंसकलिङ्ग-वाचक प्रातिपादिक से सु को अम् आदेश होता है[4]।

(ठ) अकारान्त नपुंसकलिङ्ग-वाचक शब्द से औङ् जुड़ने पर उसके स्थान में ई (शी) का आदेश होता है[5]।

(ड) नपुंसक लिङ्ग-वाचक प्रातिपदिक से जस् और शस् जुड़ने पर उनके पर इ (शि) का आदेश होता है तथा इ के पूर्व न (नुम्) का आगम होता है[6]।

(ढ) नपुंसकलिङ्ग वाचक प्रातिपदिक के पश्चात् सु और अम् का लोप हो जाता है[7]।

(ण) इगन्त नपुंसक लिङ्ग वाचक प्रातिपदिक के पश्चात् अजादि प्रत्यय होने पर बीच में न का आगम होता है[8]।

(त) ह्रस्वस्वरान्त, नदीसंज्ञक और आकारान्त शब्दों से आम् जुड़ने पर बीच में न् (नुट्) का आगम होता है[9]।

अब भिन्न भिन्न लिङ्गों के कतिपय चुने हुए शब्दों के रूप समस्त विभक्तियों और वचनों में आगे दिये जा रहे हैं।

अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द

(१) राम

विभक्ति	ए० व०	द्विव०	ब० व०
प्रथमा	रामः (राम)	रामौ (दो राम)	रामाः (बहुत राम)
द्वितीया	रामम् (राम को)	रामौ (दो रामों को)	रामान् (रामों को)
तृतीया	रामेण (राम से)	रामाभ्याम् (दो रामों से)	रामैः (रामों से)
चतुर्थी	रामाय (राम के लिए)	रामाभ्याम् (दो रामों के लिए)	रामेभ्यः (रामों के लिए)
पञ्चमी	रामात् (राम से)	रामाभ्याम् (दो रामों से)	रामेभ्यः (रामों से)
षष्ठी	रामस्य (राम का, की, के)	रामयोः (दो रामों का)	रामाणाम् (रामों का)
सप्तमी	रामे (राम में, पर)	रामयोः (दो रामों में)	रामेषु (रामों में)
स०	हे राम (हे राम)	हे रामौ (हे दो रामो)	हे रामा (हे रामो)

१. आङि चापः ।७।३।१०५। २. याडापः ।७।३।११३।
३. सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्च ।७।३।११४। ४. अतोऽम् ।७।१।२४।
५. नपुंसकाच्च ।७।१।१९। ६. जश्शसोः शिः ।७।१।२० मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४७।
७. स्वमोर्नपुंसकात् ।७।१।२३। ८. इकोऽचि विभक्तौ ।७।१।७३।
९. ह्रस्वनद्यापो नुट् ।७।१।५४।

इसी प्रकार प्रायः समस्त अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं। केवल 'र' और 'ष' रखने वाले शब्दों के तृतीया एकवचन और षष्ठी बहुवचन में 'न' के स्थान पर 'ण' होता है। इस विषय पर 'सन्धि-प्रकरण' में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। अतएव एतदर्थ 'सन्धि प्रकरण' द्रष्टव्य है।

राम की भाँति इनके रूप चलते हैं—

बालकः (लड़का), नरः (मनुष्य), नटः (नट), नृपः (राजा) शुकः (तोता), बकः (बगला), करः (हाथ), अश्वः (घोड़ा), गजः (हाथी), कुक्कुरः (कुत्ता), मनुष्यः (मनुष्य), मूर्खः (मूर्ख), चौरः (चोर), ग्रहः (ग्रह), सूर्यः (सूर्य), कपोतः (कबूतर), कूपः (कुआँ), कृष्णः (कृष्ण), शिवः (शिव), पुत्रः (पुत्र), वृक्षः (वृक्ष), खड्गः (तलवार), मेघः (बादल), चापः (धनुष), छात्रः (छात्र), शिक्षकः (शिक्षक), मयूरः (मोर), कालः (काल), जनकः (पिता). मूषकः (मूषक), देवः (देव), ईश्वरः (ईश्वर), मीनः (मछली), विद्यालयः (विद्यालय), आम्रः (आम) दैत्यः (राक्षस), वृषभः (बैल), खलः (दुष्ट), अनिलः (हवा), अनलः (आग), खगः (पक्षी), क्रोशः (कोस), लोकः (संसार या लोक) आदि।

२ पाद (पैर)

विभक्ति	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्रथमा	पादः	पादौ	पादाः
द्वितीया	पादम्	,,	पदः
तृतीया	पदा	पद्भ्याम्	पद्भिः
चतुर्थी	पदे	,,	पद्भ्यः
पञ्चमी	पदः	,,	,,
षष्ठी	पदः	पदोः	पदाम्
सप्तमी	पदि	पदोः	पत्सु
सम्बोधन	हे पाद	हे पादौ	हे पादाः

सूचना—पाद के पूरे रूप राम शब्द के तुल्य भी चलते हैं।

३ भवादृश (आप जैसा)

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र०	भवादृशः	भवादृशौ	भवादृशाः
द्वि०	भवादृशम्	भवादृशौ	भवादृशान्
तृ०	भवादृशेन	भवादृशाभ्याम्	भवादृशैः
च०	भवादृशाय	भवादृशाभ्याम्	भवादृशेभ्यः
पं०	भवादृशात्	भवादृशाभ्याम्	भवादृशेभ्यः
ष०	भवादृशस्य	भवादृशयोः	भवादृशानाम्
स०	भवादृशे	भवादृशयोः	भवादृशेषु
सं०	हे भवादृश	हे भवादृशौ	हे भवादृशाः

इसी प्रकार मादृश, त्वादृश, तादृश, यादृश, एतादृश आदि अकारान्त शब्दों के रूप चलते हैं।

आकारान्त पुँल्लिङ्ग

४—गोपा (ग्वाला, गाय का रक्षक)

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र०	गोपाः	गोपौ	गोपाः
द्वि०	गोपाम्	,,	गोपः
तृ०	गोपा	गोपाभ्याम्	गोपाभिः
च०	गोपे	,,	गोपाभ्यः
पं०	गोपः	,,	,,
ष०	,,	गोपोः	गोपाम्
स०	गोपि	,,	गोपासु
सं०	हे गोपाः	हे गोपौ	हे गोपाः

विश्वपा (संसार का रक्षक), शंखध्मा (शंख बजानेवाला), धूम्रपा (धुआं पीने वाला), सोमपा (सोमरस पीने वाला), बलदा (बल देने वाला) आदि शब्दों के रूप गोपा के समान होते हैं।

इकारान्त पुँल्लिङ्ग

५—कवि (कवि)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	कविः	कवी	कवयः
द्वि०	कविम्	कवी	कवीन्
तृ०	कविना	कविभ्याम्	कविभिः
च०	कवये	कविभ्याम्	कविभ्यः
पं०	कवेः	,,	,,
ष०	कवेः	कव्योः	कवीनाम्
स०	कवौ	,,	कविषु
सं०	हे कवे	हे कवी	हे कवयः

निम्नलिखित शब्दों के भी रूप 'कवि' की भांति ही चलते हैं। केवल 'र' और 'ष' रखने वाले शब्दों के तृतीया एकवचन तथा षष्ठी बहुवचन में 'न' के स्थान पर 'ण' रहेगा। कुछ प्रमुख इकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द आगे दिये जा रहे हैं।

मुनिः (मुनि), हरिः (विष्णु अथवा बन्दर), अरिः (शत्रु), रविः (सूर्य), गिरिः (पर्वत), कपिः (बन्दर), निधिः (खजाना), वह्निः (आग), नृपतिः (राजा), उदधिः (समुद्र), पाणिः (हाथ), मरीचिः (किरण), विधिः (ब्रह्मा)।

सूचना—निधि, उदधि, जलधि, आधि, व्याधि, समाधि, आदि शब्द कवि के समान इकारान्त पुँल्लिङ्ग होते हैं। 'पति' और 'सखि' के रूप निम्न प्रकार से चलते हैं।

६—पति (स्वामी, मालिक, दूल्हा)

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र०	पतिः	पती	पतयः
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	,,	पतिभ्यः
पं०	पत्युः	,,	,,
ष०	,,	पत्योः	पतीनाम्
स०	पत्यौ	,,	पतिषु
सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः

पति शब्द जब किसी शब्द के साथ समास के अन्त में आता है तो उसके रूप कवि के ही समान होते हैं। जैसे—

७—भूपति (राजा)

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र०	भूपतिः	भूपती	भूपतयः
द्वि०	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्
तृ०	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
च०	भूपतये	,,	भूपतिभ्यः
पं०	भूपतेः	,,	,,
ष०	,,	भूपत्योः	भूपतीनाम्
स०	भूपतौ	,,	भूपतिषु
सं०	हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः

इसी प्रकार गणपति, महीपति, गृहपति, नरपति, लोकपति, अधिपति, सुरपति, गजपति, जगत्पति, बृहस्पति, पृथ्वीपति आदि शब्दों के रूप नृपति के समान कवि शब्द की भाँति होंगे।

८—सखि (मित्र)

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
द्वि०	सखायम्	,,	सखीन्
तृ०	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
च०	सख्ये	,,	सखिभ्यः
पं०	सख्युः	,,	,,
ष०	,,	सख्योः	सखीनाम्
स०	सख्यौ	,,	सखिषु
सं०	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग

९—प्रधी (अच्छा ध्यान करने वाला)

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र०	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
द्वि०	प्रध्यम्	,,	,,
तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
च०	प्रध्ये	,,	प्रधीभ्यः
पं०	प्रध्यः	,,	,,
ष०	,,	प्रध्योः	प्रध्याम्
स०	प्रध्यि	,,	प्रधीषु
सं०	हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः

वेगी (वेगीयते इति—फुर्ती से जाने वाला) के रूप प्रधी के समान होते हैं। उन्नी, सेनानी, ग्रामणी के रूप भी प्रधी के समान होते हैं, केवल सप्तमी के एकवचन में उन्न्याम्, सेनान्याम्, ग्रामण्याम् ऐसे रूप हो जाते हैं।

१०—सुधी (विद्वान् पण्डित)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वि०	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
च०	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पं०	·धियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
ष०	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
स०	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सं०	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः

शुष्की, पक्की, सुश्री, शुद्धधी, परमधी के रूप भी सुधी के समान होते हैं।

१२—सखी (सखायमिच्छति, मित्र चाहने वाला)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सख्यः
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभिः
च०	सख्ये	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
पं०	सख्युः	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
ष०	सख्युः	सख्योः	सख्याम्
स०	सख्यि	सख्योः	सखीषु
सं०	हे सखा	हे सखायौ	हे सखायः

१२—सखी (खेन सह वर्तते इति सखः सखमिच्छतीति)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	सखी	सख्यौ	सख्यः
द्वि०	सख्यम्	,,	,,
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभिः
सं०	हे सखी	हे सख्यौ	हे सख्यः

शेष रूप पूर्ववर्ती, सखी के समान होते हैं। इसी प्रकार सुती (सुतमिच्छतीति), सुखी (सुखमिच्छतीति), लूनी (लूनमिच्छतीति), क्षामी (क्षामपिच्छतीति), प्रस्तीमी (प्रस्तीममिच्छतीति) के रूप भी होते हैं।

उकारान्त पुँल्लिङ्ग

१३—गुरु (ज्ञान देने वाला)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	गुरुः	गुरू	गुरवः
द्वि०	गुरुम्	गुरू	गुरून्
तृ०	गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः
च०	गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
पं०	गुरोः	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
ष०	गुरोः	गुर्वोः	गुरूणाम्
स०	गुरौ	गुर्वोः	गुरुषु
सं०	हे गुरो	हे गुरू	हे गुरवः

निम्न उकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप भी 'गुरु' के समान चलते हैं। केवल 'र' और 'ष' रखने वालों के तृतीया एकवचन तथा षष्ठी बहुवचन में 'न' के स्थान पर 'ण' रहेगा।

भानु, शिशु, वायु, इन्दु, पशु, विष्णु, रिपु, शम्भु, सिन्धु, शत्रु, मृत्यु, तरु, बिन्दु, बाहु, पांशु (धूलि), इषु (बाण), विधु (चन्द्रमा), मृदु (कोमल), प्रभु (स्वामी), सूनु (पुत्र), साधु, ऊरु (जाँघ), वेणु (बांस) आदि के रूप 'गुरु' की भांति चलते हैं।

ऊकारान्त पुँल्लिङ्ग

१४—स्वयम्भू (ब्रह्मा)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	स्वयम्भूः	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
द्वि०	स्वयम्भुवम्	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
तृ०	स्वयम्भुवा	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभिः
च०	स्वयम्भुवे	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
पं०	स्वयम्भुवः	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
ष०	स्वयम्भुवः	स्वयम्भुवोः	स्वम्भुवाम्
स०	स्वयम्भुवि	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भूषु
सं०	हे स्वयम्भूः	हे स्वयम्भुवौ	हे स्वयम्भुवः

सुभ्रू (सुन्दर भौं वाला), स्वभू (स्वयं पैदा हुआ), प्रतिभू (जामिन) के रूप इसी प्रकार चलते हैं।

ऋकारान्त पुँल्लिङ्ग

१५—पितृ (पिता)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
च०	पित्रे	,,	पितृभ्यः
पं०	पितुः	,,	,,
ष०	,,	पित्रोः	पितॄणाम्
स०	पितरि	,,	पितृषु
सं०	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

इसी प्रकार भ्रातृ (भाई), जामातृ (दामाद), देवृ (देवर) इत्यादि पुँल्लिङ्ग ऋकारान्त शब्दों के रूप चलते हैं।

१६—नृ (मनुष्य)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	ना	नरौ	नरः
द्वि०	नरम्	नरौ	नॄन्
तृ०	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
च०	न्रे	नृभ्याम	नृभ्यः
पं०	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
ष०	नुः	न्रोः	नृणाम् नॄणाम्
स०	नरि	न्रोः	नृषु
सं०	हे नः	हे नरौ	हे नरः

१७—दातृ (देने वाला)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	दाता	दातारौ	दातारः
द्वि०	दातारम्	दातारौ	दातॄन्
तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः
च०	दात्रे	,,	दातृभ्यः
पं०	दातुः	,,	,,
ष०	,,	दात्रोः	दातॄणाम्
स०	दातरि	,,	दातृषु
सं०	हे दातः	हे दातारौ	हे दातारः

इसी प्रकार धातृ (ब्रह्मा), कर्तृ (करने वाला), गन्तृ (जाने वाला), नेतृ (ले जाने वाला), नप्तृ (पोता), सवितृ, भर्तृ (स्वामी) के रूप चलते हैं।

सूचना—तृन और तृच् प्रत्ययान्त शब्दों के एवं स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, होतृ, प्रशास्तृ, क्षत्तृ, स्वष्टृ के आगे जब प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के प्रत्यय आवें तो ऋ के आदिष्ट रूप अ को दीर्घ हो जाता है।

सम्बोधन के सूचक सु के परवर्ती होने पर अ को दीर्घ नहीं होता अतः 'दातः' रूप बनता है, न कि 'दाताः'।

ऐकारान्त पुँल्लिङ्ग

१८—रै (धन)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	राः	रायौ	रायः
द्वि०	रायम्	,,	,,
तृ०	राया	राभ्याम्	राभिः
च०	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पं०	रायः	,,	,,
ष०	,,	रायोः	रायाम्
स०	रायि	,,	रासु
सं०	हे राः	हे रायौ	हे रायः

ओकारान्त पुँल्लिङ्ग

१९—गो (बैल, सांड़)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	गौः	गावौ	गावः
द्वि०	गाम्	गावौ	गाः

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभ्यः
च०	गवे	,,	,,
प०	गोः	,,	,,
ष०	,,	गवोः	गवाम्
स०	गवि	,,	गोषु
सं०	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

समस्त ओकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप 'गौ' के समान होते हैं।

औकारान्त पुँल्लिङ्ग

२०—ग्लौ (चन्द्रमा)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
च०	ग्लावे	,,	ग्लौभ्यः
पं०	ग्लावः	,,	,,
ष०	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
सं०	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लावः

अन्य भी औकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप ग्लौ के समान होते हैं।

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग

२१—फल

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	फलम्	फले	फलानि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	फलेन	फलाभ्याम्	फलैः
च०	फलाय	,,	फलेभ्यः
पं०	फलात्	,,	,,
ष०	फलस्य	फलयोः	फलानाम्
स०	फले	,,	फलेषु
सं०	हे फल	हे फले	हे फलानि

इसी प्रकार मित्र, वन, मुख, कमल, पत्र, जल, तृण, गगन, धन, शरीर, गृह, ज्ञान, कलत्र, गमन, दिन, पात्र, अन्न, नेत्र, पुस्तक, पुष्प, उद्यान, सुवर्ण, सुख, वस्त्र, नगर, वल, दुःख, आसन, ओदन, वर्ष, राज्य एवं सत्य इत्यादि नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं।

इकारान्त नपुंसकलिङ्ग

२२—वारि (पानी)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
च०	वारिणे	,,	वारिभ्यः
पं०	वारिणः	,,	,,
ष०	,,	वारिणोः	वारीणाम्
स०	वारिणि	,,	वारिषु
सं०	हे वारि, हे वारे	हे वारिणी	हे वारीणि

दधि (दही), अस्थि (हड्डी), सक्थि (जङ्घा) और अक्षि शब्दों को छोड़कर समस्त इकारान्त नपुंसक शब्दों के रूप 'वारि' के समान चलते हैं।

२३—दधि (दही)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
च०	दध्ने	,,	दधिभ्यः
पं०	दध्नः	,,	,,
ष०	,,	दध्नोः	दध्नाम्
स०	दध्नि, दधनि	,,	दधिषु
सं०	हे दधि, दधे	हे दधिनी	हे दधीनि

२४—अक्षि (आँख)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
च०	अक्ष्णे	,,	अक्षिभ्यः
पं०	अक्ष्णः	,,	,,
ष०	,,	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
स०	अक्ष्णि, अक्षणि	,,	अक्षिषु
सं०	हे अक्षि, अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि

अस्थि और सक्थि के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

२५—शुचि (पवित्र)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभिः
च०	शुचये, शुचिने	,,	शुचिभ्यः
पं०	शुचेः, शुचिनः	,,	,,
ष०	,, ,,	शुच्योः, शुचिनोः	शुचीनाम्
स०	शुचौ, शुचिनि	,, ,,	शुचिषु
सं०	हे शुचि, शुचे	हे शुचिनी	हे शुचीनि

सूचना—जब इकारान्त तथा उकारान्त विशेषण शब्दों का प्रयोग नपुंसकलिङ्ग वाले संज्ञा शब्दों के साथ होता है तो उनके रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एकवचन में तथा षष्ठी एवं सप्तमी के द्विवचन में विकल्प से इकारान्त तथा उकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों की भाँति होते हैं। यथा शुचि (पवित्र), गुरु (भारी)।

उकारान्त नपुंसकलिङ्ग

२६—वस्तु (चीज)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	वस्तुना	वस्तुभ्याम्	वस्तुभिः
च०	वस्तुने	,,	वस्तुभ्यः
पं०	वस्तुनः	,,	,,
ष०	,,	वस्तुनोः	वस्तूनाम्
स०	वस्तुनि	,,	वस्तुषु
सं०	हे वस्तु, हे वस्तो	हे वस्तुनी	हे वस्तूनि

इसी प्रकार दारु (लकड़ी), मधु (शहद), जानु (घुटना), अम्बु (पानी), वसु (धन), अश्रु (आँसू), जतु (लाख), श्मश्रु (दाढ़ी), त्रपु (राँगा), तालु आदि शब्दों के रूप चलते हैं।

२७—बहु

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	बहु	बहुनी	बहूनि
द्वि०	,,	,,	,,

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
तृ०	बहुना	बहुभ्याम्	बहुभिः
च०	बहुने, बह्वे	,,	बहुभ्यः
पं०	बहोः, बहुनः	,,	,,
ष०	,, ,,	बह्वोः, बहुनोः	बहूनाम्
स०	बहौ, बहुनि	,, ,,	बहुषु
सं०	हे बहु, बहो	हे बहुनी	हे बहूनि

इसी प्रकार स्वादु, कटु, लघु, पटु इत्यादि के रूप होते हैं।

सूचना—उकारान्त विशेषण शब्दों के रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एकवचन में तथा षष्ठी व सप्तमी के द्विवचन में उकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द के समान विकल्प करके होते हैं। जैसे बहु (बहुत)।

ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग

२८—कर्तृ (करनेवाला[1])

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	कर्त्रा, कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च०	कर्त्रे	,,	कर्तृभ्यः
पं०	कर्तुः, कर्तृणः	,,	,,
ष०	,, ,,	कर्त्रोः, कर्तृणोः	कर्तॄणाम्
स०	कर्तरि	,, ,,	कर्तृषु
सं०	हे कर्तृ, हे कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि

इसी प्रकार धातृ, नेतृ इत्यादि के भी रूप चलते हैं।

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग

२९—विद्या

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	विद्या	विद्ये	विद्याः
द्वि०	विद्याम्	,,	,,
तृ०	विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभिः
च०	विद्यायै	,,	विद्याभ्यः
पं०	विद्यायाः	,,	,,
ष०	,,	विद्ययोः	विद्यानाम्
स०	विद्यायाम्	,,	विद्यासु
सं०	हे विद्ये	हे विद्ये	हे विद्याः

1. कर्तृ, नेतृ, धातृ, रक्षितृ इत्यादि शब्द विशेषण हैं, अतएव इनका प्रयोग तीनों लिङ्गों में होता है। यहाँ पर नपुंसकलिङ्ग के रूप दिखाए गए हैं।

इसी प्रकार बालिका, लता, रमा, अजा (बकरी), गङ्गा, कन्या, महिला, इच्छा, कान्ता, शोभा, निद्रा, प्रमदा, आज्ञा, क्षमा, क्रीडा, शिला, भार्या, व्यथा, कथा इत्यादि शब्दों के रूप चलते हैं। अम्बा शब्द का रूप 'विद्या' के समान ही चलता है, केवल सम्बोधन के एकवचन में 'हे अम्ब' होता है।

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग

३०—रुचि

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	रुचिः	रुची	रुचयः
द्वि०	रुचिम्	,,	रुची·
तृ०	रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभिः
च०	रुच्यै, रुचये	,,	रुचिभ्यः
पं०	रुच्याः, रुचेः	,,	,,
ष०	,, ,,	रुच्योः	रुचीनाम्
स०	रुच्याम् , रुचौ	,,	रुचिषु
सं०	हे रुचे	हे रुची	हे रुचयः

इसी प्रकार मति (बुद्धि), श्रुति (वेद), स्मृति (शास्त्र), भित्ति (दीवार), सम्पत्ति (ऐश्वर्य), विपत्ति, शक्ति, नीति, प्रीति, प्रकृति (स्वभाव), तिथि, शान्ति, श्रेणि (कक्षा), भूति (ऐश्वर्य), भूमि, स्तुति, उन्नति, धूलि, पंक्ति, अङ्गुलि, गति, कान्ति, समृद्धि, नियति (भाग्य), विभक्ति, मुक्ति इत्यादि शब्दों के रूप चलते हैं।

ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग

३१—नदी

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वि०	नदीम्	,,	नदीः
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च०	नद्यै	,,	नदीभ्यः
पं०	नद्याः	,,	,,
ष०	,,	नद्योः	नदीनाम्
स०	नद्याम्	,,	नदीषु
सं०	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः

इसी प्रकार जननी, पुत्री, रजनी, सुन्दरी, राज्ञी, कुमारी, पत्नी, वापी, पुरी, देवी, भगिनी, विभावरी, कौमुदी, सरस्वती, वाणी, प्राची, प्रतीची, उदीची आदि ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप 'नदी' के समान होते हैं।

प्रायः समस्त ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप 'नदी' की तरह चलते हैं, किन्तु लक्ष्मी, स्त्री और श्री शब्द अपवाद स्वरूप हैं।

केवल अवीं (रजस्वला स्त्री), तरी (नाव), तन्त्री (वीणा), लक्ष्मी, स्तरी (धुआँ) की प्रथमा के एकवचन में भेद होता है। यथा—प्रथमा एकवचन-अवीः, तरीः, तन्त्रीः, लक्ष्मीः, स्तरीः।

३२—लक्ष्मीः

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
द्वि०	लक्ष्मीम्	,,	लक्ष्मीः
तृ०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
च०	लक्ष्म्यै	,,	लक्ष्मीभ्यः
पं०	लक्ष्म्याः	,,	,,
ष०	,,	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
स०	लक्ष्म्याम्	,,	लक्ष्मीषु
सं०	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः

३३—स्त्री

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वि०	स्त्रियम् , स्त्रीम्	,,	,, स्त्रीः
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
च०	स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्यः
पं०	स्त्रियाः	,,	,,
ष०	,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु
सं०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

३४—श्री (लक्ष्मी)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वि०	श्रियम्	,,	,,
तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
च०	श्रियै, श्रिये	,,	श्रीभ्यः
पं०	श्रियाः, श्रियः	,,	,,
ष०	,, ,,	श्रियोः	श्रीणाम् , श्रियाम्
स०	श्रियाम् , श्रियि	,,	श्रीषु
सं०	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः

उकारान्त स्त्रीलिङ्ग

३५—धेनु (गाय)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वि०	धेनुम्	,,	धेनूः
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेनवे, धेन्वै	,,	धेनुभ्यः
पं०	धेनोः, धेन्वाः	,,	,,
ष०	,, ,,	धेन्वोः	धनूनाम्
स०	धेनौ, धेन्वाम्	,,	धेनुषु
स०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

इसी प्रकार रेणु (धूल), तनु (शरीर), चञ्चु (चोंच), उडु (तारा), रज्जु (रस्सी), हनु (ठोढ़ी) इत्यादि उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप धेनु के समान होते हैं।

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग

३६—वधू (बहू)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वि०	वधूम्	,,	वधूः
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च०	वध्वै	,,	वधूभ्यः
पं०	वध्वाः	,,	,,
ष०	,,	वध्वोः	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	,,	वधूषु
सं०	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

इसी प्रकार चमू (सेना), श्वश्रू (सास), रज्जू (रस्सी), कर्कन्धू (बेर) आदि सभी ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप वधू के समान होते हैं।

३७—भू (पृथ्वी)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	भूः	भुवौ	भुवः
द्वि०	भुवम्	,,	,,
तृ०	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
च०	भुवै, भुवे	,,	भूभ्यः
पं०	भुवाः, भुवः	,,	,,
ष०	,, ,,	भुवोः	भुवाम्, भूनाम्
स०	भुवाम्, भुवि	,,	भूषु
सं०	हे भूः	हे भुवौ	हे भुवः

इसी प्रकार भ्रू के रूप होते हैं। "सुभ्रू" शब्द के रूप भू से भिन्न होते हैं।

३८—सुभ्रू (सुन्दर भौं वाली स्त्री)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	सुभ्रूः	सुभ्रुवौ	सुभ्रुवः
द्वि०	सुभ्रुवम्	सुभ्रुवौ	सुभ्रुवः
तृ०	सुभ्रुवा	सुभ्रूभ्याम्	सुभ्रूभिः
च०	सुभ्रुवे	,,	सुभ्रूभ्यः
पं०	सुभ्रुवः	,,	,,
ष०	,,	सुभ्रुवोः	सुभ्रुवाम्
स०	सुभ्रुवि	,,	सुभ्रूषु
सं०	हे सुभ्रु	हे सुभ्रुवौ	हे सुभ्रुवः

ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग

३९—मातृ (माता)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	माता	मातरौ	मातरः
द्वि०	मातरम्	मातरौ	मातॄः
तृ०	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
च०	मात्रे	,,	मातृभ्यः
पं०	मातुः	,,	,,
ष०	,,	मात्रोः	मातॄणाम्
स०	मातरि	,,	मातृषु
सं०	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

यातृ (देवरानी), दुहितृ (लड़की) के रूप मातृ के समान होते हैं।

४०—स्वसृ (बहिन)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
द्वि०	स्वसारम्	,,	स्वसॄः
तृ०	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
च०	स्वस्रे	,,	स्वसृभ्यः
पं०	स्वसुः	,,	,,
ष०	,,	स्वस्रोः	स्वसॄणाम्
स०	स्वसरि	,,	स्वसृषु
सं०	हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः

ऐकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के तथा ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग गो आदि शब्दों के रूप पुँल्लिङ्ग के समान होते हैं। औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भी पुँल्लिङ्ग के समान होते हैं।

औकारान्त स्त्रीलिङ्ग

४१—नौ (नाव)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	नौः	नावौ	नावः
द्वि०	नावम्	,,	,,
तृ०	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
च०	नावे	,,	नौभ्यः
पं०	नावः	,,	,,
ष०	,,	नावोः	नावाम्
स०	नावि	,,	नौषु
सं०	हे नौः	हे नावौ	हे नावः

व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ

ऊपर स्वरान्त संज्ञाओं का क्रम भट्टोजि दीक्षित की 'सिद्धान्त कौमुदी' के अनुसार पुँल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग आदि लिङ्गानुसार दिया गया है। किन्तु व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ सभी लिङ्गों में प्रायः एक सी चलती हैं, अत एव यहाँ पर वर्ण-क्रमानुसार रक्खी गई हैं।

चकारान्त पुँल्लिङ्ग

४२—जलमुच् (बादल)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः
द्वि०	जलमुचम्	,,	,,
तृ०	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भिः
च०	जलमुचे	,,	जलमुग्भ्यः
पं०	जलमुचः	,,	,,
ष०	,,	जलमुचोः	जलमुचाम्
स०	जलमुचि	,,	जलमुक्षु
सं०	हे जलमुक्	हे जलमुचौ	हे जलमुचः

इसी प्रकार सत्यवाच् आदि समस्त चकारान्त शब्दों के रूप होते हैं केवल प्राञ्च्, प्रत्यञ्च्, तिर्यञ्च्, उदञ्च् के रूपों में कुछ भेद होता है।

४३—प्राञ्च् (पूर्वी)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
द्वि०	प्राञ्चम्	,,	प्राचः
तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
च०	प्राचे	,,	प्राग्भ्यः
पं०	प्राचः	,,	,,
ष०	,,	प्राचोः	प्राचाम्
स०	प्राचि	,,	प्राक्षु
सं०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः

४४—प्रत्यञ्च् (पश्चिमी)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	,,	प्रतीचः
तृ०	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः
च०	प्रतीचे	,,	प्रत्यग्भ्यः
पं०	प्रतीचः	,,	,,
ष०	,,	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
स०	प्रतीचि	,,	प्रत्यक्षु
सं०	हे प्रत्यङ्	हे प्रत्यञ्चौ	हे प्रत्यञ्चः

४५—तिर्यञ्च् (तिरछा जाने वाला)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
द्वि०	तिर्यञ्चम्	,,	तिरश्चः
तृ०	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः
च०	तिरश्चे	,,	तिर्यग्भ्यः
पं०	तिरश्चः	,,	,,
ष०	,,	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
स०	तिरश्चि	,,	तिर्यक्षु
सं०	हे तिर्यङ्	हे तिर्यञ्चौ	हे तिर्यञ्चः

४६—उदञ्च् (उत्तरी)

प्र०	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः
द्वि०	उदञ्चम्	,,	उदीचः
तृ०	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः
च०	उदीचे	,,	उदग्भ्यः
पं०	उदीचः	,,	,,
ष०	,,	उदीचोः	उदीचाम्
स०	उदीचि	,,	उदक्षु
सं०	हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्चः

४७—वाच् (वाणी)

प्र०	वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः
द्वि०	वाचम्	,,	,,
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	,,	वाग्भ्यः

	ए० व०	द्वि० व०	व० व०
पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०	,,	वाचोः	वाचाम्
स०	वाचि	,,	वाक्षु
सं०	हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाचः

इसी प्रकार रुच्, त्वच् (चमड़ा, पेड़ की छाल), शुच् (सोच), ऋग् (ऋग्वेद के मंत्र) इत्यादि समस्त चकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप वाच् की तरह होते हैं।

जकारान्त पुँल्लिङ्ग

४८—ऋत्विज् (पुजारी)

	ए० व०	द्वि० व०	व० व०
प्र०	ऋत्विक्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
द्वि०	ऋत्विजम्	,,	,,
तृ०	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भिः
च०	ऋत्विजे	,,	ऋत्विग्भ्यः
पं०	ऋत्विजः	,,	,,
ष०	,,	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्
स०	ऋत्विजि	,,	ऋत्विक्षु
सं०	हे ऋत्विक्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजः

इसी प्रकार भूभुज् (राजा), हुतभुज् (अग्नि), भिषज् (वैद्य), वणिज् (बनिया) के रूप होते हैं।

४९—भिषज् (वैद्य)

प्र०	भिषक्	भिषजौ	भिषजः
द्वि०	भिषजम्	,,	,,
तृ०	भिषजा	भिषग्भ्याम्	भिषग्भिः

इत्यादि।

५०—वणिज् (वनिया)

प्र०	वणिक्	वणिजौ	वणिजः
द्वि०	वणिजम्	,,	,,
तृ०	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः

इत्यादि।

५१—पयोमुच् (बादल)

प्र०	पयोमुक्	पयोमुचौ	पयोमुचः
द्वि०	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः
तृ०	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः

इत्यादि।

५२—परिव्राज् (संन्यासी)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	परिव्राट्	परिव्राजौ	परिव्राजः
द्वि०	परिव्राजम्	,,	,,
तृ०	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भिः
च०	परिव्राजे	,,	परिव्राड्भ्यः
पं०	परिव्राजः	,,	,,
ष०	,,	परिव्राजोः	परिव्राजाम्
स०	परिव्राजि	,,	परिव्राट्सु
सं०	हे परिव्राट्	हे परिव्राजौ	हे परिव्राजः

इसी प्रकार सम्राज् (महाराज), विश्वसृज् (संसार का रचने वाला) एवं विराज् (बड़ा) के रूप होते हैं।

५३—सम्राज् (महाराज)

प्र०	सम्राट्	सम्राजौ	सम्राजः
द्वि०	सम्राजम्	,,	,,
तृ०	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः

इत्यादि।

५४—विराज् (बड़ा)

प्र०	विराट्	विराजौ	विराजः
द्वि०	विराजम्	,,	,,
तृ०	विराजा	विराड्भ्याम्	विराड्भिः

इत्यादि।

जकारान्त स्त्रीलिङ्ग

५५—स्रज् (माला)

प्र०	स्रक्	स्रजौ	स्रजः
द्वि०	स्रजम्	,,	,,
तृ०	स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः
च०	स्रजे	,,	स्रग्भ्यः
पं०	स्रजः	,,	,,
ष०	,,	स्रजोः	स्रजाम्
स०	स्रजि	,,	स्रक्षु
सं०	हे स्रक्	हे स्रजौ	हे स्रजः

इसी प्रकार रुज् के भी रूप होते हैं।

जकारान्त नपुंसकलिङ्ग

५६—असृज् (लोहू)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	असृक्	असृजी	असृञ्जि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	असृजा	असृग्भ्याम्	असृग्भिः
च०	असृजे	,,	असृग्भ्यः
पं०	असृजः	,,	,,
ष०	,,	असृजोः	असृजाम्
स०	असृजि	,,	असृक्षु
सं०	हे असृक्	हे असृजी	हे असृञ्जि

तकारान्त पुंल्लिङ्ग

५७—भूभृत् (राजा, पहाड़)

प्र०	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः
द्वि०	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृ०	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
च०	भूभृते	,,	भूभृद्भ्यः
पं०	भूभृतः	,,	,,
ष०	,,	भूभृतोः	भूभृताम्
स०	भूभृति	,,	भूभृत्सु
सं०	हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृतः

इसी प्रकार महीभृत् (राजा, पहाड़), दिनकृत् (सूर्य), शशभृत् (चन्द्रमा), परभृत् (कोयल), मरुत् (वायु), विश्वजित् (संसार का जीतने वाला, एक प्रकार का यज्ञ) के रूप चलते हैं।

५८—श्रीमत् (भाग्यवान्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	श्रीमान्	श्रीमन्तौ	श्रीमन्तः
द्वि०	श्रीमन्तम्	,,	श्रीमतः
तृ०	श्रीमता	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भिः
च०	श्रीमते	,,	श्रीमद्भ्यः
पं०	श्रीमतः	,,	,,
ष०	,,	श्रीमतोः	श्रीमताम्
स०	श्रीमति	,,	श्रीमत्सु
सं०	हे श्रीमन्	हे श्रीमन्तौ	हे श्रीमन्तः

इसी प्रकार धीमत् (बुद्धिमान्), बुद्धिमत्, भानुमत (चमकने वाला), सानुमत् (पहाड़), धनुष्मत् (धनुर्धारी), अंशुमत् (सूर्य), विद्यावत् (विद्या वाला), बलवत् (बलवान्), भगवत् (पूज्य), भाग्यवत् (भाग्यवान्), गतवत (गया हुआ), उक्तवत् (बोल चुका हुआ), श्रुतवत् (सुन चुका हुआ) इत्यादि शब्दों के रूप होते हैं।

धीमत्, बुद्धिमत् आदि शब्दों के स्त्रीलिङ्ग रूप 'ई' प्रत्यय लगाकर धीमती, बुद्धिमती आदि शब्द बनते हैं और इनके रूप ईकारान्त नदी शब्द के समान चलते हैं।

५९—भवत् (आप)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
द्वि०	भवन्तम्	,,	भवतः
तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
च०	भवते	,,	भवद्भ्यः
पं०	भवतः	,,	,,
ष०	,,	भवतोः	भवताम्
स०	भवति	,,	भवत्सु
सं०	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः

इससे स्त्रीलिङ्ग भवती शब्द बनता है, जो नदी की भाँति चलता है।

६०—महत् (बड़ा)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वि०	महान्तम्	,,	महतः
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
च०	महते	,,	महद्भ्यः
पं०	महतः	,,	,,
ष०	महतः	महतोः	महताम्
स०	महति	,,	महत्सु
सं०	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः

इसका स्त्रीलिङ्ग रूप 'महती' है, जो नदी की भाँति चलता है।

६१—पठत् (पढ़ता हुआ)

प्र०	पठन्	पठन्तौ	पठन्तः
द्वि०	पठन्तम्	,,	पठतः
तृ०	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भिः
च०	पठते	,,	पठद्भ्यः
पं०	पठतः	,,	,,

ष०	पठतः	पठतोः	पठताम्
स०	पठति	,,	पठत्सु
सं०	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्तः

इसी प्रकार धावत् (दौड़ता हुआ), गच्छत् (जाता हुआ), वदत् (बोलता हुआ), पश्यत् (देखता हुआ), पतत् (गिरता हुआ), शोचत् (सोचता हुआ), पिबत् (पीता हुआ), भवत् (होता हुआ), गृह्णत् (लेता हुआ) इत्यादि शतृ प्रत्ययान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप पठत् के समान होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग में पठन्ती, धावन्ती आदि होते हैं जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

६२—दत् (दांत)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	——	——	——
द्वि०	——	——	दतः
तृ०	दता	दद्भ्याम्	दद्भिः
च०	दते	,,	दद्भ्यः
पं०	दतः	दद्भ्याम्	दद्भ्यः
ष०	दतः	दतोः	दताम्
स०	दति	दतोः	दत्सु

सूचना—दत् शब्द के प्रथम पांच रूप संस्कृत में नहीं पाए जाते। उनके स्थान पर स्वरान्त दन्त के रूपों का प्रयोग होता है।

६३—स्त्रीलिङ्ग सरित् (नदी)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	सरित्	सरितौ	सरितः
द्वि०	सरितम्	,,	,,
तृ०	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
च०	सरिते	,,	सरिद्भ्यः
पं०	सरितः	,,	,,
ष०	,,	सरितोः	सरिताम्
स०	सरिति	,,	सरित्सु

इसी प्रकार विद्युत् (बिजली), योषित् (स्त्री), हरित् (दिशा) के रूप चलते हैं।

६४—नपुंसकलिङ्ग जगत् (संसार)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	जगत् , जगद्	जगती	जगन्ति
द्वि०	जगत्	,,	,,

तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
च०	जगते	,,	जगद्भ्यः
पं०	जगतः	,,	,,
ष०	जगतः	जगतोः	जगताम्
स०	जगति	,,	जगत्सु
सं०	हे जगत्, हे जगद्	हे जगती	हे जगन्ति

इसी प्रकार श्रीमत्, भवत् (होता हुआ) तथा अन्य भी तकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं।

६५—नपुंसकलिङ्ग महत् (बड़ा)

प्र०	महत्	महती	महान्ति
द्वि०	महत्	,,	,,
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः

शेष रूप जगत् के समान होते हैं।

दकारान्त पुंल्लिङ्ग

६६—सुहृद् (मित्र)

प्र०	सुहृत्, सुहृद्	सुहृदौ	सुहृदः
द्वि०	सुहृदम्	,,	,,
तृ०	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः
च०	सुहृदे	,,	सुहृद्भ्यः
पं०	सुहृदः	,,	,,
ष०	,,	सुहृदोः	सुहृदाम्
स०	सुहृदि	,,	सुहृत्सु
सं०	हे सुहृत्, हे सुहृद्	हे सुहृदौ	हे सुहृदः

इसी प्रकार हृदयच्छिद् (हृदय को छेदने वाला), मर्मभिद्, सभासद् (सभा में बैठने वाला), तमोनुद् (सूर्य), धर्मविद् (धर्म को जानने वाला), हृदयन्तुद् (हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाला) इत्यादि दकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं।

सूचना—दकारान्त पद् शब्द के प्रथम पाँच रूप नहीं मिलते। उनके स्थान पर अकारान्त पद के रूपों का प्रयोग किया जाता है। अतएव इस शब्द का रूप 'राम' शब्द के बाद दे दिया गया है।

दकारान्त नपुंसकलिङ्ग

६७—हृद् (हृदय)

प्र०	हृत्	हृदी	हृन्दि
द्वि०	,,	,,	,,

तृ०	हृदा	हृद्भ्याम्	हृद्भिः
च०	हृदे	,,	हृद्भ्यः
पं०	हृदः	,,	,,
ष०	,,	हृदोः	हृदाम्
स०	हृदि	,,	हृत्सु
सं०	हे हृत्	हे हृदी	हे हृन्दि

दकारान्त स्त्रीलिङ्ग

६८—दृषद् (पत्थर, चट्टान)

प्र०	दृषद्	दृषदौ	दृषदः
द्वि०	दृषदम्	,,	,,
तृ०	दृषदा	दृषद्भ्याम्	दृषद्भिः
च०	दृषदे	,,	दृषद्भ्यः
पं०	दृषदः	,,	,,
ष०	,,	दृषदोः	दृषदाम्
स०	दृषदि	,,	दृषत्सु
सं०	हे दृषद्	हे दृषदौ	हे दृषदः

धकारान्त स्त्रीलिङ्ग

६९—समिध् (यज्ञ की लकड़ी)

प्र०	समित्	समिधौ	समिधः
द्वि०	समिधम्	,,	,,
तृ०	समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भिः
च०	समिधे	,,	समिद्भ्यः
पं०	समिधः	,,	,,
ष०	,,	समिधोः	समिधाम्
स०	समिधि	,,	समित्सु
सं०	हे समित्	हे समिधौ	हे समिधः

इसी प्रकार वीरुध् (लता), क्षुध् (भूख), क्रुध् (क्रोध), युध् (युद्ध) इत्यादि धकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं।

नकारान्त पुँल्लिङ्ग

७०—आत्मन् (आत्मा)

प्र०	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वि०	आत्मानम्	,,	आत्मनः
तृ०	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः

च०	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पं०	आत्मनः	,,	,,
ष०	,,	आत्मनोः	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सं०	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः

इसी प्रकार अध्वन् (मार्ग), अश्मन (पत्थर), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), ब्रह्मन् (ब्रह्मा), सुशर्मन (महाभारत की लड़ाई में एक योद्धा का नाम), कृतवर्मन् (एक योद्धा का नाम) के रूप चलते हैं।

सूचना—आत्मन् शब्द हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग होता है, किन्तु संस्कृत में पुँल्लिङ्ग।

७१—राजन् (राजा)

प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
द्वि०	राजानम्	,,	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
च०	राज्ञे	,,	राजभ्यः
पं०	राज्ञः	,,	,,
ष०	,,	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०	राज्ञि, राजनि	,,	राजसु
सं०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

इसका स्त्रीलिङ्ग रूप राज्ञी है, इसके रूप नदी के समान चलते हैं।

७२—महिमन् (बड़प्पन)

प्र०	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	महिमा	महिमानौ	महिमानः
द्वि०	महिमानम्	,,	महिम्नः
तृ०	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभिः
च०	महिम्ने	,,	महिमभ्यः
पं०	महिम्नः	,,	,,
ष०	,,	महिम्नोः	महिम्नाम्
स०	महिम्नि, महिमनि	,,	महिमसु
सं०	हे महिमन्	हे महिमानौ	हे महिमानः

इसी प्रकार मूर्धन् (शिर), सीमन् (चौहद्दी), गरिमन् (बड़प्पन), लघिमन् (छोटापन), अणिमन् (छोटापन), शुक्लिमन् (सफेदी), कालिमन् (कालापन), द्रढिमन् (मजबूती), अश्वत्थामन् इत्यादि अन्नन्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं।

सूचना—महिमा, कालिमा, गरिमा आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त किये जाते हैं, किन्तु संस्कृत में पुँल्लिङ्ग में।

७३—युवन् (जवान)

प्र०	युवा	युवानौ	युवानः
द्वि०	युवानम्	,,	यूनः
तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
च०	यूने	,,	युवभ्यः
पं०	यूनः	,,	,,
ष०	,,	यूनोः	यूनाम्
स०	यूनि	,,	युवसु
सं०	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः

युवन् का स्त्रीलिङ्ग युवती है जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

७४—श्वन् (कुत्ता)

प्र०	श्वा	श्वानौ	श्वानः
द्वि०	श्वानम्	,,	शुनः
तृ०	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
च०	शुने	,,	श्वभ्यः
पं०	शुनः	,,	,,
ष०	,,	शुनोः	शुनाम्
स०	शुनि	,,	श्वसु
सं०	हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः

७५—अर्वन् (घोड़ा)

प्र०	अर्वा	अर्वन्तौ	अर्वन्तः
द्वि०	अर्वन्तम्	,,	अर्वतः
तृ०	अर्वता	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भिः
च०	अर्वते	,,	अर्वद्भ्यः
पं०	अर्वतः	,,	,,
ष०	,,	अर्वतोः	अर्वताम्
स०	अर्वति	,,	अर्वत्सु
सं०	हे अर्वन्	हे अर्वन्तौ	हे अर्वन्तः

७६—मघवन् (इन्द्र)

प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवानः
द्वि०	मघवानम्	,,	मघोनः
तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
च०	मघोने	,,	मघवभ्यः
पं०	मघोनः	,,	,,

ष०	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
स०	मघोनि	,,	मघवत्सु
सं०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः

मघवन् का रूप विकल्प करके निम्न प्रकार भी चलता है—

प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः
द्वि०	मघवन्तम्	,,	मघवतः
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः
च०	मघवते	,,	मघवद्भ्यः
पं०	मघवतः	,,	,,
ष०	,,	मघवतोः	मघवताम्
स०	मघवति	,,	मघवत्सु
सं०	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्तः

७७—पूषन् (सूर्य)

प्र०	पूषा	पूषणौ	पूषणः
द्वि०	पूषणम्	,,	पूष्णः
तृ०	पूष्णा	पूषभ्याम्	पूषभिः
च०	पूष्णे	,,	पूषभ्यः
पं०	पूष्णः	,,	,,
ष०	,,	पूष्णोः	पूष्णाम्
स०	पूष्णि, पूषणि	,,	पूषसु
सं०	हे पूषन्	हे पूषणौ	हे पूषणः

७८—हस्तिन् (हाथी)

प्र०	हस्ती	हस्तिनौ	हस्तिनः
द्वि०	हस्तिनम्	,,	,,
तृ०	हस्तिना	हस्तिभ्याम्	हस्तिभिः
च०	हस्तिने	,,	हस्तिभ्यः
पं०	हस्तिनः	,,	,,
ष०	,,	हस्तिनोः	हस्तिनाम्
स०	हस्तिनि	हस्तिनोः	हस्तिषु
सं०	हे हस्तिन्	हे हस्तिनौ	हे हस्तिनः

इसी प्रकार स्वामिन्, करिन् (हाथी), मन्त्रिन् (मंत्री), गुणिन् (गुणी), शशिन् (चन्द्रमा), पक्षिन् (पक्षी), वनिन्, वाजिन् (घोड़ा), तपस्विन् (तपस्वी), एकाकिन् (अकेला), सुखिन् (सुखी), सत्यवादिन् (सच बोलने वाला), बलिन् (बली) इत्यादि इन्नन्त शब्दों के रूप चलते हैं ।

इन्नन्त शब्दों के स्त्रीलिङ्ग शब्द ईकार जोड़कर हस्तिनी, एकाकिनी आदि ईकारान्त होते हैं जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

७९—पथिन् (मार्ग)

प्र०	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वि०	पन्थानम्	,,	पथः
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
च०	पथे	,,	पथिभ्यः
पं०	पथः	,,	,,
ष०	,,	पथोः	पथाम्
स०	पथि	,,	पथिषु
सं०	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

नकारान्त स्त्रीलिङ्ग

८०—सीमन् (चौहद्दी)

प्र०	सीमा	सीमानौ	सीमानः
द्वि०	सीमानम्	,,	सीम्नः
तृ०	सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभिः
च०	सीम्ने	,,	सीमभ्यः
पं०	सीम्नः	सीमभ्याम्	सीमभ्यः
ष०	,,	सीम्नोः	सीम्नाम्
स०	सीम्नि, सीमनि	सीम्नोः	सीमसु
सं०	हे सीमन्	हे सीमानौ	हे सीमानः

सूचना—सीमन् के रूप महिमन् के समान होते हैं।

नकारान्त नपुंसकलिङ्ग

८१—नामन् (नाम)

प्र०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
द्वि०	,,	,, ,,	,,
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
च०	नाम्ने	,,	नामभ्यः
पं०	नाम्नः	,,	,,
ष०	,,	नाम्नोः	नाम्नाम्
स०	नाम्नि, नामनि	,,	नामसु
सं०	हे नाम, नामन्	हे नाम्नी, नामनी	हे नामानि

इसी प्रकार धामन् (घर, चमक), व्योमन् (आकाश), सामन् (सामवेद का मंत्र), प्रेमन् (प्यार), दामन् (रस्सी), के रूप होते हैं।

८२—चर्मन् (चमड़ा)

प्र०	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	चर्मणा	चर्मभ्याम्	चर्मभिः
च०	चर्मणे	,,	चर्मभ्यः
पं०	चर्मणः	,,	,,
ष०	,,	चर्मणोः	चर्मणाम्
स०	चर्मणि	,,	चर्मसु
सं०	हे चर्म, हे चर्मन्	हे चर्मणी	हे चर्माणि

इसी प्रकार पर्वन् (पौर्णमासी), अश्मन् (अश्म), वर्मन् (कवच), जन्मन (जन्म), वर्त्मन् (रास्ता), शर्मन् (सुख) के रूप चलते हैं।

८३—अहन् (दिन)

प्र०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
द्वि०	,,	,, ,,	,,
तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
च०	अह्ने	,,	अहोभ्यः
पं०	अह्नः	,,	,,
ष०	,,	अह्नोः	अह्नाम्
स०	अह्नि, अहनि	,,	अहःसु, अहस्सु
सं०	हे अहः	हे अह्नी, अहनी	हे अहानि

८४—भाविन् (होने वाला)

प्र०	भावि	भाविनी	भावीनि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	भाविना	भाविभ्याम्	भाविभिः
च०	भाविने	,,	भाविभ्यः
पं०	भाविनः	,,	,,
ष०	,,	भाविनोः	भाविनाम्
स०	भाविनि	,,	भाविषु
सं०	हे भावि	हे भाविनी	हे भावीनि

पकारान्त स्त्रीलिङ्ग

८५—अप् (पानी)

अप् शब्द के रूप केवल बहुवचन में होते हैं।

	बहुवचन		ब० व०
प्र०	आपः	पं०	अद्भ्यः
द्वि०	अपः	ष०	अपाम्
तृ०	अद्भिः	स०	अप्सु
च०	अद्भ्यः	सं०	हे आपः

भकारान्त स्त्रीलिङ्ग

८६—ककुभ् (दिशा)

प्र०	ककुप्	ककुभौ	ककुभः
द्वि०	ककुभम्	,,	,,
तृ०	ककुभा	ककुब्भ्याम्	ककुब्भिः
च०	ककुभे	,,	ककुब्भ्यः
पं०	ककुभः	,,	,,
ष०	,,	ककुभोः	ककुभाम्
स०	ककुभि	,,	ककुप्सु
सं०	हे ककुप्	हे ककुभौ	हे ककुभः

रकारान्त नपुंसकलिङ्ग

८७—वार् (पानी)

प्र०	वाः	वारी	वारि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः
च०	वारे	,,	वार्भ्यः
पं०	वारः	,,	,,
ष०	,,	वारोः	वाराम्
स०	वारि	,,	वार्षु
सं०	हे वाः	हे वारी	हे वारि

८८—गिर (वाणी) स्त्रीलिङ्ग

प्र०	गीः	गिरौ	गिरः
द्वि०	गिरम्	,,	,,
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
च०	गिरे	,,	गीर्भ्यः
पं०	गिरः	,,	,,
ष०	,,	गिरोः	गिराम्
स०	गिरि	,,	गीर्षु
सं०	हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः

८९—पुर् (नगर) स्त्रीलिङ्ग

प्र०	पूः	पुरौ	पुरः
द्वि०	पुरम्	,,	,,
तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः

च०	पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
पं०	पुरः	,,	,,
ष०	,,	पुरोः	पुराम्
स०	पुरि	,,	पूर्षु
सं०	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः

इसी प्रकार धुर् (धुरा) के भी रूप चलते हैं।

१।७०

वकारान्त स्त्रीलिङ्ग

९०—दिव् (आकाश, स्वर्ग)

प्र०	द्यौः	दिवौ	दिवः
द्वि०	दिवम्	,,	,,
तृ०	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
च०	दिवे	,,	द्युभ्यः
पं०	दिवः	,,	,,
ष०	,,	दिवोः	दिवाम्
स०	दिवि	,,	द्युषु
सं०	हे द्यौः	हे दिवौ	हे दिवः

शकारान्त पुंलिङ्ग

९१—विश् (बनिया)

प्र०	विट्	विशौ	विशः
द्वि०	विशम्	,,	,,
तृ०	विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः
च०	विशे	,,	विड्भ्यः
पं०	विशः	,,	,,
ष०	,,	विशोः	विशाम्
स०	विशि	,,	विट्सु
सं०	हे विट्	हे विशौ	हे विशः

९२—तादृश् (उसके समान)

प्र०	तादृक्	तादृशौ	तादृशः
द्वि०	तादृशम्	,,	,,
तृ०	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
च०	तादृशे	,,	तादृग्भ्यः
पं०	तादृशः	,,	,,
ष०	,,	तादृशोः	तादृशाम्
स०	तादृशि	,,	तादृक्षु
सं०	हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृशः

इसी प्रकार यादृश् (जैसा), मादृश् (मेरे समान), भवादृश् (आपके समान), त्वादृश् (तुम्हारे समान), एतादृश् (इसके समान) इत्यादि के रूप चलते हैं। इनके स्त्रीलिङ्ग शब्द तादृशी, मादृशी, यादृशी आदि हैं जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

९३—तादृश् (उसके समान) नपुंसकलिङ्ग

प्र०	तादृक्	तादृशी	तादृंशि
द्वि०	,,	,,	,,

तृतीया इत्यादि के रूप पुँल्लिङ्ग के समान होते हैं। तादृश्, मादृश् भवादृश्, त्वादृश् इत्यादि के समानार्थक अकारान्त शब्द तादृश, मादृश, भवादृश, त्वादृश आदि हैं।

९४—दिश् (दिशा) स्त्रीलिङ्ग

प्र०	दिक्, दिग्	दिशौ	दिशः
द्वि०	दिशम्	,,	,,
तृ०	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
च०	दिशे	,,	दिग्भ्यः
पं०	दिशः	,,	,,
ष०	,,	दिशोः	दिशाम्
स०	दिशि	,,	दिक्षु
सं०	हे दिक्, हे दिग्	हे दिशौ	हे दिशः

९५—निश (रात) स्त्रीलिङ्ग

द्वि०	+	+	निशः
तृ०	निशा	निज्भ्याम्, निड्भ्याम्	निज्भिः, निड्भिः
च०	निशे	,, ,,	निज्भ्य, निड्भ्यः
पं०	निशः	,, ,,	, ,,
ष०	,,	निशोः	निशाम्
स०	निशि	,,	निच्छु, निट्सु, निट्त्सु

इसके पहले पांच रूप नहीं मिलते।

षकारान्त पुँल्लिङ्ग

९६—द्विष (शत्रु)

प्र०	द्विट्	द्विषौ	द्विषः
द्वि०	द्विषम्	,,	,,
तृ०	द्विषा	द्विड्भ्याम्	द्विड्भिः
च०	द्विषे	,,	द्विड्भ्यः
पं०	द्विषः	,,	,,

ष०	द्विषः	द्विषोः	द्विषाम्
स०	द्विषि	,,	द्विट्सु
सं०	हे द्विट्	हे द्विषौ	हे द्विषः

९७—प्रावृष (वर्षा ऋतु) स्त्रीलिङ्ग

प्र०	प्रावृट्, प्रावृड्	प्रावृषौ	प्रावृषः
द्वि०	प्रावृषम्	,,	,,
तृ०	प्रावृषा	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भिः
च०	प्रावृषे	,,	प्रावृड्भ्यः
पं०	प्रावृषः	,,	,,
ष०	,,	प्रावृषोः	प्रावृषाम्
स०	प्रावृषि	प्रावृषोः	प्रावृट्सु
सं०	हे प्रावृट्, प्रावृड्	हे प्रावृषौ	हे प्रावृषः

सकारान्त पुँल्लिङ्ग

९८—चन्द्रमस् (चन्द्रमा)

प्र०	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	,,	,,
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च०	चन्द्रमसे	,,	चन्द्रमोभ्यः
पं०	चन्द्रमसः	,,	,,
ष०	,,	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम
स०	चन्द्रमसि	,,	चन्द्रमःसु—स्सु
सं०	हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः

इसी प्रकार दिवौकस् (देवता), महौजस् (बड़ा तेज वाला), वेधस् (ब्रह्मा), सुमनस् (अच्छा चित्त वाला), महायशस् (बड़ा यशस्वी), महातेजस् (बड़ी कान्ति वाला), विशालवक्षस् (बड़ी छाती वाला), दुर्वासस् (दुर्वासा—बुरे कपड़ों वाला), प्रचेतस् इत्यादि समस्त सकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं।

९९—मास् (महीना) पुँल्लिङ्ग

द्वि०	+	+	मासः
तृ०	मासा	माभ्याम्	माभिः
च०	मासे	,,	माभ्यः
पं०	मासः	,,	,,
ष०	,,	मासोः	मासाम्
स०	मासि	,,	माःसु, मास्सु

इस शब्द के भी प्रथम पाँच रूप संस्कृत में नहीं मिलते।

१००—पुम्स् (पुरुष) पुँल्लिङ्ग

प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
द्वि०	पुमांसम्	,,	पुंसः
तृ०	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः
च०	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
पं०	पुंसः	,,	,,
ष०	,,	पुंसोः	पुंसाम्
स०	पुंसि	पुंसोः	पुंसु
सं०	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः

१०१—विद्वस् (विद्वान्) पुँल्लिङ्ग

प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वि०	विद्वांसम्	,,	विदुषः
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
च०	विदुषे	,,	विद्वद्भ्यः
पं०	विदुषः	,,	,,
ष०	,,	विदुषोः	विदुषाम्
स०	विदुषि	,,	विद्वत्सु
सं०	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

इसका स्त्रीलिङ्ग शब्द 'विदुषी' है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

१०२—लघीयस् (उससे छोटा)

प्र०	लघीयान्	लघीयांसौ	लघीयांसः
द्वि०	लघीयांसम्	,,	लघीयसः
तृ०	लघीयसा	लघीयोभ्याम्	लघीयोभिः
च०	लघीयसे	,,	लघीयोभ्यः
पं०	लघीयसः	,,	,,
ष०	,,	लघीयसोः	लघीयसाम्
स०	लघीयसि	,,	लघीयःसु, लघीयस्सु
सं०	हे लघीयन्	हे लघीयांसौ	हे लघीयांसः

इसी प्रकार श्रेयस्, गरीयस् (अधिक बड़ा), द्रढीयस् (अधिक मजबूत), द्राघीयस् (अधिक लम्बा), प्रथीयस् (अधिक मोटा या बड़ा) इत्यादि ईयस् प्रत्यय से बने हुए पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं।

इनके स्त्रीलिङ्ग शब्द श्रेयसी, गरीयसी, द्रढीयसी, द्राघीयसी इत्यादि 'ई' जोड़कर बनाये जाते हैं जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

१०३—श्रेयस (अधिक प्रशंसनीय) पुंल्लिङ्ग

प्र०	श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः
द्वि०	श्रेयांसम्	,,	श्रेयसः
तृ०	श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः
च०	श्रेयसे	,,	श्रेयोभ्यः
पं०	श्रेयसः	,,	,,
ष०	,,	श्रेयसोः	श्रेयसाम्
स०	श्रेयसि	,,	श्रेयःसु, श्रेयस्सु
सं०	हे श्रेयन्	हे श्रेयांसौ	हे श्रेयांसः

१०४—दोस् (भुजा) पुंल्लिङ्ग

प्र०	दोः	दोषौ	दोषः
द्वि०	,,	,,	,, दोष्णः
तृ०	दोषा, दोष्णा	दोर्भ्याम्, दोषभ्याम्	दोर्भिः, दोषभिः
च०	दोषे, दोष्णे	,, ,,	दोर्भ्यः दोषभ्यः
पं०	दोषः दोष्णः	,, ,,	,, ,,
ष०	,, ,,	दोषोः, दोष्णोः	दोषाम्, दोष्णाम्
स०	दोषि, दोष्णि, दोषणि	,,	दोष्षु, दोःषु, दोषसु
सं०	हे दोः	हे दोषौ	हे दोषः

१०५—अप्सरस् (अप्सरा) स्त्रीलिङ्ग

प्र०	अप्सराः	अप्सरसौ	अप्सरसः
द्वि०	अप्सरसम्	,,	,,
तृ०	अप्सरसा	अप्सरोभ्याम्	अप्सरोभिः
च०	अप्सरसे	,,	अप्सरोभ्यः
पं०	अप्सरसः	,,	,,
ष०	,,	अप्सरसोः	अप्सरसाम्
स०	अप्सरसि	,,	अप्सरःसु-स्सु
सं०	हे अप्सरः	हे अप्सरसौ	हे अप्सरसः

अप्सरस् शब्द का प्रयोग प्रायः बहुवचन में ही होता है।

१०६—आशिस् (आशीर्वाद) स्त्रीलिङ्ग

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	आशीः	आशिषौ	आशिषः
द्वि०	आशिषम्	,,	,,
तृ०	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
च०	आशिषे	,,	आशीर्भ्यः

पं०	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
ष०	,,	आशिषोः	आशिषाम्
स०	आशिषि	,,	आशीःषुः आशीष्षु
सं०	हे आशीः	हे आशिषौ	हे आशिषः

१०७—मनस् (मन) नपुंसकलिङ्ग

प्र०	मनः	मनसी	मनांसि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
च०	मनसे	,,	मनोभ्यः
पं०	मनसः	,,	,,
ष०	,,	मनसोः	मनसाम्
स०	मनसि	,,	मनस्सु, मनःसु
सं०	हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

इसी प्रकार अम्भस् (पानी), नभस् (आकाश), आगस् (पाप), उरस् (छाती) पयस् (दूध, पानी). वयस् (उम्र), रजस् (धूल), वक्षस् (छाती), तमस् (अँधेरा), अयस् (लोहा), वचस् (वचन, बात), यशस् (यश, कीर्ति) सरस् (तालाब) तपस् (तपस्या), शिरस् (शिर) इत्यादि शब्दों के रूप चलते हैं।

१०८—हविस् (होम की वस्तु) नपुंसकलिङ्ग

प्र०	हविः	हविषी	हवींषि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भिः
च०	हविषे	,,	हविर्भ्यः
पं०	हविषः	,,	,,
ष०	,,	हविषोः	हविषाम्
स०	हविषि	,,	हविःषु, हविष्षु
सं०	हे हविः	हे हविषी	हे हवींषि

१०९—धनुस (धनुष) नपुंसकलिङ्ग

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
च०	धनुषे	,,	धनुर्भ्यः
पं०	धनुषः	,,	,,

ष०	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
स०	धनुषि	,,	धनुःषु, धनुष्षु
सं०	हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि

इसी प्रकार चक्षुस् (आंख), वपुस् (शरीर), आयुस् (उम्र), यजुस् (यजुर्वेद) इत्यादि 'उस्' में अन्त होने वाले नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं।

हकारान्त पुंलिङ्ग

११०—मधुलिह् (शहद की मक्खी या भौंरा)

प्र०	मधुलिट्-लिड्	मधुलिहौ	मधुलिहः
द्वि०	मधुलिहम्	,,	,,
तृ०	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
च०	मधुलिहे	,,	मधुलिड्भ्यः
पं०	मधुलिहः	,,	,,
ष०	,,	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
स०	मधुलिहि	,,	मधुलिट्सु-लिट्त्सु
सं०	हे मधुलिट्	हे मधुलिहौ	हे मधुलिहः

१११—अनडुह् (बैल)

प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
द्वि०	अनड्वाहम्	,,	अनडुहः
तृ०	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
च०	अनडुहे	,,	अनडुद्भ्यः
पं०	अनडुहः	,,	,,
ष०	,,	अनडुहोः	अनडुहाम्
स०	अनडुहि	,,	अनडुत्सु
सं०	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

११२—उपानह् (जूता) स्त्रीलिङ्ग

प्र०	उपानत्, उपानद्	उपानहौ	उपानहः
द्वि०	उपानहम्	,,	,,
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
च०	उपानहे	,,	उपानद्भ्यः
पं०	उपानहः	,,	,,
ष०	,,	उपानहोः	उपानहाम्
स०	उपानहि	,,	उपानत्सु
सं०	हे उपानत्, उपानद्	हे उपानहौ	हे उपानहः

तृतीय सोपान
(सर्वनाम-विचार)

हिन्दी में, जो शब्द संज्ञाओं के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं, उन्हें सर्वनाम कहा जाता है। किन्तु संस्कृत में सर्वनाम शब्द से ऐसे ३५ शब्दों का बोध होता है जो सर्व शब्द से आरम्भ होते हैं और जिनके रूप प्रायः एक समान चलते हैं[1]। द्वन्द्व समास के अतिरिक्त यदि अन्य किसी समास के अन्त में ये सर्व इत्यादि सर्वनाम शब्द हों तो उनकी भी सर्वनाम ही संज्ञा होती है[2]। इन सर्वनामों में कुछ विशेषण और कुछ संख्यावादी शब्द भी हैं।

'अस्मद्

प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पं०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
ष०	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
स०	मयि	आवयोः	अस्मासु

---

१. सर्वादीनि सर्वनामानि ।१।१।२७।

सर्वादि में निम्नलिखित ३५ शब्द हैं।

१—सर्व, २—विश्व, ३—उभ, ४—उभय, ५—डतर अर्थात् डतर जोड़कर बनाये हुए शब्द यथा कतर, यतर इत्यादि। ६—डतम अर्थात् डतम जोड़कर बनाये हुए शब्द यथा कतम, यतम इत्यादि। ७—अन्य, ८—अन्यतर, ९—इतर, १०—त्वत्, ११—त्व, १२—नेम, १३—सम, १४—सिम, १५—पूर्व, १६—पर, १७—अवर, १८—दक्षिण, १९—उत्तर, २०—अपर, २१—अधर, २२—स्व, २३—अन्तर, २४—त्यद्, २५—तद्, २६—यद्, २७—एतद्, २८—इदम्, २९—अदस्, ३०—एक, ३१—द्वि, ३२—युष्मद्, ३३—अस्मद्, ३४—भवत्, ३५—किम्।

इनमें 'त्वत्' और 'त्व' दोनों ही 'अन्य' के पर्याय हैं। 'नेम' अर्ध का और 'सम' सर्व का पर्याय है। 'सम' तुल्य का पर्याय होने पर सर्वनाम नहीं होता है। उस अवस्था में उसका रूप नर के समान होगा जैसा पाणिनि के 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' इस सूत्र से स्पष्ट है। 'सिम' सम्पूर्ण का पर्याय है। 'स्व' भी निज का वाचक होने पर ही सर्वनाम होता है, 'जाति वाले व्यक्ति' या 'धन' का वाचक होने पर नहीं। (स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥१।१।३५॥

२. तदन्तस्यापि इयं संज्ञा।

इनमें से 'मा, नौ, नः; मे, नौ, नः; मे, नौ, नः' इन वैकल्पिक रूपों का प्रयगो सभी जगह नहीं किया जाता। वाक्य के प्रारम्भ में, पद्य के चरण के आदि में, तथा च, वा, ह, हा, अह, एव—इन अव्ययों के ठीक पूर्व तथा सम्बोधन शब्द के ठीक बाद इनका प्रयोग निषिद्ध है।

पुनश्च 'अस्मद्' शब्द के रूप लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलते।

युष्मद्

प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम् वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पं०	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष०	तव, ते	युवयोः वाम्	युष्माकम्, वः
स०	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

'त्वा, वाम्, वः; ते, वाम्, वः; ते, वाम्, वः' इन वैकल्पिक रूपों का भी प्रयोग सभी जगह नहीं किया जाता। वाक्य के प्रारम्भ में, पद्य के चरण के आदि में, तथा च, वा, ह, हा, अह, एव—इन अव्ययों के ठीक पूर्व तथा सम्बोधन शब्द के ठीक बाद इनका भी प्रयोग निषिद्ध है। इनके प्रयोगों को दिखाने के लिए दो श्लोक नीचे दिये जा रहे हैं—

श्रीशस्त्वावतु मापीह दत्तात् ते मेऽपि शर्म सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः॥

भवत्[1] (आप—प्रथम पुरुष)

पुँल्लिङ्ग

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
द्वि०	भवन्तम्	,,	भवतः
तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
च०	भवते	,,	भवद्भ्यः
पं०	भवतः	,,	,,

१. नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में 'भवत्, भवती, भवन्ति' रूप होता है और तृतीया से आगे पुंल्लिङ्ग के समान रूप चलता है।

ष०	भवतः	भवतोः	भवताम्
स०	भवति	,,	भवत्सु
सं०	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	भवती	भवत्यौ	भवत्यः
द्वि०	भवतीम्	,,	भवतीः
तृ०	भवत्या	भवतीभ्याम्	भवतीभिः
च०	भवत्यै	,,	भवतीभ्यः
पं०	भवत्याः	,,	,,
ष०	,,	भवत्योः	भवतीनाम्
स०	भवत्याम्	,,	भवतीषु
सं०	हे भवति	हे भवत्यौ	हे भवत्यः

तत् (वह) पुँल्लिङ्ग

प्र०	सः	तौ	ते
द्वि०	तम्	,,	तान्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः
च०	तस्मै	,,	तेभ्यः
पं०	तस्मात्	,,	,,
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	,,	तेषु

तत् (वह) स्त्रीलिङ्ग

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	,,	,,
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	,,	ताभ्यः
पं०	तस्याः	,,	,,
ष०	,,	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	,,	तासु

तत् (वह) नपुंसकलिङ्ग

प्र०	तत्	ते	तानि
द्वि०	,,	,,	,,

शेषं पुँल्लिङ्गवत् ।

इदम् (यह) पुँल्लिङ्ग

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम् , एनम्	इमौ, एनौ	इमान् , एनान्
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	,,	एभ्यः
पं०	अस्मात्	,,	,,
ष०	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
स०	अस्मिन्	,, ,,	एषु

इदम् स्त्रीलिङ्ग

प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम् एनाम्	,, एने	,, एनाः
तृ०	अनया एनया	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	,,	आभ्यः
पं०	अस्याः	,,	,,
ष०	,,	अनयोः एनयोः	आसाम्
स०	अस्याम्	,, ,,	आसु

इदम् नपुंसकलिङ्ग

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	इदम् , एनत्	इमे, एने	इमानि, एनानि

शेषं पुँल्लिङ्गवत् ।

एतत् (यह) पुंल्लिङ्ग

प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम् , एनम्	एतौ, एनौ	एतान्, एनान्
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	,,	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्	,,	,,
ष०	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	,, ,,	एतेषु

एतत् स्त्रीलिङ्ग

प्र०	एषा	एते	एताः
द्वि०	एताम् एनां	,, एने	,, एनाः
तृ०	एतया एनया	एताभ्याम्	एताभिः

च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पं०	एतस्याः	,,	,,
ष०	,,	एतयोः एनयोः	एतासाम्
स०	एतस्याम्	,, ,,	एतासु

एतत् नपुंसकलिङ्ग

प्र०	एतत्	एते	एतानि
द्वि०	,,	,,	,,

शेषं पुंल्लिङ्गवत् ।

अदस् (वह) पुँल्लिङ्ग

प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	,,	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	,,	अमीभ्यः
पं०	अमुष्मात्	,,	,,
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	,,	अमीषु

अदस् स्त्रीलिङ्ग

प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमूम्	,,	,,
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	,,	अमूभ्यः
पं०	अमुष्याः	,,	,,
ष०	,,	अमुयोः	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	,,	अमूषु

अदस् नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अदः	अमू	अमूनि
द्वि०	,,	,,	,,

शेषं पुंल्लिङ्गवत् ।

यत् (जो) पुंल्लिङ्ग

प्र०	यः	यौ	ये
द्वि०	यम्	यौ	यान्
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	,,	येभ्यः
पं०	यस्मात्	,,	,,
पं०	यस्य	ययोः	येषाम्
स०	यस्मिन्	,,	येषु

यत् स्त्रीलिङ्ग

प्र०	या	ये	याः
द्वि०	याम्	,,	,,
तृ०	यया	याभ्याम्	याभिः
च०	यस्यै	,,	याभ्यः
पं०	यस्याः	,,	,,
ष०	,,	ययोः	यासाम्
स०	यस्याम्	,,	यासु

यत् नपुंसकलिङ्ग

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	यत्	ये	यानि
द्वि०	,,	,,	,,

शेषं पुंल्लिङ्गवत् ।

सर्व (सब) पुंल्लिङ्ग

प्र०	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वि०	सर्वम्	,,	सर्वान्
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
च०	सर्वस्मै	,,	सर्वेभ्यः
पं०	सर्वस्मात्	,,	,,
ष०	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
स०	सर्वस्मिन्	,,	सर्वेषु

सर्व स्त्रीलिङ्ग

प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वि०	सर्वाम्	,,	,,
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
च०	सर्वस्यै	,,	सर्वाभ्यः
पं०	सर्वस्याः	,,	,,
ष०	,,	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	,,	सर्वासु

सर्व नपुंसकलिङ्ग

प्र०	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वि०	,,	,,	,,

शेषं पुंल्लिङ्गवत् ।

किम् (कौन) पुंल्लिङ्ग

प्र०	कः	कौ	के
द्वि०	कम्	कौ	कान्
तृ०	केन	काभ्याम्	कैः
च०	कस्मै	,,	केभ्यः
पं०	कस्मात्	,,	,,
ष०	कस्य	कयोः	केषाम्
स०	कस्मिन्	,,	केषु

किम् स्त्रीलिङ्ग

प्र०	का	के	काः
द्वि०	काम्	के	काः
तृ०	कया	काभ्याम	काभिः
च०	कस्यै	,,	काभ्यः
पं०	कस्याः	,,	,,
ष०	,,	कयोः	कासाम्
स०	कस्याम्	,,	कासु

किम् नपुंसकलिङ्ग

प्र०	किम्	के	कानि
द्वि०	,,	,,	,,

अन्यत् (दूसरा) पुंल्लिङ्ग

प्र०	अन्यः	अन्यौ	अन्ये
द्वि०	अन्यम्	,,	अन्यान्
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः
च०	अन्यस्मै	,,	अन्येभ्यः
पं०	अन्यस्मात्	,,	,,
ष०	अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्
सं०	अन्यस्मिन्	,,	अन्येषु

अन्यत् स्त्रीलिङ्ग

प्र०	अन्या	अन्ये	अन्याः
द्वि०	अन्याम्	,,	,,
तृ०	अन्यया	अन्याभ्याम्	अन्याभिः
च०	अन्यस्यै	,,	अन्याभ्यः
पं०	अन्यस्याः	,,	,,
ष०	,,	अन्ययोः	अन्यासाम्
सं०	अन्यस्याम्	,,	अन्यासु

अन्यत् नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अन्यत्	अन्ये	अन्यानि
द्वि०	,,	,,	,,

शेष पुंल्लिङ्गवत् ।

सूचना—अन्यत् (दूसरा), अन्यतर (दूसरा जिसके बारे में कुछ कहा जा चुका हो उससे दूसरा) इतरा (दूसरा), कतर (कौन सा), कतम (दो से अधिक में से कौन सा), यतर, यतम, ततर, ततम के रूप एक समान चलते हैं ।

पूर्व (पहला) पुंल्लिङ्ग

प्र०	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वि०	पूर्वम्	,,	पूर्वान्
तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
च०	पूर्वस्मै	,,	पूर्वेभ्यः
पं०	पूर्वस्मात् , पूर्वात्	,,	,,
ष०	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
स०	पूर्वस्मिन् , पूर्वे	,,	पूर्वेषु

पूर्व स्त्रीलिङ्ग

प्र०	पूर्वा	पूर्वे	पूर्वाः
द्वि०	पूर्वाम्	,,	,,
तृ०	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभिः
च०	पूर्वस्यै	,,	पूर्वाभ्यः
पं०	पूर्वस्याः	,,	,,
ष०	,,	पूर्वयोः	पूर्वासाम्
स०	पूर्वस्याम्	पूर्वयोः	पूर्वासु

पूर्व नपुंसकलिङ्ग

प्र०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
द्वि०	,,	,,	,,

शेष पुंल्लिङ्गवत् ।

सूचना—पूर्व (पहला), अवर (बाद वाला), दक्षिण, उत्तर, पर (दूसरा), अपर (दूसरा) अधर (नीचे वाला) शब्दों के रूप एक समान चलते हैं ।

उभ (दोनों)

यह शब्द केवल द्विवचन में होता है और तीनों लिङ्गों में अलग २ विशेष्य के अनुसार इनकी विभक्तियां होती हैं एवं लिङ्ग भी ।

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	उभौ	उभे	उभे
द्वि०	उभौ	उभे	उभे
तृ०	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
च०	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
पं०	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
ष०	उभयोः	उभयोः	उभयोः
स०	उभयोः	उभयोः	उभयोः

उभय (दोनों) पुंल्लिङ्ग

	ए० व०	ब० व०		ए० व०	ब० व०
प्र०	उभयः	उभये	पं०	उभयस्मात्	उभयेभ्यः
द्वि०	उभयम्	उभयान्	ष०	उभयस्य	उभयेषाम्
तृ०	उभयेन	उभयैः	स०	उभयस्मिन्	उभयेषु
च०	उभयाय	उभयेभ्यः			

उभय नपुंसकलिङ्ग

प्र०	उभयम्	उभयानि	द्वि०	उभयम्	उभयानि

शेषं पुंल्लिङ्गवत् ।

उभय स्त्रीलिङ्ग

	ए० व०	ब० व०
प्र०	उभयी	उभय्यः

शेषं नदीवत् ।

कति (कितने), यति (जितने), तति (उतने) ये शब्द सभी लिङ्गों में प्रयुक्त होते हैं एवं नित्य बहुवचन होते हैं ।

	कति	यति	तति
प्र०	कति	यति	तति
द्वि०	कति	यति	तति
तृ०	कतिभिः	यतिभिः	ततिभिः
च०	कतिभ्यः	यतिभ्यः	ततिभ्यः
पं०	,,	,,	,,
ष०	कतीनाम्	यतीनाम्	ततीनाम्
स०	कतिषु	यतिषु	ततिषु

सर्वनाम शब्द और उनका प्रयोग

समस्त प्रकार के नामों (संज्ञाओं) के बदले जो आता है उसे सर्वनाम कहते हैं। रचना या किसी भी भाषा के वाग्व्यवहार के लिए सर्वनाम एक बहुत बड़ा सहा-

यह है, कारण एक बार केवल संज्ञा का प्रयोग हो जाने के बाद उस सम्पूर्ण सन्दर्भ या वाक्य में संज्ञाओं के बदले सर्वनाम आकर उनका प्रतिनिधित्व कर लेता है और बार-बार एक ही संज्ञा को दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

अर्थ के अनुसार सर्वनामों को छः श्रेणियों में विभाजित किया गया है। यथा—
(१) पुरुषवाचक सर्वनाम (२) निश्चयवाचक सर्वनाम (३) सम्बन्धवाचक सर्वनाम (४) अनिश्चयवाचक सर्वनाम (५) प्रश्नवाचक सर्वनाम (६) निजवाचक सर्वनाम।

पुरुषवाचक सर्वनाम—ये सर्वनाम दो हैं, युष्मद् और अस्मद्। युष्मद् मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम है और अस्मद् उत्तम पुरुषवाची सर्वनाम।

(अ) आदर सूचित करने के लिए मध्यम पुरुष 'युष्मद्' के स्थान में प्रथम पुरुष 'भवत्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'भवत्' के साथ प्रथम पुरुष की ही क्रिया होती है क्योंकि 'भवत्' की गणना प्रथम में की गई है। यत भवान् अभ्यागतः अतिथिः तद् भक्षयतु इदम् फलम् (सुनिये आप अभ्यागत और अतिथि हैं इसलिए आप इस फल को खाइये)।

(ब) आदर का बोध कराने के लिए यदा-कदा 'भवत्' और 'भवती' के पूर्व 'अत्र' और 'तत्र' लगा दिये जाते हैं। सामने उपस्थित व्यक्ति के लिए 'अत्र भवत्' और 'तत्र भवती' का प्रयोग किया जाता है। यथा :—

कृपया अत्र भवन्तः आज्ञापयन्तु—आप पूज्यगण कृपा करके आज्ञा प्रदान करें।

अत्र भवती गौतमी आगच्छति—श्रीपूज्या गौतमी आती हैं।

आदिष्टोऽस्मि तत्र भवता गुरुणा—श्रीपूज्य गुरुदेव के द्वारा आदिष्ट हूँ।

क्व तत्र भवती कामन्दकी ?—पूज्या कामन्दकी देवी कहाँ हैं ?

(स) अत्र—तत्र 'भवत्' शब्द के पहिले 'एषः' और 'सः' का भी प्रयोग मिलता है।

यह केवल प्रथमा के एकवचन में ही मिलता है। यथा :—

एष भवान्, आगच्छति—यह आप आते हैं।

मां स भवान् नियुङ्क्ते—मुझे वह श्रीमान् ही नियुक्त कर रहे हैं।

निश्चयवाचक सर्वनाम—(अ) तद्, एतद्, इदम्, अदस् ये चार निश्चयवाचक सर्वनाम हैं क्योंकि इनमें निश्चय जाना जाता है, अथवा इनसे संकेत किया जाता है। ये सब प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम हैं।

(ब) समीप वस्तु के लिए 'इदम्', अधिक समीपवर्ती वस्तु के लिए 'एतद्', दूरवर्ती व्यक्ति या वस्तु के लिए 'अदस्' एवं अनुपस्थित किसी व्यक्ति या वस्तु के लिए 'तद्' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

> "इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
> अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षं विजानीयात् ॥"

(स) 'तद्' कभी-कभी 'प्रसिद्ध', 'सुविख्यात', 'प्रशंसनीय' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

यथा :—सा रम्या नगरी = वह प्रसिद्ध, सुविख्यात नगरी।

(द) अनुभूत अर्थों के बोधनार्थ 'तद्' के उपरान्त 'एव' अव्यय जोड़कर उसका प्रयोग किया जाता है। यथा :—तदेव नाम = ठीक वही नाम है।

(य) 'भिन्न-भिन्न' अथवा 'कई' आदि अर्थों को प्रकट करने के लिए 'तद्' का दुहरा प्रयोग किया जाता है। यथा :—तत्र तत्र वधो न्याय्यस्तव राक्षस! दारुणः = रे राक्षस! वहां २ तेरा भीषण वध उचित है।

(फ) 'इदम्' और 'एतद्' शब्दों के द्वारा यदि किसी एक वाक्य में किसी संज्ञा का वर्णन करके दूसरे वाक्य में फिर उसी संज्ञा का प्रयोग हो तो ऐसी अवस्था में 'इदम्' और 'एतद्' के स्थान में द्वितीया (तीनों वचन), तृतीया एकवचन तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में 'एन' आदेश हो जाता है। यथा :—

अनयोः पवित्रं कुलम् एनयोः प्रभूतं बलम् = इन दोनों का पवित्र वंश है, इन दोनों में महान बल है।

सूचना—युष्मद्, अस्मद् तथा भवत् के अतिरिक्त जितने सर्वनाम हैं, सब विशेष्य तथा विशेषण दोनों तरह प्रयुक्त होते हैं।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम—(अ) यद् सम्बन्धवाचक सर्वनाम है। इसके साथ बहुधा तद् भी आता है क्योंकि वह इसका नित्यसम्बन्धी शब्द है। यथा :—

यदाज्ञापयति तत् कुरु (वह जो आज्ञा देते हैं, वह करो)

(ब) 'सब', 'सम्पूर्ण' 'सब कुछ', 'जो कुछ' आदि अर्थों के प्रकटनार्थ यद् शब्द का दोहरा प्रयोग किया जाता है। ऐसी दशा में यद् का नित्यसम्बन्धी सर्वनाम 'तद्' का भी दुहरा प्रयोग हो जाता है। यथा :—

यत् यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो! तवाराधनम् (हे भगवान् शङ्कर! मैं जो कुछ कर्म करता हूँ वह सम्पूर्ण तुम्हारी आराधना है।)

(स) जब अपि, चित् और चन प्रत्ययान्त 'किम्' अथवा 'किम्' के साथ 'यद्' का प्रयोग किया जाता है तब 'जो कोई भी', 'जिस किसी भी', 'जहां कहीं भी' आदि अर्थों का बोध होता है। यथा :—

यं कञ्चित् पश्यामि स काल इव प्रतिभाति (जिस किसी को देखता हूँ वह काल की तरह लगता है।)

यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः (जिस-जिस को देखते हो, उस २ के आगे दीनवचन मत कहो।)

अनिश्चयवाचक सर्वनाम—(अ) प्रश्नवाचक सर्वनाम 'किम्' के अनन्तर चित्, चन, अपि अथवा श्चित् जोड़कर, अनिश्चयवाचक सर्वनाम बनाया जाता है। यथा :—

कश्चित्, कश्चन, कोऽपि वा एवं कृतवान् (किसी अनिश्चित व्यक्ति ने ऐसा किया।)

(ब) कभी-कभी किम् शब्द के साथ अपि का प्रयोग होने पर अनिर्वचनीय, विलक्षण, अभूतपूर्व आदि अर्थ का बोध होता है। यथा :—

अवश्यमत्र केनापि कारणेन भवितव्यम् (अवश्य ही इसमें कोई अनिर्वचनीय कारण है।)

(स) कभी-कभी 'कहीं-कहीं' के लिए 'क्वचित्-क्वचित्' तथा 'कभी-कभी' के लिए 'कदाचित्—कदाचित्' का प्रयोग किया जाता है। यथा :—

क्वचिद्वीणावाद्यं क्वचिदपि च हाहेति रुदितम् (कहीं तो वीणा बज रही है और कहीं हाय, हाय विलाप हो रहा है।)

(द) जब अन्य तथा पर शब्द का दोबार प्रयोग किया जाता है तब 'एक दूसरा', 'कुछ-कुछ', 'कुछ दूसरा', 'कुछ और' आदि अर्थों का बोध होता है। यथा :—

अन्यः करोति दुर्वृत्तमन्यो भुङ्क्ते च तत्फलम् (एक (कोई) पाप करता है, दूसरा (कोई) फल भोगता है।)

प्रश्नवाचक सर्वनाम (अ) प्रश्नवाचक सर्वनाम 'किम्' तथा इसमें प्रत्यय लगाकर बने कतर, कतम, कुत्र, कदा, क्व, कथम् इत्यादि शब्द हैं जो प्रश्न पूछने में प्रयुक्त होते हैं। यथा :—

कः कोऽत्र द्वारि तिष्ठति ? (कौन-कौन यहाँ द्वार पर है ?)

अनयोः कतरः तत्र गमिष्यति ? (इन दोनों में कौन वहां जायगा ?)

कुत्र गच्छसि ? कदा पठसि ? आदि।

हिन्दी में अनुवाद करो

१—कदाचित् भाण्डं भिनत्ति कदाचिन्नवनीतं चोरयति। २–सोऽयं तव पुत्रः आगतः यः देव्या स्वकरकमलैरुपलालितः। ३—असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः। ४—यो यः शस्त्रं बिभर्ति क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्। ५—तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव नाम, सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव। अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥ ६—अस्ति तत्र भवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलांछनो भवभूतिर्नाम जातुकर्णीपुत्रः। ७—केचित् संपद्भिः प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलतामुपयांति, अपरे तु धूर्तैः प्रतार्यमाणाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयांति। ८—रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यम् तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्। ९—अमुना व्यतिरेकेण कृतापराधमिव त्वय्यात्मानमवगच्छति कादम्बरी। १०—आत्मानं बहुमन्यामहे वयम्। ११—तस्य च मम च पौरधूर्तैर्वैरमुदपादयत। १२—अयमसौ मम ज्यायानार्यः कुशो नाम भरताश्रमात् प्रतिनिवृत्तः। १३—अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन। १४—आयुष्मन्नेष वाग्विषयीभूतः स वीरः। १५—सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—हे भगवन्, सर्वदा हम लोगों की रक्षा कीजिए। २—मैं भी आपलोगों से कुछ पूछता हूँ। ३—पूज्य काश्यप जी ने मुझे आदेश दिया है। ४—वह दुष्ट किस दिशा

में चला गया। ५—दुष्टों के मन में कुछ दूसरी बात होती है, वाणी में कुछ दूसरी और कर्म में कुछ दूसरी। ६—एक चैत्ररथ प्रदेश चला गया, दूसरा विदर्भ देश को। ७—कुछ लोगों का मत है कि विधवाओं का पुनर्विवाह शास्त्रद्वारा निषिद्ध है, और कुछ लोगों का मत है कि वह शास्त्रविहित है। ८—कुछ लोगों ने मेरी बात का अनुमोदन किया, पर कुछ लोगों ने निन्दा की। ९—इसके द्वारा चाही जाती हुई कौन सी स्त्री अपने आपको गौरवान्वित समझती है। १०—वह पागल बुड्ढी औरत कभी बड़बड़ाने लगती है और कभी ठिकाने से बोलने लगती है। ११—जिस बालक को मैंने विद्यालय में खेलते हुए देखा था यह वही बालक है। १२—सज्जनों की संगत में एक अनिर्वचनीय आनन्द होता है। १३—उस आपत्तिकाल में मैंने बड़ी कठिनता से अपने को बचाया। १४—सोमदत्त की लड़कियां भिन्न-भिन्न कलाओं और शास्त्रों में निपुण हो गई हैं। १५—इस अवसर पर श्रीमान् जी क्या बोलने का संकल्प करते हैं। १६—पूज्य गुरुजी ने मुझे यह कार्य करने की आज्ञा प्रदान की है। १७—वह कहीं भी सो जाता है और किसी के भी घर में भोजन कर लेता है। १८—ये मेरे बच्चे तुम्हारे द्वारा ही पाले-पोसे गए। १९—अरे हटो, यह सज्जन होश में आ रहे हैं। २०—पूज्य गौतम जी कहां हैं?

चतुर्थ सोपान

विशेषण-विचार

अ—निश्चित संख्यावाचक (विशेषण)

जब 'एक' शब्द का अर्थ संख्यावाचक 'एक' होता है, तो इसका रूप केवल एकवचन में होता है, अन्य अर्थों में इसके रूप तीनों वचनों में होते हैं। एक शब्द के निम्न अर्थ होते हैं—

एकोऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽपि संख्यायां च प्रयुज्यते॥

(अल्प (थोड़ा, कुछ), प्रधान, प्रथम, केवल, साधारण, समान और एक, इतने अर्थों में एक शब्द प्रयुक्त होता है।)

बहुवचन में इसका निम्न अर्थ होता है—'कुछ लोग' 'कोई कोई'। यथा—एके पुरुषाः एकाः, नार्यः, एकानि फलानि आदि।

एक शब्द

	पुँल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	एकः	एकम्	एका
द्वि०	एकम्	एकम्	एकाम्
तृ०	एकेन	एकेन	एकया
च०	एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
पं०	एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः
ष०	एकस्य	एकस्य	एकस्याः
स०	एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्

द्वि (दो)

	पुँल्लिङ्ग	नपुं०		पुँल्लिङ्ग	नपुं०
प्र०	द्वौ	द्वे	पं०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
द्वि०	,,	,,	ष०	द्वयोः	द्वयोः
तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	स०	,,	,,
च०	,,	,,			

द्वि-शब्द के रूप केवल द्विवचन में तथा तीनों लिङ्गों में अलग-अलग होते हैं।

त्रि (तीन)

'त्रि' शब्द के रूप केवल बहुवचन में होते हैं।

	पुँल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	त्रयः	त्रीणि	तिस्रः[1]
द्वि०	त्रीन्	"	"
तृ०	त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः
च०	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
पं०	"	"	"
ष०	[2]त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्
स०	त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु

चतुर (चार)

चतुर शब्द के भी रूप तीनों लिङ्गों में भिन्न-भिन्न और केवल बहुवचन में होते हैं।

	पुँल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः
द्वि०	चतुरः	"	"
तृ०	चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः
च०	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
पं०	"	"	"
ष०	[3]चतुर्णाम्, चतुर्ण्णाम्	चतुर्णाम्, चतुर्ण्णाम्	चतसृणाम्,
स०	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

पञ्चम् और इसके आगे के संख्यावाची शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान होते हैं और केवल बहुवचन में होते हैं।

	पञ्चन्–पाँच पुँल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग	षष्–छः पुँल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुं०
प्र०	पञ्च	षट्
द्वि०	"	"
तृ०	पञ्चभिः	षड्भिः

---

१. 'त्रिचतुरोः' स्त्रियां तिसृचतसृ ।७।२।९९। त्रि तथा चतुर् शब्दों के स्थान में स्त्रीलिङ्ग में तिसृ और चतसृ आदेश हो जाते हैं।

२. 'त्रेस्त्रयः' ।७।१।५३। अर्थात् आम् (षष्ठी बहु० के विभक्ति प्रत्यय) के जुड़ने पर 'त्रि' शब्द के स्थान में 'त्रय' हो जाता है। इस प्रकार त्रीणाम् न होकर 'त्रयाणाम्' रूप बन जाता है।

३. 'षट्चतुर्भ्यश्च' ।७।१।५५। अर्थात् 'षट्' संज्ञावाले संख्यावाची शब्दों तथा चतुर् शब्द में आम् (षष्ठीबहुवचन के विभक्ति प्रत्यय) के पूर्व न् का आगम हो जाता है। फिर 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' के अनुसार न् का ण् हो जायगा। फिर 'अचो रहाभ्यां द्वे' ।८।४।४७। से विकल्प करके द्वित्व हो जाता है। अतः 'चतुर्ण्णाम्' भी होगा।

च०	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः
पं०	,,	,,
ष०	पञ्चानाम्	षण्णाम्
स०	पञ्चसु	षट्सु
	सप्तन्–सात	[1]अष्टन्–आठ
	पुँल्लिङ्ग, नपुं०, स्त्री०	पुं०, स्त्री०, नपुं०
प्र०	सप्त	[2]अष्टौ, अष्ट
द्वि०	,,	,, ,,
तृ०	सप्तभिः	अष्टाभिः, अष्टभिः
च०	सप्तभ्यः	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः
पं०	,,	,, ,,
ष०	सप्तानाम्	अष्टानाम्
स०	सप्तसु	अष्टासु, अष्टसु

नवन् (नौ), दशन् (दस) तथा एकादशन् आदि समस्त नकारान्त संख्यावाची शब्दों के रूप पञ्चन के समान तीनों लिङ्गों में एक समान ही चलते हैं।

नित्यस्त्रीलिङ्ग ऊनविंशति से लेकर जितने संख्यावाची शब्द हैं उन सबके रूप केवल एकवचन में ही चलते हैं।

ह्रस्व इकारान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग संख्यावाचक ऊनविंशति, विंशति, एकविंशति आदि 'विंशति' में अन्त होने वाले पदार्थों के रूप 'रुचि' शब्द के तुल्य चलते हैं।

नित्य स्त्रीलिङ्ग संख्यावाचक त्रिंशत (तीस), चत्वारिंशत (चालीस), पञ्चाशत् (पचास) तथा 'शत्' में अन्त होने वाले संख्यावाची शब्दों के रूप 'सरित्' के समान चलते हैं।

	विंशति	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
प्र०	विंशतिः	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
द्वि०	विंशतिम्	त्रिंशतम्	चत्वारिंशतम्
तृ०	विंशत्या	त्रिंशता	चत्वारिंशता
च०	विंशत्यै, विंशतये	त्रिंशते	चत्वारिंशते

१. यदि अष्टन् शब्द के बाद व्यञ्जन वर्ण से आरम्भ होने वाले विभक्ति प्रत्यय जुड़े हों तो 'न्' के स्थान में 'आ' हो जाता है। परन्तु 'न' के स्थान में 'आ' का होना वैकल्पिक है। ('अष्टन आ विभक्तौ')

२. 'अष्टाभ्य औश्' ।७।१।२१। 'अष्टा' के बाद प्रथमा तथा द्वितीया बहुवचन के विभक्ति प्रत्ययों के जुड़ने पर उनके स्थान में 'औ' का आदेश हो जाता है। इस प्रकार 'अष्टौ' रूप बन जाता है। 'न्' के स्थान में 'आ' न होने पर 'अष्ट' रूप बनता है।

पं०	विंशत्याः, विंशतेः	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
ष०	„　„	„	„
स०	विंशत्याम्, विंशतौ	त्रिंशति	चत्वारिंशति

पञ्चाशत् के रूप त्रिंशत् के ही समान चलते हैं।

नित्य स्त्रीलिङ्ग षष्टि (साठ) सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नब्बे) इत्यादि समस्त इकारान्त संख्यावाची शब्दों के रूप 'विंशति' के अनुसार रुचि के समान चलते हैं।

	षष्टि	सप्तति
प्र०	षष्टिः	सप्ततिः
द्वि०	षष्टिम्	सप्ततिम्
तृ०	षष्ट्या	सप्त्या
च०	षष्ट्यै, षष्ट्ये	सप्तत्यै, सप्ततये
पं०	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
ष०	„　„	„　„
स०	षष्ट्याम् षष्टौ	सप्तत्याम् सप्ततौ

इसी प्रकार अशीति, नवति के भी रूप होते हैं।

संख्या	पूरणी (क्रम) संख्या पुँ० तथा नपुं०	पूरणी संख्या स्त्री०
१ एक	प्रथम	प्रथमा
२ द्वि	द्वितीय[1]	द्वितीया
३ त्रि	तृतीय[2]	तृतीया
४ चतुर्	[3]चतुर्थ, तुरीय, तुर्य	चतुर्थी, तुरीया, तुर्या
५ पञ्चन्	पंचम[4]	पंचमी

१–२. द्वि के साथ पूरणी संख्या के अर्थ में 'तीय' प्रत्यय लगता है। इस प्रकार 'द्वयोः पूरणः' इस अर्थ में 'द्वितीय' शब्द बना। 'त्रेः सम्प्रसारणं च' सूत्र से त्रि शब्द में भी 'तीय' प्रत्यय लगता है और त्रि के रेफ का ऋकार हो जाता है।

३. 'षट्कतिकतिपय चतुरां थुक्' ।५।२।५१। पूरण के अर्थ में षट्, कतिपय तथा चतुर् शब्दों में डट् प्रत्यय लगने पर उन्हें थुक् आगम होता है। 'चतुरश्छयतावाद्यक्षर-लोपश्च' (वार्तिक) इस विधान से चतुर् शब्द में पूरण अर्थ में छ और यत् प्रत्यय भी जुड़ते हैं और आद्य अक्षर 'च' का लोप हो जाता है। इस प्रकार तुरीय और तुर्य रूप बनेंगे।

४. 'नान्तादसंख्यादेर्मट्' ।५।२।४९। नान्त संख्यावाची शब्दों में पूरण के अर्थ में डट् प्रत्यय लगने पर उसे मट् आगम होता है।

६ षष्	षष्ठ	षष्ठी
७ सप्तन्	सप्तम	सप्तमी
८ अष्टन्	अष्टम	अष्टमी
९ नवन्	नवम	नवमी
१० दशन्	दशम	दशमी
११ एकादशन्	एकादश	एकादशी
१२ द्वादशन्	द्वादश	द्वादशी
१३ त्रयोदशन्	त्रयोदश	त्रयोदशी
१४ चतुर्दशन्	चतुर्दश	चतुर्दशी
१५ पंचदशन्	पंचदश	पंचदशी
१६ षोडशन्	षोडश	षोडशी
१७ सप्तदशन्	सप्तदश	सप्तदशी
१८ अष्टादशन्	अष्टादश	अष्टादशी
१९ नवदशन्, एकोनविंशति	एकोनविंश, एकोनविंशतितम	एकोनविंशी, एकोनविंशतितमी
या	या	या
ऊनविंशति, एकान्नविंशति	ऊनविंश, ऊनविंशतितम	ऊनविंशी, ऊनविंशतितमी
२० विंशति	विंश,[1] विंशतितम	विंशी, विंशतितमी
२१ एकविंशति	एकविंश, एकविंशतितम	एकविंशी, एकविंशतितमी
२२ द्वाविंशति	द्वाविंश, द्वाविंशतितम	द्वाविंशी, द्वाविंशतितमी
२३ त्रयोविंशति	त्रयोविंश, त्रयोविंशतितम	त्रयोविंशी, त्रयोविंशतितमी
२४ चतुर्विंशति	चतुर्विंश, चतुर्विंशतितम	चतुर्विंशी, चतुर्विंशतितमी
२५ पंचविंशति	पंचविंश, पंचविंशतितम	पंचविंशी, पंचविंशतितमी
२६ षड्विंशति	षड्विंश, षड्विंशतितम	षड्विंशी, षड्विंशतितमी
२७ सप्तविंशति	सप्तविंश, सप्तविंशतितम	सप्तविंशी, सप्तविंशतितमी
२८ अष्टविंशति	अष्टविंश, अष्टाविंशतितम	अष्टाविंशी, अष्टाविंशतितमी
२९ नवविंशति	एकोनत्रिंश, एकोनत्रिंशत्तम	एकोनत्रिंशी, एकोनत्रिंशत्तमी
या		
एकोनत्रिंशत्	ऊनत्रिंश, ऊनत्रिंशत्तम	ऊनत्रिंशी, ऊनत्रिंशत्तमी
या		
ऊनत्रिंशत्	एकान्नत्रिंश, एकान्नत्रिंशत्तम	एकान्नत्रिंशी, एकान्नत्रिंशत्तमी
या		
एकान्नत्रिंशत्		

---

१. विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ।५।२।५६॥ विंशति इत्यादि शब्दों में पूरण के अर्थ में विकल्प से तमट् प्रत्यय जुड़ता है। डट् तो जुड़ता ही है। इस प्रकार इनके दो-दो रूप होंगे—विंशः—विंशतितमः, त्रिंशः, त्रिंशत्तमः इत्यादि।

३० त्रिंशत्	त्रिंश, त्रिंशत्तम	त्रिंशी, त्रिंशत्तमी
३१ एकत्रिंशत्	एकत्रिंश, एकत्रिंशत्तम	एकत्रिंशी, एकत्रिंशत्तमी
३२ द्वात्रिंशत्	द्वात्रिंश, द्वात्रिंशत्तम	द्वात्रिंशी, द्वात्रिंशत्तमी
३३ त्रयस्त्रिंशत्	त्रयस्त्रिंश, त्रयस्त्रिंशत्तम	त्रयस्त्रिंशी, त्रयस्त्रिंशत्तमी
३४ चतुस्त्रिंशत्	चतुस्त्रिंश, चतुस्त्रिंशत्तम	चतुस्त्रिंशी, चतुस्त्रिंशत्तमी
३५ पंचत्रिंशत्	पंचत्रिंश, पंचत्रिंशत्तम	पंचत्रिंशी, पंचत्रिंशत्तमी
३६ षट्त्रिंशत्	षट्त्रिंश, षट्त्रिंशत्तम	षट्त्रिंशी, षट्त्रिंशत्तमी
३७ सप्तत्रिंशत्	सप्तत्रिंश, सप्तत्रिंशत्तम	सप्तत्रिंशी, सप्तत्रिंशत्तमी
३८ अष्टात्रिंशत्	अष्टात्रिंश, अष्टात्रिंशत्तम	अष्टात्रिंशी, अष्टात्रिंशत्तमी
३९ नवत्रिंशत्	एकोनचत्वारिंश	एकोनचत्वारिंशी
या		
एकोनचत्वारिंशत्	एकोनचत्वारिंशत्तम	एकोनचत्वारिंशत्तमी
या		
ऊनचत्वारिंशत्	ऊनचत्वारिंश, ऊनचत्वारिंशत्तम	ऊनचत्वारिंशी, ऊनचत्वारिंशत्तमी
या		
एकान्नचत्वारिंशत्	एकान्नचत्वारिंश, एकान्नचत्वारिंशत्तम	एकान्नचत्वारिंशी एकान्नचत्वारिंशत्तमी
४० चत्वारिंशत्	चत्वारिंश, चत्वारिंशत्तम	चत्वारिंशी, चत्वारिंशत्तमी
४१ एकचत्वारिंशत्	एकचत्वारिंश एकचत्वारिंशत्तम	एकचत्वारिंशी, एकचत्वारिंशत्तमी
४२ द्वाचत्वारिंशत्	द्वाचत्वारिंश, द्वाचत्वारिंशत्तम	द्वाचत्वारिंशी, द्वाचत्वारिंशत्तमी
या		
द्विचत्वारिंशत्	द्विचत्वारिंश द्विचत्वारिंशत्तम	द्विचत्वारिंशी, द्विचत्वारिंशत्तमी
४३ त्रयश्चत्वारिंशत्	त्रयश्चत्वारिंश, त्रयश्चत्वारिंशत्तम	त्रयश्चत्वारिंशी, त्रयश्चत्वारिंशत्तमी
या		
त्रिचत्वारिंशत्	त्रिचत्वारिंश, त्रिचत्वारिंशत्तम	त्रिचत्वारिंशी, त्रिचत्वारिंशत्तमी
४४ चतुश्चत्वारिंशत्	चतुश्चत्वारिंश, चतुश्चत्वारिंशत्तम	चतुश्चत्वारिंशी, चतुश्चत्वारिंशत्तमी
४५ पञ्चचत्वारिंशत्	पञ्चचत्वारिंश, पञ्चचत्वारिंशत्तम	पञ्चचत्वारिंशी, पञ्चचत्वारिंशत्तमी

४६ षट्चत्वारिंशत्	षट्चत्वारिंश, षट्चत्वारिंशत्तम	षट्चत्वारिंशी, षट्चत्वारिंशत्तमी
४७ सप्तचत्वारिंशत्	सप्तचत्वारिंश, सप्तचत्वारिंशत्तम	सप्तचत्वारिंशी, सप्तचत्वारिंशत्तमी
४८ अष्टाचत्वारिंशत्	अष्टाचत्वारिंश, अष्टाचत्वारिंशत्तम	अष्टाचत्वारिंशी, अष्टाचत्वारिंशत्तमी
या		
अष्टचत्वारिंशत्	अष्टचत्वारिंश, अष्टचत्वारिंशत्तम	अष्टचत्वारिंशी, अष्टचत्वारिंशत्तमी
४९ नवचत्वारिंशत्	नवचत्वारिंश, नवचत्वारिंशत्तम	नवचत्वारिंशी, नवचत्वारिंशत्तमी
या		
एकोनपञ्चाशत्	एकोनपञ्चाश, एकोनपञ्चाशत्तम	एकोनपञ्चाशी, एकोनपञ्चाशत्तमी
या		
ऊनपंचाशत्	ऊनपञ्चाश, ऊनपञ्चाशत्तम	ऊनपञ्चाशी, ऊनपंचाशत्तमी
या		
एकान्नपंचाशत्	एकान्नपंचाश, एकान्नपञ्चाशत्तम	एकान्नपंचाशी, एकान्नपंचाशत्तमी
५० पंचाशत्	पंचाश, पंचाशत्तम	पंचाशी, पंचाशत्तमी
५१ एकपंचाशत्	एकपंचाश, एकपंचाशत्तम	एकपंचाशी, एकपंचाशत्तमी
५२ द्वापंचाशत्	द्वापंचाश, द्वापंचाशत्तम	द्वापञ्चाशी, द्वापंचाशत्तमी
या		
द्विपंचाशद्	द्विपंचाश, द्विपंचाशत्तम	द्विपंचाशी, द्विपंचाशत्तमी
५३ त्रयः पंचाशत्	त्रयः पंचाश, त्रयःपंचाशत्तम	त्रयःपंचाशी, त्रयः पंचाशत्तमी
या		
त्रिपंचाशत्	त्रिपंचाश, त्रिपंचाशत्तम	त्रिपंचाशी, त्रिपंचाशत्तमी
५४ चतुःपंचाशत्	चतुःपंचाश, चतुःपंचाशत्तम	चतुः पंचाशी, चतुःपंचाशत्तमी
५५ पंचपंचाशत्	पंचपंचाश, पंचपंचाशत्तम	पंचपंचाशी, पंचपंचाशत्तमी
५६ षट्पंचाशत्	षट्पंचाश, षट्पंचाशत्तम	षट्पंचाशी, षट्पंचाशत्तमी
५७ सप्तपञ्चाशत्	सप्तपञ्चाश, सप्तपञ्चाशत्तम	सप्तपञ्चाशी, सप्तपञ्चाशत्तमी
५८ अष्टापञ्चाशत्	अष्टापञ्चाश, अष्टापञ्चात्तशम	अष्टापञ्चाशी, अष्टापञ्चाशत्तमी
या		
अष्टपञ्चाशत्	अष्टपञ्चांश, अष्टपञ्चाशत्तम	अष्टपञ्चाशी, अष्टपञ्चाशत्तमी
५९ नवपञ्चाशत्	नवपञ्चाश, नवपञ्चाशत्तम	नवपञ्चाशी, नवपञ्चाशत्तमी

या		
एकोनषष्टि	एकोनषष्ट, एकोनषष्टितम	एकोनषष्टी, एकोनषष्टितमी
या		
ऊनषष्टि	ऊनषष्ट, ऊनषष्टितम	ऊनषष्टी, ऊनषष्टितमी
या		
एकान्नषष्टि	एकान्नषष्ट, एकान्नषष्टितम	एकान्नषष्टी, एकान्नषष्टितमी
६० षष्टि	षष्टितम	षष्टितमी
६१ एकषष्टि	एकषष्ट, एकषष्टितम	एकषष्टी, एकषष्टितमी
६२ द्वाषष्टि	द्वाषष्ट, द्वाषष्टितम	द्वाषष्टी, द्वाषष्टितमी
या		
द्विषष्टि	द्विषष्ट, द्विषष्टितम	द्विषष्टी, द्विषष्टितमी
६३ त्रयष्षष्टि	त्रयष्षष्ट, त्रयःषष्टितम	त्रयष्षष्टी, त्रयःषष्टितमी
या		
त्रिषष्टि	त्रिषष्टि, त्रिषष्टितम	त्रिषष्टी, त्रिषष्टितमी
६४ चतुष्षष्टि	चतुष्षष्ट, चतुष्षष्टितम	चतुष्षष्टी, चतुष्षष्टितमी
६५ पञ्चषष्टि	पञ्चषष्ट, पञ्चषष्टितमी	पञ्चषष्टी, पञ्चषष्टितमी
६६ षट्षष्टि	षट्षष्ट, षट्षष्टितमी	षट्षष्टी, षट्षष्टितमी
६७ सप्तषष्टि	सप्तषष्ट, सप्तषष्टितम	सप्तषष्टी, सप्तषष्टितमी
६८ अष्टाषष्टि	अष्टाषष्ट, अष्टाषष्टितम	अष्टाषष्टी, अष्टाषष्टितमी
या		
अष्टषष्टि	अष्टषष्ट, अष्टषष्टितम	अष्टषष्टी, अष्टषष्टितमी
६९ नवषष्टि	नवषष्ट, नवषष्टितम	नवषष्टी, नवषष्टितमी
या		
एकोनसप्तति	एकोनसप्तत, एकोनसप्ततितम	एकोनसप्तती, एकोनसप्ततितमी
या		
ऊनसप्तति	ऊनसप्तति, ऊनसप्ततितम	ऊनसप्तती, ऊनसप्ततितमी
या		
एकान्नसप्तति	एकान्नसप्तत, एकान्नसप्ततितम	एकान्नसप्तती, एकान्नसप्ततितमी
७० सप्तति	सप्तत, सप्ततितम	सप्तती, सप्ततितमी
७१ एकसप्तति	एकसप्तत, एकसप्ततितम	एकसप्तती, एकसप्ततितमी
७२ द्वासप्तति	द्वासप्तत, द्वासप्ततितम	द्वासप्तती, द्वासप्ततितमी
या		
द्विसप्तति	द्विसप्तत, द्विसप्ततितम	द्विसप्तती, द्विसप्ततितमी
७३ त्रयस्सप्तति	त्रयस्सप्तत, त्रयस्सप्ततितम	त्रयस्सप्तती, त्रयस्सप्ततितमी

या		
त्रिसप्तति	त्रिसप्तत, त्रिसप्ततितम	त्रिसप्तती, त्रिसप्ततितमी
७४ चतुस्सप्तति	चतुस्सप्तत, चतुस्सप्ततितम	चतुस्सप्तती, चतुस्सप्ततितमी
७५ पञ्चसप्तति	पञ्चसप्तत, पञ्चसप्ततितम	पञ्चसप्तती, पञ्चसप्ततितमी
७६ षट्सप्तति	षट्सप्तत, षट्सप्ततितम	षट्सप्तती, षट्सप्ततितमी
७७ सप्तसप्तति	सप्तसप्तत, सप्तसप्ततितम	सप्तसप्तती, सप्तसप्ततितमी
७८ अष्टासप्तति	अष्टासप्तत, अष्टासप्ततितम	अष्टासप्तती, अष्टासप्ततितमी
या		
अष्टसप्तति	अष्टसप्तत, अष्टसप्ततितम	अष्टसप्तती, अष्टसप्ततितमी
७९ नवसप्तति	नवसप्तत, नवसप्ततितम	नवसप्तती, नवसप्ततितमी
या		
एकोनाशीति	एकोनाशीत, एकोनाशीतितम	एकोनाशीती, एकोनाशीतितमी
या		
एकान्नाशीति	एकान्नाशीत, एकान्नाशीतितम	एकान्नाशीती, एकान्नाशीतितमी
८० अशीति	अशीतितम	अशीतितमी
८१ एकाशीति	एकाशीत, एकाशीतितम	एकाशीती, एकाशीतितमी
८२ द्व्यशीति	द्व्यशीत, द्व्यशीतितम	द्व्यशीती, द्व्यशीतितमी
८३ त्र्यशीति	त्र्यशीत, त्र्यशीतितम	त्र्यशीती, त्र्यशीतितमी
८४ चतुरशीति	चतुरशीत, चतुरशीतितम	चतुरशीती, चतुरशीतितमी
८५ पंचाशीति	पंचाशीत, पंचाशीतितम	पंचाशीती, पंचाशीतितमी
८६ षडशीति	षडशीत, षडशीतितम	षडशीती, षडशीतितमी
८७ सप्ताशीति	सप्ताशीत, सप्ताशीतितम	सप्ताशीती, सप्ताशीतितमी
८८ अष्टाशीति	अष्टाशीत, अष्टाशीतितम	अष्टाशीती, अष्टाशीतितमी
८९ नवाशीति	नवाशीत, नवाशीतितम	नवाशीती, नवाशीतितमी
या		
एकोननवति	एकोननवत, एकोननवतितम	एकोननवती, एकोननवतितमी
या		
ऊननवति	ऊननवत, ऊननवतितम	ऊननवती, ऊननवतितमी
या		
एकान्ननवति	एकान्ननवत, एकान्ननवतितम	एकान्ननवती, एकान्ननवतितमी
९० नवति	नवत, नवतितम	नवती नवतितमी
९१ एकनवति	एकनवत, एकनवतितम	एकनवती, एकनवतितमी
९२ द्वानवति	द्वानवत, द्वानवतितम	द्वानवती, द्वानवतितमी

या		
द्विनवति	द्विनवत, द्विनवतितम	द्विनवती, द्विनवतितमी
९३ त्रयोनवति	त्रयोनवत, त्रयोनवतितम	त्रयोनवती, त्रयोनवतितमी
या		
त्रिनवति	त्रिनवत, त्रिनवतितम	त्रिनवती, त्रिनवतितमी
९४ चतुर्नवति	चतुर्नवत, चतुर्नवतितम	चतुर्नवती, चतुर्नवतितमी
९५ पञ्चनवति	पञ्चनवत, पञ्चनवतितम	पञ्चनवती, पञ्चनवतितमी
९६ षण्णवति	षण्णवत, षण्णवतितम	षण्णवती, षण्णवतितमी
९७ सप्तनवति	सप्तनवत, सप्तनवतितम	सप्तनवती, सप्तनवतितमी
९८ अष्टानवति	अष्टानवत, अष्टानवतितम	अष्टानवती, अष्टानवतितमी
या		
अष्टनवति	अष्टनवत, अष्टनवतितम	अष्टनवती, अष्टनवतितमी
९९ नवनवति	नवनवत, नवनवतितम	नवनवती, नवनवतितमी
या		
एकोनशत (नपुं०)	एकोनशततम	एकोनशततमी
१०० शत	शततम	शततमी
२०० द्विशत	द्विशततम	द्विशततमी
३०० त्रिशत	त्रिशततम	त्रिशततमी
४०० चतुश्शत	चतुश्शततम	चतुश्शततमी
५०० पञ्चशत	पञ्चशततम	पंचशततमी
१००० सहस्र	सहस्रतम	सहस्रतमी

१००, ०० अयुत (नपुं०)

१००, ००० लक्ष (नपुं०) या लक्षा (स्त्री०)

दसलाख	'प्रयुत'	(नपुं०)
करोड़	'कोटि'	(स्त्री०)
दसकरोड़	'अर्बुद'	(नपुं०)
अरब	'अब्ज'	(नपुं०)
दसअरब	'खर्व'	(पुं०, नपुं०)
खरब	'निखर्व'	(पुं०, नपुं०)
दसखरब	'महापद्म'	(नपुं०)
नील	'शङ्कु'	(पुं०)
दसनील	'जलधि'	(पुं०)
पद्म	'अन्त्य'	(नपुं०)
दसपद्म	'मध्य'	(नपुं०)
शङ्ख	'परार्ध'	(नपुं०)

५०१	एकाधिकपञ्चशतम्	एकोत्तरपञ्चशतम्
	एकाधिकं पञ्चशतम्	एकोत्तरं पञ्चशतम् ।
५०२	द्व्यधिकपञ्चशतम्	द्व्युत्तरपंचशतम्
	द्व्यधिकं पञ्चशतम्	द्व्युत्तरं पंचशतम् ।
५०३	त्र्यधिकपंचशतम्	त्र्युत्तरपंचशतम्
	त्र्यधिकं पंचशतम्	त्र्युत्तरं पंचशतम् ।
५०४	चतुरधिकपंचशतम्	चतुरुत्तरपंचशतम्
	चतुरधिकं पंचशतम्	चतुरुत्तरं पंचशतम्
५०५	पंचाधिकपञ्चशतम्	पञ्चोत्तरपंचशतम्
	पंचाधिकम् पञ्चशतम्	पञ्चोत्तरं पंचशतम्
५०६	षडधिकपञ्चशतम्	षडुत्तरपञ्चशतम्
	षडधिकं पञ्चशतम्	षडुत्तरं पञ्चशतम्
५०७	सप्ताधिकपञ्चशतम्	सप्तोत्तरपञ्चशतम्
	सप्ताधिकं पञ्चशतम्	सप्तोत्तरं पञ्चशतम्
५०८	अष्टाधिकपञ्चशतम्	अष्टोत्तरपञ्चशतम्
	अष्टाधिकं पञ्चशतम्	अष्टोत्तरं पञ्चशतम्
५०९	नवाधिकपञ्चशतम्	नवोत्तरपञ्चशतम्
	नवाधिकं पञ्चशतम्	नवोत्तरं पञ्चशतम्
५१०	दशाधिकपञ्चशतम्	दशोत्तरपञ्चशतम्
	दशाधिकं पञ्चशतम्	दशोत्तरं पञ्चशतम्
५१७	सप्तदशाधिकपञ्चशतम्	सप्तदशोत्तरपञ्चशतम्
	सप्तदशाधिकं पञ्चशतम्	सप्तदशोत्तरं पञ्चशतम्
६००	षट्शतम्	
६२५	पञ्चविंशत्यधिकषट्शतम्	पञ्चविंशत्युत्तरषट्शतम्
	पञ्चविंशत्यधिकं षट्शतम्	पञ्चविंशत्युत्तरं षट्शतम्
६३७	सप्तत्रिंशदधिकषट्शतम्	सप्तत्रिंशदुत्तरषट्शतम्
	सप्तत्रिंशदधिकं षट्शतम्	सप्तत्रिंशदुत्तरं षट्शतम्

१३२५ पञ्चविंशत्यधिकत्रयोदशशतम्

या

पञ्चविंशत्यधिकत्रिशताधिकसहस्रम्

१९२८ अष्टाविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतम्

या

अष्टाविंशत्यधिकनवशताधिकसहस्रम्

५९६३७ सप्तत्रिंशदधिकषट्शताधिकनवसहस्राधिकपञ्चायुतम् ।

कुछ उदाहरण

१ अस्यां श्रेण्यां चत्वारिंशत् छात्राः सन्ति (इस कक्षा में ४० विद्यार्थी हैं।

२ पञ्चविंशत्यधिकत्रयोदशशतं जनानामुपस्थितम् (तेरह सौ पचीस मनुष्य उपस्थित हैं)

३—तत्र सप्तदशाधिकं पंचशतम् वानराणामुपस्थितम् (वहाँ ५१७ बन्दर हैं)

४—एकोनविंशतिशतोत्तरचतुःपञ्चाशत्तमेऽब्दे नवम्बरमासस्य त्रयोदश्यां तिथौ राजस्थानीयाः प्रजाजनाः स्वनेतृत्वाय श्रीमोहनलाल सुखाडिया महानुभावं मुख्यमंत्रित्वेनाचिन्वन्।

५—दिल्ल्यामिह राजकीयानामुच्चतरमाध्यमिकविद्यालयानां संख्यां शतोत्तरपञ्चाशत्काम् परिगणयन्ति तज्ज्ञाः।

६—चतुःशतोत्तराष्टानवतीनाम् संस्कृतविदुषां नामानि राष्ट्रीये गणनापत्रके पञ्जीकृतानि सन्ति।

संख्यावाचक शब्द और उनका प्रयोग

(क) एक शब्द एकवचनान्त है। यदि यह कतिपय अर्थ का वाचक होता है तो इसका प्रयोग बहुवचन में होता है। यथाः—एकः बालकः गच्छति (एक बालक जाता है) एके वदन्ति (कुछ लोग कहते हैं)।

(ख) 'त्रि' से लेकर 'अष्टादशन्' पर्यन्त संख्यावाची शब्द बहुवचनान्त होते हैं। यथाः—चत्वारः पुरुषाः (चार पुरुष)

(ग) एकत्व अर्थ के बोध होने पर ऊनविंशति (१९) से लेकर ऊपर तक जितने संख्यावाची शब्द हैं, उनका एकवचन में ही प्रयोग होता है। यथाः—ऊनविंशतिः बालकाः (उन्नीस लड़के)।

(घ) द्वित्व या बहुत्व अर्थ के बोध होने पर 'ऊनविंशति' या इससे ऊपर की संख्यायें क्रमशः द्विवचन, बहुवचन में रखी जाती हैं। यथा—विंशती बालकाः (दो बीस (४०) लड़के अर्थात् लड़कों की बीस २ की दो समष्टि)। विंशतयः बालकाः (लड़कों की बीस २ की तीन या तीन से अधिक समष्टि)।

(ङ) द्वि और उभ शब्द द्विवचनान्त होते हैं। परन्तु उभय शब्द द्विवचन के अर्थ का बोधक होने पर भी एकवचन तथा बहुवचन में प्रयुक्त होता है। यथाः—द्वौ बालकौ (दो लड़के)। उभौ (दो पुरुष)।

(च) द्वय, द्वितय, युगल, युग, द्वन्द्व आदि शब्द द्वित्व अर्थ का बोध कराते हैं। परन्तु इनका प्रयोग नित्य एकवचन ही में होता है। यथाः—रूप्यकद्वयम् अस्ति (दो रुपये हैं) वस्त्रयुगलम् ददाति (दो-एक जोड़ा) कपड़ा देता है)।

(छ) त्रय, त्रितय, चतुष्टय, चतुष्क, वर्ग, गण, समूह आदि शब्द एकवचन में प्रयुक्त होकर समुदाय अर्थ का बोध कराते हैं। यथाः—मुनित्रयं नमस्कृत्य (तीन समुदित) मुनियों को प्रणाम कर)।

(ज) नित्यस्त्रीलिङ्ग संख्यावाचक त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत् (चालीस), पञ्चाशत् (पचास) तथा 'शत्' में अन्त होने वाले अन्य संख्यावाची शब्दों के रूप 'सरित्' के समान चलते हैं।

(झ) नित्य स्त्रीलिङ्ग षष्टि (साठ), सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नब्बे) इत्यादि समस्त इकारान्त संख्यावाची शब्दों के रूप 'विंशति' के अनुसार रुचि के समान चलते हैं।

(ञ) शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, अर्बुद, अब्ज, महापद्म, अन्त्य, मध्य, परार्ध शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग में होते हैं और इनके रूप फल के समान तीनों वचनों में चलते हैं।

(ट) 'लक्षा' के रूप विद्या के समान और 'कोटि' के रूप रुचि के समान चलते हैं।

(ठ) 'खर्व' और 'निखर्व' पुंल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग दोनों होते हैं। पुं० के रूप बालक के समान और नपुं० के रूप फल के समान चलते हैं। 'जलधि' के रूप 'कवि' के समान तथा शङ्कु के रूप 'भानु के समान चलते हैं।

(ड) १२५, ११०६ आदि बीच की संख्याओं के लिए विशेष उपाय से काम लिया जाता है जो कि निम्नलिखित हैं:—

सौ या सहस्र लक्ष के पूर्व 'अधिक' या उत्तर शब्द जोड़ दिया जाता है। यथा—एकसौ पैंतीस मनुष्य उपस्थित हैं—पञ्चत्रिंशदधिकं शतं मनुष्याणामुपस्थितम्। अथवा पञ्चत्रिंशदुत्तरं शतम्................... ।

दो सौ इकतालीस आदमियों के ऊपर जुर्माना लगाया गया और तीन सौ उनसठ को सजा हुई—मनुष्याणामेकचत्वारिंशदधिकयोः शतयोः (एकचत्वारिंशदुत्तरयोः शतयोः वा , उपरि अर्थदण्डः आदिष्टः, एकोनशष्ट्यधिकानां त्रयाणां शतनामुपरि कायदण्डः। इसी प्रकार 'अधिक' और 'उत्तर' शब्द के योग से और भी संख्याएं बनाई जा सकती हैं।

२—यदा-कदा 'च' भी जोड़ा जाता है। यथा द्वेशते पञ्चत्रिंशच्च (२३५)।

३—कभी-कभी संख्याओं के बोलने में हम लोग दो कम दो सौ इत्यादि में 'कम' शब्द का प्रयोग करते हैं। संस्कृत में इस 'कम' शब्द का बोधक 'ऊन' शब्द जोड़ा जाता है। यथा—

दो कम दो सौ—द्व्यूने शते, द्व्यूनं शतद्वयं द्व्यूनशतद्वयी आदि।

(ढ) यदि आयु का परिमाण सूचित करना हो तो संख्यावाचक शब्द के आगे वर्षीय, वार्षिक, वर्षीण और वर्ष का प्रयोग किया जाता है। यथा—षोडशवर्षीयः कृष्णः (सोलहवर्ष का कृष्ण), अशीतिवर्षस्य (अस्सी वर्ष को उम्र वाले को) इत्यादि।

(ण) यदि 'लगभग दो वर्ष का' इस प्रकार का आयु का परिमाण सूचित करना हो तो 'वर्षदेशीय' यह पद संख्या के बाद प्रयुक्त किया जाता है। यथा—सप्तवर्षदेशीयः श्रीकृष्णः (श्री कृष्ण की आयु लगभग ७ वर्ष की है)।

(त) पूरणार्थक संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग करने के लिए द्वि, त्रि शब्दों के आगे 'तीय' चतुर् और षष् के आगे 'थुक्' पञ्चन् से दशन् तक शब्दों के आगे 'म',

एकादशन् से अष्टादशन् तक शब्दों के आगे 'डट्' और विंशति से आगे की समस्त संख्याओं के आगे 'तमट्' प्रत्यय लगाया जाता है। यथा—अस्यां श्रेण्यां स पञ्चमः (इस श्रेणी में वह पाँचवाँ है)।

हिन्दी में अनुवाद करो

१—अस्मिन् यातुके संघर्षे षट्पञ्चाशत् जनाः मृता इति तज्ज्ञाः कथयन्ति।

२—इतः पञ्चदश वर्षाणि प्राक् भारतीये संविधाने हिन्द्याः राजभाषात्वं विहितमासीत्।

३—भारते संस्कृतस्य यावन्तो विद्वांसः सन्ति तेषु केवलम् अशीतिः वेदपाठिनः सन्ति।

४—काशीविश्वविद्यालये पञ्चसप्ततिछात्रेभ्यः परितोषिकाणि वितीर्णानि।

५—जनयात्रायां सहस्रं जनाः सन्ति।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—ब्रह्मरूपी वृषभ के चार सींग (चत्वारि शृङ्गाणि) और तीन पैर हैं। (२) बाल्य, कौमार, यौवन और वार्धक चार (चतस्रः) अवस्थाएँ हैं। ३—वहाँ भीड़ में ५० आदमी घायल हुए (आहताः) और १५ मर गये (हताः) ४—घायल और मृतों की संख्या ६५ है। ५—लखनऊ विश्वविद्यालय में ५ हजार विद्यार्थी हैं। ६—वह अपनी कक्षा में प्रथम रहा। ७—श्लोक में पंचम अक्षर सदा लघु होता है, द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम लघु, षष्ठ सदा गुरु होता है। ८—देश की रक्षा के लिए हजारों स्त्रियाँ जेल गईं। ९—मैं एक मास बाद काशी जाऊँगा। १०—नित्य स्नान करने वाले को दस गुण प्राप्त होते हैं।

विशेषण (आवृत्तिवाचक)

संस्कृत में 'दुगुना' 'तिगुना आदि आवृत्तिसूचक शब्दों के लिए संख्या शब्द के आगे 'गुण' या 'गुणित' शब्दों को जोड़ दिया जाता है किन्तु आवृत्तिवाचक शब्दों पर 'आवृत्त' या 'आवर्तित' भी जोड़ दिया जाता है। यथा—मोहनो व्यापारे द्विगुणं धनं लेभे (मोहन को व्यापार में दूना धन मिला)।

अस्य प्रासादस्य उच्चता तस्मात् त्रिगुणा (इस प्रासाद की ऊँचाई उसकी अपेक्षा तिगुनी है)।

तपस्विनः त्रिगुणां मौञ्जीं मेखलां धारयन्ति (तपस्वी तिहरी मूँज की तड़ागी बांधते हैं)।

दुष्टः धनं कोटिगुणं अधिकम् अर्जयतु परं न कीर्तिम् (दुष्ट करोड़ गुना धन कमाले पर यश नहीं)।

अस्मिन् नगरे चत्वारिंशद्गुणा अधिकाः मनुष्याः जाताः (इस नगर में चालीस गुने अधिक मनुष्य हो गए)।

इयम् अजा द्विरावृत्तया रज्ज्वा बद्धा (यह बकरी दुहरी रस्सी से बंधी है)।

विशेषण (समुदाय-बोधक)

यदि 'दोनों', 'चारों' आदि समुदायवाचक शब्दों का अनुवाद करना हो तो संख्यावाचक शब्द के आगे 'अपि' जोड़ दिया है। यथा—

किं द्वावपि बालकौ गतौ ? (क्या दोनों बालक गए ?)

अस्मिन् प्रकोष्ठे पञ्चत्रिंशदपि छात्राः पठनाय शक्नुवन्ति (इस प्रकोष्ठ में पैंतीस छात्र पढ़ सकते हैं।

अष्टावपि बालकाः पलायिताः (आठों बालक भाग गए)।

विशेषण (विभागबोधक)

'हर एक' या 'सब' आदि शब्दों का अनुवाद करने के लिए संस्कृत में 'सर्व या 'सकल' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यथा—

अस्याः कक्षायाः सर्वे छात्राः पटवः सन्ति (इस कक्षा में सभी पटु हैं)।

प्रतिदिनं पठितुं पाठशालामागच्छ (प्रतिदिन पढ़ने के लिए विद्यालय आया करो)।

विशेषण (अनिश्चित-संख्यावाचक)

एक शब्द द्वारा—एकः सिंहो न्यवसत्।

किम् चित् शब्दों द्वारा—कस्मिंश्चिद् वने एकः सिंहो न्यसवत्। काचित् नदी आसीत्।

एक तथा अपर शब्दों द्वारा—एकः उत्तीर्णः अपरोऽनुत्तीर्णः।

एक तथा अन्य शब्दों द्वारा—एकः पठति अन्यो हसति।

परस्पर, अन्योन्य शब्दों द्वारा—दुष्टाः नराः परस्परं (अन्योऽन्यम्) कलहायन्ते।

इसी प्रकार सर्व, समस्त, बहु, अनेक, कतिपय आदि शब्दों के द्वारा भी।

विशेषण (परिमाणवाचक)

तोल के शब्द

तोलकः—तोला। माषकः—माशा। रक्तिका—रत्ती। षट्टङ्कः—छटाँक। पादः—पाव।

माप के शब्द

हस्तः—हाथ। पादः—फुट। वितस्तिः—बालिश्त। अङ्गुलम्—अंगुल।

मूल्यवाचक शब्द

वराटकः, वराटिका—कौड़ी। पादिका—पाई। पणः (पणकः)—पैसा। आणः (आणकः)—आना। रूप्यकम्—रुपया। निष्क—सोने की मुहर।

समयबोधक शब्द

पलम्—पल। क्षणः—दिन। प्रहरः—पहर। अहोरात्रः—एक दिन। सप्ताहः—एक हफ्ता। पक्षः—पाख। मासः—महीना।

कुछ (मील, गज आदि) शब्दों के लिए संस्कृत में शब्द नहीं मिलते, अतएव अनुवाद में उन्हीं का प्रयोग किया जाता है। यथा—

त्रीणि औंसानि टिंचर—आयोडीनम्।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—इस घर की ऊँचाई उस घर से दुगुनी है। २—दोहरी रस्सी में ग्वालों ने पशुओं को बांधा। ३—मुझे संस्कृत के पर्चे में सौ में सत्तर अङ्क मिले। ४—लाखों टन गेहूँ अमेरिका से भारत आया। ५—बारहवीं कक्षा में इस वर्ष वह प्रथम रहा। ६—कुतुबमीनार के बनाने में कुतुबुद्दीन ने लाखों रूपये खर्च किये। ७—लखनऊ फैजाबाद से अस्सी मील दूर है। ८—यह तो उसका दसवां भाग भी नहीं है। ९—कुछ लोग स्वभाव से घमण्डी होते हैं। १०—रोगी के लिए एक औंस दवा खरीद लो। ११—आजकल रूपये के पाव भर गेहूँ मिलते हैं। १२—मैं दिन में आठ बजे तक अध्ययन करता हूँ। १३—इस प्याले में पाव भर शराब आती है। १४—आज रात को घर में कोई चोर घुसा था। १५—पचासों सिपाही युद्ध में मारे गए।

सर्वनाम विशेषण

पहिले बताये गए सर्वनामों में से इदम्, एतद्, तद्, अदस्, यद्, किम् तथा अनिश्चयवाचक एवं निश्चयवाचक सर्वनाम सभी का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है। यथा—अयं पुरुषः, एषा नारी, एतच्छरीरं, ते भृत्याः, अमीजनाः, यो विद्यार्थी, का नारी, तस्मिन्नेव ग्रामे इत्यादि।

इसका, उसका, मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा, जिसका आदि सम्बन्धसूचक भाव दिखाने के लिए संस्कृत में दो तरीके हैं, एक तो इदम्, तद्, अस्मद् आदि को षष्ठी विभक्ति के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं, यथा मम गृहं, तव पिता, अस्य प्रबन्धः आदि। दूसरे इन शब्दों में कुछ प्रत्यय जोड़कर इनसे विशेषण बनाकर उनको अन्य विशेषणों के अनुसार प्रयुक्त किया जाता है। ये विशेषण छ, अण् तथा खञ् प्रत्ययों को जोड़कर बनाए जाते हैं। युष्मद्[1] एवं अस्मद् में विकल्प से खञ् और छ प्रत्यय भी जोड़े जाते हैं। छ को ईय आदेश हो जाता है। छ प्रत्यय के जुड़ने पर अस्मद् के स्थान में मद् और अस्मत्, तथा युष्मद् के स्थान में त्वत् और युष्मद् हो जाते हैं। इन प्रत्ययों के अतिरिक्त युष्मद् और अस्मद् में अण् प्रत्यय भी जुड़ता है। खञ् और अण् प्रत्यय के लगने पर अस्मद् और युष्मद् के स्थान में एकवचन[2] में ममक और तवक एवं बहुवचन[3] में अस्माक और युष्माक आदेश होते हैं। खञ् का ईन हो जाता है।

अस्मद् शब्द से बने हुए विशेषण

पुँल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

१—छ	प्रत्यय—मदीय	(मेरा) और अस्मदीय	(हमारा)
२—अण्	प्रत्यय—मामक	(„) और आस्माक	(„)
३—खञ्	प्रत्यय—मामकीन	(„) और आस्माकीन	(„)

---

१. युष्मदस्मदोरन्तरस्यां खञ्च ४।३।१।

२. तवकममकावेकवचने ४।३।३।

३. तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४।३।०।

स्त्रीलिङ्ग

१—छ प्रत्यय—मदीया (मेरी) और अस्मदीया (हमारी)
२—अण् प्रत्यय—मामिका (,,) और आस्माकी (,,)
३—खञ् प्रत्यय—मामकीना (,,) और आस्माकीना (,,)

युष्मद् शब्द से बने हुए विशेषण

पुंल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

१—छ प्रत्यय—त्वदीय (तेरा) और युष्मदीय (तुम्हारा)
२—अण् प्रत्यय—तावक (,,) और यौष्माक (,,)
३—खञ् प्रत्यय—तावकीन (,,) और यौष्माकीण (,,)

स्त्रीलिङ्ग

१ छ प्रत्यय—त्वदीया (तेरी) और युष्मदीया (तुम्हारी)
२ अण् प्रत्यय—तावकी (,,) और यौष्माकी (,,)
३ खञ् प्रत्यय—तावकीना (,,) और यौष्माकीणा (,,)

तद् शब्द से—
पुं० तथा नपुं०—तदीय (उसका) स्त्रीलिङ्ग-तदीया (उसकी)

यद् शब्द से—
पुं० तथा नपुं०—यदीय (जिसका) स्त्रीलिङ्ग-यदीया (जिसकी)

इनमें जो अकारान्त हैं उनके रूप बालक (पुं०) तथा फल (नपुं०) के समान और जो आकारान्त एवं ईकारान्त हैं उनके रूप विद्या और नदी के समान (सब विभक्तियों और सब वचनों में) चलते हैं। अन्य विशेषणों के समान इनके भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार होते हैं।

यथा—
यदीया सम्पत्तिः तदीयं स्वत्वम्।
त्वदीयानामश्वानां युद्धे नास्ति काऽपि आवश्यकता।

अस्मद्, युष्मद् आदि की षष्ठी के रूपों के सम्बन्ध में यह नियम नहीं लागू होता। वे विशेष्य के अनुसार नहीं परिवर्तित होते। यथा—अस्य गृहम्, अस्य भ्राता, अस्य मतिः इत्यादि।

'ऐसा', 'जैसा' आदि शब्दों द्वारा बोधित 'प्रकार' के अर्थ के लिए संस्कृत में तद्, अस्मद्, युष्मद् आदि शब्दों में प्रत्यय जोड़कर तादृश आदि शब्द बनते हैं और विशेषण होते हैं। अन्य विशेषणों की भाँति इनकी, विभक्ति, लिङ्ग, वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं। ये शब्द निम्नलिखित हैं—

अस्मद् शब्द से

पुँल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

१ क्विन् प्रत्यय—मादृश् (मुझ सा) अस्मादृश् (हमारा सा)
२ कञ्[1] प्रत्यय—मादृश (मुझ सा) अस्मादृश (हमारा सा)

स्त्रीलिङ्ग

मादृशी (मुझ सी) अस्मादृशी (हमारी सी)

युष्मद् शब्द से—

पुँल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

१ क्विन् प्रत्यय—त्वादृश् (तुझ सा) युष्मादृश् (तुम्हारा सा)
२ कञ् प्रत्यय—त्वादृश (,, ,,) युष्मादृश (,, ,,)

स्त्रीलिङ्ग

त्वादृशी (तुझ सी) युष्मादृशी (तुम्हारी सी)

तद् शब्द से—

पुँल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग	स्त्री०
तादृश् (वैसा, तैसा)	तादृशी (वैसी, तैसी)
तादृश (,, ,,)	

इदम् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
ईदृश् (ऐसा)	ईदृशी (ऐसी)
ईदृश (,,)	

एतद् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
एतादृश् (ऐसा)	एतादृशी (ऐसी)
एतादृश (,,)	

यद् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०	स्त्री लिङ्ग
यादृश् (जैसा)	यादृशी (जैसी)
यादृश (,,)	

किम् शब्द से—

---

१. त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ।३।२।६०। अर्थात् यदि त्यद्, तद्, युष्मद्, अस्मद्, यद्, किम् इत्यादि शब्दों के आगे दृश् धातु हो और देखने का अर्थ न हो, तो कञ् प्रत्यय जुड़ता है और तुल्य अथवा समान का अर्थ प्रकट करता है। 'क्सोऽपि वाच्यः' इस वार्तिक से इसी अर्थ में दृश् धातु के आगे क्सः भी जुड़ता है, यथा-अस्मादृक्ष, तादृक्ष, ईदृक्ष आदि। 'आ सर्वनाम्नः' इस नियम से त्वत्, अस्मत्, मत्, तत् इत्यादि का क्रमशः त्वा, अस्मा, मा, ता इत्यादि हो जाता है।

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
कीदृश् (कैसा)	कीदृशी (कैसी)
कीदृश (,,)	

भवत् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
भवादृश् (आप सा)	भवादृशी (आप सी)
भवादृश (,, ,,)	

विशेषण (गुणवाचक)

जिससे जाति, गुण, क्रिया, व्यक्ति या वस्तु जानी जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। जिससे विशेष्य के गुण, विशेषता अथवा अवस्था का ज्ञान हो उसे 'विशेषण' कहते हैं। कतिपय स्थलों के अतिरिक्त कभी भी विशेष्य के अभाव में विशेषण प्रयुक्त नहीं होता है। जहां केवल विशेषण प्रयुक्त होता है, वहां भी विशेष्य या तो छिपा (Understood) रहता है, या विशेषण विशेष्य का स्थानापन्न हो जाता है। संस्कृत में सामान्यतः विशेष्य का जो लिङ्ग, विभक्ति और वचन होता है, विशेषण का भी वही लिङ्ग, विभक्ति और वचन होता है।

"यल्लिङ्गं यद्वचनं या च विभक्तिर्विशेष्यस्य।
तल्लिङ्गं तद्वचनं सैव विभक्तिर्विशेषणस्यापि॥

सुन्दरः बालकः (सुन्दर लड़का), सुन्दरौ बालकौ (दो सुन्दर लड़के), सुन्दराः बालकाः (अनेक सुन्दर लड़के)। इन वाक्यों में विशेष्य 'बालक' पुं० प्रथमा विभक्ति के क्रमशः ए० व०, द्वि० व०, ब० व० में हैं अतएव विशेषणवाची 'सुन्दर' इसके साथ क्रमशः पुं० प्रथमा वि० ए० व०, द्वि० व०, और ब० व० रूप में आया है। इसी प्रकार स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग शब्दों के उदाहरणों में भी समझना चाहिए। यथा—

सुन्दरी कन्या, सुन्दर्यौ कन्ये, सुन्दर्यः कन्याः।	(स्त्री०)
सुन्दरम् पुस्तकम् , सुन्दरे पुस्तके, सुन्दराणि पुस्तकानि।	(नपुं०)
शोभनः बालकः, शोभनौ बालकौ, शोभनाः बालकाः	(पुं०)
शोभना स्त्री, शोभने स्त्रियौ, शोभनाः स्त्रियः	(स्त्री०)
शोभनं गृहम् , शोभने गृहे, शोभनानि गृहाणि	(नपुं०)
दुष्टः जनः, दुष्टौ जनौ, दुष्टाः जनाः	(पुं०)
दुष्टा बालिका, दुष्टे बालिके, दुष्टाः बालिकाः	(स्त्री०)
दुष्टं जलम् , दुष्टे जले, दुष्टानि जलानि	(नपुं०)

संस्कृत में अनुवाद करो

१—किसी दरिद्र ब्राह्मण को वस्त्र दो। २—विधि का विधान विचित्र है। ३—पवित्र जलवाली सरयू के किनारे अयोध्या स्थित है। ४—किसी सघन वन में एक भालू

रहता था। ५—क्या तुम ठण्डा शर्बत पीना चाहते हो। ६—सरोवर में सुन्दर कमल खिले हैं। ७—उन पर काले भौरे गुञ्जार कर रहे हैं। ८—इसका हृदय कोमल है। ९—लाल एवं पीले कमलों से युक्त यह सरोवर लगता है। १०—मेरी पुस्तक अच्छी है। ११—इस कन्या के नेत्र अत्यन्त चञ्चल हैं। १२—लाल कुत्ता काले कुत्ते के पीछे दौड़ रहा है। १३—यमराज का हृदय अत्यन्त कठोर है क्योंकि वह सभी को समाप्त कर देता। १४—पूज्य गुरु को नमस्कार करो। १५—बालक गर्म दूध पीता हैं, खट्टी छांछ (तक्रम्) नहीं।

विशेषण (तुलनात्मक)

तुलनात्मक विशेषण में दो की तुलना करके उनमें में एक की अधिकता या न्यूनता दिखाई जाती है। तुलना द्वारा दो[1] में से एक का अतिशय दिखाने के लिए विशेषण में तरप् (तर) या ईयसुन और दो से अधिक[2] में से एक का अतिशय दिखाने के के लिए तमप् (तम) अथवा इष्ठन् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। किन्तु ईयसुन् और इष्ठन् गुणवाचक[3] विशेषणों के बाद ही जोड़े जाते हैं, जब कि तरप् तथा तमप् इनके अतिरिक्त अन्य विशेषणों में भी। तरप् और तमप् प्रत्यय के कुछ उदाहरण निम्न हैं—

पटु	पटुतर,	पटुतम
निकृष्ट	निकृष्टतर,	निकृष्टतम
कुशल	कुशलतर,	कुशलतम
गुरु	गुरुतर,	गुरुतम
लघु	लघुतर,	लघुतम
महत्	महत्तर,	महत्तम
पाचक	पाचकतर,	पाचकतम
विद्वस्	विद्वत्तर,	विद्वत्तम

इन उपर्युक्त परिवर्तित विशेषणों के रूप विशेष्य के ही अनुसार होते हैं।

जहाँ तरप् अथवा ईयसुन् एवं तमप् अथवा इष्ठन् दोनों जोड़ने की अनुमति है, वहाँ ईयसुन् और इष्ठन् जोड़ना अपेक्षाकृत अधिक मुहावरेदार माना जाता है। इन दो प्रत्ययों के पूर्व, विशेषण के अन्तिम स्वर और उसके उपरान्त यदि कोई व्यञ्जन हो तो उसका भी लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ—

पटु	पटीयस्,	पटिष्ठ
घन	घनीयस्,	घनिष्ठ
बहुल	बंहीयस्,	बंहिष्ठ
कृश	क्रशीयस्,	क्रशिष्ठ

---

१. द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७।

२. अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५।

३. अजादी गुणवचनादेव ५।३।५८।

ऋदु	म्रदीयस्	म्रदिष्ठ
अल्प	अल्पीयस्, कनीयस्,	अल्पिष्ठ, कनिष्ठ
निकट	नेदीयस्,	नेदिष्ठ
उरु	वरीयस्,	वरिष्ठ
ह्रस्व	ह्रसीयस्,	ह्रसिष्ठ
युवन्	यवीयस्, कनीयस्,	यविष्ठ; कनिष्ठ

१—युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ।५।३।६४। युवन् तथा अल्प शब्दों के स्थान में विकल्प से कन् आदेश हो जाता है।

प्रिय[1]	प्रेयस्,	प्रेष्ठ
क्षिप्र[2]	क्षेपीयस्,	क्षेपिष्ठ
दूर	दवीयस्,	दविष्ठ
दृढ	द्रढीयस्,	द्रढिष्ठ
तृप्र	त्रपीयस्,	त्रपिष्ठ
प्रशस्य[3]	श्रेयस्, ज्यायस्,	श्रेष्ठ, ज्येष्ठ
क्षुद्र	क्षोदीयस्	क्षोदिष्ठ
वृद्ध[4]	ज्यायस्, वर्षीयस्,	ज्येष्ठ, वर्षिष्ठ
बहु[5]	भूयस्,	भूयिष्ठ

१. प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रप्द्राघिवृन्दाः ६।४।१५७। प्रिय के स्थान में प्र, स्थिर के स्थान में स्थ, स्फिर के स्फ, उरु के वर्, बहुल के बंहि, गुरु के गर्, वृद्ध के वर्षि, तृप्र के त्रप्, दीर्घ के द्राघि एवं वृन्दारक के स्थान में वृन्द हो जाता है।

२. स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ।६।४।१५६। सूत्रोक्त शब्दों में परवर्त्ती य, र, ल, व का लोप हो जाता है और पूर्व के स्वर का गुण हो जाता है।

३. प्रशस्य श्रः ५।३।६०। से प्रशस्य को 'श्र' आदेश हो जाता है। इस प्रकार श्रेयस् और श्रेष्ठ रूप बनते हैं। फिर 'ज्य च' ५।३।६१। के अनुसार 'ज्य' भी आदेश होता है। अतएव ज्यायस् और ज्येष्ठ भी रूप बन जायँगे।

४. वृद्धस्य च ५।३।६२। ईयसुन् और इष्ठन् जुड़ने पर वृद्धशब्द के स्थान में भी 'ज्य' हो जाता है। 'पुनश्च, ज्यादादीयसः' ६।४।१६०। के अनुसार 'ज्य' के अनन्तर ईयसुन् के ईकार का आकार हो जाता है। इस प्रकार वृद्ध + ईयस् = ज्य + ईयस् = ज्य + आयस् = ज्यायस् शब्द बना।

५. बहोर्लोपो भू च बहोः ६।४।१५८। ईयसुन् और इष्ठन् जुड़ने पर बहु को 'भू' आदेश हो जाता है और उसके पश्चात् आने वाले ईयसुन् के ईकार का लोप हो जाता है। इसी प्रकार 'इष्ठस्य यिट् च' ।६।४।१५९। के अनुसार बहु के पश्चात् आने वाले इष्ठन् के इकार का भी लोप हो जाता है। और उसके स्थान में 'यि' का आगम होता है।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—राम सब भाइयों में छोटा है। २—गेटे जर्मन साहित्य में सर्वोत्तम कवि थे। ३—इन दोनों में कौन बड़ा है। ४—सुधा और सुशीला में कौन अधिक चतुर है। ५—गोबिन्द और मोहन में कौन अधिक बुद्धिमान् है। ६—हिमालय सब पर्वतों से ऊँचा है। ७—बेर का फल सभी फलों में निकृष्टतम है। ८—उस छोटे से माता प्रेम करती है। ९—पढ़ने में श्याम सबसे अच्छा है। १०—शारीरिक दुर्बलता का विचार न करते हुए उसने अथक परिश्रम किया। ११—तुम्हें सुशील एवं सुन्दर कन्या से विवाह करना चाहिए। १२—नित्य मृदु व्यायाम करने से शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है। १३—राम भरत को राज्य सौंप कर जंगल चले गए। १४—पार्वती ने पत्ता खाना भी छोड़ दिया था। १५—विश्वभर में कौन नदी सब नदी से बड़ी है? १६—प्रयाग से काशी की अपेक्षा दिल्ली अधिक दूर है। १७—जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है।

अजहल्लिङ्ग (विशेषण)

अजहल्लिङ्ग विशेषण वे विशेषण हैं जो विशेष्य का अनुसरण नहीं करते। विशेष्य चाहे किसी लिङ्ग का हो, परन्तु वे अपने लिङ्ग का परित्याग नहीं करते। यथा—

आपः पवित्रं परमं पृथिव्याम् (पृथ्वी में जल बहुत पवित्र हैं) यहाँ 'पवित्र' शब्द आपः का विशेषण है किन्तु नपुंसकलिङ्ग के एकवचन में प्रयुक्त हुआ है, जब कि 'आपः' (विशेष्य) स्त्रीलिङ्ग एवं बहुवचनान्त है।

वेदाः प्रमाणम् (वेद साक्षी हैं) यहां पर प्रमाण शब्द विशेषण है और नपुंसकलिङ्ग है, जब कि 'वेदाः' पुँल्लिङ्ग। इसी प्रकार

दुहितरश्च कृपणं परम (लड़कियां अत्यन्त दया की पात्र हैं)।

अग्निः पवित्रं स मां पुनातु (अग्नि पवित्र है, वह मुझे शुद्ध करे)।

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः (सन्देहास्पद वस्तुओं में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियां प्रमाण होती हैं)।

वरमेको गुणी पुत्रो (एक गुणी पुत्र अच्छा है)।

विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः (विद्वान् कहते हैं कि जीवन विकार है)।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—वह समाज अधिक समय तक नहीं स्थिर रह सकता जिसमें मूर्ख प्रधान होते हैं और पण्डित गौण। २—गुणियों के गुण ही पूजा के स्थान हैं। ३—अविवेक विपत्तियों का सबसे बड़ा कारण है। ४—वह अपने कुल का भूषण है। ५—दूसरे की निन्दा करना पाप है। ६—अच्छा अध्यापक विद्यार्थियों के अनुराग का पात्र हो जाता है। ७—ईश्वर की महिमा अनन्त है। ८—विपत्ति में धैर्य धारण करना चाहिए। ९—वह विद्या का सागर और सद्गुणों की खान है। १०—मुनिजन देवताओं की शरण में जाकर नित्य-प्रति उनका ध्यान करते हैं। ११—कोरी वीरता जंगली जानवरों की चेष्टा के तुल्य है। १२—आप के सदृश व्यक्ति ही उपदेश के पात्र होते हैं। १३—धन विपत्तियों का घर है। १४—आप, प्रमाण हैं। १५—तुम तेज के आधार हो।

पञ्चम सोपान

कारक-विचार

क्रिया के सम्पादन में जिन शब्दों का उपयोग होता है, उन्हें कारक कहते हैं। उदाहरणार्थ—'प्रयाग में धार्मिक पुरुष ने अपने हाथ से सैकड़ों रुपए ब्राह्मणों को दान दिए' इस वाक्य में दान क्रिया के सम्पादन के लिए जिन २ वस्तुओं का उपयोग हुआ वे 'कारक' कहलाएँगी। दान की क्रिया किसी स्थान पर हो सकती है; यहाँ प्रयाग में हुई, अतएव 'अयोध्या' कारक हुई; इस क्रिया को सम्पादित करने वाला 'धार्मिक पुरुष' पर, अतएव 'धार्मिक पुरुष' कारक हुआ; इस क्रिया का सम्पादन हाथ से हुआ, अतएव 'हाथ' कारक हुआ; रुपये दिए गए, अतएव रुपये कारक हुए; ब्राह्मणों को दिए गए, इसलिए ब्राह्मण कारक हुए। क्रिया के सम्पादनार्थ इस प्रकार छः सम्बन्ध स्थापित होते हैं—

क्रिया का सम्पादक—कर्त्ता
क्रिया का कर्म—कर्म
क्रिया का सम्पादन जिसके द्वारा हो—करण
क्रिया जिसके लिए हो—सम्प्रदान
क्रिया जिससे दूर हो—अपादान
क्रिया जिस स्थान पर हो—अधिकरण

इस प्रकार कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक हुए।

"कर्त्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणे इत्याहुः कारकाणि षट्॥"

क्रिया से जिसका सीधा सम्बन्ध होता हो वही कारक कहलाता है। 'राम के लड़के मोहन को श्याम ने पीटा'-ऐसे वाक्यों में पीटने की क्रिया से सीधा सम्बन्ध मोहन और श्याम से है, राम का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। अतएव "रामके" को कारक नहीं कहा जा सकता। राम का सम्बन्ध मोहन से है, किन्तु पीटने की क्रिया के सम्पादन में राम का कोई उपयोग नहीं है।

प्रथमा

(क) प्रातिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाणवचन मात्रे प्रथमा २।३।४६।

प्रथमा विभक्ति का प्रयोग केवल शब्द का अर्थ बतलाने के लिए अथवा केवल लिङ्ग बतलाने के लिए अथवा परिमाण अथवा वचन बतलाने के लिए किया जाता है।

प्रातिपदिक का अर्थ है शब्द। प्रत्येक शब्द का कुछ नियत अर्थ होता है। परन्तु संस्कृत के व्याकरण में जब तक प्रत्यय लगाकर पद न बना लिया जाय तब तक

उसका अर्थ नहीं समझा जा सकता। इसीलिए यदि किसी शब्द के केवल अर्थ का बोध कराना हो तो प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि हम केवल 'बालक' उच्चारण करें तो संस्कृत में यह शब्द निरर्थक होगा, किन्तु यदि 'बालकः' कहें तब बालक के अर्थ का बोध होगा। इसीलिए केवल संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण ही में नहीं अपितु अव्ययों तक में भी प्रथमा विभक्ति लगायी जाती है यथा उच्चैः, नीचैः आदि।

लिङ्ग का तात्पर्य ऐसे शब्दों से है जिनमें लिङ्ग नहीं होता (यथा नीचैः आदि अव्यय) और ऐसे शब्द जिनका लिङ्ग नियत है (यथा बालकः पुँल्लिङ्ग, पुस्तकम् नपुंसकलिङ्ग, बालिका स्त्रीलिङ्ग) इनको छोड़कर बाकी शब्दों के अर्थ और लिङ्ग दोनों प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही जाने जाते हैं, जैसे तटः, तटी, तटम्। इन शब्दों में 'तटः' से ज्ञात होता है कि यह शब्द पुँल्लिङ्ग में है और इसका अर्थ किनारा है।

केवल परिमाण, यथा सेरो व्रीहिः, यहाँ प्रथमा विभक्ति के द्वारा सेर का परिमाण विदित होता है।

केवल वचन (संख्या) यथा एकः, द्वौ, बहवः आदि।

(ख) सम्बोधने च २।३।४७।

सम्बोधन करने में भी प्रथमा विभक्ति का उपयोग होता है। यथा—
हे रामः। हे कन्याः आदि।

(ग) निम्नलिखित अव्ययों के योग में भी प्रथमा विभक्ति होती है:—

(१) इति:—मिथिलायां जनक इति ख्यातः नृपः आसीत (मिथिला में जनक नामक ख्यात नृप थे)।

(२) नाम:—सुदर्शनो नाम नरपतिरासीत् (सुदर्शन नामक राजा थे)।

(३) अपि:—विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् (विष का वृक्ष भी लगाकर स्वयं काटना योग्य नहीं है।)

कर्त्ता और क्रिया का समन्वय

जिसके विषय में कुछ कहा जाता है उसे वाक्य का कर्ता कहते हैं और वह प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है। कर्त्ता के अनुसार ही क्रिया का वचन और पुरुष होता है। कहने का तात्पर्य है कि जिस वचन और पुरुष का कर्ता होगा, उसी वचन और उसी पुरुष की क्रिया भी होगी। यथा—

आसीद्राजा शूद्रको नाम (शूद्रक नामक राजा था)। साधयामो वयम् (हम सब जाते हैं)।

'होना', 'मालूम पड़ना', 'दिखाई पड़ना' इत्यादि अपूर्ण विधेय वाली क्रियाओं का अर्थ पूरा करने के लिए जो संज्ञा अथवा विशेषण शब्द प्रयुक्त होता है, वह प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है। यथा—यदि सर्ग एष ते (यदि आपका यह संकल्प है)।

'पुकारना', 'नाम रखना', 'बनाना', 'सोचना', 'चुनना', 'नियुक्त करना' इत्यादि अपूर्ण विधेय वाली सकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य में भी उपर्युक्त ही नियम लगता है। यथा—'कुक्कुरो व्याघ्रः कृतः' (कुत्ता बाघ बना दिया गया)।

"और" द्वारा जुड़े हुए दो या दो से अधिक संज्ञा पद जब कर्त्ता होते हैं। तब क्रिया कर्ताओं के संयुक्त वचन के अनुसार होती है। यथा—

तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी (राजा और रानी मागधी ने उनके पैर पकड़े)।

जब प्रत्येक संज्ञाएं अलग अलग समझी जाती हैं अथवा वे सब एक साथ मिलकर केवल एक विचार-विशेष की द्योतक होती हैं, तब क्रिया एक वचन की होती है। यथा—

न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती (मुझे न तो मेरे पिता बचा सकते हैं, न मेरी माता, न आप ही)।

पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते (निपुणता और सत्यवादिता वार्तालाप से प्रकट होती है)।

कभी-कभी क्रिया निकटतम कर्तृपद के अनुरूप होती है और बाकी कर्तृपदों के साथ समझ लिए जाने के लिए छोड़ दी जाती है। यथा—

अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम् (दिन और रात, दोनों गोधूलियाँ और धर्म भी मनुष्य के कार्य को जानते हैं)।

'अथवा', 'या', 'वा', द्वारा जुड़े हुए एक वचनान्त कर्तृपद के लिए एक वचन की क्रिया आती है। यथा—रामो गोविन्दः कृष्णो वा गच्छतु (राम या गोविन्द अथवा कृष्ण जाय)।

जब कर्ता में भिन्न-भिन्न वचनों के शब्द होते हैं, तब क्रिया निकटतम कर्तृपद के अनुसार होती है। यथा—

ते वा अयं वा पारितोषिकं गृह्णातु (चाहे वे लोग चाहे यह आदमी इनाम ले)।

जब कर्ता में उत्तम, मध्यम तथा प्रथम—सभी पुरुषों के पद होते हैं, तब क्रिया उत्तम पुरुष की होती है।

जब कर्ता में केवल मध्यम और प्रथम पुरुष के पद होते हैं, तब क्रिया मध्यम पुरुष की होती है। यथा—त्वं चाहं च पचावः (तू और मैं पकाते हैं)।

जब कर्ता में 'अथवा' या 'वा' द्वारा जुड़े हुए भिन्न २ पुरुषों के दो या दो से अधिक पद आते हैं तब क्रिया का वचन और पुरुष निकटतम पद के अनुरूप होता है। यथा—ते वा वयं वा इदं दुष्करं कार्यं सम्पादयितुं शक्नुमः (या तो वे लोग या हम लोग इस कठिन कार्य को कर सकते हैं)।

जब दो या दो से अधिक कर्तृपद किसी संज्ञा या सर्वनाम के समानाधिकरण होते हैं, तब विधेय संज्ञा अथवा सर्वनाम के अनुरूप होता है। यथा—

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम् (माता, मित्र और पिता—ये तीनों स्वभाव से ही हितैषी होते हैं)।

प्रथम अभ्यास

वर्तमानकाल (लट्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	लिखति (वह लिखता है)	लिखतः (वे दो लिखते हैं)	लिखन्ति (वे सब लिखते हैं)
म० पु०	लिखसि (तू लिखता है)	लिखथः (तुम दो लिखते हो)	लिखथ (तुम लिखते हो)
उ० पु०	लिखामि (मैं लिखता हूँ)	लिखावः (हम दो लिखते हैं)	लिखामः (हम लिखते हैं)

संक्षिप्त रूप

प्र० पु०	(सः) अति	(तौ) अतः	(ते) अन्ति
म० पु०	(त्वम्) असि	(युवाम्) अथः	(यूयम्) अथ
उ० पु०	(अहम्) आमि	(आवाम्) आवः	(वयम्) आमः

इसी प्रकार कुछ भ्वादि गणीय धातुएँ

धातु	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
भू (भव्)—होना	भवति	भवतः	भवन्ति
पठ्—पढ़ना	पठति	पठतः	पठन्ति
पत्—गिरना	पतति	पततः	पतन्ति
धाव्—दौड़ना	धावति	धावतः	धावन्ति
क्रीड्—खेलना	क्रीडति	क्रीडतः	क्रीडन्ति
हस्—हँसना	हसति	हसतः	हसन्ति
गम्—जाना	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
रक्ष्—रक्षा करना	रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति
वद्—बोलना	वदति	वदतः	वदन्ति

संस्कृत-अनुवाद

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

(१) छात्रः विद्यालयं गच्छति (विद्यार्थी विद्यालय जाता है)।

(२) त्वं पुस्तकं पठसि (तू पुस्तक पढ़ता है)।

(३) अहं वसामि (मैं रहता हूँ)।

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रथम वाक्य में कर्त्ता 'छात्रः' प्रथम पुरुष एक वचन है, अत एव क्रिया 'गच्छति' भी प्रथम पुरुष एकवचन हुई। 'गम्' का कर्म विद्यालय है, उसमें द्वितीया विभक्ति हुई। द्वितीय वाक्य में कर्त्ता 'त्वं' मध्यम पुरुष एक वचन है, अतएव क्रिया 'पठसि' भी मध्यम पुरुष एक वचन हुई एवं 'पठ्' धातु का कर्म जो 'पुस्तक' है उसमें द्वितीया विभक्ति हुई। तृतीय वाक्य में 'अहं' कर्त्ता उत्तमपुरुष एक वचन है, अतएव क्रिया 'वसामि' भी उत्तम पुरुष एक वचन हुई। इससे निष्कर्ष यह निकला कि संस्कृत भाषा के अनुवाद करने में यदि कर्त्ता प्रथम पुरुष का हो तो क्रिया भी प्रथम पुरुष की ही होती है, यदि कर्त्ता मध्यम पुरुष का हो तो क्रिया भी मध्यम पुरुष की ही होती है, यदि कर्त्ता उत्तम पुरुष का हो तो क्रिया भी उत्तम पुरुष की ही होती है। पुनश्च

यदि कर्त्ता एक वचन में होता है तो क्रिया भी एकवचन में होती है और यदि कर्त्ता द्विवचन में होता है तो क्रिया भी द्विवचन में होती है। इसी प्रकार यदि कर्त्ता बहुवचन में होता है तो क्रिया भी बहुवचन में ही होती है।

"छात्रः विद्यालयं गच्छति" इसी वाक्य को हम "विद्यालयं छात्रः गच्छति" भी लिख अथवा बोल सकते हैं। यह प्रणाली संस्कृत भाषा की अपनी विशेषता है, क्योंकि इसमें विकारी शब्दों का बाहुल्य है।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—बालक पढ़ता है। २—बालिका खेलती है। ३—सुशीला हँसती है। ४—राम धीरे-धीरे जाता है? ५—बन्दर दौड़ते हैं। ६—पत्ते गिरते हैं। ७—गधा कहाँ जाता है। ८—हाथी आगे चलता है। ९—कुत्ता भूंकता है। १०—भिखारी जाता है। ११—तुम संस्कृत पढ़ते हो। १२—मैं बङ्गाली भाषा पढ़ता हूँ। १३—तुम दोनों क्या पढ़ते हो? १४—हम दोनों अंग्रेजी भाषा लिख रहे हैं। १५—आप लोग हँसते नहीं हैं। १६—तुम सब अलग अलग बैठते हो। १७—मैं हर समय नहीं खेलता हूँ। १८—तुम दोनों इस प्रकार क्यों दौड़ते हो? १९—आप क्यों नहीं पढ़ते हैं? २०—तू और सोमदत्ति और कर्ण रहें। २१—गोपाल या कृष्ण या जगदीश जायें। २२—तुम चाहे शिशु हो और स्त्री हो, किन्तु जगत् की वन्दनीय हो। २३—दिन और रात, दोनों गोधूलियाँ और धर्म भी मनुष्य के कार्य को जानते हैं। २४—वे नौकर और मैं कल गाँव को चल दूँगा। २५—भारतवर्ष में राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् हैं। २६—दशरथ और सुमित्रा ने वशिष्ठ के पैर पकड़े। २७—गुरुजन स्वभाव से ही हितैषी होते हैं। २८—अयोध्या नाम की नगरी है। २९—भोज नामक राजा थे। ३०—हे कृष्ण! रक्षा करो।

द्वितीय अभ्यास

अनद्यतन भूतकाल (लङ्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०पु०	अलिखत् (उसने लिखा)	अलिखताम् (उन दोनोंने लिखा)	अलिखन् (उन्होंने लिखा)
म०पु०	अलिखः (तू ने लिखा)	अलिखतम् (तुम दोनों ने लिखा)	अलिखत (तुमने लिखा)
उ०पु०	अलिखम् (मैंने लिखा)	अलिखाव (हम दोनों ने लिखा)	अलिखाम (हमने लिखा)

संक्षिप्त रूप

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	(सः) अत्	(तौ) अताम्	(ते) अन्
म० पु०	(त्वम्), अः	(युवाम्) अतम्	(यूयम्) अत
उ० पु०	(अहम्) अम्	(आवाम्) आव	(वयम्) आम

इसी प्रकार

धातु	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
पठ्—पढ़ना	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
भू—होना	अभवत्	अभवताम्	अभवन्

हस्—हँसना	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
रक्ष्—रक्षा करना	अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्
गम्—जाना	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
धाव्—दौड़ना	अधावत्	अधावताम्	अधावन्
वद्—कहना	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
क्रीड्—खेलना	अक्रीडत्	अक्रीडताम्	अक्रीडन्
पत्—गिरना	अपतत्	अपतताम्	अपतन्

भूतकाल के लिए संस्कृत में तीन लकार हैं—लिट् लकार, लङ् लकार और लुङ् लकार। अनद्यतन परोक्षभूत—वक्ता के बोलने के २४ घण्टा पहले जो हो गया हो एवं वक्ता ने जिसका प्रत्यक्ष न किया हो, उसके लिए लिट् लकार का प्रयोग होता है। अनद्यतन भूतः—वक्ता के बोलने के २४ घण्टा पहले जो हो गया हो तथा वक्ता ने जिसका साक्षात् किया हो—उसके लिए लङ् लकार का प्रयोग होता है। सामान्यभूतः—सभी प्रकार के भूतकाल के लिए लुङ् लकार का प्रयोग होता है। परन्तु आजकल इनके प्रयोगों के लिए कोई निश्चित् नियम नहीं मानते। किसी भी प्रकार के भूतकाल के लिए इन तीनों लकारों में से लोग किसी का प्रयोग कर बैठते हैं। मुझे यहाँ केवल लङ् लकार पर ही विचार करना है।

अनद्यतनभूत अर्थात् चौबीस घण्टा पहले जो हो गया है, उसके लिए लङ् लकार का प्रयोग होता है। यथाः—सः पुस्तकम् अपठत् (उसने किताब पढ़ी) तौ अगच्छताम् (वे दोनों गए), ते अवदन् (वे बोले), अहम् अलिखम् (मैंने लिखा)।

संस्कृत में अनुवाद करो

(१) बालक गया। २—लड़की दौड़ी। ३—उसने आज पढ़ा। ४—रमेश और मोहन वहाँ खेले। ५—सुशीला यहाँ क्यों नहीं आयी? ६—माताजी कल आयीं। ७—उषा ने क्या कहा? ८—भगवान ने रक्षा की। ९—वे दोनों क्यों नहीं गए? १०—ऊँट और घोड़े दौड़े। ११—वे क्यों नहीं दौड़े? १२—वे क्यों हँसे? १३—तुम क्या पढ़े? १४—हम कहीं नहीं गए थे। १५—उसने किताब क्यों नहीं पढ़ी? १६—पत्ते गिरे। १७—लड़कों ने खेला। १८—गुरु ने कहा। १९—तुमने क्या कहा? २०—तुम क्यों हँसी?

तृतीय अभ्यास

सामान्य भविष्यत् (लृट्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	लेखिष्यति (वह लिखेगा)	लेखिष्यतः (वे दो लिखेंगे),	लेखिष्यन्ति (वे लिखेंगे)
म० पु०	लेखिष्यसि (तू लिखेगा)	लेखिष्यथः (तुम दोनों लिखोगे)	लेखिष्यथ (तुम लिखोगे)
उ० पु०	लेखिष्यामि (मैं लिखूँगा)	लेखिष्यावः (हम दो लिखेंगे)	लेखिष्यामः (हम लिखेंगे)

संक्षिप्त रूप

प्र० पु०	(सः) इष्यति	(तौ) इष्यतः	(ते) इष्यन्ति
म० पु०	(त्वम्) इष्यसि	(युवाम्) इष्यथः	(यूयम्) इष्यथ
उ० पु०	(अहम्) इष्यामि	(आवाम्) इष्यावः	(वयम्) इष्यामः

इसी प्रकार—

धातु	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
पठ्-पढ़ना	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
भू-होना	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
धाव्-दौड़ना	धाविष्यति	धाविष्यतः	धाविष्यन्ति
रक्ष्-रक्षा करना	रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति
पत्-गिरना	पतिष्यति	पतिष्यतः	पतिष्यन्ति
गम्-जाना	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
क्रीड्-खेलना	क्रीडिष्यति	क्रीडिष्यतः	क्रीडिष्यन्ति
हस्-हँसना	हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति
वद्-कहना	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति

भविष्यत् काल—भविष्यत् काल के सूचक दो लकार हैं—लृट् (सामान्य भविष्य) और लुट् (अनद्यतन भविष्य)। परन्तु यह अन्तर भी अब व्यवहार में नहीं रहा, केवल लृट् लकार का ही प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण—१—रामः पठिष्यति (राम पढ़ेगा) २—अश्वाः धाविष्यन्ति (वानर दौड़ेंगे)। ३—सः कदा गमिष्यति ? (वह कब जायेगा) ४—अहं क्रीडिष्यामि (मैं खेलूँगा)। ५—ते क्रीडिष्यन्ति (वे खेलेंगे) ६—बालिका हसिष्यति (लड़की हँसेगी)।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—मैं कल जाऊँगा। २—वह कल आयेगा। ३—पत्ते नहीं गिरेंगे। ४—दो घोड़े और दो कुत्ते दौड़ेंगे। ५—हम नहीं पढ़ेंगे। ६—तुम कब पढ़ोगे ? ७—अध्यापक कहेगा, तुम नहीं कहोगे। ८—भगवान रक्षा करेगा। ९—तुम मेरी रक्षा करोगे। १०—हम अपने देश की रक्षा करेंगे। ११—तुम्हारा क्या होगा ? १२—हम नहीं हँसेंगे। १३—राम और श्याम खेलेंगे। १४—हम दौड़ेंगे। १५—तुम दोनों कब आओगे ? १६—लड़कियाँ नहीं हँसेंगी।

चतुर्थ अभ्यास

आज्ञार्थक लोट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	पठतु (वह पढ़े)	पठताम् (वे दो पढ़ें)	पठन्तु (वे पढ़ें)
म० पु०	पठ (तू पढ़)	पठतम् (तुम दो पढ़ो)	पठत (तुम पढ़ो)
उ० पु०	पठानि (मैं पढ़ूँ)	पठाव (हम दो पढ़ें)	पठाम (हम पढ़ें)

संक्षिप्त रूप

प्र० पु०	(सः) अत्	(तौ) अताम्	(ते) अन्तु
म० पु०	(त्वम्) अ	(युवाम्) अतम्	(यूयम्) अत
उ० पु०	(अहम्) आनि	(आवाम्) आव	(वयम्) आम

इसी प्रकार

लिख्—लिखना	लिखतु	लिखताम्	लिखन्तु
भू—होना	भवतु	भवताम्	भवन्तु
गम्—जाना	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
पत्—गिरना	पततु	पतताम्	पतन्तु
रक्ष्—रक्षा करना	रक्षतु	रक्षताम्	रक्षन्तु
धाव्—दौड़ना	धावतु	धावताम्	धावन्तु
हस्—हँसना	हसतु	हसताम्	हसन्तु
वद्—कहना	वदतु	वदताम्	वदन्तु

आज्ञार्थक लोट्—लोट् लकार आज्ञा, अनुज्ञा तथा प्रार्थना आदि के अर्थों का सूचक है। आशीर्वाद के अर्थ में भी लट् लकार प्रयुक्त होता है।

उदाहरणार्थ

१—रामः पठतु (राम पढ़े)। २—छात्राः गच्छन्तु (विद्यार्थी जावें)। ३—बालकाः क्रीडन्तु (बालक खेलें)। ४—ईश्वरः रक्षतु (ईश्वर रक्षा करे। ५—त्वं गच्छ (तू जा)। ६—कन्याः धावन्तु (लड़कियाँ दौड़ें)।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—बालक और बालिका जावें। २—सुशीला और रमा पढ़ें। ३—घोड़े दौड़ें। ४—राजा रक्षा करे। ५—क्या मैं जाऊँ? ६—क्या मैं पकाऊँ? ७—विद्यालय जाओ। ८—खेलो मत, पढ़ो। ९—पढ़ो मत, हँसो। १०—गुरू कहे। ११—हम लिखें, तुम पढ़ो। १२—तुम लिखो, मैं पढ़ूँ। १३—बालिका लिखे, खेले मत। १४—फल गिरें। १५—वह जाये। तुम दोनों जाओ। १७—हम क्यों जायँ। १८—सत्य बोलो, झूठ नहीं। १९—भोजन करो। २०—तुम रक्षा करो।

पञ्चम अभ्यास

कर्मकारक (द्वितीया) 'को'

आज्ञार्थक विधिलिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

संक्षिप्त रूप

प्र० पु०	(सः) एत्	(तौ) एताम्	(ते) एयुः
म० पु०	(त्वम्) एः	(युवाम्) एतम्	(यूयम्) एत
उ० पु०	(अहम्) एयम्	(आवाम्) एव	(वयम्) एम

इसी प्रकार—

लिख्—लिखना	लिखेत्	लिखेताम्	लिखेयुः
भू—होना	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
क्रीड्—खेलना	क्रीडेत्	क्रीडेताम्	क्रीडेयुः
हस्—हँसना	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
रक्ष्—रक्षा करना	रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः
पत्—गिरना	पतेत्	पतेताम्	पतेयुः
गम्—जाना	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
धाव्—दौड़ना	धावेत्	धावेताम्	धावेयुः
वद्—कहना	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो :—

(१) नृपः शत्रुं जयेत् (राजा शत्रु को जीते)।

(२) बालकः पुस्तकं पठेत् (बालक पुस्तक पढ़े)।

(३) शिशुः तक्रं पिबेत् (शिशु मट्ठा पीवे)।

द्वितीया विभक्ति

(अ) कर्तुरीप्सिततमं कर्म । १।४।४९।

कर्ता जिसको (व्यक्ति, वस्तु या क्रिया को) विशेष रूप से चाहता है, उसे कर्म कहते हैं।

(ब) कर्मणि द्वितीया । २।३।२।

कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

कर्त्ता की क्रिया के द्वारा जो आक्रान्त हो अर्थात् कर्त्ता के व्यापार से उत्पन्न होने वाले फल का जो आश्रय हो अथवा कर्त्ता अपनी क्रिया द्वारा मुख्यरूपेण जिसे प्राप्त करना चाहे, उस कारक को 'कर्म' कहते हैं। कर्तृवाच्य के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यथाः—रामः गृहं गच्छति (राम घर जाता है)। कृष्णः चन्द्रं पश्यति (कृष्णः चन्द्रं पश्यति (कृष्ण चन्द्रमा को देखता है)। छात्राः पुस्तकं पठन्ति (विद्यार्थी पुस्तक पढ़ते हैं)। उपर्युक्त उदाहरणों में कर्तृभूत जो राम, कृष्ण तथा छात्र हैं, उनकी गमन, दर्शन तथा पठन रूपी क्रियाओं से क्रमशः ग्राम, चन्द्र एवं पुस्तक आक्रान्त हैं अर्थात् इन कर्त्ताओं से सम्पादित क्रियाओं से होने वाले फलों के आश्रय हैं। अतएव इन्हें कर्म कहते हैं और इनमें द्वितीया विभक्ति होती है।

तथायुक्तं चानीप्सितम् १।४।५०।

उपर्युक्त ईक्षित कर्म के अतिरिक्त स्वाभाविक कर्म के और दो प्रकार हैं (१) उपेक्ष्य (उदासीन) (२) द्वेष्य। इच्छा नहीं रहने पर भी कभी कभी कर्त्ता अपने ही व्यापार द्वारा आनुषंगिक रूप से अनायास अभिलषित वस्तु के साथ कुछ वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है। इसे भी कर्म ही मानना होगा क्योंकि कर्त्ता के व्यापार का फल इन पर भी पड़ता है और इसका पारिभाषिक नाम 'अनीप्सित कर्म' है। इस प्रकार के कर्म में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (गांव जाता हुआ रास्ते में तिनके को भी छू देता है)। यहां पर गांव ही कर्ता का अभिलषित है। तिनके का छूना तो यों ही हो जाता है। क्योंकि तृण उसके लिए उपेक्ष्य है।

ओदनं भुञ्जानः विषं भुंक्ते—भात खाता हुआ विष भी खा लेता है। यहां भात ही कर्त्ता के लिए अभिलषित है किन्तु धोखे से वह भात के साथ जहर भी खा जाता है जिसे वह कभी भी खाना नहीं चाहता अपितु उसके खाने से द्वेष रखता है।

(स) अकथितं च १।४।५१।

संस्कृत में कुछ ऐसी धातुएं हैं जिनके दो कर्म होते हैं। एक को प्रधान वा मुख्य कर्म (Direct object) कहते हैं और दूसरे को अप्रधान अथवा गौण कर्म (Indirect object) कहते हैं। इनमें क्रिया से मुख्यतः सीधा सम्बन्ध रखने वाले कर्म को प्रधान कर्म कहते हैं। क्रिया से अप्रधान भाव से वक्ता की इच्छा के अधीन होकर सम्बन्ध रखने वाले कर्म को गौण कर्म कहते हैं। ये ही गौण कर्म 'अकथित कर्म' कहलाते हैं। इनमें अपादान आदि अन्य कारकों का भी प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु वक्ता यदि इन कारकों का व्यवहार नहीं करना चाहता है तो वैकल्पिक रूप से द्वितीया विभक्ति होती है। यह नियम—

(द) दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

इस कारिका में गिनाई गयी धातुओं के ही लिए है।

दुह् (दुहना), याच् (मांगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना, रूँधना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (कहना, बोलना), शास् (शासन करना), जि (जीतना), मन्थ् (मथना), मुष् (चुराना), नी (ले जाना), हृ (हरना), कृष् (खींचना), वह् (ढोना) तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुएँ द्विकर्मक होती हैं, यथा—

(१) गां दोग्धि पयः—गाय से दूध दुहता है।

यहाँ पर 'गाय से दूध दुहता है' ऐसा अर्थ निकलने के कारण 'गाय' सामान्यतः अपादान कारक है, अतएव उसमें पञ्चमी विभक्ति होनी चाहिए। परन्तु यहां पर 'गाय' दूध के निमित्त मात्र के रूप में गृहीत है। अतएव उपर्युक्त नियम के अनुसार

'गाय' की कर्म संज्ञा हुई। इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि पयःकर्मक गोसम्बन्धी दोहन व्यापार हुआ। अपादान की विवक्षा होने पर 'गोर्दोग्धि पयः—यही प्रयोग होगा।

(२) बलिं याचते वसुधाम्—बलि से पृथ्वी मांगता है।

यहाँ 'बलि' गौण कर्म है। अपादान की विशेष विवक्षा होने पर बलेर्याचते वसुधाम्—यह प्रयोग होगा।

(३) तण्डुलान् ओदनं पचति—चावलों का भात पकाता है।

यहां 'तण्डुल' वस्तुतः करणार्थक है, परन्तु वक्ता की इच्छा उसे करण कहने की नहीं, इसलिए वह गौण कर्म के रूप में अवस्थित हो गया है।

(४) गर्गान् शतं दण्डयति—गर्गों पर एक सौ रुपया दण्ड लगता है।

(५) माणवकं पन्थानं पृच्छति—माणवक से रास्ता पूछता है।

(६) वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्ष के फलों को इकट्ठा करता है।

(७) माणवकं धर्मं ब्रूते, भाषते, शास्ति वा—माणवक से धर्म कहता है।

(८) शतं जयति देवदत्तम्—देवदत्त से एक सौ जीत लेता है।

(९) सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति—क्षीरसागर से अमृत मथता है।

(१०) व्रजमवरुणद्धि गाम्—गाय को बाड़े में घेरता है।

(११) देवदत्तं शतं मुष्णाति—देवदत्त से एक सौ चुराता है।

(१२) ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा—बकरी को गांव में ले जाता है।

इन धातुओं की समानार्थक[1] धातुएं भी द्विकर्मक होती हैं। यथा—

बलिं वसुधां भिक्षते—बलि से पृथ्वी मांगता है।

(य) अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम् (वार्त्तिक)—अकर्मक धातुओं के योग में देश, काल, भाव तथा गन्तव्य पथ भी कर्म समझे जाते हैं। यथा—

(१) कुरून् स्वपिति-कुरु देश में सोता है ('कुरून्' देशव्यञ्जक है)।

(२) वर्षमास्ते—वर्ष भर रहता है ('वर्षम्' कालव्यञ्जक है)।

(३) गोदोहमास्ते—गाय दुहने की वेला तक रहता है ('गोदोहम्' भावव्यञ्जक है)।

(४) क्रोशमास्ते—कोस भर में रहता है ('क्रोशम्' मार्गव्यञ्जक है)।

(फ) अधिशीङ्स्थासां कर्म ।१।४।४६।

अधि उपसर्गपूर्वक शी धातु, स्था धातु तथा आस् धातु के योग में आधारवाचक स्थान या वस्तु में द्वितीया होती है। यथा—

---

१. अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि।—'अकथितञ्च' १।४।५१। पर सि० कौ०।

चन्द्रापीडः मुक्ताशिलापट्टम् अधिशिश्ये—चन्द्रापीड मुक्ताशिला की पटरी पर लेट गया।

अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ—इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था।

भूपतिः सिंहासनम् अध्यास्ते—राजा सिंहासन पर बैठा है।

यहाँ उपर्युक्त क्रियाएँ पटरी, आसन और सिंहासन पर, जो आधार हैं, हुयी हैं अतएव इन शब्दों को कर्म कहा जायेगा और इनमें द्वितीया विभक्ति होगी। 'अधि' उपसर्ग न लगा होने पर आधार के अधिकरण होने के कारण उसमें सप्तमी होती।

(क) अभिनिविशश्च ।१।४।४७।

अभि तथा नि पूर्वक विश् धातु का आधार कर्म कारक होता है। यथा—अभिनिविशते सन्मार्गम्—वह अच्छे मार्ग का आश्रय लेता है।

धन्या सा कामिनी याम् भवन्मनोऽभिनिविशते—वह स्त्री धन्य है जिसके ऊपर आप का मन लगा है।

(ख) उपान्वध्याङ्वसः ।१।४।४८।

यदि वस् धातु के पूर्व उप, अनु, अधि, आ में से कोई उपसर्ग लगा हो तो क्रिया का आधार कर्म होता है यथा—

उपवसति वैकुण्ठं हरिः
अनुवसति वैकुण्ठं हरिः
आवसति वैकुण्ठं हरिः
अधिवसति वैकुण्ठं हरिः } हरि वैकुण्ठ में रहता है।

किन्तु—

हरिः वैकुण्ठे वसति होगा क्योंकि इस वाक्य में 'वसति' का आधार "वैकुण्ठ" कर्म नहीं हुआ है। इसमें "वसति" के पूर्व उप, अनु, अधि, आ में से कोई उपसर्ग नहीं लगा है।

(ग) अभुक्त्यर्थस्य न (वार्त्तिक)

जब 'उपवस्' का अर्थ 'उपवास करना, न खाना' होता है, तब 'उपवस्' का आधार कर्म नहीं होता, अधिकरण ही रहता है। यथा—

वने उपवसति—वन में उपवास करता है।

(घ) धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ॥

सकर्मक धातुएँ भी अकर्मक हो जाती हैं, यदि—

(१) धातु का अर्थ बदल जाय, यथा—'वह्' धातु का अर्थ है 'ढोना' (ले जाना) किन्तु 'नदी वहति' इस प्रयोग में 'वह्' का अर्थ स्पन्दन करना है।

(२) धातु के अर्थ में ही कर्म समाविष्ट हो जाय, यथा—'जीवति' इस प्रयोग में 'जीवनं जीवति' इस प्रकार का अर्थ गम्य होने के कारण जीवन की कर्मता छिपी हुई है।

(३) धातु का कर्म अत्यन्त प्रख्यात हो, यथा—'मेघो वर्षति' यहाँ 'वर्षति' का कर्म 'जलम्' अत्यन्त लोक-विख्यात है।

(४) कर्म का कथन अभीष्ट न हो, यथा—'हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः' इस प्रयोग में 'हित' कर्म है, पर उसे कर्म बतलाना वक्ता को अभीष्ट नहीं है।

अकर्मक धातुएँ भी उपसर्गपूर्वक होने पर प्रायः सकर्मक हो जाती हैं। यथा—

प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते—प्रजा वस्तुतः अपने राजा के चित्त का अनुसरण करती है।

अचलतुङ्गशिखरमारुरोह—पर्वत की ऊँची चोटी पर चढ़ गया। इत्यादि।

(ङ) उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु[1] त्रिषु।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु[2] ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥

१. धिक् के साथ कभी-कभी प्रथमा और सम्बोधन भी होते हैं। यथा—
धिगियं दरिद्रता आदि।

२. सामीप्य के अर्थ में उपरि, अधि तथा अधः आम्रेडित होते हैं परन्तु यदि सामीप्य अर्थ न हो तो षष्ठी ही होती है।

उभयतः (दोनों ओर), सर्वतः (सभी ओर), धिक् (धिक्कार), उपर्युपरि (ठीक ऊपर), अधोऽधः (ठीक नीचे), अध्यधि (ठीक नीचे) शब्दों की जिससे सन्निकटता पायी जाती है, उसमें द्वितीया होती है। यथा—

उभयतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं।

सर्वतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के सब ओर ग्वाले हैं।

धिग्जाल्मान्—बदमाशों को धिक्कार है।

उपर्युपरि लोकं हरिः—हरि संसार के ठीक ऊपर हैं।

अधोऽधो लोकं पातालः—पाताल संसार के ठीक नीचे है।

अध्यधि लोकम्—संसार के ठीक नीचे।

न रामम् ऋते कोऽपि रावणं हन्तुं शक्नोति—राम के बिना रावण को कोई नहीं मार सकता है।

(च) अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि (वार्त्तिक) अभितः (चारों ओर या सब ओर), परितः (सब ओर), समया (समीप), निकषा (समीप), हा, प्रति (ओर, तरफ) शब्दों की जिससे सन्निकटता पायी जाती है, उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

परिजनो राजानमभितः स्थितः—नौकर राजा के चारों ओर खड़े हुए।

रक्षांसि वेदीं परितो निरास्यत्—वेदी के चारों ओर बैठे हुए राक्षसों को नष्ट कर दिया।

ग्रामं समया—गांव के निकट।

ग्रामं निकषा—गाँव के निकट।

हा कृष्णाभक्तम्—जो कृष्ण का भक्त नहीं है उसके ऊपर विपत्ति पड़े।

मातुः हृदयं शिशुं प्रति स्निग्धं भवति—माता का हृदय शिशु की ओर (शिशु के प्रति) कोमल होता है।

सूचना—कभी-कभी 'हा' के योग में सम्बोधन प्रयुक्त होता है। यथा—हा भगवत्यरुन्धति—हाय भगवती अरुन्धती।

(छ) अन्तरान्तरेण युक्ते २।३।४।

अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना, छोड़कर, बारे में) शब्दों की जिससे सन्निकटता होती है, उसमें द्वितीया होती है। यथा—

अन्तरा त्वां च मां च कृष्णः—तुम्हारे और हमारे बीच में कृष्ण है।

हरिम् अन्तरेण न किञ्चिद् जानामि—हरि के बारे में कुछ नहीं जानता।

भवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या दृष्टिरागः—आपके बारे में इसके नेत्रों का प्रेम कैसा है।

(ज) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे २।३।५।

समय और मार्ग वाची शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है, जब कार्य निरन्तर हुआ हो। यथा—

क्रोशं कुटिला नदी—नदी कोस भर तक टेढ़ी है।

चत्वारि वर्षाणि वेदम् अधिजगे—चार वर्ष तक वेद पढ़ा।

सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता—हे राजन्, विश्रवण की सभा सौ योजन लम्बी है।

(झ) एनपा द्वितीया २।३।३१।

एनप् प्रत्ययान्त शब्द की जिससे सन्निकटता प्रतीत होती है उसमें द्वितीया या षष्ठी होती है। यथा—

ग्रामं ग्रामस्य वा दक्षिणेन—गांव के दक्षिण की ओर।

उत्तरेण नदीम्—नदी के उत्तर।

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयम्—वहां पर कुबेर के महल के उत्तर मेरा घर है।

(ञ) गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि २।३।१२।

जब गत्यर्थक धातुओं (गम्, चल्, इण्) आदि का कर्म मार्ग नहीं रहता है। और क्रिया निष्पादन में शरीर से व्यापार करना पड़ता है। तो उस कर्म में द्वितीया या चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—गृहं गृहाय वा गच्छति। यहाँ जाने में हाथ, पैर आदि अङ्गों का हिलना-डुलना रहा और गृह मार्ग नहीं है।

यदि गत्यर्थक धातु का कर्म 'मार्ग' हो तो केवल द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—पन्थानं गच्छति।

शरीर के व्यापार न करने पर केवल द्वितीया होती है। यथा—मनसा हरिं भजति। इसी प्रकार—

पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम।

अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते।

विनयाद्याति पात्रताम्।

(ट) दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च २।३।३५।

दूर, अन्तिक (निकट) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी अथवा सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

ग्रामात्, ग्रामस्य वा दूरं, दूरेण, दूरात् दूरे वा।

वनस्य, वनाद् वा अन्तिकं, अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा।

विद्यालयस्य निकटं निकटेन, निकटात्, निकटे वा।

(ठ) गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।

विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः॥

पूर्वोक्त द्विकर्मक धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में दुह् से लेकर मुष् तक की प्रथम बारह धातुओं के गौण कर्म और अन्तिम चार धातुओं अर्थात् नी, हृ, कृष् एवं वह् के *प्रधान कर्म प्रथमा* में रखे जाते हैं; दुह् से लेकर मुष् तक के *प्रधान कर्म* और नी, हृ, कृष् एवं वह् के गौण कर्म द्वितीया में रखे जाते हैं। यथा—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
स धेनुं पयो दोग्धि	तेन धेनुः पयः दुह्यते
देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः	देवैः समुद्रः सुधां ममन्थे
सोऽजां ग्रामं नयति, हरति कर्षति, वहति वा	तेन अजा ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा

(ड) गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता सणौ (कर्म) १।४।५२।

गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक तथा ज्ञानार्थक, भक्षणार्थक धातुओं में जिनका कर्म कोई 'शब्द' या 'साहित्यिक विषय' हो, इन धातुओं में और अकर्मक धातुओं में, जो सादी दशा में कर्ता रहता है, वह णिजन्त अर्थात् प्रेरणार्थक में कर्म हो जाता है। यथा—

शत्रूनगमयत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत्।

आशयच्चामृतं देवान्, वेदमध्यापयद् विधिम्।

आसयत् सलिले पृथ्वीं, यः स मे श्री हरिर्गतिः॥

(जिन श्री हरि ने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा, आत्मीयों को वेद पढ़ाया, देवों को अमृत खिलाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया, पृथ्वी को जल में बिठाया, वही मेरे शरणदाता हैं।)

साधारणरूप	प्रेरणार्थक रूप
शत्रवः स्वर्गमगच्छन्	शत्रून् स्वर्गमगमयत्
स्वे वेदार्थम् अविदुः	स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्
देवा अमृतम् आश्नन्	देवान् अमृतम् आशयत्
विधिः वेदम् अध्यैत	विधिं वेदमध्यापयत्
पृथ्वी सलिले आस्त	पृथ्वीं सलिले आसयत्

परन्तु 'गमयति देवदत्तः यज्ञदत्तम्' में यदि कोई दूसरा व्यक्ति देवदत्त से ऐसा कराने की प्रेरणा करता है, तब वाक्य यों होगा—

विष्णुदत्तः देवदत्तेन यज्ञदत्तं गमयति—विष्णुदत्त देवदत्त को प्रेरित करता है कि वह यज्ञदत्त को जाने के लिए कहे। यहाँ देवदत्त द्वितीया में नहीं रक्खा गया क्योंकि वह प्रेरणार्थक क्रिया का कर्त्ता है, न कि सादी क्रिया का।

(ढ) हृक्रोरन्यतरस्याम् ।१।४।५३।

हृ, कृ, धातुओं के साधारण रूपों का कर्त्ता प्रेरणार्थक में द्वितीया अथवा तृतीया में रक्खा जाता है। यथा—

भृत्यः कटं करोति हरति वा (नौकर चटाई बनाता है या ले जाता है)।

भृत्यं भृत्येन वा कटं कारयति हारयति वा (वह नौकर से चटाई बनवाता है या ढोवाता है)।

(ण) 'अभिवादिदृशोरात्मने पदे वेति वाच्यम्'

अभिवद् तथा दृश के आत्मनेपद के रूपों का कर्त्ता, प्रेरणार्थक में द्वितीया अथवा तृतीया में रक्खा जाता है। यथा—

अभिवादयते—दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा (वह भक्त से देवता को प्रणाम करवाता है या भक्त को प्रेरित करता है कि देवता को प्रणाम करे)।

(त) जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्—

जल्प्, भाष् इत्यादि के भी प्रकृत दशा के कर्त्ता प्रेरणार्थक में कर्म हो जाते हैं। यथा 'पुत्रो धर्मं जल्पति भाषते वा' का 'पुत्रं धर्मं जल्पयति भाषयति वा' होगा।

अपवाद—

(१) नीवह्योर्न—इस वार्तिक के अनुसार 'नी' और 'वह' धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों के प्रयोग में प्रकृत दशा का कर्ता कर्म न होकर करण ही रहता है। यथा—

'भृत्यो भारं नयति वहति वा' का 'भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा' ही होगा, 'भृत्यं भारं नाययति वाहयति वा' नहीं।

किन्तु प्रेरणार्थक 'वह्' का कर्त्ता 'नियन्ता' हो तो 'नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः' वार्तिक के अनुसार प्रकृत दशा का कर्ता कर्म ही होगा। यथा—'वाहा रथं वहन्ति' का '(सूतः) वाहान् रथं वाहयति' ही होगा।

(२) आदिखाद्योर्न—अद् और खाद् धातुओं के कर्त्ता उनके प्रेरणार्थक रूपों में कर्म न होकर करण ही होंगे। यथा—'बटुरन्नमत्ति खादति वा' का प्रेरणार्थक प्रयोग 'बटुनान्नमादयति खादयति वा' होगा।

(३) भक्षेरहिंसार्थस्य न—अहिंसार्थक भक्ष् धातु का प्रकृत दशा का कर्त्ता प्रेरणार्थक में कर्म न होकर करण ही होगा। यथा—'भक्षयति अन्नं बटुः' का प्रेरणार्थक रूप 'भक्षयति अन्नं बटुना (रामदत्तः)'

(४) विशिष्ट प्रकार के ज्ञान का बोध कराने वाली स्मृ और घ्रा जैसी धातुओं का प्रयोग द्वितीया के साथ नहीं होता। यथा, स्मरति जिघ्रति देवदत्तः, स्मारयति-घ्रापयति देवदत्तेन।

(५) कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ।२।३।८।

वे पद जो न तो किसी विशेष क्रिया के द्योतक होते हैं न किसी षष्ठीसदृश सम्बन्ध के वाचक होते हैं, न तो अन्य किसी क्रियापद को लक्षित करने वाले होते हैं, फिर भी विभक्ति के विधायक हो जाते हैं उन्हें कर्मप्रवचनीय कहे जाते हैं। इनके योग में भी प्रायः कर्मकारक का ही विधान होता है। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

(१) अनुर्लक्षणे ।१।४।८४।

जब किसी विशेष हेतु को लक्षित करना होता है, तब 'अनु' कर्मप्रवचनीय बन जाता है और 'जपमनु प्रावर्षत्' इस प्रकार के प्रयोग में हेतु को ज्ञापित करता हुआ द्वितीया विभक्ति का विधायक बन जाता है।

'जपमनु प्रावर्षत' का अभिप्राय है कि जप समाप्त होते ही वृष्टि हो गयी, (वृष्टि जप के ही कारण हुई क्योंकि जब तक जप नहीं किया गया था, तब तक वृष्टि नहीं हुई थी)

(२) तृतीयार्थे ।१।४।८५।

'अनु' से तृतीया का अर्थ द्योतित होने पर उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा 'नदीमन्ववसिता सेना'।

(३) हीने। १।४।८६।

'अनु' से 'हीन' अर्थ द्योतित होने पर भी उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—'अनु हरिं सुराः=देवता हरि के बाद ही आते हैं। (हरि से और सभी देवता कुछ उन्नीस ही पड़ते हैं।)

(४) उपोऽधिके च ।१।४।८७,

'अधिक' तथा 'हीन' अर्थ का वाचक होने पर 'उप' भी कर्मप्रवचनीय कहलाता है। जब वह 'हीन' अर्थ का द्योतक होता है, तभी द्वितीया होती है अन्यथा सप्तमी होती है। यथा—'उप हरिं सुराः' अर्थात् देवता हरि से उन्नीस पड़ते हैं। अधिक अर्थ में 'उपपरार्धे हरेर्गुणाः'— ऐसा प्रयोग होगा।

(५) लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः १।४।९०।

प्रति, परि और अनु कर्मप्रवचनीय कहे जाते हैं जब—

(१) किसी ओर अँगुलि निर्देश करना हो,

(२) 'ये, इस प्रकार के हैं', बतलाना हो,

(३) 'यह उनके हिस्से में पड़ा या पड़ता है' यह प्रकट करना हो।

(४) पुनरुक्ति दिखलानी हो।

यथा—वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् (पेड़ पर बिजली चमक रही है)।

भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनु वा (विष्णु के ये भक्त हैं)।
लक्ष्मीः हरिं प्रति (लक्ष्मी विष्णु के हिस्से में पड़ीं)।
वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति (प्रत्येक वृक्ष सींचता है)।
(ई) अभिरभागे १।४।९१।
भाग को छोड़कर अन्य समस्त उपर्युक्त अर्थों में 'अभि' कर्मप्रवचनीय कहलाता है। यथा—
हरिमभिवर्तते, भक्तो हरिमभि, देवं देवमभिषिञ्चति।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—मैं तुम्हें प्रधान पुरुष समझता हूँ। २—मैं कामदेव के मन्दिर में गया था। ३—सुन्दर मुखड़े वाली वह स्त्री उमा नाम से विख्यात हुई। ४—शिष्य अपने गुरु के चित्त का अनुसरण करता है। ५—वह इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था। ६—वह बुरे मार्ग का आश्रय लेता था। ७—उस स्त्री के स्वर्गीय होने के विषय में मुझे बिल्कुल संदेह नहीं है। ८—इस गरीबी को धिक्कार है। ९—जो हरि का भक्त नहीं है उसके ऊपर विपत्ति पड़े। १०—तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन बदला ले सकता है। ११—सहस्रनेत्र वाले इन्द्र बारह वर्ष तक नहीं बरसे। १२—तेरी प्रत्येक वस्तु मुझसे मिलती-जुलती है। १३—देवता लोग हरि से छोटे हैं। १४—राजा से पृथ्वी माँगता है। १५—चोर पर एक सौ रुपया दण्ड लगाता है। १६—वह देवदत्त से भात पकवाता है। १७—वह राम से अपनी स्त्री छुड़वाता है। १८—नौकर से चटाई बनवाता है। १९—माणवक को उसका कर्त्तव्य समझाता है। २०—मालिक गोपद्वारा बकरी को शहर में पहुँचवाता है।

हिन्दी में अनुवाद करो—

१—अमी वेदीं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रांतसंस्तीर्णदर्भाः। २—धिक् प्रहसनम्। ३—मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। ४—क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत। ५—धिक् सानुजं कुरुपतिं विगजातशत्रुम्। ६—विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम्। ७—तं क्रमेण जन्मभूमिं जातिं विद्यां कलत्रमपत्यानि विभवं वयः प्रमाणं प्रव्रज्याकारणं च स्वयमेव पप्रच्छ चन्द्रापीडः। ८—महाश्वेता कादम्बरीमनामयं पप्रच्छ। ९—जलानि सा तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम्। १०—आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या अचिरप्रवृत्तोपदेशं चलितं नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुम्। ११—एवं क्रियते युष्मदादेशः किन्तु या यस्य युज्यते भूमिका तां तथैव भावेन सर्वे वर्गाः पाठिताः। १२—महेन्द्रभवनं गच्छतोपाध्यायेन स्वमासनं प्रतिग्राहितः। १३—नलिनिके पायय कमलमधुरसं कलहंसान्। १४—पल्लविके भोजय मरिचाग्रपल्लवदलानि भवनहारीतान्। १५—नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति।

षष्ठ अभ्यास

करण कारक (तृतीया) (ने, से, द्वारा)

(२) अदादिगणीय अस् (होना) परस्मैपद

वर्तमानकाल (लट्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अस्ति (वह है)	स्तः (वे दो हैं)	सन्ति (वे हैं)
म० पु०	असि (तू है)	स्थः (तुम दो हो)	स्थ (तुम हो)
उ० पु०	अस्मि (मैं हूँ)	स्वः (हम दो हैं)	स्मः (हम हैं)

अनद्यतनभूत (लङ्)

प्र० पु०	आसीत् (वह था)	आस्ताम् (वे दो थे)	आसन् (वे थे)
म० पु०	आसीः (तू था)	आस्तम् (तुम दो थे)	आस्त (तुम थे)
उ० पु०	आसम् (मैं था)	आस्व (हम दो थे)	आस्म (हम थे)

आज्ञार्थक लोट्

प्र० पु०	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि	स्तम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाव	असाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म० पु०	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

अदादिगण की कुछ धातुएँ

लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
अद्-खाना अत्ति	आदत्	अत्स्यति	अत्तु	अद्यात्
स्ना-नहाना स्नाति	अस्नात्	स्नास्यति	स्नातु	स्नायात्
भा-चमकना भाति	अभात्	भास्यति	भातु	भायात्

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ोः—

सत्येन शपामि = मैं सत्य की शपथ करता हूँ।

सहस्रमुद्राभिः क्रीतोऽयमश्वः = हजार रुपये में खरीदा हुआ यह घोड़ा है।

वायुयानेन स इन्द्रप्रस्थं प्रस्थितः = वह हवाई जहाज से दिल्ली गया।

स शिरसा तव पादुकां वहति = वह सिर पर तेरी खराऊँ ले चलता है।

कतमेन दिग्भागेन स गतः = किस दिशा से वह गया।

पुत्रेण सह आगच्छति पिता = पुत्र के साथ पिता आता है।

अयम् बालकः रूपेण पितरम् अनुहरति = यह बालक रूप में पिता से मिलता-जुलता है।

करण कारक—तृतीया विभक्ति

(क) साधकतमं करणम् १।४।४२।

कर्त्ता की क्रिया के सम्पादन में जो प्रधान साधन है उसे करण कहते हैं।

(ख) कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८।

करण में तृतीया होती है और कर्मवाच्य या भाववाच्य में कर्त्ता में। यथा—

रामेण रावणः अहन्यत हतो वा—कर्मवाच्य

रामेण सुप्यते —भाववाच्य

श्यामः जलेन मुखं प्रक्षालयति —करणे तृतीया

तृतीया विभक्ति मुख्यतः दो अर्थों को बताती है। (१) कार्य के कर्त्ता का बोध कराती है (२) जिस साधन से कार्य का सम्पादन होता है उसका भी बोध कराती है।

(ग) प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (वार्तिक)

प्रकृति आदि शब्दों में तृतीया होती है। यथा—

प्रकृत्या दयालुः—स्वभाव से दयालु।

नाम्ना रामोऽयम्—यह राम नामक है।

सुखेन जीवति—सुखपूर्वक जीता है।

बालकः सरलतया पठति—बालक आसानी से पढ़ लेता है।

इसी प्रकार गोत्रेण काश्यपः समेनैति, विषमेणैति आदि प्रयोग होंगे।

(घ) अपवर्गे तृतीया २।३।६।

फलप्राप्ति अथवा कार्यसिद्धि को 'अपवर्ग' कहते हैं। अपवर्ग के अर्थ का बोध कराने के लिए काल-सातत्यवाची तथा मार्ग-सातत्य-वाची शब्दों में तृतीया होती है। कहने का तात्पर्य यह है जितने 'समय में या जितना 'मार्ग' चलते चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस 'समय' और 'मार्ग' में तृतीया होती है। यथा—

मासेन व्याकरणम् अधीतवान्—महीने भर में व्याकरण पढ़ लिया।

क्रोशेन पुस्तकं पठितवान्—कोस भर में पुस्तक पढ़ डाली।

दशभिः वर्षैः अध्ययनं समाप्तम्—दस वर्षों में अध्ययन समाप्त हो गया।

पञ्चविंशत्या दिवसैः अयमिमं ग्रन्थं लिखितवान्—पचीस दिन में इसने यह ग्रन्थ लिख डाला।

योजनाभ्यां कथा समाप्तवान्—दो योजन भर में कहानी समाप्त कर दी।

सप्तभिः दिनैः नीरोगो जातः—सात दिन में नीरोग हो गया।

(ङ) दिवः कर्म च १।४।४३।

दिव् धातु के साधकतम कारक की विकल्प से कर्म संज्ञा भी होती है। यथा—अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति। ठीक इसी प्रकार सम् पूर्वक ज्ञा धातु के कर्म की विकल्प से करण संज्ञा होती है। (संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि।२।३।२२।) यथा—

पित्रा पितरं वा संजानीते—पिता के मेल में रहता है।

(च) सहयुक्तेऽप्रधाने २।३।१९।

(एवं साकं सार्धसमं योगेऽपि)

सह (साथ), साकम् (साथ), सार्धम् (साथ), समम् (साथ) आदि शब्दों के योग में तृतीया होती है। यथा—

पुत्रेण सह जनकः गच्छति—पिता पुत्र के साथ जाता है।

रामः जानक्या साकं गच्छति—राम जानकी के साथ जाते हैं।

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु—मैं आपके साथ जंगलों में रहूँगा।

हनुमान् वानरैः सार्धं जानकीं मार्गयामास—हनुमान् जी ने बन्दरों के साथ जानकी को खोजा।

उपाध्यायः छात्रैः समं भ्रमति—उपाध्याय विद्यार्थियों के साथ घूमता है।

(छ) पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।२।३।३२।

पृथक् (अलग), विना, नाना शब्दों के साथ तृतीया, द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्तियों में से कोई एक हो सकती है। यथा—

रामेण, रामं, रामाद् विना दशरथो नाजीवत्—राम के बिना दशरथ नहीं जिये।

सीता चतुर्दश वर्षाणि रामं, रामेण, रामाद् वा पृथगुवास—सीता चौदह वर्ष तक राम से अलग रहीं।

नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा—स्त्री के बिना लोकयात्रा (जीवन) निष्फल है।

सूचना :—बिना अथवा वर्जन अर्थ का वाचक होने पर ही 'नाना' के योग में द्वितीया, तृतीया अथवा पञ्चमी होती है।

(ज) येनाङ्गविकारः २।३।२०।

जिस अङ्ग में विकार से शरीर विकृत दिखायी पड़े अर्थात् शरीर ही विकृत माना जाय, उसमें तृतीया होती है। यथा—

अक्ष्णा काणः—एक आँख का काना।

देवदत्तः शिरसा खल्वाटोऽस्ति—देवदत्त सिर का गंजा है।

बालकः कर्णेन बधिरः—बालक कान का बहरा है।

श्यामः पादेन खञ्जः—श्याम पैर का लंगड़ा है।

सुरेशः कट्या कुब्जः—सुरेश कमर का कुबड़ा है।

(झ) इत्थंभूतलक्षणे ।२।३।२१।

जिस चिह्न से किसी व्यक्ति या वस्तु का बोध होता है, उसमें तृतीया होती है। यथा—

जटाभिस्तापसः—जटाओं से तपस्वी मालूम पड़ता है।

स्वरेण रामभद्रमनुहरति—स्वर में राम के सदृश है।

धनदेन समस्त्यागे—त्याग में कुबेर के सदृश है। इसी प्रकार कूर्चेन यवनः, शिखया हिन्दू आदि।

(ञ) तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् । २।३।७२।

'तुला' एवं 'उपमा' इन दो शब्दों के अतिरिक्त शेष समस्त तुल्य (समान, बराबर) का अर्थ बताने वाले शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी होती है । यथा—

कृष्णस्य, कृष्णेन वा तुल्यः, सदृशः समो वा—कृष्ण के बराबर या समान ।

तुला और उपमा के साथ षष्ठी होती है । यथा—

तुला उपमा वा रामस्य नास्ति ।

(ट) हेतौ ।२।३।२३।

कारण-बोधक शब्दों में तृतीया होती है । यथा—

पुण्येन दृष्टो हरिः—पुण्य के कारण हरि दिखाई पड़े ।

अध्ययनेन वसति—अध्ययन के प्रयोजन से रहता है ।

श्रमेण धनं भवति—धन परिश्रम से होता है ।

विद्यया वर्धते बुद्धिः—बुद्धि विद्या से बढ़ती है ।

टिप्पणी—'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका' ।

(वाक्य में प्रयुक्त न होने पर भी यदि अर्थ-मात्र से क्रिया समझ ली जाय तो भी वह कारक विधान में प्रयोजिका बन जाती है) । यथा—

(१) 'अलं कृतं वा श्रमेण' । इसका तात्पर्य होगा—'श्रमेण साध्यं नास्ति' । यहाँ 'साधन' क्रिया गम्यमान है, श्रूयमाण नहीं । उस 'साधन' क्रिया के प्रति 'श्रम' कारक है । अतएव 'श्रम' में तृतीया विभक्ति हुई ।

(२) शतेन शतेन वत्सान्पाययति—सौ-सौ करके बछड़ों को दूध पिलाता है । यहाँ पर 'परिच्छिद्य' गम्यमान क्रिया है ।

(ठ) किं, कार्यं, अर्थः, प्रयोजनं, गुणः इत्यादि 'लाभ' अथवा 'आवश्यकता' वाचक शब्दों का तथा इसी अर्थ का बोध कराने वाली 'किम्' पूर्वक 'कृ' धातु का जब प्रयोग होता है, तब जिससे लाभ होना अथवा आवश्यकता पायी जाती है उसमें तृतीया होती है और जिसको लाभ होने वाला होता है अथवा जिसे आवश्यकता पड़ती है, वह षष्ठी में रक्खा जाता है । यथा—देवपादानां सेवकैर्न प्रयोजनम्—श्रीमान् को नौकरों की आवश्यकता नहीं है ।

तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम्—धनी लोगों का कोई कोई काम तिनके से भी सध जाता है ।

किं तया क्रियते धेन्वा—उस गाय से क्या करना है ?

किं तया दृष्ट्या—उसे देखने से क्या लाभ ?

अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः—अनुरागयुक्त परन्तु मूर्ख नौकर से क्या लाभ ?

टिप्पणी—'यजेः कर्मणः करण संज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्म संज्ञा' (वार्त्तिक) यज् धातु के कर्म की करण संज्ञा होती है । और सम्प्रदान की कर्म संज्ञा होती है । यथा—

पशुना रुद्रं यजते—भगवान् रुद्र को पशु चढ़ाता है ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—कुबेर के साथ मेरी मित्रता नहीं है।
२—वह सुन्दरता में दूसरे धर्म के समान है।
३—तलवार से सैनिक समझा।
४—वह भाई के साथ रात से रहता है।
५—धनहीन दुःख से जीते हैं।
६—राम ने डंडे से बन्दर को मारा।
७—विद्यार्थी कलम से पत्र लिखता है।
८—श्यामा ने सरलता से पुस्तक पढ़ ली।
९—उसका नाम गोपाल है।
१०—उसका गोत्र भारद्वाज है।
११—उसने दो वर्ष में रामायण पढ़ी।
१२—वह दस दिन में नीरोग हुआ।
१३—वह धर्म से बढ़ता है।
१४—श्रम से वह कार्य सिद्ध नहीं होगा।
१५—विवाद मत करो।
१६—पुरुषार्थ के बिना भाग्य नहीं बढ़ता।
१७—विमान से आकाश में घूमता है।
१८—धन से पुत्र आहत होता है।
१९—तुमने यह किताब कितने मूल्य में खरीदी?
२०—वह विधिपूर्वक पढ़ता है।
२१—उसकी विद्वत्ता से विस्मित हूँ।
२२—दुर्जन थोड़े से प्रसन्न होता है।
२३—मैं असत्य भाषण से लज्जित हूँ।
२४—धन से हीन तिरस्कृत होता है।
२५—इस बात से क्या लाभ?

हिन्दी में अनुवाद करो

१—अलमलं बहु विकल्प्य। २—अयि पंचालतनये अलं विषादेन किं बहुना। ३—कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान्। ४—दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः। ५—सुहृज्जनेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्रेमि। ६—विनान्यैर्वीरैः सुखानि बहुमानेऽतिपदम्। ७—तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु तथा सह तानि तान्यपरिसमाप्तान्युत्सवदिनानि केवलं चन्द्रमाः कादम्बर्या सह कादम्बरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु पुंडरीकेण सह पुंडरीकोऽपि चन्द्रमसा सह परस्परावियोगेन सुखान्यनुभवन्तः परां कोटिमानंदस्याध्यगच्छन्। ८—पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः। ९—विष्णुना सदृशो

वीर्ये क्षमया पृथिवीसमः। १०—गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते। ११—किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा।

सप्तम अभ्यास

सम्प्रदान कारक (चतुर्थी) (को, के लिए)

(३) जुहोत्यादिगणीय दा (देना) परस्मैपद

वर्तमानकाल (लट्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	ददाति	दत्तः	ददति
म० पु०	ददासि	दत्थः	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्वः	दद्मः

भूतकाल (लङ्)

प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म० पु०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

भविष्यत् काल (लृट्)

प्र० पु०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

आज्ञार्थक (लोट्)

प्र० पु०	ददातु	दत्ताम्	ददतु
म० पु०	देहि	दत्तम्	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म० पु०	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

इस गण की कुछ अन्य धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
धा (धारण करना)	दधाति	अदधात्	धास्यति	दधातु	दध्यात्
भी (डरना)	बिभेति	अबिभेत्	भेष्यति	बिभेतु	बिभीयात्
हा (छोड़ना)	जहाति	अजहात्	हास्यति	जहातु	जह्यात्

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

१—बालकः मिष्टान्नेभ्यः स्पृहयति—बालक मिठाइयाँ चाहता है।

२—देवदत्तः भृत्याय क्रुध्यति—देवदत्त नौकर पर क्रोध करता है।

३—रामः श्यामाय सहस्रं धारयति—राम श्याम का हजार रु० धारता है।
४—मुक्तये हरिं भजति—मुक्ति के लिए भगवान् को भजता है।
५—नमः कमलनाभाय—भगवान् विष्णु को नमस्कार है।
६—प्रभवति मल्लो मल्लाय—पहलवान का जोड़ पहलवान होता है।
७—ते देवताभ्यः प्रणमन्ति—वे देवताओं को प्रणाम करते हैं।
८—नमस्कुर्मो नृसिंहाय—हमलोग नृसिंह को नमस्कार करते हैं।

सम्प्रदानकारक—चतुर्थी

(क) कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२।

दान के कर्म के द्वारा जिसे कर्त्ता सन्तुष्ट करना चाहता है, वह पदार्थ सम्प्रदान कहा जाता है।

परन्तु

'अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया' (वार्त्तिक) अशिष्टव्यवहार में दान का पात्र सम्प्रदान नहीं होगा, चतुर्थी का अर्थ होने पर भी उसमें तृतीया ही प्रयुक्त होगी। यथा—

दास्या संयच्छते कामुकः।

(ख) क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् (वार्तिक)

क्रिया के द्वारा भी जो अभिप्रेत होता है, उसे सम्प्रदान समझा जाता है। यथा—'पत्ये शेते'। यहाँ पति को अनुकूल बनाने की क्रिया का अभिप्रेत पति ही है, इसलिए 'पति' सम्प्रदान होगा।

(ग) चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।३१।

सम्प्रदान में चतुर्थी होती है। यथा—

विप्राय गां ददाति—विप्र को गाय देता है।

सूचना :—सम्प्रदान का तात्पर्य है 'अच्छा दान' अर्थात् जिसमें दी हुई वस्तु सर्वदा के लिए दे दी जाती है और दान-कर्त्ता के पास वापस नहीं आती।

स रजकस्य वस्त्रं ददाति—वह धोबी को कपड़ा देता है।

यहाँ कर्त्ता धोबी को कपड़ा हमेशा के लिए नहीं देता, फिर वापस ले लेता है। अतः 'रजकस्य' में चतुर्थी नहीं होगी।

(घ) रुच्यर्थानां प्रीयमाणः १।४।३३।

रुच् धातु तथा रुच् अर्थ की धातुओं के साथ चतुर्थी होती है। यथा—

हरये रोचते भक्तिः—हरि को भक्ति अच्छी लगती है।

बालकाय मोदकं रोचते—बालक को लड्डू अच्छा लगता है।

सम्यक् भुक्तवते पुरुषाय भोजनं न स्वदते—अच्छी तरह खाए हुए पुरुष को भोजन स्वादिष्ट नहीं लगता।

(ङ) धारेरुत्तमर्णः ।१।४।३५।

धारि धातु (ऋण लेना) के साथ ऋणदाता में चतुर्थी होती है । यथा—

देवदत्तो रामाय शतं धारयति—देवदत्त ने राम से एक सौ उधार लिया है ।

रमेशः अश्वपतये लक्षं धारयति—रमेश ने अश्वपति से एक लाख उधार लिया है ।

(च) क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः । १।४।३७।

क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य तथा असूय धातुओं के योग में तथा इन अर्थ की धातुओं के योग में जिस पर क्रोध किया जाता है, उसमें चतुर्थी होती है । यथा—

स्वामी भृत्याय क्रुध्यति—मालिक नौकर पर क्रोध करता है ।

दुष्टाः सज्जनेभ्यः असूयन्ति—दुष्टलोग सज्जनों से असूया करते हैं ।

दुर्योधनः पाण्डवेभ्यः ईर्ष्यतिस्म—दुर्योधन पाण्डवों से ईर्ष्या करता था ।

शठाः सज्जनेभ्यः द्रुह्यन्ति—शठ सज्जनों से द्रोह करते हैं ।

गुरुः शिष्याय अकुप्यत्—गुरु ने शिष्य पर कोप किया ।

(छ) क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म । १।४।३८।

जब क्रुध् तथा द्रुह् धातु उपसर्ग सहित होती हैं, तब जिसके प्रति कोप या द्रोह किया जाता है, वह कर्म संज्ञा वाला होता है, सम्प्रदान नहीं । यथा—

क्रूरमभिक्रुध्यति—संद्रुह्यति ।

(ज) प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ।१।४।४०।

प्रति और आ पूर्वक श्रु धातु के साथ प्रतिज्ञा करने अर्थ में चतुर्थी होती है ।

यथा—विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा (गाय देने की प्रतिज्ञा करता है) ।

(झ) परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् । १।४।४४।

जिस निश्चित मूल्य या बँधी हुई मजदूरी पर कोई पुरुष नियुक्त किया जाता है वह मूल्य या मजदूरी तृतीया अथवा चतुर्थी में रक्खी जाती है । यथा—

शतेन शताय वा परिक्रीतोऽयं दासः—यह नौकर सौ रुपये में खरीद लिया गया है ।

(ञ) तुमर्थाच्च भाववचनात् । २।३।१५।

किसी धातु में तुमुन प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है (यथा गन्तुम्, पातुम् आदि), उसको प्रकट करने के लिए उसी धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा का प्रयोग करने पर उसमें चतुर्थी होती है । यथा—

यागाय याति (यष्टुं याति)—यज्ञ करने के लिए जाता है ।

इस उदाहरण में 'याग' 'यज्' धातु से बना हुआ भाववाचक शब्द है । यज् धातु में तुमुन् प्रत्यय के जोड़ने से 'यष्टुम्' रूप बनता है, जिसका अर्थ 'यज्ञ करने के लिए' होता है । इसी अर्थ को व्यक्त करने के लिए इस भाववाचक शब्द में चतुर्थी कर दी गई है ।

इसी प्रकार—

शयनाय इच्छति, मरणाय गङ्गातटं गच्छति, समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्, अतिथेः सखीप्रत्यानयनाय ।

(ट) स्पृहेरीप्सितः । १।४।३६।

स्पृह् धातु के योग में चाही हुई वस्तु चतुर्थी में रक्खी जाती है। यथा—

पुष्पेभ्यः स्पृहयति—फूलों को चाहता है।

परिक्षीणो यवानां प्रसृतये स्पृहयति—गरीब आदमी मुट्ठी भर जौ चाहता है।

सूचना :—स्पृह् धातु से प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्दों के योग में कभी-कभी चतुर्थ्यन्त पद का प्रयोग होता है। यथा—

भोगेभ्यः स्पृहयालवः—भोगों के इच्छुक।

कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम्—फिर दूसरे गृहस्थ पुत्रों की इच्छा कैसे करेंगे?

साधारणतया स्पृह् धातु से प्रत्यय निष्पन्न शब्दों के योग में सप्तम्यन्त पद ही प्रयुक्त होता है। यथा—

स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।

(ठ) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्तिक)

जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है अथवा जिसको बनाने के लिए कोई दूसरी वस्तु कायम रहती है अथवा प्रयुक्त होती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है। यथा—

काव्यं यशसे—काव्य यश के लिए होता है।

धनाय प्रयतते—धन के लिए प्रयत्न करता है।

मुक्तये हरिं भजते—मुक्ति के लिए हरि को भजता है।

शकटाय दारु—गाड़ी बनाने के लिए लकड़ी।

आभूषणाय सुवर्णम्—आभूषण बनाने के लिए सोना।

अवहननाय उलूखलम्—कूटने के लिए ओखली।

(ड) उत्पातेन ज्ञापिते च (वार्तिक)

किसी अशुभ सूचक घटना द्वारा जिस वस्तु का पूर्वरूप दिखायी देता है वह चतुर्थी में रक्खी जाती है। यथा—

वाताय कपिला विद्युत्—रक्ताभ बिजली तूफान की द्योतक है।

(ढ) हितयोगे च (वार्तिक)

हित और सुख के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

ब्राह्मणाय हितं सुखं वा—ब्राह्मण के लिए हितकर वा सुखकर।

(ण) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः २।३।१४।

यदि तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का अर्थ गुप्त हो तो कर्म में चतुर्थी होती है। यथा—

फलेभ्यो याति (फलान्याहर्तुं याति) वह फलों के लिए (फलों को लाने के लिए) जाता है।

वनाय गां मुमोच (वनं गन्तुं गां मुमोच) उसने गाय को जंगल के लिए छोड़ दिया।

(त) नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च २।३।१६।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् (तथा पर्याप्त अर्थ वाले अन्यशब्द) तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है। यथा—

रामाय नमः—राम को नमस्कार।

गंगायै नमः—गंगा नदी को नमस्कार।

स्वस्ति भवते—आपका कल्याण हो।

प्रजाभ्यः स्वस्ति—प्रजाओं का कल्याण हो।

अग्नये स्वाहा—अग्नि को यह आहुति है।

पितृभ्यः स्वधा

इन्द्राय वषट्

दैत्येभ्यो हरिः अलम्—हरि दैत्यों के लिए पर्याप्त हैं।

(यहाँ अलम् का अर्थ पर्याप्त है निषेध नहीं)

टिप्पणी—१—'नमः' पूर्वक कृधातु के साथ साधारणतया द्वितीया आती है, परन्तु कभी कभी चतुर्थी भी। यथा—मुनित्रयं नमस्कृत्य (तीनों मुनियों को नमस्कार करके) परन्तु नमस्कुर्मो नृसिंहाय।

२—'प्रणाम करना' इस अर्थ का बोध कराने वाली प्रणिपत् और प्रणम् इत्यादि धातुओं के योग में द्वितीया अथवा चतुर्थी आती है। यथा—

धातारं प्रणिपत्य—ब्रह्मा को प्रणाम कर।

इसी प्रकार आर्यं प्रणिपत्य, तस्मै प्रणिपत्य नन्दी आदि।

३—अलम् (पर्याप्त, करने के लिए समर्थ) के अर्थ वाचक 'प्रभु' और 'शक्त' शब्द तथा प्र पूर्वक 'भू' धातु के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

प्रभुर्मल्लो मल्लाय, शक्तो मल्लो मल्लाय, प्रभवति मल्लो मल्लाय (पहलवान का जोड़ पहलवान होता है)।

४—आशीर्वाद प्रकट करने तथा स्वागत करने में 'स्वागतम्', 'कुशलम्' आदि शब्दों के योग में चतुर्थी होती है। यथा—देवदत्ताय कुशलम्।

५—'कहना' अर्थ का बोध कराने वाली कथ्, ख्या, शंस् और चक्ष् तथा 'नि' पूर्वक विद् धातु का प्रेरणार्थक और इसी अर्थ का बोध कराने वाली अन्य धातुओं के योग में वह व्यक्ति सम्प्रदान कहलाता है जिससे कुछ कहा जाता है। यथा—

आर्यै कथयामि ते भूतार्थम्—देवि! तुमसे सत्य कहता हूँ।

यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ—जिससे इन्होंने वेद गाया।

एहि इमां वनस्पतिसेवां काश्यपाय निवेदयावः—आओ, चलो वृक्षों की इस सेवा को हम लोग काश्यप को बतला दें।

६—'भेजना' अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के योग में जिसे कोई वस्तु भेजी जाती है वह व्यक्ति सम्प्रदान होता है, किन्तु जिस स्थान पर वह वस्तु भेजी

जाती है वह कर्म संज्ञक होता है। यथा—भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः—रघु के पास भोज द्वारा एक दूत भेजा गया।

(थ) मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु २।३।१७।

अनादर अर्थ में मन धातु के साथ द्वितीया अथवा चतुर्थी होती है।

यथा—न त्वां तृणं तृणाय वा मन्ये—मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता।

परन्तु जहाँ अनादर न दिखाकर समता या तुलना मात्र प्रकट की जाती है, वहाँ केवल द्वितीया ही होती है। यथा—

त्वां तृणं मन्ये—मैं तुम्हें तृणवत् समझता हूँ।

(द) राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः १।४।३९।

'शुभाशुभकथन' अर्थ में विद्यमान राध् और ईक्ष् धातुओं के प्रयोग में उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है जिसके विषय में प्रश्न किया जाता है।

यथा—कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—महात्मा लोग ज्ञान के इच्छुक होते हैं। २—यह योद्धा उस योद्धा से लड़ने में समर्थ है। ३—कुपुत्र की कौन स्पृहा करेगा? ४—पिता जी को नमस्कार, पुत्रों को आशीर्वाद। ५—गर्ग जी श्रीकृष्ण के शुभाशुभ का विचार कर रहे हैं। ६—काव्य यश के लिए, धन के लिए, व्यवहार ज्ञान के लिए होता है। ७—ब्रह्मा भी इनके लिए समर्थ नहीं हैं। ८—फूलों के लिए उद्यान में जाता है। ९—मैं तुम्हें तिनके के समान भी नहीं समझता। १०—मुझ भूखे को सन्तुष्ट करने के लिए यह गाय पर्याप्त है। ११—विश्व की रचना करने वाले आपको नमस्कार है। १२—हिरन की आवाज मांस के भोजन की प्राप्ति सूचित करती है (मांसौदनाय व्याहरति)। १३—सुवर्ण कुण्डल नामक आभूषण बनाने के काम आता है। १४—काकुत्स्थ ने उन लोगों से विघ्नों को हटाने की प्रतिज्ञा कर दी। १५—वह हरि से द्रोह करता है अथवा डाह करता है। यह घोड़ा सौ रुपये में खरीद लिया गया है। १७—हम लोग नृसिंह को नमस्कार करते हैं। १८—यज्ञदत्त को लड्डू अच्छा लगता है। १९—दान करने के लिए धन कमाता है। २०—राम श्याम को पुस्तक देता है। २१—मैं धन नहीं चाहता (स्पृह) बल्कि अमर यश। २२—वह मुझसे घृणा करता है। २३—विदेहराज के पास दूत भेज कर समाचार उन्हें बताओ। २४—व्यर्थ ही मुझ पर क्रोध न कीजिए।

हिन्दी में अनुवाद करो—

१—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै। २—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे। ३—पीता भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत्। ४—तत्किमसंविदानेव जामात्रे कुप्यसि। ५—प्रतिश्रुतं तेन तस्मै स्वमुखंतिसुंदर्याः प्रदानम्। ६—नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृतः केवलात्मने। गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे। ७—निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः। ८—उपदेशो हि मूर्खाणां

प्रकोपाय न शांतये । ९—दुदोह गां स यज्ञाय । १०—किं बहुना सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय । ११—अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगंधिः स्वदते तुषारा ।

अष्टम अभ्यास

अपादान कारक (पञ्चमी) से

(४) दिवादिगणीय जन् (पैदा होना) आत्मनेपद

वर्तमानकाल (लट्)

प्र० पु०	जायते	जायेते	जायन्ते
म० पु०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उ० पु०	जाये	जायावहे	जायामहे

भूतकाल (लङ्)

प्र० पु०	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
म० पु०	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उ० पु०	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

भविष्यत्काल (लृट्)

प्र० पु०	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते इत्यादि ।

आज्ञार्थक लोट्

प्र० पु०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
म० पु०	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उ० पु०	जाये	जायावहै	जायामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
म० पु०	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उ० पु०	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

दिवादिगणीय कुछ धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
विद्—होना	विद्यते	अविद्यत	वेत्स्यते	विद्यताम्	विद्येत
नृत—नाचना	नृत्यति	अनृत्यत्	नर्तिष्यति	नृत्यतु	नृत्येत्
नश्—नाश होना	नश्यति	अनश्यत्	नशिष्यति	नश्यतु	नश्येत्

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

(१) पापात् जुगुप्सते—पाप से घृणा करता है ।
(२) धर्मात् प्रमाद्यति—धर्म में प्रमाद करता है ।
(३) हिमालयात् गङ्गा प्रभवति—हिमालय से गङ्गा निकलती है ।
(४) बालकः सर्पात् बिभेति—लड़का सांप से डरता है ।
(५) मातुर्निलीयते कृष्णः—कृष्ण माता से छिपते हैं ।
(६) कामात् क्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध पैदा होता है ।
(७) चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः—चैत से पहले फाल्गुन होता है ।

अपादान कारक-पञ्चमी

(क) ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४।

जिस स्थान, पुरुष या वस्तु से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में कोई वस्तु अलग हो उस स्थान, पुरुष या वस्तु को अपादान कहते हैं। यथा—गृहात् गच्छति—घर से जाता है।

यहाँ जाने वाले का घर से वियोग हो रहा है, अतएव 'गृह' अपादान है।

(ख) अपादाने पञ्चमी २।३.२८।

अपादान में पञ्चमी होती है। यथा—

सः प्रासादात् अपतत्—वह प्रासाद से गिर पड़ा।

वृक्षात् पर्णानि पतन्ति—पेड़ से पत्ते गिरते हैं।

(ग) जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वार्तिक)

जुगुप्सा (घृणा), विराम (बन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड़ देना, हटना), प्रमाद (भूल) अर्थ की धातुओं और शब्दों के साथ पञ्चमी होती है। यथा—पापात् जुगुप्सते—पाप से घृणा करता है। इसी प्रकार 'स्वाधिकारात् प्रमत्तः', 'प्राणघातात् निवृत्तिः', 'धर्मात् मुह्यति' आदि।

विशेष—जिसके विषय में भूल या असावधानी होती है, उसमें सप्तमी का भी प्रयोग किया जाता है। यथा—

न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः।

(घ) भीत्रार्थानां भयहेतुः १।४।२५।

भय और रक्षा अर्थ की धातुओं के साथ भय के कारण में पञ्चमी होती है। यथा—

चौराद् बिभेति—चोर से डरता है।

सर्पाद् भयम्—सर्प से डर है।

उपर्युक्त उदाहरणों में भय के कारण 'चोर' और 'साँप' हैं, अतएव ये अपादान हैं।

रक्ष मां नरकपातात्—नरक में गिरने से मुझे बचाओ।

भीमाद् दुःशासनं त्रातुम्—भीम से दुःशासन को बचाने के लिए।

(ङ) पराजेरसोढः १।४।२६।

'परा' पूर्वक 'जि' धातु के योग में जो वस्तु या मनुष्य असहनीय होता है, वह अपादान होता है। यथा—अध्ययनात् पराजयते—वह अध्ययन से भागता है।

विशेष—हराने के अर्थ में द्वितीया ही होती है। यथा—

शत्रून् पराजयते—शत्रुओं को पराजित करता है।

(च) वारणार्थानामीप्सितः १।४।२७।

जिस वस्तु से किसी को हटाया जाता है, उसमें पञ्चमी होती है।

यथा—यवेभ्यो गां वारयति—जौ से गाय को रोकता है।

पापात् निवारयति—पाप से दूर रखता है।

(छ) अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति १।४।२८।

जिससे छिपना चाहता है, उसमें पञ्चमी होती है। यथा—

मातुर्निलीयते श्रीकृष्णः—श्रीकृष्ण अपनी माता से छिपते हैं।

यहाँ पर कृष्ण अपने को 'माता से' छिपाते हैं, अतएव 'माता से' अपादान कारक हुआ।

(ज) आख्यातोपयोगे १।४।२९।

जिससे नियमपूर्वक विद्या आदि पढ़ी जाय, उसमें पञ्चमी होती है।

यथा—उपाध्यायाद् अधीते—उपाध्याय से पढ़ता है।

कौशिकाद् विदितशापया—विश्वामित्र से शाप ज्ञान करके उसने।

अध्यापकात् वङ्गभाषां पठति—अध्यापक से बङ्गाली भाषा पढ़ता है।

तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि—उन लोगों से वेद पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि के यहां से इस स्थान पर चली आई हूँ।

(झ) जनिकर्तुः प्रकृतिः ।१।४।३०।

जन् धातु के कर्ता का मूल कारण अपादान होता है। यथा—

गोमयाद् वृश्चिको जायते—गोबर से बिच्छू पैदा होता है।

प्राणाद् वायुरजायत—श्वास से हवा पैदा हुई।

यहाँ 'जायते' और 'अजायत' का कर्ता क्रमशः 'गोमय' और 'प्राण' हैं, अतएव 'गोमय' और 'प्राण' अपादान हैं।

(ञ) भुवः प्रभवश्च ।१।४।३१।

भू धातु के कर्ता का उद्गम स्थान अथवा प्रादुर्भाव स्थान अपादान होता है। यथा—

हिमवतो गङ्गा प्रभवति—गङ्गा हिमालय से निकलती हैं।

लोभात् क्रोधः प्रभवति—लोभ से क्रोध पैदा होता है।

विशेष—'पैदा होना' अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के उद्भव स्थान में सप्तमी होती है। यथा—

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ।

(ट) ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च (वार्तिक)।

जब ल्यप् अथवा क्त्वा प्रत्ययान्त क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं की जाती, प्रत्युत छिपी रहती है तो कर्म और अधिकरण में पञ्चमी होती है। यथा—

प्रासादात् प्रेक्षते—प्रासादमारुह्य प्रेक्षते—महल से देखती है अर्थात् महल पर चढ़कर देखती है।

आसनात् प्रेक्षते—आसने उपविश्य स्थित्वा वा प्रेक्षते—आसन से देखता है अर्थात् आसन पर बैठ कर देखता है।

प्रश्न और उत्तर में भी पञ्चमी आती है। यथा—कुतो भवान्, पाटलिपुत्रात्—आप कहाँ से आ रहे हैं—पाटलिपुत्र से (आ रहा हूँ)।

(ठ) यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी (वार्तिक)

स्थान और समय की दूरी नापने में पञ्चमी होती है।

तद्युक्ताध्वनः प्रथमासप्तम्यौ—

जितनी स्थान वाचक दूरी दिखायी जाती है वह प्रथमा विभक्ति या सप्तमी विभक्ति में रक्खी जाती है। यथा—

प्रयागात् प्रतिष्ठानपुरं क्रोशोऽस्ति अथवा प्रयागात् प्रतिष्ठानपुरं क्रोशेऽस्ति—प्रयाग से प्रतिष्ठानपुर एक कोस है।

कालात् सप्तमी च वक्तव्या—जितनी 'कालवाचक दूरी' दिखायी जाती है, वह केवल सप्तमी में रक्खी जाती है। यथा—कार्तिक्या आग्रहायणी मासे—कार्तिकी पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है। उपर्युक्त प्रथम उदाहरण में जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह 'प्रयाग' है अत एव 'प्रयाग' पञ्चमी विभक्ति में रक्खा गया है और जितनी दूरी दिखाई गई है वह 'कोस' है, अतएव 'कोस' प्रथमा अथवा सप्तमी में रक्खा गया है।

दूसरे उदाहरण में 'कार्तिकी पूर्णिमा' से दूरी दिखायी गयी है अतएव उसमें पञ्चमी हुई है और 'एक महीने' की दूरी दिखाई गई अतएव 'महीने' में सप्तमी हुई।

(ड) पञ्चमी विभक्ते ।२।३।४२।

ईयसुन् अथवा तरप् प्रत्ययान्त विशेषण के द्वारा अथवा साधारण विशेषण या क्रिया के द्वारा जिससे तुलना की जाती है, उसमें पञ्चमी होती है। यथा—

प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम्। वर्धनाद्रक्षणं श्रेयः तदभावे सदप्यसत्॥

इस उदाहरण में 'बढ़ाने से रक्षा करना अच्छा है' यहाँ बढ़ाने से रक्षा करने का भेद प्रदर्शित किया गया है, अतएव बढ़ाने में पञ्चमी हुई है। इसी प्रकार 'माता गुरुतरा भूमेः खात्पितोच्चतरस्तथा'—भूमि से माँ बड़ी है, आकाश से पिता ऊँचा है।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्—दूसरे के धर्म से अपना धर्म अच्छा है।

मौनात् सत्यं विशिष्यते—मौन से सत्य श्रेष्ठ है।

(ढ) अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।२।३।२९।

अन्य, आरात्, इतर (तथा अन्य अर्थ वाले और भी शब्द), ऋते, पूर्व आदि दिशावाची शब्द (इनका देश, काल अर्थ हो तो भी), प्राक् आदि शब्दों के साथ पञ्चमी होती है। यथा—

अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्।

आराद्वनात्।

ऋते कृष्णात् ।

प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात् ।

चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः ।

दक्षिणा ग्रामात् ।

दक्षिणाहि ग्रामात् ।

(ण) पञ्चम्यपाङ्परिभिः ।२।३।१०।

कर्मप्रवचनीयसंज्ञक अप, आङ् और परि के योग में पञ्चमी होती है। यथा—अप परि वा हरेः संसारः—भगवान् को छोड़कर अन्यत्र संसार रहता है।

आजन्मनः आ मरणात् स्वकर्त्तव्यं पालयेन्नरः—मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु तक अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

(त) प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ।२।३।११।

प्रतिनिधि एवं प्रतिदान (विनिमय) के अर्थ में कर्मप्रवचनीयसंज्ञा प्राप्त करने वाले 'प्रति' के योग में पञ्चमी होती है। यथा—प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति—प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं।

तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्—तिलों के बदले में उड़द देता है।

(थ) विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ।२।३।२५।

हेतु या कारण प्रकट करने वाले गुणवाचक अस्त्रीलिङ्ग शब्दों में विकल्प से तृतीया या पञ्चमी होती है। यथा—

जाड्येन जाड्यात् वा बद्धः—वह अपनी मूर्खता के कारण पकड़ा गया।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—वह चावलों के बदले गेहूँ देता है। २—काशी पटना से पश्चिम है। ३—कृष्ण के सिवा कौन मुझे बचावे। ४—मथुरा वाले पटना वालों से धनी होते हैं। ५—तू कहाँ से आता है? मैं विद्यालय से आता हूँ। ६—अगस्त्य मुनि से वेदान्त पढ़ने के लिए यहाँ आया हूँ। ७—मैंने गुरु से अभिनय की विद्या को सीखा है। ८—ब्रह्म के मुख से अग्नि उत्पन्न हुई (मुखादग्निरजायत) और मन से चन्द्रमा (चन्द्रमा मनसो जातः)। ९—शिशु महल से गिर पड़ा। १०—माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। ११—भक्तिमार्ग से ज्ञानमार्ग अच्छा है। १२—प्रयाग नगर से गंगा-यमुना का संगम कोस भर है। १३—चोर सिपाही से छिपता है। १४—प्रारम्भ से सुनना चाहता हूँ। १५—मैं मृत्यु से भयभीत नहीं होता। १६—गङ्गा हिमालय से निकलती है। १७—बेटा, इससे दूर हटो। १८—जीवहिंसा से अलग हटे रहना। १९—ससुर से लजाती है। २०—चेतनावस्था मूर्च्छा से भी अधिक कष्टदायक हुयी। २१—सत्य सहस्रों अश्वमेधयज्ञों से बढ़कर है। २२—मेरे ऊपर तूने जो कृपा तथा गुरु के प्रति जो श्रद्धा दिखाई उसके कारण मैं तुझसे प्रसन्न हूँ। २३—गांव से दूर नदी है। २४—विद्यालय के पास उद्यान है। २५—ईश्वर छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा है।

हिन्दी में अनुवाद करो

१—एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते ॥
२—लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्यात् कामात्क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥
३—श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥
४—प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
५—क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥
६—उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ।
७—अनुष्ठितनिदेशोऽपि सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये ।
८—सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमंति धीराः ।
९—बुद्धिश्च निसर्गपट्वी तवेतरेभ्यः प्रतिविशिष्यते ।
१०—संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।

नवम अभ्यास

अधिकरण कारक (सप्तमी) में, पर

(५) स्वादिगणीय श्रु (सुनना) परस्मैपद

वर्तमान काल (लट्)

प्र० पु०	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
म० पु०	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उ० पु०	शृणोमि	शृणुवः, शृण्वः	शृणुमः, शृण्मः

अनद्यतन भूतकाल (लङ्)

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
म० पु०	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम, अशृण्म

भविष्यकाल (लृट्)

प्र० पु०	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति आदि

आज्ञार्थक लोट्

प्र० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
म० पु०	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उ० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
म० पु०	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० पु०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

स्वादिगणीय कुछ धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
शक्-सकना	शक्नोति	अशक्नोत्	शक्ष्यति	शक्नोतु	शक्नुयात्
क्षि-कम होना	क्षिणोति	अक्षिणोत्	क्षेष्यति	क्षिणोतु	क्षिणुयात्
आप्-पाना	आप्नोति	आप्नोत्	आप्स्यति	आप्नोतु	आप्नुयात्

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

किं न खलु बालेऽस्मिन् स्निह्यति मे मनः-मेरा मन इस लड़के में क्यों स्नेह करता है ?

कथं मातरि अपि एवं शाठ्येन व्यवहरसि ?—ओह, क्या माता के प्रति भी इस प्रकार शठतापूर्वक व्यवहार करता है ?

कथं माम् अस्मिन् पापकर्मणि नियुङ्क्ते भवान्—क्यों मुझे आप इस पापकर्म में लगाते हैं ?

तिलेषु तैलम् अस्ति—प्रत्येक तिल में तेल है।

हरिणशावकेषु शरान् मुञ्चति—हरिण के बच्चों पर बाण छोड़ता है।

असत्यवादिनि कोऽपि न विश्वसिति—मिथ्याभाषी में कोई विश्वास नहीं करता है।

न तेषु रमते बुधः—ज्ञानी उनमें रमण नहीं करता है।

अधिकरण कारक—सप्तमी

(क) आधारोऽधिकरणम् ।१।४।४५। सप्तम्यधिकरणे च ।२।३।३६। कर्त्ता की क्रिया का जो आधार अर्थात् कर्त्ता की क्रिया जिस स्थान पर अथवा जिस समय में हो उसको 'अधिकरण' कहते हैं और औपश्लेषिक, वैषयिक तथा अभिव्यापक रूप से आधार तीन प्रकार का होता है—

(१) औपश्लेषिक आधार—जिसके साथ आधेय का भौतिक संश्लेष हो; यथा, 'कटे आस्ते'—इस उदाहरण में 'चटाई' से बैठने वाले का भौतिक संश्लेष स्पष्ट रूपेण दिखाई देता है।

(२) वैषयिक आधार—जिसके साथ आधेय का बौद्धिक संश्लेष हो यथा—'मोक्षे इच्छास्ति'—इस उदाहरण में इच्छा का 'मोक्ष' में अधिष्ठित होना पाया जाता है।

(३) अभिव्यापक आधार—जिसके साथ आधेय का व्याप्यव्यापक सम्बन्ध हो, यथा, 'तिलेषु तैलम्'—यहाँ तेल तिल में एक जगह अलग नहीं दिखाई पड़ सकता पर निश्चयात्मक रूप से वह समस्त तिलों में व्याप्त है।

इसी प्रकार क्रिया के आधार की भाँति उसके समय में भी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। यथा—

आषाढस्य प्रथमदिवसे—आषाढ़ के पहले ही दिन।

(ख) क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वार्तिक)

क्त प्रत्ययान्त के अन्त में इन् प्रत्यय होगा तो उसके कर्म में सप्तमी विभक्ति होगी। यथा—अधीती व्याकरणे।

(ग) साध्वसाधुप्रयोगे च (वार्तिक)

'साधु' और 'असाधु' शब्दों के योग में, जिसके प्रति साधुता अथवा असाधुता दिखाई जाती है, वह सप्तमी में रखा जाता है। यथा—

मातरि साध्वसाधुर्वा—अपनी माता के प्रति सद्व्यवहार करता है अथवा दुर्व्यवहार।

(घ) निमित्तात्कर्मयोगे (वार्तिक)

जिस निमित्त के लिए कोई कर्म किया जाता है, उसमें सप्तमी होती है। यथा—

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥

लोग चमड़े के लिए बाघ, दाँत के लिए हाथी, केश के लिए चमरी और अण्डकोश के लिए कस्तूरी मृग को मारते हैं।

(ङ) यतश्च निर्धारणम् ।२।३।४१।

जब किसी समान जाति के समुदाय में किसी विशेषण द्वारा एक की विशेषता दिखलायी जाती है, तब समुदाय-वाचक शब्द में षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

कविषु कालिदासः श्रेष्ठः या कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः	कवियों में कालिदास सबसे बड़े हैं।
छात्रेषु श्यामः पटुः या छात्राणां श्यामः पटुः	विद्यार्थियों में श्याम पटु है।
गोषु कृष्णा बहुक्षीरा या गवां कृष्णा बहुक्षीरा	गायों में काली गाय बहुत दूध देनेवाली होती है।

(च) सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये २।३।७।

समय और मार्ग का अन्तर बताने वाले शब्दों में पञ्चमी अथवा सप्तमी होती है। यथा—इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्—यहां स्थित होकर यह एक कोश पर स्थित लक्ष्य को वेध देगा।

अद्य भुक्त्वाऽयं त्र्यहे त्र्यहाद्वा भोक्ता—आज खाकर यह फिर तीन दिन में (अथवा तीन दिनों के बाद) खाएगा।

(छ) प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च २।३।४४।

प्रसित (अत्यन्त इच्छुक) और उत्सुक (अत्यन्त इच्छुक) शब्दों के साथ सप्तमी अथवा तृतीया विभक्ति आती है। यथा—

निद्रायां निद्रया वा उत्सुकः—निद्रा के लिए अत्यन्त इच्छुक।

मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे—मेरा मन आज्ञा पाने के लिए अत्यन्त उत्सुक है।

(ज) शब्दकोषों में 'के अर्थ में' इस अर्थ को द्योतित करने के लिए सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा—

बाणो बलिसुते शरे—'बाण' शब्द 'बलि का पुत्र' तथा 'तीर' के अर्थ में आता है।

(झ) 'व्यवहार' अथवा 'आचरण' अर्थ वाले शब्दों के योग में भी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा—

आर्येऽस्मिन् विनयेन वर्तताम्—आप इस पुरुष के प्रति विनयपूर्वक व्यवहार करें।

कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने—सौतों के प्रति प्रिय सखी का सा बर्त्ताव करो।

(ञ) स्नेह, अभिलाष, अनुराग, आसक्ति इत्यादि अर्थवाले धातुओं (स्निह्, अभि + लष्, अनुरञ्ज्, रम् आदि) के योग में जिस पर स्नेह आदि प्रदर्शित किया जाता है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

किं न खलु बालेऽस्मिन् स्निह्यति मे मनः—मेरा मन इस लड़के में क्यों स्नेह करता है।

मोक्षे तस्य अभिलाषः अस्ति—मोक्ष में उसका अभिलाष है।

धर्मे तस्य अनुरागं दृष्ट्वा मनः प्रसीदति—धर्म में उसका अनुराग देख कर मन प्रसन्न होता है।

विषयेषु आसक्तिः न शोभना—विषयों में आसक्ति अच्छी नहीं।

न तापसकन्यकायां ममाभिलाषः—तपस्वी की कन्या पर मेरा प्रेम नहीं है।

(ट) कारण-वाची शब्दों का प्रयोग होने पर कार्य सप्तमी में रक्खा जाता है। यथा—दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम्—मनुष्य की वृद्धि एवं उसकी क्षीणता में भाग्य ही एक-मात्र कारण है।

(ठ) 'युज्' धातु के साथ तथा 'युज्' से प्रत्यय द्वारा निष्पन्न शब्दों के साथ सप्तमी आती है। यथा—

असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुंक्ते—पूज्य काश्यप ने जो इसे आश्रम के कर्मों में लगा रक्खा है, यह ठीक नहीं किया।

त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन् युज्यते—त्रिभुवन का भी राज्य उसके लिए उचित ही है।

विशेष—युज् धातु के बाद वाले 'उचित' अर्थ में विद्यमान उपपूर्वक 'पद्' इत्यादि धातुओं तथा उनसे बने शब्दों के साथ सप्तमी आती है। इसके योग में प्रायः षष्ठी भी आती है। यथा—

उपपन्नमिदं विशेषणं वायोः—वायु के लिए यह विशेषण ठीक ही है।

(ड) 'फेंकना' या 'किसी पर झपटना' इस अर्थ का बोध कराने वाली 'क्षिप्', 'मुच्', 'अस्' इत्यादि धातुओं के योग में जिस पर कोई वस्तु रक्खी या छोड़ी जाती है, उसमें सप्तमी होती है। यथा—

मृगेषु शरान् मुमुक्षुः—हिरणों पर बाण छोड़ने को इच्छुक।

योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भारः—समस्त राज्य भार योग्य मंत्री पर छोड़ दिया गया है।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्—इस पर कदापि बाण नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

शुकनासनाम्नि मन्त्रिणि राज्यभारमारोप्य—शुकनास नामक मन्त्री पर राज्यभार सौंप कर।

(ढ) संलग्न, कटिबद्ध, व्यापृत, आसक्त, व्यग्र, तत्पर, व्यस्त इत्यादि शब्दों के योग में जिस विषय में संलग्नता आदि हो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—गृहकार्ये संलग्नः, कटिबद्धः, व्यापृतः, आसक्तः, व्यग्रः, तत्परः, व्यस्तः अस्ति—घर के कार्यों में संलग्न है।

(ण) कुशल, निपुण, पटु, प्रवीण, शौण्ड, पण्डित आदि 'चतुर' के अर्थवाचक शब्दों के योग में तथा धूर्त, कितव (ठग, बदमाश) अर्थ वाले शब्दों के योग में जिस वस्तु के विषय में कुशलता आदि हो उनमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

सः व्यवहारे कुशलः, निपुणः, पटुः, प्रवीणः, शौण्डः, पण्डितः, चतुरः—वह व्यवहार में कुशल है।

सः व्यवहारे धूर्तः, शठः, कितवः—वह व्यवहार में ठग है।

(त) अप + राध् (अपराध करना) धातु के कर्म में सप्तमी होती है और कभी कभी षष्ठी। यथा—

कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला—शकुन्तला ने किसी पूज्य व्यक्ति का अपराध किया है।

अपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः कण्वस्य—मैंने पूज्य कण्व के प्रति अपराध किया है।

(थ) यस्य च भावेन भावलक्षणम् ।२।३।३७।

जिस क्रिया के काल से दूसरी क्रिया का काल निरूपित होता है, उस क्रिया तथा उसके कर्ता में सप्तमी विभक्ति होती है। किन्तु दोनों क्रियाओं का कर्ता भिन्न भिन्न होना चाहिए। यथा—

सूर्ये उदिते कृष्णः प्रस्थितः—सूर्य उगने पर कृष्ण ने प्रस्थान किया।

रामे वनं गते दशरथः प्राणान् तत्याज—राम के वन चले जाने पर दशरथ जी ने अपना प्राण त्याग दिया।

सर्वेषु शयानेषु बालिका रोदिति—सब के सो जाने पर बालिका रोती है।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—आज खाकर वह फिर तीन बार खायगा। २—बधिक यहां ही खड़ा होकर एक कोस की दूरी पर स्थित लक्ष्य का वेध कर सकता है। ३—सूर्यास्त हो जाने पर सैनिकों ने आक्रमण किया। ४—वह घर के कामों में कुशल है। ५—वह चर्म के लिए मृग को मारता है, दाँतों के लिए हाथी को मारता है। ६—कृष्ण साहित्य में निपुण है। ७—उसका एकान्त में मन लगता है। ८—उसका दण्डनीति में विश्वास है। ९—शिष्य चटाई पर बैठता है। १०—उसका दण्डनीति में विश्वास है। ११—निरपराधी पर क्यों प्रहार कर रहे हो? १२—मेरे घर आने पर पिता शहर गए। १३—विलाप करती हुई स्त्री को छोड़कर वह वन को चला गया। १४—इस मृग पर बाण मत छोड़ना। १५—गुरुओं के साथ विनयपूर्वक व्यवहार करे (वृत्)। १६—राजा ने इसको सभी भार सौंपा है। १६—उसने गुरु के प्रति अपराध किया है। १७—अविश्वासी पर विश्वास न करे। १८—भारतीय कवियों में कालिदास सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। १९—वह जुआ खेलने में होशियार है। २०—भला, कुमारी कन्या कब पुरुष का विश्वास करती है। २१—आपका शस्त्र निरपराधों पर प्रहार करने के लिए नहीं है। २२—गुरु जिस प्रकार से चतुर पुरुष को विद्या प्रदान करता है उसी प्रकार मूढ को भी। २३—वे गुण पर ब्रह्म के लिए उपयुक्त हैं। २४—इनके प्रति सगी बहिन जैसा प्रेम है। २५—मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं।

हिन्दी में अनुवाद करो—

१—स्थाल्यामोदनं पचति।

२—न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यावन्मित्रे स्वभावजे॥

३—भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥

४—उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते॥

५—अशुद्धप्रकृतौ राज्ञि जनता नानुरज्यते।

६—एष धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्यासिपत्रेण व्यापाद्यते।

७—संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे॥

८—केचित्स्वरहस्यलुब्धाः श्रद्धां विधास्यन्ति सचेतसोऽत्र।

९—निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
१०—रक्षासि किं कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे।

दशम अभ्यास

सम्बन्ध (षष्ठी) का, के, की, रा, रे, री

(६) तुदादिगणीय कुछ धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
तुद्—दुःख देना	तुदति	अतुदत्	तोत्स्यति	तुदतु	तुदेत्
मुञ्च्—छोड़ना	मुञ्चति	अमुञ्चत्	मोक्ष्यति	मुञ्चतु	मुञ्चेत्
प्रच्छ्—पूछना	पृच्छति	अपृच्छत्	प्रक्ष्यति	पृच्छतु	पृच्छेत्
सिञ्च्—सींचना	सिञ्चति	असिञ्चत्	सेक्ष्यति	सिञ्चतु	सिञ्चेत्

विशेष—तुदादिगण की धातुएँ भ्वादिगण की धातुओं के समान हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि भ्वादिगण में धातु की उपधा को अथवा अन्त के स्वर को गुण होता है, तुदादि में ऐसा नहीं होता।

(७) रुधादिगणीय भुज् (भोजन करना) आत्मनेपद

वर्तमान काल (लट्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
म० पु०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उ० पु०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

अनद्यतन भूतकाल (लङ्)

प्र० पु०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
म० पु०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि

भविष्यत् काल (लृट्)

प्र० पु०	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
म० पु०	भोक्ष्यसे	भोक्ष्येथे	भोक्ष्यध्वे
उ० पु०	भोक्ष्ये	भोक्ष्यावहे	भोक्ष्यामहे

आज्ञार्थक लोट्

प्र० पु०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
म० पु०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	भुञ्जै	भुञ्जावहै	भुञ्जामहै

(ङ) षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ।२।३।३०।

उपरि, उपरिष्टात्, पुरः, पुरस्तात्, अधः, अधस्तात्, पश्चात्, अग्रे, दक्षिणतः, उत्तरतः आदि दिशावाचक शब्दों के साथ षष्ठी होती है। यथा—

रथस्योपरि, रथस्य उपरिष्टात्।

पतिव्रतानाम् अग्रे कीर्तनीया सुदक्षिणा।

वृक्षस्य अधः।

वृक्षस्य अधस्तात्।

ग्रामस्य दक्षिणतः।

विशेष—उपरि, अधि, अधः शब्द जब दो बार प्रयुक्त होते हैं तब षष्ठी न होकर द्वितीया होती है।

(च) दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ।२।३।३४।

दूर, अन्तिक तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों का प्रयोग होने पर षष्ठी तथा पञ्चमी होती है। यथा—

दूरं गृहस्य गृहात् वा—घर से दूर।

अन्तिकं विद्यालयस्य विद्यालयात् वा—विद्यालय के समीप।

(छ) अधीगर्थदयेशां कर्मणि ।२।३।५२।

'ईश्' (समर्थ होना), 'प्र+भू' (समर्थ होना), दय् (दया करना) और 'अधि+इ' (स्मरण करना), 'स्मृ' (स्मरण करना)—इन धातुओं तथा इनके समान अर्थ रखने वाली धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है। यथा—

मातुः स्मरति—माता को याद करता है।

स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः—रामचन्द्र जी के बाणों को याद करता हुआ रावण दुःखी हुआ।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः—महाराज अपनी पुत्री के ऊपर समर्थ हैं।

श्वौवस्तिकत्वं विभवा न येषां व्रजन्ति तेषां दयसे न कस्मात्—जिनका धन प्रातःकाल तक भी नहीं टिकता, उनके ऊपर तू क्यों नहीं दया करता।

बालकस्य दयमानः—बालक के ऊपर दया करता हुआ।

(ज) कर्तृकर्मणोः कृति ।२।३।६५।

कृदन्त शब्दों के कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है। (जिनके अन्त में तृच् (तृ), क्तिन् (ति), अच् (अ), घञ् (अ), ल्युट् (अन), ण्वुल् (अक) आदि हों, उन्हें कृदन्त कहते हैं।) यथा—

रामस्य कृतिः—राम का कार्य।

यहां करना क्रिया का बोधक 'कृति' शब्द है जो कि कृ धातु में क्तिन् प्रत्यय के जुड़ने से बना है और इसका कर्ता 'राम' है। अतएव कृत्प्रत्ययान्त 'कृतिः' शब्द के साथ कर्ता 'राम' में षष्ठी हुई। इसी प्रकार।

बालकस्य गतिः—बालक की गति (चाल)।

बालकानां रोदनम्—बालकों का रोना।

क्रतूनामाहर्ता—यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला।

वेदस्य अध्येता—वेद का अध्ययन करने वाला।

'यहां 'अध्येता' अधि उपसर्ग पूर्वक 'इङ्' धातु तथा तृन् प्रत्यय से बना है एवं इसका कर्म 'वेद' है। अतएव कृदन्त 'अध्येता' शब्द के साथ कर्म 'वेद' में षष्ठी हुई है। ठीक इसी प्रकार 'क्रतूनाम्' में भी तृनन्त 'आहर्ता' के योग में षष्ठी हुई है।

इसी प्रकार—

राज्यस्य प्राप्तिः—राज्य की प्राप्ति।

विषस्य भोजनम्—विष का खाना।

विशेष—कृदन्त के गौण कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है। (गुणकर्मणि वेष्यते) यथा—नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा।

(ञ) उभयप्राप्तौ कर्मणि।२।३।६६।

कृदन्त के साथ जहाँ कर्ता और कर्म दोनों हों, वहां कर्म में ही षष्ठी होती है। यथा—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन–ग्वाले के अतिरिक्त किसी और पुरुष के द्वारा गाय का दुहा जाना आश्चर्य है।

विशेष—शेषे विभाषा। स्त्रीप्रत्यय इत्येके। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति। (वार्तिक)

कुछ वैयाकरणों के विचार से जब कृत् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग का हो और कुछ के विचार से कृत् प्रत्यय चाहे जिस लिङ्ग का हो, यदि कर्ता और कर्म दोनों वाक्य में आए हों तो कर्ता तृतीया अथवा षष्ठी में रखा जाता है। यथा—विचित्रा जगतः कृतिर्हरेण हरिणा वा। हरि के द्वारा संसार का बनाया जाना विचित्र है। इसी प्रकार—

शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा।

शोभना खलु पाणिनेः पाणिनिना वा सूत्रस्य कृतिः।

(ट) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्। २। ३। ६९।

शतृ, शानच्, उ, उक, क्त्वा, तुमुन्, क्त, क्तवतु, खल्, तृन् प्रत्ययों से बने हुए कृदन्त शब्दों के साथ षष्ठी नहीं होती। यथा—

पालकं पश्यन्—लड़के को देखता हुआ (शतृ का उदाहरण)

क्लेशं सहमानः—दुःख सहता हुआ (शानच् का उदाहरण)

हरिं दिदृक्षु—हरि को देखने का इच्छुक (उ प्रत्यय का उदाहरण)

दैत्यान् घातुको हरिः—हरि दैत्यों के हन्ता हैं (उक का उदाहरण)

संसारं सृष्ट्वा—संसार को रचकर (क्त्वा का उदाहरण)

यशोऽधिगन्तुम्—यश पाने के लिए (तुमुन् का उदाहरण)

विष्णुना हता दैत्याः—दैत्यलोग विष्णु से मार डाले गए (क्त का उदाहरण)

दैत्यान् हतवान् विष्णुः—विष्णु ने दैत्यों को मार डाला (क्तवतु का उदाहरण)

सुकरः प्रपञ्चो हरिणा—हरि का संसार-प्रपञ्च आराम से होता है। (खल् का उदाहरण)।

कर्ता कटान्—चटाइयों को बनाने वाला (तृन का उदाहरण)।

सूचना—इन समस्त प्रत्ययों का विस्तृत निरूपण 'कृदन्त-विचार' में किया जायगा।

(ट) क्तस्य च वर्तमाने ।२।३।६७।

वर्तमानार्थक क्त प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी होती है। यथा—अहं राज्ञो मतो बुद्धः पूजितो वा—मुझे राजा मानते हैं, जानते हैं अथवा पूजते हैं।

विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम्—मैं जानता हूँ कि उससे तीनों भुवन पीडित होते हैं।

(ठ) कृत्यानां कर्तरि वा ।२।३।७१।

कृत्य (तव्यत् , तव्य, अनीयर् , यत् , ण्यत् , क्यप् और केलिमर्) प्रत्ययान्त शब्दों के योग में कर्ता में तृतीया अथवा षष्ठी होती है। यथा—

गुरुः मया पूज्यः
अथवा
गुरुः मम पूज्यः } गुरुजी मेरे पूज्य हैं।

(ड) षष्ठी चानादरे ।२।३।३८।

जिसे अनादृत या तिरस्कृत करके कोई कार्य किया जाता है, उसमें षष्ठी या सप्तमी होती है। यथा—

पश्यतोऽपि राज्ञः पश्यत्यपि राज्ञि वा द्विगुणमपहरन्ति धूर्ताः—राजा के देखते रहने पर भी धूर्त लोग दुगुना चुरा लेते हैं।

रुदतः पुत्रस्य रुदति पुत्रे वा वनं प्राव्राजीत्—रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह संन्यासी हो गया।

दवदहनजटालज्वालजालाहतानाम् ,
परिगलितलतानां म्लायतां भूरुहाणाम् ।
अयि जलधर ! शैलश्रेणिशृङ्गेषु तोयं
वितरसि बहु कोऽयं श्रीमदस्तावकीनः ॥

ए जलधर ! तेरा यह कैसा भारी गर्व है कि जंगल की आग की लपटों से भस्मीभूत, गलित लताओं वाले, म्लान हुए, वृक्षों को अनादृत करके तू पर्वतों के शिखरों पर तमाम जल देता है।

यहाँ 'वृक्षों' का अनादर किया गया है, अतएव 'भूरुहाणाम्' में षष्ठी हुई है।

(ढ) जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ।२।३।५६।

हिंसा अर्थ का बोध होने पर जास, नि और प्र पूर्वक हन्, नाट, क्राथ्, पिष् धातु के कर्म में षष्ठी होती है। यथा—रामः राक्षसस्य उज्जासयति, निहन्ति, निप्रहन्ति, प्रणिहन्ति, प्रहन्ति, उन्नाटयति, क्राथयति, पिनष्टि वा—राम राक्षस को मारता है।

(प) व्यवहृपणोः समर्थयोः २।३।५७।

सौदा का लेन देन करना अथवा 'जुआ में लगा देना' इन अर्थों का बोध कराने वाले 'व्यवहृ' और 'पण्' धातु के योग में जिस वस्तु के द्वारा व्यवहार किया जाय या जिस वस्तु की बाजी लगायी जाय उसमें षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—सहस्रस्य व्यवहरति, पणते वा—हजारों का लेन देन करता है या बाजी लगाता है। (पण् के योग में द्वितीया भी आती है)।

यथा—पणस्व कृष्णां पाञ्चालीम्—पंचालराज की कन्या द्रौपदी को दांव पर रख दो।

(त) दिवस्तदर्थस्य २।३।५८।

जब 'दिव्' धातु भी इस अर्थ में प्रयुक्त होती है, तब इसके कर्म में भी षष्ठी होती है। यथा—शतस्य दीव्यति—सौ की बाजी लगाता है।

परन्तु उपसर्ग पूर्वक रहने पर षष्ठी अथवा द्वितीया कोई भी विभक्ति हो सकती है। यथा—शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति।

(थ) चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः २।३।७३।

आशीर्वाद देने के अर्थ में आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित शब्दों के योग में जिसके प्रति आशीर्वाद आदि दिये जायँ, उसमें षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—तव तुभ्यं वा आयुष्यं भूयात्—तू चिरजीवी हो।

कृष्णस्य कृष्णाय वा कुशलं, हितं, मद्रं, भद्रं वा भूयात्—कृष्ण का कुशल आदि होवे।

(द) अनु उपसर्ग पूर्वक कृ धातु (अनुकरण करना, सदृश होना) के कर्म में षष्ठी भी होती है। यथा—

ततोऽनुकुर्यात्तस्याः स्मितस्य—तब शायद उसके मुस्कान की समता करें।

श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्—अपनी श्यामता द्वारा भगवान् विष्णु की समता करती हुई।

सर्वाभिरन्याभिः कलाभिरनुचकार तं वैशम्पायनः—वैशम्पायन भी समस्त कलाओं में उसके समान हो गया।

शैलाधिपस्यानुचकार लक्ष्मीम्—पर्वताधिपति के ऐश्वर्य से मिलता जुलता था।

(ध) 'योग्य', 'उचित,' 'उपयुक्त', 'अनुरूप' अर्थवाची विशेषणों के योग में षष्ठी आती है। यथा—सखे पुण्डरीक, नैतदनुरूपं भवतः—ऐ मित्र पुण्डरीक, यह तुम्हारे योग्य नहीं है।

सदृशमेवैतद् स्नेहस्यानवलेपस्य—वस्तुतः, यह बात अभिमान हीन प्रेम के अनुरूप ही है।

(न) कृते (लिए, वास्ते), 'समक्षम्' (सामने), मध्ये (बीच), पार, अन्त, अवसान, समाप्ति आदि शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—तव कृते—तेरे लिए। धर्मस्य कृते—धर्म के लिए।

ईश्वरस्य समक्षम्—ईश्वर के सामने। मार्गस्य मध्ये—मार्ग के बीच में।

समुद्रस्य पारम्—समुद्र के पार। दुःखस्य अन्ते—दुःख के अन्त में।

कार्यस्य अवसाने, समाप्तौ—कार्य की समाप्ति होने पर।

(प) अंशांशिभाव या अवयवावयविभाव होने पर अंशी या अवयवी में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—जलस्य बिन्दुः—जल की बूँद।

अयुतं शरदां ययौ—दस सहस्र वर्ष बीत गए।

दिनस्य उत्तरम्—दिन का उत्तरवर्ती भाग।

रात्रेः पूर्वम्—रात्रि का प्रथम भाग।

(फ) 'प्रिय' अर्थवाची शब्द के साथ षष्ठी आती है। यथा—

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत्—सीता जी स्वभाव ही से श्रीराम को प्यारी थीं।

कायः कस्य न वल्लभः—शरीर किसे नहीं प्यारा लगता।

(ब) विशेष, अन्तर इत्यादि शब्दों के प्रयोग में जिनमें विशेष या अन्तर दिखाया जाता है, वे षष्ठी में होते हैं। यथा—

एतावानेवायुष्मतः शतक्रतोश्च विशेषः—आयुष्मान (आप) और इन्द्र में इतना ही अन्तर है।

भवतो मम च समुद्रपल्वलयोरिवान्तरम्—श्रीमान् और मुझ में समुद्र और सरोवर का सा अन्तर है।

(भ) जब किसी कार्य या घटना के हुए कुछ काल बीता हुआ बताया जाता है, तो बीती हुई घटना के वाचकशब्द षष्ठी में प्रयुक्त होते हैं। यथा—अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य—पिता को मरे हुए आज दस महीने हो रहे हैं।

(म) 'बार' या 'मरतबा' अर्थ वाले कृत्वसुच् और सुच् प्रत्ययों से बने हुए जैसे द्विः, त्रिः, पञ्चकृत्वः, सप्तकृत्वः आदि क्रियाविशेषण अव्ययों के योग में कालवाचक शब्द के बाद षष्ठी और पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

द्विरह्नो भोजनम्—दिन में दो बार भोजन।

पञ्चकृत्वः दिवसस्य स्नामि—दिन में पाँच बार नहाता हूँ।

शतकृत्वः मासस्य आगच्छति—महीने में सौ बार आता है।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—उन्हें तपस्या करते कई वर्ष बीत गए। २—दमयन्ती स्वभाव ही से नल को प्यारी थी। ३—कामदेव के लिए कोई चीज असाध्य नहीं है। ४—किस कारण यह भुला दिया गया। ५—गुरु अपने शिष्यों के ऊपर प्रभाव रखता है। ६—लक्ष्मण के ऊपर

दया करते हुए राम तुम्हारी याद करते हैं। ७—श्री कृष्ण ने समुद्र मन्थन को याद किया। ८—नरपुङ्गव: तुम्हारा प्रियतम तुम्हें केवल सौ बार याद करते हैं। ९—राजा मुझे ही मानते हैं। १०—ऐ मित्र, यह तुम्हारे योग्य नहीं है। ११—वह समस्त कलाओं में उससे मिलता जुलता है। १२—उसने प्राणों की बाजी लगा दी। १३—राजा का आदमी किसलिए यहाँ आया है। १४—विद्यार्थी विद्यालय के आगे, पीछे, दक्षिण और उत्तर की ओर गेंद खेल रहे हैं। १५—नगर के दक्षिण की ओर नदी है। १६—शिशु माता को याद करता है। १७—यह भवभूति की कृति है। १८—मित्रों का दर्शन अब उसके लिए दुःखद हो गया है। १९—राम सीता को प्राणों से भी प्रिय थे। २०—सेवक को चाहिए कि वह स्वामी को धोखा न दे। २१—वह देवताओं के अनुग्रह के योग्य नहीं है। २२—शिष्य का कल्याण हो। २३—वह एक हजार रुपये का लेन-देन करता है। २४—तुम्हें न देखे हुए बहुत दिन हो गए। २५—उसका स्वर्गवास हुए आज आठवाँ महीना है।

हिन्दी में अनुवाद करो—

१—शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यंतमंतरम्।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः॥

२—अपीप्सितं क्षत्रकुलांगनानां न वीरसूशब्दमकामयेताम्।

३—रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

४—उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम तं हत्वा जीवय द्विजम्।

५—अपि महती वेला वर्तते तवादृष्टस्य।

६—स्मर्तुं दिशन्ति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः।

७—दुःखायेदानीं रामस्य सुहृदां दर्शनम्।

८—कथं मामेकाकिनीं त्यक्त्वार्यपुत्रो गतः। भवतु, कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणात्मनः प्रभविष्यामि।

९—हा देवि स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य तत्समयविश्रंभातिशयप्रसङ्गसाक्षिणः।

१०—रामस्य शयितं भुक्तं जल्पितं हसितं स्थितम्।
प्रक्रांतं च मुहुः पृष्ट्वा हनूमंतं व्यसर्जयत्॥

कारक एवं विभक्तियाँ

(एक दृष्टि में)

प्रथमा—१—कर्ता में—रामः पठति। अश्वः धावति।
२—कर्मवाच्य के कर्म में—रामेण पाठः पठ्यते।
३—संबोधन में—हे राम, हे कृष्ण।

४—अव्यय के साथ—अशोक इति विख्यातः राजा आसीत् ।

५—नाममात्र में—आसीद् नृपः विक्रमादित्यो नाम ।

द्वितीया—१—कर्म में—स पुस्तकं पठति । ते प्रश्नं पृच्छन्ति ।

२—ऋते, अन्तरेण, विना के साथ—धनमन्तरेण, बिना, ऋते, वा न सुखम् ।

३—एनप् के साथ—तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयम् ।

४—अभितः के योग में—नृपम् अभितः भृत्याः सन्ति ।

५—परितः, सर्वतः के योग में—विद्यालयं परितः (सर्वतः) पादपाः सन्ति ।

६—उभयतः के योग में—कृष्णमुभयतो गोपाः ।

७—अन्तरा के योग में—गङ्गां यमुनां चान्तरा प्रयागः ।

८—समया, निकषा के योग में—ग्रामं समया निकषा वा नदी वहति ।

९—कालवाची अर्थ में—मासं पठति ।

१०—अध्ववाची शब्दों के योग में—क्रोशं कुटिला नदी ।

११—अनु के योग में—अनु हरिं सुराः ।

१२—प्रति के योग में—दीनं प्रति दयां कुरु ।

१३—धिक् के योग में—धिक् पापिनम् ।

१४—अधिशीङ् के योग में—आसनमधिशेते ।

१५—अधिस्था के योग में—आसनमधितिष्ठति ।

१६—अधि आस् के योग में—राजा सिंहासनमध्यास्ते ।

१७—अनु, उपपूर्वक वस् धातु के योग में—हरिः वैकुण्ठम् उपवसति, अनुवसति वा ।

१८—आवस् एवं अधिवस् के साथ—हरिः वैकुण्ठम् आवसति, अधिवसति वा ।

१९—अभि-निपूर्वक विश् धातु के योग में—अभिनिविशते सन्मार्गम् ।

२०—क्रियाविशेषण में—मृगः सत्वरं धावति ।

२१—द्विकर्मक धातुओं के योग में—गां दोग्धि पयः, माणवकं पन्थानं पृच्छति, शतं जयति देवदत्तम् आदि ।

तृतीया—१—करण में—कन्दुकेन क्रीडति ।

२—कर्मवाच्य कर्त्ता में—रामेण पाठः पठितः ।

३—स्वभाव आदि अर्थों में—प्रकृत्या साधुः । नाम्ना रामोऽयम् ।

४—सह के योग में—पित्रा सह गच्छति ।

५—सदृश के अर्थ में—धर्मेण सदृशो नास्ति बन्धुः ।

६—हेतु के अर्थ में—सः केन हेतुना अत्र वसति ?

७—हीन के साथ—विद्यया विहीनः।

८—विना के योग में—ज्ञानेन विना।

९—अलं के योग में—अलं श्रमेण।

१०—प्रयोजन के अर्थ में—धनेन किम्।

११—लक्षण अर्थ में—जटाभिस्तापसः।

१२—फल प्राप्ति में—दशभिर्दिनैरारोग्यं लब्धवान्।

१३—विकृत अङ्ग में—कर्णेन बधिरः।

चतुर्थी—१—सम्प्रदान में—विप्राय गां ददाति।

२—निमित्त के अर्थ में—विद्या ज्ञानाय भवति।

३—रुचि के अर्थ में—हरये रोचते भक्तिः।

४—धारि धातु (ऋण लेना) के योग में—देवदत्तो रामाय शतं धारयति।

५—स्पृह् के साथ—पुष्पेभ्यः स्पृहयति।

६—नमः, स्वस्ति के साथ—रामाय नमः। नृपाय स्वस्ति भवतु।

७—समर्थ अर्थ वाली धातुओं के साथ—प्रभुर्मल्लो मल्लाय।

८—क्लृप् (होना) के साथ—विद्या ज्ञानाय कल्पते।

९—तुम् के अर्थ में—यागाय (यष्टुं) याति।

१०—क्रुध् अर्थ वाली धातुओं के साथ—सः मूर्खाय क्रुध्यति।

११—द्रुह् अर्थ वाली धातुओं के साथ—सः मूर्खाय द्रुह्यति।

१२—असूया अर्थ वाली धातुओं के साथ—दुर्जनः सज्जनाय असूयति।

पञ्चमी—१—पृथक् अर्थ में—वृक्षात् पत्रं पतति।

२—भय के अर्थ में—चोराद् बिभेति।

३—ग्रहण करने के अर्थ में—कूपात् जलं गृह्णाति।

४—पूर्वादि के योग में—भोजनात् परम् न धावेत्।

५—अन्यार्थ के योग में—कृष्णात् अन्यो भिन्न इतरो वा।

६—उत्कर्ष बोध में—जन्मभूमिः स्वर्गादपि गरीयसी।

७—विना, ऋते के योग में—परिश्रमाद् विना ऋते वा।

८—आरात् के योग में—आराद् वनात्।

९—प्रभृति के योग में—शैशवात् प्रभृति।

१०—आङ् के साथ—आमूलात् श्रोतुमिच्छामि।

११—विरामार्थक शब्दों के साथ—न नवः प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः।

१२—काल की अवधि में—विवाहात् दिने।

१३—मार्ग की दूरी प्रदर्शन में—काश्याः पञ्चाशत् कोशाः।

१४—जायते आदि के अर्थ में—ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते।

१५—उद्भवति, प्रभवति, निलीयते, प्रतियच्छति के साथ—हिमवतो गङ्गा उद्भवति, प्रभवति। मातुर्निलीयते कृष्णः। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्।

१६—जुगुप्सते, प्रमाद्यति के साथ—पापात् जुगुप्सते। धर्माद् प्रमाद्यति।

१७—निवारण अर्थ में—पापात् निवारयति।

१८—जिससे कोई विद्या सीखी जाय उसमें—उपाध्यायादधीते।

षष्ठी—१—सम्बन्ध में—देवदत्तस्य धनम्। रामस्य पुस्तकम्।

२—कृदन्त कर्ता में—रामस्य शयनम्।

३—कृदन्त कर्म में—अन्नस्य पाकः।

४—स्मरणार्थक धातुओं के योग में—बालकः मातुः स्मरति।

५—दूर एवं समीपवाची शब्दों के योग में—विद्यालयस्य विद्यालयात् वा दूरम्।

६—कृते, मध्ये, समक्षम्, अन्तरे, अन्तः के योग में—धर्मस्य कृते। मार्गस्य मध्ये। बालकस्य समक्षम्। विद्यालयस्य अन्तरे अन्तः वा।

७—अतस् प्रत्यय वाले शब्दों के योग में—विद्यालयस्य दक्षिणतः, उत्तरतः आदि।

८—अनादर में—रुदतः शिशोः माता ययौ।

९—हेतु शब्द के योग में—अन्नस्य हेतोर्वसति।

१०—निर्धारण में—कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः।

११—व्यवहृ और पण् धातु के योग में—सहस्रस्य व्यवहरति पणते वा।

१२—दिव् धातु के योग में—शतस्य दीव्यति।

१३—कृत्वसुच् और सुच् प्रत्ययों से बने हुए क्रियाविशेषण अव्ययों के योग में—द्विरह्नो भोजनम्। पञ्चकृत्वः दिवसस्य स्नामि।

१४—तृप्ति अर्थ वाले धातुओं के योग में—भोगानां न तृप्यन्ति जनाः।

सप्तमी—१—अधिकरण में—आसने उपविशति। स्थाल्यां पचति। मोक्षे इच्छा अस्ति। सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति।

२—भाव में—यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।

३—अनादर में—रुदति शिशौ प्राव्राजीत्।

४—निर्धारण में—जीवेषु मानवाः श्रेष्ठाः।

५—एक क्रिया के पश्चात् दूसरी क्रिया होने पर—रामे वनं गते दशरथो दिवं गतः।

६—समयबोधक शब्दों में—सायंकाले पठति।

७—संलग्नार्थक शब्दों के योग में—कार्ये लग्नः।

८—चतुरार्थक शब्दों के योग में—शास्त्रे चतुरः, निपुणः आदि।

९—फेंकना अर्थ की धातुओं के साथ—मृगे बाणं क्षिपति।

१०—वृत् और व्यवहृ के साथ—कुरु सखीवृत्ति सपत्नीजने।

११—ग्रहण और प्रहार अर्थ वाली धातुओं के साथ—केशेषु गृहीत्वा। न प्रहर्तुमनागसि।

१२—रखना अर्थ में—मन्त्रिणि राज्यभारमारोप्य।

१३—प्रेम, आसक्ति और आदरसूचक धातुओं और शब्दों के साथ—पिता पुत्रे स्निह्यति। रहसि रमते। श्रेयसि रतः।

षष्ठ सोपान

समास-विचार

पञ्चम सोपान में विभक्तियों का प्रयोग बतलाया गया है। परन्तु कहीं-कहीं शब्दों को विभक्तियों का लोप करके शब्द को छोटा कर लिया जाता है। यह तभी सम्भव होता है, जब दो या दो से अधिक शब्दों को एक साथ जोड़ दिया जाता है। इस साथ में जोड़ने को ही 'समास' की संज्ञा प्रदान की जाती है।

समास शब्द 'सम्' (भली प्रकार) उपसर्ग लगाकर अस् (फेंकना) धातु से बना है और इसका अर्थ है संक्षेप। एक या अधिक शब्दों के मिलाने को या जोड़ने को समास कहते हैं। समास करने पर समास हुए शब्दों के बीच की विभक्ति (कारक) नहीं रहती। समस्त (समास युक्त) शब्द एक शब्द हो जाता है, अत एव अन्त में विभक्ति लगती है। समास के तोड़ने को 'विग्रह' कहा जाता है। यथा—राज्ञः पुरुषः (राजा का पुरुष) विग्रह है, राजपुरुषः (राजपुरुष) समस्त पद है। पुनश्च बीच की षष्ठी का लोप है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रम-लाघव के लिये समास के द्वारा पदसमूह को छोटा कर दिया जाता है। कृदन्त, तद्धितान्त, समास, एकशेष और सन् आदि प्रत्ययान्त धातुरूप ये पाँच संस्कृत व्याकरण में 'वृत्ति' कहलाते हैं। इनमें से कोई भी ले लिया जाय इनमें समुदाय में ही अर्थ बतलाने की शक्ति मानी जाती है। इस शक्ति को सामर्थ्य कहते हैं।

(अ) पृथक्-पृथक् अर्थ वाले पदों में समुदाय शक्ति से एकार्थ की उपस्थिति द्वारा दूध में मिले हुए पानी के समान विशेष्य-विशेषणभाव के रूप में मिले-जुले अर्थ को बतलाने वाली शक्ति का नाम एकार्थीभाव है। (स्वार्थपर्यवसायिनां पदानां विशिष्टैकार्थोपस्थितिजनकत्वम् एकार्थीभावत्वम्।)

(ब) अपने-अपने अर्थों को बतलाने वाले पदों का 'आकाङ्क्षा' आदि के द्वारा एक पद के अर्थ के साथ सम्बन्ध स्थापित कराने वाली द्वितीय शक्ति का नाम व्यापेक्षा है। (स्वार्थपर्यवसायिनां पदानाम् आकङ्क्षादिवशात् यः परस्पर सम्बन्धः सा व्यापेक्षा)। इनमें एकार्थीभाव की तरह मिले-जुले अर्थ की उपस्थिति या प्रतीति नहीं होती है, केवल आकांक्षा आदि के कारण एक अर्थ का दूसरे अर्थ के साथ सम्बन्धमात्र स्थापित हो जाता है। इसके अभाव में किसी भी वाक्य के अर्थ को पूर्णरूपेण नहीं समझा जा सकता है। अतएव यह शक्ति वाक्य में ही मानी जाती है। समास के लिए तो उसमें सामर्थ्य का रहना नितान्त आवश्यक है जिसे ऊपर एकार्थीभाव के नाम से बतलाया गया है।

समास कब और किन दशाओं में हो सकता है, इसके मुख्य-मुख्य नियम इस सोपान में बताए जाएँगे।

समास के मुख्य चार भेद हैं—

(१) अव्ययीभाव

(२) तत्पुरुष

(३) द्वन्द्व

(४) बहुव्रीहि

तत्पुरुष के अन्तर्गत दो समास और हैं—(१) कर्मधारय (२) द्विगु, इसलिए कभी-कभी समास के छः भेद बताए जाते हैं। इन छः भेदों के नाम निम्नलिखित श्लोक में आते हैं :—

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्याम्बहुव्रीहिः॥

अव्ययीभाव समास में समास का प्रथम शब्द प्रायः प्रधान रहता है, तत्पुरुष में प्रायः दूसरा, द्वन्द्व में प्रायः दोनों प्रधान रहते हैं एवं बहुव्रीहि में दोनों में से एक भी प्रधान नहीं रहता है, अपितु दोनों मिल कर एक तीसरे शब्द के ही विशेषण होते हैं।

अव्ययीभाव समास

अव्ययीभाव समास में पहला शब्द अव्यय (उपसर्ग या निपात) होता है और दूसरा शब्द संज्ञा। अव्ययीभाव समास वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग एकवचन में ही रहते हैं[1]। यथा—

यथाकामम् = काममनतिक्रम्य इति यथाकामम् (जितनी इच्छा हो उतना) इस उदाहरण में दो शब्द आए हैं—(१) यथा और (२) काम। इनमें 'यथा' शब्द प्रधान है, दोनों मिलकर एक अव्यय हुए (यथाकामम् के रूप नहीं चलेंगे) एवं अन्तिम शब्द 'काम' ने पुँल्लिङ्ग होते हुए भी नपुंसकलिङ्ग के एक वचन का रूप धारण किया। इसी प्रकार—

यथाशक्ति—शक्तिमनतिक्रम्य इति।

अन्तर्गिरि—गिरिषु इति।

उपगङ्गम्—गङ्गायाः समीपे।

प्रत्यहम्—अहः अहः।

अव्ययीभाव समास बनाते समय निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

(अ) ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७।

दूसरे शब्द का अन्तिम वर्ण दीर्घ हो तो ह्रस्व हो जाता है, अन्त में 'ए' अथवा 'ऐ' हो तो उसके स्थान पर 'इ' हो जाता है, 'ओ' अथवा 'औ' हो तो उसके स्थान पर 'उ' हो जाता है। यथा—

---

१. अव्ययीभावश्च। २।४।१८।

उप + गङ्गा (गङ्गायाः समीपे) = उपगङ्ग (और इसको नपुं० एक वचन में नित्य रखते हैं, अतएव) = उपगङ्गम् ।

उप + नदी (नद्याः समीपे) = उपनदि ।

उप + वधू (वध्वाः समीपे) = उपवधु ।

उप + गो (गोः समीपे) = उपगु ।

उप + नौ (नावः समीपे) उपनु ।

(ब) अनश्च ५।४।१०८। नस्तद्धिते ६।४।१४४।

अन् में अन्त होने वाली संज्ञाओं में समासान्त टच् प्रत्यय (पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में नित्य ही और नपुंसकलिङ्ग[1] में विकल्प से) जुड़ने से 'अन्' का लोप हो जाता है एवं टच् का 'अ' जुड़ जाता है । यथा—

उप + राजन् (राज्ञः समीपे) + टच् = उपराज = उपराजम् , इसी प्रकार अध्यात्मम् ।

उप + सीमन् (सीम्नः समीपे) + टच् = उपसीम = उपसीमम् ।

उप + चर्मन् (चर्मणः समीपे) + टच् = उपचर्म अथवा उपचर्मम् ।

(स) झयः ५।४।१११।

अव्ययीभाव समास के अन्त में झय् प्रत्याहार का कोई वर्ण आने पर विकल्प से समासान्त टच् प्रत्यय जुड़ता है । यथा—

उप + समिध + टच् = उपसमिधम् , टच् के अभाव में उपसमित् ।

उप + सरित् + टच् = उपसरितम् , टच् के अभाव में, उपसरित् ।

(द) अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५।४।१०७। जराया जरश्च (वार्तिक)

शरद् , विपाश् , अनस् , मनस् , उपानह् , अनडुह् , दिव् , हिमवत् , दिश् , दृश् , विश् , चेतस् , चतुर् , तद् , यद् , कियत् , जरस् में अकार अवश्य जोड़ दिया जाता है । यथा—उपशरदम् , अधिमनसम् , उपदिशम् ।

(क) नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः । ५।४।११०।

जब नदी, पौर्णमासी तथा आग्रहायणी शब्द अव्ययीभाव समास के अन्त में आते हैं, तब विकल्प से टच् प्रत्यय लगता है । यथा—

उप + नदी = उपनदि, उपनदम् ।

उप + पौर्णमासी = उपपौर्णमासि, उपपौर्णमासम् ।

उप + आग्रहायणी = उपाग्रहायणि, उपाग्रहायणम् ।

(ख) गिरेश्च सेनकस्य । ५।४।११२।

जब अव्ययीभाव के अन्त में गिरि शब्द भी आते हैं, तब विकल्प से टच् प्रत्यय जुड़ता है । यथा—

---

१. नपुंसकादन्यतरस्याम् ।५।४।१०९।

उप + गिरिः = उपगिरि, उपगिरम्।

(ग) अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु। २।१।६।

अव्ययीभाव में अव्यय प्रायः निम्नलिखित अर्थों में आते हैं—

(१) किसी विभक्ति अर्थ में—अधि + हरि (हरौ इति) = अधिहरि (हरि के विषय में)।

(२) समीप अर्थ में—उप + गङ्गा (गङ्गायाः समीपमिति) = उपगङ्गम् (गंगा के समीप)।

(३) समृद्धि अर्थ में—सु + मद्र (मद्राणां समृद्धिः) = सुमद्रम् (मद्रास की समृद्धि)।

(४) व्यृद्धि (नाश, दरिद्रता) अर्थ में—दुर् + यवन (यवनानां व्यृद्धिः) = दुर्यवनम्।

(५) अभाव अर्थ में—निर् + मशक (मशकानामभावः) = निर्मशकम् (मच्छरों से विमुक्ति अर्थात् एकान्त)।

(६) अत्यय (नाश) अर्थ में—अति + हिम (हिमस्यात्ययः) = अतिहिमम् (जाड़े की समाप्ति पर)।

(७) असम्प्रति (अनौचित्य) अर्थ में—अति + निद्रा (निद्रा सम्प्रति न युज्यते) = अतिनिद्रम् (निद्रा के अनुपयुक्त काल में)।

(८) शब्द-प्रादुर्भाव अर्थ में—इति + हरि (हरिशब्दस्य प्रकाशः) = इतिहरि (हरिशब्द का उच्चारण)।

(९) पश्चात् अर्थ में—अनु + विष्णु (विष्णोः पश्चात्) = अनुविष्णु (विष्णु के पीछे)।

(१०) [1]यथा के भाव में (योग्यता) अनु + रूप (रूपस्य योग्यम्) = अनुरूपम् (योग्य या उचित)।

यथा के भाव में (वीप्सा)—प्रति + अर्थ (अर्थमर्थं प्रति) = प्रत्यर्थम् (प्रत्येक अर्थ में)।

यथा के भाव अनतिक्रम में—यथा + शक्ति (शक्ति मनतिक्रम्य) = यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार)।

यथा के भाव सादृश्य में—सह + हरि (हरेः सादृश्यम्) = सहरि (हरि के सदृश)।

(११) आनुपूर्व्य में—अनु + ज्येष्ठ (ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण) = अनुज्येष्ठम् (ज्येष्ठ के अनुसार)।

(१२) यौगपद्य (एक साथ होना) में—सह + चक्र (चक्रेण युगपत्) = सचक्रम् (चक्र के साथ ही)।

---

१. योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः (भट्टोजिकृत वृत्ति से)।

(१३) सम्पत्ति के अर्थ में—स + क्षत्र (क्षत्राणां सम्पत्तिः) = सक्षत्रम् (क्षत्रिय)।

(१४) साकल्य (सब को शामिल कर लेना) अर्थ में—सह + तृणम् (तृणमपि अपरित्यज्य) = सतृणम् (सब कुछ)।

(१५) अन्त (तक) के अर्थ में—सह + अग्नि (अग्निग्रन्थपर्य्यन्तम्) = साग्नि (अग्निकाण्डपर्यन्त)।

काल से अतिरिक्त अर्थ में अव्ययीभाव समास में 'सह' का स हो जाता है। कालवाचक शब्द के साथ समास किए जाने पर 'सह' ही रहता है। यथा—सह + पूर्वाह्णम् = सहपूर्वाह्णम् होगा।

यावदवधारणे २।१।१८।

अवधारण अर्थ में 'यावद्' के साथ भी अव्ययीभाव समास बनता है। यथा—'यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः'—इस अर्थ में 'यावच्छ्लोकम्' समासपद बनेगा।

आङ् मर्यादाभिविध्योः।२।१।१३।

मर्यादा और अभिविधि के अर्थ में आङ् के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास बनते हैं। जब समास नहीं किया जाता है, तब पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—आ मुक्तेः इति आमुक्ति (मुक्ति पर्यन्त)। 'आमुक्ति (आमुक्तेर्वा) संसारः।' इसी प्रकार अभिविधि में 'आबालम् (आ बालेभ्यो वा) हरिभक्तिः।'

लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये २।१।१४।

आभिमुख्य द्योतक 'अभि' एवं 'प्रति' चिह्नवाची पद के साथ अव्ययीभाव समास होता है। यथा—अग्निमभि इति अभ्यग्नि, अग्निं प्रति इति प्रत्यग्नि।

अनुर्यत्समया २।१।१५।

जिस पदार्थ से किसी का सामीप्य दिखाया जाता है, उस लक्षणभूत पदार्थ के साथ सामीप्य सूचक 'अनु' अव्ययीभाव बनता है। यथा—अनुवनमशनिर्गतः (वनस्य समीपमित्यर्थः)।

पारे मध्ये षष्ठ्या वा।२।१।१८।

पार और मध्य षष्ठ्यन्त पद के साथ अव्ययी भाव समास होता है एवं विकल्प से षष्ठीतत्पुरुष भी होता है। यथा—

गङ्गायाः पारमिति पारेगङ्गम् या गङ्गापारम्। इसी प्रकार—

मध्येगङ्गम् या गङ्गामध्यम् अर्थात् गङ्गा के बीच।

तत्पुरुष समास

इस समास में प्रथम शब्द द्वितीय शब्द के विशेषण का कार्य करता है। इस समास की 'प्रायेण उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः'—ऐसी व्याख्या भी की गई है क्योंकि इसका प्रथम पद विशेषण होता है अथवा विशेषण का कार्य करता है और उत्तर पद विशेष्य होता है एवं विशेष्य ही प्रधान होता है। यथा—

राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः—यहाँ 'राज्ञः' एक प्रकार से 'पुरुषः' का विशेषण है।

तत्पुरुष शब्द के दो अर्थ हैं—(अ) तस्य पुरुषः = तत्पुरुषः।

(ब) सः पुरुषः = तत्पुरुषः।

इन उपर्युक्त दो अर्थों के अनुसार ही तत्पुरुष समास के दो मुख्य भेद हैं—

(१) व्यधिकरण—जिसमें समास का प्रथम शब्द किसी दूसरी विभक्ति में होता है।

(२) समानाधिकरण—जिसमें दोनों शब्दों की विभक्ति एक ही होती है। पूर्वोक्त उदाहरण में 'राजपुरुषः' व्यधिकरण तत्पुरुष का उदाहरण है।

समानाधिकरण का उदाहरण—कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः।

व्यधिकरण तत्पुरुष समास

इसके छः भेद हैं—

(१) द्वितीयातत्पुरुष।

(२) तृतीयातत्पुरुष।

(३) चतुर्थीतत्पुरुष।

(४) पञ्चमीतत्पुरुष।

(५) षष्ठीतत्पुरुष।

(६) सप्तमीतत्पुरुष।

जिस विभक्ति में प्रथम शब्द होता है, उसीके नाम पर इस समास का नाम होता है।

द्वितीयातत्पुरुष—

(१) द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः।२।१।२४।

श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न शब्दों के साथ द्वितीयातत्पुरुष समास होता है। यथा—

कृष्णं श्रितः = कृष्णश्रितः (कृष्ण पर आश्रित)

दुःखम् अतीतः = दुःखातीतः (दुःख के पार गया हुआ)

अग्निं पतितः = अग्निपतितः (अग्नि में गिरा हुआ)

प्रलयं गतः = प्रलयगतः (विनाश को प्राप्त)

मेघम् अत्यस्तः = मेघात्यस्तः (मेघ के पार पहुँचा हुआ)

जीवनं प्राप्तः = जीवनप्राप्तः (जीवन पाया हुआ)

कष्टम् आपन्नः = कष्टापन्नः (कष्ट पाया हुआ)

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २।२।४।

आपन्न और प्राप्त शब्द द्वितीयान्त के साथ समास बनाने पर प्रथम भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—प्राप्तजीवनः, आपन्नकष्टः।

(२) गम्यादीनामुपसंख्यानाम्।

गमी आदि शब्दों के साथ भी द्वितीयातत्पुरुष होता है। यथा—ग्रामं गमी इति ग्रामगमी, अन्नं बुभुक्षुः इति अन्नबुभुक्षुः (अन्न का भूखा)

(३) कालाः २।१।२८।

कालवाची द्वितीयान्त शब्द क्तान्त कृदन्त शब्दों के साथ द्वितीयातत्पुरुष समास बनाते हैं। यथा—मासं प्रमितः इति मासप्रमितः।

(४) अत्यन्तसंयोगे च २।१।२९।

अत्यन्त संयोग या सातत्य प्रकट करने वाले कालवाची द्वितीयान्त शब्द भी द्वितीयातत्पुरुष समास बनाते हैं। यथा—

मुहूर्तम् सुखमिति मुहूर्तसुखम्।

तृतीयातत्पुरुष—इस समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति में होता है। यह समास प्रायः निम्नलिखित दशाओं में होता है :—

(१) कर्तृकरणे कृता बहुलम् २।१।३२।

जब तृतीयान्त कर्त्ता या करणकारक होता और साथ वाला शब्द कृदन्त होता है यथा—हरिणा त्रातः = हरित्रातः। यहां 'हरिणा' तृतीयान्त है और कर्त्ता भी है, पुनश्च 'त्रातः' कृदन्त है जो 'क्त' प्रत्यय से बना है। नखैर्भिन्नः = नखभिन्नः। इस उदाहरण में 'नखैः' तृतीयान्त है और 'करण' भी है, पुनश्च 'भिन्नः' कृदन्त है जो 'भिद्' धातु से 'क्त' प्रत्यय जोड़कर बना है।

(२) पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः। २।१।३१।

जब तृतीयान्त शब्द के साथ पूर्व, सदृश, सम शब्दों में से कोई आवे अथवा ऊन (कम), कलह, निपुण, श्लक्ष्ण (चिकना) शब्दों में से अथवा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों में से कोई आवे; यथा—

मासेन पूर्वः = मासपूर्वः, मात्रा सदृशः = मातृसदृशः,

पित्रा समः = पितृसमः, धान्येन ऊनम् = धान्योनम्,

धान्येन विकलम् = धान्यविकलम्, वाचा युद्धम् = वाग्युद्धम्,

आचारेण निपुणः = आचारनिपुणः, आचारेण कुशलः = आचारकुशलः,

गुडेन मिश्रम् = गुडमिश्रम्, गुडेन युक्तम् = गुडयुक्तम्,

घर्पणेन श्लक्ष्णम् = घर्पणश्लक्ष्णम्।

(३) अवरस्योपसंख्यानाम् (वार्तिक)।

अवर शब्द के साथ भी तृतीयातत्पुरुष समास होता है। यथा—

मासेन अवरः = मासावरः (एक माह छोटा)।

(४) अन्नेन व्यञ्जनम्। २।१।३४।

संस्कार करने वाले द्रव्य का वाचक तृतीयान्त शब्द अन्न-वाचक शब्द के साथ तृतीयातत्पुरुष समास बनाता है। यथा—

दध्ना ओदन इति दध्योदनः।

चतुर्थीतत्पुरुष—इस समास का प्रथम शब्द चतुर्थी विभक्ति में रहता है। यह

समास प्रायः तब होता है, जब कोई वस्तु चतुर्थी विभक्ति में आवे और जिससे वह बनी हो वह उसके बाद आवे। यथा—

यूपाय दारु = यूपदारु, कुम्भाय मृत्तिका = कुम्भमृत्तिका।

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ।२।१।३६।

चतुर्थ्यन्त शब्द अर्थ, बलि, हित, सुख तथा रक्षित के साथ भी चतुर्थीतत्पुरुष बनाते हैं। यथा—

द्विजाय अयमिति द्विजार्थः।

भूतेभ्यो बलिः इति भूतबलिः।

ब्राह्मणाय हितम् इति ब्राह्मणहितम्।

इसी प्रकार—

गोहितम्, गोसुखम्, गोरक्षितम् इत्यादि।

विशेष—अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् (वार्तिक)

अर्थशब्द के साथ जो समास बनते हैं, वे वस्तुतः चतुर्थीतत्पुरुष होते हुए भी नित्यसमास कहलाते हैं क्योंकि उनका अपने पदों से विग्रह हो ही नहीं सकता है। असमस्त पदों के लिङ्ग विशेष्य के अनुसार ही होते हैं।

पञ्चमीतत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द पञ्चमी विभक्ति में आता है, तब उस तत्पुरुष समास को पञ्चमीतत्पुरुष कहते हैं।

(१) पञ्चमी भयेन २।१।३७। भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम्। (वार्तिक)

जब पञ्चम्यन्त शब्द 'भय', 'भीत', 'भीति', 'भी' के साथ आता है तभी प्रायः पञ्चमीतत्पुरुष समास होता है। यथा—

चौराद् भयम्—चौरभयम्, स्तेनाद् भीतः = स्तेनभीतः,

वृकाद् भीतिः = वृकभीतिः, अयशसः भीः = अयशोभीः इत्यादि।

(२) स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन २।१।३९।

यद्यपि स्तोक, अन्तिक, दूर तथा इनके वाचक अन्य शब्द एवं कृच्छ्रशब्द पञ्चम्यन्त के साथ समास बनाते हैं, फिर भी पञ्चमी का लोप नहीं होता है। यथा—

स्तोकात् मुक्तः = स्तोकान्मुक्तः।

अन्तिकात् आगतः = अन्तिकादागतः।

दूरात् आगतः = दूरादागतः।

षष्ठीतत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द षष्ठी विभक्ति में आता है तब उस तत्पुरुष समास को षष्ठीतत्पुरुष कहते हैं।

(१) षष्ठी २।२।८।

यह समास प्रायः समस्त षष्ठ्यन्त शब्दों के साथ होता है। यथा—

राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः।

परन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं जो निम्नलिखित हैं—

(अ) तृजकाभ्यां कर्तरि २।२।१५।

जब षष्ठी तृच् प्रत्ययान्त कर्त्ता, भर्त्ता, स्रष्टा आदि अथवा अक प्रत्ययान्त पाचक, सेवक, याचक आदि कर्तृवाचक शब्दों के साथ आवे, तब समास नहीं होता है। यथा—

घटस्य कर्ता, जगतः स्रष्टा, धनस्य हर्ता, अन्नस्य पाचकः आदि।

परन्तु

याजकादिभिश्च २।२।९।

याजक, पूजक, परिचारक, परिषेवक, स्नातक, अध्यापक, उत्पादक, होतृ, पोतृ, भर्तृ (पति), रथगणक तथा पत्तिगणक शब्दों के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास होता है। यथा—ब्राह्मणयाजकः।

(ब) न निर्धारणे २।२।१०।

निर्धारण (किसी वस्तु की दूसरों से विशिष्टता दिखाने) के अर्थ में प्रयोग में आयी हुयी षष्ठी का समास नहीं होता है। यथा—

नृणां ब्राह्मणः श्रेष्ठः।

किन्तु

गुणान्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम् (वार्तिक)

जब तरप् प्रत्ययान्त गुणवाची शब्द के साथ षष्ठी आती है, तब समास होता है एवं तरप् प्रत्यय का लोप भी हो जाता है। यथा—

सर्वेषां श्वेततरः सर्वश्वेतः। सर्वेषां महत्तरः सर्वमहान्।

(स) पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन २।२।११।

पूरणार्थक प्रत्ययों से बने हुए शब्दों के साथ, गुणवाचक शब्दों के साथ, सुहित (तृप्ति) अर्थ वाले शब्दों के साथ, शतृ एवं शानच् प्रत्ययान्त शब्दों के साथ कृदन्त अव्ययों के साथ तव्य प्रत्यय से बने शब्दों के साथ तथा समानाधिकरण शब्दों के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास नहीं होता है। यथा—

सतां षष्ठः, काकस्य कार्ष्ण्यम्, फलानां सुहितः, द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा, ब्राह्मणस्य कृत्वा ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्, तक्षकस्य सर्पस्य।

विशेष—तव्यत् से बने शब्दों के साथ षष्ठीसमास होता है। यथार्थतः तव्य और तव्यत् में कोई भेद नहीं है। त् से केवल इतना ज्ञात होता है कि तव्यत् से बने शब्द स्वरित स्वर वाले होते हैं। 'स्वकर्त्तव्यम्' समस्त पद तो बनेगा ही और उसमें अन्तस्वरित होगा।

(द) क्तेन च पूजायाम् २।२।१२।

पूजार्थवाची क्त प्रत्ययान्त शब्दों के साथ भी षष्ठीतत्पुरुष समास नहीं होता है। यथा—राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा।

सप्तमी तत्पुरुष—जब तत्पुरुष का प्रथम शब्द सप्तमी विभक्ति में आवे, तब उस तत्पुरुष समास को सप्तमी तत्पुरुष कहते हैं। यह समास भी निम्नलिखित दशाओं में ही होता है—

(१) सप्तमी शौण्डैः २।१।४०।

शौण्ड (चतुर), धूर्त, कितव (शठ), प्रवीण, संवीत (भूषित) अन्तर, अधि, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण इन शब्दों में से किसी के साथ सप्तम्यन्त शब्द आने पर सप्तमी तत्पुरुष समास होता है। यथा—

अक्षेषु शौण्डः = अक्षशौण्डः। प्रेम्णि धूर्तः = प्रेमधूर्तः।

द्यूते कितवः = द्यूतकितवः। सभायां पण्डितः = सभापण्डितः।

(२) सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च।२।१।४१।

जब सप्तम्यन्त शब्द सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध इन शब्दों में से किसी के साथ आवे, तब सप्तमी तत्पुरुष समास होता है। यथा—

आतपे शुष्कः = आतपशुष्कः। कटाहे पक्वः = कटाहपक्वः।

चक्रे बन्धः = चक्रबन्धः।

(३) ध्वाङ्क्षेण क्षेपे।२।१।४२। ध्वाङ्क्षेणेत्यर्थग्रहणम् (वार्तिक)

जब ध्वाङ्क्ष (कौवा) शब्द अथवा इसके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ, निन्दा करने के लिए सप्तमी आवे, तब सप्तमी तत्पुरुष समास होता है। यथा—

तीर्थे ध्वाङ्क्षः = तीर्थध्वाङ्क्षः (तीर्थ का कौवा अर्थात् लोलुप)।

श्राद्धे काकः = श्राद्धकाकः इत्यादि।

समानाधिकरण तत्पुरुष समास

समानाधिकरण का तात्पर्य है ऐसी वस्तुएँ जिनका अधिकरण समान अर्थात् एक हो, उदाहरणार्थ यदि राम और मोहन एक ही आसन पर बैठे हों तो वह आसन उन दोनों का समानाधिकरण हुआ, परन्तु यदि दोनों अलग-अलग आसनों पर बैठे हों तो अलग-अलग अधिकरण हुआ अर्थात् 'व्यधिकरण' हुआ। इसी प्रकार यदि एक ही समय में दो व्यक्ति उपस्थित हों तो उनकी उपस्थिति समानाधिकरण हुई और यदि भिन्न २ समय में हों तो उपस्थिति व्यधिकरण हुई। इसी प्रकार शब्दों के विषय में भी, यथा—राज्ञः + पुरुषः—इसमें यह आवश्यक नहीं है कि राजा और उसका पुरुष दोनों एक ही स्थान और एक ही समय में हों, अत एव यहाँ समानाधिकरण नहीं हो सकता है। किन्तु कृष्णः + सर्पः—इसमें यह निश्चित है कि जहाँ-जहाँ और जिस-जिस समय में साँप रहेगा, उसका कालापन भी उसके साथ ही साथ रहेगा अन्यथा उसे कृष्णः सर्पः नहीं कहा जा सकेगा, अतएव यहाँ समानाधिकरण है।

तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः।१।२।४२।

जिसमें दोनों शब्दों का समानाधिकरण हो ऐसा तत्पुरुष समास, समानाधिकरण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय तत्पुरुष कहलाता है। इस समास की क्रिया दोनों शब्दों को

धारण करती है। उदाहरणार्थ 'कृष्णः सर्पः अपसर्पति' इस वाक्य में सर्प जब क्रिया करता है तो कृष्णत्व भी उसके साथ रहता है।

व्यधिकरण तत्पुरुष और समानाधिकरण तत्पुरुष में मुख्य भेद यह है कि प्रथम में समास का पहला शब्द प्रथमा के अतिरिक्त और किसी विभक्ति में होता है दूसरे में केवल प्रथमा विभक्ति होती है।

कर्मधारय समास में प्रथम शब्द या तो द्वितीय शब्द का विशेषण होता है और द्वितीय शब्द संज्ञा होता है अथवा दोनों शब्द संज्ञा होते हैं किन्तु प्रथम विशेषणस्थानीय होता है अथवा दोनों ही विशेषण होते हैं जिसमें समय पड़ने पर किसी तीसरे शब्द का संयुक्त विशेषण हो जाते हैं।

कर्मधारय समास के निम्नलिखित भेद हैं—

(१) विशेषणं विशेष्येण बहुलम्। २।१।५७।

इस कर्मधारय समास को विशेषणपूर्वपद कर्मधारय' कहते हैं जिनमें प्रथम शब्द विशेषण होता है और दूसरा विशेष्य। यथा—

कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः। नीलम् उत्पलम् = नीलोत्पलम्।

रक्तं कमलम् = रक्तकमलम्।

किं क्षेपे। २।१।६४।

'कु' शब्द का अर्थ जब 'खराब', 'बुरा' होता है तब इस पद का समास किसी संज्ञा से होकर पूरा कर्मधारय समास हो जाता है। यथा—

कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः। कुत्सितः देशः = कुदेशः।

कुत्सितः पुत्रः = कुपुत्रः।

कहीं कहीं 'कु' का रूपान्तर 'कद्' और कहीं 'का' हो जाता है। यथा—

कुत्सितम् अन्नम् = कदन्नम्। कुत्सितः पुरुषः = कापुरुषः।

(२) उपमानानि सामान्यवचनैः।२।१।५५।

जब किसी वस्तु से उपमा दी जाय तो वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय और वह गुण जिसकी उपमा हो, मिलकर कर्मधारय समास होंगे और इस समास को 'उपमान-पूर्वपद कर्मधारय' कहा जायगा। यथा—घनः इव श्यामः = घनश्यामः। चन्द्रः इव आह्लादकः = चन्द्राह्लादकः। प्रथम उदाहरण में 'घन' उपमान और 'श्याम' सामान्य गुण है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में 'चन्द्र' उपमान और 'आह्लादक' सामान्य गुण है। इस समास में उपमान पहले आता है, अतएव इसे 'उपमानपूर्वपद' कहा जाता है।

(३) उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे। २।१।५६।

इस कर्मधारय समास को 'उपमानोत्तरपद कर्मधारय' कहते हैं जिसमें उपमित (जिस वस्तु की उपमा दी जाए) और उपमान (जिससे उपमा दी जाए)—दोनों साथ साथ आते हैं। यथा—मुखं कमलमिव = मुखकमलम्। पुरुषः व्याघ्रः इव = पुरुषव्याघ्रः। इस समास में उपमान प्रथम शब्द न होकर द्वितीय होता है।

मुखकमलम्, पुरुषव्याघ्रः आदि इस प्रकार के समासों का दो तरह से विग्रह किया जा सकता है। (१) मुखमेव कमलम् और पुरुषः एव व्याघ्रः और (२) मुखं कमलमिव और पुरुषः व्याघ्रः इव।

प्रथम को रूपक समास कहा जायगा क्योंकि इसमें एक पर दूसरे का आरोप किया गया है और द्वितीय को उपमित समास कहेंगे क्योंकि इसमें उपमा है।

(४) दो समानाधिकरण विशेषणों के समास को 'विशेषणोभयपद कर्मधारय कहते हैं। यथा—

कृष्णश्च श्वेतश्च = कृष्णश्वेतः (अश्वः)

इसी प्रकार दो क्त प्रत्ययान्त शब्द वस्तुतः विशेषण ही होते हैं, इसी प्रकार समास बनाते हैं। यथा—

स्नातश्च अनुलिप्तश्च = स्नातानुलिप्तः।

दो विशेषणों में से एक दूसरे का प्रतिवादी भी हो सकता है। यथा—

कृतश्च अकृतश्च = कृताकृतम् (कर्म)

चरश्च अचरश्च = चराचरम् (जगत्)

द्विगुसमास

संख्यापूर्वो द्विगुः २।१।२२।

जब कर्मधारयसमास में प्रथम शब्द संख्यावाची हो और दूसरा कोई संज्ञा तो उस समास को 'द्विगुसमास' कहते हैं। 'द्विगु' शब्द में स्वयं प्रथम शब्द 'द्वि' संख्यावाची है और दूसरा 'गु' (गो) संज्ञा है।

(अ) द्विगुसमास तभी होता है जब या तो उसके अनन्तर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो, यथा—

षष् + मातृ = षण्मातृ + अ (तद्धित प्रत्यय) = षाण्मातुरः (षण्णां मातॄणामपत्यं पुमान्)

अथवा उसको किसी और शब्द के साथ समास में आना हो। यथा = पञ्चगावः धनं यस्य सः = पञ्चगवधनः।

(ब) अथवा द्विगु[1] समास किसी समूह (समाहार) का द्योतक हो। इस अवस्था में वह नित्य नपुंसकलिङ्ग[2] एक वचन में रहेगा। यथा—

पञ्चानां गवां समाहारः = पञ्चगवम्।

पञ्चानां ग्रामाणां समाहारः = पञ्चग्रामम्।

पञ्चानां पात्राणाम् समाहारः = पञ्चपात्रम्।

चतुर्णां युगानां समाहारः = चतुर्युगम्।

---

१. द्विगुरेकवचनम् २।४।१।

२. स नपुंसकम् २।४।१७।

त्रयाणां भुवनानां समाहारः = त्रिभुवनम् ।

पञ्चानां मूलानां समाहारः = पञ्चमूली ।

पञ्चानां वटानां समाहारः = पञ्चवटी ।

त्रयाणां लोकानां समाहारः = त्रिलोकी ।

अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः । पात्रान्तस्य न । (वार्तिक)

वट, लोक तथा मूल इत्यादि अकारान्त शब्दों के साथ समाहार द्विगु समास होने पर समस्त पद ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो जाता है। परन्तु पात्र, भुवन, युग इत्यादि में अन्त होने वाले द्विगु समास में नहीं।

आबन्तो वा (वार्तिक)

समाहार द्विगु का उत्तर पद का अकारान्त होने पर समस्त पद विकल्प से स्त्रीलिङ्ग होता है। यथा—

पञ्चानां खट्वानां समाहारः = पञ्चखट्वी, पञ्चखट्वा ।

अन्य तत्पुरुष का समास

अब उन तत्पुरुष समासों का विचार किया जाएगा जो तत्पुरुष होते हुए भी कुछ वैशिष्ट्य रखते हैं।

(१) नञ् तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'न' रहे और दूसरा कोई संज्ञा या विशेषण रहे तो उसे नञ् तत्पुरुष की संज्ञा प्रदान की जाती है। यह 'न' व्यञ्जन के पूर्व 'अ' में और स्वर के पूर्व 'अन्' में बदल जाता है। यथा—

न ब्राह्मणः = अब्राह्मणः (ऐसा मनुष्य जो ब्राह्मण न हो)।

न गर्दभः = अगर्दभः (ऐसा जानवर जो गदहा न हो)।

न सत्यम् = असत्यम् ।

न चरम् = अचरम् ।

न कृतम् = अकृतम् ।

न अब्जम् = अनब्जम् (जो कमल न हो)।

न आगतम् = अनागतम् ।

(२) प्रादि तत्पुरुषसमास—

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'प्र' आदि उपसर्गों में से कोई हो, तब उसे प्रादि तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

प्रगतः (बहुत विद्वान्) आचार्यः = प्राचार्यः ।

प्रगतः (बड़े) पितामहः = प्रपितामहः ।

प्रतिगतः (सामने आया हुआ) अक्षम् (इन्द्रियम्) = प्रत्यक्षः ।

उद्गतः (ऊपर पहुँचा हुआ) वेलाम् (किनारा) = उद्वेलः ।

अतिक्रान्तः मर्यादाम् = अतिमर्यादः (जिसने हद पार कर दी हो)

अतिक्रान्तः रयम् = अतिरयः (ऐसा योद्धा जो बहुत बलवान् हो)।

अवकुष्टः कोकिलया = अवकोकिलः (कोकिला से उच्चारण किया हुआ-मुग्ध)।

परिग्लानोऽध्ययनाय = पर्यध्ययनः (पढ़ने से थका हुआ)।

निर्गतः गृहात् = निर्गृहः (घर से निकाला हुआ) इत्यादि।

विशेष—इन 'प्र' आदि उपसर्गों से विशेष विशेषणों का अर्थ निकलता है। इसीलिए यह एक प्रकार से कर्मधारय समास है।

(२) गति तत्पुरुष समास—

कुछ कृत् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के साथ कुछ विशेष शब्दों (ऊरी आदि) का समास होता है, तब उस समास को गति तत्पुरुष कहते हैं[1]। यथा—

ऊरी कृत्वा = ऊरीकृत्य। शुक्लीभूय। नीलीकृत्य। इसी प्रकार स्वीकृत्य, पटपटाकृत्य।

'भूषण'[2] अर्थवाची होने पर 'अलम्' की भी गति संज्ञा होती है। यथा—

अलं (भूषितं) कृत्वा = अलंकृत्य (भूषित करके)।

आदर[3] तथा अनादर अर्थ में 'सत्' और 'असत्' भी गति कहलाते हैं। यथा—

सत्कृत्य (आदर करके)।

अपरिग्रह[4] से भिन्न अर्थ में 'अन्तर' की भी गति संज्ञा होती है। यथा—

अन्तर्हत्य—मध्ये हत्वा इत्यर्थः।

कृ[5] धातु के साथ 'साक्षात्' इत्यादि की भी गति संज्ञा होती है। यथा—

साक्षात्कृत्य। गतिसंज्ञक होने पर ही 'साक्षात्कृत्य बनेगा' अन्यथा 'साक्षात्कृत्वा'।

पुरः[6] की भी गति संज्ञा होती है। यथा—पुरस्कृत्य।

'अस्तम्'[7] शब्द की भी गति संज्ञा होती है। यथा—अस्तंगत्य।

अन्तर्धान के अर्थ में 'तिरः'[8] शब्द गतिसंज्ञक होता है। यथा—तिरोभूय।

---

१. ऊर्यादिच्विडाचश्च १।४।६१।

ऊरी आदि निपात क्रिया के योग में गति कहलाते हैं। च्वि तथा अच् प्रत्ययों से युक्त शब्द भी गति कहलाते हैं।

इसीलिए यह समास गति-समास कहलाता है।

२. भूषणेऽलम् १।४।६४।

३. आदरानादरयोः सदसती। १।४।६३।

४. अन्तरपरिग्रहे। १।४।६५।

५. साक्षात्प्रभृतीनि च। १।४।७४।

६. पुरोऽव्ययम्।

७. अस्तं च। १।४।६८।

८. तिरोऽन्तर्धौ। १।४।७१।

तिरः[1] कृ के साथ विकल्प से गति होता है। यथा तिरस्कृत्य या तिरः कृत्य।

(४) उपपद[2] तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष का पहला शब्द कोई ऐसी संज्ञा या कोई ऐसा अव्यय हो जिसके न रहने से उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप नहीं रह सकता है, तब उसे उपपद-तत्पुरुष समास कहते हैं। प्रथम शब्द को उपपद कहा जाता है, इसीलिए इस समास को उपपद समास कहते हैं। द्वितीय शब्द का कोई रूप क्रिया का न होना चाहिए, बल्कि कृदन्त का होना चाहिए, परन्तु ऐसा शब्द हो जो प्रथम शब्द के न रहने पर असम्भव हो जाए। यथा—कुम्भं करोति इति कुम्भकारः।

यहाँ समास में 'कुम्भ' और 'कार' दो शब्द हैं। 'कुम्भ' को उपपद कहेंगे। पुनश्च 'कारः' भी कृदन्त का रूप है, किन्तु यदि पूर्व में उपपद न हो तो 'कारः' अपने आप नहीं रह सकता। 'कारः उपपद से स्वाधीन कोई शब्द नहीं है। हम 'कारः' का प्रयोग अकेले नहीं कर सकते हैं। केवल कुम्भ अथवा अन्य उपपद के साथ ही इसे प्रयुक्त कर सकते हैं; यथा—

चर्मकारः, स्वर्णकारः आदि। इसी प्रकार—ग्रामगायतीति ग्रामगः।

यहाँ 'ग्राम' उपपद है, अतएव 'गः' शब्द प्रयुक्त हुआ है, इसके साथ ही 'गः' का प्रयोग हो सकता है, अकेले नहीं। 'गः' के साथ कोई उपपद अवश्य रहना चाहिए। इसी प्रकार—

धनं ददातीति धनदः।

कम्बलं ददातीति कम्बलदः।

गा ददातीति गोदः। इत्यादि।

क्त्वा च। २।२।२२।

तृतीयान्त उपपद 'क्त्वा' के साथ विकल्प से समास बनाते हैं। यथा—उच्चैः कृत्य, एकार्थीभूय आदि। समास न होने पर उच्चैः कृत्वा होगा।

(५) अलुक् तत्पुरुषसमास—

समास करने पर जहाँ पूर्वपद की विभक्ति का लोप नहीं होता है, वहाँ अलुक् समास होता है। कहाँ पूर्वपद की विभक्ति का लोप होता है, कहाँ नहीं यह शिष्ट प्रयोगों से ही समझना चाहिए। निम्नलिखित स्थानों में विभक्तियाँ लुप्त नहीं होतीं :—

तृतीयातत्पुरुष में—पुंसानुजः, सहसाकृतम्, ओजसाकृतम्, मनसाकृतम्, अम्भसाकृतम्, तमसाकृतम्, मनसादत्ता, आत्मनापञ्चमः, आत्मनादशमः, हस्तिनापुरम् आदि।

चतुर्थीतत्पुरुष में—आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्।

---

१. विभाषा कृञि। १।४।७९।

२. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्। ३।१।९२।

पञ्चमीतत्पुरुष में—स्तोकान्मुक्तः, कृच्छ्रान्निष्क्रान्तः, अल्पान्मुक्तः, अन्तिकादागतः, समीपादागतः, दूरादागतः।

षष्ठीतत्पुरुष में—दासस्तनयः, वाचोयुक्तिः, पश्यतोहरः, शुनःशेपः, दिवोदासः, वाचस्पतिः, चौरस्यकुलम्।

सप्तमीतत्पुरुष में—युधिष्ठिरः, गेहेशूरः, शरदिजः, अन्तेवासी आदि।

(६) मध्यमपदलोपी तत्पुरुषसमास—

ऐसे तत्पुरुषसमास जिनमें से कोई ऐसा शब्द गायब हो गया हो जिसे साधारण दशा में रहना चाहिए था, 'मध्यमपदलोपी समास' के नाम से कहे जाते हैं। यह कर्मधारय और बहुव्रीहि में होता है। यथाः—

शाकप्रियः पार्थिवः = शाकपार्थिवः।

सिंहचिह्नितम् आसनम् = सिंहासनम्।

देवपूजको ब्राह्मणः = देवब्राह्मणः।

पञ्चाधिका दश = पञ्चदश।

विन्ध्यनामा गिरिः = विन्ध्यगिरिः।

छायाप्रधानः तरुः = छायातरुः आदि।

चन्द्र इव आननं यस्याः सा = चन्द्रानना।

अमुक्तानि पर्णानि यया सा = अपर्णा (पार्वती)।

अनुगतः अर्थो यस्मिन् सः = अन्वर्थः।

(७) मयूरव्यंसकादि तत्पुरुषसमास

कुछ ऐसे तत्पुरुषसमास हैं जिनमें नियमों का प्रत्यक्ष उल्लङ्घन है, उनको पाणिनि ने मयूरव्यंसकादि नाम देकर पृथक् कर दिया है। यथा—

व्यंसकः मयूरः = मयूरव्यंसकः (चालाक मोर)

यहाँ व्यंसक शब्द प्रथम होना चाहिए था और मयूर दूसरा। इसी प्रकार—

अन्यो राजा = राजान्तरम्।

अन्यो ग्रामः = ग्रामान्तरम्।

उदक् च अवाक् चेति उच्चावचम्।

निश्चितं च प्रचितं चेति निश्चप्रचम्।

चिदेव इति चिन्मात्रम्।

द्वन्द्वसमास

चार्थे द्वन्द्वः।२।२।२९।

जहाँ पर दो या अधिक शब्दों का इस प्रकार समास हो कि उसमें च (और) अर्थ छिपा हो तो वह द्वन्द्वसमास होता है। इस समास की पहचान है कि जहाँ अर्थ करने पर बीच में 'और' अर्थ निकले। यथा—

रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ।

शशश्च कुशश्च पलाशश्च = शशकुशपलाशाः ।

उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः ।

द्वन्द्वसमास में दोनों पदों का अर्थ मुख्य होता है ।

द्वन्द्वसमास तीन प्रकार का है—१-इतरेतर द्वन्द्व

२-समाहार द्वन्द्व

३-एकशेष द्वन्द्व

(क) इतरेतर द्वन्द्व

जहाँ पर बीच में 'और' का अर्थ होता है तथा शब्दों की संख्या के अनुसार अन्त में वचन होता है अर्थात् दो वस्तुएँ हों तो द्विवचन, बहुत हों तो बहुवचन, वहाँ इतरेतर द्वन्द्व समास होता है। प्रत्येक शब्द के बाद विग्रह में 'च' लगेगा। यथा—

रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ । इसी प्रकार उमाशंकरौ, रामलक्ष्मणौ ।

पत्रं च पुष्पं च फलं च = पत्रपुष्पफलानि ।

रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च = रामलक्ष्मणभरताः ।

आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ।६।३।२५।

ऋकारान्त (विद्यासम्बन्ध तथा योनि सम्बन्ध के वाचक) पद या पदों के साथ द्वन्द्वसमास होने पर अन्तिम पद के पूर्वस्थित ऋकारान्त पद के ऋकार के स्थान में आकार हो जाता है। यथा—

होता च पोता चेति होतापोतारौ ।

माता च पिता च = मातापितरौ ।

होता च पोता च उद्गाता च = होतृपोतोद्गातारः ।

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ।२।४।२६।

इस समास में अन्तिम शब्द के अनुसार पूरे समास का लिङ्ग होता है। यथा—

मयूरी च कुक्कुटश्च = मयूरीकुक्कुटौ ।

कुक्कुटश्च मयूरी च = कुक्कुटमयूर्यौ ।

(ख) समाहारद्वन्द्व

जिस समास में दो या बहुत पदों का समाहार बोध हो या प्रत्येक पद का अर्थ समष्टि भाव से प्रकाशित हो वहाँ समाहार द्वन्द्व होता है। समाहार द्वन्द्व में समस्त पद एकवचनान्त नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। यथा—हस्तौ च पादौ च = हस्तपादम्। पाणी च पादौ च पाणिपादम्। आहारश्च निद्रा च भयञ्च = आहारनिद्राभयम् ।

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनांगानाम् ।२।४।२।

प्राणी के अंग, तूर्य (वाद्य) के अङ्ग और सेना के अंगवाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व ही होता है। यथा—पाणी च पादौ च पाणिपादम् ।

भेरी च पटहश्च अनयोः समाहारः—भेरीपटहम् ।

हस्तिनश्च अश्वाश्च एतेषां समाहारः—हस्त्यश्वम् ।

जातिरप्राणिनाम् ।२।४।६।

मनुष्य अथवा पशु के शरीर के अङ्गवाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—पाणिपादम् ।

विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः ।२।४।७।

लिंग भेद होने से नदी वाचक, देशवाचक और नगरवाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—गंगा च शोणश्च = गङ्गाशोणम् । इसी प्रकार यमुनाब्रह्मपुत्रम्, ब्रह्मपुत्रचन्द्रभागम् आदि ।

कुरवश्च कुरुक्षेत्रश्च = कुरुकुरुक्षेत्रम् । इसी प्रकार कुरुजाङ्गलम् आदि ।

मथुरा च पाटलिपुत्रश्च = मथुरापाटलिपुत्रम्, काशीप्रयागम् आदि ।

क्षुद्रजन्तवः ।२।४।८।

जब क्षुद्र जीवों के नाम हों तब समाहारद्वन्द्व होता है। यथा—

यूका च लिक्षा च यूकालिक्षम् (जुएँ और लीखें)।

येषां च विरोधः शाश्वतिकः ।२।४।९।

जिनमें परस्पर नित्य विरोध होता हो उनमें समाहारद्वन्द्व होता है। यथा—

अहयश्च नकुलाश्च = अहिनकुलम् । इसी प्रकार गोव्याघ्रम्, काकोलूकम् इत्यादि ।

गाने-बजाने वाले अंग के वाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च = मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदङ्ग और पणव बजाने वाले)।

अचेतन पदार्थ के वाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

गोधूमश्च चणकश्च = गोधूमचणकम् ।

विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् ।२।४।१२।

वृक्षादौ विशेषाणामेव ग्रहणम् (वार्तिक)।

वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यंजन, पशु, शकुनि के वाचक शब्दों के समास तथा अश्ववडवे, पूर्वापरे तथा अधरोत्तरे समास भी विकल्प से समाहारद्वन्द्व समास होते हैं। यथा—

प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधाः ।

रुरुपृषतम्, रुरुपृषताः ।

कुशकाशम्, कुशकाशाः ।

व्रीहियवम्, व्रीहियवाः ।

दधिघृतम्, दधिघृते ।

गोमहिषम्, गोमहिषाः ।

शुकबकम्, शुकबकाः ।

अश्ववडवम्, अश्ववडवेः ।

पूर्वापरम्, पूर्वापरे ।

अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे ।

(ग) एकशेष द्वन्द्व

एक विभक्ति होने से समास करने पर समानाकार के दो वा बहुत पदों में से एक ही रह जाता है, ऐसे समास को एकशेष द्वन्द्व कहते हैं। यथा—

माता च पिता च = पितरौ। श्वश्रूश्च श्वसुरश्च = श्वसुरौ।

सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ।१।२।६४। विरूपाणामपि समानार्थानाम्। (वार्तिक)

एक शेष द्वन्द्व में केवल समान रूपवाले शब्द अथवा समान अर्थ रखने वाले विरूप शब्द भी आ सकते हैं। यदि समास में पुँल्लिङ्ग शब्द तथा स्त्रीलिङ्ग शब्द दोनों मिलें तो समास पुँल्लिङ्ग में रहेंगे। यथा—

सरूप—ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च = ब्राह्मणौ।
शूद्री च शूद्रश्च = शूद्रौ।
अजश्च अजा च = अजौ।
चटकश्च चटका च = चटकौ।

विरूप—वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च = वक्रदण्डौ या कुटिलदण्डौ।
घटश्च कलशश्च = घटौ या कलशौ।

द्वन्द्वसमास करते समय निम्नलिखित नियमों पर ध्यान रखना आवश्यक है—

(अ) द्वन्द्वेघि ।२।२।३२।

इकारान्त शब्द पहले रखना चाहिए; यथा—हरिश्च हरश्च = हरिहरौ।

(ब) अनेक प्राप्तावेकत्र नियमोऽनियमः शेषे। (वार्तिक)

यदि कई इकारान्त हों तो एक को प्रथम रखना चाहिए, शेष को इच्छानुसार रख सकते हैं। यथा—हरिश्च हरश्च गुरुश्च = हरिहरगुरवः या हरिगुरुहराः।

(स) अजाद्यन्तत् ।२।२।३३।

स्वर से आरम्भ होने वाले एवं 'अ' में अन्त होने वाले शब्दों को पहले रखना चाहिए। यथा—इन्द्रश्च अग्निश्च = इन्द्राग्नी।
ईश्वरश्च प्रकृतिश्च = ईश्वरप्रकृती।

(द) वर्णानामानुपूर्व्येण। भ्रातुर्ज्यायसः। (वार्तिक)

वर्णों के तथा भाइयों के नाम को ज्येष्ठ क्रमानुसार रखना चाहिए। यथा—
ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च = ब्राह्मणक्षत्रियौ।
रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ। इसी प्रकार युधिष्ठिरार्जुनौ।

(य) अल्पाच् तरम् ।२।२।३४।

जिस शब्द में कम अक्षर हों, उन्हें पहले रखना चाहिए। यथा—
शिवश्च केशवश्च = शिवकेशवौ।

बहुव्रीहिसमास

जिस समास में अन्य पद के अर्थ की प्रधानता होती है, उसे बहुव्रीहिसमास कहते हैं। बहुव्रीहिसमास होने पर समस्त पद स्वतन्त्र रूप से अपना अर्थ नहीं

बताते, प्रत्युत् वे विशेषण के रूप में काम करते हैं और अन्य वस्तु का बोध विशेष्य के रूप में कराते हैं।[1] बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ है—बहुः व्रीहिः यस्य अस्ति सः बहुव्रीहिः (जिसके पास बहुत चावल हों)। इसमें दो शब्द हैं—बहु और व्रीहि। प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण और दोनों मिलकर किसी तीसरे के विशेषण हैं। अतएव इस प्रकार के समासों का नाम बहुव्रीहि पड़ा।

बहुव्रीहि और तत्पुरुष में मुख्य भेद यह है कि तत्पुरुष में प्रथम शब्द द्वितीय शब्द का विशेषण होता है, यथा—पीतम् अम्बरम् = पीताम्बरम् (पीला कपड़ा)—कर्मधारय तत्पुरुष। बहुव्रीहि में इसके अतिरिक्त दोनों मिलकर किसी तीसरे शब्द के विशेषण होते हैं। यथा—पीताम्बरः पीतम् अम्बरं यस्य सः (जिसका कपड़ा पीला, हो, अर्थात् श्रीकृष्ण)

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही समास प्रकरण की आवश्यकतानुसार तत्पुरुष या बहुव्रीहि हो सकता है। इसके उदाहरण के लिए एक बड़ी मनोरञ्जक कहानी है।

एक बार एक भिखारी फटे-पुराने कपड़े पहने किसी राजा के निकट जाकर बोला—'अहञ्च त्वञ्च राजेन्द्र, लोकनाथा वुभावापि'। (हे राजेन्द्र! मैं भी लोकनाथ हूँ और आप भी अर्थात् हम दोनों लोकनाथ हैं।)

भिखारी की पूर्वोक्त उक्ति सुनकर सभा के समस्त राजकर्मचारी उसकी धृष्टता पर बिगड़कर कहने लगे—देखो, यह भिखारी हमारे महाराज की बराबरी करने चला है, इसे यहाँ से निकालो।' तब तक भिखारी श्लोक का दूसरा अंश भी बोल उठा—

'बहुव्रीहिरहं राजन् षष्ठी तत्पुरुषो 'भवान्' (हे राजन्! मैं बहुव्रीहि (समास) हूँ और आप षष्ठी तत्पुरुषः—अर्थात् मेरे पक्ष में 'लोकनाथः' का अर्थ होगा—"लोकाः प्रजाः नाथाः पालकः यस्य सः"—जिसको सभी रक्षा करें और पालन करें और आपके पक्ष में "लोकनाथः" का अर्थ होगा "लोकस्य नाथः"—संसार भर के स्वामी। यह सुनकर सब लोग हँस पड़े और याचक को उचित पारितोषिक दिया गया है।

इस समास के मुख्य दो भेद हैं—

(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि।

(२) व्यधिकरण बहुव्रीहि।

समानाधिकरण बहुव्रीहि वह है जिसके दोनों पदों में प्रथमा विभक्ति रहती है। व्यधिकरण बहुव्रीहि वह है जिसके दोनों पदों में विभक्तियाँ भिन्न होती हैं। यथा—

धनुः पाणौ यस्य सः = धनुष्पाणिः।

---

१. अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः (सर्वसमासशेषप्रकरणात्)।

चक्रं पाणौ यस्य सः = चक्रपाणिः (विष्णुः)।

चन्द्रः शेखरे यस्य सः = चन्द्रशेखरः (शिवः)।

चन्द्रस्य कान्तिः इव कान्तिः यस्य सः = चन्द्रकान्तिः।

समानाधिकरण बहुव्रीहि के ६ भेद हैं—

(१) द्वितीया समानाधिकरण बहुव्रीहि।

(२) तृतीया समानाधिकरण बहुव्रीहि।

(३) चतुर्थी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

(४) पञ्चमी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

(५) षष्ठी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

(६) सप्तमी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

समानाधिकरण बहुव्रीहि के उपर्युक्त भेद विग्रह में आए हुए 'यत्' शब्द की विभक्ति से ज्ञात होते हैं। यदि 'यत' द्वितीया विभक्ति में हो तो समास द्वितीया समानाधिकरण बहुव्रीहि होगा और इसी प्रकार अन्य भेद होंगे। यथा—

द्वि० स० ब०—प्राप्तमुदकं यं सः प्राप्तोदकः (ग्रामः) ऐसा गाँव जहाँ पानी पहुँच चुका हो।

आरूढो वानरो यं स आरूढवानरः (वृक्षः)

तृ० स० ब०—जितानि इन्द्रियाणि येन सः जितेन्द्रियः (पुरुषः) जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है।

ऊढः रथः येन स ऊढरथः (अनड्वान)—ऐसा बैल जिसने रथ खींचा हो।

दत्तं चित्तं येन स दत्तचित्तः (पुरुषः)—ऐसा पुरुष जो चित्त दिए हो, लगाए हो।

च० स० ब०—उपहृतः पशुः यस्मै सः उपहृत पशुः (रुद्रः) जिसके लिए पशु (बलि के लिए) लाया गया हो।

पं० स० ब०—उद्धृतम् ओदनं यस्याः सा उद्धृतौदना (स्थाली) ऐसी थाली जिसमें से भात निकाल लिया गया हो। निर्गतं धनं यस्मात् स निर्धनः (पुरुषः)। निर्गतं बलं यस्मात् स निर्बलः (पुरुषः)।

ष० स० ब०—पीतम् अम्बरं यस्य सः पीताम्बरः। इसी प्रकार दशाननः (रावण), चतुराननः (ब्रह्मा), चतुर्मुखः, महाशयः आदि।

स० स० ब०—वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः वीरपुरुषः (ग्रामः)—ऐसा गाँव जिसमें वीर पुरुष हों।

निम्नलिखित बहुव्रीहि भी मिलते हैं—

(१) नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (वार्तिक)। प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (वार्तिक)।

नञ् या कोई उपसर्ग किसी संज्ञा के साथ हो तो ऐसा रूप होता है। यथा—अविद्य-

मानः पुत्रः यस्य स अपुत्रः (अथवा अविद्यमानपुत्रः)। इसी प्रकार उत्कन्धरः (अथवा उद्गतकन्धरः), विजीवितः (अथवा विगतजीवितः)।

(२) तेन सहेति तुल्ययोगे। २।२।२८।

तृतीयान्त पद के साथ सह शब्द का जो समास होता है वह तुल्ययोग बहुव्रीहि कहलाता है जिसमें विकल्प से सह का 'स' आदेश हो जाता है। यथा—बान्धवैः सहितः सबान्धवः। अनुजेन सहितः सानुजः सहानुजो वा। विनयेन सह वर्तमानं सविनयम्, आदि।

बहुव्रीहि बनाते समय निम्नलिखित नियमों पर ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु। ६।३।३४।

यदि समानाधिकरण बहुव्रीहि में प्रथम शब्द पुँल्लिङ्ग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिङ्ग शब्द (रूपवद्—रूपवती, सुन्दर—सुन्दरी आदि) हो किन्तु ऊकारान्त न हो और दूसरा शब्द स्त्रीलिङ्ग हो तो प्रथम शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप हटाकर आदिम पुँल्लिङ्गरूप रक्खा जाता है। यथा—

रूपवती भार्या यस्य सः रूपवद्भार्यः (रूपवती भार्यः नहीं)।

इस उदाहरण में समास का प्रथम शब्द "रूपवती" है और द्वितीय शब्द भार्या। प्रथम शब्द 'रूपवद्' (पुं०) से बना था और ऊकारान्त न होकर ईकारान्त था एवं दूसरा शब्द "भार्या" स्त्रीलिङ्ग था। अतएव प्रथम शब्द का पुँल्लिङ्ग रूप आया। इसी प्रकार—चित्राः गावः यस्य सः चित्रगुः।

(२) इनः स्त्रियाम्। ५।४।१५२।

यदि समास के अन्त में इन् में अन्त होने वाला शब्द आवे और यदि पूरा समास स्त्रीलिङ्ग बनाना हो तो नित्य कप् (क) प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। यथा—बहवः दण्डिनः यस्यां सा बहुदण्डिका (नगरी)।

परन्तु पुँल्लिङ्ग बनाने के लिए कप् जोड़ना या न जोड़ना ऐच्छिक है।

यथा—बहुदण्डिको ग्रामः, बहुदण्डी ग्रामः वा।

(३) यदि उरस्, सर्पिष् इत्यादि शब्दों के अन्त में आवें तो अनिवार्य रूप से कप् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

व्यूढं उरो यस्य सः व्यूढोरस्कः (चौड़ी छाती वाला)।

प्रियं सर्पिः यस्य सः प्रियसर्पिष्कः (जिसे घृत प्रिय हो)।

(४) शेषाद्विभाषा। ५।४।१५४।

जब अन्य नियमों के अनुसार बहुव्रीहि समास के अन्तिम शब्द में कोई विकार न हुआ हो तो उसमें कप् प्रत्यय का जोड़ना ऐच्छिक है। यथा—उदात्तं मनः यस्य सः उदात्तमनस्कः अथवा उदात्तमनाः। इसी प्रकार महायशस्कः अथवा महायशाः आदि।

(५) यदि बहुव्रीहि समास का अन्तिम शब्द ऋकारान्त (पुं०, स्त्री० अथवा

नपुं०) हो अथवा स्त्रीलिङ्ग का ईकारान्त हो अथवा ऊकारान्त हो तो कप् प्रत्यय अनिवार्य रूप से जुड़ता है। यथा—

ईश्वरः कर्ता यस्य सः ईश्वरकर्तृकः (संसार)।

अन्तं धातृ यस्य सः अन्तधातृकः (पुरुषः)।

रूपवती स्त्री यस्य सः रूपवत्स्त्रीकः (मनुष्यः)।

सुन्दरी वधू यस्य सः सुन्दरवधूकः (पुरुषः)।

(६) आपोऽन्यतरस्याम् । ७।४।१५।

यदि अन्तिम शब्द आकारान्त हो तो कप् के बाद में होने पर इच्छानुसार आकार को अकार भी कर सकते हैं। यथा—पुष्पमालाकः अथवा पुष्पमालकः । कप् के अभाव में पुष्पमालः होगा।

समासान्त-प्रकरण

(१) राजाहः सखिभ्यष्टच् ५।४।९१।

जब तत्पुरुष समास के अन्त में राजन्, अहन् या सखि शब्द आते हैं तब इनमें टच् प्रत्यय लगता है और इनका रूप राज, अह और सख हो जाता है। यथा—

महान् राजा = महाराजः। इसी प्रकार सिन्धुराजः इत्यादि।

उत्तमम् अहः = उत्तमाहः (अच्छा दिन)

कृष्णस्य सखा = कृष्णसखः।

यत्र-तत्र अहन् शब्द का 'अह्न' हो जाता है। यथा—सर्वाह्णः (सारे दिन), सायाह्नः (सायंकाल)

(२) आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ।६।३।४६।

कर्मधारय और बहुव्रीहि में प्रथम पद के महत् को महा हो जाता है। यथा—

महात्मा, महादेवः, महाशयः आदि।

(३) ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे ।५।४।७४।

समासान्त अ होकर ऋच् को ऋच, पुर् को पुर, अप् को अप, धुर् को धुरा और पथिन् को पथ हो जाता है। यथा—

ऋचः अर्धम् = अर्धर्चः।

विष्णोः पूः = विष्णुपुरम्।

विमलाः आपः यस्य तत् विमलापं (सरः)।

राज्यस्य धूः = राज्यधुरा।

किन्तु अक्ष (गाड़ी) की धुरा का अभिप्राय होने पर नहीं। यथा—अक्षधूः।

(४) अहः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः ।५।४।८७।

अहः, सर्व, एकदेश (भाग) सूचक शब्द, संख्यात और पुण्य के साथ रात्रि का समास होने पर समासान्त अच् प्रत्यय लगता है। यथा—

अहश्च रात्रिश्चेति अहोरात्रः।

सर्वा रात्रिः सर्वरात्रः ।

पूर्वं रात्रेः पूर्वरात्रः । इसी प्रकार संख्यातरात्रः, पुण्यरात्रः ।

(५) अह्नोऽह्न एतेभ्यः ।५।४।८८।

उपर्युक्त (नं० ४) 'सर्व' इत्यादि के साथ 'अहन्' शब्द का समास होने पर 'अह्न' हो जाता है । तदनन्तर अह्नोऽदन्तात् ।८।४।७ के अनुसार अकारान्त पूर्वपद के रकार के पश्चात् 'अह्न' के 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—

सर्वाह्णः, पूर्वाह्णः, अपराह्णः आदि ।

(६) न संख्यादेः समाहारे ।५।४।८९।

परन्तु यदि संख्यावाची शब्द पहले होगा तो समाहार में अहन् का अहः ही होगा ।

यथा—सप्तानामह्नां समाहारः सप्ताहः । इसी प्रकार एकाहः, त्र्यहः इत्यादि ।

(७) अनोऽश्मायः सरसां जातिसंज्ञयोः ।५।४।९४।

समस्त पद का जाति या संज्ञा (नाम) अर्थ होने पर अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् के अन्त में टच् (अ) प्रत्यय जुड़ता है । यथा—

जाति अर्थ में—उपानसम्, अमृताश्मः, कालायसम्, मण्डूकसरसम् ।

संज्ञा अर्थ में—महानसम्, पिण्डाश्मः, लोहितायसम्, जलसरसम् ।

(८) नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ।५।४।१२२।

नञ्, दुः और सु के साथ प्रजा और मेधा का बहुव्रीहि समास होने पर असिच् प्रत्यय लगता है । यथा—अप्रजाः, दुष्प्रजाः, सुप्रजाः । अमेधाः, दुर्मेधाः, सुमेधाः । ये सब 'अस्' में अन्त होते हैं । इनके रूप इस प्रकार चलेंगे—अप्रजाः, अप्रजसौ, अप्रजसः इत्यादि ।

(९) धर्मादनिच् केवलात् ।५।४।१२४।

धर्म के पूर्व यदि केवल एक ही पद हो तो बहुव्रीहि समास में धर्म के अनन्तर अनिच् प्रत्यय जोड़ा जाता है । यथा—कल्याणधर्मा (धर्मन्) 'उत्पत्स्यतेऽस्तु मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥'

(१०) प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः ।५।४।१२९। ऊर्ध्वाद्विभाषा ।५।४।१३०।

बहुव्रीहि समास होने पर प्र और सम् के बाद 'जानु' को 'ज्ञु' होता है । यथा—

प्रगते जानुनी यस्य सः प्रज्ञुः; इसी प्रकार संज्ञुः ।

ऊर्ध्व के साथ विकल्प से ज्ञु होता है । यथा—ऊर्ध्वज्ञुः या ऊर्ध्वजानुः ।

(११) धनुषश्च ।५।४।१३२। वा संज्ञायाम् ।५।४।१३३।

धनुष् में अन्त होने वाले बहुव्रीहि समास में अनङ् आदेश होता है । यथा—

पुष्पं धनुर्यस्य सः पुष्पधन्वा । इसी प्रकार शार्ङ्गधन्वा ।

परन्तु जब समस्त पद नामवाची होगा तब विकल्प से अनङ् होगा । यथा—शतधन्वा, शतधनुः ।

(१२) जायायानिङ् ।५।४।१३४।

जायान्त बहुव्रीहि में 'जाया' को 'जानि' हो जाता है। यथा—

युवती जाया यस्य सः युवजानिः। इसी प्रकार भूजानिः (राजा), महीजानिः इत्यादि।

(१३) गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ।५।४।१३५।

बहुव्रीहि समास में उत्, पूति, सु, सुरभि के बाद गन्ध को गन्धि होता है। यथा—उद्गतो गन्धो यस्य सः उद्गन्धिः। इसी प्रकार पूतिगन्धिः, सुगन्धिः, सुरभिगन्धिः।

(१४) पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५।४।१३८।

बहुव्रीहि समास में हस्ति इत्यादि शब्दों के अतिरिक्त यदि कोई उपमान शब्द पहले हो तो 'पाद' को 'पाद्' हो जाता है। यथा—व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः व्याघ्रपात्।

(१५) कुम्भपदीषु च ५।४।१३९। पादः पत् ६।४।१३०।

कुम्भपदी इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्दों में भी 'पाद' के अकार का लोप हो जाता है। फिर पाद के स्थान में पत् होकर ङीप् जुड़ता है। यथा—कुम्भपदी, एकपदी। स्त्रीलिङ्ग न होने पर कुम्भपादः समास बनेगा।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—शकुन्तला की उत्कण्ठा बहुत बढ़ गई है। २—अपने इच्छानुसार करना। ३—राम मेरे वंश की प्रतिष्ठा है। ४—सब कुछ भाग्य के अधीन है। ५—उसको अपने पद से हटा दिया गया है। ६—महात्मा रक्त कमल को लेकर सप्तर्षियों की अर्चना करता है। ७—दुष्टों के संहारक श्रीकृष्ण का यश त्रिभुवन में व्याप्त है। ८—वह कुपुरुष और कुपुत्र की निन्दा करता है। ९—राजाओं को उत्सव प्रिय होता है। १०—अच्छे प्रकार से धनुष पर बाण चढ़ाये हुए बाण को उतार लीजिए। ११—बालकों को मनोरञ्जन और वीरों को युद्ध प्रिय होता है। १२—मोहन की भार्या रूपवती है। १३—पृथ्वी का पति नल अद्भुत गुणों से युक्त था। १४—बालक के लिए पत्र, पुष्प और फल लाओ। १५—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भ्रातृ-प्रेम की मूर्ति हैं। १६—मोरनी और मुर्गे जंगल में घूम रहे हैं। १७—संसार के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर की वन्दना करता हूँ। १८—वह महाराजा कृष्ण का सखा है। १९—तालाब का जल स्वच्छ है। २०—अध्यात्म में मन लगाओ। २१—आजकल अधिकांश मित्र मौका पड़ने पर काम नहीं आते। २२—दुर्योधन और भीम का गदा-युद्ध प्रारम्भ हुआ। २३—कामदेव का धनुष फूलों का है। २४—बालिका बाएँ हाथ पर मुँह रक्खे बैठी है। २५—दिन टल गया।

हिन्दी में अनुवाद करो तथा रेखाङ्कित में समास बताओ और विग्रह करो—

१—दशमुखभुजमण्डलीनां दृढपरिपीडितमेखलोऽयम्।

२—जगतः पितरौ वन्दे।

३—दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ।

४—महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः ।

५—नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।

६—वातात्मजं मारुततुल्यवेगं मनोजवं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ।

७—नतोऽहं रामवल्लभाम् ।

८—गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारणं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥

९—पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ।

१०—आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ।

सप्तम सोपान

क्रिया-विचार

वाक्य के प्रधान दो मूल तत्वों में एक क्रिया भी है। क्रिया के अभाव कोई वाक्य नहीं हो सकता है। प्रत्यक्ष या ऊह्य रूप में वाक्य में क्रिया को अवश्य रहना चाहिए। क्रिया के अभाव में लोगों का वाग्व्यवहार भी नहीं चल सकता है। किसी वाक्य, रचना अथवा वाग्व्यवहार की चेतना क्रिया ही है। धातु के अर्थ को क्रिया कहते हैं। क्रिया-वाचक प्रकृति को धातु कहते हैं। यथा भू, गम्, पठ्, श्रु, खाद्, दृश् आदि। संस्कृत व्याकरण में क्रियाओं के मूलकारण उन धातुओं को रूपों की व्यवस्था के लिए दश गणों में बाँट दिया गया है। वे हैं—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि।[1]

उपर्युक्त मूल धातुओं से भिन्न-भिन्न काल तथा वृत्तियों (अवस्थाओं, अर्थों) के लिए अनेक रूप बनते हैं। इनको लकार कहते हैं जो निम्नलिखित हैं—लट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लिट्, लुट्, लृट्, लुङ्, लृङ्, लेट्। इन लकारों से काल तथा वृत्तियाँ दोनों का काम चलता है।

संस्कृत भाषा में काल अथवा वृत्तियाँ दस हैं।[2]

१—वर्तमान काल (Present tense)—लट्, यथा—सः पठति।

२—आज्ञा (Imperative mood)—लोट्, यथा—जलमानय।

३—विधि (Potential mood)—विधिलिङ्, यथा—सः गच्छेत्।

४—अनद्यतनभूत (Imperfect tense) लङ्, यथा—सः अब्रवीत्।

५—परोक्षभूत (Perfect tense) लिट्, यथा—तरुः पपात।

६—सामान्यभूत (Aorist) लुङ्, यथा—सः अपाठीत्।

७—अनद्यतन भविष्य (First future) लुट्, यथा—सः श्वः आगन्ता।

८—सामान्य भविष्य (Simple future) लृट्, यथा—अद्य अहं तत्र गमिष्यामि।

९—आशीः (Benedictive) आशीर्लिङ्, यथा—पुत्रस्ते जीव्यात्।

१०—क्रियातिपत्ति (Conditional mood) लृङ्, यथा—देवश्चेद् वर्षिष्यति।

---

१. भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनक्र्यादिचुरादयः॥

२. लट् वर्तमाने लेड्वेदे भूते लुङ्लङ्लिटस्तथा।
विध्याशिषोस्तु लिङ्लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यतः॥

पहले संस्कृत धातुओं के जिन दस गणों की चर्चा की गई है वे गण दो भागों में विभाजित हैं। प्रथम भाग में, भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि ये चार हैं एवं द्वितीय भाग में अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि, रुधादि, तनादि और क्रयादि ये छ हैं।

धातुओं से वाग्व्यवहार के अनुकूल क्रियापद बनाने के लिए धातु के आगे आए हुए लकारों के स्थान में पुरुष तथा वचन के अनुसार भिन्न-भिन्न विभक्तियाँ होती हैं। वे विभक्तियाँ 'परस्मैपद' और 'आत्मनेपद' दो प्रकार की है और 'तिङ्' विभक्ति कहलाती हैं तथा इनके योग से बने हुए शब्द 'तिङन्त क्रियापद' कहलाते हैं। क्त, क्तवतु, तव्य एवं अनीय आदि प्रत्ययों के योग से बने हुए 'कृदन्तीय क्रियापद' कहलाते हैं। कुछ धातुओं में केवल परस्मैपद की विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं एवं कुछ में केवल आत्मनेपद की और कुछ में परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों की। केवल परस्मैपद की विभक्ति वाली धातुओं को 'परस्मैपदी', केवल आत्मनेपद की विभक्तिवाली धातुओं को 'आत्मनेपदी' तथा दोनों पदों की विभक्ति वाली धातुओं को 'उभयपदी' कहते हैं।

अनिट् और सेट् धातुएँ

संस्कृत में धातुएँ दो प्रकार की हैं—सेट् और अनिट्। जिन धातुओं में इट् (इ) होता है वे सेट् धातु हैं। एक से अधिक स्वर वाली समस्त धातुएं सेट् हैं। पुनश्च ऊकारान्त, ॠकारान्त, यु, रु, क्ष्णु, शी, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डी, श्री, वृ (क्रयादि) और वृ (स्वादि) धातु सेट् हैं। इनमें इट् का आगम होता है।

उपर्युक्त धातुओं के अतिरिक्त जितनी एक स्वर वाली स्वरान्त धातु हैं सब अनिट् हैं अर्थात् उनमें इट् नहीं होता।

निम्नलिखित १०२ व्यञ्जनान्त धातुओं में इट् नहीं होता।

शक्लृ·पच्·मुच्·रिच्·वच्·विच्·सिच्·प्रच्छि·त्यज्·निजिर्·भज्।

भञ्ज्·भुज्·भ्रस्ज्·मस्जि·यज·युज्·रुज्·रञ्ज्·विजिर्·स्वञ्जि·सञ्ज्·सृज्।

अद्·क्षुद्·खिद्·छिद्·तुद्·नुद्·पद्य·भिद्·विद् (विद्यति)·विनद्, शद्·सद्।

स्विद्·स्कन्द्·हद्·क्रुध्·क्षुध्·बुध्।

बन्ध्·युध्·रुध्·राध्·व्यध्·शुध्·साध्·सिध्।

मन्·हन्·आप्·क्षिप्·छुप्·तप्·तिप्, तृप्·दृप्।

लिप्·लुप्·वप्·शप्·स्वप्·सृप्·यभ्·रभ्·लभ्·गम्·नम्·रम्·यम्।

क्रुश्·दंश्·दिश्·दृश्·मृश्·रिश्·रुश्·लिश्·विश्·स्पृश्।

कृष्·त्विष्·तुष्·द्विष्·दुष्·पुष्य·पिश्·विष्·शिष्·शुष्·श्लिष्य,

घस्लृ·वसति (वस्)·दह्·दिह्·दुह्·मिह्·नह्·दृह्·लिह् और वह्।

वर्तमान काल—लट्लकार

यथार्थतः संस्कृत का वर्तमान काल उत्तरोत्तर होने चलने वाले वर्तमान या अपूर्ण वर्तमान रूप का बोध कराता है जो किसी प्रारम्भ किए हुए कार्य का जारी होना प्रकट

करता है। यथा—वहति जलमियम्—यह स्त्री जल लाती है (ला रही है) इस जारी रहने वाले कार्य का बोध कराने के लिए संस्कृत में कोई अन्य रूप नहीं है। परन्तु ध्यान रहे कि किसी विशेष क्रिया विशेषण द्वारा अथवा सन्दर्भ द्वारा ही वर्तमान काल का प्रयोग केवल वर्तमान कार्य का बोध कराने के लिए सीमित किया जा सकता है।

(१) इसका प्रयोग वर्त्तमान समय में होने वाले किसी कार्य अथवा वर्तमान समय में अस्तित्व रखने वाली किसी वस्तु स्थिति का बोध करने के लिए किया जाता है। यथा—सः पठति।

(२) तात्कलिक वर्त्तमान में भी लट्लकार प्रयुक्त होता है। यथा—अहं गृहं गच्छामि (मैं घर जा रहा हूँ)।

(३) शाश्वत सत्य का बोध कराने के लिए लट्लकार प्रयुक्त होता है। यथा—

अस्ति दक्षिणस्यां विन्ध्यो नाम गिरिः (दक्षिण में विन्ध्य नामक पहाड़ है)।

नास्ति सत्यसमं तपः (सत्य के समान दूसरी तपस्या नहीं है)।

(४) वर्त्तमान काल के निकटवर्त्ती भूत या भविष्य में भी लट् का प्रयोग होता है। (वर्त्तमानसमीप्ये वर्त्तमानवद्वा ३।३।१३१।) यथा—

अयमागच्छामि (यह मैं आता हूँ अर्थात् मैं अभी आया हूँ)।

एष करोमि (यह मैं करता हूँ अर्थात अभी करूँगा)।

(५) भूतकाल की कथाओं तथा घटनाओं के वर्णन करने में लट्लकार प्रयुक्त होता है। यथा—विष्णुशर्मा कथयति-विष्णुशर्मा कहते हैं अर्थात् विष्णुशर्मा ने कहा।

(६) नित्य अथवा अभ्यस्त क्रिया का बोध करने के लिए लट्लकार प्रयुक्त होता है। यथा—गौः तृणं खादति (गाय घास खाती है)।

(७) यावत्, पुरा इन दो अव्ययों के योग में भविष्यत्काल के अर्थ में लट्लकार का प्रयोग होता है। (यावत्पुरानिपातयोर्लट् ३।३।४।)

यथा—अवलम्बस्व चित्रफलकं यावदागच्छामि (मैं जब तक आऊँ तब तक चित्र रखे रहो)।

आलोके ते निपतति पुरा (अवश्य ही तुम्हारी दृष्टि में पड़ेगा)।

(८) कदा और कर्हि शब्दों के योग में भविष्यत्काल के अर्थ में विकल्प से लट् का प्रयोग होता है। (विभाषा कदाकर्ह्योः ३।३।५।) यथा—कदा, कर्हि वा गच्छामि, गमिष्यामि वा न जाने (नहीं जानता हूँ कब जाता हूँ जाऊँगा)।

(९) प्रश्न करने में भविष्यत् काल के अर्थ में लट्लकार प्रयुक्त होता है। (किं वृत्ते लिप्सायाम् ३।३।६।) यथा—किं करोमि क्व गच्छामि? (क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?)

(१०) किसी प्रश्न के उत्तर देने में 'ननु' अव्यय के योग में भूतकाल के अर्थ में लट् प्रयुक्त होता है। (ननौ पृष्टप्रतिवचने ३।२।१२१।) यथा—पाठमपठः किम्? ननु पठामि भोः (पाठ पढ़ लिया क्या? हाँ पढ़ लिया)।

(११) हेतुसूचक अथवा दशासूचक वाक्य से भविष्यत् का अर्थ ग्रहण होने पर उसमें लट्लकार प्रयुक्त होता है। यथा—यः अध्ययनं करोति (करिष्यति वा) स परीक्षामुत्तरति (उत्तरिष्यति वा)—जो पढ़ेगा वह परीक्षा में उत्तीर्ण होगा।

(१२) प्रश्न में निन्दा अर्थ समझा जाने पर 'जातु' और 'अपि' अव्यय के योग में सब काल में लट्लकार प्रयुक्त होता है। (गर्हायां लडपिजात्वोः ३।३।१४२) यथा—अपि, जातु वा निन्दसि गुरुम् (गुरु की निन्दा की, करोगे या करते हो ?)

निम्नलिखित उदाहरणों को ध्यान से पढ़ो

(१) अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः (उत्तर दिशा में पर्वतों का राजा देवतारूपी हिमालय है)।

(२) सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् (बताइये, सत्संगति क्या नहीं करती)।

(३) योऽन्नं ददाति स स्वर्गं याति (जो अन्न देता है वह स्वर्ग जाता है)।

(४) यावदस्य दुरात्मनः समुन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि (इस शठ का नाश करने के लिए मैं अवश्य ही शत्रुघ्न को भेजूँगा)।

(५) हस्ती ब्रूते—कस्त्वम् हाथी पूछता है (पूछा)—तुम कौन हो ?)

(६) आलोके ते निपतति पुरा (अवश्य ही तुम्हारी आँखों के विषय में पड़ेगा)।

लोट् लकार

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्। ३।३।१६१। लोट् च। ३।३।१६२। आशिषि लिङ्लोटौ। ३।३।१७३।

(विध्यादिषु अर्थेषु धातोर्लोट् स्यात् सि० कौ०)

अनुमति, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अनुरोध, जिज्ञासा और सामर्थ्य अर्थ में लोट् लकार प्रयुक्त होता है। यथा—

अनुमति अर्थ में—सः पठतु (वह पढ़े)।

निमन्त्रण अर्थ में—इह भुज्यताम् भवान् (आप यहाँ भोजन करें)।

आमन्त्रण अर्थ में—अत्र आगच्छतु (यहाँ आप आ सकते हैं)।

यह लकार मध्यमपुरुष में आज्ञा, प्रार्थना अथवा मृदु उपदेश या मंत्रणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा—शृणुत रे पौराः (ऐ पुरवासियो, सुनते जाओ)।

हा प्रियसखि, क्वासि, देहि मे प्रतिवचनम् (हाय मेरी प्यारी, कहाँ हो उत्तर दो) इत्यादि।

जब अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कोई बात कहनी हो तो आज्ञा के कर्मवाच्य का रूप प्रयुक्त होता है। यथा—एतदासनमास्यताम् (यह आसन है, कृपा कर बैठ जाइए)।

आशीर्वाद का बोध कराने के लिए प्रथम पुरुष और मध्यमपुरुष का रूप प्रयुक्त होता है। यथा—पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपम् (भगवान करे, तुम अपने ही अनुरूप पुत्र पाओ)।

यदि 'भृशार्थ' अथवा कार्यों का 'पौनःपुन्य' सूचित करना हो तो आज्ञा के मध्यम पुरुष का रूप दोहराया जाना चाहिए, चाहे प्रधानक्रिया का कर्ता भिन्न ही हो एवं क्रिया किसी भी काल में क्यों न हो? यथा—याहि याहीति याति (वह बार-बार जाता है)।

इसी प्रकार जब एक ही व्यक्ति द्वारा कई कार्य किए जाते हुए दरसाए जाते हैं तब आज्ञा का प्रयोग होता है, किन्तु दोहरा प्रयोग नहीं। यथा—सक्तून् पिब, धानाः खादेत्यभ्यवहरति (सत्तू पीता हुआ, लावा खाता हुआ वह भोजन करता है)।

सामर्थ्य का बोध होने में लोट् लकार होता है। यथा—अहं पर्वतमपि उत्पाटयानि (मैं पहाड़ भी उखाड़ डालूँगा)।

यदि अत्यन्त नम्रता या आदर के साथ किसी से बोला जाय तो कार्य-कारण सम्बन्धी वाक्य के दूसरे वाक्य में लोट् लकार प्रयुक्त होता है। यथा—

अन्यकार्यहानिर्न स्यात्तदा विलम्ब्यताम् किञ्चित्कालमत्र (यदि दूसरे किसी कार्य की हानि न हो तो कृपया यहाँ कुछ देर ठहरिये)।

संप्रश्न (पूछना) अर्थ में भी लोट् प्रयुक्त होता है। यथा—किं भोः काशीं गच्छानि (क्या महाशय! मैं काशी जाऊँ?)

निम्नलिखित उदाहरणों को ध्यान से पढ़ो—

१—प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः (इन आठ प्रत्यक्ष रूपों से युक्त शिव भगवान तुम्हारी रक्षा करें)।

२—तृष्णां छिन्धि, भज क्षमां, जहि मदम् (लालच छोड़ो, क्षमा धारण करो, घमण्ड त्यागो)।

३—परित्रायध्वम् परित्रायध्वम् (बचाओ बचाओ)।

४—पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि (भगवान करे, तुम इन गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र पाओ)।

५—जनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः (लोगों के मन को अच्छी लगने वाली हवाएँ बहें)।

आशीर्लिङ्

आशीर्लिङ् सदैव आशीर्वाद देने में आता है और उत्तम पुरुष में वक्ता की इच्छा प्रकट करता है। यथा—विधेयासुर्देवाः परमरमणीयां परिणतिम् (देवता लोग अन्त को रमणीक बनावें)।

कृतार्थो भूयासम् (ईश्वर से इच्छा करता हूँ कि कृतार्थ होऊँ)।

केवलं वीरप्रसवा भूयाः (ईश्वर करे तुम वीर पुत्र पैदा करो)।

विधिलिङ्

१—अनुमति के अतिरिक्त लोट् लकार में उक्त अर्थों में तथा विधि और सामर्थ्य अर्थ में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—विधि में-मद्यं मांसं न खादेत (मद्य और मांस नहीं खाना चाहिए)।

सामर्थ्य अर्थ में—अनेन रथवेगेन पूर्वप्रस्थितं वैनतेयमप्यासादयेयम् (रथ की इस चाल से मैं पहले चले हुए गरुड़ को भी पकड़ सकता हूँ)।

२—सम्भावना, इच्छा, प्रार्थना, आशा और योग्यता अर्थों में विधिलिङ् प्रयुक्त होता है। यथा—मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम सम्भावयेत् (कौन इस बात की सम्भावना कर सकता था कि मौर्यराज आभूषण बेंच डालेगा)। मनसिजतरुः कुर्यान्मां फलस्य रसज्ञम् (कामदेव वृक्ष मुझे अपने फल का स्वाद चखावे)।

भोजनं लभेय (प्रार्थना करता हूँ कि भोजन पा जाऊँ)।

३—आज्ञा देने में, उपदेश अथवा पथप्रदर्शनार्थक नियमों के विधान में, धर्म अथवा कर्त्तव्य का भार दिखलाने में विधिलिङ् प्रयुक्त होता है। यथा—आपदर्थे धनं रक्षेत् (आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए)।

(४) जब योग्यता दिखाना अभीष्ट होता है तब कृत्य प्रत्यय अथवा विधिलिङ् प्रयुक्त होता है और कभी-कभी तृकारान्त संज्ञा। यथा—त्वं कन्यां वहेः, त्वं कन्याया वोढा, त्वया कन्या वोढव्या (तुम कन्या को ब्याहने योग्य हो)।

(५) क्षमता का प्रदर्शन करने के लिए विधिलिङ् अथवा कृत्य प्रत्यय (तव्य, अनीय, यत् , ण्यत्) प्रयुक्त होता है। यथा—भारं त्वं वहेः अथवा भारस्त्वया वोढव्यः (तुम बोझा ढोने में समर्थ हो)।

(६) निन्दा अर्थ का बोध होने पर प्रश्नवाचक किम् , कतर, कतम आदि शब्दों के योग में विधिलिङ् अथवा लृट् होता है (किं वृत्ते (गर्हायां) लिङ्लृटौ ।३।३।१४४।) यथा—कः कतरः त्वदतिरिक्तः कतमो वा गुरुमवमन्येत अवमंस्यते वा (तेरे सिवा और कौन गुरु का अपमान करेगा)।

(७) जब आश्चर्य प्रकट करना हो और वाक्य में 'यदि' शब्द प्रयुक्त हो तो विधिलिङ् प्रयुक्त होता है। यथा—आश्चर्यं यदि स पुस्तकं दद्यात् (यदि वह पुस्तक दे दे तो आश्चर्य है)।

परन्तु 'यदि' शब्द का प्रयोग न रहने पर लृट् लकार होता है। (चित्रीकरणे शेषे लृडयदौ ।३।३।१५१।) यथा—आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति (अन्धा कृष्ण को देख ले यह आश्चर्य है)।

(८) आश्रित वाक्यों में परिणाम अथवा अभिप्राय के बोधनार्थ विधिलिङ् प्रयुक्त होता है। यथा—दोषं तु मे कंचित् कथय येन स प्रतिविधीयेत (मेरा कोई दोष बतलाओ ताकि वह सुधारा जाय)।

(९) जहाँ आशा प्रकट करना अभीष्ट हो और वाक्य में कच्चित् शब्द का प्रयोग न किया गया हो वहाँ विधिलिङ् प्रयुक्त होता है। यथा—कामो मे भुञ्जीत भवान्—यह मेरी आशा है कि आप खायेंगे।

परन्तु जब वाक्य में 'कच्चित्' शब्द प्रयुक्त होगा तब वाक्य इस प्रकार होगा—कच्चिज्जीवति (आशा करता हूँ कि वह जीवित है)।

(१०) यद् शब्द का प्रयोग किए विना यदि सम्भावय्, अपि, अथवा अपिनाम शब्दों द्वारा आशा का बोध कराना अभीष्ट हो तो विधिलिङ् अथवा सामान्य भविष्य का प्रयोग किया जाता है। यथा—

सम्भावयामि भुंजीत भोक्ष्यते वा भवान् (आशा करता हूँ आप भोजन करेंगे)।

परन्तु यद् शब्द का प्रयोग होने पर वाक्य इस प्रकार बनेगा—सम्भावयामि यद् भुंजीथास्त्वम्।

(११) इष्, कम, प्रार्थ् इत्यादि इच्छार्थक शब्दों का प्रयोग होने पर विधिलिङ् या लोट् प्रयुक्त होता है। यथा—इच्छामि सोमं पिबेत् पिबतु वा भवान् (चाहता हूँ कि आप सोम पिएँ)।

(१२) वाक्य में यद् शब्द का प्रयोग होने पर, काल, समय, वेला शब्दों के साथ विधिलिङ् प्रयुक्त होता है। (कालसमयवेलासु लिङयदि। ३।३।१६८।)

यथा—कालः समयो वेला वा यद् भवान् भुञ्जीत (आप के भोजन करने का समय है)।

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

(१) धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् (बुद्धिमान को परोपकार में धन और जीवन का उत्सर्ग कर देना चाहिए)।

(२) सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् (सत्य और प्रिय बोलना चाहिए)।

(३) अपि जीवेत् स ब्राह्मणशिशुः (क्या आशा करूं कि वह ब्राह्मण बालक जीवित हो जायगा)।

(४) आशंसेऽधीयीय (आशा करता हूँ कि मैं पढ़ूँगा)।

(५) कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिम् (मैं पिनाकपाणि महादेव जी का भी धैर्य छुड़ा दूँ)।

(६) ऊनद्विवर्षं निखनेत्—(दो वर्ष से कम अवस्था वाले मृत बच्चे को गाड़ देना चाहिए)।

(७) सहसा विदधीत न क्रियाम् (एकाएक कार्य नहीं करना चाहिए)।

(८) कृष्णः अद्य अत्र आगच्छेत् (सम्भव है कृष्ण आज यहाँ आवे)।

(९) यदि त्वादृशः धर्मात्प्रमाद्येत् (यदि तुम्हारे जैसे धर्म से प्रमाद करें)।

भूतकाल (लङ्, लिट् तथा लुङ्)

अतीत काल का बोध कराने के लिए तीन लकार होते हैं—१-अनद्यतनभूत (लङ्) २-परोक्षभूत (लिट्) ३-सामान्यभूत (लुङ्)। प्रारम्भ में इन तीनों का अलग अर्थ था। प्राचीन ग्रन्थोंमें ये तीनों लकार अपने ठीक ठीक अर्थ में प्रयुक्त होते थे। परन्तु आगे चलकर ग्रन्थकार इन तीनों कालों का मनमाना प्रयोग करने लगे। निम्नलिखित अर्थों में ये तीनों लकार प्रयुक्त होते थे—

अनद्यतने लङ् ।३।२।१५। आज से पूर्व हुए कार्य का बोध कराने के लिए लङ् लकार का प्रयोग होता है।

परोक्षे लिट्—लिट् लकार आज से पूर्व हुए या किए हुए ऐसे कार्य का बोध कराता है जिसे वक्ता ने देखा न हो।

भूतार्थे लुङ् ।३।२।११०।—साधारणतया समस्त प्रकार के भूतकालों का बोध लुङ् लकार कराता है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष काल से नहीं होता है। इसका प्रयोग सभी प्रकार की अतीत घटनाओं को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

कभी कभी जब हाल से सम्बन्ध रखने वाला प्रश्न करना होता है, तब अनद्यतन भूत का प्रयोग किया जाता है। यथा—अगच्छत् किं स ग्रामम्? (क्या वह गाँव चला गया?) परन्तु सुदूरवर्ती भूतकाल को दिखाने के लिए केवल परोक्षभूत ही का प्रयोग करना चाहिए। यथा—कंसं जघान किम्? (क्या उसने कंस को मार डाला?)

उत्तम पुरुष में परोक्षभूत कर्ता के मस्तिष्क की अचेतनावस्था अथवा उन्माद का बोध कराता है। इसलिए इस अर्थ को छोड़कर अन्य किसी भी अर्थ में परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में नहीं करना चाहिए। यथा—बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम् (उन्मत्त होने के कारण मैं उसके सामने बहुत बड़बड़ाया)।

किसी के विरोध में जो कहा जाता हो या कहा गया हो उसके विपरीत उससे कहकर जब उस व्यक्ति से सच्ची वस्तुस्थिति छिपानी होती है तब भी परोक्षभूत उत्तम-पुरुष ही प्रयुक्त होता है। यथा—नाहं कलिंगान् जगाम (मैं कलिंग देश नहीं गया था)।

हाल के अतीतकाल अथवा अनिश्चित अतीतकाल का बोध कराने के अतिरिक्त सामान्यभूत नैरन्तर्य का भी बोध कराता है। इस अर्थ में अनद्यतनभूत कदापि नहीं प्रयुक्त हो सकता है। यथा—ब्राह्मणेभ्यो यावज्जीवनम् अन्नमदात् (उसने जीवन भर ब्राह्मणों को भोजन दिया अर्थात् भोजन देना जिन्दगी भर जारी रक्खा)।

'स्म' से असंयुक्त 'पुरा' के साथ अनद्यतनभूत, परोक्षभूत अथवा वर्तमान कोई भी प्रयुक्त हो सकता है। यथा—वसंतीह पुरा छात्रा अवात्सुः, अवसन्, ऊषुः वा (यहाँ पहले विद्यार्थी रहते थे)। परन्तु 'पुरास्म' के योग में केवल वर्तमान आता है। यथा—यजतिस्म पुरा (वह प्राचीनकाल में यज्ञ करता था)।

'मा' अथवा 'मास्म' के बाद सामान्यभूत के 'अ' का लोप हो जाया करता है। पुनश्च जब सामान्यभूत मध्यम पुरुष अपने 'अ' का लोप कर 'स्म' के साथ आता है तो आज्ञा के अर्थ का बोध कराता है। यथा—वयस्य मा कातरो भूः (मित्र! डरो मत)।

निम्नलिखित उदाहरणों को ध्यान से पढ़ो—

(१) आसीद् राजा नलो नाम (नल नामक एक राजा थे)।

(२) एकदा स पानीयं पातुं यमुनाकच्छम् अगच्छत् (एक दिन वह पानी पीने के लिए यमुना के किनारे गया)।

(३) शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ (पार्वती न आगे जा ही सकी न ठहर ही सकी)।

(४) तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः (वहाँ ब्राह्मण के आश्रम के पास उसने एक बनिया देखा)।

(५) अप्यहं निद्रितः सन् विललाप (क्या मैं निद्रित अवस्था में विलाप कर रहा था)।

(६) सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले (समस्त पृथ्वी में सुरथ नामक एक राजा था)।

(७) क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ (हे अर्जुन, निराश मत होओ)।

(८) भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः (अपमानित होने पर भी क्रोध के कारण पति के विपरीत आचरण मत करना)।

(९) कलिंगेष्ववात्सीः किम् (क्या तुम कलिंगदेश में रहे थे) ?

(१०) मा मूमुहत् खलु भवन्तमनन्यजन्मा (कामदेव तुझे मोहित न कर देवे)।

दोनों भविष्यत्काल (लुट् और लृट्)

भविष्यत्कालिक क्रिया का बोध कराने के लिए दो लकार हैं (१) अनद्यतन भविष्य (लुट्) और (२) सामान्य भविष्य (लृट्)।

अनद्यतने लुट् ।३।३।१५। लृट् शेषे च ।३।३।१३।

लुट् लकार (अनद्यतन भविष्य) ऐसी क्रिया का बोध कराता है जो आज न होगी और लृट् लकार (सामान्य भविष्य) साधारणतया सभी प्रकार की भविष्य क्रियाओं का—आज भी होने वाली भविष्य क्रियाओं का—बोध कराता है।

यथा—१ (लुट्) पंचषैरहोभिर्वयमेव तत्र गन्तास्मः (हम लोग स्वयं ही पाँच-छः दिनों में वहाँ जायँगे)। यथा—२ (लृट्) वयमद्यैव गमिष्यामः (हमलोग आज ही जायँगे।)

आशंसायां भूतवच्च ।३।३।१३२।

जब समय युक्त (Conditional) वाक्य में आशा व्यक्त करनी हो, तब भविष्यकाल का बोध कराने के लिए सामान्यभूत, वर्तमानकाल अथवा सामान्यभविष्य किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है। यथा—

देवश्चेदवर्षीद्, वर्षति, वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्म वपामो वप्स्यामो वा (यदि वर्षा होगी तो अनाज बोयेंगे)।

क्षिप्रवचने लृट्। ३।३।१३३।

क्षिप्रशब्द के योग में लृट् लकार प्रयुक्त होता है। यथा—वृष्टिश्चेत् शीघ्रं (त्वरितं आशु वा) आयास्यति क्षिप्रं वप्स्यामः (यदि शीघ्र वर्षा होगी तो अनाज बोयेंगे)।

यदि किसी भविष्य क्रिया की अत्यन्त घनिष्ठ समीपता दिखानी हो तो वर्तमान अथवा भविष्य क्रिया का भी प्रयोग किया जा सकता है। यथा—एष गच्छामि गमिष्यामि वा (अभी जाऊँगा)।

जब किसी से कोई कार्य करने के लिए विनम्रतापूर्वक कहा जाता है तब कभी-कभी लोट् के अर्थ में सामान्य भविष्य का प्रयोग किया जाता है। यथा—तदा मम पाशांश्छेत्स्यसि (बाद में मेरा जाल काट देना)।

अलं (निश्चयार्थक, समर्थ बोधक) शब्द के साथ लृट् लकार प्रयुक्त होता है। यथा—अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति।

निम्नलिखित उदाहरणों को ध्यान से पढ़ो—

(१) न जाने क्रुद्धः स्वामी किं विधास्यति (न जाने स्वामी क्रोध में क्या कर डालेंगे)।

(२) सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः (आकाश में, नेत्रों को सुन्दर लगने वाले तुझ (मेघ) को बकुले सेवेंगे)।

(३) यास्यत्यद्यशकुन्तला (शकुन्तला आज विदा हो जायगी)।

(४) एते उन्मूलितारः कपिकेतनेन (वे लोग कपिध्वज अर्जुन के द्वारा नष्ट कर दिए जायेंगे)।

(५) प्रत्ययं दास्यते सीता तामनुज्ञातुमर्हसि (सीता अपने सतीत्व का प्रमाण देगी उसे आज्ञा देना आपका काम है)।

लृङ् लकार

लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ। ३।३।१३९।

"यदि ऐसा होता तो ऐसा होता" इस प्रकार के भविष्यत् के अर्थ में धातु से लृङ् लकार होता है। यथा—सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत् (यदि अच्छी वर्षा होती तो अच्छा अन्न होता)।

जहाँ क्रिया का न होना या न किया जाना प्रकट करना होता है वहाँ लृङ् लकार का प्रयोग किया जाता है। अथवा जहाँ पर पूर्वगामी वाक्य की असत्यता दिखाई जाती है वहाँ भी लृङ् प्रयुक्त होता है। पूर्वगामी उपवाक्य (Antecedent) और अनुगामी उपवाक्य (Consequent) दोनों में लृङ् लकार के रूप लाए जाने चाहिएँ।

लकारों के संक्षिप्त रूप

परस्मैपद

लट्			ऋ	लिट्	
ति	तः	अन्ति	प्र० अ	अतुः	उः
सि	थः	थ	म० (इ) थ	अथुः	अ
मि	वः	मः	उ० अ	(इ) व	(इ) म

	लृट्				लुट्	
स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र०	ता	तारौ	तारः
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म०	तासि	तास्थः	तास्थ
स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ०	तास्मि	तास्वः	तास्मः

	लङ्				लुङ्	
त्	ताम्	अन्	प्र०	त्	ताम्	उः (अन्)
:	तम्	त	म०	:	तम्	त
अम्	व	म	उ०	अम्	व	म

	लोट्				(लुङ्) अथवा	
तु	ताम्	अन्तु	प्र०	सीत्	स्ताम्	सुः
हि	तम्	त	म०	सीः	स्तम्	स्त
आनि	आव	आम	उ०	सम्	स्व	स्म

	विधिलिङ्				(लुङ्) अथवा	
ईत्	ईताम्	ईयुः	प्र०	ईत्	इष्टाम्	इषुः
ईः	ईतम्	ईत	म०	ईः	इष्टम्	इष्ट
ईयम्	ईव	ईम	उ०	इषम्	इष्व	इष्म

	(वि० लिङ्) अथवा					लृङ्
यात्	याताम्	युः	प्र०	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
याः	यातम्	यात	म०	स्यः	स्यतम्	स्यत
याम्	याव	याम	उ०	स्यम्	स्याव	स्याम

आशीर्लिङ्

यात्	यास्ताम्	यासुः	प्र०
याः	यास्तम्	यास्त	म०
यासम्	यास्व	यास्म	उ०

आत्मनेपद

	लट्				लुट्	
ते	इते (आते)	अन्ते (एते)	प्र०	ता	तारौ	तारः
से	इथे (आथे)	ध्वे	म०	तासे	तासाथे	ताध्वे
इ (ए)	वहे	महे	उ०	ताहे	तास्वहे	तास्महे

	लृट्				लङ्	
स्यते	स्येते	स्यन्ते	प्र०	अत	एताम्	अन्त
स्यसे	स्येथे	स्यध्वे	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
स्ये	स्यावहे	स्यामहे	उ०	ए	आवहि	आमहि

	(लङ्) अथवा				लुङ्	
त	इताम् (आताम्)	अन्त (अत)	प्र०	स्त	साताम्	सत
थाः	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्	म०	स्थाः	साथाम्	ध्वम्
इ	वहि	महि	उ०	सि	स्वहि	स्महि
	लोट्				(लुङ्) अथवा	
ताम्	इताम् (आताम्)	अन्ताम् (अताम्)	प्र०	इष्ट	इषाताम्	इषत
स्व	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्	म०	इष्ठाः	इषाथाम्	इध्वम्-इढ्वम्
ऐ	आवहै	आमहै	उ०	इषि	इष्वहि	इष्महि
	विधिलिङ्				लृट्	
ईत	ईयाताम्	ईरन्	प्र०	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्	म०	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
ईय	ईवहि	ईमहि	उ०	स्ये	स्यावहि	स्यामहि
	आशीर्लिङ्				लिट्	
सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्	प्र०	ए	आते	इरे
सीष्ठाः	सीयास्थाम्	सीध्वम्	म०	(इ) से	आथे	(इ) ध्वे
सीय	सीवहि	सीमहि	उ०	ए	(इ) वहे	(इ) महे

धातु-रूपावली

सूचना—धातुरूपावली अकारादि वर्णात्मक क्रम से रखी गयी है।

१—भ्वादिगण

दस गणों में भ्वादिगण प्रथम गण है। इसका नाम भ्वादिगण इस कारण पड़ा कि इसकी प्रथम धातु भू है। भ्वादिगण की धातुओं के अन्त में विभक्ति के पूर्व 'अ' जोड़ दिया जाता है। जैसे :—

पठ् + अ + ति = पठति, पठ् + अ + तु = पठतु आदि। यदि धातु के अन्त में जोड़े हुए अकार के बाद विभक्ति का अकार रहे तो धातु के अन्त में जोड़े हुए अकार का लोप हो जाता है। जैसे :—

पठ् + अ + अन्ति = पठन्ति, पठ् + अ + अन्तु = पठन्तु। उत्तम पुरुष के द्विवचन तथा बहुवचन में 'व' और 'म' विभक्ति परे रहने से धातु के अन्त में जोड़े हुए अकार का आकार हो जाता है। जैसे- पठ् + अ + वः = पठावः, पठ् + अ + मः = पठामः, पठ् + अ + व = पठाव, पठ् + अ + म = पठाम। लोट् लकार के मध्यम पुरुष के एक वचन में 'हि' विभक्ति का लोप हो जाता है। जैसे :—पठ् + अ + हि = पठ, पत् + अ + हि = पत आदि। लङ् लकार में धातु के पूर्व 'अ' जोड़ दिया जाता है। जैसे :—अपठत् आदि।

लट्, लोट्, लङ्, लिङ् इन चारों लकारों में धातुओं के अन्त के इ का ए उ का ओ, ऋ का अर् और ऌ का अल् गुण हो जाता है। यथा—जि + अ + ति = जयति

नी + अ + ति = नयति, भू + अ + ति = भवति, द्रु + अ + ति = द्रवति, हृ + अ + ति = हरति आदि।

यदि किसी धातु की उपधा में लघुस्वर (इ, उ, ऋ) हों तो, उनका क्रमशः ए, ओ, अर् गुण हो जाता है। जैसे :—सिव् + अ + ति = सेवति, शुच् + अ + ति = शोचति, कृष् + अ + ति = कर्षति आदि।

लट्, लङ्, लोट् और विधिलिङ् में संक्षिप्त रूप ये हैं—

	परस्मैपद			आत्मनेपद	
	लट्			लट्	
अति	अन्तः	अन्ति	प्र० अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म० असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ० ए	आवहे	आमहे
	लङ्			लङ्	
अत्	अताम्	अन्	प्र० अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म० अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ० ए	आवहि	आमहि
	लोट्			लोट्	
अतु	अताम्	अन्तु	प्र० अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म० अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ० ऐ	आवहै	आमहै
	विधिलिङ्			विधिलिङ्	
एत्	एताम्	एयुः	प्र० एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म० एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ० एय	एवहि	एमहि

भ्वादिगण

(१) भू (होना) परस्मैपदी

(भ्वादिगण भू धातु से आरम्भ होता है अतएव धातु-पाठ में पहली धातु भू रखी गई है। आगे वर्णात्मक क्रम से ही धातुएँ दी गयी हैं। अन्य गणों में भी इसी प्रकार धातुएँ रखी गयी हैं।)

	वर्तमान-लट्			आशीर्लिङ्	
भवति	भवतः	भवन्ति	प्र० भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
भवसि	भवथः	भवथ	म० भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
भवामि	भवावः	भवामः	उ० भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म
	सामान्य भविष्य-लृट्			परोक्षभूत-लिट्	
भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति	प्र० बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ	म० बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः	उ० बभूव	बभूविव	बभूविम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अभवत्	अभवताम्	अभवन्	प्र०	भविता	भवितारौ	भवितारः
अभवः	अभवतम्	अभवत	म०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
अभवम्	अभवाव	अभवाम	उ०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत लुङ्		
भवतु	भवताम्	भवन्तु	प्र०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
भव	भवतम्	भवत	म०	अभूः	अभूतम्	अभूत
भवानि	भवाव	भवाम	उ०	अभूवम्	अभूव	अभूम

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति लृङ्		
भवेत्	भवेताम्	भवेयुः	प्र०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
भवेः	भवेतम्	भवेत	म०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
भवेयम्	भवेव	भवेम	उ०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

(२) कम्प् (काँपना) आत्मनेपदी

वर्तमान—लट्				आशीर्लिङ्		
कम्पते	कम्पेते	कम्पन्ते	प्र०	कम्पिषीष्ट	कम्पिषीयास्ताम्	कम्पिषीरन्
कम्पसे	कम्पेथे	कम्पध्वे	म०	कम्पिषीष्ठाः	कम्पिषीयास्थाम्	कम्पिषीध्वम्
कम्पे	कम्पावहे	कम्पामहे	उ०	कम्पिषीय	कम्पिषीवहि	कम्पिषीमहि

सामान्यभविष्य—लृट्				परोक्षभूत—लिट्		
कम्पिष्यते	कम्पिष्येते	कम्पिष्यन्ते	प्र०	चकम्पे	चकम्पाते	चकम्पिरे
कम्पिष्यसे	कम्पिष्येथे	कम्पिष्यध्वे	म०	चकम्पिषे	चकम्पाथे	चकम्पिध्वे
कम्पिष्ये	कम्पिष्यावहे	कम्पिष्यामहे	उ०	चकम्पे	चकम्पिवहे	चकम्पिमहे

अनद्यतनभूत—लङ्				अनद्यतन भविष्य—लुट्		
अकम्पत	अकम्पेताम्	अकम्पन्त	प्र०	कम्पिता	कम्पितारौ	कम्पितारः
अकम्पथाः	अकम्पेथाम्	अकम्पध्वम्	म०	कम्पितासे	कम्पितासाथे	कम्पिताध्वे
अकम्पे	अकम्पावहि	अकम्पामहि	उ०	कम्पिताहे	कम्पितास्वहे	कम्पितास्महे

आज्ञा—लोट्				सामान्यभूत—लुङ्		
कम्पताम्	कम्पेताम्	कम्पन्ताम्	प्र०	अकम्पिष्ट	अकम्पिषाताम्	अकम्पिषत
कम्पस्व	कम्पेथाम्	कम्पध्वम्	म०	अकम्पिष्ठाः	अकम्पिषाथाम्	अकम्पिध्वम्
कम्पै	कम्पावहै	कम्पामहै	उ०	अकम्पिषि	अकम्पिष्वहि	अकम्पिष्महि

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति—लृङ्		
कम्पेत	कम्पेयाताम्	कम्पेरन्	प्र०	अकम्पिष्यत	अकम्पिष्येताम्	अकम्पिष्यन्त
कम्पेथाः	कम्पेयाथाम्	कम्पेध्वम्	म०	अकम्पिष्यथाः	अकम्पिष्येथाम्	अकम्पिष्यध्वम्
कम्पेय	कम्पेवहि	कम्पेमहि	उ०	अकम्पिष्ये	अकम्पिष्यावहि	अकम्पिष्यामहि

(३) काङ्क्ष (इच्छा करना) परस्मैपदी

वर्तमान—लट्				अनद्यतनभूत—लङ्		
काङ्क्षति	काङ्क्षतः	काङ्क्षन्ति	प्र०	अकाङ्क्षत	अकाङ्क्षताम्	अकांक्षन
काङ्क्षसि	काङ्क्षथः	काङ्क्षथ	म०	अकाङ्क्षः	अकाङ्क्षताम्	अकाङ्क्षन्
काङ्क्षामि	काङ्क्षावः	कांक्षामः	उ०	अकांक्षम्	अकांक्षाव	अकांक्षाम

सामान्य भविष्य—लृट्				आज्ञा—लोट्		
कांक्षिष्यति	काङ्क्षिष्यतः	कांक्षिष्यन्ति	प्र०	कांक्षतु	कांक्षताम्	कांक्षन्तु
कांक्षिष्यसि	कांक्षिष्यथः	कांक्षिष्यथ	म०	कांक्ष	कांक्षतम्	कांक्षत
कांक्षिष्यामि	कांक्षिष्यावः	कांक्षिष्यामः	उ०	कांक्षाणि	कांक्षाव	कांक्षाम

विधिलिङ्				अनद्यतनभविष्य—लुट्		
कांक्षेत्	कांक्षेताम्	कांक्षेयुः	प्र०	कांक्षिता	कांक्षितारौ	कांक्षितारः
कांक्षेः	कांक्षेतम्	कांक्षेत	म०	कांक्षितासि	कांक्षितास्थः	कांक्षितास्थ
कांक्षेयम्	कांक्षेव	कांक्षेम	उ०	कांक्षितास्मि	कांक्षितास्वः	कांक्षितास्मः

आशीर्लिङ्				सामान्यभूत—लुङ्		
कांक्ष्यात्	कांक्ष्यास्ताम्	कांक्ष्यासुः	प्र०	अकांक्षीत्	अकांक्षिष्टाम्	अकांक्षिषुः
कांक्ष्याः	कांक्ष्यास्तम्	कांक्ष्यास्त	म०	अकांक्षीः	अकांक्षिष्टम्	अकांक्षिष्ट
कांक्ष्यासम्	कांक्ष्यास्व	कांक्ष्यास्म	उ०	अकांक्षिषम्	अकांक्षिष्व	अकांक्षिष्म

परोक्षभूत—लिट्				क्रियातिपत्ति—लृङ्		
चकांक्ष	चकांक्षतुः	चकांक्षुः	प्र०	अकांक्षिष्यत्	अकांक्षिष्यताम्	अकांक्षिष्यन्
चकांक्षिथ	चकांक्षथुः	चकांक्ष	म०	अकांक्षिष्यः	अकांक्षिष्यतम्	अकांक्षिष्यत
चकांक्ष	चकांक्षिव	चकांक्षिम	उ०	अकांक्षिष्यम्	अकांक्षिष्याव	अकांक्षिष्याम

(४) क्रीड् (खेलना) परस्मैपदी

वर्तमान—लट्				विधिलिङ्		
क्रीडति	क्रीडतः	क्रीडन्ति	प्र०	क्रीडेत्	क्रीडेताम्	क्रीडेयुः
क्रीडसि	क्रीडथः	क्रीडथ	म०	क्रीडेः	क्रीडेतम्	क्रीडेत
क्रीडामि	क्रीडावः	क्रीडामः	उ०	क्रीडेयम्	क्रीडेव	क्रीडेम

सामान्य भविष्य—लृट्				आशीर्लिङ्		
क्रीडिष्यति	क्रीडिष्यतः	क्रीडिष्यन्ति	प्र०	क्रीड्यात्	क्रीड्यास्ताम्	क्रीड्यासुः
क्रीडिष्यसि	क्रीडिष्यथः	क्रीडिष्यथ	म०	क्रीड्याः	क्रीड्यास्तम्	क्रीड्यास्त
क्रीडिष्यामि	क्रीडिष्यावः	क्रीडिष्यामः	उ०	क्रीड्यासम्	क्रीड्यास्व	क्रीड्यास्म

अनद्यतनभूत—लङ्				परोक्षभूत—लिट्		
अक्रीडत्	अक्रीडताम्	अक्रीडन्	प्र०	चिक्रीड	चिक्रीडतुः	चिक्रीडुः
अक्रीडः	अक्रीडतम्	अक्रीडत	म०	चिक्रीडिथ	चिक्रीडथुः	चिक्रीड
अक्रीडम्	अक्रीडाव	अक्रीडाम	उ०	चिक्रीड	चिक्रीडिव	चिक्रीडिम

आज्ञा-लोट्				अनद्यतन भविष्य-लुट्		
क्रीडतु	क्रीडताम्	क्रीडन्तु	प्र०	क्रीडिता	क्रीडितारौ	क्रीडितारः
क्रीड	क्रीडतम्	क्रीडत	म०	क्रीडितासि	क्रीडितास्थः	क्रीडितास्थ
क्रीडानि	क्रीडाव	क्रीडाम	उ०	क्रीडितास्मि	क्रीडितास्वः	क्रीडितास्मः

सामान्यभूत-लुङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
अक्रीडीत्	अक्रीडिष्टाम्	अक्रीडिषुः	प्र०	अक्रीडिष्यत्	अक्रीडिष्यताम्	अक्रीडिष्यन्
अक्रीडीः	अक्रीडिष्टम्	अक्रीडिष्ट	म०	अक्रीडिष्यः	अक्रीडिष्यतम्	अक्रीडिष्यत
अक्रीडिषम्	अक्रीडिष्व	अक्रीडिष्म	उ०	अक्रीडिष्यम्	अक्रीडिष्याव	अक्रीडिष्याम

(५) गम् (जाना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति	प्र०	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः
गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ	म०	गम्याः	गम्यास्तम्	गम्यास्त
गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः	उ०	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति	प्र०	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः
गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ	म०	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथुः	जग्म
गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः	उ०	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्	प्र०	गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः
अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत	म०	गन्तासि	गन्तास्थः	गन्तास्थ
अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम	उ०	गन्तास्मि	गन्तास्वः	गन्तास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु	प्र०	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
गच्छ	गच्छतम्	गच्छत	म०	अगमः	अगमतम्	अगमत
गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम	उ०	अगमम्	अगमाव	अगमाम

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः	प्र०	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत	म०	अगमिष्यः	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम	उ०	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

(६) जि (जीतना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				सामान्यभविष्य-लृट्		
जयति	जयतः	जयन्ति	प्र०	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
जयसि	जयथः	जयथ	म०	जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ
जयामि	जयावः	जयामः	उ०	जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः

अनद्यतनभूत-लङ्				परोक्षभूत-लिट्		
अजयत्	अजयताम्	अजयन्	प्र०	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
अजयः	अजयतम्	अजयत	म०	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
अजयम्	अजयाव	अजयाम	उ०	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

आज्ञा-लोट्				अनद्यतन भविष्य-लुट्		
जयतु	जयताम्	जयन्तु	प्र०	जेता	जेतारौ	जेतारः
जय	जयतम्	जयत	म०	जेतासि	जेतास्थः	जेतास्थ
जयानि	जयाव	जयाम	उ०	जेतास्मि	जेतास्वः	जेतास्मः

विधिलिङ्				सामान्यभूत-लुङ्		
जयेत्	जयेताम्	जयेयुः	प्र०	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
जयेः	जयेतम्	जयेत	म०	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
जयेयम्	जयेव	जयेम	उ०	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

आशीर्लिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासुः	प्र०	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
जीयाः	जीयास्तम्	जीयास्त	म०	अजेष्यः	अजेष्यतम्	अजेष्यत
जीयासम्	जीयास्व	जीयास्म	उ०	अजेष्यम्	अजेष्याव	अजेष्याम

(७) त्यज् (छोड़ना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				आज्ञा-लोट्		
त्यजति	त्यजतः	त्यजन्ति	प्र०	त्यजतु	त्यजताम्	त्यजन्तु
त्यजसि	त्यजथः	त्यजथ	म०	त्यज	त्यजतम्	त्यजत
त्यजामि	त्यजावः	त्यजामः	उ०	त्यजानि	त्यजाव	त्यजाम

सामान्यभविष्य-लृट्				विधिलिङ्		
त्यक्ष्यति	त्यक्ष्यतः	त्यक्ष्यन्ति	प्र०	त्यजेत्	त्यजेताम्	त्यजेयुः
त्यक्ष्यसि	त्यक्ष्यथः	त्यक्ष्यथ	म०	त्यजेः	त्यजेतम्	त्यजेत
त्यक्ष्यामि	त्यक्ष्यावः	त्यक्ष्यामः	उ०	त्यजेयम्	त्यजेव	त्यजेम

अनद्यतनभूत-लङ्				आशीर्लिङ्		
अत्यजत्	अत्यजताम्	अत्यजन्	प्र०	त्यज्यात्	त्यज्यास्ताम्	त्यज्यासुः
अत्यजः	अत्यजतम्	अत्यजत	म०	त्यज्याः	त्यज्यास्तम्	त्यज्यास्त
अत्यजम्	अत्यजाव	अत्यजाम	उ०	त्यज्यासम्	त्यज्यास्व	त्यज्यास्म

परोक्षभूत-लिट्				सामान्यभूत-लुङ्		
तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः	प्र०	अत्याक्षीत्	अत्याष्टाम्	अत्याक्षुः
तत्यजिथ, तत्यक्थ	तत्यजथुः	तत्यज	म०	अत्याक्षीः	अत्याष्टम्	अत्याष्ट
तत्याज, तत्यज	तत्यजिव	तत्यजिम	उ०	अत्याक्षम्	अत्याक्ष्व	अत्याक्ष्म

अनद्यतन भविष्य-लुट्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
त्यक्ता	त्यक्तारौ	त्यक्तारः	प्र०	अत्यक्ष्यत्	अत्यक्ष्येताम्	अत्यक्ष्यन्
त्यक्तासि	त्यक्तास्थः	त्यक्तास्थ	म०	अत्यक्ष्यः	अत्यक्ष्यतम्	अत्यक्ष्यत
त्यक्तास्मि	त्यक्तास्वः	त्यक्तास्मः	उ०	अत्यक्ष्यम्	अत्यक्ष्याव	अत्यक्ष्याम

(८) दृश् (देखना) परस्मैपदी

वर्तमानकाल-लट्				आशीर्लिङ्		
पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति	प्र०	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ	म०	दृश्याः	दृश्यास्तम्	दृश्यास्त
पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः	उ०	दृश्यासम्	दृश्यास्व	दृश्यास्म

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति	प्र०	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ	म०	ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः	उ०	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्	प्र०	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत	म०	द्रष्टासि	द्रष्टास्थः	द्रष्टास्थः
अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम	उ०	द्रष्टास्मि	द्रष्टास्वः	द्रष्टास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु	प्र०	अद्राक्षीत्	अद्राष्टाम्	अद्राक्षुः
पश्य	पश्यतम्	पश्यत	म०	अद्राक्षीः	अद्राष्टम्	अद्राष्ट
पश्यानि	पश्याव	पश्याम	उ०	अद्राक्षम्	अद्राक्ष्व	अद्राक्ष्म

विधिलिङ्				अथवा		
पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः	प्र०	अदर्शत्	अदर्शताम्	अदर्शन्
पश्येः	पश्येतम्	पश्येत	म०	अदर्शः	अदर्शतम्	अदर्शत
पश्येयम्	पश्येव	पश्येम	उ०	अदर्शम्	अदर्शाव	अदर्शाम ।

क्रियातिपत्ति-लृङ्

प्र०	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
म०	अद्रक्ष्यः	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
उ०	अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

उभयपदी

(९) धृ (धरना) परस्मैपद

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
धरति	धरतः	धरन्ति	प्र०	ध्रियात्	ध्रियास्ताम्	ध्रियासुः
धरसि	धरथः	धरथ	म०	ध्रियाः	ध्रियास्तम्	ध्रियास्त
धरामि	धरावः	धरामः	उ०	ध्रियासम्	ध्रियास्व	ध्रियास्म

	सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्	
धरिष्यति	धरिष्यतः	धरिष्यन्ति	प्र०	दधार	दध्रतुः	दध्रुः
धरिष्यसि	धरिष्यथः	धरिष्यथ	म०	दधर्थ	दध्रथुः	दध्र
धरिष्यामि	धरिष्यावः	धरिष्यामः	उ०	दधार, दधर	दधृव	दधृम

	अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्	
अधरत्	अधरताम्	अधरन्	प्र०	धर्ता	धर्तारौ	धर्तारः
अधरः	अधरतम्	अधरत	म०	धर्तासि	धर्तास्थः	धर्तास्थ
अधरम्	अधराव	अधराम	उ०	धर्तास्मि	धर्तास्वः	धर्तास्वः

	आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्	
धरतु	धरताम्	धरन्तु	प्र०	अधार्षीत्	अधार्ष्टाम्	अधार्षुः
धर	धरतम्	धरत	म०	अधार्षीः	अधार्ष्टम्	अधार्ष्ट
धराणि	धराव	धराम	उ०	अधार्षम्	अधार्ष्व	अधार्ष्म

	विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्	
धरेत्	धरेताम्	धरेयुः	प्र०	अधरिष्यत्	अधरिष्यताम्	अधरिष्यन्
धरेः	धरेतम्	धरेत	म०	अधरिष्यः	अधरिष्यतम्	अधरिष्यत
धरेयम्	धरेव	धरेम	उ०	अधरिष्यम्	अधरिष्याव	अधरिष्याम

धृ (धरना) आत्मनेपद

	वर्तमान-लट्				सामान्यभविष्य-लृट्	
धरते	धरेते	धरन्ते	प्र०	धरिष्यते	धरिष्येते	धरिष्यन्ते
धरसे	धरेथे	धरध्वे	म०	धरिष्यसे	धरिष्येथे	धरिष्यध्वे
धरे	धरावहे	धरामहे	उ०	धरिष्ये	धरिष्यावहे	धरिष्यामहे

	अनद्यतनभूत-लङ्				परोक्षभूत-लिट्	
अधरत	अधरेताम्	अधरन्त	प्र०	दध्रे	दध्राते	दध्रिरे
अधरथाः	अधरेथाम्	अधरध्वम्	म०	दध्रिषे	दध्राथे	दध्रिध्वे
अधरे	अधरावहि	अधरामहि	उ०	दध्रे	दध्रिवहे	दध्रिमहे

	आज्ञा-लोट्				अनद्यतनभविष्य-लुट्	
धरताम्	धरेताम्	धरन्ताम्	प्र०	धर्ता	धर्तारौ	धर्तारः
धरस्व	धरेथाम्	धरध्वम्	म०	धर्तासे	धर्तासाथे	धर्ताध्वे
धरै	धरावहै	धरामहै	उ०	धर्ताहे	धर्तास्वहे	धर्तास्महे

	विधिलिङ्				सामान्यभूत-लुङ्	
धरेत	धरेयाताम्	धरेरन्	अ०	अधृत	अधृषाताम्	अधृषत
धरेथाः	धरेयाथाम्	धरेध्वम्	म०	अधृथाः	अधृषाथाम्	अधृध्वम्
धरेय	धरेवहि	धरेमहि	उ०	अधृषि	अधृष्वहि	अधृष्महि

आशीर्लिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
वृषीष्ट	वृषीयास्ताम्	वृषीरन्	प्र०	अवरिष्यत	अवरिष्येताम्	अवरिष्यन्त
वृषीष्ठाः	वृषीयास्थाम्	वृषीध्वम्	म०	अवरिष्यथाः	अवरिष्येथाम्	अवरिष्यध्वम्
वृषीय	वृषीवहि	वृषीमहि	उ०	अवरिष्ये	अवरिष्यावहि	अवरिष्यामहि

(१०) नम् (नमस्कार करना, झुकना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				आज्ञा-लोट्		
नमति	नमतः	नमन्ति	प्र०	नमतु	नमताम्	नमन्तु
नमसि	नमथः	नमथ	म०	नम	नमतम्	नमत
नमामि	नमावः	नमामः	उ०	नमानि	नमाव	नमाम

सामान्यभविष्य-लृट्				विधिलिङ्		
नंस्यति	नंस्यतः	नंस्यन्ति	प्र०	नमेत्	नमेताम्	नमेयुः
नंस्यसि	नंस्यथः	नंस्यथ	म०	नमेः	नमेतम्	नमेत
नंस्यामि	नंस्यावः	नंस्यामः	उ०	नमेयम्	नमेव	नमेम

अनद्यतनभूत-लङ्				आशीर्लिङ्		
अनमत्	अनमताम्	अनमन्	प्र०	नम्यात्	नम्यास्ताम्	नम्यासुः
अनमः	अनमतम्	अनमत	म०	नम्याः	नम्यास्तम्	नम्यास्त
अनमम्	अनमाव	अनमाम	उ०	नम्यासम्	नम्यास्व	नम्यास्म

परोक्षभूत-लिट्				सामान्यभूत-लुङ्		
ननाम	नेमतुः	नेमुः	प्र०	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषुः
नेमिथ, ननन्थ	नेमथुः	नेम	म०	अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
ननाम, ननम	नेमिव	नेमिम	उ०	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

अनद्यतनभविष्य-लुट्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
नन्ता	नन्तारौ	नन्तारः	प्र०	अनंस्यत्	अनंस्यताम्	अनंस्यन्
नन्तासि	नन्तास्थः	नन्तास्थ	म०	अनंस्यः	अनंस्यतम्	अनंस्यत
नन्तास्मि	नन्तास्वः	नन्तास्मः	उ०	अनंस्यम्	अनंस्याव	अनंस्याम

उभयपदी

(११) नी (नय्) ले जाना—परस्मैपद

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
नयति	नयतः	नयन्ति	प्र०	नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः
नयसि	नयथः	नयथ	म०	नीयाः	नीयास्तम्	नीयास्त
नयामि	नयावः	नयामः	उ०	नीयासम्	नीयास्व	नीयास्म

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति	प्र०	निनाय	निन्यतुः	निन्युः
नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ	म०	निनयिथ, निनेथ	निन्यथुः	निन्य
नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः	उ०	निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अनयत्	अनयताम्	अनयन्	प्र०	नेता	नेतारौ	नेतारः
अनयः	अनयतम्	अनयत	म०	नेतासि	नेतास्थः	नेतास्थ
अनयम्	अनयाव	अनयाम	उ०	नेतास्मि	नेतास्वः	नेतास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
नयतु	नयताम्	नयन्तु	प्र०	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषुः
नय	नयतम्	नयत	म०	अनैषीः	अनैष्टम्	अनैष्ट
नयानि	नयाव	नयाम	उ०	अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति		
नयेत्	नयेताम्	नयेयुः	प्र०	अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
नयेः	नयेतम्	नयेत	म०	अनेष्यः	अनेष्यतम्	अनेष्यत
नयेयम्	नयेव	नयेम	उ०	अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

नी (नय्) आत्मनेपद

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
नयते	नयेते	नयन्ते	प्र०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
नयसे	नयेथे	नयध्वे	म०	नेषीष्ठाः	नेषीयास्थाम्	नेषीढ्वम्
नये	नयावहे	नयामहे	उ०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते	प्र०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे	म०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे
नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे	उ०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अनयत	अनयेताम्	अनयन्त	प्र०	नेता	नेतारौ	नेतारः
अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्	म०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
अनये	अनयावहि	अनयामहि	उ०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

विधिलिङ्				सामान्यभूत-लुङ्		
नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्	प्र०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्	म०	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
नयेय	नयेवहि	नयेमहि	उ०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

आज्ञा-लोट्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्	प्र०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्	म०	अनेष्यथाः	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
नयै	नयावहै	नयामहै	उ०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

उभयपदी

(१२) पच् (पकाना) परस्मैपद

वर्तमान-लट्				अनद्यतनभूत-लङ्		
पचति	पचतः	पचन्ति	प्र०	अपचत्	अपचताम्	अपचन्
पचसि	पचथः	पचथ	म०	अपचः	अपचतम्	अपचत
पचामि	पचावः	पचामः	उ०	अपचम्	अपचाव	अपचाम

सामान्यभविष्य-लृट्				आज्ञा-लोट्		
पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति	प्र०	पचतु	पचताम्	पचन्तु
पक्ष्यसि	पक्ष्यथः	पक्ष्यथ	म०	पच	पचतम्	पचत
पक्ष्यामि	पक्ष्यावः	पक्ष्यामः	उ०	पचानि	पचाव	पचाम

विधिलिङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
पचेत्	पचेताम्	पचेयुः	प्र०	पक्ता	पक्तारौ	पक्तारः
पचेः	पचेतम्	पचेत	म०	पक्तासि	पक्तास्थः	पक्तास्थ
पचेयम्	पचेव	पचेम	उ०	पक्तास्मि	पक्तास्वः	पक्तास्मः

आशीर्लिङ्				सामान्यभूत-लुङ्		
पच्यात्	पच्यास्ताम्	पच्यासुः	प्र०	अपाक्षीत्	अपाक्ताम्	अपाक्षुः
पच्याः	पच्यास्तम्	पच्यास्त	म०	अपाक्षीः	अपाक्तम्	अपाक्त
पच्यासम्	पच्यास्व	पच्यास्म	उ०	अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्ष्म

परोक्षभूत-लिट्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
पपाच	पेचतुः	पेचुः	प्र०	अपक्ष्यत्	अपक्ष्यताम्	अपक्ष्यन्
पेचिथ, पपक्थ	पेचथुः	पेच	म०	अपक्ष्यः	अपक्ष्यतम्	अपक्ष्यत
पपाच, पपच	पेचिव	पेचिम	उ०	अपक्ष्यम्	अपक्ष्याव	अपक्ष्याम

पच् (पकाना) आत्मनेपद

वर्तमान-लट्				विधिलिङ्		
पचते	पचेते	पचन्ते	प्र०	पचेत	पचेयाताम्	पचेरन्
पचसे	पचेथे	पचध्वे	म०	पचेथाः	पचेयाथाम्	पचेध्वम्
पचे	पचावहे	पचामहे	उ०	पचेय	पचेवहि	पचेमहि

सामान्यभविष्य-लृट्				आशीर्लिङ्		
पक्ष्यते	पक्ष्येते	पक्ष्यन्ते	प्र०	पक्षीष्ट	पक्षीयास्ताम्	पक्षीरन्
पक्ष्यसे	पक्ष्येथे	पक्ष्यध्वे	म०	पक्षीष्ठाः	पक्षीयास्थाम्	पक्षीध्वम्
पक्ष्ये	पक्ष्यावहे	पक्ष्यामहे	उ०	पक्षीय	पक्षीवहि	पक्षीमहि

अनद्यतनभूत-लङ्				परोक्षभूत-लिट्		
अपचत	अपचेताम्	अपचन्त	प्र०	पेचे	पेचाते	पेचिरे
अपचथाः	अपचेथाम्	अपचध्वम्	म०	पेचिषे	पेचाथे	पेचिध्वे
अपचे	अपचावहि	अपचामहि	उ०	पेचे	पेचिवहे	पेचिमहे

आज्ञा-लोट्				अनद्यतन-भविष्य-लुट्		
पचताम्	पचेताम्	पचन्ताम्	प्र०	पक्ता	पक्तारौ	पक्तारः
पचस्व	पचेथाम्	पचध्वम्	म०	पक्तासे	पक्तासाथे	पक्ताध्वे
पचै	पचावहै	पचामहै	उ०	पक्ताहे	पक्तास्वहे	पक्तास्महे

सामान्यभूत-लुङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
अपक्त	अपक्षाताम्	अपक्षत	प्र०	अपक्ष्यत	अपक्ष्येताम्	अपक्ष्यन्त
अपक्थाः	अपक्षाथाम्	अपग्ध्वम्	म०	अपक्ष्यथाः	अपक्ष्येथाम्	अपक्ष्यध्वम्
अपक्षि	अपक्ष्वहि	अपक्ष्महि	उ०	अपक्ष्ये	अपक्ष्यावहि	अपक्ष्यामहि

(१२) पठ् (पढ़ना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
पठति	पठतः	पठन्ति	प्र०	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
पठसि	पठथः	पठथ	म०	पठ्याः	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त
पठामि	पठावः	पठामः	उ०	पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति	प्र०	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ	म०	पेठिथ	पेठथुः	पेठ
पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः	उ०	पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अपठत्	अपठताम्	अपठन्	प्र०	पठिता	पठितारौ	पठितारः
अपठः	अपठतम्	अपठत	म०	पठितासि	पठितास्थः	पठितास्थ
अपठम्	अपठाव	अपठाम	उ०	पठितास्मि	पठितास्वः	पठितास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
पठतु	पठताम्	पठन्तु	प्र०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः
पठ	पठतम्	पठत	म०	अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
पठानि	पठाव	पठाम	उ०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
पठेत्	पठेताम्	पठेयुः	प्र०	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
पठेः	पठेतम्	पठेत	म०	अपठिष्यः	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत
पठेयम्	पठेव	पठेम	उ०	अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम

(१४) पा (पिब्) पीना-परस्मैपदी

वर्तमान लट्				सामान्यभविष्य-लृट्		
पिबति	पिबतः	पिबन्ति	प्र०	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
पिबसि	पिबथः	पिबथ	म०	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
पिबामि	पिबावः	पिबामः	उ०	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

अनद्यतनभूत-लङ्				परोक्षभूत-लिट्		
अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्	प्र०	पपौ	पपतुः	पपुः
अपिबः	अपिबतम्	अपिबत	म०	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम	उ०	पपौ	पपिव	पपिम

आज्ञा-लोट्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
पिबतु-पिबतात्	पिबताम्	पिबन्तु	प्र०	पाता	पातारौ	पातारः
पिब	पिबतम्	पिबत	म०	पातासि	पातास्थः	पातास्थ
पिबानि	पिबाव	पिबाम	उ०	पातास्मि	पातास्वः	पातास्मः

विधिलिङ्				सामान्यभूत-लुङ्		
पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः	प्र०	अपात्	अपाताम्	अपुः
पिबेः	पिबेतम्	पिबेत	म०	अपाः	अपातम्	अपात
पिबेयम्	पिबेव	पिबेम	उ०	अपाम्	अपाव	अपाम

आशीर्लिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः	प्र०	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
पेयाः	पेयास्तम्	पेयास्त	म०	अपास्यः	अपास्यतम्	अपास्यत
पेयासम्	पेयास्व	पेयास्म	उ०	अपास्यम्	अपास्याव	अपास्याम

उभयपदी

(१५) भज् (सेवा करना) परस्मैपद

वर्तमान-लट्				आज्ञा-लोट्		
भजति	भजतः	भजन्ति	प्र०	भजतु	भजताम्	भजन्तु
भजसि	भजथः	भजथ	म०	भज	भजतम्	भजत
भजामि	भजावः	भजामः	उ०	भजानि	भजाव	भजाम

सामान्यभविष्य-लृट्				विधिलिङ्		
भक्ष्यति	भक्ष्यतः	भक्ष्यन्ति	प्र०	भजेत्	भजेताम्	भजेयुः
भक्ष्यसि	भक्ष्यथः	भक्ष्यथ	म०	भजेः	भजेतम्	भजेत
भक्ष्यामि	भक्ष्यावः	भक्ष्यामः	उ०	भजेयम्	भजेव	भजेम

अनद्यतनभूत-लङ्				आशीर्लिङ्		
अभजत्	अभजताम्	अभजन्	प्र०	भज्यात्	भज्यास्ताम्	भज्यासुः
अभजः	अभजतम्	अभजत	म०	भज्याः	भज्यास्तम्	भज्यास्त
अभजम्	अभजाव	अभजाम	उ०	भज्यासम्	भज्यास्व	भज्यास्म

परोक्षभूत-लिट्				सामान्यभूत-लुङ्		
बभाज	भेजतुः	भेजुः	प्र०	अभाक्षीत्	अभाक्ताम्	अभाक्षुः
भेजिथ, बभक्थ	भेजथुः	भेज	म०	अभाक्षीः	अभाक्तम्	अभाक्त
बभाज, बभज	भेजिव	भेजिम	उ०	अभाक्षम्	अभाक्ष्व	अभाक्ष्म

अनद्यतनभविष्य-लुट्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
भक्ता	भक्तारौ	भक्तारः	प्र०	अभक्ष्यत्	अभक्ष्यताम्	अभक्ष्यन्
भक्तासि	भक्तास्थः	भक्तास्थ	म०	अभक्ष्यः	अभक्ष्यतम्	अभक्ष्यत
भक्तास्मि	भक्तास्वः	भक्तास्मः	उ०	अभक्ष्यम्	अभक्ष्याव	अभक्ष्याम

भज् (सेवा करना) आत्मनेपद

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
भजते	भजेते	भजन्ते	प्र०	भक्षीष्ट	भक्षीयास्ताम्	भक्षीरन्
भजसे	भजेथे	भजध्वे	म०	भक्षीष्ठाः	भक्षीयास्थाम्	भक्षीध्वम्
भजे	भजावहे	भजामहे	उ०	भक्षीय	भक्षीवहि	भक्षीमहि

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
भक्ष्यते	भक्ष्येते	भक्ष्यन्ते	प्र०	भेजे	भेजाते	भेजिरे
भक्ष्यसे	भक्ष्येथे	भक्ष्यध्वे	म०	भेजिषे	भेजाथे	भेजिध्वे
भक्ष्ये	भक्ष्यावहे	भक्ष्यामहे	उ०	भेजे	भेजिवहे	भेजिमहे

अनद्यतनभूत-लङ्				अयद्यतनभविष्य-लुट्		
अभजत	अभजेताम्	अभजन्त	प्र०	भक्ता	भक्तारौ	भक्तारः
अभजथाः	अभजेथाम्	अभजध्वम्	म०	भक्तासे	भक्तासाथे	भक्ताध्वे
अभजे	अभजावहि	अभजामहि	उ०	भक्ताहे	भक्तास्वहे	भक्तास्महे

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
भजताम्	भजेताम्	भजन्ताम्	प्र०	अभक्त	अभक्षाताम्	अभक्षत
भजस्व	भजेथाम्	भजध्वम्	म०	अभक्थाः	अभक्षाथाम्	अभग्ध्वम्
भजै	भजावहै	भजामहै	उ०	अभक्षि	अभक्ष्वहि	अभक्ष्महि

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
भजेत	भजेयाताम्	भजेरन्	प्र०	अभक्ष्यत	अभक्ष्येताम्	अभक्ष्यन्त
भजेथाः	भजेयाथाम्	भजेध्वम्	म०	अभक्ष्यथाः	अभक्ष्येथाम्	अभक्ष्यध्वम्
भजेय	भजेवहि	भजेमहि	उ०	अभक्ष्ये	अभक्ष्यावहि	अभक्ष्यामहि

(१६) भाष् (बोलना) आत्मनेपदी

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
भाषते	भाषेते	भाषन्ते	प्र०	भाषिषीष्ट	भाषिषीयास्ताम्	भाषिषीरन्
भाषसे	भाषेथे	भाषध्वे	म०	भाषिषीष्ठाः	भाषिषीयास्थाम्	भाषिषीध्वम्
भाषे	भाषावहे	भाषामहे	उ०	भाषिषीय	भाषिषीवहि	भाषिषीमहि

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
भाषिष्यते	भाषिष्येते	भाषिष्यन्ते	प्र०	बभाषे	बभाषाते	बभाषिरे
भाषिष्यसे	भाषिष्येथे	भाषिष्यध्वे	म०	बभाषिषे	बभाषाथे	बभाषिध्वे
भाषिष्ये	भाषिष्यावहे	भाषिष्यामहे	उ०	बभाषे	बभाषिवहे	बभाषिमहे

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अभाषत	अभाषेताम्	अभाषन्त	प्र०	भाषिता	भाषितारौ	भाषितारः
अभाषथाः	अभाषेथाम्	अभाषध्वम्	म०	भाषितासे	भाषितासाथे	भाषिताध्वे
अभाषे	अभाषावहि	अभाषामहि	उ०	भाषिताहे	भाषितास्वहे	भाषितास्महे

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
भाषताम्	भाषेताम्	भाषन्ताम्	प्र०	अभाषिष्ट	अभाषिषाताम्	अभाषिषत
भाषस्व	भाषेथाम्	भाषध्वम्	म०	अभाषिष्ठाः	अभाषिषाथाम्	अभाषिढ्वम्
भाषै	भाषावहै	भाषामहै	उ०	अभाषिषि	अभाषिष्वहि	अभाषिष्महि

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
भाषेत	भाषेयाताम्	भाषेरन्	प्र०	अभाषिष्यत	अभाषिष्येताम्	अभषिष्यन्त
भाषेथाः	भाषेयाथाम्	भाषेध्वम्	म०	अभाषिष्यथाः	अभाषिष्येथाम्	अभाषिष्यध्वम्
भाषेय	भाषेवहि	भाषेमहि	उ०	अभाषिष्ये	अभाषिष्यावहि	अभाषिष्यामहि

उभयपदी

(१७) भृ (भरना, पालना-पोसना) परस्मैपद

वर्तमान-लट्				अनद्यतनभूत-लङ्		
भरति	भरतः	भरन्ति	प्र०	अभरत्	अभरताम्	अभरन्
भरसि	भरथः	भरथ	म०	अभरः	अभरतम्	अभरत
भरामि	भरावः	भरामः	उ०	अभरम्	अभराव	अभराम

सामान्यभविष्य-लृट्				आज्ञा-लोट्		
भरिष्यति	भरिष्यतः	भरिष्यन्ति	प्र०	भरतु	भरताम्	भरन्तु
भरिष्यसि	भरिष्यथः	भरिष्यथ	म०	भर	भरतम्	भरत
भरिष्यामि	भरिष्यावः	भरिष्यामः	उ०	भराणि	भराव	भराम

विधिलिङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
भरेत्	भरेताम्	भरेयुः	प्र०	भर्ता	भर्तारौ	भर्तारः
भरेः	भरेतम्	भरेत	म०	भर्तासि	भर्तास्थः	भर्तास्थ
भरेयम्	भरेव	भरेम	उ०	भर्तास्मि	भर्तास्वः	भर्तास्मः

आशीर्लिङ्				सामान्यभूत-लुङ्		
भ्रियात्	भ्रियास्ताम्	भ्रियासुः	प्र०	अभार्षीत्	अभार्ष्टाम्	अभार्षुः
भ्रियाः	भ्रियास्तम्	भ्रियास्त	म०	अभार्षीः	अभार्ष्टम्	अभार्ष्ट
भ्रियासम्	भ्रियास्व	भ्रियास्म	उ०	अभार्षम्	अभार्ष्व	अभार्ष्म

परोक्षभूत-लिट्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
बभार	बभ्रतुः	बभ्रुः	प्र०	अभरिष्यत्	अभरिष्यताम्	अभरिष्यन्
बभर्थ	बभ्रथुः	बभ्र	म०	अभरिष्यः	अभरिष्यतम्	अभरिष्यत
बभार, बभर	बभृव	बभृम	उ०	अभरिष्यम्	अभरिष्याव	अभरिष्याम

भृ (पालना-पोसना, भरना) आत्मनेपदी

वर्तमान-लट्				विधिलिङ्		
भरते	भरेते	भरन्ते	प्र०	भरेत	भरेयाताम्	भरेरन्
भरसे	भरेथे	भरध्वे	म०	भरेथाः	भरेयाथाम्	भरेध्वम्
भरे	भरावहे	भरामहे	उ०	भरेय	भरेवहि	भरेमहि
सामान्यभविष्य-लृट्				**आशीर्लिङ्**		
भरिष्यते	भरिष्येते	भरिष्यन्ते	प्र०	भृषीष्ट	भृषीयास्ताम्	भृषीरन्
भरिष्यसे	भरिष्येथे	भरिष्यध्वे	म०	भृषीष्ठाः	भृषीयास्थाम्	भृषीध्वम्
भरिष्ये	भरिष्यावहे	भरिष्यामहे	उ०	भृषीय	भृषीवहि	भृषीमहि
अनद्यतनभूत-लङ्				**परोक्षभूत-लिट्**		
अभरत	अभरेताम्	अभरन्त	प्र०	बभ्रे	बभ्राते	बभ्रिरे
अभरथाः	अभरेथाम्	अभरध्वम्	म०	बभृषे	बभ्राथे	बभृध्वे
अभरे	अभरावहि	अभरामहि	उ०	बभ्रे	बभृवहे	बभृमहे
आज्ञा-लोट्				**अनद्यतनभविष्य-लुट्**		
भरताम्	भरेताम्	भरन्ताम्	प्र०	भर्ता	भर्तारौ	भर्तारः
भरस्व	भरेथाम्	भरध्वम्	म०	भर्तासे	भर्तासाथे	भर्ताध्वे
भरै	भरावहै	भरामहै	उ०	भर्ताहे	भर्तास्वहे	भर्तास्महे
सामान्यभूत-लुङ्				**क्रियातिपत्ति-लृङ्**		
अभृत	अभृषाताम्	अभृषत	प्र०	अभरिष्यत	अभरिष्येताम्	अभरिष्यन्त
अभृथाः	अभृषाथाम्	अभृध्वम्	म०	अभरिष्यथाः	अभरिष्येथाम्	अभरिष्यध्वम्
अभृषि	अभृष्वहि	अभृष्महि	उ०	अभरिष्ये	अभरिष्यावहि	अभरिष्यामहि

(१८) भ्रम् (भ्रमण करना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				परोक्षभूत-लिट्		
भ्रमति	भ्रमतः	भ्रमन्ति	प्र०	बभ्राम	भ्रेमतुः	भ्रेमुः
भ्रमसि	भ्रमथः	भ्रमथ	म०	भ्रेमिथ	भ्रेमथुः	भ्रेम
भ्रमामि	भ्रमावः	भ्रमामः	उ०	बभ्राम, बभ्रम	भ्रेमिव	भ्रेमिम
सामान्यभविष्य-लृट्				**तथा**		
भ्रमिष्यति	भ्रमिष्यतः	भ्रमिष्यन्ति	प्र०	बभ्राम	बभ्रमतुः	बभ्रमुः
भ्रमिष्यसि	भ्रमिष्यथः	भ्रमिष्यथ	म०	बभ्रमिथ	बभ्रमथुः	बभ्रम
भ्रमिष्यामि	भ्रमिष्यावः	भ्रमिष्यामः	उ०	बभ्राम, बभ्रम	बभ्रमिव	बभ्रमिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अभ्रमत्	अभ्रमताम्	अभ्रमन्	प्र०	भ्रमिता	भ्रमितारौ	भ्रमितारः
अभ्रमः	अभ्रमतम्	अभ्रमत	म०	भ्रमितासि	भ्रमितास्थः	भ्रमितास्थ
अभ्रमम्	अभ्रमाव	अभ्रमाम	उ०	भ्रमितास्मि	भ्रमितास्वः	भ्रमितास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
भ्रमतु	भ्रमताम्	भ्रमन्तु	प्र०	अभ्रमीत्	अभ्रमिष्टाम्	अभ्रमिषुः
भ्रम	भ्रमतम्	भ्रमत	म०	अभ्रमीः	अभ्रमिष्टम्	अभ्रमिष्ट
भ्रमाणि	भ्रमाव	भ्रमाम	उ०	अभ्रमिषम्	अभ्रमिष्व	अभ्रमिष्म

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
भ्रमेत्	भ्रमेताम्	भ्रमेयुः	प्र०	अभ्रमिष्यत्	अभ्रमिष्यताम्	अभ्रमिष्यन्
भ्रमेः	भ्रमेतम्	भ्रमेत	म०	अभ्रमिष्यः	अभ्रमिष्यतम्	अभ्रमिष्यत
भ्रमेयम्	भ्रमेव	भ्रमेम	उ०	अभ्रमिष्यम्	अभ्रमिष्याव	अभ्रमिष्याम

आशीर्लिङ्			
भ्रम्यात्	भ्रम्यास्ताम्	भ्रम्यासुः	प्र०
भ्रम्याः	भ्रम्यास्तम्	भ्रम्यास्त	म०
भ्रम्यासम्	भ्रम्यास्व	भ्रम्यास्म	उ०

(१९) मुद् (प्रसन्न होना) आत्मनेपदी

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
मोदते	मोदेते	मोदन्ते	प्र०	मोदिषीष्ट	मोदिषीयास्ताम्	मोदिषीरन्
मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे	म०	मोदिषीष्ठाः	मोदिषीयास्थाम्	मोदिषीध्वम्
मोदे	मोदावहे	मोदामहे	उ०	मोदिषीय	मोदिषीवहि	मोदिषीमहि

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते	प्र०	मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे
मोदिष्यसे	मोदिष्येथे	मोदिष्यध्वे	म०	मुमुदिषे	मुमुदाथे	मुमुदिध्वे
मोदिष्ये	मोदिष्यावहे	मोदिष्यामहे	उ०	मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त	प्र०	मोदिता	मोदितारौ	मोदितारः
अमोदथाः	अमोदेथाम्	अमोदध्वम्	म०	मोदितासे	मोदितासाथे	मोदिताध्वे
अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि	उ०	मोदिताहे	मोदितास्वहे	मोदितास्महे

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
मोदताम्	मोदेताम्	मोदन्ताम्	प्र०	अमोदिष्ट	अमोदिषाताम्	अमोदिषत
मोदस्व	मोदेथाम्	मोदध्वम्	म०	अमोदिष्ठाः	अमोदिषाथाम्	अमोदिढ्वम्
मोदै	मोदावहै	मोदामहै	उ०	अमोदिषि	अमोदिष्वहि	अमोदिष्महि

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्	प्र०	अमोदिष्यत	अमोदिष्येताम्	अमोदिष्यन्त
मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्	म०	अमोदिष्यथाः	अमोदिष्येथाम्	अमोदिद्वम्
मोदेप	मोदेवहि	मोदेमहि	उ०	अमोदिष्ये	अमोदिष्यावहि	अमोदिष्यामहि

उभयपदी

(२०) यज् (यज्ञ करना, पूजा करना) परस्मैपद

वर्तमान-लट्				अनद्यतनभूत-लङ्		
यजति	यजतः	यजन्ति	प्र०	अयजत्	अयजताम्	अयजन्
यजसि	यजथः	यजथ	म०	अयजः	अयजतम्	अयजत
यजामि	यजावः	यजामः	उ०	अयजम्	अयजाव	अयजाम

सामान्यभविष्य-लृट्				आज्ञा-लोट्		
यक्ष्यति	यक्ष्यतः	यक्ष्यन्ति	प्र०	यजतु	यजताम्	यजन्तु
यक्ष्यसि	यक्ष्यथः	यक्ष्यथ	म०	यज	यजतम्	यजत
यक्ष्यामि	यक्ष्यावः	यक्ष्यामः	उ०	यजानि	यजाव	यजाम

विधिलिङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
यजेत्	यजेताम्	यजेयुः	प्र०	यष्टा	यष्टारौ	यष्टारः
यजेः	यजेतम्	यजेत	म०	यष्टासि	यष्टास्थः	यष्टास्थ
यजेयम्	यजेव	यजेम	उ०	यष्टास्मि	यष्टास्वः	यष्टास्मः

आशीर्लिङ्				सामान्यभूत-लुङ्		
इज्यात्	इज्यास्ताम्	इज्यासुः	प्र०	अयाक्षीत्	अयाष्टाम्	अयाक्षुः
इज्याः	इज्यास्तम्	इज्यास्त	म०	अयाक्षीः	अयाष्टम्	अयाष्ट
इज्यासम्	इज्यास्व	इज्यास्म	उ०	अयाक्षम्	अयाक्ष्व	अयाक्ष्म

परोक्षभूत-लिट्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
इयाज	ईजतुः	ईजुः	प्र०	अयक्ष्यत्	अयक्ष्यताम्	अयक्ष्यन्
इयजिथ, इयष्ठ	ईजथुः	ईज	म०	अयक्ष्यः	अयक्ष्यतम्	अयक्ष्यत
इयाज, इयज	ईजिव	ईजिम	उ०	अयक्ष्यम्	अयक्ष्याव	अयक्ष्याम

यज् (यज्ञ करना, पूजा करना) आत्मनेपद

वर्तमान-लट्				विधिलिङ्		
यजते	[illegible]	यजन्ते	प्र०	यजेत	यजेयाताम्	यजेरन्
यजसे	यजेथे	यजध्वे	म०	यजेथाः	यजेयाथाम्	यजेध्वम्
यजे	यजावहे	यजामहे	उ०	यजेय	यजेवहि	यजेमहि

सामान्यभविष्य-लृट्				आशीर्लिङ्		
यक्ष्यते	यक्ष्येते	यक्ष्यन्ते	प्र०	यक्षीष्ट	यक्षीयास्ताम्	यक्षीरन्
यक्ष्यसे	यक्ष्येथे	यक्ष्यध्वे	म०	यक्षीष्ठाः	यक्षीयास्थाम्	यक्षीध्वम्
यक्ष्ये	यक्ष्यावहे	यक्ष्यामहे	उ०	यक्षीय	यक्षीवहि	यक्षीमहि

अनद्यतनभूत-लङ्				परोक्षभूत-लिट्		
अयजत	अयजेताम्	अयजन्त	प्र०	ईजे	ईजाते	ईजिरे
अयजथाः	अयजेथाम्	अयजध्वम्	म०	ईजिषे	ईजाथे	ईजिध्वे
अयजे	अयजावहि	अयजामहि	उ०	ईजे	ईजिवहे	ईजिमहे

आज्ञा-लोट्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
यजताम्	यजेताम्	यजन्ताम्	प्र०	यष्टा	यष्टारौ	यष्टारः
यजस्व	यजेथाम्	यजध्वम्	म०	यष्टासे	यष्टासाथे	यष्टाध्वे
यजै	यजावहै	यजामहै	उ०	यष्टाहे	यष्टास्वहे	यष्टास्महे

सामान्यभूत-लुङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
अयष्ट	अयक्षाताम्	अयक्षत	प्र०	अयक्ष्यत	अयक्ष्येताम्	अयक्ष्यन्त
अयष्ठाः	अयक्षाथाम्	अयक्षध्वम्	म०	अयक्ष्यथाः	अयक्ष्येथाम्	अयक्ष्यध्वम्
अयक्षि	अयक्ष्वहि	अयक्ष्महि	उ०	अयक्ष्ये	अयक्ष्यावहि	अयक्ष्यामहि

उभयपदी

(२१) याच् (माँगना) परस्मैपद

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
याचति	याचतः	याचन्ति	प्र०	याच्यात्	याच्यास्ताम्	याच्यासुः
याचसि	याचथः	याचथ	म०	याच्याः	याच्यास्तम्	याच्यास्त
याचामि	याचावः	याचामः	उ०	याच्यासम्	याच्यास्व	याच्यास्म

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
याचिष्यति	याचिष्यतः	याचिष्यन्ति	प्र०	ययाच	ययाचतुः	ययाचुः
याचिष्यसि	याचिष्यथः	याचिष्यथ	म०	ययाचिथ	ययाचथुः	ययाच
याचिष्यामि	याचिष्यावः	याचिष्यामः	उ०	ययाच	ययाचिव	ययाचिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अयाचत्	अयाचताम्	अयाचन्	प्र०	याचिता	याचितारौ	याचितारः
अयाचः	अयाचतम्	अयाचत	म०	याचितासि	याचितास्थः	याचितास्थ
अयाचम्	अयाचाव	अयाचाम	उ०	याचितास्मि	याचितास्वः	याचितास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
याचतु	याचताम्	याचन्तु	प्र०	अयाचीत्	अयाचिष्टाम्	अयाचिषुः
याच	याचतम्	याचत	म०	अयाचीः	अयाचिष्टम्	अयाचिष्ट
याचानि	याचाव	याचाम	उ०	अयाचिषम्	अयाचिष्व	अयाचिष्म

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
याचेत्	याचेताम्	याचेयुः	प्र०	अयाचिष्यत्	अयाचिष्यताम्	अयाचिष्यन्
याचेः	याचेतम्	याचेत	म०	अयाचिष्यः	अयाचिष्यतम्	अयाचिष्यत
याचेयम्	याचेव	याचेम	उ०	अयाचिष्यम्	अयाचिष्याव	अयाचिष्याम

याच् (मांगना) आत्मनेपद

वर्तमान-लट्				सामान्यभविष्य-लृट्		
याचते	याचेते	याचन्ते	प्र०	याचिष्यते	याचिष्येते	याचिष्यन्ते
याचसे	याचेथे	याचध्वे	म०	याचिष्यसे	याचिष्येथे	याचिष्यध्वे
याचे	याचावहे	याचामहे	उ०	याचिष्ये	याचिष्यावहे	याचिष्यामहे

अनद्यतनभूत-लङ्				परोक्षभूत-लिट्		
अयाचत	अयाचेताम्	अयाचन्त	प्र०	ययाचे	ययाचाते	ययचिरे
अयाचथाः	अयाचेथाम्	अयाचध्वम्	म०	ययचिषे	ययाचाथे	ययाचिध्वे
अयाचे	अयाचावहि	अयाचामहि	उ०	ययाचे	ययाचिवहे	ययाचिमहे

आज्ञा-लोट्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
याचताम्	याचेताम्	याचन्ताम्	प्र०	याचिता	याचितारौ	याचितारः
याचस्व	याचेथाम्	याचध्वम्	म०	याचितासे	याचितासाथे	याचिताध्वे
याचै	याचावहै	याचामहै	उ०	याचिताहे	याचितास्वहे	याचितास्महे

विधिलिङ्				सामान्यभूत-लुङ्		
याचेत	याचेयाताम्	याचेरन्	प्र०	अयाचिष्ट	अयाचिषाताम्	अयचिषत
याचेथाः	याचेयाथाम्	याचेध्वम्	म०	अयाचिष्ठाः	अयाचिषाथाम्	अयचिढ्वम्
याचेय	याचेवहि	याचेमहि	उ०	अयचिषि	अयचिष्वहि	अयचिष्महि

आशीर्लिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
याचिषीष्ट	याचिषीयास्ताम्	याचिषीरन्	प्र०	अयाचिष्यत	अयाचिष्येताम्	अयाचिष्यन्त
याचिषीष्ठाः	याचिषीयास्थाम्	याचिषीध्वम्	म०	अयाचिष्यथाः	अयाचिष्येथाम्	अयाचिष्यध्वम्
याचिषीय	याचिषीवहि	याचिषीमहि	उ०	अयाचिष्ये	अयाचिष्यावहि	अयाचिष्यामहि

(२२) रक्ष् (रक्षा करना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				आज्ञा-लोट्		
रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति	प्र०	रक्षतु	रक्षताम्	रक्षन्तु
रक्षसि	रक्षथः	रक्षथ	म०	रक्ष	रक्षतम्	रक्षत
रक्षामि	रक्षावः	रक्षामः	उ०	रक्षाणि	रक्षाव	रक्षाम

सामान्यभविष्य-लृट्				विधिलिङ्		
रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति	प्र०	रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः
रक्षिष्यसि	रक्षिष्यथः	रक्षिष्यथ	म०	रक्षेः	रक्षेतम्	रक्षेत
रक्षिष्यामि	रक्षिष्यावः	रक्षिष्यामः	उ०	रक्षेयम्	रक्षेव	रक्षेम

अनद्यतनभूत-लङ्				आशीर्लिङ्		
अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्	प्र०	रक्ष्यात्	रक्ष्यास्ताम्	रक्ष्यासुः
अरक्षः	अरक्षतम्	अरक्षत	म०	रक्ष्याः	रक्ष्यास्तम्	रक्ष्यास्त
अरक्षम्	अरक्षाव	अरक्षाम	उ०	रक्ष्यासम्	रक्ष्यास्व	रक्ष्यास्म

परोक्षभूत—लिट्				सामान्यभूत—लुङ्		
ररक्ष	ररक्षतुः	ररक्षुः	प्र०	अरक्षीत्	अरक्षिष्टाम्	अरक्षिषुः
ररक्षिथ	ररक्षथुः	ररक्ष	म०	अरक्षीः	अरक्षिष्टम्	अरक्षिष्ट
ररक्ष	ररक्षिव	ररक्षिम	उ०	अरक्षिषम्	अरक्षिष्व	अरक्षिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्				क्रियातिपत्ति—लृङ्		
रक्षिता	रक्षितारौ	रक्षितारः	प्र०	अरक्षिष्यत्	अरक्षिष्यताम्	अरक्षिष्यन्
रक्षितासि	रक्षितास्थः	रक्षितास्थ	म०	अरक्षिष्यः	अरक्षिष्यतम्	अरक्षिष्यत
रक्षितास्मि	रक्षितास्वः	रक्षितास्मः	उ०	अरक्षिष्यम्	अरक्षिष्याव	अरक्षिष्याम

(२३) लभ् (पाना) आत्मनेपदी

वर्तमान—लट्				आशीर्लिङ्		
लभते	लभेते	लभन्ते	प्र०	लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्
लभसे	लभेथे	लभध्वे	म०	लप्सीष्ठाः	लप्सीयास्थाम्	लप्सीध्वम्
लभे	लभावहे	लभामहे	उ०	लप्सीय	लप्सीवहि	लप्सीमहि

सामान्यभविष्य—लृट्				परोक्षभूत—लिट्		
लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते	प्र०	लेभे	लेभाते	लेभिरे
लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे	म०	लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे
लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे	उ०	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

अनद्यतनभूत—लङ्				अनद्यतनभविष्य—लुट्		
अलभत	अलभेताम्	अलभन्त	प्र०	लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः
अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्	म०	लब्धासे	लब्धासाथे	लब्धाध्वे
अलभे	अलभावहि	अलभामहि	उ०	लब्धाहे	लब्धास्वहे	लब्धास्महे

आज्ञा—लोट्				सामान्यभूत—लुङ्		
लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्	प्र०	अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत
लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्	म०	अलब्धाः	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्
लभै	लभावहै	लभामहै	उ०	अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्स्महि

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति—लृङ्		
लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्	प्र०	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्	म०	अलप्स्यथाः	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
लभेय	लभेवहि	लभेमहि	उ०	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

(२४) वद् (कहना) परस्मैपदी

वर्तमान—लट्				आशीर्लिङ्		
वदति	वदतः	वदन्ति	प्र०	उद्यात्	उद्यास्ताम्	उद्यासुः
वदसि	वदथः	वदथ	म०	उद्याः	उद्यास्तम्	उद्यास्त
वदामि	वदावः	वदामः	उ०	उद्यासम्	उद्यास्व	उद्यास्म

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति	प्र०	उवाद	ऊदतुः	ऊदुः
वदिष्यसि	वदिष्यथः	वदिष्यथ	म०	उवदिथ	ऊदथुः	ऊद
वदिष्यामि	वदिष्यावः	वदिष्यामः	उ०	उवाद, उवद	ऊदिव	ऊदिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अवदत्	अवदताम्	अवदन्	प्र०	वदिता	वदितारौ	वदितारः
अवदः	अवदतम्	अवदत	म०	वदितासि	वदितास्थः	वदितास्थ
अवदम्	अवदाव	अवदाम	उ०	वदितास्मि	वदितास्वः	वदितास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
वदतु	वदताम्	वदन्तु	प्र०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
वद	वदतम्	वदत	म०	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
वदानि	वदाव	वदाम	उ०	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
वदेत्	वदेताम्	वदेयुः	प्र०	अवदिष्यत्	अवदिष्यताम्	अवदिष्यन्
वदेः	वदेतम्	वदेत	म०	अवदिष्यः	अवदिष्यतम्	अवदिष्यत
वदेयम्	वदेव	वदेम	उ०	अवदिष्यम्	अवदिष्याव	अवदिष्याम

उभयपदी

(२५) वप् (बोना, कपड़ा बुनना) परस्मैपद

वर्तमान-लट्				अनद्यतनभूत-लङ्		
वपति	वपतः	वपन्ति	प्र०	अवपत्	अवपताम्	अवपन्
वपसि	वपथः	वपथ	म०	अवपः	अवपतम्	अवपत
वपामि	वपावः	वपामः	उ०	अवपम्	अवपाव	अवपाम

सामान्यभविष्य-लृट्				आज्ञा-लोट्		
वप्स्यति	वप्स्यतः	वप्स्यन्ति	प्र०	वपतु	वपताम्	वपन्तु
वप्स्यसि	वप्स्यथः	वप्स्यथ	म०	वप	वपतम्	वपत
वप्स्यामि	वप्स्यावः	वप्स्यामः	उ०	वपानि	वपाव	वपाम

विधिलिङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
वपेत्	वपेताम्	वपेयुः	प्र०	वप्ता	वप्तारौ	वप्तारः
वपेः	वपेतम्	वपेत	म०	वप्तासि	वप्तास्थः	वप्तास्थ
वपेयम्	वपेव	वपेम	उ०	वप्तास्मि	वप्तास्वः	वप्तास्मः

आशीर्लिङ्				सामान्यभूत-लुङ्		
उप्यात्	उप्यास्ताम्	उप्यासुः	प्र०	अवाप्सीत्	अवाप्ताम्	अवाप्सुः
उप्याः	उप्यास्तम्	उप्यास्त	म०	अवाप्सीः	अवाप्तम्	अवाप्त
उप्यासम्	उप्यास्व	उप्यास्म	उ०	अवाप्सम्	अवाप्स्व	अवाप्स्म

परोक्षभूत-लिट्				क्रियातिपत्ति-लृङ्	
उवाप	ऊपतुः	ऊपुः	प्र० अवप्स्यत्	अवप्स्यताम्	अवप्स्यन्
उवपिथ, उवप्थ	ऊपथुः	ऊप	म० अवप्स्यः	अवप्स्यतम्	अवप्स्यत
उवाप, उवप	ऊपिव	ऊपिम	उ० अवप्स्यम्	अवप्स्याव	अवप्स्याम

वप् (बोना, कपड़ा बुनना) आत्मनेपद

वर्तमान-लट्				विधिलिङ्	
वपते	वपेते	वपन्ते	प्र० वपेत	वपेयाताम्	वपेरन्
वपसे	वपेथे	वपध्वे	म० वपेथाः	वपेयाथाम्	वपेध्वम्
वपे	वपावहे	वपामहे	उ० वपेय	वपेवहि	वपेमहि
सामान्यभविष्य-लृट्				आशीर्लिङ्	
वप्स्यते	वप्स्येते	वप्स्यन्ते	प्र० वप्सीष्ट	वप्सीयास्ताम्	वप्सीरन्
वप्स्यसे	वप्स्येथे	वप्स्यध्वे	म० वप्सीष्ठाः	वाप्सीयास्थाम्	वप्सीध्वम्
वप्स्ये	वप्स्यावहे	वप्स्यामहे	उ० वप्सीय	वप्सीवहि	वप्सीमहि
अनद्यतनभूत-लङ्				परोक्षभूत-लि	
अवपत	अवपेताम्	अवपन्त	प्र० ऊपे	ऊपाते	ऊपिरे
अवपथाः	अवपेथाम्	अवपध्वम्	म० ऊपिषे	ऊपाथे	ऊपिध्वे
अवपे	अवपावहि	अवपामहि	उ० ऊपे	ऊपिवहे	ऊपिमहे
आज्ञा-लोट्				अनद्यतनभविष्य-लुट्	
वपताम्	वपेताम्	वपन्ताम्	प्र० वप्ता	वप्तारौ	वप्तारः
वपस्व	वपेथाम्	वपध्वम्	म० वप्तासे	वप्तासाथे	वप्ताध्वे
वपै	वपावहै	वपामहै	उ० वप्ताहे	वप्तास्वहे	वप्तास्महे
अनद्यतनभूत-लुङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्	
अवप्त	अवप्साताम्	अवप्सत	प्र० अवप्स्यत	अवप्स्येताम्	अवप्स्यन्त
अवप्थाः	अवप्साथाम्	अवब्ध्वम्	म० अवप्स्यथाः	अवप्स्येथाम्	अवप्स्यध्वम्
अवप्सि	अवप्स्वहि	अवप्स्महि	उ० अवप्स्ये	अवप्स्यावहि	अवप्स्यामहि

(२६) वस् (रहना, समय बिताना, होना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्	
वसति	वसतः	वसन्ति	प्र० उष्यात्	उष्यास्ताम्	उष्यासुः
वससि	वसथः	वसथ	म० उष्याः	उष्यास्तम्	उष्यास्त
वसामि	वसावः	वसामः	उ० उष्यासम्	उष्यास्व	उष्यास्म
सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्	
वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्यन्ति	प्र० उवास	ऊषतुः	ऊषुः
वत्स्यसि	वत्स्यथः	वत्स्यथ	म० उवसिथ, उवस्थ	ऊषथुः	ऊष
वत्स्यामि	वत्स्यावः	वत्स्यामः	उ० उवास, उवस	ऊषिव	ऊषिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त	प्र०	वर्तिता	वर्तितारौ	वर्तितारः
अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्	म०	वर्तितासे	वर्तितासाथे	वर्तिताध्वे
अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि	उ०	वर्तिताहे	वर्तितास्वहे	वर्तितास्महे

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ् (आत्मने०)		
वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्	प्र०	अवर्तिष्ट	अवर्तिषाताम्	अवर्तिषत
वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्	म०	अवर्तिष्ठाः	अवर्तिषाथाम्	अवर्तिढ्वम्
वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै	उ०	अवर्तिषि	अवर्तिष्वहि	अवर्तिष्महि

लुङ् (परस्मैपद)				क्रियातिपत्ति-लृङ् (आत्मने०)		
अवृतत्	अवृतताम्	अवृतन्	प्र०	अवर्तिष्यत	अवर्तिष्येताम्	अवर्तिष्यन्त
अवृतः	अवृततम्	अवृतत	म०	अवर्तिष्यथाः	अवर्तिष्येथाम्	अवर्तिष्यध्वम्
अवृतम्	अवृताव	अवृताम	उ०	अवर्तिष्ये	अवर्तिष्यावहि	अवर्तिष्यामहि

	लृङ् (परस्मैपद)		
प्र०	अवर्त्स्यत्	अवर्त्स्यताम्	अवर्त्स्यन्
म०	अवर्त्स्यः	अवर्त्स्यतम्	अवर्त्स्यत
उ०	अवर्त्स्यम्	अवर्त्स्याव	अवर्त्स्याम

(८९) वृध् (बढ़ना) आत्मनेपदी

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
वर्धते	वर्धेते	वर्धन्ते	प्र०	वर्धिषीष्ट	वर्धिषीयास्ताम्	वर्धिषीरन्
वर्धसे	वर्धेथे	वर्धध्वे	म०	वर्धिषीष्ठाः	वर्धिषीयास्थाम्	वर्धिषीध्वम्
वर्धे	वर्धावहे	वर्धामहे	उ०	वर्धिषीय	वर्धिषीवहि	वर्धिषीमहि

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
वर्धिष्यते	वर्धिष्येते	वर्धिष्यन्ते	प्र०	ववृधे	ववृधाते	ववृधिरे
वर्धिष्यसे	वर्धिष्येथे	वर्धिष्यध्वे	म०	ववृधिषे	ववृधाथे	ववृधिध्वे
वर्धिष्ये	वर्धिष्यावहे	वर्धिष्यामहे	उ०	ववृधे	ववृधिवहे	ववृधिमहे

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अवर्धत	अवर्धेताम्	अवर्धन्त	प्र०	वर्धिता	वर्धितारौ	वर्धितारः
अवर्धथाः	अवर्धेथाम्	अवर्धध्वम्	म०	वर्धितासे	वर्धितासाथे	वर्धिताध्वे
अवर्धे	अवर्धावहि	अवर्धामहि	उ०	वर्धिताहे	वर्धितास्वहे	वर्धितास्महे

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
वर्धताम्	वर्धेताम्	वर्धन्ताम्	प्र०	अवर्धिष्ट	अवर्धिषाताम्	अवर्धिषत
वर्धस्व	वर्धेथाम्	वर्धध्वम्	म०	अवर्धिष्ठाः	अवर्धिषाथाम्	अवर्धिढ्वम्
वर्धै	वर्धावहै	वर्धामहै	उ०	अवर्धिषि	अवर्धिष्वहि	अवर्धिष्महि

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
वर्धेत	वर्धेयाताम्	वर्धेरन्	प्र०	अवर्धिष्यत	अवर्धिष्येताम्	अवर्धिष्यन्त
वर्धेथाः	वर्धेयाथाम्	वर्धेध्वम्	म०	अवर्धिष्यथाः	अवर्धिष्येथाम्	अवर्धिष्यध्वम्
वर्धेय	वर्धेवहि	वर्धेमहि	उ०	अवर्धिष्ये	अवर्धिष्यावहि	अवर्धिष्यामहि

उभयपदी

(३०) श्रि (सहारा लेना) परस्मैपद

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
श्रयति	श्रयतः	श्रयन्ति	प्र०	श्रीयात्	श्रीयास्ताम्	श्रीयासुः
श्रयसि	श्रयथः	श्रयथ	म०	श्रीयाः	श्रीयास्तम्	श्रीयास्त
श्रयामि	श्रयावः	श्रयामः	उ०	श्रीयासम्	श्रीयास्व	श्रीयास्म

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
श्रयिष्यति	श्रयिष्यतः	श्रयिष्यन्ति	प्र०	शिश्राय	शिश्रियतुः	शिश्रियुः
श्रयिष्यसि	श्रयिष्यथः	श्रयिष्यथ	म०	शिश्रयिथ	शिश्रियथुः	शिश्रिय
श्रयिष्यामि	श्रयिष्यावः	श्रयिष्यामः	उ०	शिश्राय, शिश्रय	शिश्रियिव	शिश्रियिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अश्रयत्	अश्रयताम्	अश्रयन्	प्र०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः
अश्रयः	अश्रयतम्	अश्रयत	म०	श्रयितासि	श्रयितास्थः	श्रयितास्थ
अश्रयम्	अश्रयाव	अश्रयाम	उ०	श्रयितास्मि	श्रयितास्वः	श्रयितास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
श्रयतु	श्रयताम्	श्रयन्तु	प्र०	अशिश्रियत्	अशिश्रियताम्	अशिश्रियन्
श्रय	श्रयतम्	श्रयत	म०	अशिश्रियः	अशिश्रियतम्	अशिश्रियत
श्रयाणि	श्रयाव	श्रयाम	उ०	अशिश्रियम्	अशिश्रियाव	अशिश्रियाम

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
श्रयेत्	श्रयेताम्	श्रयेयुः	प्र०	अश्रयिष्यत्	अश्रयिष्यताम्	अश्रयिष्यन्
श्रयेः	श्रयेतम्	श्रयेत	म०	अश्रयिष्यः	अश्रयिष्यतम्	अश्रयिष्यत
श्रयेयम्	श्रयेव	श्रयेम	उ०	अश्रयिष्यम्	अश्रयिष्याव	अश्रयिष्याम

श्रि (सहारा लेना) आत्मनेपद

श्रयते	श्रयेते	श्रयन्ते	प्र०	अश्रयत	अश्रयेताम्	अश्रयन्त
श्रयसे	श्रयेथे	श्रयध्वे	म०	अश्रयथाः	अश्रयेथाम्	अश्रयध्वम्
श्रये	श्रयावहे	श्रयामहे	उ०	अश्रये	अश्रयावहि	अश्रयामहि

सामान्यभविष्य-लृट्				आज्ञा-लोट्		
श्रयिष्यते	श्रयिष्येते	श्रयिष्यन्ते	प्र०	श्रयताम्	श्रयेताम्	श्रयन्ताम्
श्रयिष्यसे	श्रयिष्येथे	श्रयिष्यध्वे	म०	श्रयस्व	श्रयेथाम्	श्रयध्वम्
श्रयिष्ये	श्रयिष्यावहे	श्रयिष्यामहे	उ०	श्रये	श्रयावहै	श्रयामहै

विधिलिङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
श्रयेत	श्रयेयाताम्	श्रयेरन्	प्र०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः
श्रयेथाः	श्रयेयाथाम्	श्रयेध्वम्	म०	श्रयितासे	श्रयितासाथे	श्रयिताध्वे
श्रयेय	श्रयेवहि	श्रयेमहि	उ०	श्रयिताहे	श्रयितास्वहे	श्रयितास्महे
आशीर्लिङ्				**सामान्यभूत-लुङ्**		
श्रयिषीष्ट	श्रयिषीयास्ताम्	श्रयिषीरन्	प्र०	अशिश्रियत	अशिश्रियेताम्	अशिश्रियन्त
श्रयिषीष्ठाः	श्रयिषीयास्थाम्	श्रयिषीध्वम्	म०	अशिश्रियथाः	अशिश्रियेथाम्	अशिश्रियध्वम्
श्रयिषीय	श्रयिषीवहि	श्रयिषीमहि	उ०	अशिश्रिये	अशिश्रियावहि	अशिश्रियामहि
परोक्षभूत-लिट्				**क्रियातिपत्ति-लृङ्**		
शिश्रिये	शिश्रियाते	शिश्रियिरे	प्र०	अश्रयिष्यत	अश्रयिष्येताम्	अश्रयिष्यन्त
शिश्रियिषे	शिश्रियाथे	शिश्रियिध्वे-ढ्वे	म०	अश्रयिष्यथाः	अश्रयिष्येथाम्	अश्रयिष्यध्वम्
शिश्रिये	शिश्रियिवहे	शिश्रियिमहे	उ०	अश्रयिष्ये	अश्रयिष्यावहि	अश्रयिष्यामहि

(३१) श्रु (सुनना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				विधिलिङ्		
शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	प्र०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ	म०	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
शृणोमि	शृणुवः, शृण्वः	शृणुमः, शृण्मः	उ०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम
सामान्यभविष्य-लृट्				**आशीर्लिङ्**		
श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति	प्र०	श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः
श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ	म०	श्रूयाः	श्रूयास्तम्	श्रूयास्त
श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः	उ०	श्रूयासम्	श्रूयास्व	श्रूयास्म
अनद्यतनभूत-लङ्				**परोक्षभूत-लिट्**		
अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्	प्र०	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत	म०	शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव
अशृणवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम, अशृण्म	उ०	शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम
आज्ञा-लोट्				**अनद्यतनभविष्य-लुट्**		
शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु	प्र०	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः
शृणु	शृणुतम्	शृणुत	म०	श्रोतासि	श्रोतास्थः	श्रोतास्थ
शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम	उ०	श्रोतास्मि	श्रोतास्वः	श्रोतास्मः
सामान्यभूत लुङ्				**क्रियातिपत्ति लृङ्**		
अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः	प्र०	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्
अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट	म०	अश्रोष्यः	अश्रोष्यतम्	अश्रोष्यत
अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म	उ०	अश्रोष्यम्	अश्रोष्याव	अश्रोष्याम

(३२) सह् (सहन करना) आत्मनेपदी

	वर्तमान-लट्			आशीर्लिङ्	
सहते	सहेते	सहन्ते	प्र० सहिषीष्ट	सहिषीयास्ताम्	सहिषीरन्
सहसे	सहेथे	सहध्वे	म० सहिषीष्ठाः	सहिषीयास्थाम्	सहिषीध्वम्
सहे	सहावहे	सहामहे	उ० सहिषीय	सहिषीवहि	सहिषीमहि

	सामान्यभविष्य लृट्			परोक्षभूत-लिट्	
सहिष्यते	सहिष्येते	सहिष्यन्ते	प्र० सेहे	सेहाते	सेहिरे
सहिष्यसे	सहिष्येथे	सहिष्यध्वे	म० सेहिषे	सेहाथे	सेहिध्वे
सहिष्ये	सहिष्यावहे	सहिष्यामहे	उ० सेहे	सेहिवहे	सेहिमहे

	अनद्यतनभूत-लङ्			अनद्यतनभविष्य लुट्	
असहत	असहेताम्	असहन्त	प्र० सोढा	सोढारौ	सोढारः
असहथाः	असहेथाम्	असहध्वम्	म० सोढासे	सोढासाथे	सोढाध्वे
असहे	असहावहि	असहामहि	उ० सोढाहे	सोढास्वहे	सोढास्महे

	आज्ञा-लोट्			सामान्यभूत लुङ्	
सहताम्	सहेताम्	सहन्ताम्	प्र० असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषत
सहस्व	सहेथाम्	सहध्वम्	म० असहिष्ठाः	असहिषाथाम्	असहिढ्वम्
सहै	सहावहै	सहामहै	उ० असहिषि	असहिष्वहि	असहिष्महि

	विधिलिङ्			क्रियातिपत्ति-लृङ्	
सहेत	सहेयाताम्	सहेरन्	प्र० असहिष्यत	असहिष्येताम्	असहिष्यन्त
सहेथाः	सहेयाथाम्	सहेध्वम्	म० असहिष्यथाः	असहिष्येथाम्	असहिष्यध्वम्
सहेय	सहेवहि	सहेमहि	उ० असहिष्ये	असहिष्यावहि	असहिष्यामहि

(३३) सेव् (सेवा करना) आत्मनेपदी

	वर्तमान-लट्			सामान्यभविष्य-लृट्	
सेवते	सेवेते	सेवन्ते	प्र० सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे	म० सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
सेवे	सेवावहे	सेवामहे	उ० सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

	अनद्यतनभूत-लङ्			परोक्षभूत-लिट्	
असेवत	असेवेताम्	असेवन्त	प्र० सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे
असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्	म० सिषेविषे	सिषेवाथे	सिषेविध्वे
असेवे	असेवावहि	असेवामहि	उ० सिषेवे	सिषेविवहे	सिषेविमहे

	आज्ञा लोट्			अनद्यतनभविष्य-लुट्	
सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्	प्र० सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्	म० सेवितासे	सेवितासाथे	सेविताध्वे
सेवै	सेवावहै	सेवामहै	उ० सेविताहे	सेवितास्वहे	सेवितास्महे

विधिलिङ्				सामान्यभूत-लुङ्		
सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्	प्र०	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्	म०	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविढ्वम्
सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि	उ०	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि
आशीर्लिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्	प्र०	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीध्वम्	म०	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि	उ०	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

(३४) स्था-तिष्ठ (ठहरना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				आज्ञा-लोट्		
तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति	प्र०	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ	म०	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः	उ०	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम
सामान्य भविष्य-लृट्				विधिलिङ्		
स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति	प्र०	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ	म०	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः	उ०	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम
अनद्यतनभूत-लङ्				आशीर्लिङ्		
अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्	प्र०	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः
अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत	म०	स्थेयाः	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त
अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम	उ०	स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयास्म
परोक्षभूत-लिट्				सामान्यभूत लुङ्		
तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः	प्र०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
तस्थिथ,तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ	म०	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम	उ०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम
अनद्यतनभविष्य-लुट्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः	प्र०	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
स्थातासि	स्थातास्थः	स्थातास्थ	म०	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
स्थातास्मि	स्थातास्वः	स्थातास्मः	उ०	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

(३५) स्मृ (स्मरण करना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति	प्र०	स्मर्यात्	स्मर्यास्ताम्	स्मर्यासुः
स्मरसि	स्मरथः	स्मरथ	म०	स्मर्याः	स्मर्यास्तम्	स्मर्यास्त
स्मरामि	स्मरावः	स्मरामः	उ०	स्मर्यासम्	स्मर्यास्व	स्मर्यास्म

सामान्यभविष्य-लृट्				आशीर्लिङ्		
स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति	प्र०	सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः
स्मरिष्यसि	स्मरिष्यथः	स्मरिष्यथ	म०	सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर
स्मरिष्यामि	स्मरिष्यावः	स्मरिष्यामः	उ०	सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्	प्र०	स्मर्ता	स्मर्तारौ	स्मर्तारः
अस्मरः	अस्मरतम्	अस्मरत	म०	स्मर्तासि	स्मर्तास्थः	स्मर्तास्थ
अस्मरम्	अस्मराव	अस्मराम	उ०	स्मर्तास्मि	स्मर्तास्वः	स्मर्तास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
स्मरतु	स्मरताम्	स्मरन्तु	प्र०	अस्मार्षीत्	अस्मार्ष्टाम्	अस्मार्षुः
स्मर	स्मरतम्	स्मरत	म०	अस्मार्षीः	अस्मार्ष्टम्	अस्मार्ष्ट
स्मराणि	स्मराव	स्मराम	उ०	अस्मार्षम्	अस्मार्ष्व	अस्मार्ष्म

विधिलिङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्		
स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः	प्र०	अस्मरिष्यत्	अस्मरिष्यताम्	अस्मरिष्यन्
स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत	म०	अस्मरिष्यः	अस्मरिष्यतम्	अस्मरिष्यत
स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम	उ०	अस्मरिष्यम्	अस्मरिष्याव	अस्यरिष्याम

(३६) हस् (हँसना) परस्मैपदी

वर्तमान-लट्				आशीर्लिङ्		
हसति	हसतः	हसन्ति	प्र०	हस्यात्	हस्यास्ताम्	हस्यासुः
हससि	हसथः	हसथ	म०	हस्याः	हस्यास्तम्	हस्यास्त
हसामि	हसावः	हसामः	उ०	हस्यासम्	हस्यास्व	हस्यास्म

सामान्यभविष्य-लृट्				परोक्षभूत-लिट्		
हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति	प्र०	जहास	जहसतुः	जहसुः
हसिष्यसि	हसिष्यथः	हसिष्यथ	म०	जहसिथ	जहसथुः	जहस
हसिष्यामि	हसिष्यावः	हसिष्यामः	उ०	जहास, जहस	जहसिव	जहसिम

अनद्यतनभूत-लङ्				अनद्यतनभविष्य-लुट्		
अहसत्	अहसताम्	अहसन्	प्र०	हसिता	हसितारौ	हसितारः
अहसः	अहसतम्	अहसत	म०	हसितासि	हसितास्थः	हसितास्थ
अहसम्	अहसाव	अहसाम	उ०	हसितास्मि	हसितास्वः	हसितास्मः

आज्ञा-लोट्				सामान्यभूत-लुङ्		
हसतु	हसताम्	हसन्तु	प्र०	अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषुः
हस	हसतम्	हसत	म०	अहासीः	अहासिष्टम्	अहासिष्ट
हसानि	हसाव	हसाम	उ०	अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म

	विधिलिङ्			क्रियातिपत्ति-लृङ्		
हसेत्	हसेताम्	हसेयुः	प्र०	अहसिष्यत्	अहसिष्यताम्	अहसिष्यन्
हसेः	हसेतम्	हसेत	म०	अहसिष्यः	अहसिष्यतम्	अहसिष्यत
हसेयम्	हसेव	हसेम	उ०	अहसिष्यम्	अहसिष्याव	अहसिष्याम

उभयपदी

(३७) हृ (ले जाना, चुराना) परस्मैपद

	वर्तमान-लट्			अनद्यतनभूत-लङ्		
हरति	हरतः	हरन्ति	प्र०	अहरत्	अहरताम्	अहरन्
हरसि	हरथः	हरथ	म०	अहरः	अहरतम्	अहरत
हरामि	हरावः	हरामः	उ०	अहरम्	अहराव	अहराम

	सामान्यभविष्य-लृट्			आज्ञा-लोट्		
हरिष्यति	हरिष्यतः	हरिष्यन्ति	प्र०	हरतु	हरताम्	हरन्तु
हरिष्यसि	हरिष्यथः	हरिष्यथ	म०	हर	हरतम्	हरत
हरिष्यामि	हरिष्यावः	हरिष्यामः	उ०	हराणि	हराव	हराम

	विधिलिङ्			अनद्यतनभविष्य-लुट्		
हरेत्	हरेताम्	हरेयुः	प्र०	हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः
हरेः	हरेतम्	हरेत	म०	हर्तासि	हर्तास्थः	हर्तास्थ
हरेयम्	हरेव	हरेम	उ०	हर्तास्मि	हर्तास्वः	हर्तास्मः

	आशीर्लिङ्			सामान्यभूत-लुङ्		
ह्रियात्	ह्रियास्ताम्	ह्रियासुः	प्र०	अहार्षीत्	अहार्ष्टाम्	अहार्षुः
ह्रियाः	ह्रियास्तम्	ह्रियास्त	म०	अहार्षीः	अहार्ष्टम्	अहार्ष्ट
ह्रियासम्	ह्रियास्व	ह्रियास्म	उ०	अहार्षम्	अहार्ष्व	अहार्ष्म

	परोक्षभूत लिट्			क्रियातिपत्ति-लृङ्		
जहार	जह्रतुः	जह्रुः	प्र०	अहरिष्यत्	अहरिष्यताम्	अहरिष्यन्
जहर्थ	जह्रथुः	जह्र	म०	अहरिष्यः	अहरिष्यतम्	अहरिष्यत
जहार, जहर	जह्रिव	जह्रिम	उ०	अहरिष्यम्	अहरिष्याव	अहरिष्याम

हृ (ले जाना, चुराना) आत्मनेपद

	वर्तमान-लट्			विधिलिङ्		
हरते	हरेते	हरन्ते	प्र०	हरेत	हरेयाताम्	हरेरन्
हरसे	हरेथे	हरध्वे	म०	हरेथाः	हरेयाथाम्	हरेध्वम्
हरे	हरावहे	हरामहे	उ०	हरेय	हरेवहि	हरेमहि

	सामान्यभविष्य-लृट्			आशीर्लिङ्		
हरिष्यते	हरिष्येते	हरिष्यन्ते	प्र०	हृषीष्ट	हृषीयास्ताम्	हृषीरन्
हरिष्यसे	हरिष्येथे	हरिष्यध्वे	म०	हृषीष्ठाः	हृषीयास्थाम्	हृषीढ्वम्
हरिष्ये	हरिष्यावहे	हरिष्यामहे	उ०	हृषीय	हृषीवहि	हृषीमहि

अनद्यतनभूत-लङ्				परोक्षभूत-लिट्	
अहरत	अहरेताम्	अहरन्त	प्र० जह्रे	जह्राते	जह्रिरे
अहरथाः	अहरेथाम्	अहरध्वम्	म० जहृषे	जह्राथे	जहृध्वे
अहरे	अहरावहि	अहरामहि	उ० जह्रे	जह्रिवहे	जह्रिमहे

आज्ञा-लोट्				अनद्यतनभविष्य-लुट्	
हरताम्	हरेताम्	हरन्ताम्	प्र० हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः
हरस्व	हरेथाम्	हरध्वम्	म० हर्तासे	हर्तासाथे	हर्ताध्वे
हरै	हरावहै	हरामहै	उ० हर्ताहे	हर्तास्वहे	हर्तास्महे

सामान्यभूत-लुङ्				क्रियातिपत्ति-लृङ्	
अहृत	अहृषाताम्	अहृषत	प्र० अहरिष्यत	अहरिष्येताम्	अहरिष्यन्त
अहृथाः	अहृषाथाम्	अहृढ्वम्	म० अहरिष्यथाः	अहरिष्येथाम्	अहरिष्यध्वम्
अहृषि	अहृष्वहि	अहृष्महि	उ० अहरिष्ये	अहरिष्यावहि	अहरिष्यामहि

भ्वादिगणीय मुख्य धातुओं की सूची और रूपों का दिग्दर्शन—

(२८) क्रन्द् (रोना) परस्मैपदी

लट्	क्रन्दति	क्रन्दतः	क्रन्दन्ति
लृट्	क्रन्दिष्यति	क्रन्दिष्यतः	क्रन्दिष्यन्ति
आ० लिङ्	क्रन्द्यात्	क्रन्द्यास्ताम्	क्रन्द्यासुः
लिट्	चक्रन्द	चक्रन्दतुः	चक्रन्दुः
लुट्	क्रन्दिता	क्रन्दितारौ	क्रन्दितारः
लुङ्	अक्रन्दीत्	अक्रन्दिष्टाम्	अक्रन्दिषुः
	अक्रन्दीः	अक्रन्दिष्टम्	अक्रन्दिष्ट
	अक्रन्दिषम्	अक्रन्दिष्व	अक्रन्दिष्म
लृङ्	अक्रन्दिष्यत्	अक्रन्दिष्यताम्	अक्रन्दिष्यन्

(२९) क्रुश् (चिल्लाना, रोना) परस्मैपदी

लट्	क्रोशति	क्रोशतः	क्रोशन्ति
लृट्	क्रोक्ष्यति	क्रोक्ष्यतः	क्रोक्ष्यन्ति
लङ्	अक्रोशत्	अक्रोशताम्	अक्रोशन्
लोट्	क्रोशतु	क्रोशताम्	क्रोशन्तु
वि० लिङ्	क्रोशेत्	क्रोशेताम्	क्रोशेयुः
आ० लिङ्	क्रुश्यात्	क्रुश्यास्ताम्	क्रुश्यासुः
लिट्	चुक्रोश	चुक्रुशतुः	चुक्रुशुः
	चुक्रोशिथ	चुक्रुशथुः	चुक्रुश
	चुक्रोश	चुक्रुशिव	चुक्रुशिम
लुट्	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः

लुङ्	अकुशत्	अकुशताम्	अकुशन्
	अकुशः	अकुशतम्	अकुशत
	अकुशम्	अकुशाव	अकुशाम
लृङ्	अकोद्यत्	अकोद्यताम्	अकोद्यन्

(५०) क्लम्[1] (थकना) परस्मैपदी

लट्	क्लामति	क्लामतः	क्लामन्ति
लृट्	क्लमिष्यति	क्लमिष्यतः	क्लमिष्यन्ति
आ० लिङ्	क्लम्यात्	क्लम्यास्ताम्	क्लम्यासुः
लिट्	चक्लाम	चक्लमतुः	चक्लमुः
	चक्लमिथ	चक्लमथुः	चक्लम
	चक्लाम, चक्लम	चक्लमिव	चक्लमिम
लुङ्	अक्लमत्	अक्लमताम्	अक्लमन्

(५१) क्षम्[2] (क्षमा करना) आत्मनेपदी

लट्	क्षमते	क्षमेते	क्षमन्ते
लिट्	चक्षमे	चक्षमाते	चक्षमिरे
	चक्षमिष, चक्षंसे	चक्षमाथे	चक्षमिध्वे, चक्षन्ध्वे
	चक्षमे	चक्षमिवहे, चक्षण्वहे	चक्षमिमहे, चक्षण्महे

(५२) काश् (चमकना) आत्मनेपदी

लट्	काशते	काशेते	काशन्ते
लृट्	काशिष्यते	काशिष्येते	काशिष्यन्ते
आ० लिङ्	काशिषीष्ट	काशिषीयास्ताम्	काशिषीरन्
लिट्	चकाशे	चकाशाते	चकाशिरे
	चकाशिषे	चकाशाथे	चकाशिध्वे
	चकाशे	चकाशिवहे	चकाशिमहे
लुट्	काशिता	काशितारौ	काशितारः
लुङ्	अकाशिष्ट	अकाशिषाताम्	अकाशिषत
	अकाशिष्ठाः	अकाशिषायाम्	अकाशिध्वम्
	अकाशिषि	अकाशिष्वहि	अकाशिष्महि
लृङ्	अकाशिष्यत	अकाशिष्येताम्	अकाशिष्यन्त

उभयपदी

(५३) खन् (खोदना) परस्मैपद

लट्	खनति	खनतः	खनन्ति
लृट्	खनिष्यति	खनिष्यतः	खनिष्यन्ति
आ० लिङ्	खायात्	खायास्ताम्	खायासुः

---

१. यह दिवादिगणीय भी है। वहाँ इसका रूप 'क्लाम्यति' इत्यादि होता है।

२. यह भी दिवादिगणीय भी है और इसका रूप 'क्षाम्यति' इत्यादि होता है।

लिट्	चखान	चख्नतुः	चख्नुः
	चखनिथ	चख्नथुः	चख्न
	चखान, चखन	चख्निव	चख्निम
लुट्	खनिता	खनितारौ	खनितारः
लुङ्	अखनीत्,	अखनिष्टाम्	अखनिषुः
	अखानीत्	अखानिष्टाम्	अखानिषुः

(४४) खन् आत्मनेपद

लट्	खनते	खनेते	खनन्ते
लृट्	खनिष्यते	खनिष्येते	खनिष्यन्ते
आ० लिङ्	खनिषीष्ट	खनिषीयास्ताम्	खनिषीरन्
लिट्	चख्ने	चख्नाते	चख्निरे
	चख्निषे	चख्नाथे	चख्निध्वे
	चख्ने	चख्निवहे	चख्निमहे
लुङ्	अखनिष्ट	अखनिषाताम्	अखनिषत

(४५) ग्लै (क्षीण होना) परस्मैपदी

लट्	ग्लायति	ग्लायतः	ग्लायन्ति
लृट्	ग्लास्यति	ग्लास्यतः	ग्लास्यन्ति
आ० लिङ्	ग्लायात्	ग्लायास्ताम्	ग्लायासुः
	ग्लेयात्	ग्लेयास्ताम्	ग्लेयासुः
लिट्	जग्लौ	जग्लतुः	जग्लुः
	जग्लिथ, जग्लाथ	जग्लथुः	जग्ल
	जग्लौ	जग्लिव	जग्लिम
लुङ्	अग्लासीत्	अग्लास्ताम्	अग्लासुः

(४६) चल् (चलना) परस्मैपदी

लट्	चलति	चलतः	चलन्ति
लृट्	चलिष्यति	चलिष्यतः	चलिष्यन्ति
आ० लिङ्	चल्यात्	चल्यास्ताम्	चल्यासुः
लिट्	चचाल	चेलतुः	चेलुः
	चेलिथ	चेलथुः	चेल
	चचाल, चचल	चेलिव	चेलिम
लुट्	चलिता	चलितारौ	चलितारः
लुङ्	अचालीत्	अचालिष्टाम्	अचालिषुः
लृङ्	अचलिष्यत्	अचलिष्यताम्	अचलिष्यन्

(४७) ज्वल् (चलना) परस्मैपदी

लट्	ज्वलति	ज्वलतः	ज्वलन्ति
लृट्	ज्वलिष्यति	ज्वलिष्यतः	ज्वलिष्यन्ति
आ० लिङ्	ज्वल्यात्	ज्वल्यास्ताम्	ज्वल्यासुः
लिट्	जज्वाल	जज्वलतुः	जज्वलुः
	जज्वलिथ	जज्वलथुः	जज्वल
	जज्वाल, जज्वल	जज्वलिव	जज्वलिम
लुट्	ज्वलिता	ज्वलितारौ	ज्वलितारः
लुङ्	अज्वालीत्	अज्वालिष्टाम्	अज्वालिषुः

(४८) डी[1] (उड़ना) आत्मनेपदी

लट्	डयते	डयेते	डयन्ते
लृट्	डयिष्यते	डयिष्येते	डयिष्यन्ते
आ० लिङ्	डयिषीष्ट	डयिषीयास्ताम्	डयिषीरन्
लिट्	डिड्ये	डिड्याते	डिड्यिरे
लुट्	डयिता	डयितारौ	डयितारः
लुङ्	अडयिष्ट	अडयिषाताम्	अडयिषत

(४९) दह् (जलाना) परस्मैपदी

लट्	दहति	दहतः	दहन्ति
लृट्	धक्ष्यति	धक्ष्यतः	धक्ष्यन्ति
आशी० लिङ्	दह्यात्	दह्यास्ताम्	दह्यासुः
लिट्	ददाह	देहतुः	देहुः
	देहिथ, ददग्ध	देहथुः	देह
	ददाह, ददह	देहिव	देहिम
लुट्	दग्धा	दग्धारौ	दग्धारः
लुङ्	अधाक्षीत्	अदाग्धाम्	अधाक्षुः
	अधाक्षीः	अदाग्धम्	अदाग्ध
	अधाक्षम्	अधाक्ष्व	अधाक्ष्म

(५०) ध्यै (ध्यान करना) परस्मैपदी

लट्	ध्यायति	ध्यायतः	ध्यायन्ति
लृट्	ध्यास्यति	ध्यास्यतः	ध्यास्यन्ति
लिट्	दध्यौ	दध्यतुः	दध्युः
	दध्यिथ, दध्याथ	दध्यथुः	दध्य

---

1. यह दिवादिगणीय भी है। वहाँ पर इसके रूप डीयते, डीयन्ते चलते हैं।

	दध्यौ	दध्यिव	दध्यिम
लुट्	ध्याता	ध्यातारौ	ध्यातारः
लुङ्	अध्यासीत्	अध्यासिष्टाम्	अध्यासिषुः

(५१) पत् (गिरना) परस्मैपदी

लट्	पतति	पततः	पतन्ति
लृट्	पतिष्यति	पतिष्यतः	पतिष्यन्ति
लुट्	पतिता	पतितारौ	पतितारः
लुङ्	अपप्तत्	अपप्तताम्	अपप्तन्
	अपप्तः	अपप्ततम्	अपप्तत
	अपप्तम्	अपप्ताव	अपप्ताम
लिट्	पपात	पेततुः	पेतुः

(५२) फल् (फलना) परस्मैपदी

लट्	फलति	फलतः	फलन्ति
लृट्	फलिष्यति	फलिष्यतः	फलिष्यन्ति
लिट्	पफाल	फेलतुः	फेलुः
लुट्	फलिता	फलितारौ	फलितारः
लुङ्	अफालीत्	अफालिष्टाम्	अफालिषुः

(५३) फुल्ल् (फूलना) परस्मैपदी

लट्	फुल्लति	फुल्लतः	फुल्लन्ति
लृट्	फुल्लिष्यति	फुल्लिष्यतः	फुल्लिष्यन्ति
लिट्	पुफुल्ल	पुफुल्लतुः	पुफुल्लुः
लुट्	फुल्लिता	फुल्लितारौ	फुल्लितारः
लुङ्	अफुल्लीत्	अफुल्लिष्टाम्	अफुल्लिषुः

(५४) बाध् (पीड़ा देना) आत्मनेपदी

लट्	बाधते	बाधेते	बाधन्ते
लृट्	बाधिष्यते	बाधिष्येते	बाधिष्यन्ते
लिट्	बबाधे	बबाधाते	बबाधिरे
लुट्	बाधिता	बाधितारौ	बाधितारः
लुङ्	अबाधिष्ट	अबाधिषाताम्	अबाधिषत

उभयपदी

(५५) बुध्[1] (जानना) परस्मैपद

लट्	बोधति	बोधतः	बोधन्ति
लृट्	बोधिष्यति	बोधिष्यतः	बोधिष्यन्ति

१. यह दिवादिगणीय भी है। वहाँ बुध्यते इत्यादि रूप चलता है।

आ० लिङ्	बुध्यात्	बुध्यास्ताम्	बुध्यासुः
लिट्	बुबोध	बुबुधतुः	बुबुधुः
लुङ्	अबुधत्	अबुधताम्	अबुधन्
	अबोधीत्	अबोधिष्टाम्	अबोधिषुः

बुध् (जानना) आत्मनेपद

लट्	बोधते	बोधेते	बोधन्ते
लृट्	बोधिष्यते	बोधिष्येते	बोधिष्यन्ते
आ० लिङ्	बोधिषीष्ट	बोधिषीयास्ताम्	बोधिषीरन्
लिट्	बुबुधे	बुबुधाते	बुबुधिरे
लुङ्	अबोधिष्ट	अबोधिषाताम्	अबोधिषत
लुट्	बोधिता	बोधितारौ	बोधितारः

(५६) भिक्ष् (भीख मांगना) आत्मनेपदी

लट्	भिक्षते	भिक्षेते	भिक्षन्ते
लृट्	भिक्षिष्यते	भिक्षिष्येते	भिक्षिष्यन्ते
आ० लिङ्	भिक्षिषीष्ट	भिक्षिषीयास्ताम्	भिक्षिषीरन्
लिट्	बिभिक्षे	बिभिक्षाते	बिभिक्षिरे
	बिभिक्षिषे	बिभिक्षाथे	बिभिक्षिध्वे
	बिभिक्षे	बिभिक्षिवहे	बिभिक्षिमहे
लुट्	भिक्षिता	भिक्षितारौ	भिक्षितारः
लुङ्	अभिक्षिष्ट	अभिक्षिषाताम्	अभिक्षिषत

(५७) भूष्[1] (सजाना) परस्मैपदी

लट्	भूषति	भूषतः	भूषन्ति
लृट्	भूषिष्यति	भूषिष्यतः	भूषिष्यन्ति
आ० लिङ्	भूष्यात्	भूष्यास्ताम्	भूष्यासुः
लिट्	बुभूष	बुभूषतुः	बुभूषुः
लुट्	भूषिता	भूषितारौ	भूषितारः
लुङ्	अभूषीत्	अभूषिष्टाम्	अभूषिषुः
लृङ्	अभूषिष्यत्	अभूषिष्यताम्	अभूषिष्यन्

(५८) भ्रंश्[2] (गिरना) आत्मनेपदी

लट्	भ्रंशते	भ्रंशेते	भ्रंशन्ते
लृट्	भ्रंशिष्यते	भ्रंशिष्येते	भ्रंशिष्यन्ते

१. यह धातु चुरादिगणीय भी है। वहाँ यह उभयपदी है और भूषयति भूषयते इत्यादि रूप होते हैं।

२. यह धातु दिवादिगणीय भी है; वहाँ इसके भ्रंश्यते इत्यादि रूप होते हैं।

आ० लिङ्	भ्रंशिषीष्ट	भ्रंशिषीयास्ताम्	भ्रंशिषीरन्
लिट्	बभ्रंशे	बभ्रंशाते	बभ्रंशिरे
लुट्	भ्रंशिता	भ्रंशितारौ	भ्रंशितारः
लुङ्	अभ्रंशत	अभ्रंशताम्	अभ्रंशन्
		तथा	
	अभ्रंशिष्ट	अभ्रंशिषाताम्	अभ्रंशिषत

(५९) मथ् (मथना) परस्मैपदी

लट्	मन्थति	मन्थतः	मन्थन्ति
लृट्	मन्थिष्यति	मन्थिष्यतः	मन्थिष्यन्ति
आ० लिङ्०	मथ्यात्	मथ्यास्ताम्	मथ्यासुः
लिट्	ममन्थ	ममन्थतुः	ममन्थुः
लुट्	मन्थिता	मन्थितारौ	मन्थितारः
लुङ्	अमन्थीत्	अमन्थिष्टाम्	अमन्थिषुः

(६०) यत् (प्रयत्न करना) आत्मनेपदी

लट्	यतते	यतेते	यतन्ते
लृट्	यतिष्यते	यतिष्येते	यतिष्यन्ते
आ० लिङ्	यतिषीष्ट	यतिषीयास्ताम्	यतिषीरन्
लिट्	येते	येताते	येतिरे
	येतिषे	येताथे	येतिध्वे
	येते	येतिवहे	येतिमहे
लुङ्	अयतिष्ट	अयतिषाताम्	अयतिषत
	अयतिष्ठाः	अयतिषाथाम्	अयतिध्वम्
	अयतिषि	अयतिष्वहि	अयतिष्महि

(६१) रभ् (शुरू करना, आलिङ्गन करना, अभिलाषा करना, जल्दबाजी में काम करना) आत्मनेपदी

लट्	रभते	रभेते	रभन्ते
लृट्	रप्स्यते	रप्स्येते	रप्स्यन्ते
आ० लिङ्	रप्सीष्ट	रप्सीयास्ताम्	रप्सीरन्
लिट्	रेभे	रेभाते	रेभिरे
	रेभिषे	रेभाथे	रेभिध्वे
	रेभे	रेभिवहे	रेभिमहे
लुट्	रब्धा	रब्धारौ	रब्धारः
	अरब्ध	अलुङ् रप्साताम्	अरप्सत

	अरब्धाः	अरप्साथाम्	अरब्ध्वम्
	अरप्सि	अरप्स्वहि	अरप्स्महि

(६२) रम् (खेलना, हर्षित होना)

लट्	रमते	रमेते	रमन्ते
लृट्	रंस्यते	रंस्येते	रंस्यन्ते
लिट्	रेमे	रेमाते	रेमिरे
लुट्	रन्ता	रन्तारौ	रन्तारः
लुङ्	अरंस्त	अरंसाताम्	अरंसत
	अरंस्थाः	अरंसाथाम्	अरंध्वम्
	अरंसि	अरंस्वहि	अरंस्महि

(६३) रुह् (उठना, उगना, बढ़ना) परस्मैपदी

लट्	रोहति	रोहतः	रोहन्ति
लृट्	रोक्ष्यति	रोक्ष्यतः	रोक्ष्यन्ति
लिट्	रुरोह	रुरुहतुः	रुरुहुः
	रुरोहिथ	रुरुहथुः	रुरुह
	रुरोह	रुरुहिव	रुरुहिम
लुट्	रोढा	रोढारौ	रोढारः
लुङ्	अरुक्षत	अरुक्षताम्	अरुक्षन्
	अरुक्षः	अरुक्षतम्	अरुक्षत
	अरुक्षम्	अरुक्षाव	अरुक्षाम

(६४) वन्द् (नमस्कार करना या स्तुति करना) आत्मनेपदी

लट्	वन्दते	वन्देते	वन्दन्ते
लृट्	वन्दिष्यते	वन्दिष्येते	वन्दिष्यन्ते
आ० लिङ्	वन्दिषीष्ट	वन्दिषीयास्ताम्	वन्दिषीरन्
लिट्	ववन्दे	ववन्दाते	ववन्दिरे
लुट्	वन्दिता	वन्दितारौ	वन्दितारः
लुङ्	अवन्दिष्ट	अवन्दिषाताम्	अवन्दिषत

(६५) वृष् (बरसना) परस्मैपदी

लट्	वर्षति	वर्षतः	वर्षन्ति
लृट्	वर्षिष्यति	वर्षिष्यतः	वर्षिष्यन्ति
आ० लिङ्	वृष्यात्	वृष्यास्ताम्	वृष्यासुः
लिट्	ववर्ष	ववर्षतुः	ववर्षुः
लुट्	वर्षिता	वर्षितारौ	वर्षितारः
लुङ्	अवर्षीत्	अवर्षिष्टाम्	अवर्षिषुः

(६६) व्रज् (चलना) परस्मैपदी

लट्	व्रजति	व्रजतः	व्रजन्ति
लृट्	व्रजिष्यति	व्रजिष्यतः	व्रजिष्यन्ति
आ० लिङ्	व्रज्यात्	व्रज्यास्ताम्	व्रज्यासुः
लिट्	वव्राज	वव्रजतुः	वव्रजुः
लुट्	व्रजिता	व्रजितारौ	व्रजितारः
लुङ्	अव्राजीत्	अव्राजिष्टाम्	अव्राजिषुः

(६७) शंस् (स्तुति करना, चोट पहुँचाना) परस्मैपदी

लट्	शंसति	शंसतः	शंसन्ति
लृट्	शंसिष्यति	शंसिष्यतः	शंसिष्यन्ति
आ० लिङ्	शस्यात्	शस्यास्ताम्	शस्यासुः
लिट्	शशंस	शशंसतुः	शशंसुः
लुट्	शंसिता	शंसितारौ	शंसितारः
लुङ्	अशंसीत्	अशंसिष्टाम्	अशंसिषुः

(६८) शङ्क् (शङ्का करना) आत्मनेपदी

लट्	शङ्कते	शङ्केते	शङ्कन्ते
लृट्	शङ्किष्यते	शङ्किष्येते	शङ्किष्यन्ते
आ० लिङ्	शङ्किषीष्ट	शङ्किषीयाताम्	शङ्किषीरन्
लिट्	शशङ्के	शशङ्काते	शशङ्किरे
लुट्	शङ्किता	शङ्कितारौ	शङ्कितारः
लुङ्	अशङ्किष्ट	अशङ्किषाताम्	अशङ्किषत

(६९) शिक्ष् (सीखना) आत्मनेपदी

लट्	शिक्षते	शिक्षेते	शिक्षन्ते
लृट्	शिक्षिष्यते	शिक्षिष्येते	शिक्षिष्यन्ते
आ० लिङ्	शिक्षिषीष्ट	शिक्षिषीयास्ताम्	शिक्षिषीरन्
लिट्	शिशिक्षे	शिशिक्षाते	शिशिक्षिरे।
लुट्	शिक्षिता	शिक्षितारौ	शिक्षितारः
लुङ्	अशिक्षिष्ट	अशिक्षिषाताम्	अशिक्षिषत

(७०) शुच् (शोक करना, पछताना) परस्मैपदी

लट्	शोचति	शोचतः	शोचन्ति
लृट्	शोचिष्यति	शोचिष्यतः	शोचिष्यन्ति
आ० लिङ्	शुच्यात्	शुच्यास्ताम्	शुच्यासुः
लिट्	शुशोच	शुशुचतुः	शुशुचुः
	शुशोचिथ	शुशुचथुः	शुशुच
	शुशोच	शुशुचिव	शुशुचिम

लुट्	शोचिता	शोचितारौ	शोचितारः
लुङ्	अशोचीत्	अशोचिष्टाम्	अशोचिषुः

(७१) शुभ् (शोभित होना, प्रसन्न होना) आत्मनेपदी

लट्	शोभते	शोभेते	शोभन्ते
लृट्	शोभिष्यते	शोभिष्येते	शोभिष्यन्ते
आ० लिङ्	शोभिषीष्ट	शोभिषीयास्ताम्	शोभिषीरन्
लिट्	शुशुभे	शुशुभाते	शुशुभिरे
लुट्	शोभिता	शोभितारौ	शोभितारः
लुङ्	अशोभिष्ट	अशोभिषाताम्	अशोभिषत

(७२) स्वद् (स्वाद लेना, अच्छा लगना)

लट्	स्वदते	स्वदेते	स्वदन्ते
लृट्	स्वदिष्यते	स्वदिष्येते	स्वदिष्यन्ते
आ० लिङ्	स्वदिषीष्ट	स्वदिषीयास्ताम्	स्वदिषीरन्
लिट्	सस्वदे	सस्वदाते	सस्वदिरे
	सस्वदिषे	सस्वदाथे	सस्वदिध्वे
	सस्वदे	सस्वदिवहे	सस्वदिमहे
लुट्	स्वदिता	स्वदितारौ	स्वदितारः
लुङ्	अस्वदिष्ट	अस्वदिषाताम्	अस्वदिषत
	अस्वदिष्ठाः	अस्वदिषाथाम्	अस्वदिध्वम्
	अस्वदिषि	अस्वदिष्वहि	अस्वदिष्महि

(७३) स्वाद् (स्वाद लेना, अच्छा लगना) आत्मनेपदी

लट्	स्वादते	स्वादेते	स्वादन्ते
लृट्	स्वादिष्यते	स्वादिष्येते	स्वादिष्यन्ते
आ० लिङ्	स्वादिषीष्ट	स्वादिषीयास्ताम्	स्वादिषीरन्
लिट्	सस्वादे	सस्वादाते	सस्वादिरे
	सस्वादिषे	सस्वादाथे	सस्वादिध्वे
	सस्वादे	सस्वादिवहे	सस्वादिमहे
लुट्	स्वादिता	स्वादितारौ	स्वादितारः
लुङ्	अस्वादिष्ट	अस्वादिषाताम्	अस्वादिषत

२—अदादिगण

इस गण की प्रथम धातु अद् है, इसलिए इसका नाम अदादि है। धातु पाठ में इस गण की ७२ धातुएँ पठित हैं। इस गण की धातुओं के उपरान्त ही प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं। यथा अद् + मि = अद्मि, अद् + ति = अत्ति, स्ना + ति = स्नाति।

परस्मैपदी अकारान्त धातुओं के अनन्तर अनद्यतनभूत के प्रथम पुरुष बहुवचन के 'अन्' प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से 'उस्' आता है। उदाहरणार्थ आदन् अथवा आदुः।

परस्मैपद

लट्				लोट्	
ति	तः	अन्ति	प्र० तु	ताम्	अन्तु
सि	थः	थ	म० हि	तम्	त
मि	वः	मः	उ० आनि	आव	आम
लृट्				विधिलिङ्	
स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र० यात्	याताम्	युः
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म० याः	यातम्	यात
स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ० याम्	याव	याम
लङ्				आशीर्लिङ्	
त्	ताम्	अन्	प्र० यात्	यास्ताम्	यासुः
तः	तम्	त	म० याः	यास्तम्	यास्त
अम्	व	म	उ० यासम्	यास्व	यास्म

आत्मनेपद

लट्				लोट्	
ते	आते	अते	प्र० ताम्	आताम्	अताम्
से	आथे	ध्वे	म० स्व	आथाम्	ध्वम्
ए	वहे	महे	उ० ऐ	आवहै	आमहै
लृट्				विधिलिङ्	
स्यते	स्येते	स्यन्ते	प्र० ईत	ईयाताम्	ईरन्
स्यसे	स्येथे	स्यध्वे	म० ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
स्ये	स्यावहे	स्यामहे	उ० ईय	ईवहि	ईमहि
लङ्				आशीर्लिङ्	
त	आताम्	अत	प्र० इषीष्ट	इषीयास्ताम्	इषीरन्
थाः	आथाम्	ध्वम्	म० इषीष्ठाः	इषीयास्थाम्	इषीध्वम्
इ	वहि	महि	उ० इषीय	इषीवहि	इषीमहि

(१) अद् (खाना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्	
अत्ति	अत्तः	अदन्ति	प्र० अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासुः
अत्सि	अत्थः	अत्थ	म० अद्याः	अद्यास्तम्	अद्यास्त
अद्मि	अद्वः	अद्मः	उ० अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म
लृट्				लिट्	
अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति	प्र० आद	आदतुः	आदुः
अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ	म० आदिथ	आदथुः	आद
अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः	उ० आद	आदिव	आदिम

लङ्				अथवा		
आदत्	आत्ताम्	आदन्, आदुः	प्र०	जघास	जक्षतुः	जक्षुः
आदः	आत्तम्	आत्त	म०	जघसिथ	जक्षथुः	जक्ष
आदम्	आद्व	आद्म	उ०	जघास, जघस	जघसिव	जघसिम

लोट्				लुट्		
अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु	प्र०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
अद्धि	अत्तम्	अत्त	म०	अत्तासि	अत्तास्थः	अत्तास्थ
अदानि	अदाव	अदाम्	उ०	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः

विधिलिङ्				लुङ्		
अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः	प्र०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्
अद्याः	अद्यातम्	अद्यात	म०	अघसः	अघसतम्	अघसत
अद्याम्	अद्याव	अद्याम्	उ०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

	लृङ्		
प्र०	आत्स्यद्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
म०	आत्स्यः	आत्स्यतम्	आत्स्यत
उ०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

(२) अस् (होना) परस्मैपदी

लुट्				लोट्		
अस्ति	स्तः	सन्ति	प्र०	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
असि	स्थः	स्थ	म०	एधि	स्तम्	स्त
अस्मि	स्वः	स्मः	उ०	असानि	असाव	असाम

लट्				लिट्		
भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति	प्र०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ	म०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः	उ०	बभूव	बभूविव	बभूविम

लङ्				लट्		
आसीत्	आस्ताम्	आसन्	प्र०	भविता	भवितारौ	भवितारः
आसीः	आस्तम्	आस्त	म०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
आसम्	आस्व	आस्म	उ०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

विधिलिङ्				लङ्		
स्यात्	स्याताम्	स्युः	प्र०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
स्याः	स्यातम्	स्यात	म०	अभूः	अभूतम्	अभूत
स्याम्	स्याव	स्याम्	उ०	अभूवम्	अभूव	अभूम

आशीर्लिङ्				लृङ्		
भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः	प्र०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त	म०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म	उ०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

(३) आस् (बैठना) आत्मनेपदी

लट्				लोट्		
आस्ते	आसाते	आसते	प्र०	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
आस्से	आसाथे	आध्वे	म०	आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्
आसे	आस्वहे	आस्महे	उ०	आसै	आसावहै	आसामहै

लृट्				विधिलिङ्		
आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते	प्र०	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
आसिष्यसे	आसिष्येथे	आसिष्यध्वे	म०	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
आसिष्ये	आसिष्यावहे	आसिष्यामहे	उ०	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

लङ्				आशीर्लिङ्		
आस्त	आसाताम्	आसत	प्र०	आसिषीष्ट	आसिषीयास्ताम्	आसिषीरन्
आस्थाः	आसाथाम्	आध्वम्	म०	आसिषीष्ठाः	आसिषीयास्थाम्	आसिषीध्वम्
आसि	आस्वहि	आस्महि	उ०	आसिषीय	आसिषीवहि	असिषीमहि

लिट्				लुङ्		
आसांचक्रे	आसांचक्राते	आसांचक्रिरे	प्र०	आसिष्ट	आसिषाताम्	आसिषत
आसांचकृषे	आसांचक्राथे	आसांचकृढ्वे	म०	आसिष्ठाः	आसिषाथाम्	आसिढ्वम्
आसांचक्रे	आसांचकृवहे	आसांचकृमहे	उ०	आसिषि	आसिष्वहि	आसिष्महि

लुट्				लृङ्		
आसिता	आसितारौ	आसितारः	प्र०	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त
आसितासे	आसितासाथे	आसिताध्वे	म०	आसिष्यथाः	आसिष्येथाम्	आसिष्यध्वम्
आसिताहे	आसितास्वहे	आसितास्महे	उ०	आसिष्ये	आसिष्यावहि	आसिष्यामहि

(४) (अधि +) इङ् (अध्ययन करना) आत्मनेपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
अधीते	अधीयाते	अधीयते	प्र०	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्	अध्येषीरन्
अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे	म०	अध्येषीष्ठाः	अध्येषीयास्थाम्	अध्येषीढ्वम्
अधीये	अधीवहे	अधीमहे	उ०	अध्येषीय	अध्येषीवहि	अध्येषीमहि

लृट्				लिट्		
अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते	प्र०	अधिजगे[1]	अधिजगाते	अधिजगिरे
अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे	म०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे	उ०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

१. गाङ् लिटि २।४।४९ अर्थात् लिट् में इङ् धातु के स्थान में गाङ् हो जाता है।

	लोट्				लुट्	
ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्	प्र०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्	म०	वक्तासे	वक्तासाथे	वक्ताध्वे
ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै	उ०	वक्ताहे	वक्तास्वहे	वक्तास्महे
	लुङ्				लृङ्	
अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त	प्र०	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्	म०	अवक्ष्यथाः	अवक्ष्येथाम्	अवक्ष्यध्वम्
अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि	उ०	अवक्ष्ये	अवक्ष्यावहि	अवक्ष्यामहि

(७) या (जाना) परस्मैपदी

	लट्				आशीर्लिङ्	
याति	यातः	यान्ति	प्र०	यायात्	यायास्ताम्	यायासुः
यासि	याथः	याथ	म०	यायाः	यायास्तम्	यायास्त
यामि	यावः	यामः	उ०	यायासम्	यायास्व	यायास्म
	लृट्				लिट्	
यास्यति	यास्यतः	यास्यन्ति	प्र०	ययौ	ययतुः	ययुः
यास्यसि	यास्यथः	यास्यथ	म०	ययिथ, ययाथ	ययथुः	यय
यास्यामि	यास्यावः	यास्यामः	उ०	ययौ	ययिव	ययिम
	लङ्				लुट्	
अयात्	अयाताम्	अयान्, अयुः	प्र०	याता	यातारौ	यातारः
अयाः	अयातम्	अयात	म०	यातासि	यातास्थः	यातास्थ
अयाम्	अयाव	अयाम	उ०	यातास्मि	यातास्वः	यातास्मः
	लोट्				लुङ्	
यातु	याताम्	यान्तु	प्र०	अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषुः
याहि	यातम्	यात	म०	अयासीः	अयासिष्टम्	अयासिष्ट
यानि	याव	याम	उ०	अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म
	विधिलिङ्				लृङ्	
यायात्	यायाताम्	यायुः	प्र०	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
यायाः	यायातम्	यायात	म०	अयास्यः	अयास्यतम्	अयास्यत
यायाम्	यायाव	यायाम	उ०	अयास्यम्	अयास्याव	अयास्याम

ख्या (कहना), पा (पालना), भा (चमकना), मा (नापना), रा (देना), ला (देना या लेना), वा (बहना) के रूप 'या' के समान होते हैं।

(८) रुद् (रोना) परस्मैपदी

	लट्				लृट्	
रोदिति	रुदितः	रुदन्ति	प्र०	रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति
रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ	म०	रोदिष्यसि	रोदिष्यथः	रोदिष्यथ
रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः	उ०	रोदिष्यामि	रोदिष्यावः	रोदिष्यामः

लङ्				लुट्		
अरोदीद्, अरोदद्	अरुदिताम्	अरुदन्	प्र०	रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः
अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित	म०	रोदितासि	रोदितास्थः	रोदितास्थ
अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम	उ०	रोदितास्मि	रोदितास्वः	रोदितास्मः

लोट्				लुङ्		
रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु	प्र०	अरोदीत्	अरोदिष्टाम्	अरोदिषुः
रुदिहि	रुदितम्	रुदित	म०	अरोदीः	अरोदिष्टम्	अरोदिष्ट
रोदानि	रोदाव	रोदाम	उ०	अरोदिषम्	अरोदिष्व	अरोदिष्म

विधिलिङ्				अथवा		
रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः	प्र०	अरुदत्	अरुदताम्	अरुदन्
रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात	म०	अरुदः	अरुदतम्	अरुदत
रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम	उ०	अरुदम्	अरुदाव	अरुदाम

आशीर्लिङ्				लृङ्		
रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः	प्र०	अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्	अरोदिष्यन्
रुद्याः	रुद्यास्तम्	रुद्यास्त	म०	अरोदिष्यः	अरोदिष्यतम्	अरोदिष्यत
रुद्यासम्	रुद्यास्व	रुद्यास्म	उ०	अरोदिष्यम्	अरोदिष्याव	अरोदिष्याम

लिट्			
रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः	प्र०
रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद	म०
रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम	उ०

(९) विद् (जानना) परस्मैपदी

लट्				लङ्		
वेत्ति	वित्तः	विदन्ति	प्र०	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः
वेत्सि	वित्थः	वित्थ	म०	अवेः, अवेत्	अवित्तम्	अवित्त
वेद्मि	विद्वः	विद्मः	उ०	अवेदम्	अविद्व	अविद्म

लृट्				लोट्		
वेदिष्यति	वेदिष्यतः	वेदिष्यन्ति	प्र०	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
वेदिष्यसि	वेदिष्यथः	वेदिष्यथ	म०	विद्धि	वित्तम्	वित्त
वेदिष्यामि	वेदिष्यावः	वेदिष्यामः	उ०	वेदानि	वेदाव	वेदाम

विधिलिङ्				लुट्		
विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः	प्र०	वेदिता	वेदितारौ	वेदितारः
विद्याः	विद्यातम्	विद्यात	म०	वेदितासि	वेदितास्थः	वेदितास्थ
विद्याम्	विद्याव	विद्याम	उ०	वेदितास्मि	वेदितास्वः	वेदितास्मः

	आशीर्लिङ्				लुङ्	
विद्यात्	विद्यास्ताम्	विद्यासुः	प्र० अवेदीत्	अवेदिष्टाम्	अवेदिषुः	
विद्याः	विद्यास्तम्	विद्यास्त	म० अवेदीः	अवेदिष्टम्	अवेदिष्ट	
विद्यासम्	विद्यास्व	विद्यास्म	उ० अवेदिषम्	अवेदिष्व	अवेदिष्म	
	लिट्				लृङ्	
विदाञ्चकार	विदाञ्चक्रतुः	विदाञ्चक्रुः	प्र० अवेदिष्यत्	अवेदिष्यताम्	अवेदिष्यन्	
विदाञ्चकृथ	विदाञ्चक्रथुः	विदाञ्चक्र	म० अवेदिष्यः	अवेदिष्यतम्	अवेदिष्यत	
विदाञ्चकार	विदाञ्चकृव	विदाञ्चकृम	उ० अवेदिष्यम्	अवेदिष्याव	अवेदिष्याम	

(१०) शास् (शासन करना) परस्मैपदी

	लट्			विधिलिङ्	
शास्ति	शिष्टः	शासति	प्र० शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः
शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ	म० शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
शास्मि	शिष्वः	शिष्मः	उ० शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम
	लृट्			आशीर्लिङ्	
शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति	प्र० शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासुः
शासिष्यसि	शासिष्यथः	शासिष्यथ	म० शिष्याः	शिष्यास्तम्	शिष्यास्त
शासिष्यामि	शासिष्यावः	शासिष्यामः	उ० शिष्यासम्	शिष्यास्व	शिष्यास्म
	लङ्			लिट्	
अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः	प्र० शशास	शशासतुः	शशासुः
अशाः, अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट	म० शशासिथ	शशासथुः	शशास
अशासम्	अशिष्व	अशिष्म	उ० शशास	शशासिव	शशासिम
	लोट्			लुट्	
शास्तु	शिष्टाम्	शासतु	प्र० शासिता	शासितारौ	शासितारः
शाधि	शिष्टम्	शिष्ट	म० शासितासि	शासितास्थः	शासितास्थ
शासानि	शासाव	शासाम	उ० शासितास्मि	शासितास्वः	शासितास्मः
	लुङ्			लृङ्	
अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्	प्र० अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्	अशासिष्यन्
अशिषः	अशिषतम्	अशिषत	म० अशासिष्यः	अशासिष्यतम्	अशासिष्यत
अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम	उ० अशासिष्यम्	अशासिष्याव	अशासिष्याम

(११) शी (शयन करना) आत्मनेपदी

	लट्			आशीर्लिङ्	
शेते	शयाते	शेरते	प्र० शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
शेषे	शयाथे	शेध्वे	म० शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीध्वम्
शये	शेवहे	शेमहे	उ० शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

	लृट्			लिट्	
शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते	प्र० शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे
शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे	म० शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे
शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे	उ० शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे

	लङ्			लुट्	
अशेत	अशयाताम्	अशेरत	प्र० शयिता	शयितारौ	शयितारः
अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्	म० शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
अशयि	अशेवहि	अशेमहि	उ० शयिताहे	शयितास्वहे	शयितास्महे

	लोट्			लुङ्	
शेताम्	शयाताम्	शेरताम्	प्र० अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्	म० अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिध्वम्
शयै	शयावहै	शयामहै	उ० अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

	विधिलिङ्			लृङ्	
शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्	प्र० अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्	म० अशयिष्यथाः	अशयिष्येथाम्	अशयिष्यध्वम्
शयीय	शयीवहि	शयीमहि	उ० अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यामहि

(१२) स्ना (नहाना) परस्मैपदी

	लट्			लृट्	
स्नाति	स्नातः	स्नान्ति	प्र० स्नास्यति	स्नास्यतः	स्नास्यन्ति
स्नासि	स्नाथः	स्नाथ	म० स्नास्यसि	स्नास्यथः	स्नास्यथ
स्नामि	स्नावः	स्नामः	उ० स्नास्यामि	स्नास्यावः	स्नास्यामः

	लङ्			लिट्	
अस्नात्	अस्नाताम्	अस्नुः,अस्नान्	प्र० सस्नौ	सस्नतुः	सस्नुः
अस्नाः	अस्नातम्	अस्नात	म० सस्निथ,सस्नाथ	सस्नथुः	सस्न
अस्नाम्	अस्नाव	अस्नाम	उ० सस्नौ	सस्निव	सस्निम

	लोट्			लुट्	
स्नातु, स्नातात्	स्नाताम्	स्नान्तु	प्र० स्नाता	स्नातारौ	स्नातारः
स्नाहि, स्नातात्	स्नातम्	स्नात	म० स्नातासि	स्नातास्थः	स्नातास्थ
स्नानि	स्नाव	स्नाम	उ० स्नातास्मि	स्नातास्वः	स्नातास्मः

	विधिलिङ्			लुङ्	
स्नायात्	स्नायाताम्	स्नायुः	प्र० अस्नासीत्	अस्नासिष्टाम्	अस्नासिषुः
स्नायाः	स्नायातम्	स्नायात	म० अस्नासीः	अस्नासिष्टम्	अस्नासिष्ट
स्नायाम्	स्नायाव	स्नायाम	उ० अस्नासिषम्	अस्नासिष्व	अस्नासिष्म

आशीर्लिङ्				लृङ्		
स्नायात्	स्नायास्ताम्	स्नायासुः	प्र०	अस्नास्यत्	अस्नास्यताम्	अस्नास्यन्
स्नायाः	स्नायास्तम्	स्नायास्त	म०	अस्नास्यः	अस्नास्यतम्	अस्नास्यत
स्नायासम्	स्नायास्व	स्नायास्म	उ०	अस्नास्यम्	अस्नास्याव	अस्नास्याम

अथवा

स्नेयात्	स्नेयास्ताम्	स्नेयासुः	प्र०
स्नेयाः	स्नेयास्तम्	स्नेयास्त	म०
स्नेयासम्	स्नेयास्व	स्नेयास्म	उ०

(१२) स्वप् (सोना) परस्मैपदी

लट्				लङ्		
स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति	प्र०	अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ	म०	अस्वपीः, अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः	उ०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

लृट्				लोट्		
स्वप्स्यति	स्वप्स्यतः	स्वप्स्यन्ति	प्र०	स्वपितु, स्वपितात्	स्वपिताम्	स्वपन्तु
स्वप्स्यसि	स्वप्स्यथः	स्वप्स्यथ	म०	स्वपिहि, स्वपितात्,	स्वपितम्	स्वपित
स्वप्स्यामि	स्वप्स्यावः	स्वप्स्यामः	उ०	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

विधिलिङ्				लुट्		
स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः	प्र०	स्वप्ता	स्वप्तारौ	स्वप्तारः
स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात	म०	स्वप्तासि	स्वप्तास्थः	स्वप्तास्थ
स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम	उ०	स्वप्तास्मि	स्वप्तास्वः	स्वप्तास्मः

आशीर्लिङ्				लुङ्		
सुप्यात्	सुप्यास्ताम्	सुप्यासुः	प्र०	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
सुप्याः	सुप्यास्तम्	सुप्यास्त	म०	अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
सुप्यासम्	सुप्यास्व	सुप्यास्म	उ०	अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म

लिट्				लृङ्		
सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः	प्र०	अस्वप्स्यत्	अस्वप्स्यताम्	अस्वप्स्यन्
सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथुः	सुषुप	म०	अस्वप्स्यः	अस्वप्स्यतम्	अस्वप्स्यत
सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम	उ०	अस्वप्स्यम्	अस्वप्स्याव	अस्वप्स्याम

श्वस् (साँस लेना) के रूप स्वप् के समान होते हैं । यथा—

लट्	प्र० पु०	एकवचन	श्वसिति
लृट्	"	"	श्वसिष्यति
लङ्	"	"	अश्वसीत्—अश्वसत्
लोट्	"	"	श्वसितु

विधिलिङ्	प्र० पु०	एकवचन	रुवस्यात्
आशीर्लिङ्	”	”	रुवस्यात्
लिट्	”	”	रुरवास
लुट्	”	”	रुवसिता
लुङ्	”	”	अरुवसीत्
लृङ्	”	”	अरुवसिष्यत्

(१४) हन् (मारना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
हन्ति	हतः	घ्नन्ति	प्र०	वध्यात्	वध्यास्ताम्	वध्यासुः
हंसि	हथः	हथ	म०	वध्याः	वध्यास्तम्	वध्यास्त
हन्मि	हन्वः	हन्मः	उ०	वध्यासम्	वध्यास्व	वध्यास्म

लृट्				लिट्		
हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति	प्र०	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ	म०	जघनिथ,जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः	उ०	जघान,जघन	जघ्निव	जघ्निम

लङ्				लुट्		
अहन्	अहताम्	अघ्नन्	प्र०	हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः
अहन्	अहतम्	अहत	म०	हन्तासि	हन्तास्थः	हन्तास्थ
अहनम्	अहन्व	अहन्म	उ०	हन्तास्मि	हन्तास्वः	हन्तास्मः

लोट्				लुङ्		
हन्तु	हताम्	घ्नन्तु	प्र०	अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः
जहि	हतम्	हत	म०	अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट
हनानि	हनाव	हनाम	उ०	अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म

विधिलिङ्				लृङ्		
हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः	प्र०	अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्	अहनिष्यन्
हन्याः	हन्यातम्	हन्यात	म०	अहनिष्यः	अहनिष्यतम्	अहनिष्यत
हन्याम्	हन्याव	हन्याम	उ०	अहनिष्यम्	अहनिष्याव	अहनिष्याम

३—जुहोत्यादिगण

इस गण की प्रथम धातु हु (हवन करना) है और उसके रूप जुहोति, जुहुतः, जुह्वति आदि होते हैं, इसलिए इस गण का नाम जुहोत्यादिगण पड़ा।

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ।२।४।७५। जुहोत्यादिगण की धातुओं के अनन्तर शप् का 'श्लु' आदेश होता है। इस 'श्लु' में कुछ शेष नहीं रहता जो धातुओं में जुड़ता हो। हाँ "श्लौ" ।६।१।१०। के अनुसार 'श्लु' के कारण धातु का द्वित्व हो जाता है।

इस गण में वर्तमान प्रथम पुरुष के बहुवचन में 'अन्ति' के स्थान पर 'अति' तथा अनद्यतन भूत के प्रथम पुरुष के बहुवचन में 'अन्' के स्थान पर 'उस्' होता है। इस 'उस्' प्रत्यय के पूर्व धातु का अन्तिम 'आ' का लोप कर दिया जाता है और अन्तिम इ, उ, ऋ को गुण हो जाता है।

(१) हु (हवन करना, खाना, लेना) परस्मैपदी

लट्			आशीर्लिङ्		
जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	प्र० हूयात्	हूयास्ताम्	हूयासुः
जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ	म० हूयाः	हूयास्तम्	हूयास्त
जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः	उ० हूयासम्	हूयास्व	हूयास्म
लृट्			लिट्		
होष्यति	होष्यतः	होष्यन्ति	प्र० जुहाव	जुहुवतुः	जुहुवुः
होष्यसि	होष्यथः	होष्यथ	म० जुहविथ, जुहोथ	जुहुवथुः	जुहुव
होष्यामि	होष्यावः	होष्यामः	उ० जुहाव, जुहव	जुहुविव	जुहुविम
लङ्			लुट्		
अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	प्र० होता	होतारौ	होतारः
अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत	म० होतासि	होतास्थः	होतास्थ
अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम	उ० होतास्मि	होतास्वः	होतास्मः
लोट्			लुङ्		
जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु	प्र० अहौषीत्	अहौष्टाम्	अहौषुः
जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत	म० अहौषीः	अहौष्टम्	अहौष्ट
जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम	उ० अहौषम्	अहौष्व	अहौष्म
विधिलिङ्			लृङ्		
जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः	प्र० अहोष्यत्	अहोष्यताम्	अहोष्यन्
जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात	म० अहोष्यः	अहोष्यतम्	अहोष्यत
जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम	उ० अहोष्यम्	अहोष्याव	अहोष्याम

उभयपदी

(२) दा (देना) परस्मैपद

लट्			आशीर्लिङ्		
ददाति	दत्तः	ददति	प्र० देयात्	देयास्ताम्	देयासुः
ददासि	दत्थः	दत्थ	म० देयाः	देयास्तम्	देयास्त
ददामि	दद्वः	दद्मः	उ० देयासम्	देयास्व	देयास्म
लृट्			लिट्		
दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति	प्र० ददौ	ददतुः	ददुः
दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ	म० ददिथ, ददाथ	ददथुः	दद
दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः	उ० ददौ	ददिव	ददिम

लङ्				लुट्		
अददात्	अदत्ताम्	अददुः	प्र० दाता	दातारौ	दातारः
अददाः	अदत्तम्	अदत्त	म० दातासि	दातास्थः	दातास्थ
अददाम्	अदद्व	अदद्म	उ० दातास्मि	दातास्वः	दातास्मः

लोट्				लुङ्		
ददातु	दत्ताम्	ददतु	प्र० अदात्	अदाताम्	अदुः
देहि	दत्तम्	दत्त	म० अदाः	अदातम्	अदात
ददानि	ददाव	ददाम	उ० अदाम्	अदाव	अदाम

विधिलिङ्				लृङ्		
दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः	प्र० अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
दद्याः	दद्यातम्	दद्यात	म० अदास्यः	अदास्यतम्	अदास्यत
दद्याम्	दद्याव	दद्याम	उ० अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

दा (देना) आत्मनेपद

दत्ते	ददाते	ददते	प्र० अदत्त	अददाताम्	अददत
दत्से	ददाथे	दद्ध्वे	म० अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
ददे	दद्वहे	दद्महे	उ० अददि	अदद्वहि	अदद्महि

लृट्				लोट्	
दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते	प्र० दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे	म० दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे	उ० ददै	ददावहै	ददामहै

विधिलिङ्				लुट्	
ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्	प्र० दाता	दातारौ	दातारः
ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्	म० दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
ददीय	ददीवहि	ददीमहि	उ० दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

आशीर्लिङ्				लुङ्	
दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्	प्र० अदित	अदिषाताम्	अदिषत
दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्	म० अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्
दासीय	दासीवहि	दासीमहि	उ० अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

लिट्				लृङ्	
ददे	ददाते	ददिरे	प्र० अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
ददिषे	ददाथे	ददिध्वे	म० अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
ददे	ददिवहे	ददिमहे	उ० अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

लिट्

बिभाय	बिभ्यतुः	बिभ्युः	प्र०
बिभयिथ, बिभेथ	बिभ्यथुः	बिभ्य	म०
बिभाय, बिभय	बिभ्यिव	बिभ्यिम	उ०
बिभयाञ्चकार	बिभयाञ्चक्रतुः	बिभयाञ्चक्रुः	प्र०
बिभयाञ्चकर्थ	बिभयाञ्चक्रथुः	बिभयाञ्चक्र	म०
बिभयाञ्चकार, बिभयाञ्चकर	बिभयाञ्चकृव	बिभयाञ्चकृम	उ०
बिभयाम्बभूव	बिभयाम्बभूवतुः	बिभयाम्बभूवुः	प्र०
बिभयाम्बभूविथ	बिभयाम्बभूवथुः	बिभयाम्बभूव	म०
बिभयाम्बभूव	बिभयाम्बभूविव	बिभयाम्बभूविम	उ०
बिभयामास	बिभयामासतुः	बिभयामासुः	प्र०
बिभयामासिथ	बिभयामासथुः	बिभयामास	म०
बिभयामास	बिभयामासिव	बिभयामासिम	उ०

लुट्				लृङ्		
भेता	भेतारौ	भेतारः	प्र०	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्
भेतासि	भेतास्थः	भेतास्थ	म०	अभेष्यः	अभेष्यतम्	अभेष्यत
भेतास्मि	भेतास्वः	भेतास्मः	उ०	अभेष्यम्	अभेष्याव	अभेष्याम

लुङ्

अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषुः	प्र०
अभैषीः	अभैष्टम्	अभैष्ट	म०
अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म	उ०

(५) हा (छोड़ना) परस्मैपदी

लट्

जहाति	जहितः, जहीतः	जहति	प्र०
जहासि	जहिथः, जहीथः	जहिथ, जहीथ	म०
जहामि	जहिवः, जहीवः	जहिमः, जहीमः	उ०

लृट्

हास्यति	हास्यतः	हास्यन्ति	प्र०
हास्यसि	हास्यथः	हास्यथ	म०
हास्यामि	हास्यावः	हास्यामः	उ०

लङ्

अजहात्	अजहिताम्, अजहीताम्	अजहुः	प्र०
अजहाः	अजहितम्, अजहीतम्	अजहित, अजहीत	म०
अजहाम्	अजहिव, अजहीव	अजहिम, अजहीम	उ०

लोट्

जहातु, जहितात, जहीतात्	जहिताम्, जहीताम्	जहतु	प्र०
जहाहि, जहिहि, जहीहि, जहितात्, जहीतात्	जहितम्, जहीतम्	जहित, जहीत	म०
जहानि	जहाव	जहाम	उ०

विधिलिङ्

जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः	प्र०
जह्याः	जह्यातम्	जह्यात्	म०
जह्याम्	जह्याव	जह्याम	उ०

आशीर्लिङ्				लुङ्		
हेयात्	हेयास्ताम्	हेयासुः	प्र०	अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषुः
हेयाः	हेयास्तम्	हेयास्त	म०	अहासीः	अहासिष्टम्	अहासिष्ट
हेयासम्	हेयास्व	हेयास्म	उ०	अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म

लिट्				लृङ्		
जहौ	जहतुः	जहुः	प्र०	अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्
जहिथ, जहाथ	जहथुः	जह	म०	अहास्यः	अहास्यतम्	अहास्यत
जहौ	जहिव	जहिम	उ०	अहास्यम्	अहास्याव	अहास्याम

लुट्

हाता	हातारौ	हातारः	प्र०
हातासि	हातास्थः	हातास्थ	म०
हातास्मि	हातास्वः	हातास्मः	उ०

(४) दिवादिगण

इस गण की प्रथम धातु 'दिव्' है, अतएव इसका नाम दिवादिगण है।

दिवादिभ्यः श्यन् ।३।१।६९।

इस गण की धातुओं और प्रत्ययों के बीच में श्यन् (य) जोड़ा जाता है। यथा मन् धातु से मन् + य + ते = मन्यते, दिव् + य + ति = दीव्यति, कुप् + य + ति = कुप्यति।

(१) दिव् (जुआ खेलना, चमकना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति	प्र०	दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासुः
दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ	म०	दीव्याः	दीव्यास्तम्	दीव्यास्त
दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः	उ०	दीव्यासम्	दीव्यास्व	दीव्यास्म

लृट्				लिट्		
देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति	प्र०	दिदेव	दिदिवतुः	दिदिवुः
देविष्यसि	देविष्यथः	देविष्यथ	म०	दिदेविथ	दिदिवथुः	दिदिव
देविष्यामि	देविष्यावः	देविष्यामः	उ०	दिदेव	दिदिविव	दिदिविम

	लङ्				लृट्	
अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्	प्र०	देविता	देवितारौ	देवितारः
अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत	म०	देवतासि	देवितास्थः	देवितास्थ
अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम	उ०	देवितास्मि	देवितास्वः	देवितास्मः

	लोट्				लुङ्	
दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु	प्र०	अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषुः
दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत	म०	अदेवीः	अदेविष्टम्	अदेविष्ट
दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम	उ०	अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म

	विधिलिङ्				लृङ्	
दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः	प्र०	अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्
दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत	म०	अदेविष्यः	अदेविष्यतम्	अदेविष्यत
दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम	उ०	अदेविष्यम्	अदेविष्याव	अदेविष्याम

(२) कुप् (क्रोध करना) परस्मैपदी

	लट्				लृट्	
कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति	प्र०	कोपिष्यति	कोपिष्यतः	कोपिष्यन्ति
कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ	म०	कोपिष्यसि	कोपिष्यथः	कोपिष्यथ
कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्यामः	उ०	कोपिष्यामि	कोपिष्यावः	कोपिष्यामः

	लङ्				लिट्	
अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्	प्र०	चुकोप	चुकुपतुः	चुकुपुः
अकुप्यः	अकुप्यतम्	अकुप्यत	म०	चुकोपिथ	चुकुपथुः	चुकुप
अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम	उ०	चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम

	लोट्				लुट्	
कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु	प्र०	कोपिता	कोपितारौ	कोपितारः
कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत	म०	कोपितासि	कोपितास्थः	कोपितास्थ
कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम	उ०	कोपितास्मि	कोपितास्वः	कोपितास्मः

	विधिलिङ्				लुङ्	
कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयुः	प्र०	अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्
कुप्येः	कुप्येतम्	कुप्येत	म०	अकुपः	अकुपतम्	अकुपत
कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम	उ०	अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम

	आशीर्लिङ्				लृङ्	
कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासुः	प्र०	अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्	अकोपिष्यन्
कुप्याः	कुप्यास्तम्	कुप्यास्त	म०	अकोपिष्यः	अकोपिष्यतम्	अकोपिष्यत
कुप्यासम्	कुप्यास्व	कुप्यास्म	उ०	अकोपिष्यम्	अकोपिष्याव	अकोपिष्या

(३) [1]क्रम् (जाना) परस्मैपदी

लट्				लङ्		
क्राम्यति	क्राम्यतः	क्राम्यन्ति	प्र०	अक्राम्यत्	अक्राम्यताम्	अक्राम्यन्
क्राम्यसि	क्राम्यथः	क्राम्यथ	म०	अक्राम्यः	अक्राम्यतम्	अक्राम्यत
क्राम्यामि	क्राम्यावः	क्राम्यामः	उ०	अक्राम्यम्	अक्राम्याव	अक्राम्याम
लृट्				**लोट्**		
क्रमिष्यति	क्रमिष्यतः	क्रमिष्यन्ति	प्र०	क्राम्यतु	क्राम्यताम्	क्राम्यन्तु
क्रमिष्यसि	क्रमिष्यथः	क्रमिष्यथ	म०	क्राम्य	क्राम्यतम्	क्राम्यत
क्रमिष्यामि	क्रमिष्यावः	क्रमिष्यामः	उ०	क्राम्यानि	क्राम्याव	क्राम्याम
विधिलिङ्				**लुट्**		
क्राम्येत्	क्राम्येताम्	क्राम्येयुः	प्र०	क्रमिता	क्रमितारौ	क्रमितारः
क्राम्येः	क्राम्येतम्	क्राम्येत	म०	क्रमितासि	क्रमितास्थः	क्रमितास्थ
क्राम्येयम्	क्राम्येव	क्राम्येम	उ०	क्रमितास्मि	क्रमितास्वः	क्रमितास्मः
आशीर्लिङ्				**लुङ्**		
क्रम्यात्	क्रम्यास्ताम्	क्रम्यासुः	प्र०	अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषुः
क्रम्याः	क्रम्यास्तम्	क्रम्यास्त	म०	अक्रमीः	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
क्रम्यासम्	क्रम्यास्व	क्रम्यास्म	उ०	अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्म
लिट्				**लृङ्**		
चक्राम	चक्रमतुः	चक्रमुः	प्र०	अक्रमिष्यत्	अक्रमिष्यताम्	अक्रमिष्यन्
चक्रमिथ	चक्रमथुः	चक्रम	म०	अक्रमिष्यः	अक्रमिष्यतम्	अक्रमिष्यत
चक्राम, चक्रम	चक्रमिव	चक्रमिम	उ०	अक्रमिष्यम्	अक्रमिष्याव	अक्रमिष्याम

(४) [2]क्षम् (क्षमा करना) परस्मैपदी

लट्				लोट्		
क्षाम्यति	क्षाम्यतः	क्षाम्यन्ति	प्र०	क्षाम्यतु	क्षाम्यताम्	क्षाम्यन्तु
क्षाम्यसि	क्षाम्यथः	क्षाम्यथ	म०	क्षाम्य	क्षाम्यतम्	क्षाम्यत
क्षाम्यामि	क्षाम्यावः	क्षाम्यामः	उ०	क्षाम्याणि	क्षाम्याव	क्षाम्याम
लृट्				**विधिलिङ्**		
क्षमिष्यति	क्षमिष्यतः	क्षमिष्यन्ति	प्र०	क्षाम्येत्	क्षाम्येताम्	क्षाम्येयुः
क्षमिष्यसि	क्षमिष्यथः	क्षमिष्यथ	म०	क्षाम्येः	क्षाम्येतम्	क्षाम्येत
क्षमिष्यामि	क्षमिष्यावः	क्षमिष्याम	उ०	क्षाम्येयम्	क्षाम्येव	क्षाम्येम

१—यह धातु भ्वादिगणीय भी है और इसके रूप क्रामति, क्रामतु आदि होते हैं। यह धातु आत्मनेपदी भी है, पुनश्च आत्मनेपदी होने पर यह सेट् नहीं होती। तब इसके रूप क्रमते, क्रमताम् इत्यादि होते हैं।

२. यह धातु वेट् है अतः क्षमिता तथा क्षन्ता, क्षमिष्यति तथा क्षंस्यति इत्यादि द्विविध रूप होते हैं।

अथवा				आशीर्लिङ्		
क्षंस्यति	क्षंस्यतः	क्षंस्यन्ति	प्र०	क्षम्यात्	क्षम्यास्ताम्	क्षम्यासुः
क्षंस्यसि	क्षंस्यथः	क्षंस्यथ	म०	क्षम्याः	क्षम्यास्तम्	क्षम्यास्त
क्षंस्यामि	क्षंस्यावः	क्षंस्यामः	उ०	क्षम्यासम्	क्षम्यास्व	क्षम्यास्म

लङ्				लिट्		
अक्षाम्यत्	अक्षाम्यताम्	अक्षाम्यन्	प्र०	चक्षाम	चक्षमतुः	चक्षमुः
अक्षाम्यः	अक्षाम्यतम्	अक्षाम्यत	म०	चक्षमिथ, चक्षन्थ	चक्षमथुः	चक्षम
अक्षाम्यम्	अक्षाम्याव	अक्षाम्याम	उ०	चक्षाम, चक्षम	चक्षमिव, चक्षण्व	चक्षमिम, चक्षण्म

लुट्				लृङ्		
क्षमिता, क्षंता	क्षमितारौ	क्षमितारः	प्र०	अक्षमिष्यत्	अक्षमिष्यताम्	अक्षमिष्यन्
क्षमितासि	क्षमितास्थः	क्षमितास्थ	म०	अक्षमिष्यः	अक्षमिष्यतम्	अक्षमिष्यत
क्षमितास्मि	क्षमितास्वः	क्षमितास्मः	उ०	अक्षमिष्यम्	अक्षमिष्याव	अक्षमिष्याम

लुङ्				अथवा		
अक्षमत्	अक्षमताम्	अक्षमन्	प्र०	अक्षंस्यत्	अक्षंस्यताम्	अक्षंस्यन्
अक्षमः	अक्षमतम्	अक्षमत	म०	अक्षंस्यः	अक्षंस्यतम्	अक्षंस्यत
अक्षमम्	अक्षमाव	अक्षमाम	उ०	अक्षंस्यम्	अक्षंस्याव	अक्षंस्याम

(५) जन् (उत्पन्न होना) आत्मनेपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
जायते	जायेते	जायन्ते	प्र०	जनिषीष्ट	जनीषीयास्ताम्	जनिषीरन्
जायसे	जायेथे	जायध्वे	म०	जनिषीष्ठाः	जनिषीयास्थाम्	जनिषीध्वम्
जाये	जायावहे	जायामहे	उ०	जनिषीय	जनिषीवहि	जनिषीमहि

लृट्				लिट्		
जनिष्यते	जनिष्यते	जनिष्यन्ते	प्र०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
जनिष्यसे	जनिष्येथे	जनिष्यध्वे	म०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
जनिष्ये	जनिष्यावहे	जनिष्यामहे	उ०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

लङ्				लुट्		
अजायत	अजायेताम्	अजायन्त	प्र०	जनिता	जनितारौ	जनितारः
अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्	म०	जनितासे	जनितासाथे	जनिताध्वे
अजाये	अजायावहि	अजायामहि	उ०	जनिताहे	जनितास्वहे	जनितास्महे

लोट्				लुङ्		
जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्	प्र०	अजनिष्ट, अजनि	अजनिषाताम्	अजनिषत
जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्	म०	अजनिष्ठाः	अनिषाथाम्	अजनिध्वम्
जायै	जायावहै	जायामहै	उ०	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

विधिलिङ्				लृङ्		
जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्	प्र०	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्	अजनिष्यन्त
जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्	म०	अजनिष्यथाः	अजनिष्येथाम्	अजनिष्यध्वम्
जायेय	जायेवहि	जायेमहि	उ०	अजनिष्ये	अजनिष्यावहि	अजनिष्यामहि

(६) नश् (नष्ट होना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
नश्यति	नश्यतः	नश्यन्ति	प्र०	नश्यात्	नश्यास्ताम्	नश्यासुः
नश्यसि	नश्यथः	नश्यथ	म०	नश्याः	नश्यास्तम्	नश्यास्त
नश्यामि	नश्यावः	नश्यामः	उ०	नश्यासम्	नश्यास्व	नश्यास्म

लृट्				लिट्		
नशिष्यति	नशिष्यतः	नशिष्यन्ति	प्र०	ननाश	नेशतुः	नेशुः
नशिष्यसि	नशिष्यथः	नशिष्यथ	म०	नेशिथ, ननष्ठ	नेशथुः	नेश
नशिष्यामि	नशिष्यावः	नशिष्यामः	उ०	ननाश, ननश	नेशिव, नेश्व	नेशिम, नेश्म

अथवा				लुट्		
नङ्क्ष्यति	नङ्क्ष्यतः	नङ्क्ष्यन्ति	प्र०	नशिता	नशितारौ	नशितारः
नङ्क्ष्यसि	नङ्क्ष्यथः	नङ्क्ष्यथ	म०	नशितासि	नशितास्थः	नशितास्थ
नङ्क्ष्यामि	नङ्क्ष्यावः	नङ्क्ष्यामः	उ०	नशितास्मि	नशितास्वः	नशितास्मः

लङ्				अथवा		
अनश्यत्	अनश्यताम्	अनश्यन्	प्र०	नंष्टा	नंष्टारौ	नंष्टारः
अनश्यः	अनश्यतम्	अनश्यत	म०	नंष्टासि	नंष्टास्थः	नंष्टास्थ
अनश्यम्	अनश्याव	अनश्याम	उ०	नंष्टास्मि	नंष्टास्वः	नंष्टास्मः

लोट्				लुङ्		
नश्यतु	नश्यताम्	नश्यन्तु	प्र०	अनशत्	अनशताम्	अनशन्
नश्य	नश्यतम्	नश्यत	म०	अनशः	अनशतम्	अनशत
नश्यानि	नश्याव	नश्याम	उ०	अनशम्	अनशाव	अनशाम

विधिलिङ्				लृङ्		
नश्येत्	नश्येताम्	नश्येयुः	प्र०	अनशिष्यत्	अनशिष्यताम्	अनशिष्यन्
नश्येः	नश्येतम्	नश्येत	म०	अनशिष्यः	अनशिष्यतम्	अनशिष्यत
नश्येयम्	नश्येव	नश्येम	उ०	अनशिष्यम्	अनशिष्याव	अनशिष्याम

अथवा

प्र०	अनङ्क्ष्यत्	अनङ्क्ष्यताम्	अनङ्क्ष्यन्
म०	अनङ्क्ष्यः	अनङ्क्ष्यतम्	अनङ्क्ष्यत
उ०	अनङ्क्ष्यम्	अनङ्क्ष्याव	अनङ्क्ष्याम

(७) नृत् (नाचना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति	प्र०	नृत्यात्	नृत्यास्ताम्	नृत्यासुः
नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ	म०	नृत्याः	नृत्यस्तम्	नृत्यास्त
नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः	उ०	नृत्यासम्	नृत्यास्व	नृत्यास्म
लृट्				लिट्		
नर्तिष्यति	नर्तिष्यतः	नर्तिष्यन्ति	प्र०	ननर्त	ननृततुः	ननृतुः
नर्तिष्यसि	नर्तिष्यथः	नर्तिष्यथ	म०	ननर्तिथ	ननृतथुः	ननृत
नर्तिष्यामि	नर्तिष्यावः	नर्तिष्यामः	उ०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम
अथवा				लुट्		
नर्त्स्यति	नर्त्स्यतः	नर्त्स्यन्ति	प्र०	नर्तिता	नर्तितारौ	नर्तितारः
नर्त्स्यसि	नर्त्स्यथः	नर्त्स्यथ	म०	नर्तितासि	नर्तितास्थः	नर्तितास्थ
नर्त्स्यामि	नर्त्स्यावः	नर्त्स्यामः	उ०	नर्तितास्मि	नर्तितास्वः	नर्तितास्मः
लङ्				लुङ्		
अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्	प्र०	अनर्तीत्	अनर्तिष्टाम्	अनर्तिषुः
अनृत्यः	अनृत्यतम्	अनृत्यत	म०	अनर्तीः	अनर्तिष्टम्	अनर्तिष्ट
अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम	उ०	अनर्तिषम्	अनर्तिष्व	अनर्तिष्म
लोट्				लृङ्		
नृत्यतु	नृत्यताम्	नृत्यन्तु	प्र०	अनर्तिष्यत्	अनर्तिष्यताम्	अनर्तिष्यन्
नृत्य	नृत्यतम्	नृत्यत	म०	अनर्तिष्यः	अनर्तिष्यतम्	अनर्तिष्यत
नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम	उ०	अनर्तिष्यम्	अनर्तिष्याव	अनर्तिष्याम
विधिलिङ्				अथवा		
नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः	प्र०	अनर्त्स्यत्	अनर्त्स्यताम्	अनर्त्स्यन्
नृत्येः	नृत्येतम्	नृत्येत	म०	अनर्त्स्यः	अनर्त्स्यतम्	अनर्त्स्यत
नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम	उ०	अनर्त्स्यम्	अनर्त्स्याव	अनर्त्स्याम

(८) पद् (जाना) आत्मनेपदी

लट्				लृट्		
पद्यते	पद्येते	पद्यन्ते	प्र०	पत्स्यते	पत्स्येते	पत्स्यन्ते
पद्यसे	पद्येथे	पद्यध्वे	म०	पत्स्यसे	पत्स्येथे	पत्स्यध्वे
पद्ये	पद्यावहे	पद्यामहे	उ०	पत्स्ये	पत्स्यावहे	पत्स्यामहे
लङ्				लिट्		
अपद्यत	अपद्येताम्	अपद्यन्त	प्र०	पेदे	पेदाते	पेदिरे
अपद्यथाः	अपद्येथाम्	अपद्यध्वम्	म०	पेदिषे	पेदाथे	पेदिध्वे
अपद्ये	अपद्यावहि	अपद्यामहि	उ०	पेदे	पेदिवहे	पेदिमहे

लोट्				लुट्	
पद्यताम्	पद्येताम्	पद्यन्ताम्	प्र० पत्ता	पत्तारौ	पत्तारः
पद्यस्व	पद्येथाम्	पद्यध्वम्	म० पत्तासे	पत्तासाथे	पत्ताध्वे
पद्यै	पद्यावहै	पद्यामहै	उ० पत्ताहे	पत्तास्वहे	पत्तास्महे

विधिलिङ्				लुङ्	
पद्येत	पद्येयाताम्	पद्येरन्	प्र० अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत
पद्येथाः	पद्येयाथाम्	पद्येध्वम्	म० अपत्थाः	अपत्साथाम्	अपद्ध्वम्
पद्येय	पद्येवहि	पद्येमहि	उ० अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

आशीर्लिङ्				लृङ्	
पत्सीष्ट	पत्सीयास्ताम्	पत्सीरन्	प्र० अपत्स्यत	अपत्स्येताम्	अपत्स्यन्त
पत्सीष्ठाः	पत्सीयास्थाम्	पत्सीध्वम्	म० अपत्स्यथाः	अपत्स्येथाम्	अपत्स्यध्वम्
पत्सीय	पत्सीवहि	पत्सीमहि	उ० अपत्स्ये	अपत्स्यावहि	अपत्स्यामहि

(९) बुध् (जानना) आत्मनेपदी

लट्				लोट्	
बुध्यते	बुध्येते	बुध्यन्ते	प्र० बुध्यताम्	बुध्येताम्	बुध्यन्ताम्
बुध्यसे	बुध्येथे	बुध्यध्वे	म० बुध्यस्व	बुध्येथाम्	बुध्यध्वम्
बुध्ये	बुध्यावहे	बुध्यामहे	उ० बुध्यै	बुध्यावहै	बुध्यामहै

लृट्				विधिलिङ्	
भोत्स्यते	भोत्स्येते	भोत्स्यन्ते	प्र० बुध्येत	बुध्येयाताम्	बुध्येरन्
भोत्स्यसे	भोत्स्येथे	भोत्स्यध्वे	म० बुध्येथाः	बुध्येयाथाम्	बुध्येध्वम्
भोत्स्ये	भोत्स्यावहे	भोत्स्यामहे	उ० बुध्येय	बुध्येवहि	बुध्येमहि

लङ्				आशीर्लिङ्	
अबुध्यत	अबुध्येताम्	अबुध्यन्त	प्र० भुत्सीष्ट	भुत्सीयास्ताम्	भुत्सीरन्
अबुध्यथाः	अबुध्येथाम्	अबुध्यध्वम्	म० भुत्सीष्ठाः	भुत्सीयास्थाम्	भुत्सीध्वम्
अबुध्ये	अबुध्यावहि	अबुध्यामहि	उ० भुत्सीय	भुत्सीवहि	भुत्सीमहि

लिट्				लुङ्	
बुबुधे	बुबुधाते	बुबुधिरे	प्र० अबुद्ध, अबोधि	अभुत्साताम्	अभुत्सत
बुबुधिषे	बुबुधाथे	बुबुधिध्वे	म० अबुद्धाः	अभुत्साथाम्	अभुद्ध्वम्
बुबुधे	बुबुधिवहे	बुबुधिमहे	उ० अभुत्सि	अभुत्स्वहि	अभुत्स्महि

लुट्				लृङ्	
बोद्धा	बोद्धारौ	बोद्धारः	प्र० अभोत्स्यत	अभोत्स्येताम्	अभोत्स्यन्त
बोद्धासे	बोद्धासाथे	बोद्धाध्वे	म० अभोत्स्यथाः	अभोत्स्येथाम्	अभोत्स्यध्वम्
बोद्धाहे	बोद्धास्वहे	बोद्धास्महे	उ० अभोत्स्ये	अभोत्स्यावहि	अभोत्स्यामहि

(१०) भ्रम् (घूमना) परस्मैपदी

लट्				विधिलिङ्		
भ्राम्यति	भ्राम्यतः	भ्राम्यन्ति	प्र०	भ्राम्येत्	भ्राम्येताम्	भ्राम्येयुः
भ्राम्यसि	भ्राम्यथः	भ्राम्यथ	म०	भ्राम्येः	भ्राम्येतम्	भ्राम्येत
भ्राम्यामि	भ्राम्यावः	भ्राम्यामः	उ०	भ्राम्येयम्	भ्राम्येव	भ्राम्येम

लृट्				आशीर्लिङ्		
भ्रमिष्यति	भ्रमिष्यतः	भ्रमिष्यन्ति	प्र०	भ्रम्यात्	भ्रम्यास्ताम्	भ्रम्यासुः
भ्रमिष्यसि	भ्रमिष्यथः	भ्रमिष्यथ	म०	भ्रम्याः	भ्रम्यास्तम्	भ्रम्यास्त
भ्रमिष्यामि	भ्रमिष्यावः	भ्रमिष्यामः	उ०	भ्रम्यासम्	भ्रम्यास्व	भ्रम्यास्म

लङ्				लिट्		
अभ्राम्यत्	अभ्राम्यताम्	अभ्राम्यन्	प्र०	बभ्राम	बभ्रमतुः भ्रेमतुः	बभ्रमुः भ्रेमुः
अभ्राम्यः	अभ्राम्यतम्	अभ्राम्यत	म०	बभ्रमिथ भ्रेमिथ	बभ्रमथुः भ्रेमथुः	बभ्रम भ्रेम
अभ्राम्यम्	अभ्राम्याव	अभ्राम्याम	उ०	बभ्राम बभ्रम	बभ्रमिव भ्रेमिव	बभ्रमिम भ्रेमिम

लोट्				लुट्		
भ्राम्यतु	भ्राम्यताम्	भ्राम्यन्तु	प्र०	भ्रमिता	भ्रमितारौ	भ्रमितारः
भ्राम्य	भ्राम्यतम्	भ्राम्यत	म०	भ्रमितासि	भ्रमितास्थः	भ्रमितास्थ
भ्राम्याणि	भ्राम्याव	भ्राम्याम	उ०	भ्रमितास्मि	भ्रमितास्वः	भ्रमितास्मः

लुङ्				लृङ्		
अभ्रमत्	अभ्रमताम्	अभ्रमन्	प्र०	अभ्रमिष्यत्	अभ्रमिष्यताम्	अभ्रमिष्यन्
अभ्रमः	अ मतम्	अभ्रमत	म०	अभ्रमिष्यः	अभ्रमिष्यतम्	अभ्रमिष्यत
अभ्रमम्	अभ्रमाव	अभ्रमाम	उ०	अभ्रमिष्यम्	अभ्रमिष्याव	अभ्रमिष्याम

(११) युध् (लड़ाई करना) आत्मनेपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
युध्यते	युध्येते	युध्यन्ते	प्र०	युत्सीष्ट	युत्सीयास्ताम्	युत्सीरन्
युध्यसे	युध्येथे	युध्यध्वे	म०	युत्सीष्ठाः	युत्सीयास्थाम्	युत्सीध्वम्
युध्ये	युध्यावहे	युध्यामहे	उ०	युत्सीय	युत्सीवहि	युत्सीमहि

लृट्				लिट्		
योत्स्यते	योत्स्येते	योत्स्यन्ते	प्र०	युयुधे	युयुधाते	युयुधिरे
योत्स्यसे	योत्स्येथे	योत्स्यध्वे	म०	युयुधिषे	युयुधाथे	युयुधिध्वे
योत्स्ये	योत्स्यावहे	योत्स्यामहे	उ०	युयुधे	युयुधिवहे	युयुधिमहे

लङ्				लुट्		
अयुध्यत	अयुध्येताम्	अयुध्यन्त	प्र०	योद्धा	योद्धारौ	योद्धारः
अयुध्यथाः	अयुध्येथाम्	अयुध्यध्वम्	म०	योद्धासे	योद्धासाथे	योद्धाध्वे
अयुध्ये	अयुध्यावहि	अयुध्यामहि	उ०	योद्धाहे	योद्धास्वहे	योद्धास्महे

लोट्				लुङ्		
युध्यताम्	युध्येताम्	युध्यन्ताम्	प्र०	अयुद्ध	अयुत्साताम्	अयुत्सत
युध्यस्व	युध्येथाम्	युध्यध्वम्	म०	अयुद्धाः	अयुत्साथाम्	अयुद्ध्वम्
युध्यै	युध्यावहै	युध्यामहै	उ०	अयुत्सि	अयुत्स्वहि	अयुत्स्महि

विधिलिङ्				लृङ्		
युध्येत	युध्येयाताम्	युध्येरन्	प्र०	अयोत्स्यत	अयोत्स्येताम्	अयोत्स्यन्त
युध्येथाः	युध्येयाथाम्	युध्येध्वम्	म०	अयोत्स्यथाः	अयोत्स्येथाम्	अयोत्स्यध्वम्
युध्येय	युध्येवहि	युध्येमहि	उ०	अयोत्स्ये	अयोत्स्यावहि	अयोत्स्यामहि

(१२) विद् (होना) आत्मनेपदी

लट्				लृट्		
विद्यते	विद्येते	विद्यन्ते	प्र०	वेत्स्यते	वेत्स्येते	वेत्स्यन्ते
विद्यसे	विद्येथे	विद्यध्वे	म०	वेत्स्यसे	वेत्स्येथे	वेत्स्यध्वे
विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे	उ०	वेत्स्ये	वेत्स्यावहे	वेत्स्यामहे

लङ्				लिट्		
अविद्यत	अविद्येताम्	अविद्यन्त	प्र०	विविदे	विविदाते	विविदिरे
अविद्यथाः	अविद्येथाम्	अविद्यध्वम्	म०	विविदिषे	विविदाथे	विविदिध्वे
अविद्ये	अविद्यावहि	अविद्यामहि	उ०	विविदे	विविदिवहे	विविदिमहे

लोट्				लुट्		
विद्यताम्	विद्येताम्	विद्यन्ताम्	प्र०	वेत्ता	वेत्तारौ	वेत्तारः
विद्यस्व	विद्येथाम्	विद्यध्वम्	म०	वेत्तासे	वेत्तासाथे	वेत्ताध्वे
विद्यै	विद्यावहै	विद्यामहै	उ०	वेत्ताहे	वेत्तास्वहे	वेत्तास्महे

विधिलिङ्				लुङ्		
विद्येत	विद्येयाताम्	विद्येरन्	प्र०	अवित्त	अवित्साताम्	अवित्सत
विद्येथाः	विद्येयाथाम्	विद्येध्वम्	म०	अवित्थाः	अवित्साथाम्	अविद्ध्वम्
विद्येय	विद्येवहि	विद्येमहि	उ०	अवित्सि	अवित्स्वहि	अवित्स्महि

आशीर्लिङ्				लृङ्		
वित्सीष्ट	वित्सीयास्ताम्	वित्सीरन्	प्र०	अवेत्स्यत	अवेत्स्येताम्	अवेत्स्यन्त
वित्सीष्ठाः	वित्सीयास्थाम्	वित्सीध्वम्	म०	अवेत्स्यथाः	अवेत्स्येथाम्	अवेत्स्यध्वम्
वित्सीय	वित्सीवहि	वित्सीमहि	उ०	अवेत्स्ये	अवेत्स्यावहे	अवेत्स्यामहे

दिवादिगणीय कुछ अन्य धातुएँ

(१३) क्रुध् (क्रोध करना) परस्मैपदी

लट्	क्रुध्यति	क्रुध्यतः	क्रुध्यन्ति
लृट्	क्रोत्स्यति	क्रोत्स्यतः	क्रोत्स्यन्ति
आशीर्लिङ्	क्रुध्यात्	क्रुध्यास्ताम्	क्रुध्यासुः

लिट्	चुक्रोध	चुक्रुधतुः	चुक्रुधुः
लुङ्	अक्रुधत्	अक्रुधताम्	अक्रुधन्
लृङ्	अक्रोत्स्यत्	अक्रोत्स्यताम्	अक्रोत्स्यन्

(१४) क्लिश् (दुःखी होना, क्लेश पाना) आत्मनेपदी

लट्	क्लिश्यते	क्लिश्येते	क्लिश्यन्ते
लृट्	क्लेशिष्यते	क्लेशिष्येते	क्लेशिष्यन्ते
आशीर्लिङ्	क्लेशिषीष्ट	क्लेशिषीयास्ताम्	क्लेशिषीरन्
लिट्	चिक्लिशे	चिक्लिशाते	चिक्लिशिरे
	चिक्लिशिषे	चिक्लिशाथे	चिक्लिशिध्वे
	चिक्लिशे	चिक्लिशिवहे	चिक्लिशिमहे
लुङ्	अक्लिष्ट	अक्लिष्टाताम्	अक्लिष्टन्त
लृङ्	अक्लेशिष्यत	अक्लेशिष्यताम्	अक्लेशिष्यन्त

(१५) क्षुध् (भूखा होना) परस्मैपदी

लट्	क्षुध्यति	क्षुध्यतः	क्षुध्यन्ति
लृट्	क्षोत्स्यति	क्षोत्स्यतः	क्षोत्स्यन्ति
लङ्	अक्षुध्यत्	अक्षुध्यताम्	अक्षुध्यन्
आ० लिङ्	क्षुध्यात्	क्षुध्यास्ताम्	क्षुध्यासुः
लिट्	चुक्षोध	चुक्षुधतुः	चुक्षुधुः
लुट्	क्षोद्धा	क्षोद्धारौ	क्षोद्धारः
लुङ्	अक्षुधत्	अक्षुधताम्	अक्षुधन्

(१६) खिद् (खिन्न होना) आत्मनेपदी

लट्	खिद्यते	खिद्येते	खिद्यन्ते
लृट्	खेत्स्यते	खेत्स्येते	खेत्स्यन्ते
लङ्	अखिद्यत	अखिद्येताम्	अखिद्यन्त
आ० लिङ्	खित्सीष्ट	खित्सीयास्ताम्	खित्सीरन्
लिट्	चिखिदे	चिखिदाते	चिखिदिरे
लुट्	खेत्ता	खेत्तारौ	खेत्तारः

(१७) तुष् (प्रसन्न होना) परस्मैपदी

लट्	तुष्यति	तुष्यतः	तुष्यन्ति
लृट्	तोक्ष्यति	तोक्ष्यतः	तोक्ष्यन्ति
आ० लिङ्	तुष्यात्	तुष्यास्ताम्	तुष्यासुः
लिट्	तुतोष	तुतुषतुः	तुतुषुः
लुट्	तोष्टा	तोष्टारौ	तोष्टारः
लुङ्	अतुषत्	अतुषताम्	अतुषन्
लृङ्	अतोक्ष्यत्	अतोक्ष्यताम्	अतोक्ष्यन्

(१८) दम् (दमन करना, दबाना) परस्मैपदी

लट्	दाम्यति	दाम्यतः	दाम्यन्ति
लृट्	दमिष्यति	दमिष्यतः	दमिष्यन्ति
आ० लिङ्	दम्यात्	दम्यास्ताम्	दम्यासुः
लिट्	ददाम	ददमतुः	ददमुः
लुट्	दमिता	दमितारौ	दमितारः
लुङ्	अदमत्	अदमताम्	अदमन्
लृङ्	अदमिष्यत्	अदमिष्यताम्	अदमिष्यन्

(१९) दुष् (अशुद्ध होना) परस्मैपदी

लट्	दुष्यति	दुष्यतः	दुष्यन्ति
लृट्	दोक्ष्यति	दोक्ष्यतः	दोक्ष्यन्ति
आ० लिङ्०	दुष्यात्	दुष्यास्ताम्	दुष्यासुः
लिट्	दुदोष	दुदुषतुः	दुदुषुः
लुट्	दोष्टा	दोष्टारौ	दोष्टारः
लुङ्	अदुषत्	अदुषताम्	अदुषन्

(२०) द्रुह् (द्रोह करना) परस्मैपदी

लट्	द्रुह्यति	द्रुह्यतः	द्रुह्यन्ति
लृट्	द्रोहिष्यति	द्रोहिष्यतः	द्रोहिष्यन्ति
	ध्रोक्ष्यति	ध्रोक्ष्यतः	ध्रोक्ष्यन्ति
लिट्	दुद्रोह	दुद्रुहतुः	दुद्रुहुः
	दुद्रोहिथ, दुद्रोढ दुद्रोग्ध	दुद्रुहथुः	दुद्रुह
	दुद्रोह,	दुद्रुहिव, दुद्रुह्व	दुद्रुहिम दुद्रुह्म
लुट्	द्रोहिता	द्रोहितारौ	द्रोहितारः
	द्रोढा	द्रोढारौ	द्रोढारः
	द्रोग्धा	द्रोग्धारौ	द्रोग्धारः
लुङ्	अद्रुहत्	अद्रुहताम्	अद्रुहन्
लृङ्	अद्रोहिष्यत्	अद्रोहिष्यताम्	अद्रोहिष्यन्
	अध्रोक्ष्यत्	अध्रोक्ष्यताम्	अध्रोक्ष्यन्

(२१) मन् (समझना) आत्मनेपदी

लट्	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
लृट्	मंस्यते	मंस्येते	मंस्यन्ते
आ० लिङ्	मंसीष्ट	मंसीयास्ताम्	मंसीरन्
लिट्	मेने	मेनाते	मेनिरे
लुट्	मन्ता	मन्तारौ	मन्तारः

लुङ्	अमंस्त	अमंसाताम्	अमंसत
	अमंस्थाः	अमंसाथाम्	अमंध्वम्
	अमंसि	अमंस्वहि	अमंस्महि

(२२) व्यध् (वेधना) परस्मैपदी

लट्	विध्यति	विध्यतः	विध्यन्ति
लृट्	व्यत्स्यति	व्यत्स्यतः	व्यत्स्यन्ति
लिट्	विव्याध	विविधतुः	विविधुः
	विव्यधिथ, विव्यद्ध	विविधथुः	विविध
	विव्याध, विव्यध	विविधिव	विविधिम
लुट्	व्यद्धा	व्यद्धारौ	व्यद्धारः
लुङ्	अव्यात्सीत्	अव्याद्धाम्	अव्यात्सुः
	अव्यात्सीः	अव्याद्धम्	अव्याद्ध
	अव्यात्सम्	अव्यात्स्व	अव्यात्स्म

(२३) शुष (सूखना) परस्मैपदी

लट्	शुष्यति	शुष्यतः	शुष्यन्ति
लृट्	शोक्ष्यति	शोक्ष्यतः	शोक्ष्यन्ति
आ० लिङ्	शुष्यात्	शुष्यास्ताम्	शुष्यासुः
लिट्	शुशोष	शुशुषतुः	शुशुषुः
लुट्	शोष्टा	शोष्टारौ	शोष्टारः
लुङ्	अशुषत्	अशुषताम्	अशुषन्

(२४) सिध् (सिद्ध होना) परस्मैपदी

लट्	सिध्यति	सिध्यतः	सिध्यन्ति
लृट्	सेत्स्यति	सेत्स्यतः	सेत्स्यन्ति
आ० लिङ्	सिध्यात्	सिध्यास्ताम्	सिध्यासुः
लिट्	सिषेध	सिषिधतुः	सिषिधुः
लुट्	सेद्धा	सेद्धारौ	सेद्धारः
लुङ्	असिधत्	असिधिताम्	असिधिन्

(२५) सिव् (सीना) परस्मैपदी

लट्	सीव्यति	सीव्यतः	सीव्यन्ति
लृट्	सेविष्यति	सेविष्यतः	सेविष्यन्ति
आ० लिङ्०	सीव्यात्	सीव्यास्ताम्	सीव्यासुः
लिट्	सिषेव	सिषिवतुः	सिषिवुः
लुट्	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
लुङ्	असेवीत्	असेविष्टाम्	असेविषुः

(२६) हृष् (हर्षित होना) परस्मैपदी

लट्	हृष्यति	हृष्यतः	हृष्यन्ति
लृट्	हर्षिष्यति	हर्षिष्यतः	हर्षिष्यन्ति
आ० लिङ्०	हृष्यात्	हृष्यास्ताम्	हृष्यासुः
लिट्	जहर्ष	जहृषतुः	जहृषुः
लुट्	हर्षिता	हर्षितारौ	हर्षितारः
लुङ्	अहृषत्	अहृषताम्	अहृषन्

५—स्वादिगण

इस गण की प्रथम धातु 'सु' है, इसलिए इस गण का नाम स्वादिगण पड़ा। इस गण की धातुओं में लट् आदि चार लकारों के पहले धातु के बाद 'नु' जोड़ दिया जाता है। लट्—ति, सि, मि, लोट्—तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै, आमहै, लङ्—त्, स्, अम् इन तेरह विभक्तियों को पित् विभक्ति कहते हैं। इनके अतिरिक्त शेष विभक्तियाँ अपित् कहलाती हैं। १२ पित् विभक्तियों में 'नु' के 'उ' का 'ओ' हो जाता है। यथा :-लट्—सुनोति, सुनोषि, सुनोमि। लोट्—सुनोतु, सुनवानि, सुनवाव, सुनवाम, सुनवै, सुनवावहै, सुनवामहै। लङ्—असुनोत्, असुनोः, असुनवम्। आदि।

यदि असंयुक्त वर्ण के बाद 'नु' हो तो 'व्' 'म्' विभक्ति परे रहते उसके स्थान में विकल्प से 'न्' हो जाता है। जैसे :—सुनुवः, सुन्वः, सुनुमः, सुन्मः। संयुक्त वर्ण से 'नु' के परे रहने पर ऐसा नहीं होता। यथा :—शक्—शक्नुवः, शक्नुमः। स्वरादि अपित् विभक्ति परे रहने पर संयुक्त वर्ण के बाद आये हुए 'नु' के 'उ' का 'उव्' हो जाता है। यथा—आप्-आप्नुवन्ति, शक्-शक्नुवन्ति आदि। परन्तु 'नु' के पहले संयुक्त वर्ण नहीं रहने से ऐसा नहीं होता। यथा—सुन्वन्ति आदि।

यदि 'नु' संयुक्त वर्ण से परे न हो तो लोट् के 'हि' का लोप हो जाता है। यथा—चिनु, सुनु आदि। संयुक्त वर्ण से परे रहने पर ऐसा नहीं होता। यथा—आप्नुहि शक्नुहि आदि।

उभयपदी

(१) सु (रस निकालना) परस्मैपदी

लट्			लोट्		
सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति	प्र० सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु
सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ	म० सुनु	सुनुतम्	सुनुत
सुनोमि	सुनुवः, सुन्वः	सुनुमः,सुन्मः	उ० सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम

लृट्			विधिलिङ्		
सोष्यति	सोष्यतः	सोष्यन्ति	प्र० सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः
सोष्यसि	सोष्यथः	सोष्यथ	म० सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात
सोष्यामि	सोष्यावः	सोष्यामः	उ० सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम

लङ्				आशीर्लिङ्	
असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	प्र० सूयात्	सूयास्ताम्	सूयासुः
असुनोः	असुनुतम्	असुनुत	म० सूयाः	सूयास्तम्	सूयास्त
असुनवम्	असुनुव-न्व	असुनुम-न्म	उ० सूयासम्	सूयास्व	सूयास्म

लिट्				लुङ्	
सुषाव	सुषुवतुः	सुषुवुः	प्र० असावीत्	असाविष्टाम्	असाविषुः
सुषविथ,सुषोथ	सुषुवथुः	सुषुव	म० असावीः	असाविष्टम्	असाविष्ट
सुषाव,सुषव	सुषुविव	सुषुविम	उ० असाविषम्	असाविष्व	असाविष्म

लुट्				लृङ्	
सोता	सोतारौ	सोतारः	प्र० असोष्यत्	असोष्यताम्	असोष्यन्
सोतासि	सोतास्थः	सोतास्थ	म० असोष्यः	असोष्यतम्	असोष्यत
सोतास्मि	सोतास्वः	सोतास्मः	उ० असोष्यम्	असोष्याव	असोष्याम

सु (रस निकालना) आत्मनेपदी

लट्				आशीर्लिङ्	
सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते	प्र० सोषीष्ट	सोषीयास्ताम्	सोषीरन्
सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे	म० सोषीष्ठाः	सोषीयास्थाम्	सोषीध्वम्
सुन्वे	सुनुवहे-न्वहे	सुनुमहे-न्महे	उ० सोषीय	सोषीवहि	सोषीमहि

लृट्				लिट्	
सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते	प्र० सुषुवे	सुषुवाते	सुषुविरे
सोष्यसे	सोष्येथे	सोष्यध्वे	म० सुषुविषे	सुषुवाथे	सुषुविध्वे
सोष्ये	सोष्यावहे	सोष्यामहे	उ० सुषुवे	सुषुविवहे	सुषुविमहे

लङ्				लुट्	
असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत	प्र० सोता	सोतारौ	सोतारः
असुनुथाः	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्	म० सोतासे	सोतासाथे	सोताध्वे
असुन्वि	असुनुवहि	असुनुमहि	उ० सोताहे	सोतास्वहे	सोतास्महे

लोट्				लुङ्	
सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्	प्र० असोष्ट	असोषाताम्	असोषत
सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्	म० असोष्ठाः	असोषाथाम्	असोढ्वम्
सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै	उ० असोषि	असोष्वहि	असोष्महि

विधिलिङ्				लृङ्	
सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्	प्र० असोष्यत	असोष्येताम्	असोष्यन्त
सुन्वीथाः	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्	म० असोष्यथाः	असोष्येथाम्	असोष्यध्वम्
सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि	उ० असोष्ये	असोष्यावहि	असोष्यामहि

(२) आप् (प्राप्त करना परस्मैपदी)

लट्				आशीर्लिङ्		
आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति	प्र०	आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः
आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ	म०	आप्याः	आप्यास्तम्	आप्यास्त
आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः	उ०	आप्यासम्	आप्यास्व	आप्यास्म
लृट्				लिट्		
आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति	प्र०	आप	आपतुः	आपुः
आप्स्यसि	आप्स्यथः	आप्स्यथ	म०	आपिथ	आपथुः	आप
आप्स्यामि	आप्स्यावः	आप्स्यामः	उ०	आप	आपिव	आपिम
लङ्				लुट्		
आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्	प्र०	आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः
आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत	म०	आप्तासि	आप्तास्थः	आप्तास्थ
आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम	उ०	आप्तास्मि	आप्तास्वः	आप्तास्मः
लोट्				लुङ्		
आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु	प्र०	आपत्	आपताम्	आपन्
आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत	म०	आपः	आपतम्	आपत
आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम	उ०	आपम्	आपाव	आपाम
विधिलिङ्				लृङ्		
आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः	प्र०	आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्
आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात	म०	आप्स्यः	आप्स्यतम्	आप्स्यत
आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम	उ०	आप्स्यम्	आप्स्याव	आप्स्याम

उभयपदी

(३) चि (इकट्ठा करना, चुनना) परस्मैपदी

लट्				लङ्		
चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति	प्र०	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ	म०	अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत
चिनोमि	चिनुवः- न्वः	चिनुमः- न्मः	उ०	अचिनवम्	अचिनुव- न्व	अचिनुम-न्म
लृट्				लोट्		
चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति	प्र०	चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु
चेष्यसि	चेष्यथः	चेष्यथ	म०	चिनु	चिनुतम्	चिनुत
चेष्यामि	चेष्यावः	चेष्यामः	उ०	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम
विधिलिङ्				लुट्		
चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः	प्र०	चेता	चेतारौ	चेतारः
चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात	म०	चेतासि	चेतास्थः	चेतास्थ
चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	उ०	चेतास्मि	चेतास्वः	चेतास्मः

आशीर्लिङ्				लुङ्		
चीयात	चीयास्ताम्	चीयासुः	प्र०	अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः
चीयाः	चीयास्तम्	चीयास्त	म०	अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट
चीयासम्	चीयास्व	चीयास्म	उ०	अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म

लिट्				लृङ्		
चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः	प्र०	अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्
चिचयिथ, चिचेय	चिच्यथुः	चिच्य	म०	अचेष्यः	अचेष्यतम्	अचेष्यत
चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम	उ०	अचेष्यम्	अचेष्याव	अचेष्याम

अथवा

चिकाय	चिक्यतुः	चिक्युः	प्र०
चिकयिथ, चिकेय	चिक्यथुः	चिक्य	म०
चिकाय, चिकय	चिक्यिव	चिक्यिम	उ०

चि (इकट्ठा करना, चुनना) आत्मनेपदी

लट्				लोट्		
चिनुते	चिन्वाते	चिन्वते	प्र०	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
चिनुषे	चिन्वाथे	चिनुध्वे	म०	चिनुष्व	चिन्वाथाम्	चिनुध्वम्
चिन्वे	चिनुवहे-न्वहे	चिनुमहे-न्महे	उ०	चिनवै	चिनवावहै	चिनवामहै

लृट्				विधिलिङ्		
चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते	प्र०	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीरन्
चेष्यसे	चेष्येथे	चेष्यध्वे	म०	चिन्वीथाः	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
चेष्ये	चेष्यावहे	चेष्यामहे	उ०	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि

लङ्				आशीर्लिङ्		
अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत	प्र०	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
अचिनुथाः	अचिन्वाथाम्	अचिनुध्वम्	म०	चेषीष्ठाः	चेषीयास्थाम्	चेषीढ्वम्
अचिन्वि	अचिनुवहि	अचिनुमहि	उ०	चेषीय	चेषीवहि	चेषीमहि

लिट्				लुङ्		
चिच्ये	चिच्याते	चिच्यिरे	प्र०	अचेष्ट	अचेषाताम्	अचेषत
चिच्यिषे	चिच्याथे	चिच्यिढ्वे	म०	अचेष्ठाः	अचेषाथाम्	अचेढ्वम्
चिच्ये	चिच्यिवहे	चिच्यिमहे	उ०	अचेषि	अचेष्वहि	अचेष्महि

अथवा				लृङ्		
चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे	प्र०	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त
चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे	म०	अचेष्यथाः	अचेष्येथाम्	अचेष्यध्वम्
चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे	उ०	अचेष्ये	अचेष्यावहि	अचेष्यामहि

लुट्

चेता	चेतारौ	चेतारः	प्र०
चेतासे	चेतासाथे	चेताध्वे	म०
चेताहे	चेतास्वहे	चेतास्महे	उ०

उभयपदी

(४) वृ (वरण करना चुनना) परस्मैपदी

लट्				विधिलिङ्		
वृणोति	वृणुतः	वृण्वन्ति	प्र०	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयुः
वृणोषि	वृणुथः	वृणुथ	म०	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
वृणोमि	वृणुवः, वृण्वः	वृणुमः, वृण्मः	उ०	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम

लृट्				आ० लिङ्		
वरिष्यति वरीष्यति	वरिष्यतः वरीष्यतः	वरिष्यन्ति वरीष्यन्ति	प्र०	व्रियात्	व्रियास्ताम्	व्रियासुः
वरिष्यसि	वरिष्यथः	वरिष्यथ	म०	व्रियाः	व्रियास्तम्	व्रियास्त
वरिष्यामि	वरिष्यावः	वरिष्यामः	उ०	व्रियासम्	व्रियास्व	व्रियास्म

लङ्				लिट्		
अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्	प्र०	ववार	वव्रतुः	वव्रुः
अवृणोः	अवृणुतम्	अवृणुत	म०	ववरिथ	वव्रथुः	वव्र
अवृणवम्	अवृणुव अवृण्व	अवृणुम अवृण्म	उ०	ववार, ववर	वव्रिव	वव्रिम

लोट्				लुट्		
वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु	प्र०	वरिता वरीता	वरितारौ वरीतारौ	वरितारः वरीतारः
वृणु	वृणुतम्	वृणुत	म०	वरितासि	वरितास्थः	वरितास्थ
वृणवानि	वृणवाव	वृणवाम	उ०	वरितास्मि	वरितास्वः	वरितास्मः

लुङ्				लृङ्		
अवारीत्	अवारिष्टाम्	अवारिषुः	प्र०	अवरिष्यत् अवरीष्यत्	अवरिष्यताम् अवरीष्यताम्	अवरिष्यन् अवरीष्यन्
अवारीः	अवारिष्टम्	अवारिष्ट	म०	अवरिष्यः	अवरिष्यतम्	अवरिष्यत
अवारिषम्	अवारिष्व	अवारिष्म	उ०	अवरिष्यम्	अवरिष्याव	अवरिष्याम

वृ (वरण करना, चुनना) आत्मनेपदी

लट्				लृङ्		
वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते	प्र०	वरिषीष्ट वृषीष्ट	वरिषीयास्ताम् वृषीयास्ताम्	वरिषीरन् वृषीरन्

वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे	म०	वरिषीष्ठाः	वरिषीयास्थाम्	वरिषीध्वम्
वृण्वे	वृणुवहे वृण्वहे	वृणुमहे वृण्महे	उ०	वरिषीय	वरिषीवहि	वरिषीमहि

लृट्				लिट्		
{ वरिष्येते { वरीष्यते	वरिष्येते वरीष्येते	वरिष्यन्ते वरीष्यन्ते	प्र०	वव्रे	वव्राते	वव्रिरे
वरिष्येसे	वरिष्येथे	वरिष्यध्वे	म०	वव्रुषे	वव्राथे	वव्रृध्वे
वरिष्ये	वरिष्यावहे	वरिष्यामहे	उ०	वव्रे	वव्रृवहे	वव्रृमहे

लङ्				लुट्		
अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत	प्र०	{ वरिता { वरीता	वरितारौ वरीतारौ	वरितारः वरीतारः
अवृणुथाः	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्	म०	वरितासे	वरितासाथे	वरिताध्वे
अवृण्वि	अवृण्वहि	अवृण्महि	उ०	वरिताहे	वरितास्वहे	वरितास्महे

लोट्				लुङ्		
वृणुताम्	वृण्वाताम्	वृण्वताम्	प्र०	अवरीष्ट अवरिष्ट	अवरीषाताम् अवरिषाताम्	अवरीषत अवरिषत
वृणुष्व	वृण्वाथाम्	वृणुध्वम्	म०	अवरिष्ठाः	अवरिषाथाम्	अवरिध्वम्
वृणवै	वृणवावहै	वृणवामहै	उ०	अवरिषि	अवरिष्वहि	अवरिष्महि

विधिलिङ्				अथवा		
वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्	प्र०	अवृत	अवृषाताम्	अवृषत
वृण्वीथाः	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्	म०	अवृथाः	अवृषाथाम्	अवृध्वम्
वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि	उ०	अवृषि	अवृष्वहि	अवृष्महि

लृङ्			
{ अवरिष्यत { अवरीष्यत	अवरिष्येताम् अवरीष्येताम्	अवरिष्यन्त अवरीष्यन्त	प्र०
अवरिष्यथाः	अवरिष्येथाम्	अवरिष्यध्वम्	म०
अवरिष्ये	अवरिष्यावहि	अवरिष्यामहि	उ०

(५) शक् (सकना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति	प्र०	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ	म०	शक्याः	शक्यास्तम्	शक्यास्त
शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः	उ०	शक्यासम्	शक्यास्व	शक्यास्म

लृट्				लिट्		
शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति	प्र०	शशाक	शेकतुः	शेकुः
शक्ष्यसि	शक्ष्यथः	शक्ष्यथ	म०	शेकिथ	शेकथुः	शेक
शक्ष्यामि	शक्ष्यावः	शक्ष्यामः	उ०	शशाक, शशक	शेकिव	शेकिम

लङ्				लुट्	
अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्	प्र० शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः
अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत	म० शक्तासि	शक्तास्थः	शक्तास्थ
अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम	उ० शक्तास्मि	शक्तास्वः	शक्तास्मः

लोट्				लुङ्	
शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु	प्र० अशकत्	अशकताम्	अशकन्
शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत	म० अशकः	अशकतम्	अशकत
शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम	उ० अशकम्	अशकाव	अशकाम

विधिलिङ्				लृङ्	
शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः	प्र० अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्	अशक्ष्यन्
शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात	म० अशक्ष्यः	अशक्ष्यतम्	अशक्ष्यत
शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम	उ० अशक्ष्यम्	अशक्ष्याव	अशक्ष्याम

६—तुदादिगण

इस गण की प्रथम धातु 'तुद्' है, इसी कारण इसका नाम तुदादि गण है।

तुदादिभ्यः शः ३।१।७७।

भ्वादिगणीय धातुओं की तरह तुदादिगणीय धातुओं के भी लट्, लोट्, लङ् विधिलिङ् इन चार लकारों में धातुओं के बाद तथा विभक्ति के पूर्व 'अ' जोड़ दिया जाता है। किन्तु भ्वादिगण की तरह इसमें गुण नहीं होता; धातु के अन्त के इ, ई का इय, उ, ऊ का उव्, ऋ, ॠ, का क्रमशः रिय् और इर् हो जाता है। यथा—तुद् + अ + ति = तुदति, सृज् + अ + ति = सृजति, शि + अ + ति = शियति, धु + धु + अ + ति = धुवति, कॄ + ति = किरति आदि।

उभयपदी

(१) तुद् (दुःख देना) परस्मैपद

लट्				आशीर्लिङ्	
तुदति	तुदतः	तुदन्ति	प्र० तुद्यात्	तुद्यास्ताम्	तुद्यासुः
तुदसि	तुदथः	तुदथ	म० तुद्याः	तुद्यास्तम्	तुद्यास्त
तुदामि	तुदावः	तुदामः	उ० तुद्यासम्	तुद्यास्व	तुद्यास्म

लृट्				लिट्	
तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति	प्र० तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः
तोत्स्यसि	तोत्स्यथः	तोत्स्यथ	म० तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद
तोत्स्यामि	तोत्स्यावः	तोत्स्यामः	उ० तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम

लङ्				लुट्		
अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्	प्र०	तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः
अतुदः	अतुदतम्	अतुदत	म०	तोत्तासि	तोत्तास्थः	तोत्तास्थ
अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम	उ०	तोत्तास्मि	तोत्तास्वः	तोत्तास्मः

लोट्				लुङ्		
तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु	प्र०	अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः
तुद	तुदतम्	तुदत	म०	अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त
तुदानि	तुदाव	तुदाम	उ०	अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म

विधिलिङ्				लृङ्		
तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः	प्र०	अतोत्स्यत्	अतोत्स्यताम्	अतोत्स्यन्
तुदेः	तुदेतम्	तुदेत	म०	अतोत्स्यः	अतोत्स्यतम्	अतोत्स्यत
तुदेयम्	तुदेव	तुदेम	उ०	अतोत्स्यम्	अतोत्स्याव	अतोत्स्याम

तुद् (दुःख देना) आत्मनेपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
तुदते	तुदेते	तुदन्ते	प्र०	तुत्सीष्ट	तुत्सीयास्ताम्	तुत्सीरन्
तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे	म०	तुत्सीष्ठाः	तुत्सीयास्थाम्	तुत्सीध्वम्
तुदे	तुदावहे	तुदामहे	उ०	तुत्सीय	तुत्सीवहि	तुत्सीमहि

लृट्				लिट्		
तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते	प्र०	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
तोत्स्यसे	तोत्स्येथे	तोत्स्यध्वे	म०	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
तोत्स्ये	तोत्स्यावहे	तोत्स्यामहे	उ०	तुतुदे	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे

लङ्				लुट्		
अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त	प्र०	तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः
अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्	म०	तोत्तासे	तोत्तासाथे	तोत्ताध्वे
अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि	उ०	तोत्ताहे	तोत्तास्वहे	तोत्तास्महे

लोट्				लुङ्		
तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्	प्र०	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्	म०	अतुत्थाः	अतुत्साथाम्	अतुद्ध्वम्
तुदै	तुदावहै	तुदामहै	उ०	अतुत्सि	अतुत्स्वहि	अतुत्स्महि

विधिलिङ्				लृङ्		
तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्	प्र०	अतोत्स्यत	अतोत्स्येताम्	अतोत्स्यन्त
तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्	म०	अतोत्स्यथाः	अतोत्स्येथाम्	अतोत्स्यध्वम्
तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि	उ०	अतोत्स्ये	अतोत्स्यावहि	अतोत्स्यामहि

(२) इष् (इच्छा करना) परस्मैपदी

लट्				लङ्		
इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति	प्र०	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ	म०	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः	उ०	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

लृट्				लोट्		
एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति	प्र०	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ	म०	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः	उ०	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

विधिलिङ्				लुट्		
इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः	प्र०	एषिता	एषितारौ	एषितारः
इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत	म०	एषितासि	एषितास्थः	एषितास्थ
इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम	उ०	एषितास्मि	एषितास्वः	एषितास्मः

आशीर्लिङ्				अथवा		
इष्यात्	इष्यास्ताम्	इष्यासुः	प्र०	एष्टा	एष्टारौ	एष्टारः
इष्याः	इष्यास्तम्	इष्यास्त	म०	एष्टासि	एष्टास्थः	एष्टास्थ
इष्यासम्	इष्यास्व	इष्यास्म	उ०	एष्टास्मि	एष्टास्वः	एष्टास्मः

लिट्				लुङ्		
इयेष	ईषतुः	ईषुः	प्र०	ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः
इयेषिथ	ईषथुः	ईष	म०	ऐषीः	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट
इयेष	ईषिव	ईषिम	उ०	ऐषिषम्	ऐषिष्व	ऐषिष्म

	लृङ्		
प्र०	ऐषिष्यत्	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्
म०	ऐषिष्यः	ऐषिष्यतम्	ऐषिष्यत
उ०	ऐषिष्यम्	ऐषिष्याव	ऐषिष्याम

(३) कॄ (तितर बितर करना) परस्मैपदी

लट्				लोट्		
किरति	किरतः	किरन्ति	प्र०	किरतु	किरताम्	किरन्तु
किरसि	किरथः	किरथ	म०	किर	किरतम्	किरत
किरामि	किरावः	किरामः	उ०	किराणि	किराव	किराम

लृट्				विधिलिङ्		
करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	प्र०	किरेत्	किरेताम्	किरेयुः
करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ	म०	किरेः	किरेतम्	किरेत
करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः	उ०	किरेयम्	किरेव	किरेम

लङ्				आशीर्लिङ्		
अकिरत्	अकिरताम्	अकिरन्	प्र०	कीर्यात्	कीर्यास्ताम्	कीर्यासुः
अकिरः	अकिरतम्	अकिरत	म०	कीर्याः	कीर्यास्तम्	कीर्यास्त
अकिरम्	अकिराव	अकिराम	उ०	कीर्यासम्	कीर्यास्व	कीर्यास्म

लिट्				लुङ्		
चकार	चकरतुः	चकरुः	प्र०	अकारीत्	अकारिष्टाम्	अकारिषुः
चकरिथ	चकरथुः	चकर	म०	अकारीः	अकारिष्टम्	अकारिष्ट
चकार, चकर	चकरिव	चकरिम	उ०	अकारिषम्	अकारिष्व	अकारिष्म

लुट्				लृङ्		
करिता, करीता	करितारौ	करितारः	प्र०	अकरिष्यत्, अकरीष्यत्	अकरिष्यताम्, अकरीष्यताम्	अकरिष्यत्, अकरीष्यन्
करितासि	करितास्थः	करितास्थ	म०	अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	अकरिष्यत
करितास्मि	करितास्वः	करितास्मः	उ०	अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

(४) गॄ (निगलना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
गिरति	गिरतः	गिरन्ति	प्र०	गीर्यात्	गीर्यास्ताम्	गीर्यासुः
गिरसि	गिरथः	गिरथ	म०	गीर्याः	गीर्यास्तम्	गीर्यास्त
गिरामि	गिरावः	गिरामः	उ०	गीर्यासम्	गीर्यास्व	गीर्यास्म

लृट्				लिट्		
गरिष्यति	गरिष्यतः	गरिष्यन्ति	प्र०	जगार	जगरतुः	जगरुः
गरिष्यसि	गरिष्यथः	गरिष्यथ	म०	जगरिथ	जगरथुः	जगर
गरिष्यामि	गरिष्यावः	गरिष्यामः	उ०	जगार, जगर	जगरिव	जगरिम

लङ्				लुट्		
अगिरत्	अगिरताम्	अगिरन्	प्र०	गरिता-गरीता	गरितारौ	गरितारः
अगिरः	अगिरतम्	अगिरत	म०	गरितासि	गरितास्थः	गरितास्थ
अगिरम्	अगिराव	अगिराम	उ०	गरितास्मि	गरितास्वः	गरितास्मः

लोट्				लुङ्		
गिरतु	गिरताम्	गिरन्तु	प्र०	अगारीत्	अगारिष्टाम्	अगारिषुः
गिर	गिरतम्	गिरत	म०	अगारीः	अगारिष्टम्	अगारिष्ट
गिराणि	गिराव	गिराम	उ०	अगारिषम्	अगारिष्व	अगारिष्म

विधिलिङ्				लृङ्		
गिरेत्	गिरेताम्	गिरेयुः	प्र०	अगरिष्यत्, अगरीष्यत्	अगरिष्यताम्, अगरीष्यताम्	अगरिष्यन्, अगरीष्यन्
गिरेः	गिरेतम्	गिरेत	म०	अगरिष्यः	अगरिष्यतम्	अगरिष्यत
गिरेयम्	गिरेव	गिरेम	उ०	अगरिष्यम्	अगरिष्याव	अगरिष्याम

उभयपदी

(५) कृष् (भूमि जोतना) परस्मैपदी

लट्				लिट्		
कृषति	कृषतः	कृषन्ति	प्र०	चकर्ष	चकृषतुः	चकृषुः
कृषसि	कृषथः	कृषथ	म०	चकर्षिथ	चकृषथुः	चकृष
कृषामि	कृषावः	कृषामः	उ०	चकर्ष	चकृषिव	चकृषिम

लृट्				लुट्		
क्रक्ष्यति	क्रक्ष्यतः	क्रक्ष्यन्ति	प्र०	क्रष्टा	क्रष्टारौ	क्रष्टारः
क्रक्ष्यसि	क्रक्ष्यथः	क्रक्ष्यथ	म०	क्रष्टासि	क्रष्टास्थः	क्रष्टास्थ
क्रक्ष्यामि	क्रक्ष्यावः	क्रक्ष्यामः	उ०	क्रष्टास्मि	क्रष्टास्वः	क्रष्टास्मः
अथवा				अथवा		
कर्क्ष्यति	कर्क्ष्यतः	कर्क्ष्यन्ति	प्र०	कर्ष्टा	कर्ष्टारौ	कर्ष्टारः
कर्क्ष्यसि	कर्क्ष्यथः	कर्क्ष्यथ	म०	कर्ष्टासि	कर्ष्टास्थः	कर्ष्टास्थ
कर्क्ष्यामि	कर्क्ष्यावः	कर्क्ष्यामः	उ०	कर्ष्टास्मि	कर्ष्टास्वः	कर्ष्टास्मः

लङ्				लुङ्		
अकृषत्	अकृषताम्	अकृषन्	प्र०	अकृक्षत्	अकृक्षताम्	अकृक्षन्
अकृषः	अकृषतम्	अकृषत	म०	अकृक्षः	अकृक्षतम्	अकृक्षत
अकृषम्	अकृषाव	अकृषाम	उ०	अकृक्षम्	अकृक्षाव	अकृक्षाम

लोट्				अथवा		
कृषतु	कृषताम्	कृषन्तु	प्र०	अक्राक्षीत्	अक्राष्टाम्	अक्राक्षुः
कृष	कृषतम्	कृषत	म०	अक्राक्षीः	अक्राष्टम्	अक्राष्ट
कृषाणि	कृषाव	कृषाम	उ०	अक्राक्षम्	अक्राक्ष्व	अक्राक्ष्म

विधिलिङ्				अथवा		
कृषेत्	कृषेताम्	कृषेयुः	प्र०	अकार्क्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्क्षुः
कृषेः	कृषेतम्	कृषेत	म०	अकार्क्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
कृषेयम्	कृषेव	कृषेम	उ०	अकार्क्षम्	अकार्क्ष्व	अकार्क्ष्म

आशीर्लिङ्				लृङ्		
कृष्यात्	कृष्यास्ताम्	कृष्यासुः	प्र०	अक्रक्ष्यत्	अक्रक्ष्यताम्	अक्रक्ष्यन्
कृष्याः	कृष्यास्तम्	कृष्यास्त	म०	अक्रक्ष्यः	अक्रक्ष्यतम्	अक्रक्ष्यत
कृष्यासम्	कृष्यास्व	कृष्यास्म	उ०	अक्रक्ष्यम्	अक्रक्ष्याव	अक्रक्ष्याम

अथवा

अकर्क्ष्यत्	अकर्क्ष्यताम्	अकर्क्ष्यन्	प्र०
अकर्क्ष्यः	अकर्क्ष्यतम्	अकर्क्ष्यत	म०
अकर्क्ष्यम्	अकर्क्ष्याव	अकर्क्ष्याम	उ०

	लोट्				लुङ्	
क्षिपताम्	क्षिपेताम्	क्षिपन्ताम्	प्र०	अक्षिप्त	अक्षिप्साताम्	अक्षिप्सत
क्षिपस्व	क्षिपेथाम्	क्षिपध्वम्	म०	अक्षिप्थाः	अक्षिप्साथाम्	अक्षिप्ध्वम्
क्षिपै	क्षिपावहै	क्षिपामहै	उ०	अक्षिप्सि	अक्षिप्स्वहि	अक्षिप्स्महि

	विधिलिङ्				लृङ्	
क्षिपेत	क्षिपेयाताम्	क्षिपेरन्	प्र०	अक्षेप्स्यत	अक्षेप्स्येताम्	अक्षेप्स्यन्त
क्षिपेथाः	क्षिपेयाथाम्	क्षिपेध्वम्	म०	अक्षेप्स्यथाः	अक्षेप्स्येथाम्	अक्षेप्स्यध्वम्
क्षिपेय	क्षिपेवहि	क्षिपेमहि	उ०	अक्षेप्स्ये	अक्षेप्स्यावहि	अक्षेप्स्यामहि

(७) प्रच्छ् (पूछना) परस्मैपदी

	लट्				लङ्	
पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति	प्र०	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ	म०	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः	उ०	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

	लृट्				लोट्	
प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति	प्र०	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ	म०	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्यामः	उ०	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

	विधिलिङ्				लुट्	
पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः	प्र०	प्रष्टा	प्रष्टारौ	प्रष्टारः
पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत	म०	प्रष्टासि	प्रष्टास्थः	प्रष्टास्थ
पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम	उ०	प्रष्टास्मि	प्रष्टास्वः	प्रष्टास्मः

	आशीर्लिङ्				लुङ्	
पृच्छ्यात्	पृच्छ्यास्ताम्	पृच्छ्यासुः	प्र०	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षुः
पृच्छ्याः	पृच्छ्यास्तम्	पृच्छ्यास्त	म०	अप्राक्षीः	अप्राष्टम्	अप्राष्ट
पृच्छ्यासम्	पृच्छ्यास्व	पृच्छ्यास्म	उ०	अप्राक्षम्	अप्राक्ष्व	अप्राक्ष्म

	लिट्				लृङ्	
पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः	प्र०	अप्रक्ष्यत्	अप्रक्ष्यताम्	अप्रक्ष्यन्
पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ	म०	अप्रक्ष्यः	अप्रक्ष्यतम्	अप्रक्ष्यत
पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम	उ०	अप्रक्ष्यम्	अप्रक्ष्याव	अप्रक्ष्याम

उभयपदी

(८) मुच् (छोड़ना) परस्मैपदी

	लट्				विधिलिङ्	
मुञ्चति	मुञ्चतः	मुञ्चन्ति	प्र०	मुञ्चेत्	मुञ्चेताम्	मुञ्चेयुः
मुञ्चसि	मुञ्चथः	मुञ्चथ	म०	मुञ्चेः	मुञ्चेतम्	मुञ्चेत
मुञ्चामि	मुञ्चावः	मुञ्चामः	उ०	मुञ्चेयम्	मुञ्चेव	मुञ्चेम

लृट्				आशीर्लिङ्		
मोक्ष्यति	मोक्ष्यतः	मोक्ष्यन्ति	प्र०	मुच्यात्	मुच्यास्ताम्	मुच्यासुः
मोक्ष्यसि	मोक्ष्यथः	मोक्ष्यथ	म०	मुच्याः	मुच्यास्तम्	मुच्यास्त
मोक्ष्यामि	मोक्ष्यावः	मोक्ष्यामः	उ०	मुच्यासम्	मुच्यास्व	मुच्यास्म

लङ्				लिट्		
अमुञ्चत्	अमुञ्चताम्	अमुञ्चन्	प्र०	मुमोच	मुमुचतुः	मुमुचुः
अमुञ्चः	अमुञ्चतम्	अमुञ्चत	म०	मुमोचिथ	मुमुचथुः	मुमुच
अमुञ्चम्	अमुञ्चाव	अमुञ्चाम	उ०	मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम

लोट्				लुट्		
मुञ्चतु	मुञ्चताम्	मुञ्चन्तु	प्र०	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः
मुञ्च	मुञ्चतम्	मुञ्चत	म०	मोक्तासि	मोक्तास्थः	मोक्तास्थ
मुञ्चानि	मुञ्चाव	मुञ्चाम	उ०	मोक्तास्मि	मोक्तास्वः	मोक्तास्मः

लुङ्				लृङ्		
अमुचत्	अमुचताम्	अमुचन्	प्र०	अमोक्ष्यत्	अमोक्ष्यताम्	अमोक्ष्यन्
अमुचः	अमुचतम्	अमुचत	म०	अमोक्ष्यः	अमोक्ष्यतम्	अमोक्ष्यत
अमुचम्	अमुचाव	अमुचाम	उ०	अमोक्ष्यम्	अमोक्ष्याव	अमोक्ष्याम

मुच् (छोड़ना) आत्मनेपद

लट्				आशीर्लिङ्		
मुञ्चते	मुञ्चेते	मुञ्चन्ते	प्र०	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मुक्षीरन्
मुञ्चसे	मुञ्चेथे	मुञ्चध्वे	म०	मुक्षीष्ठाः	मुक्षीयास्थाम्	मुक्षीध्वम्
मुञ्चे	मुञ्चावहे	मुञ्चामहे	उ०	मुक्षीय	मुक्षीवहि	मुक्षीमहि

लृट्				लिट्		
मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते	प्र०	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
मोक्ष्यसे	मोक्ष्येथे	मोक्ष्यध्वे	म०	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
मोक्ष्ये	मोक्ष्यावहे	मोक्ष्यामहे	उ०	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

लङ्				लुट्		
अमुञ्चत	अमुञ्चेताम्	अमुञ्चन्त	प्र०	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः
अमुञ्चथाः	अमुञ्चेथाम्	अमुञ्चध्वम्	म०	मोक्तासे	मोक्तासाथे	मोक्ताध्वे
अमुञ्चे	अमुञ्चावहि	अमुञ्चामहि	उ०	मोक्ताहे	मोक्तास्वहे	मोक्तास्महे

लोट्				लुङ्		
मुञ्चताम्	मुञ्चेताम्	मुञ्चन्ताम्	प्र०	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
मुञ्चस्व	मुञ्चेथाम्	मुञ्चध्वम्	म०	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
मुञ्चै	मुञ्चावहै	मुञ्चामहै	उ०	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि

विधिलिङ्				लृङ्		
मुञ्चेत	मुञ्चेयाताम्	मुञ्चेरन्	प्र०	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अमोक्ष्यन्त
मुञ्चेथाः	मुञ्चेयाथाम्	मुञ्चेध्वम्	म०	अमोक्ष्यथाः	अमोक्ष्येथाम्	अमोक्ष्यध्वम्
मुञ्चेय	मुञ्चेवहि	मुञ्चेमहि	उ०	अमोक्ष्ये	अमोक्ष्यावहि	अमोक्ष्यामहि

(९) स्पृश् (छूना) परस्मैपदी

लृट्				लट्		
स्प्रक्ष्यति	स्प्रक्ष्यतः	स्प्रक्ष्यन्ति	प्र०	स्पृशति	स्पृशतः	स्पृशन्ति
स्प्रक्ष्यसि	स्प्रक्ष्यथः	स्प्रक्ष्यथ	म०	स्पृशसि	स्पृशथः	स्पृशथ
स्प्रक्ष्यामि	स्प्रक्ष्यावः	स्प्रक्ष्यामः	उ०	स्पृशामि	स्पृशावः	स्पृशामः

अथवा				लुट्		
स्पर्क्ष्यति	स्पर्क्ष्यतः	स्पर्क्ष्यन्ति	प्र०	स्प्रष्टा	स्प्रष्टारौ	स्प्रष्टारः
स्पर्क्ष्यसि	स्पर्क्ष्यथः	स्पर्क्ष्यथ	म०	स्प्रष्टासि	स्प्रष्टास्थः	स्प्रष्टास्थ
स्पर्क्ष्यामि	स्पर्क्ष्यावः	स्पर्क्ष्यामः	उ०	स्प्रष्टास्मि	स्प्रष्टास्वः	स्प्रष्टास्मः

लङ्				अथवा		
अस्पृशत्	अस्पृशताम्	अस्पृशन्	प्र०	स्पर्ष्टा	स्पर्ष्टारौ	स्पर्ष्टारः
अस्पृशः	अस्पृशतम्	अस्पृशत	म०	स्पर्ष्टासि	स्पर्ष्टास्थः	स्पर्ष्टास्थ
अस्पृशम्	अस्पृशाव	अस्पृशाम	उ०	स्पर्ष्टास्मि	स्पर्ष्टास्वः	स्पर्ष्टास्मः

लोट्		
स्पृशतु	स्पृशताम्	स्पृशन्तु
स्पृश	स्पृशतम्	स्पृशत
स्पृशानि	स्पृशाव	स्पृशाम

विधिलिङ्				लुङ्		
स्पृशेत्	स्पृशेताम्	स्पृशेयुः	प्र०	अस्प्राक्षीत्	अस्प्राष्टाम्	अस्प्राक्षुः
स्पृशेः	स्पृशेतम्	स्पृशेत	म०	अस्प्राक्षीः	अस्प्राष्टम्	अस्प्राष्ट
स्पृशेयम्	स्पृशेव	स्पृशेम	उ०	अस्प्राक्षम्	अस्प्राक्ष्व	अस्प्राक्ष्म

आशीर्लिङ्				अथवा		
स्पृश्यात्	स्पृश्यास्ताम्	स्पृश्यासुः	प्र०	अस्पार्क्षीत्	अस्पार्ष्टाम्	अस्पार्क्षुः
स्पृश्याः	स्पृश्यास्तम्	स्पृश्यास्त	म०	अस्पार्क्षीः	अस्पार्ष्टम्	अस्पार्ष्ट
स्पृश्यासम्	स्पृश्यास्व	स्पृश्यास्म	उ०	अस्पार्क्षम्	अस्पार्क्ष्व	अस्पार्क्ष्म

लिट्				अथवा		
पस्पर्श	पस्पृशतुः	पस्पृशुः	प्र०	अस्पृक्षत्	अस्पृक्षताम्	अस्पृक्षन्
पस्पर्शिथ	पस्पृशथुः	पस्पृश	म०	अस्पृक्षः	अस्पृक्षतम्	अस्पृक्षत
पस्पर्श	पस्पृशिव	पस्पृशिम	उ०	अस्पृक्षम्	अस्पृक्षाव	अस्पृक्षाम

लृङ्

प्र० अस्प्रक्ष्यत्	अस्प्रक्ष्यताम्	अस्प्रक्ष्यन्
म० अस्प्रक्ष्यः	अस्प्रक्ष्यतम्	अस्प्रक्ष्यत
उ० अस्प्रक्ष्यम्	अस्प्रक्ष्याव	अस्प्रक्ष्याम

अथवा

प्र० अस्पर्क्ष्यत्	अस्पर्क्ष्यताम्	अस्पर्क्ष्यन्
म० अस्पर्क्ष्यः	अस्पर्क्ष्यतम्	अस्पर्क्ष्यत
उ० अस्पर्क्ष्यम्	अस्पर्क्ष्याव	अस्पर्क्ष्याम

(१०) मृ (मरना) आत्मनेपदी

लट्			आशीर्लिङ्		
म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते	प्र० मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	मृषीरन्
म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे	म० मृषीष्ठाः	मृषीयास्थाम्	मृषीढ्वम्
म्रिये	म्रियावहे	म्रियावहे	उ० मृषीय	मृषीवहि	मृषीमहि
लृट्			**लिट्**		
मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति	प्र० ममार	मम्रतुः	मम्रुः
मरिष्यसि	मरिष्यथः	मरिष्यथ	म० ममर्थ	मम्रथुः	मम्र
मरिष्यामि	मरिष्यावः	मरिष्यामः	उ० ममार, ममर	मम्रिव	मम्रिम
लङ्			**लुट्**		
अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त	प्र० मर्ता	मर्तारौ	मर्तारः
अम्रियथाः	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्	म० मर्तासि	मर्तास्थः	मर्तास्थ
अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि	उ० मर्तास्मि	मर्तास्वः	मर्तास्मः
लोट्			**लुङ्**		
म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्	प्र० अमृत	अमृषाताम्	अमृषत
म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्	म० अमृथाः	अमृषाथाम्	अमृढ्वम्
म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै	उ० अमृषि	अमृष्वहि	अमृष्महि
विधिलिङ्			**लृङ्**		
म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्	प्र० अमरिष्यत	अमरिष्येताम्	अमरिष्यन्त
म्रियेथाः	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्	म० अमरिष्यथाः	अमरिष्येथाम्	अमरिष्यध्वम्
म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि	उ० अमरिष्ये	अमरिष्यावहि	अमरिष्यामहि

तुदादिगणीय कुछ अन्य धातुएँ

(११) कृत् (काटना) परस्मैपदी

लट्	कृन्तति	कृन्ततः	कृन्तन्ति
लृट्	{ कर्तिष्यति	कर्तिष्यतः	कर्तिष्यन्ति
	{ कर्त्स्यति	कर्त्स्यतः	कर्त्स्यन्ति

आ० लिङ्	कृत्यात्	कृत्यास्ताम्	कृत्यासुः
लिट्	चकर्त	चकृततुः	चकृतुः
लुट्	कर्तिता	कर्तितारौ	कर्तितारः
लुङ्	अकर्तीत्	अकर्तिष्टाम्	अकर्तिषुः
लृङ्	अकर्तिष्यत्	अकर्तिष्यताम्	अकर्तिष्यन्

(१२) त्रुट् (टूट जाना) परस्मैपदी

लट्	त्रुटति	त्रुटतः	त्रुटन्ति
लृट्	त्रुटिष्यति	त्रुटिष्यतः	त्रुटिष्यन्ति
आ० लिङ्०	त्रुट्यात्	त्रुट्यास्ताम्	त्रुट्यासुः
लिट्	तुत्रोट	तुत्रुटतुः	तुत्रुटुः
	तुत्रुटिथ	तुत्रुटथुः	तुत्रुट
	तुत्रोट	तुत्रुटिव	तुत्रुटिम
लुट्	त्रुटिता	त्रुटितारौ	त्रुटितारः
लुङ्	अत्रुटीत्	अत्रुटिष्टाम्	अत्रुटिषुः

(१३) मिल् (मिलना) उभयपदी

लट् (प०)	मिलति	मिलतः	मिलन्ति
(आ०)	मिलते	मिलेते	मिलन्ते
लृट् (प०)	मेलिष्यति	मेलिष्यतः	मेलिष्यन्ति
(आ०)	मेलिष्यते	मेलिष्येते	मेलिष्यन्ते
आ० लिङ्० (प०)	मिल्यात्	मिल्यास्ताम्	मिल्यासुः
(आ०)	मेलिषीष्ट	मेलिषीयास्ताम्	मेलिषीरन्
लिट् (प०)	मिमेल	मिमिलतुः	मिमिलुः
	मिमेलिथ	मिमिलथुः	मिमिल
	मिमेल	मिमिलिव	मिमिलिम
(आ०)	मिमिले	मिमिलाते	मिमिलिरे
	मिमिलिषे	मिमिलाथे	मिमिलिध्वे
	मिमिले	मिमिलिवहे	मिमिलिमहे
लुट्	मेलिता	मेलितारौ	मेलितारः
लुङ् (प०)	अमेलीत्	अमेलिष्टाम्	अमेलिषुः
(आ०)	अमेलिष्ट	अमेलिषाताम्	अमेलिषत
लृङ् (प०)	अमेलिष्यत्	अमेलिष्यताम्	अमेलिष्यन्
(आ०)	अमेलिष्यत	अमेलिष्येताम्	अमेलिष्यन्त

(१४) लिख् (लिखना) परस्मैपदी

लट्	लिखति	लिखतः	लिखन्ति
लृट्	लेखिष्यति	लेखिष्यतः	लेखिष्यन्ति

आशीर्लिङ्	लिख्यात्	लिख्यास्ताम्	लिख्यासुः
लिट्	लिलेख	लिलिखतुः	लिलिखुः
	लिलेखिथ	लिलिखथुः	लिलिख
	लिलेख	लिलिखिव	लिलिखिम
लुङ्	अलेखीत्	अलेखिष्टाम्	अलेखिषुः

(१५) लिप् (लीपना) उभयपदी

लट् (प०)	लिम्पति	लिम्पतः	लिम्पन्ति
(आ०)	लिम्पते	लिम्पेते	लिम्पन्ते
लृट् (प०)	लेप्स्यति	लेप्स्यतः	लेप्स्यन्ति
(आ०)	लेप्स्यते	लेप्स्येते	लेप्स्यन्ते
आ० लिङ् (प०)	लिप्यात्	लिप्यास्ताम्	लिप्यासुः
(आ०)	लिप्सीष्ट	लिप्सीयास्ताम्	लिप्सीरन्
लिट् (प०)	लिलेप	लिलिपतुः	लिलिपुः
(आ०)	लिलिपे	लिलिपाते	लिलिपिरे
लुट्	लेप्ता	लेप्तारौ	लेप्तारः
लुङ् (प०)	अलिपत्	अलिपताम्	अलिपन्
(आ०)	अलिपत	अलिपेताम्	अलिपन्त

(१६) विश् (घुसना) परस्मैपदी

लट्	विशति	विशतः	विशन्ति
लृट्	वेक्ष्यति	वेक्ष्यतः	वेक्ष्यन्ति
आ० लिङ्०	विश्यात्	विश्यास्ताम्	विश्यासुः
लिट्	विवेश	विविशतुः	विविशुः
लुट्	वेष्टा	वेष्टारौ	वेष्टारः
लुङ्	अविक्षत्	अविक्षताम्	अविक्षन्
लृङ्	अवेक्ष्यत्	अवेक्ष्यताम्	अवेक्ष्यन्

(१७) सद् (दुःखी होना) परस्मैपदी

लट्	सीदति	सीदतः	सीदन्ति
लृट्	सेत्स्यति	सेत्स्यतः	सेत्स्यन्ति
आ० लिङ्०	सद्यात्	सद्यास्ताम्	सद्यासुः
लिट्	ससाद	सेदतुः	सेदुः
	सेदिथ	ससत्थ, सेदथुः	सेद
	ससाद, ससद	सेदिव	सेदिम
लुङ्	असदत्	असदताम्	असदन्
लृङ्	असत्स्यत्	असत्स्यताम्	असत्स्यन्

(१८) सिच् (सींचना) उभयपदी

लट् (प०)	सिञ्चति	सिञ्चतः	सिञ्चन्ति
(आ०)	सिञ्चते	सिञ्चेते	सिञ्चन्ते
लृट् (प०)	सेक्ष्यति	सेक्ष्यतः	सेक्ष्यन्ति
(आ०)	सेक्ष्यते	सेक्ष्येते	सेक्ष्यन्ते
आ० लिङ्० (प०)	सिच्यात्	सिच्यास्ताम्	सिच्यासुः
(आ०)	सिक्षीष्ट	सिक्षीयास्ताम्	सिक्षीरन्
लिट् (प०)	सिषेच	सिषिचतुः	सिषिचुः
	सिषेचिथ	सिषिचथुः	सिषिच
	सिषेच	सिषिचिव	सिषिचिम
(आ०)	सिषिचे	सिषिचाते	सिषिचिरे
लुङ् (प०)	असिचत् (असैक्षीत्)	असिचताम्	असिचन्
(आ०)	असिक्त (असिचत)	असिक्षाताम्	असिक्षत

(१९) सृज् (बनाना) परस्मैपदी

लट्	सृजति	सृजतः	सृजन्ति
लृट्	स्रक्ष्यति	स्रक्ष्यतः	स्रक्ष्यन्ति
आ० लिङ्०	सृज्यात्	सृज्यास्ताम्	सृज्यासुः
लिट्	ससर्ज	ससृजतुः	ससृजुः
लुट्	स्रष्टा	स्रष्टारौ	स्रष्टारः
लुङ्	अस्रक्ष्यत्	अस्रक्ष्यताम्	अस्रक्ष्यन्

(२०) स्फुट् (खुलना, फट जाना) परस्मैपदी

लट्	स्फुटति	स्फुटतः	स्फुटन्ति
लृट्	स्फुटिष्यति	स्फुटिष्यतः	स्फुटिष्यन्ति
आ० लिङ्०	स्फुट्यात्	स्फुट्यास्ताम्	स्फुट्यासुः
लिट्	पुस्फोट	पुस्फुटतुः	पुस्फुटुः
	पुस्फुटिथ	पुस्फुटथुः	पुस्फुट
	पुस्फोट	पुस्फुटिव	पुस्फुटिम
लुट्	स्फुटिता	स्फुटितारौ	स्फुटितारः
लुङ्	अस्फुटीत्	अस्फुटिष्टाम्	अस्फुटिषुः
	अस्फुटीः	अस्फुटिष्टम्	अस्फुटिष्ट
	अस्फुटिषम्	अस्फुटिष्व	अस्फुटिष्म

(२१) स्फुर (काँपना, चमकना) परस्मैपदी

लट्	स्फुरति	स्फुरतः	स्फुरन्ति
लृट्	स्फुरिष्यति	स्फुरिष्यतः	स्फुरिष्यन्ति

आ० लिङ्०	स्फुर्यात्	स्फुर्यास्ताम्	स्फुर्यासुः
लिट्	पुस्फोर	पुस्फुरतुः	पुस्फुरुः
	पुस्फुरिथ	पुस्फुरथुः	पुस्फुर
	पुस्फोर	पुस्फुरिव	पुस्फुरिम
लुट्	स्फुरिता	स्फुरितारौ	स्फुरितारः
लुङ्	अस्फुरीत्	अस्फुरिष्टाम्	अस्फुरिषुः

७—रुधादिगण

इस गण की प्रथम धातु रुध् है, इसीलिए इस गण का नाम रुधादिगण पड़ा है। इस गण में धातु के प्रथम स्वर के बाद श्नम् (न या न्) जोड़ दिया जाता है।

यथा—क्षुद् + ति = क्षु + न + द् + ति = क्षुण + द् + ति=क्षुणत्ति। क्षुद् + यात् = क्षु + न + द् + यात् = क्षुन्द्यात्।

उभयपदी

(१) रुध् (रोकना) परस्मैपद

लट्				लिट्	
रुणद्धि	रुन्द्धः	रुन्धन्ति	प्र० रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधुः
रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध	म० रुरोधिथ	रुरुधथुः	रुरुध
रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः	उ० रुरोध	रुरुधिव	रुरुधिम

लृट्				लुट्	
रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति	प्र० रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
रोत्स्यसि	रोत्स्यथः	रोत्स्यथ	म० रोद्धासि	रोद्धास्थः	रोद्धास्थ
रोत्स्यामि	रोत्स्यावः	रोत्स्यामः	उ० रोद्धास्मि	रोद्धास्वः	रोद्धास्मः

लङ्				लुङ्	
अरुणत्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्	प्र० अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सुः
अरुणः	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध	म० अरौत्सीः	अरौद्धम्	अरौद्ध
अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	उ० अरौत्सम्	अरौत्स्व	अरौत्स्म

लोट्				अथवा	
रुणद्धु	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु	प्र० अरुधत्	अरुधताम्	अरुधन्
रुन्द्धि	रुन्द्धम्	रुन्द्ध	म० अरुधः	अरुधतम्	अरुधत
रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम	उ० अरुधम्	अरुधाव	अरुधाम

विधिलिङ्				लृङ्	
रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः	प्र० अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	अरोत्स्यन्
रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	म० अरोत्स्यः	अरोत्स्यतम्	अरोत्स्यत
रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	उ० अरोत्स्यम्	अरोत्स्याव	अरोत्स्याम

आशीर्लिङ्

रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासुः	प्र०
रुध्याः	रुध्यास्तम्	रुध्यास्त	म०
रुध्यासम्	रुध्यास्व	रुध्यास्म	उ०

रुध् (आवरण करना, रोकना) आत्मनेपद

लट्				आशीर्लिङ्		
रुन्द्धे	रुन्धाते	रुन्धते	प्र०	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	रुत्सीरन्
रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे	म०	रुत्सीष्ठाः	रुत्सीयास्थाम्	रुत्सीध्वम्
रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे	उ०	रुत्सीय	रुत्सीवहि	रुत्सीमहि

लृट्				लिट्		
रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते	प्र०	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
रोत्स्यसे	रोत्स्येथे	रोत्स्यध्वे	म०	रुरुधिषे	रुरुधाथे	रुरुधिध्वे
रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे	उ०	रुरुधे	रुरुधिवहे	रुरुधिमहे

लङ्				लुट्		
अरुन्द्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत	प्र०	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
अरुन्द्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्	म०	रोद्धासे	रोद्धासाथे	रोद्धाध्वे
अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि	उ०	रोद्धाहे	रोद्धास्वहे	रोद्धास्महे

लोट्				लुङ्		
रुन्द्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्	प्र०	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्	म०	अरुद्धाः	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै	उ०	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि

विधिलिङ्				लृङ्		
रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्	प्र०	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	अरोत्स्यन्त
रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्	म०	अरोत्स्यथाः	अरोत्स्येथाम्	अरोत्स्यध्वम्
रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि	उ०	अरोत्स्ये	अरोत्स्यावहि	अरोत्स्यामहि

उभयपदी

(२) छिद् (काटना) परस्मैपदी

लट्				लङ्		
छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति	प्र०	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
छिनत्सि	छिन्त्थः	छिन्त्थ	म०	अच्छिनः, अच्छिनत्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः	उ०	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

लृट्				लोट्		
छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति	प्र०	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
छेत्स्यसि	छेत्स्यथः	छेत्स्यथ	म०	छिन्द्धि	छिन्तम्	छिन्त
छेत्स्यामि	छेत्स्यावः	छेत्स्यामः	उ०	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

विधिलिङ्				लुट्		
छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः	प्र०	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः
छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात	म०	छेत्तासि	छेत्तास्थः	छेत्तास्थ
छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम	उ०	छेत्तास्मि	छेत्तास्वः	छेत्तास्मः

आशीर्लिङ्				लुङ्		
छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासुः	प्र०	अच्छिदत्	अच्छिदताम्	अच्छिदन्
छिद्याः	छिद्यास्तम्	छिद्यास्त	म०	अच्छिदः	अच्छिदतम्	अच्छिदत
छिद्यासम्	छिद्यास्व	छिद्यास्म	उ०	अच्छिदम्	अच्छिदाव	अच्छिदाम

लिट्				अथवा		
चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः	प्र०	अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम्	अच्छैत्सुः
चिच्छेदिथ	चिच्छिदथुः	चिच्छिद	म०	अच्छैत्सीः	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त
चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम	उ०	अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्स्म

	लृङ्		
प्र०	अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्यताम्	अच्छेत्स्यन्
म०	अच्छेत्स्यः	अच्छेत्स्यतम्	अच्छेत्स्यत
उ०	अच्छेत्स्यम्	अच्छेत्स्याव	अच्छेत्स्याम

छिद् (काटना) आत्मनेपदी

लट्				लोट्		
छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते	प्र०	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्ध्वे	म०	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्द्ध्वम्
छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे	उ०	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै

लृट्				विधिलिङ्		
छेत्स्यते	छेत्स्येते	छेत्स्यन्ते	प्र०	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
छेत्स्यसे	छेत्स्येथे	छेत्स्यध्वे	म०	छिन्दीथाः	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
छेत्स्ये	छेत्स्यावहे	छेत्स्यामहे	उ०	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

लङ्				आशीर्लिङ्		
अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत	प्र०	छित्सीष्ट	छित्सीयास्ताम्	छित्सीरन्
अच्छिन्थाः	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्द्ध्वम्	म०	छित्सीष्ठाः	छित्सीयास्थाम्	छित्सीध्वम्
अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि	उ०	छित्सीय	छित्सीवहि	छित्सीमहि

लिट्				लुङ्		
चिच्छिदे	चिच्छिदाते	चिच्छिदिरे	प्र०	अच्छित्त	अच्छित्साताम्	अच्छित्सत
चिच्छिदिषे	चिच्छिदाथे	चिच्छिदिध्वे	म०	अच्छित्थाः	अच्छित्साथाम्	अच्छिद्ध्वम्
चिच्छिदे	चिच्छिदिवहे	चिच्छिदिमहे	उ०	अच्छित्सि	अच्छित्स्वहि	अच्छित्स्महि

लुट्				लृङ्		
छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः	प्र०	अच्छेत्स्यत	अच्छेत्स्येताम्	अच्छेत्स्यन्त
छेत्तासे	छेत्तासाथे	छेत्ताध्वे	म०	अच्छेत्स्यथाः	अच्छेत्स्येथाम्	अच्छेत्स्यध्वम्
छेत्ताहे	छेत्तास्वहे	छेत्तास्महे	उ०	अच्छेत्स्ये	अच्छेत्स्यावहि	अच्छेत्स्यामहि

(३) भञ्ज् (तोड़ना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
भनक्ति	भंक्तः	भञ्जन्ति	प्र०	भज्यात्	भज्यास्ताम्	भज्यासुः
भनक्षि	भंक्थः	भंक्थ	म०	भज्याः	भज्यास्तम्	भज्यास्त
भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः	उ०	भज्यासम्	भज्यास्व	भज्यास्म

लृट्				लिट्		
भंक्ष्यति	भंक्ष्यतः	भंक्ष्यन्ति	प्र०	बभञ्ज	बभञ्जतुः	बभञ्जुः
भंक्ष्यसि	भंक्ष्यथः	भंक्ष्यथ	म०	बभञ्जिथ, बभङ्क्थ	बभञ्जथुः	बभञ्ज
भंक्ष्यामि	भंक्ष्यावः	भंक्ष्यामः	उ०	बभञ्ज	बभञ्जिव	बभञ्जिम

लङ्				लुट्		
अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्	प्र०	भङ्क्ता	भङ्क्तारौ	भंक्तारः
अभनक्	अभंक्तम्	अभंक्त	म०	भङ्क्तासि	भंक्तास्थः	भंक्तास्थ
अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म	उ०	भङ्क्तास्मि	भंक्तास्वः	भंक्तास्मः

लोट्				लुङ्		
भनक्तु	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु	प्र०	अभाङ्क्षीत्	अभांक्ताम्	अभाङ्क्षुः
भंग्धि	भङ्क्तम्	भङ्क्त	म०	अभांक्षीः	अभाङ्क्तम्	अभांक्त
भनजानि	भनजाव	भनजाम	उ०	अभाङ्क्षम्	अभाङ्क्ष्व	अभाङ्क्ष्म

विधिलिङ्				लृङ्		
भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः	प्र०	अभंक्ष्यत्	अभंक्ष्यताम्	अभंक्ष्यन्
भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात	म०	अभंक्ष्यः	अभंक्ष्यतम्	अभंक्ष्यत
भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम	उ०	अभंक्ष्यम्	अभंक्ष्याव	अभङ्क्ष्याम

उभयपदी

(४) भुज् (रक्षा करना, खाना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति	प्र०	भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः
भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ	म०	भुज्याः	भुज्यास्तम्	भुज्यास्त
भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः	उ०	भुज्यासम्	भुज्यासम्	भुज्यास्म

लृट्				लिट्		
मोक्ष्यति	मोक्ष्यतः	मोक्ष्यन्ति	प्र०	बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः
मोक्ष्यसि	मोक्ष्यथः	मोक्ष्यथ	म०	बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज
मोक्ष्यामि	मोक्ष्यावः	मोक्ष्यामः	उ०	बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम

लङ्				लुट्		
अभुनक्	अभुंक्ताम	अभुञ्जन्	प्र०	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
अभुनक्	अभुंक्तम्	अभुङ्क्त	म०	भोक्तासि	भोक्तास्थः	भोक्तास्थ
अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म	उ०	भोक्तास्मि	भोक्तास्वः	भोक्तास्मः

लोट्				लुङ्		
भुनक्तु	भुंक्ताम्	भुञ्जन्तु	प्र०	अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः
भुंग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त	म०	अभौक्षीः	अभौक्तम्	अभौक्त
भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम	उ०	अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म

विधिलिङ्				लृङ्		
भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः	प्र०	अमोक्ष्यत्	अमोक्ष्यताम्	अमोक्ष्यन्
भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात	म०	अमोक्ष्यः	अमोक्ष्यतम्	अमोक्ष्यत
भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम	उ०	अमोक्ष्यम्	अमोक्ष्याव	अमोक्ष्याम

भुज् (रक्षा करना, खाना) आत्मनेपद

लट्				लङ्		
भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते	प्र०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे	म०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे	उ०	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि

लृट्				लोट्		
भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते	प्र०	भुंक्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
भोक्ष्यसे	भोक्ष्येथे	भोक्ष्यध्वे	म०	भुंक्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
भोक्ष्ये	भोक्ष्यावहे	भोक्ष्यामहे	उ०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

विधिलिङ्				लुट्		
भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्	प्र०	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्	म०	भोक्तासे	भोक्तासाथे	भोक्ताध्वे
भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि	उ०	भोक्ताहे	भोक्तास्वहे	भोक्तास्महे

आशीर्लिङ्				लुङ्		
भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	भुक्षीरन्	प्र०	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
भुक्षीष्ठाः	भुक्षीयास्थाम्	भुक्षीध्वम्	म०	अभुक्थाः	अभुक्षाथाम्	अभुग्ध्वम्
भुक्षीय	भुक्षीवहि	भुक्षीमहि	उ०	अभुक्षि	अभुक्ष्वहि	अभुक्ष्महि

लिट्				लृङ्		
बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे	प्र०	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	अभोक्ष्यन्त
बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिध्वे	म०	अभोक्ष्यथाः	अभोक्ष्येथाम्	अभोक्ष्यध्वम्
बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे	उ०	अभोक्ष्ये	अभोक्ष्यावहि	अभोक्ष्यामहि

उभयपदी

(५) युज् (मिलाना, लगना) परस्मैपदी

लट्				विधिलिङ्		
युनक्ति	युङ्क्तः	युञ्जन्ति	प्र०	युञ्ज्यात्	युञ्ज्याताम्	युञ्ज्युः
युनक्षि	युंक्थः	युंक्थ	म०	युञ्ज्याः	युञ्ज्यातम्	युञ्ज्यात
युनज्मि	युञ्ज्वः	युञ्ज्मः	उ०	युञ्ज्याम्	युञ्ज्याव	युञ्ज्याम

लृट्				आशीर्लिङ्		
योक्ष्यति	योक्ष्यतः	योक्ष्यन्ति	प्र०	युज्यात्	युज्यास्ताम्	युज्यासुः
योक्ष्यसि	योक्ष्यथः	योक्ष्यथ	म०	युज्याः	युज्यास्तम्	युज्यास्त
योक्ष्यामि	योक्ष्यावः	योक्ष्यामः	उ०	युज्यासम्	युज्यास्व	युज्यास्म

लङ्				लिट्		
अयुनक्	अयुंक्ताम्	अयुञ्जन्	प्र०	युयोज	युयुजतुः	युयुजुः
अयुनक्	अयुंक्तम्	अयुंक्त	म०	युयोजिथ	युयुजथुः	युयुज
अयुनजम्	अयुञ्ज्व	अयुञ्ज्म	उ०	युयोज	युयुजिव	युयुजिम

लोट्				लुट्		
युनक्तु	युंक्ताम्	युञ्जन्तु	प्र०	योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः
युङ्ग्धि	युंक्तम्	युंक्त	म०	योक्तासि	योक्तास्थः	योक्तास्थ
युनजानि	युनजाव	युनजाम	उ०	योक्तास्मि	योक्तास्वः	योक्तास्मः

लुङ्				लृङ्		
अयौक्षीत्	अयौक्ताम्	अयौक्षुः	प्र०	अयोक्ष्यत्	अयोक्ष्यताम्	अयोक्ष्यन्
अयौक्षीः	अयौक्तम्	अयौक्त	म०	अयोक्ष्यः	अयोक्ष्यतम्	अयोक्ष्यत
अयौक्षम्	अयौक्ष्व	अयौक्ष्म	उ०	अयोक्ष्यम्	अयोक्ष्याव	अयोक्ष्याम

युज् (मिलना, लगना) आत्मनेपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
युंक्ते	युञ्जाते	युञ्जते	प्र०	युक्षीष्ट	युक्षीयास्ताम्	युक्षीरन्
युंक्षे	युञ्जाथे	युंग्ध्वे	म०	युक्षीष्ठाः	युक्षीयास्थाम्	युक्षीध्वम्
युञ्जे	युञ्ज्वहे	युञ्ज्महे	उ०	युक्षीय	युक्षीवहि	युक्षीमहि

लृट्				लिट्		
योक्ष्यते	योक्ष्येते	योक्ष्यन्ते	प्र० युयुजे	युयुजाते	युयुजिरे	
योक्ष्यसे	योक्ष्येथे	योक्ष्यध्वे	म० युयुजिषे	युयुजाथे	युयुजिध्वे	
योक्ष्ये	योक्ष्यावहे	योक्ष्यामहे	उ० युयुजे	युयुजिवहे	युयुजिमहे	

लङ्				लुट्		
अयुंक्त	अयुञ्जाताम्	अयुञ्जत	प्र० योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः	
अयुंक्थाः	अयुञ्जाथाम्	अयुंग्ध्वम्	म० योक्तासे	योक्तासाथे	योक्ताध्वे	
अयुञ्जि	अयुञ्ज्वहि	अयुञ्ज्महि	उ० योक्ताहे	योक्तास्वहे	योक्तास्महे	

लोट्				लुङ्		
युंक्ताम्	युञ्जाताम्	युञ्जताम्	प्र० अयुक्त	अयुक्षाताम्	अयुक्षत	
युंक्ष्व	युञ्जाथाम्	युङ्ग्ध्वम्	म० अयुक्थाः	अयुक्षाथाम्	अयुग्ध्वम्	
युनजै	युनजावहै	युनजामहै	उ० अयुक्षि	अयुक्ष्वहि	अयुक्ष्महि	

विधिलिङ्				लृङ्		
युञ्जीत	युञ्जीयाताम्	युञ्जीरन्	प्र० अयोक्ष्यत	अयोक्ष्येताम्	अयोक्ष्यन्त	
युञ्जीथाः	युञ्जीयाथाम्	युञ्जीध्वम्	म० अयोक्ष्यथाः	अयोक्ष्येथाम्	अयोक्ष्यध्वम्	
युञ्जीय	युञ्जीवहि	युञ्जीमहि	उ० अयोक्ष्ये	अयोक्ष्यावहि	अयोक्ष्यामहि	

८—तनादि गण

इस गण की प्रथम धातु 'तन्' इसलिए इसका नाम तनादि ।

तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९।

इस गण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में 'उ' जोड़ा जाता है । यथा—तन् + उ + ते = तनुते ।

उभयपदी

(१) तन् (फैलाना) परस्मैपद

लट्				आशीर्लिङ्		
तनोति	तनुतः	तन्वन्ति	प्र० तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासुः	
तनोषि	तनुथः	तनुथ	म० तन्याः	तन्यास्तम्	तन्यास्त	
तनोमि	तनुवः-न्वः	तनुमः-न्मः	उ० तन्यासम्	तन्यास्व	तन्यास्म	

लृट्				लिट्		
तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति	प्र० ततान	तेनतुः	तेनुः	
तनिष्यसि	तनिष्यथः	तनिष्यथ	म० तेनिथ	तेनथुः	तेन	
तनिष्यामि	तनिष्यावः	तनिष्यामः	उ० ततान, ततन	तेनिव	तेनिम	

लोट्				लुङ्		
कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्	प्र०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्	म०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
करवै	करवावहै	करवामहै	उ०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

विधिलिङ्				लृङ्		
कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्	प्र०	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त
कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्	म०	अकरिष्यथाः	अकरिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम्
कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि	उ०	अकरिष्ये	अकरिष्यावहि	अकरिष्यामहि

९—क्र्यादि गण

इस गण की प्रथम धातु 'क्री' है, अतएव इसका नाम क्र्यादिगण पड़ा।

क्र्यादिभ्यः श्ना ३।१।८१।

इस क्र्यादिगण में धातु और प्रत्यय के बीच में श्ना (ना) जोड़ा जाता है, किन्हीं प्रत्ययों के पूर्व यह 'ना' 'न' हो जाता है और किन्हीं के पूर्व 'नी'। धातु की उपधा में यदि वर्गों का पञ्चम अक्षर अथवा अनुस्वार हो तो उसका लोप हो जाता है।

व्यञ्जनान्त धातुओं के उपरान्त लोट् के म० पु० एकवचन में 'हि' प्रत्यय के स्थान में 'आन' होता है। जैसे—मुष् + हि = मुष् + आन = मुषाण।

उभयपदी

(१) क्री (मोल लेना) परस्मैपद

लोट्				आशीर्लिङ्		
क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	प्र०	क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासुः
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	म०	क्रीयाः	क्रीयास्तम्	क्रीयास्त
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	उ०	क्रीयासम्	क्रीयास्व	क्रीयास्म

लृट्				लिट्		
क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति	प्र०	चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः
क्रेष्यसि	क्रेष्यथः	क्रेष्यथ	म०	चिक्रयिथ चिक्रेथ	चिक्रियथुः	चिक्रिय
क्रेष्यामि	क्रेष्यावः	क्रेष्यामः	उ०	चिक्राय, चिक्रय	चिक्रियिव	चिक्रियिम

लङ्				लुट्		
अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	प्र०	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	म०	क्रेतासि	क्रेतास्थः	क्रेतास्थ
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	उ०	क्रेतास्मि	क्रेतास्वः	क्रेतास्मः

लोट्				लुङ्		
क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	प्र०	अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषुः
क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	म०	अक्रैषीः	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	उ०	अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म

विधिलिङ्				लृङ्		
क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः	प्र०	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	अक्रेष्यन्
क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	म०	अक्रेष्यः	अक्रेष्यतम्	अक्रेष्यत
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	उ०	अक्रेष्यम्	अक्रेष्याव	अक्रेष्याम

क्री (मोल लेना) आत्मनेपद

लट्				आशीर्लिङ्		
क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते	प्र०	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	क्रेषीरन्
क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे	म०	क्रेषीष्ठाः	क्रेषीयास्थाम्	क्रेषीढ्वम्
क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे	उ०	क्रेषीय	क्रेषीवहि	क्रेषीमहि

लृट्				लिट्		
क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते	प्र०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
क्रेष्यसे	क्रेष्येथे	क्रेष्यध्वे	म०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे
क्रेष्ये	क्रेष्यावहे	क्रेष्यामहे	उ०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

लङ्				लुट्		
अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत	प्र०	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्	म०	क्रेतासे	क्रेतासाथे	क्रेताध्वे
अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि	उ०	क्रेताहे	क्रेतास्वहे	क्रेतास्महे

लोट्				लुङ्		
क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्	प्र०	अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्	म०	अक्रेष्ठाः	अक्रेषाथाम्	चक्रेढ्वम
क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै	उ०	अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि

विधिलिङ्				लृङ्		
क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्	प्र०	अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	अक्रेष्यन्त
क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्	म०	अक्रेष्यथाः	अक्रेष्येथाम्	अक्रेष्यध्वम्
क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि	उ०	अक्रेष्ये	अक्रेष्यावहि	अक्रेष्यामहि

उभयपदी

(२) ग्रह् (लेना, पकड़ना) परस्मैपद

लट्				लङ्		
गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति	प्र०	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ	म०	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः	उ०	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

लृट्

ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति
ग्रहीष्यसि	ग्रहीष्यथः	ग्रहीष्यथ
ग्रहीष्यामि	ग्रहीष्यावः	ग्रहीष्यामः

लोट्

प्र०	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
म०	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत
उ०	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

विधिलिङ्

गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः
गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

लुट्

प्र०	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
म०	ग्रहीतासि	ग्रहीतास्थः	ग्रहीतास्थ
उ०	ग्रहीतास्मि	ग्रहीतास्वः	ग्रहीतास्मः

आशीर्लिङ्

गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासुः
गृह्याः	गृह्यास्तम्	गृह्यास्त
गृह्यासम्	गृह्यास्व	गृह्यास्म

लुङ्

प्र०	अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषुः
म०	अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट
उ०	अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म

लिट्

जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः
जग्रहिथ	जगृहथुः	जगृह
जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम

लृङ्

प्र०	अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	अग्रहीष्यन्
म०	अग्रहीष्यः	अग्रहीष्यतम्	अग्रहीष्यत
उ०	अग्रहीष्यम्	अग्रहीष्याव	अग्रहीष्याम

ग्रह् (लेना, पकड़ना) आत्मनेपद

लट्

गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

विधिलिङ्

प्र०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
म०	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

लृट्

ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
ग्रहीष्यसे	ग्रहीष्येथे	ग्रहीष्यध्वे
ग्रहीष्ये	ग्रहीष्यावहे	ग्रहीष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र०	ग्रहीषीष्ट	ग्रहीषीयास्ताम्	ग्रहीषीरन्
म०	ग्रहीषीष्ठाः	ग्रहीषीयास्थाम्	ग्रहीषीध्वम्
उ०	ग्रहीषीय	ग्रहीषीवहि	ग्रहीषीमहि

लङ्

अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

लिट्

प्र०	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
म०	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिध्वे
उ०	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे

लोट्

गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै

लुट्

प्र०	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
म०	ग्रहीतासे	ग्रहीतासाथे	ग्रहीताध्वे
उ०	ग्रहीताहे	ग्रहीतास्वहे	ग्रहीतास्महे

लुङ्				लृङ्		
अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत	प्र०	अग्रहीष्यत	अग्रहीष्येताम्	अग्रहीष्यन्त
अग्रहीष्ठाः	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीढ्वम्	म०	अग्रहीष्यथाः	अग्रहीष्येथाम्	अग्रहीष्यध्वम्
अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि	उ०	अग्रहीष्ये	अग्रहीष्यावहि	अग्रहीष्यामहि

उभयपदी

(२) ज्ञा (जानना) परस्मैपद

लट्				आशीर्लिङ्		
जानाति	जानीतः	जानन्ति	प्र०	ज्ञेयात्	ज्ञेयास्ताम्	ज्ञेयासुः
जानासि	जानीथः	जानीथ	म०	ज्ञेयाः	ज्ञेयास्तम्	ज्ञेयास्त
जानामि	जानीवः	जानीमः	उ०	ज्ञेयासम्	ज्ञेयास्व	ज्ञेयास्म
लृट्				**लिट्**		
ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति	प्र०	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथ	म०	जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथुः	जज्ञ
ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः	उ०	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम
लङ्				**लुट्**		
अजानात्	अजानीताम्	अजानन्	प्र०	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातारः
अजानाः	अजानीतम्	अजानीत	म०	ज्ञातासि	ज्ञातास्थः	ज्ञातास्थ
अजानाम्	अजानीव	अजानीम	उ०	ज्ञातास्मि	ज्ञातास्वः	ज्ञातास्मः
लोट्				**लुङ्**		
जानातु	जानीताम्	जानन्तु	प्र०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
जानीहि	जानीतम्	जानीत	म०	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
जानानि	जानाव	जानाम	उ०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म
विधिलिङ्				**लृङ्**		
जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः	प्र०	अज्ञास्यत्	अज्ञास्यताम्	अज्ञास्यन्
जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात	म०	अज्ञास्यः	अज्ञास्यतम्	अज्ञास्यत
जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम	उ०	अज्ञास्यम्	अज्ञास्याव	अज्ञास्याम

ज्ञा (जानना) आत्मनेपद

लट्				लृट्		
जानीते	जानाते	जानते	प्र०	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
जानीषे	जानाथे	जानीध्वे	म०	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
जाने	जानीवहे	जानीमहे	उ०	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे
लङ्				**लिट्**		
अजानीत	अजानाताम्	अजानत	प्र०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्	म०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि	उ०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

लोट्				लुट्		
जानीताम्	जानाताम्	जानताम्	प्र०	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातारः
जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्	म०	ज्ञातासे	ज्ञातासाथे	ज्ञाताध्वे
जानै	जानावहै	जानामहै	उ०	ज्ञाताहे	ज्ञातास्वहे	ज्ञातास्महे

विधिलिङ्				लुङ्		
जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्	प्र०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्	म०	अज्ञास्थाः	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
जानीय	जानीवहि	जानीमहि	उ०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि

आशीर्लिङ्				लृङ्		
ज्ञासीष्ट	ज्ञासीयास्ताम्	ज्ञासीरन्	प्र०	अज्ञास्यत	अज्ञास्येताम्	अज्ञास्यन्त
ज्ञासीष्ठाः	ज्ञासीयास्थाम्	ज्ञासीध्वम्	म०	अज्ञास्यथाः	अज्ञास्येथाम्	अज्ञास्यध्वम्
ज्ञासीय	ज्ञासीवहि	ज्ञासीमहि	उ०	अज्ञास्ये	अज्ञास्यावहि	अज्ञास्यामहि

(४) बन्ध् (बाँधना)-परस्मैपदी

लट्				लोट्		
बध्नाति	बध्नीतः	बध्नन्ति	प्र०	बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नन्तु
बध्नासि	बध्नीथः	बध्नीथ	म०	बधान	बध्नीतम्	बध्नीत
बध्नामि	बध्नीवः	बध्नीमः	उ०	बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम

लृट्				विधिलिङ्		
भन्त्स्यति	भन्त्स्यतः	भन्त्स्यन्ति	प्र०	बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयुः
भन्त्स्यसि	भन्त्स्यथः	भन्त्स्यथ	म०	बध्नीयाः	बध्नीयातम्	बध्नीयात
भन्त्स्यामि	भन्त्स्यावः	भन्त्स्यामः	उ०	बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम

लङ्				आशीर्लिङ्		
अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्	प्र०	बध्यात्	बध्यास्ताम्	बध्यासुः
अबध्नाः	अबध्नीतम्	अबध्नीत	म०	बध्याः	बध्यास्तम्	बध्यास्त
अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम	उ०	बध्यासम्	बध्यास्व	बध्यास्म

लिट्				लुङ्		
बबन्ध	बबन्धतुः	बबन्धुः	प्र०	अभान्त्सीत्	अबान्द्धाम्	अभान्त्सुः
बबन्धिथ,बबन्ध	बबन्धथुः	बबन्ध	म०	अभान्त्सीः	अबान्द्धम्	अबान्द्ध
बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम	उ०	अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म

लुट्				लृङ्		
बन्धा	बन्धारौ	बन्धारः	प्र०	अभन्त्स्यत्	अभन्त्स्यताम्	अभन्त्स्यन्
बन्धासि	बन्धास्थः	बन्धास्थ	म०	अभन्त्स्यः	अभन्त्स्यतम्	अभन्त्स्यत
बन्धास्मि	बन्धास्वः	बन्धास्मः	उ०	अभन्त्स्यम्	अभन्त्स्याव	अभन्त्स्याम

(५) मन्थ् (मथना) परस्मैपदी

लट्				आशीर्लिङ्		
मथ्नाति	मथ्नीतः	मथ्नन्ति	प्र०	मथ्यात्	मथ्यास्ताम्	मथ्यासुः
मथ्नासि	मथ्नीथः	मथ्नीथ	म०	मथ्याः	मथ्यास्तम्	मथ्यास्त
मथ्नामि	मथ्नीवः	मथ्नीमः	उ०	मथ्यासम्	मथ्यास्व	मथ्यास्म
लृट्				लिट्		
मन्थिष्यति	मन्थिष्यतः	मन्थिष्यन्ति	प्र०	ममन्थ	ममन्थतुः	ममन्थुः
मन्थिष्यसि	मन्थिष्यथः	मन्थिष्यथ	म०	ममन्थिथ	ममन्थथुः	ममन्थ
मन्थिष्यामि	मन्थिष्यावः	मन्थिष्यामः	उ०	ममन्थ	ममन्थिव	ममन्थिम
लङ्				लुट्		
अमथ्नात्	अमथ्नीताम्	अमथ्नन्	प्र०	मन्थिता	मन्थितारौ	मन्थितारः
अमथ्नाः	अमथ्नीतम्	अमथ्नीत	म०	मन्थितासि	मन्थितास्थः	मन्थितास्थः
अमथ्नाम्	अमथ्नीव	अमथ्नीम	उ०	मन्थितास्मि	मन्थितास्वः	मन्थितास्मः
लोट्				लुङ्		
मथ्नातु,मथ्नीतात्	मथ्नीताम्	मथ्नन्तु	प्र०	अमन्थीत्	अमन्थिष्टाम्	अमन्थिषुः
मथान	मथ्नीतम्	मथ्नीत	म०	अमन्थीः	अमन्थिष्टम्	अमन्थिष्ट
मथ्नानि	मथ्नाव	मथ्नाम	उ०	अमन्थिषम्	अमन्थिष्व	अमन्थिष्म
विधिलिङ्				लृङ्		
मथ्नीयात्	मथ्नीयाताम्	मथ्नीयुः	प्र०	अमन्थिष्यत्	अमन्थिष्यताम्	अमन्थिष्यन्
मथ्नीयाः	मथ्नीयातम्	मथ्नीयात	म०	अमन्थिष्यः	अमन्थिष्यतम्	अमन्थिष्यत
मथ्नीयाम्	मथ्नीयाव	मथ्नीयाम	उ०	अमन्थिष्यम्	अमन्थिष्याव	अमन्थिष्याम

१०—चुरादिगण

इस गण की प्रथम धातु चुर् है, इसलिए इसका नाम चुरादिगण पड़ा। इस गण में धातु और प्रत्यय के बीच में अय जोड़ दिया जाता है तथा उपधा के ह्रस्व स्वर (अ के अतिरिक्त) का गुण हो जाता है और यदि उपधा में ऐसा अ हो जिसके बाद संयुक्ताक्षर न हो तो उसकी और अन्तिम स्वर की वृद्धि हो जाती है। यथा–चुर् + अय + ति = चोर् + अय + ति = चोरयति। तड् + अय + ति = ताड् + अय + ति = ताडयति।

उभयपदी

(१) चुर् (चुराना) परस्मैपद

लट्				आशीर्लिङ्		
चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति	प्र०	चोर्यात्	चोर्यास्ताम्	चोर्यासुः
चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ	म०	चोर्याः	चोर्यास्तम्	चोर्यास्त
चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः	उ०	चोर्यासम्	चोर्यास्व	चोर्यास्म

लृट्				लिट्		
चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति	प्र०	चोरयाञ्चकार	चोरयाञ्चक्रतुः	चोरयाञ्चक्रुः
चोरयिष्यसि	चोरयिष्यथः	चोरयिष्यथ	म०	चोरयाञ्चकर्थ	चोरयाञ्चक्रथुः	चोरयाञ्चक्र
चोरयिष्यामि	चोरयिष्यावः	चोरयिष्यामः	उ०	चोरयाञ्चकार	चोरयाञ्चकृव	चोरयाञ्चकृम

लङ्				लुट्		
अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्	प्र०	चोरयिता	चोरयितारौ	चोरयितारः
अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत	म०	चोरयितासि	चोरयितास्थः	चोरयितास्थ
अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम	उ०	चोरयितास्मि	चोरयितास्वः	चोरयितास्मः

लोट्				लुङ्		
चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु	प्र०	अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्
चोरय	चोरयतम्	चोरयत	म०	अचूचुरः	अचूचुरतम्	अचूचुरत
चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम्	त०	अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम

विधिलिङ्				लृङ्		
चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः	प्र०	अचोरयिष्यत्	अचोरयिष्यताम्	अचोरयिष्यन्
चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत	म०	अचोरयिष्यः	अचोरयिष्यतम्	अचोरयिष्यत
चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम	उ०	अचोरयिष्यम्	अचोरयिष्याव	अचोरयिष्याम

चुर् (चुराना) आत्मनेपद

लट्				आशीर्लिङ्		
चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते	प्र०	चोरयिषीष्ट	चोरयिषीयास्ताम्	चोरयिषीरन्
चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे	म०	चोरयिषीष्ठाः	चोरयिषीयास्थाम्	चोरयिषीध्वम्
चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे	उ०	चोरयिषीय	चोरयिषीवहि	चोरयिषीमहि

लृट्				लिट्		
चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	चोरयिष्यन्ते	प्र०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चक्राते	चोरयाञ्चक्रिरे
चोरयिष्यसे	चोरयिष्येथे	चोरयिष्यध्वे	म०	चोरयाञ्चकृषे	चोरयाञ्चक्राथे	चोरयाञ्चकृढ्वे
चोरयिष्ये	चोरयिष्यावहे	चोरयिष्यामहे	उ०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चकृवहे	चोरयाञ्चकृमहे

लङ्				लुट्		
अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त	प्र०	चोरयिता	चोरयितारौ	चोरयितारः
अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्	म०	चोरयितासे	चोरयितासाथे	चोरयिताध्वे
अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि	उ०	चोरयिताहे	चोरयितास्वहे	चोरयितास्महे

लोट्				लुङ्		
चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्	प्र०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्	म०	अचूचुरथाः	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै	उ०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि

विधिलिङ्				लृङ्		
चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्	प्र०	अचोरयिष्यत	अचोरयिष्येताम्	अचोरयिष्यन्त
चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्	म०	अचोरयिष्यथाः	अचोरयिष्येथाम्	अचोरयिष्यध्वम्
चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि	उ०	अचोरयिष्ये	अचोरयिष्यावहि	अचोरयिष्यामहि

उभयपदी

(२) चिन्त् (सोचना) परस्मैपद

लट्				लङ्		
चिन्तयति	चिन्तयतः	चिन्तयन्ति	प्र०	अचिन्तयत	अचिन्तयताम्	अचिन्तयन्
चिन्तयसि	चिन्तयथः	चिन्तयथ	म०	अचिन्तयः	अचिन्तयतम्	अचिन्तयत
चिन्तयामि	चिन्तयावः	चिन्तयामः	उ०	अचिन्तयम्	अचिन्तयाव	अचिन्तयाम

लृट्				लोट्		
चिन्तयिष्यति	चिन्तयिष्यतः	चिन्तयिष्यन्ति	प्र०	चिन्तयतु	चिन्तयताम्	चिन्तयन्तु
चिन्तयिष्यसि	चिन्तयिष्यथः	चिन्तयिष्यथ	म०	चिन्तय	चिन्तयतम्	चिन्तयत
चिन्तयिष्यामि	चिन्तयिष्यावः	चिन्तयिष्यामः	उ०	चिन्तयानि	चिन्तयाव	चिन्तयाम

विधिलिङ्				लुट्		
चिन्तयेत	चिन्तयेताम्	चिन्तयेयुः	प्र०	चिन्तयिता	चिन्तयितारौ	चिन्तयितारः
चिन्तयेः	चिन्तयेतम्	चिन्तयेत	म०	चिन्तयितासि	चिन्तयितास्थः	चिन्तयितास्थ
चिन्तयेयम्	चिन्तयेव	चिन्तयेम	उ०	चिन्तयितास्मि	चिन्तयितास्वः	चिन्तयितास्मः

आशीर्लिङ्				लुङ्		
चिन्त्यात्	चिन्त्यास्ताम्	चिन्त्यासुः	प्र०	अचिचिन्तत्	अचिचिन्तताम्	अचिचिन्तन्
चिन्त्याः	चिन्त्यास्तम्	चिन्त्यास्त	म०	अचिचिन्तः	अचिचिन्ततम्	अचिचिन्तत
चिन्त्यासम्	चिन्त्यास्व	चिन्त्यास्म	उ०	अचिचिन्तम्	अचिचिन्ताव	अचिचिन्ताम

	लिट्		
	चिन्तयाञ्चकार	चिन्तयाञ्चक्रतुः	चिन्तयाञ्चक्रुः
	चिन्तयाञ्चकर्थ	चिन्तयाञ्चक्रथुः	चिन्तयाञ्चक्र
	चिन्तयाञ्चकार	चिन्तयाञ्चकृव	चिन्तयाञ्चकृम

	लृङ्		
प्र०	अचिन्तयिष्यत्	अचिन्तयिष्यताम्	अचिन्तयिष्यन्
म०	अचिन्तयिष्यः	अचिन्तयिष्यतम्	अचिन्तयिष्यत
उ०	अचिन्तयिष्यम्	अचिन्तयिष्याव	अचिन्तयिष्याम

चिन्त् (सोचना) आत्मनेपद

लट्				विधिलिङ्		
चिन्तयते	चिन्तयेते	चिन्तयन्ते	प्र०	चिन्तयेत	चिन्तयेयाताम्	चिन्तयेरन्
चिन्तयसे	चिन्तयेथे	चिन्तयध्वे	म०	चिन्तयेथाः	चिन्तयेयाथाम्	चिन्तयेध्वम्
चिन्तये	चिन्तयावहे	चिन्तयामहे	उ०	चिन्तयेय	चिन्तयेवहि	चिन्तयेमहि

लृट्

चिन्तयिष्यते	चिन्तयिष्येते	चिन्तयिष्यन्ते
चिन्तयिष्यसे	चिन्तयिष्येथे	चिन्तयिष्यध्वे
चिन्तयिष्ये	चिन्तयिष्यावहे	चिन्तयिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० चिन्तयिषीष्ट	चिन्तयिषीयास्ताम्	चिन्तयिषीरन्
म० चिन्तयिषीष्ठाः	चिन्तयिषीयास्थाम्	चिन्तयिषीध्वम्
उ० चिन्तयिषीय	चिन्तयिषीवहि	चिन्तयिषीमहि

लङ्

अचिन्तयत	अचिन्तयेताम्	अचिन्तयन्त
अचिन्तयथाः	अचिन्तयेथाम्	अचिन्तयध्वम्
अचिन्तये	अचिन्तयावहि	अचिन्तयामहि

लिट्

प्र० चिन्तयाञ्चक्रे	चिन्तयाञ्चक्राते	चिन्तयाञ्चक्रिरे
म० चिन्तयाञ्चकृषे	चिन्तयाञ्चक्राथे	चिन्तयाञ्चकृढ्वे
उ० चिन्तयाञ्चक्रे	चिन्तयाञ्चकृवहे	चिन्तयाञ्चकृमहे

लोट्			लुट्		
चिन्तयताम्	चिन्तयेताम्	चिन्तयन्ताम्	प्र० चिन्तयिता	चिन्तयितारौ	चिन्तयितारः
चिन्तयस्व	चिन्तयेथाम्	चिन्तयध्वम्	म० चिन्तयितासे	चिन्तयितासाथे	चिन्तयिताध्वे
चिन्तयै	चिन्तयावहै	चिन्तयामहै	उ० चिन्तयिताहे	चिन्तयितास्वहे	चिन्तयितास्महे

लुङ्

अचिचिन्तत	अचिचिन्तेताम्	अचिचिन्तन्त
अचिचिन्तथाः	अचिचिन्तेथाम्	अचिचिन्तध्वम्
अचिचिन्ते	अचिचिन्तावहि	अचिचिन्तामहि

लृङ्

प्र० अचिन्तयिष्यत	अचिन्तयिष्येताम्	अचिन्तयिष्यन्त
म० अचिन्तयिष्यथाः	अचिन्तयिष्येथाम्	अचिन्तयिष्यध्वम्
उ० अचिन्तयिष्ये	अचिन्तयिष्यावहि	अचिन्तयिष्यामहि

उभयपदी

(३) भक्ष् (खाना) परस्मैपद

लट्			आशीर्लिङ्		
भक्षयति	भक्षयतः	भक्षयन्ति	प्र० भक्ष्यात्	भक्ष्यास्ताम्	भक्ष्यासुः
भक्षयसि	भक्षयथः	भक्षयथ	म० भक्ष्याः	भक्ष्यास्तम्	भक्ष्यास्त
भक्षयामि	भक्षयावः	भक्षयामः	उ० भक्ष्यासम्	भक्ष्यास्व	भक्ष्यास्म

लृट्				लिट्		
भक्षयिष्यति	भक्षयिष्यतः	भक्षयिष्यन्ति	प्र०	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चक्रतुः	भक्षयाञ्चक्रुः
भक्षयिष्यसि	भक्षयिष्यथः	भक्षयिष्यथ	म०	भक्षयाञ्चकर्थ	भक्षयाञ्चक्रथुः	भक्षयाञ्चक्र
भक्षयिष्यामि	भक्षयिष्यावः	भक्षयिष्यामः	उ०	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चकृव	भक्षयाञ्चकृम

लङ्				लुट्		
अभक्षयत्	अभक्षयताम्	अभक्षयन्	प्र०	भक्षयिता	भक्षयितारौ	भक्षयितारः
अभक्षयः	अभक्षयतम्	अभक्षयत	म०	भक्षयितासि	भक्षयितास्थः	भक्षयितास्थ
अभक्षयम्	अभक्षयाव	अभक्षयाम	उ०	भक्षयितास्मि	भक्षयितास्वः	भक्षयितास्मः

लोट्				लुङ्		
भक्षयतु	भक्षयताम्	भक्षयन्तु	प्र०	अबभक्षत्	अबभक्षताम्	अबभक्षन्
भक्षय	भक्षयतम्	भक्षयत	म०	अबभक्षः	अबभक्षतम्	अबभक्षत
भक्षयाणि	भक्षयाव	भक्षयाम	उ०	अबभक्षम्	अबभक्षाव	अबभक्षाम

विधिलिङ्				लृङ्		
भक्षयेत्	भक्षयेताम्	भक्षयेयुः	प्र०	अभक्षयिष्यत्	अभक्षयिष्यताम्	अभक्षयिष्यन्
भक्षयेः	भक्षयेतम्	भक्षयेत	म०	अभक्षयिष्यः	अभक्षयिष्यतम्	अभक्षयिष्यत
भक्षयेयम्	भक्षयेव	भक्षयेम	उ०	अभक्षयिष्यम्	अभक्षयिष्याव	अभक्षयिष्याम

भक्ष् (खाना) आत्मनेपद

लट्				लृट्		
भक्षयते	भक्षयेते	भक्षयन्ते	प्र०	भक्षयिष्यते	भक्षयिष्येते	भक्षयिष्यन्ते
भक्षयसे	भक्षयेथे	भक्षयध्वे	म०	भक्षयिष्यसे	भक्षयिष्येथे	भक्षयिष्यध्वे
भक्षये	भक्षयावहे	भक्षयामहे	उ०	भक्षयिष्ये	भक्षयिष्यावहे	भक्षयिष्यामहे

लङ्				लिट्		
अभक्षयत	अभक्षयेताम्	अभक्षयन्त	प्र०	भक्षयाञ्चक्रे	भक्षयाञ्चक्राते	भक्षयाञ्चक्रिरे
अभक्षयथाः	अभक्षयेथाम्	अभक्षयध्वम्	म०	भक्षयाञ्चकृषे	भक्षयाञ्चक्राथे	भक्षयाञ्चकृढ्वे
अभक्षये	अभक्षयावहि	अभक्षयामहि	उ०	भक्षयाञ्चक्रे	भक्षयाञ्चकृवहे	भक्षयाञ्चकृमहे

लोट्				लुट्		
भक्षयताम्	भक्षयेताम्	भक्षयन्ताम्	प्र०	भक्षयिता	भक्षयितारौ	भक्षयितारः
भक्षयस्व	भक्षयेथाम्	भक्षयध्वम्	म०	भक्षयितासे	भक्षयितासाथे	भक्षयिताध्वे
भक्षयै	भक्षयावहै	भक्षयामहै	उ०	भक्षयिताहे	भक्षयितास्वहे	भक्षयितास्महे

विधिलिङ्				लुङ्		
भक्षयेत	भक्षयेयाताम्	भक्षयेरन्	प्र०	अबभक्षत	अबभक्षेताम्	अबभक्षन्त
भक्षयेथाः	भक्षयेयाथाम्	भक्षयेध्वम्	म०	अबभक्षथाः	अबभक्षेथाम्	अबभक्षध्वम्
भक्षयेय	भक्षयेवहि	भक्षयेमहि	उ०	अबभक्षे	अबभक्षावहि	अबभक्षामहि

यिता। लुङ्-अजीगणत् अथवा अजगणत्, अजीगणत अथवा अजगणत। लृङ्-अगणयिष्यत, अगणयिष्यत।

उभयपदी

(६) तड् (मारना)

लट्-ताडयति, ताडयते। लृट्-ताडयिष्यति, ताडयिष्यते। आ० लिङ्-ताड्यात् ताडयिषीष्ट। लिट्-ताडयामास, ताडयाम्बभूव, ताडयाञ्चकार, ताडयाञ्चक्रे। लुङ्-अतीतडत्, अतीतडताम्, अतीतडन्। अतीतडत, अतीतडेताम्, अतीतडन्त।

उभयपदी

(७) तुल् (तौलना)

लट्-तोलयति, तोलयते। लृट्-तोलयिष्यति, तोलयिष्यते। आ० लिङ्-तोल्यात्, तोलयिषीष्ट। लुट्-तोलयिता। लिट्-तोलयाञ्चकार, तोलयाञ्चक्रे। लुङ्-अतूतुलत्, अतूतुलताम्, अतूतुलन्। अतूतुलत, अतूतुलेताम्, अतूतुलन्त।

उभयपदी

(८) स्पृह् (चाहना)

लट्-स्पृहयति, स्पृहयते। लृट्-स्पृहयिष्यति, स्पृहयिष्यते। आशीर्लिङ्-स्पृह्यात्, स्पृहयिषीष्ट। लुट्-स्पृहयिता। लिट्-स्पृहयामास, स्पृहयाम्बभूव, स्पृहयाञ्चकार, स्पृहयाञ्चक्रे। लुङ्-अपस्पृहत्, अपस्पृहत।

अष्टम सोपान

(अ) कर्मवाच्य एवं भाववाच्य

संस्कृत में धातुओं के पूर्वोक्त सकर्मक-अकर्मक भेद के कारण मुख्यतः तीन प्रकार के वाच्य होते हैं:—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। सकर्मक धातुओं से कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य होते हैं एवं अकर्मक धातुओं से कर्तृवाच्य और भाववाच्य होते हैं।

कर्तृवाच्य के कर्ता कारक में प्रथमा विभक्ति तथा कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति होती है एवं क्रिया कर्ता के अनुकूल होती है।

जहां सकर्मक धातुओं से कर्म में प्रत्यय होता है; अर्थात् क्रिया के पुरुष और वचन कर्म के पुरुष और वचन के अनुकूल होते हैं उसे कर्मवाच्य कहते हैं। कर्मवाच्य के कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है और कर्म कारक में प्रथमा विभक्ति होती है।

अकर्मक धातुओं से भाववाच्य होता है। भाववाच्य के कर्ता कारक में तृतीया विभक्ति होती है, कर्म का अभाव रहता है और क्रिया सदा प्रथम पुरुष एक वचन होती है।

कर्मवाच्य और भाव वाच्य के रूप बनाते समय निम्नलिखित नियमों का पालन अवश्य किया जाना चाहिए—

(१) धातु और प्रत्ययों के बीच में सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्) में यक् (य) जोड़ दिया जाता है। यथा भिद् + य + ते भिद्यते।

(२) धातु में यक् के पूर्व कोई विकार नहीं होता है। यथा गम् + य + ते = गम्यते। कर्मवाच्य में सार्वधातुक लकारों में धातुओं के स्थान में धात्वादेश (यथा गम् का गच्छ्) नहीं होता है। इसी प्रकार गुण और वृद्धि भी नहीं होती है।

(३) दा, दे, दो, धा, धे, मा, गै, पा, सो, हा धातुओं का अन्तिम स्वर ई परिवर्तित हो जाता है। यथा-दीयते, धीयते, मीयते, गीयते, पीयते, सीयते, हीयते। अन्य धातुओं का वही रूप रहता है। यथा—ज्ञायते, स्नायते, भूयते, ध्यायते।

(४) कुछ धातुओं के बीच का अनुस्वार कर्मवाच्य के रूपों में निकाल दिया जाता है। यथा बन्ध् से बध्यते, शंस् से शस्यते, इन्ध् से इध्यते।

(५) शेष छः लकारों में कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्तृवाच्य के ही रूप होते हैं। यथा परोक्षभूत में निन्ये, बभूवे, जज्ञे आदि।

(६) स्वरान्त धातु तथा हन्, ग्रह्, दृश् धातुओं के दोनों भविष्य, क्रियातिपत्ति तथा आशीर्लिङ् में वैकल्पिक रूप धातु के स्वर की वृद्धि करके तथा प्रत्ययों के

पूर्व इ जोड़कर बनाये जाते हैं। यथा दा से दायिता अथवा दाता, दायिष्यते अथवा दास्यते, अदायिष्यत अथवा अदास्यत, दायिषीष्ट अथवा दासीष्ट।

मुख्य धातुओं के कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप—

पठ् (पढ़ना) कर्मवाच्य

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
लट्	पठ्यते	पठ्येते	पठ्यन्ते
लृट्	पठिष्यते	पठिष्येते	पठिष्यन्ते
लङ्	अपठ्यत	अपठ्येताम्	अपठ्यन्त
लोट्	पठ्यताम्	पठ्येताम्	पठ्यन्ताम्
विधिलिङ्	पठ्येत	पठ्येयाताम्	पठ्येरन्
आशीर्लिङ्	पठिषीष्ट	पठिषीयास्ताम्	पठिषीरन्
लिट्	पेठे	पेठाते	पेठिरे
लुट्	पठिता	पठितारौ	पठितारः
	पठितासे	पठितासाथे	पठिताध्वे
	पठिताहे	पठितास्वहे	पठितास्महे,
लुङ्	अपाठि	अपाठिषाताम्	अपाठिषत
लृङ्	अपठिष्यत	अपठिष्येताम्	अपठिष्यन्त

मुच् (छोड़ना)

लट्	मुच्यते	मुच्येते	मुच्यन्ते
लृट्	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
लङ्	अमुच्यत	अमुच्येताम्	अमुच्यन्त
लोट्	मुच्यताम्	मुच्येताम्	मुच्यन्ताम्
विधिलिङ्	मुच्येत	मुच्येयाताम्	मुच्येरन्
आशीर्लिङ्	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मुक्षीरन्
लिट्	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे
लुट्	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः
लुङ्	अमोचि	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि
लृङ्	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अमोक्ष्यन्त

पा (पीना) कर्मवाच्य

लट्	पीयते	पीयेते	पीयन्ते
	पीयसे	पीयेथे	पीयध्वे
	पीये	पीयावहे	पीयामहे
लृट्	पास्यते	पास्येते	पास्यन्ते
लङ्	अपीयत	अपीयेताम्	अपीयन्त
	अपीयथाः	अपीयेथाम्	अपीयध्वम्
	अपीये	अपीयावहि	अपीयामहि
लोट्	पीयताम्	पीयेताम्	पीयन्ताम्
	पीयस्व	पीयेथाम्	पीयध्वम्
	पीयै	पीयावहै	पीयामहै
विधिलिङ्	पीयेत	पीयेयाताम्	पीयेरन्
	पीयेथाः	पीयेयाथाम्	पीयेध्वम्
	पीयेय	पीयेवहि	पीयेमहि
आशीर्लिङ्	पासीष्ट	पासीयास्ताम्	पासीरन्
लिट्	पपे	पपाते	पपिरे
	पपिषे	पपाथे	पपिध्वे
	पपे	पपिवहे	पपिमहे
लुट्	पाता	पातारौ	पातारः
लुङ्	अपायि	अपायिषाताम्	अपायिषत
	अपायिष्ठाः	अपायिषाथाम्	अपायिध्वम्
	अपायिषि	अपायिष्वहि	अपायिष्महि
लृङ्	अपास्यत	अपास्येताम्	अपास्यन्त
	अपास्यथाः	अपास्येथाम्	अपास्यध्वम्
	अपास्ये	अपास्यावहि	अपास्यामहि

दा (देना) कर्मवाच्य

लट्	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
	दीये	दीयावहे	दीयामहे
लृट्	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

अथवा

	दायिष्यते	दायिष्येते	दायिष्यन्ते
	दायिष्यसे	दायिष्येथे	दायिष्यध्वे
	दायिष्ये	दायिष्यावहे	दायिष्यामहे
लङ्	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि
लोट्	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
	दीयै	दीयावहै	दीयामहै
विधिलिङ्	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि
आशीर्लिङ्	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
	दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

अथवा

	दायिषीष्ट	दायिषीयास्ताम्	दायिषीरन्
	दायिषीष्ठाः	दायिषीयास्थाम्	दायिषीध्वम्
	दायिषीय	दायिषीवहि	दायिषीमहि
लिट्	ददे	ददाते	ददिरे
	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
	ददे	ददिवहे	ददिमहे
लुट्	दाता	दातारौ	दातारः
	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

अथवा

	दायिता	दायितारौ	दायितारः
	दायितासे	दायितासाथे	दायिताध्वे
	दायिताहे	दायितास्वहे	दायितास्महे
लुङ्	अदायि	अदायिषाताम्, अदिषाताम्	अदायिषत, अदिषत
	अदायिष्ठाः, अदिथाः	अदायिषाथाम्, अदिषाथाम्	अदायिध्वम्, अदिध्वम्
	अदायिषि, अदिषि	अदायिष्वहि, अदिष्वहि	अदायिष्महि, अदिष्महि
लृङ्	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

अथवा

अदायिष्यत	अदायिष्येताम्	अदायिष्यन्त
अदायिष्यथाः	अदायिष्येथाम्	अदायिष्यध्वम्
अदायिष्ये	अदायिष्यावहि	अदायिष्यामहि

अकर्मक स्था (ठहरना)—भाववाच्य

लट्	स्थीयते	स्थीयेते	स्थीयन्ते
लृट्	स्थास्यते	स्थास्येते	स्थास्यन्ते
लङ्	अस्थीयत	अस्थीयेताम्	अस्थीयन्त
लोट्	स्थीयताम्	स्थीयेताम्	स्थीयन्ताम्
विधिलिङ्	स्थीयेत	स्थीयेयाताम्	स्थीयेरन्
आशीर्लिङ्	स्थासीष्ट	स्थासीयास्ताम्	स्थासीरन्
लिट्	तस्थे	तस्थाते	तस्थिरे
	तस्थिषे	तस्थाथे	तस्थिध्वे
	तस्थे	तस्थिवहे	तस्थिमहे
लुट्	स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः
लुङ्	अस्थायि	अस्थायिषाताम्	अस्थायिषत
	अस्थायिष्ठाः	अस्थायिषाथाम्	अस्थायिध्वम्
	अस्थायिषि	अस्थायिष्वहि	अस्थायिष्महि
लृङ्	अस्थास्यत	अस्थास्येताम्	अस्थास्यन्त

ध्यै (ध्या) ध्यान करना

लट्	ध्यायते	ध्यायेते	ध्यायन्ते
लृट्	ध्यास्यते	ध्यास्येते	ध्यास्यन्ते
लङ्	अध्यायत	अध्यायेताम्	अध्यायन्त
लोट्	ध्यायताम्	ध्यायेताम्	ध्यायन्ताम्
विधिलिङ्	ध्यायेत	ध्यायेयाताम्	ध्यायेरन्
आशीर्लिङ्	ध्यासीष्ट	ध्यासीयास्ताम्	ध्यासीरन्
लिट्	दध्ये	दध्याते	दध्यिरे
लुट्	ध्याता	ध्यातारौ	ध्यातारः
लुङ्	अध्यायि	अध्यायिषाताम् , अध्यासाताम्	अध्यायिषत, अध्यासत
लृङ्	अध्यास्यत	अध्यास्येताम्	अध्यास्यन्त

सकर्मक नी (ले जाना) कर्मवाच्य

लट्	नीयते	नीयेते	नीयन्ते
	नीयसे	नीयेथे	नीयध्वे
	नीये	नीयावहे	नीयामहे

लृट्	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

अथवा

	नायिष्यते	नायिष्येते	नायिष्यन्ते
	नायिष्यसे	नायिष्येथे	नायिष्यध्वे
	नायिष्ये	नायिष्यावहे	नायिष्यामहे
लङ्	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्त
	अनीयथाः	अनीयेथाम्	अनीयध्वम्
	अनीये	अनीयावहि	अनीयामहि
लोट्	नीयताम्	नीयेताम्	नीयन्ताम्
	नीयस्व	नीयेथाम्	नीयध्वम्
	नीयै	नीयावहै	नीयामहै
विधिलिङ्	नीयेत	नीयेयाताम्	नीयेरन्
	नीयेथाः	नीयेयाथाम्	नीयेध्वम्
	नीयेय	नीयेवहि	नीयेमहि
आशीर्लिङ्	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
	नेषीष्ठाः	नेषीयास्थाम्	नेषीध्वम्
	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

अथवा

	नायिषीष्ट	नायिषीयास्ताम्	नायिषीरन्
	नायिषीष्ठाः	नायिषीयस्थाम्	नायिषीध्वम्
	नायिषीय	नायिषीवहि	नायिषीमहि
लिट्	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे
	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे
लुट्	नेता	नेतारौ	नेतारः
	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

अथवा

नायिता	नायितारौ	नायितारः
नायितासे	नायितासाथे	नायिताध्वे
नायिताहे	नायितास्वहे	नायितास्महे

लुङ्	अनायि	अनायिषाताम्, अनेषाताम्	अनायिषत, अनेषत
	अनायिष्ठाः, अनेष्ठाः	अनायिषाथाम्, अनेषाथाम्	अनायिध्वम्, अनेध्वम्
	अनायिषि, अनेषि	अनायिष्वहि, अनेष्वहि	अनायिष्महि, अनेष्महि
लृङ्	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
	अनेष्यथाः	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

अथवा

अनायिष्यत	अनायिष्येताम्	अनायिष्यन्त
अनायिष्यथाः	अनायिष्येथाम्	अनायिष्यध्वम्
अनायिष्ये	अनायिष्यावहि	अनायिष्यामहि

सकर्मक चि (चुनना) कर्मवाच्य

लट्	चीयते	चीयेते	चीयन्ते
	चीयसे	चीयेथे	चीयध्वे
	चीये	चीयावहे	चीयामहे
लृट्	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
	चेष्यसे	चेष्येथे	चेष्यध्वे
	चेष्ये	चेष्यावहे	चेष्यामहे

अथवा

	चायिष्यते	चायिष्येते	चायिष्यन्ते
	चायिष्यसे	चायिष्येथे	चायिष्यध्वे
	चायिष्ये	चायिष्यावहे	चायिष्यामहे
लङ्	अचीयत	अचीयेताम्	अचीयन्त
	अचीयथाः	अचीयेथाम्	अचीयध्वम्
	अचीये	अचीयावहि	अचीयामहि
लोट्	चीयताम्	चीयेताम्	चीयन्ताम्
	चीयस्व	चीयेथाम्	चीयध्वम्
	चीयै	चीयावहै	चीयामहै
विधिलिङ्	चीयेत	चीयेयाताम्	चीयेरन्
	चीयेथाः	चीयेयाथाम्	चीयेध्वम्
	चीयेय	चीयेवहि	चीयेमहि
आशीर्लिङ्	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
	चेषीष्ठाः	चेषीयास्थाम्	चेषीध्वम्
	चेषीय	चेषीवहि	चेषीमहि

अथवा

	चायिषीष्ट	चायिषीयास्ताम्	चायिषीरन्
	चायिषीष्ठाः	चायिषीयास्थाम्	चायिषीध्वम्
	चायिषीय	चायिषीवहि	चायिषीमहि
लिट्	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे
	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे
लुट्	चेता	चेतारौ	चेतारः
	चेतासे	चेतासाथे	चेताध्वे
	चेताहे	चेतास्वहे	चेतास्महे

अथवा

	चायिता	चायितारौ	चायितारः
	चायितासे	चायितासाथे	चायिताध्वे
	चायिताहे	चायितास्वहे	चायितास्महे
लुङ्	अचायि	अचायिषाताम्, अचेषाताम्	अचायिषत, अचेषत
	अचायिष्ठाः, अचेष्ठाः	अचायिषाथाम्, अचेषाथाम्	अचायिध्वम्, अचेध्वम्
	अचायिषि, अचेषि	अचायिष्वहि, अचेष्वहि	अचायिष्महि, अचेष्महि
लृङ्	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त
	अचेष्यथाः	अचेष्येथाम्	अचेष्यध्वम्
	अचेष्ये	अचेष्यावहि	अचेष्यामहि

अथवा

अचायिष्यत	अचायिष्येताम्	अचायिष्यन्त
अचायिष्यथाः	अचायिष्येथाम्	अचायिष्यध्वम्
अचायिष्ये	अचायिष्यावहि	अचायिष्यामहि

अकर्मक जि (जीना) भाववाच्य

लट्	जीयते	जीयेते	जीयन्ते
लृट्	जेष्यते	जेष्येते	जेष्यन्ते

अथवा

	जायिष्यते	जायिष्येते	जायिष्यन्ते
लङ्	अजीयत	अजीयेताम्	अजीयन्त
लोट्	जीयताम्	जीयेताम्	जीयन्ताम्
विधिलिङ्	जेषीष्ट	जेषीयास्ताम्	जेषीरन्

अथवा

	जायिषीष्ट	जायिषीयास्ताम्	जायिषीरन्
लिट्	जिग्ये	जिग्याते	जिग्यिरे
	जिग्यिषे	जिग्याथे	जिग्यिध्वे
	जिग्ये	जिग्यिवहे	जिग्यिमहे
लुट्	जेता	जेतारौ	जेतारः

अथवा

	जायिता	जायितारौ	जायितारः
लुङ्	अजायि	अजायिषाताम् , अजेषाताम्	अजायिषत, अजेषत
	अजायिष्ठाः, अजेष्ठाः	अजायिषाथाम् , अजेषाथाम्	अजायिध्वम् , अजेध्वम्
	अजायिषि, अजेषि	अजायिष्वहि, अजेष्वहि	अजायिष्महि, अजेष्महि
लृङ्	{ अजेष्यत	अजेष्येताम्	अजेष्यन्त
	{ अजायिष्यत	अजायिष्येताम्	अजायिष्यन्त

अकर्मक ज्ञा (जानना) कर्मवाच्य

लट्	ज्ञायते	ज्ञायेते	ज्ञायन्ते
	ज्ञायसे	ज्ञायेथे	ज्ञायध्वे
	ज्ञाये	ज्ञायावहे	ज्ञायामहे
लृट्	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

अथवा

	ज्ञायिष्यते	ज्ञायिष्येते	ज्ञायिष्यन्ते
	ज्ञायिष्यसे	ज्ञायिष्येथे	ज्ञायिष्यध्वे
	ज्ञायिष्ये	ज्ञायिष्यावहे	ज्ञायिष्यामहे
लङ्	अज्ञायत	अज्ञायेताम्	अज्ञायन्त
	अज्ञायथाः	अज्ञायेथाम्	अज्ञायध्वम्
	अज्ञाये	अज्ञायावहि	अज्ञायामहि
लोट्	ज्ञायताम्	ज्ञायेताम्	ज्ञायन्ताम्
	ज्ञायस्व	ज्ञायेथाम्	ज्ञायध्वम्
	ज्ञायै	ज्ञायावहै	ज्ञायामहै
विधिलिङ्	ज्ञायेत	ज्ञायेयाताम्	ज्ञायेरन्
	ज्ञायेथाः	ज्ञायेयाथाम्	ज्ञायेध्वम्
	ज्ञायेय	ज्ञायेवहि	ज्ञायेमहि

विधिलिङ्	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्
	क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्
	क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि
आशीर्लिङ्	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
	कृषीष्ठाः	कृषीयास्थाम्	कृषीध्वम्
	कृषीय	कृषीवहि	कृषीमहि
		अथवा	
	कारिषीष्ट	कारिषीयास्ताम्	कारिषीरन्
	कारिषीष्ठाः	कारिषीयास्थाम्	कारिषीध्वम्
	कारिषीय	कारिषीवहि	कारिषीमहि
लिट्	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे
लुट्	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
	कर्तासे	कर्तासाथे	कर्ताध्वे
	कर्ताहे	कर्तास्वहे	कर्तास्महे
		अथवा	
	कारिता	कारितारौ	कारितारः
	कारितासे	कारितासाथे	कारिताध्वे
	कारिताहे	कारितास्वहे	कारितास्महे
लुङ्	अकारि	अकारिषाताम् / अकृषाताम्	अकारिषत / अकृषत
	अकारिष्ठाः / अकृथाः	अकारिषाथाम् / अकृषाथाम्	अकारिध्वम् / अकृध्वम्
	अकारिषि / अकृषि	अकारिष्वहि / अकृष्वहि	अकारिष्महि / अकृष्महि
लृङ्	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त
	अकरिष्यथाः	अकरिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम्
	अकरिष्ये	अकरिष्यावहि	अकरिष्यामहि
		अथवा	
	अकारिष्यत	अकारिष्येताम्	अकारिष्यन्त
	अकारिष्यथाः	अकारिष्येथाम्	अकारिष्यध्वम्
	अकारिष्ये	अकारिष्यावहि	अकारिष्यामहि

धृ (धारण करना)

लट्	ध्रियते	ध्रियेते	ध्रियन्ते
लृट्	धरिष्यते	धरिष्येते	धरिष्यन्ते

अथवा

	धारिष्यते	धारिष्येते	धारिष्यन्ते
लङ्	अध्रियत	अध्रियेताम्	अध्रियन्त
लोट्	ध्रियताम्	ध्रियेताम्	ध्रियन्ताम्
विधिलिङ्	ध्रियेत	ध्रियेयाताम्	ध्रियेरन्
आशीर्लिङ्	धृषीष्ट	धृषीयास्ताम्	धृषीरन्

अथवा

	धारिषीष्ट	धारिषीयास्ताम्	धारिषीरन्
लिट्	दध्रे	दध्राते	दध्रिरे
लुट्	धर्ता	धर्तारौ	धर्तारः

अथवा

	धारिता	धारितारौ	धारितारः
लुङ्	अधारि	{ अधारिषाताम् { अधृषाताम्	अधारिषत अधृषत
लृङ्	{ अधारिष्यत { अधारिष्यत	अधारिष्येताम् अधारिष्येताम्	अधारिष्यन्त अधारिष्यन्त

भृ (भरण करना)

लट्	भ्रियते	भ्रियेते	भ्रियन्ते
लिट्	बभ्रे	बभ्राते	बभ्रिरे
	बभृषे	बभ्राथे	बभृध्वे
	बभ्रे	बभृवहे	बभृमहे

इसी प्रकार

मृ —म्रियते, इत्यादि ।

वच्—उच्यते । लङ्—औच्यत ।

वद्—उद्यते । लङ्—औद्यत ।

वप्—उप्यते । लङ्—औप्यत ।

वस्—उष्यते । लङ्—औष्यत ।

वह्—उह्यते । लङ्—औह्यत ।

चुरादिगण की धातुओं का गुण तथा वृद्धि जो कि लट्, लोट्, विधिलिङ् और लङ् में साधारणतः होता है, कर्मवाच्य में भी रहता है।

इस गण का 'अय्' लट्, लोट्, विधिलिङ् और लङ् में तथा लुङ् के प्रथम पुरुष के एकवचन में निकाल दिया जाता है, लिट् में बना रहता है एवं शेष लकारों में विकल्प करके निकाल दिया जाता है।

का भी ग्रहण होता है। इसी से 'स रामं जलं पाययति' (वह राम को जल पिलाता है) इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं। बोधार्थ में—ग्रहण (लेना), दर्शन (देखना), श्रवण (सुनना) आदि का भी ग्रहण किया जाता है। ग्रहणार्थ में द्वितीया तथा तृतीया दोनों का प्रयोग देखने में आता है। यथा—

तस्याः दारिकायाः यथार्हेण कर्मणा मां पाणी अग्राहयेताम्—(उन्होंने) उस कन्या का पाणिग्रहण, विधिपूर्वक मुझ से कराया।

विदितार्थस्तु पार्थिवः त्वया दुहितुः पाणिं ग्राहयिष्यति—वृत्तान्त जानकर राजा अपनी कन्या का पाणिग्रहण तुम से करायेगा।

शब्दार्थ में—अध्ययन, पठन, वाचन और श्रवण आदि का भी ग्रहण किया जाता है। इसी से 'पण्डितः त्वां शास्त्रं श्रावयति' (पण्डित तुमको शास्त्र सुनाते हैं) आदि सिद्ध होता है।

नी और वह् धातुएँ जब गमनार्थ भी होती हैं, तब भी प्रयोज्य कर्ता में द्वितीया न होकर तृतीया होती है। यथा भृत्यो भारं नयति वहति वा> भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा—नौकर बोझा ले जाता है> मालिक नौकर से बोझा लिवा ले जाता है।

वह् धातु का सारथि कर्ता होने पर तृतीया न होकर द्वितीया होती है। यथा—

अश्वा रथं वहन्ति> सारथिः अश्वान् रथं वाहयति—घोड़े रथ खींचते हैं> सारथि घोड़ों से रथ खिंचवाता है।

आहारार्थक होने पर भी अद् और खाद् धातु के प्रयोज्य कर्ता में द्वितीया न होकर तृतीया होती है। यथा—यजमानः ब्राह्मणेन मिष्टान्नं खादयति आदयति वा' यजमान ब्राह्मण को मिठाई खिलाता है।

भक्ष् धातु से हिंसा का बोध न होने पर उसके प्रयोज्य कर्ता में द्वितीया न होकर तृतीया होती है। यथा-पिता रामेण अन्नं भक्षयति पिता-राम को अन्न खिला रहा है। किन्तु हिंसा का बोध होने से द्वितीया ही होती है। यथा-स मार्जारं मूषिकं भक्षयति-वह बिल्ली को चूहा खिलाता है।

जल्प्, भाष आदि धातु से शब्दकर्मक नहीं है, फिर भी इनके प्रयोज्य कर्ता में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—गुरुः शिष्यं धर्मं जल्पयति, भाषयति-गुरु शिष्य से धर्म कहलाता है।

णिजन्त में हृ और कृ धातु के प्रयोज्य कर्ता में विकल्प से द्वितीया विभक्ति होती है। यथा-स्वामी भृत्यं भृत्येन वा कटं कारयति, हारयति वा-मालिक नौकर से चटाई बनवाता है या लिवा ले जाता है।

णिजन्त धातु के रूप दोनों पदों में चुर् धातु के तुल्य चलते हैं, धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच में अय् जोड़ दिया जाता है। धातु के अन्तिम ह्रस्व और दीर्घ इ, उ, ऋ को वृद्धि (अर्थात क्रमशः ऐ, औ, आर्) हो जाता है और तदनन्तर अयादि

सन्धि की। उपधा में अ को आ, इ को ए, उ को ओ, ऋ को अर् गुण हो जाता है। यथा—कृ>कारयति, नी>नाययति, भू>भावयति, पठ्>पाठयति, लिख्>लेखयति। आदि।

कुछ अन्य धातुओं के प्रेरणार्थक रूप—

(१) बुध् (बोधति) से प्रेरणार्थक बोधयति
(२) अद् (अत्ति) से प्रेरणार्थक आदयति
(३) हु (जुहोति) से प्रेरणार्थक हावयति
(४) दिव् (दीव्यति) से प्रेरणार्थक देवयति
(५) सु (सुनोति) से प्रेरणार्थक सावयति
(६) तुद् (तुदति) से प्रेरणार्थक तोदयति
(७) रुध् (रुणद्धि) से प्रेरणार्थक रोधयति
(८) तन् (तनोति) से प्रेरणार्थक तानयति
(९) अश् (अश्नाति) से प्रेरणार्थक आशयति
(१०) चुर् (चोरयति) से प्रेरणार्थक चोरयति

मूल धातु से प्रेरणार्थक धातु बनाने के लिए निम्नलिखित नियमों को स्मरण कर लेना चाहिए—

(१) धातु से णिच् (अय) प्रत्यय लगता है।

(२) गम्, रम्, कम्, नम्, शम्, दम्, जन, त्वर्, घट्, व्यथ्, जृ धातुओं की उपधा के अ को आ नहीं होता। यथा—गमयति, रमयति, कमयति, नमयति, शमयति, दमयते, त्वरयति, घटयति, व्यथयति, जरयति।

अम्, कम्, चम्, शम्, यम् आदि धातुओं के अकार को वृद्धि होती है। यथा—कामयते, चामयति आदि।

(३) आकारान्त धातुओं के अन्त में णिच् से पहले 'प्' और लग जाता है। यथा—दा> दापयति, धा> धापयति, स्था> स्थापयति, या> यापयति, स्ना> स्नापयति।

(४) शा, छा, सा, ह्वा, व्या, वा और पा धातुओं में बीच में 'य' जुड़ता है। यथा शाययति, छाययति, पाययति आदि। पा रक्षा करना का रूप 'पालयति' होगा।

(५) (क्रीङ्, जीनां णौ) इनके निम्नलिखित रूप होते हैं—

क्री> क्रापयति (खरीदवाना),

अधि+इ> अध्यापयति (पढ़ाना), जि> जापयति (जिताना)।

(६) इन धातुओं के ये रूप हो जाते हैं—

ब्रू> वाचयति (बाँचना), हन्> घातयति (वध कराना)

दुष्> दूषयति (दोष देना), रुह्> रोपयति, रोहयति (उगाना)।

ऋ > अर्पयति (देना), वि × ली > विलीनयति, विलालयति (पिघलाना), भी > भापयते, भीषयते (डर की वस्तु से डराना), विस्मि > विस्माययति (केवल विस्मित करना), विस्मापयते (किसी कारण से विस्मित करना) सिध् > साधयति (बनाना), सेधयति (निश्चय करना), रञ्ज् > रञ्जयति (प्रसन्न करना), इ (जाना) > गमयति (भेजना), अधि + इ (जानना) > अधिगमयति (समझाना, याद दिलाना), प्रति + इ > प्रत्याययति (विश्वास दिलाना), धू > धूनयति (हिलाना), प्री > प्रीणयति (प्रसन्न करना), मृज् > मार्जयति (साफ कराना), शद् > शातयति (गिराना), शादयति (भेजना)।

(७) चुरादिगणीय धातुओं के रूप णिच् में भी वैसे ही रहते हैं। (८) कर्मवाच्य और भाववाच्य में णिजन्त धातु के अन्तिम इ (अय) का लोप हो जाता है। यथा—पाठ्यते, कार्यते, हार्यते, धार्यते चोर्यते, भक्ष्यते।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—उसने विरक्त होकर जीवन बिताया। २—उसने अपने काम को ठीक से नहीं निभाया। ३—राजा दशरथ ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। ४—माता लड़की से पत्र लिखवाती है। ५—स्वामी नौकर से काम कराता है। ६—श्याम देवदत्त को गाँव भेजता है। ७—माता बेटे को मिठाई खिलाती है। ८—गुरु शिष्य को वेद पढ़ाता है। ९—वह छात्रों को पाठ पढ़ाता है। १०—राम नौकर से भार ढुलवाता है। ११—उसने किसी तरह आठ वर्ष बिताये। १२—चन्द्रमा कुमुदिनी को विकसित करता है। १३—सज्जनों का मेल शीघ्र ही विश्वास दिलाता है। १४—मुनिजन फलों द्वारा जीवन का निर्वाह करते हैं। १५—दिवस चन्द्रमा को दुःखित करता है। १६—उसने नौकरानी को रानी बना लिया। १७—मैं दर्जी से एक कुरता सिलाऊंगा।

(स) सन्नन्त धातुएं

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७।

किसी कार्य के करने की इच्छा का अर्थ बतलाने के लिए उस कार्य का अर्थ बतलाने वाली धातु के बाद सन् (स) प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे—मैं पढ़ना चाहता हूँ। यहाँ मैं पढ़ने की इच्छा करता हूँ, अतएव पढ़ने का बोध कराने वाली धातु के बाद संस्कृत में सन् प्रत्यय जोड़कर 'पढ़ना चाहता हूँ' यह अर्थ निकाला जायगा (पठ्—से पिपठिष्) सन् प्रत्यय के विषय में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

१—जीवितमत्यवाहयत्। २—न साधु निरवाहयत्। ३—अभिसन्धाम् अपालयत्। ७—भोजयति। १०—वाहयति। ११—तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथंचित्। १२—कुमुदान्युन्मीलयति। १३—विश्वासयत्याशु सतां हि योगः। १५—ग्लपयति। १६—महिषीपदं प्रापिता। १७—सेवयिष्यामि।

(१) इच्छा करने वाला वही व्यक्ति हो, तभी सन् होगा। यदि दूसरा कर्त्ता होगा तो सन् प्रत्यय नहीं प्रयुक्त हो सकता है। जैसे—मैं इच्छा करता हूँ कि वह पढ़े इस वाक्य में 'इच्छा करने वाला' मैं हूँ और 'पढ़ने वाला' वह, अतएव ऐसी दशा में सन् नहीं प्रयुक्त किया जा सकता।

(२) प्रेरणार्थक धातु के बाद भी सन् प्रत्यय लगाया जा सकता है किन्तु तभी जब प्रेरणा करने वाला और इच्छा करने वाला कर्त्ता एक ही हो। "मैं उसे पढ़ाना चाहता हूँ', इस वाक्य में सन् लग सकता है क्योंकि यहाँ 'पढ़ाना' तथा 'चाहना' दोनों का कर्त्ता एक ही है।

(३) सन् प्रत्यय ऐच्छिक है, अतः सन् न प्रयुक्त करना चाहें तो तुमुन् प्रत्यय करके इष् अथवा अभिलष् आदि धातु का प्रयोग कर सकते हैं। यथा—'अहं जिगमिषामि' अथवा 'अहं गन्तुमिच्छामि' अथवा 'अहं गन्तुमभिलषामि'।

(४) इच्छा करने वाली क्रिया कर्म के रूप में होनी चाहिए, अन्य कारक के रूप में नहीं। पूर्वोक्त उदाहरण में जाना चाहता हूँ 'मैं चाहता हूँ' क्रिया का 'जाना' कर्म है तभी सन् प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है। करण में होने से 'अहमिच्छामि पठनेन मे ज्ञानं वर्धेत' यहां सन् नहीं हो सकता है।

(५) सन् का 'स' शेष रहता है। यही 'स' कहीं कहीं पर सन्धि नियमों के कारण 'ष' हो जाता है। सन् प्रत्यय करने पर धातुओं को द्वित्व होता है, यथा लिट् लकार में धातु यदि सेट् हो तो स् के पूर्व बहुधा इकार आ जाता है, वेट् हो तो इच्छानुसार इकार आता है, अनिट् होने पर प्रायः नहीं आता है।

(७) धातुओं को द्वित्व करने पर अभ्यास अर्थात् प्रथम अंश में धातु में अ होगा तो उसे इ हो जाएगा। जैसे—पठ् + सन् = पठ + पठ + सन् = प + पठ् + स = पिपठ + ष्।

(८) धातुओं के रूप निम्नलिखित प्रकार से चलेंगे :—(अ) परस्मैपदी के रूप परस्मैपद में (ब) आत्मनेपदी के रूप आत्मनेपद में (स) उभयपदी के रूप उभय पद में। (ठ) परोक्षभूत में आम् जोड़कर कृ, भू और अस् धातुओं के रूप जोड़ दिए जाते हैं।

अब उदाहरणार्थ पिपठिष् (पठ् + सन्) (पढ़ना चाहना) एवं जिज्ञासा (ज्ञा + सन्) (जिज्ञासा करना) के रूप दिये जाते हैं।

पिपठिष् परस्मैपद

लट्

पिपठिषति	पिपठिषतः	पिपठिषन्ति	प्र०
पिपठिषसि	पिपठिषथः	पिपठिषथ	म०
पिपठिषामि	पिपठिषावः	पिपठिषामः	उ०

लोट्

विपठिषतु	विपठिषताम्	विपिठिषन्तु	प्र०
विपठिष	विपठिषतम्	विपठिषत	म०
विपठिषाणि	विपठिषाव	विपठिषाम	उ०

लङ्

अविपठिषत्	अविपठिषताम्	अविपठिषन्	प्र०
अविपठिषः	अविपठिषतम्	अविपठिषत	म०
अविपठिषम्	अविपठिषाव	अविपठिषाम	उ०

विधिलिङ्

विपठिषेत्	विपठिषेताम्	विपठिषेयुः	प्र०
विपठिषेः	विपठिषेतम्	विपठिषेत	म०
विठिषेयम्	विपठिषेव	विपठिषेम	उ०

लृट्

विपठिषिष्यति	विपठिषिष्यतः	विपठिषिष्यन्ति	प्र०
विपठिषिष्यसि	विपठिषिष्यथः	विपठिषिष्यथ	म०
विपठिषिष्यामि	विपठिषिष्यावः	विपठिषिष्यामः	उ०

लुट्

विपठिषिता	विपठिषितारौ	विपठिषितारः	प्र०
विपठिषितासि	विपठिषितास्थः	विपठिषितास्थ	म०
विपठिषितास्मि	विपठिषितास्वः	विपठिषितास्मः	उ०

आशीर्लिङ्

विपठिष्यात्	विपठिष्यास्ताम्	विपठिष्यासुः	प्र०
विपठिष्याः	विपठिष्यास्तम्	विपठिष्यास्त	म०
विपठिष्यासम्	विपठिष्यास्व	विपठिष्यास्म	उ०

लृङ्

अविपठिषिष्यत्	अविपठिषिष्यताम्	अविपठिषिष्यन्	प्र०
अविपठिषिष्यः	अविपठिषिष्यतम्	अविपठिषिष्यत	म०
अविपठिषिष्यम्	अविपठिषिष्याव	अविपठिषिष्याम	उ०

लिट् (विपठिष् + आम् + कृ, भू, अस्)

विपठिषांचकार—	चक्रतुः	आदि	प्र०
विपठिषांबभूव—	बभूवतुः	आदि	प्र०
विपठिषामास—	आसतुः—	आसुः	प्र०
आसिथ	आसथुः	आस	म०
आस	आसिव	आसिम	उ०

लुङ्

अपिपठिषीत्	अपिपठिषिष्टाम्	अपिपठिषिषुः	प्र०
अपिपठिषीः	अपिपठिषिष्टम्	अपिपठिषिष्ट	म०
अपिपठिषिषम्	अपिपठिषिष्व	अपिपठिषिष्म	उ०

जिज्ञास आत्मनेपद

लट्

जिज्ञासते	जिज्ञासेते	जिज्ञासन्ते	प्र०
जिज्ञाससे	जिज्ञासेथे	जिज्ञासध्वे	म०
जिज्ञासे	जिज्ञासावहे	जिज्ञासामहे	उ०

लोट्

जिज्ञासताम्	जिज्ञासेताम्	जिज्ञासन्ताम्	प्र०
जिज्ञासस्व	जिज्ञासेथाम्	जिज्ञासध्वम्	म०
जिज्ञासै	जिज्ञासावहै	जिज्ञासामहै	उ०

लङ्

अजिज्ञासत	अजिज्ञासेताम्	अजिज्ञासन्त	प्र०
अजिज्ञासथाः	अजिज्ञासेथाम्	अजिज्ञासध्वम्	म०
अजिज्ञासे	अजिज्ञासावहि	अजिज्ञासामहि	उ०

विधिलिङ्

जिज्ञासेत	जिज्ञासेयाताम्	जिज्ञासेरन्	प्र०
जिज्ञासेथाः	जिज्ञासेयाथाम्	जिज्ञासेध्वम्	म०
जिज्ञासेय	जिज्ञासेवहि	जिज्ञासेमहि	उ०

लृट्

जिज्ञासिष्यते	जिज्ञासिष्येते	जिज्ञासिष्यन्ते	प्र०

लुट्

जिज्ञासिता	जिज्ञासितारौ	जिज्ञासितारः	प्र०

आशीर्लिङ्

जिज्ञासिषीष्ट	जिज्ञासिषीयास्ताम्	जिज्ञासिषीरन्	प्र०

लृङ्

अजिज्ञासिष्यत	अजिज्ञासिष्येताम्	अजिज्ञासिष्यन्त	प्र०

लिट् (जिज्ञास् + आम् + कृ, भू, अस्)

जिज्ञासांचक्रे	जिज्ञासांचक्राते आदि		प्र०
जिज्ञासांबभूव	जिज्ञासांबभूवतुः आदि		प्र०
जिज्ञासामास	जिज्ञासामासतुः	जिज्ञासामासुः	प्र०
जिज्ञासामासिथ	जिज्ञासामासथुः	जिज्ञासामास	म०
जिज्ञासामास	जिज्ञासामासिव	जिज्ञासामासिम	उ०

लुङ्

अजिज्ञासिष्ट	अजिज्ञासिषाताम्	अजिज्ञासिषत	प्र०
अजिज्ञासिष्ठाः	अजिज्ञासिषाथाम्	अजिज्ञासिध्वम्	म०
अजिज्ञासिषि	अजिज्ञासिष्वहि	अजिज्ञासिष्महि	उ०

पुनश्च कुछ धातुओं के सन्नन्त रूप दिये जाते हैं।

ग्रह् + सन् = जिघृक्ष् (जिघृक्षति)

प्रच्छ् + सन् = पिपृच्छिष (पिपृच्छिषति)

कृ + सन् = चिकरिष् (चिकरिषति)

गृ + सन = जिगरिष्, जिगलिष् (जिगरिषति, जिगलिषति)

धृङ् + सन् = दिधरिष् (दिधरिषते)

हन् + सन् = जिघांस् (जिघांसति)

गम् + सन् = जिगमिष् (जिगमिषति)

इण् + सन् = जिगमिष् (जिगमिषति)

श्रु + सन् = शुश्रूष् (शुश्रूषते)

दृश् + सन् = दिदृक्ष् (दिदृक्षते)

पा + सन् = पिपास् (पिपासते)

भू + सन् = बुभूष् (बुभूषते)

आप् + सन् = ईप्स् (ईप्सति)

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—शिष्य पाठ पढ़ना चाहता है, कार्य करना चाहता है (कृ) और पाप को छोड़ना चाहता है (हृ)। २—माली फूल इकट्ठा करना चाहता है। ३—मैं छोटी नौका से समुद्र को पार करना चाहता हूँ (तितीर्षामि)। ४—तुम धर्म करना चाहते हो। ५—क्या तुम कुछ पूछना चाहते हो (पिपृच्छिषसि)? ६—वह राजा को वश में करने की इच्छा करता है, विष-पान करना चाहता है, आलिङ्गन करने की इच्छा करता है। ७—गुरुओं की सेवा करो (शुश्रूषस्व)। ८—अधम मनुष्य धन पाना चाहता है (लभ्) और दूसरों को दुःख देना चाहता है। ९—चीन भारत को जीतना चाहता था। १०—मैं एक अच्छा लेख लिखना चाहता हूँ (लिलिखिषामि)। ११—मनुष्य कर्म करता हुआ भी सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। १२—मैं आज प्रदर्शनी देखना चाहता हूँ ?, तुम क्यों नहीं जाना चाहते ? १३—स्वामी अनुचर के भाव को जानना चाहता है। १४—भारत विश्व-शान्ति के लिए सदैव युद्ध टालना चाहता है। १५—कौन मरने की इच्छा करता है ?

यङन्त धातुएँ

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२।

पौनःपुन्यं भृशार्थश्च क्रियासमभिहारः। तस्मिन्द्योत्ये यङ् स्यात्। सि० कौ०

बार-बार या अधिक करने अर्थ में व्यञ्जन से प्रारम्भ होने वाली एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय होता है। यह प्रत्यय दसवें गण की सूच् इत्यादि कुछ धातुओं को छोड़कर किसी धातु के बाद नहीं लगता है, केवल प्रथम नौ गणों की धातुओं के बाद ही लगता है। यथा—नेनीयते-बार-बार ले जाता है, देदीयते-खूब देता है।

यङ् प्रत्यय के जोड़ने के लिए निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना चाहिए :—

(१) यङ् का य शेष रहता है समस्त धातुओं के रूप केवल आत्मनेपद में चलते हैं।

(२) धातु को द्वित्व होता है एवं द्वित्व होने पर अभ्यास (पूर्वपद) में अ को आ, इ ई को ए, उ ऊ को ओ हो जाता है। उदाहरणार्थ नी > नेनीयते, भू < बोभूयते, पठ् < पापठ्यते। इस प्रकार बनी हुई धातुओं के आत्मनेपद में दसों लकारों में रूप चलते हैं। उदाहरणार्थ बुध् धातु के यङन्त रूप प्रथम पुरुष एकवचन में दिए जाते हैं—

लकार	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
लट्	बोबुध्यते	बोबुध्यते
लृट्	बोबुधिष्यते	बोबुधिष्यते
लङ्	अबोबुध्यत	अबोबुध्यत
लोट्	बोबुध्यताम्	बोबुध्यताम्
विधिलिङ्	बोबुध्येत	बोबुध्येत
लुङ्	अबोबुधिष्ट	अबोबुधि
लुट्	बोबुधिता	बोबुधिता
लिट्	बोधाञ्चक्रे	बोधाञ्चक्रे
आशीर्लिङ्	बोबुधिषीष्ट	बोबुधिषीष्ट।

(जि) जेजीयते—बार-बार जीतता है।
(दश्) दन्दश्यते—खूब डसता है।
(तप्) तातप्यते—खूब तपता है।
(पच्) पापच्यते—बार-बार पकाता है।
(जप्) जञ्जप्यते—बार-बार जपता है।
(रुद्) रोरुद्यते—बार-बार रोता है।
(गै) जेगीयते—बार-बार गाता है।
(घ्रा) जेघ्रीयते—बार-बार सूंघता है।
(सिच्) सेसिच्यते—बार-बार सींचता है।
(वृध्) वरीवृध्यते—बार-बार बढ़ता है।
(शी) शाशय्यते—बार-बार सोता है।
(दृश्) दरीदृश्यते—बार-बार देखता है।
(गम्) जङ्गम्यते—टेढ़ा-मेढ़ा चलता है।

पहले यह बताया गया है कि क्रिया-समभिहार में ही यङ् प्रत्यय लगता है किन्तु यत्र-तत्र भन्न अर्थों में भी लगता है।

(अ) नित्यं कौटिल्ये गतौ ।३।१।२३।

गत्यर्थक धातुओं में कौटिल्य के अर्थ में यङ् प्रत्यय लगता है, बार-बार या अधिक अर्थ में नहीं। यथा--कुटिलं व्रजति इति वाव्रज्यते।

(ब) लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम् ।३।१।२४।

लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश, गृ धातुओं के आगे गर्हित अर्थ में यङ् प्रत्यय जुड़ता है। यथा--गर्हितं लुम्पति इति लोलुप्यते।

(स) जपजभदहदशभञ्जपशां च ।७।४।८६।

जप, जभ, दह, दश, भञ्ज, पश धातुओं में यङ् जुड़ने पर पूर्वपद में न का आगम हो जाता। यथा--गर्हितं जपति इति जञ्जप्यते। इसी प्रकार जञ्जभ्यते, दन्दश्यते आदि।

(द) ग्रो यङि ।८।२।२०।

गृ धातु में यङ् जुड़ने पर रेफ के स्थान में लकार हो जाता है। यथा--गर्हितं गिरति इति जेगिल्यते।

नाम-धातुएं

जब किसी सुबन्त (संज्ञा आदि) के बाद कोई प्रत्यय जोड़कर उसे धातु बना लिया जाता है, तब उसे 'नाम-धातु' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ये धातुएं विशेष-विशेष अर्थ को द्योतित करती हैं, यथा--पुत्रीयति (पुत्र + क्यच्)—पुत्र की इच्छा करता है। कृष्णति (कृष्ण + क्विप्)--कृष्ण के समान आचरण करता है। लोहितायते (लोहित + क्यच्)--लाल हो जाता है। मुण्डयति (मुण्ड + णिच्) मूड़ता है।

वैसे तो नामधातुओं के रूप सभी लकारों में चल सकते हैं, किन्तु प्रायः वर्तमान काल में ही इनका प्रयोग होता है। अब नाम-धातुओं के केवल दो मुख्य प्रत्यय दिए जा रहे हैं।

क्यच् प्रत्यय

सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८।

अपने लिए चाहने अर्थ में क्यच् (य) प्रत्यय होता है। यथा—

आत्मनः पुत्रमिच्छति > पुत्रीयति। इसी प्रकार कवीयति, अशनायति, उदन्यति आदि।

क्यच् (य) जुड़ने के पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर अ तथा आ का ई, इ का ई, उ का ऊ, ऋ का री, ओ का अव् औ का आव् हो जाता है। अन्तिम ङ्, ञ्, ज् तथा न का लोप कर दिया जाता है एवं पूर्ववर्ती स्वर का उपर्युक्त नियमानुसार परिवर्तन हो जाता है। 'मान्तप्रकृतिकसुबन्तादव्ययाच्च क्यच् न'। वा०। इदमिच्छति, स्वरिच्छति। सि० कौ०।

मकारान्त शब्द एवं अव्यय के अनन्तर क्यच् जोड़ा ही नहीं जाता है। उदाहरणार्थ—

गङ्गाम् आत्मनः इच्छति = गङ्गीयति (गङ्गा + क्यच्)—अपने लिए गङ्गा की इच्छा करता है। इसी प्रकार नदीयति (नदी + क्यच्), विष्णूयति (विष्णु + क्यच्), वधूयति (वधू + क्यच्), कर्त्रीयति (कर्तृ + क्यच्), गव्यति (गो + क्यच्), नाव्यति (नौ + क्यच्), राजीयति (राजन् + क्यच्) इत्यादि।

उपमानादाचारे ३।१।१०।

किसी वस्तु को किसी के तुल्य समझकर या मानकर उसके सम्बन्ध में तद्वत् आचरण करने के अर्थ में भी क्यच् प्रत्यय जोड़ा जाता है। उपमान के अनन्तर ही क्यच् प्रत्यय प्रयुक्त होता है एवं उपमान कर्म होना चाहिए। उदाहरणार्थ वह विद्यार्थी को पुत्र समझता है (अर्थात् विद्यार्थी के साथ पुत्र का सा व्यवहार करता है)। इस उदाहरण में पुत्र के बाद ही क्यच् प्रत्यय जुड़ा—सः छात्रं पुत्रीयति। इसी प्रकार द्विजम् विष्णूयति (ब्राह्मण को विष्णु के तुल्य समझता है)। जब उपमान अधिकरण होता है तब भी उसमें क्यच् जुड़ता है। यथा—

प्रासादीयति कुट्यां सः—वह कुटी को महल समझता है, कुटीयति प्रासादे राजा—राजा महल को कुटी समझता है।

क्यच् में अन्त होने वाली धातुओं का रूप परस्मैपद में सभी प्रकारों में चलता है। प्रत्यय के पूर्व व्यञ्जन होने पर लट्, लोट्, विधिलिङ् एवं लङ् को छोड़कर शेष लकारों में यकार का लोप कर दिया जाता है। यथा समिध्यति, समिधिष्यति।

क्यङ्

कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ३।१।११। ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया। वा०। 'जैसा वह करता है, वैसा ही यह करता है' इस अर्थ का बोध कराने के लिए किसी सुबन्त के बाद क्यङ् (य) प्रत्यय लगाकर नाम-धातु बनाते हैं।

इसके रूप आत्मनेपद में चलते हैं। इस प्रत्यय के 'य' के पूर्व सुबन्त का अ दीर्घ कर दिया जाता है, दीर्घ आ वैसा ही रहता है और शेष स्वर जैसे क्यच् के पूर्व बदलते हैं, वैसे ही बदलते हैं। शब्द के अन्तिम स् का विकल्प से लोप होता है। हाँ! ओजस् और अप्सरस् के स् का नित्य लोप होता है। यथा—

कृष्ण इवाचरति = कृष्णायते-कृष्ण के समान आचरण करता है।

इसी प्रकार, ओजायते—ओजस्वी के समान आचरण करता है।

गर्दभी अप्सरायते – गदही अप्सरा के समान आचरण करती है।

यशायते अथवा यशस्यते—यशस्वी के समान आचरण करता है।

विद्वायते अथवा विद्वस्यते—विद्वान् के समान आचरण करता है।

क्यङ्मानिनोश्च।६।३।३६।

स्त्री-प्रत्ययान्त शब्द (यदि वह 'क' में अन्त न होता हो) का स्त्री प्रत्यय गिरा दिया जाता है और शेष में क्यङ् लगता है। यथा—

कुमारीव आचरति—कुमारायते, युवतीव आचरति—युवायते।

न कोपधायाः।६।३।३७।

'क' में अन्त होने पर स्त्री प्रत्यय का लोप नहीं होता है। यथा—

पाचिकेव आचरति—पाचिकायते।

कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः।३।१।१५। (तपसः परस्मैपदं च—वा०)

कर्मभूत रोमन्थ और तपस् शब्दों के बाद वर्तन और चरन अर्थ में क्यङ् प्रत्यय लगता है: जैसे रोमन्थं वर्तयति = रोमन्थायते।

तपश्चरति = तपस्यति।

बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने।३।१।१६। फेनाच्चेति वाच्यम्—वा०।

कर्मभूत बाष्प और ऊष्मा शब्दों के बाद उद्वमन अर्थ में क्यङ् प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ—

बाष्पमुद्वमतीति 'बाष्पायते'।

'ऊष्माणमुद्वमतीति 'ऊष्मायते'।

फेन शब्द के अनन्तर भी इसी अर्थ में क्यङ् जुड़ता है। यथा—

फेनमुद्वमतीति 'फेनायते'।

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे।३।१।१७।

कर्मभूत शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व (पाप) और मेघ के बाद क्यङ् प्रयुक्त होता है, यदि 'इन्हें करने' का अर्थ प्रकट करना हो। उदाहरणार्थ—शब्दं करोति = शब्दायते। इसी प्रकार वैरायते, कलहायते इत्यादि।

सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्।३।१।१८।

कर्मभूत सुख इत्यादि के बाद भी वेदना या अनुभव अर्थ में क्यङ् जुड़ता है। उदाहरणार्थ सुखं वेदयते = सुखायते।

किन्तु

'परस्य सुखं वेदयते' यहाँ क्यङ् नहीं प्रयुक्त होगा क्योंकि वेदना कर्ता को ही सुख इत्यादि होना चाहिए।

पदविधान

पहले यह बतलाया गया है कि संस्कृत भाषा में धातुओं के आगे जो विभक्तियाँ लगती हैं, उनके दो भेद हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। ति, तः, अन्ति आदि परस्मैपद हैं और ते, आते, अन्ते आदि आत्मनेपद हैं। इन विभक्तियों के भेदानुसार धातुओं के भी तीन भेद हैं: परस्मैपदी आत्मनेपदी और उभयपदी।

परस्मैपदी धातुओं के अनन्तर परस्मैपद की, आत्मनेपदी धातुओं के अनन्तर आत्मनेपद की एवं उभयपदी धातुओं के अनन्तर दोनों प्रकार की विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं।

धातुओं के उपर्युक्त पद विशेष-विशेष अर्थों तथा उपसर्गों के योग से परिवर्तित हो जाते हैं। परस्मैपदी धातु आत्मनेपदी, आत्मनेपदी धातु परस्मैपदी और उभयपदी धातु केवल आत्मनेपदी अथवा परस्मैपदी हो जाती हैं। कुछ विशेष धातुओं के ऐसे पद-विधान के नियम छात्रों की सुविधा के लिये दिये जा रहे हैं :—

बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः ।१।३।८६।

यदि बुध्, युध्, नश्, जन्, अधिपूर्वक इङ्, प्रु, द्रु तथा स्रु धातुओं का णिजन्त प्रयोग हो तो ये परस्मैपदी होती हैं। यथा अध्यापयति, प्रावयति, स्रावयति, नाशयति, जनयति, द्रावयति, बोधयति, योधयति इत्यादि।

अनुपराभ्यां कृञः ।१।३।७९। अधेः प्रसहने। वेः शब्दकर्मणः। अकर्मकाच्च ।१।३।३३–३५॥ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ।१।३।३२।

कृ धातु उभयपदी है। परन्तु 'अनु' अथवा 'परा' उपसर्ग से युक्त होने पर केवल परस्मैपदी होती है (अनुकरोति, पराकरोति)। निम्नलिखित दशाओं में वह केवल आत्मनेपद में होती है—

(अ) 'अधि' उपसर्ग से युक्त होने पर क्षमा करने या अधिकार कर लेने के अर्थ में—उदाहरणार्थ शत्रुमधिकुरुते (वैरी को क्षमा कर देता है अथवा उस पर अधिकार कर लेता है)।

(ब) विपूर्वक होने पर उसका कर्म जब कोई शब्द हो। उदाहरणार्थ—स्वरान् विकुरुते (उच्चारयतीत्यर्थः)। शब्द से अतिरिक्त कर्म होने पर परस्मैपदी ही होगी। यथा—चित्तं विकरोति कामः। अकर्मक होने पर आत्मनेपदी होगी। यथा—छात्रा विकुर्वते—विकारं लभन्ते।

(स) जब गन्धन (हिंसा, हानि पहुँचाना), अवक्षेपण (निन्दा, भर्त्सना), सेवन, साहसिक कर्म, प्रतियत्न, प्रकथन अथवा धर्मार्थ में लग जाने का बोध कोई उपसर्ग जोड़ कराया जाय, तब भी कृ धातु आत्मनेपदी होती है। उदाहरणार्थ—

उत्कुरुते (सूचना देता है, सूचना देकर हानि पहुँचाता है)।

श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते—(बाज बटेर को डराता है)।

हरिमुपकुरुते (विष्णु की सेवा करता है)।

परदारान् प्रकुर्वते (वे दूसरों की स्त्रियों पर साहस से अत्याचार करते हैं)।

एधः उदकस्य उपस्कुरुते (ईंधन पानी में गरमी पहुँचाता है)।

गाथाः प्रकुरुते (गाथाएं कहता है)।

शतं प्रकुरुते (सौ रुपये धर्मार्थ लगाता है)।

वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः। उपपराभ्याम्। आङ् उद्गमने (ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम्) ।१।३।३८–४०। प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ।१।३।४२। क्रम धातु उभयपदी है, किन्तु अप्रतिहत गति, उत्साह तथा स्फीतता (स्पष्टता) के अर्थों में आत्मनेपदी होती है और इन्हीं अर्थों में उप और परा के साथ भी आत्मनेपदी होती है। उदाहरणार्थ—

ऋचि क्रमते बुद्धिः (न प्रतिहन्यते)।

अध्ययनाय क्रमते (उत्सहते)।
क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि (स्फीतानि भवन्ति)।

इसी प्रकार उपक्रमते और पराक्रमते प्रयोग भी होते हैं।

आङ् के साथ सूर्योदय के अर्थ में एवं प्र और उप के साथ आरम्भ करने के अर्थ में भी आत्मनेपद में ही होती है। उदाहरणार्थ—

सूर्यः आक्रमते (उदयते इत्यर्थः)।

वक्तुं प्रक्रमते, उपक्रमते।

परिव्यवेभ्यः क्रियः ।१।३।१८।

क्री के पूर्व यदि अव, परि अथवा वि हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है।

यथा—अवक्रीणीते, परिक्रीणीते, विक्रीणीते।

क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च ।१।३।२२।

यदि क्रीड् धातु के पूर्व अनु, आ, परि अथवा सम् में से कोई भी उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है। उदाहरणार्थ :—

अनु—परि—आ—सं—क्रीडते।

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ।१।३।८०।

यदि क्षिप् के पूर्व अभि, प्रति, अति में से कोई उपसर्ग हो तो वह परस्मैपदी होती है। यथा—

अभि-प्रति-अति-क्षिपति।

समो गम्यृच्छिभ्याम् ।१।३।२९।

यदि गम् के पूर्व 'सम्' उपसर्ग हो एवं वह अकर्मक हो तथा मिलने या उपयुक्त होने का अर्थ दिखाना हो तो आत्मनेपदी हो जाती है। यथा—

सखीभिः सङ्गच्छते — सखियों से मिलती है।

इयं वार्ता संगच्छते—यह बात ठीक है।

सकर्मक होने पर परस्मैपदी ही होगी। जैसे—ग्रामं संगच्छति।

इसी प्रकार ऋच्छ् के पूर्व यदि सम् उपसर्ग हो तो वह भी आत्मनेपदी होती है। यथा—

समृच्छिष्यते।

उदश्चरः सकर्मकात्। समस्तृतीयायुक्तात् ।१।३।५३,५४।

यदि चर् के पूर्व उद् उपसर्ग हो और धातु सकर्मक हो जाय अथवा सम्-पूर्वक हो और तृतीयान्त शब्द के साथ हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है।

यथा—

धर्ममुच्चरते—धर्म के विपरीत करता है।

रथेन सञ्चरते—रथ पर चलता है।

विपराभ्यां जेः ।१।३।१९।

जि के पूर्व यदि 'वि' अथवा 'परा' हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है।

यथा शत्रून् विजयते, पराजयते वा।

अध्ययनात् पराजयते।

ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ।१।३।५७। अपह्नवे ज्ञः। अकर्मकाच्च। सम्प्रतिभ्यामनाध्याने ।१।३।४४–४६ ॥

ज्ञा, श्रु, स्मृ तथा दृश् धातु सन्नन्त होने पर आत्मनेपदी हो जाती है। यथा-धर्मं जिज्ञासते, शुश्रूषते, सुस्मूर्षते, विभुं दिदृक्षते।

निम्नलिखित अवस्थाओं में भी ज्ञा धातु आत्मनेपदी होती है—

(अ) यदि 'अप'-पूर्वक हो तथा अपह्नव (इनकार) का अर्थ बताती हो। यथा—शतमपजानीते (सौ रुपयों से इनकार करता है)।

(ब) यदि अकर्मक हो। यथा सर्पिषो जानीते।

(स) यदि 'प्रति'-पूर्वक हो तथा प्रतिज्ञा का अर्थ बताती हो। यथा—शतं प्रतिजानीते—सौ रुपये की प्रतिज्ञा करता है।

(द) यदि 'सम्' पूर्वक हो तथा आशा करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई हो। यथा—शतं संजानीते—सौ रुपये की आशा करता है।

आङो दोऽनास्यविहरणे ।१।३।२०।

यदि दा के पूर्व आङ् उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी होती है। यथा—नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्। किन्तु मुँह खोलने के अर्थ में आत्मनेपदी नहीं होती है। यथा—मुखं व्याददाति।

अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम्। वा०।

सम् पूर्वक ऋ, श्रु तथा दृश् धातुएँ यदि अकर्मक हों तो आत्मनेपदी होती हैं। यथा—सम्पश्यते—भली प्रकार सोचता है, संशृणुते—अच्छी प्रकार सुनता है; मा समरत।

सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ।१।३।३६।

नी धातु से जब सम्मान करने, उठाने, उपनयन करने, ज्ञान करने, वेतन देकर काम में लगाने, कर आदि अदा करने अथवा अच्छे कार्य में खर्च करने का अर्थ निकलता हो तो वह आत्मनेपदी होती है। उदाहरणार्थ—

शास्त्रे शिष्यं नयते (शिष्य को शास्त्र पढ़ाता है—इससे उसका सम्मान होगा) दण्डमुन्नयते (डण्डा ऊपर उठाता है)।

माणवकमुपनयते (लड़के का उपनयन करता है)।

तत्त्वं नयते (तत्त्व का निश्चय करता है)।

कर्मकरानुपनयते (मजदूर लगाता है)।

करं विनयते (कर चुकाता है)।

शतं विनयते (सौ रुपये अच्छी तरह व्यय करता है)।

आङि नु प्रच्छयोः । वा० ।

प्रच्छ् धातु के पूर्व जब 'आ' लगाकर अनुमति लेने का अर्थ निकाला जाता है, तब वह धातु आत्मनेपदी हो जाती है । यथा—

आपृच्छस्व प्रियसखमसुम् (इस प्रियमित्र से जाने की अनुमति ले लो) ।

'सम्' लगाने पर जब यह धातु अकर्मक हो जाती है, तब भी आत्मनेपदी होती है । यथा—सम्पृच्छते ।

आपूर्वक नु धातु भी आत्मनेपदी होती है ।

भुजोऽनवने १।३।६६।

रक्षा करने के अर्थ में भुज् धातु परस्मैपदी होती है, अन्य अर्थों में आत्मनेपदी । उदाहरणार्थ—महीं भुनक्ति (पृथ्वी की रक्षा करता है); महीं बुभुजे (पृथ्वी का भोग किया) ।

व्याङ्परिभ्यो रमः । उपाच्च । विभाषाऽकर्मकात् १।३।८३-८५ ।

रम् आत्मनेपदी धातु है । यही धातु वि, आङ्, परि और उप उपसर्गों के बाद आने पर परस्मैपदी हो जाती है । यथा—

वसंतस्माद्विरम, आरमति, परिरमति, यज्ञदत्तं उपरमति ।

उप पूर्वक रम् धातु अकर्मक होने पर विकल्प से आत्मनेपदी भी होती है । यथा—स उपरमति, उपरमते वा ।

भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः १।३।४७।

अपाद्वदः १।३।७३।

निम्नलिखित अर्थों में वद् आत्मनेपदी होती है—

भासन (चमकना)—शास्त्रे वदते (शास्त्र में चमकता है अर्थात् इतना विद्वान् है कि चमकता है) ।

उपसम्भाषा (मेल मिलाप करना, शांत करना)—भृत्यानुपवदते (नौकरों को समझा कर शान्त करता है) ।

ज्ञान—शास्त्रे वदते (शास्त्र जानता है) ।

यत्न—क्षेत्रे वदते (खेत में यत्न करता है) ।

विमति—परस्परं विवदन्ते स्मृतयः (स्मृतियाँ परस्पर झगड़ा करती हैं) ।

उपमन्त्रण—दातारम् उपवदते (दाता की प्रशंसा करता है) ।

अपपूर्वक निन्दा करने के अर्थ में—अपवदते (निन्दा करता है) ।

नेर्विशः १।३।१७।

'नि' अथवा 'अभिनि' पूर्वक होने पर विश् धातु आत्मनेपदी हो जाती है । यथा—निविशते, अभिनिविशते ।

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः १।३।५९।

श्रु धातु 'आ' अथवा 'प्रति' के अनन्तर परस्मैपदी रहती है । यथा आशुश्रूषति, प्रतिशुश्रूषति ।

समवप्रविभ्यः स्थः १।३।२२। आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् । वा० ।

उदोऽनूर्ध्वकर्मणि १।३।२४। उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् । वा० । वा लिप्सायाम् । वा० ।

स्था धातु के पूर्व यदि सम्, अव, प्र और वि में से कोई उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है । यथा—

संतिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते और वितिष्ठते ।

आङ् पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है, यदि वह प्रतिज्ञा करने के अर्थ में प्रयुक्त हो । यथा —शब्दं नित्यम्, आतिष्ठते ।

'उद्' पूर्वक स्था धातु का यदि 'ऊपर उठाना' अर्थ न हो तथा उपपूर्वक उसका देवपूजा, मिलना, मित्र बनाना अर्थ हो तो नित्य तथा लिप्सा अर्थ हो तो विकल्प से आत्मनेपदी होती है । उदाहरणार्थ—मुक्तावुत्तिष्ठते, आदित्यमुपतिष्ठते (सूर्य को पूजता है);

गङ्गा यमुनामा तिष्ठते (गङ्गा यमुना से मिलती है);

रथिकानुपतिष्ठते (रथवालों से मित्रता करता है);

पन्थाः काशीमुपतिष्ठते (रास्ता काशी को जाता है),

भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते, उपतिष्ठति वा (भिक्षुक लालच से मालिक के पास आता है)।

प्र + कृ (कहना) गाथाः प्रकुरुते ।

उत् + आ + कृ (डराना) श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते ।

तिरस् + कृ (अनादर करना) त्वं माम् तिरस्करोषि ।

नमस् + कृ (नमस्कार करना) रामं नमस्कुरु ।

प्रति + कृ (उपाय करना) आगतं भयं वीक्ष्य प्रतिकुर्याद् यथोचितम् ।

उप + कृ (सेवा करना) शिष्यः गुरुमुपकुरुते ।

उप + कृ (उपकार करना) किं ते भूयः प्रियमुपकरोतु पाकशासनः ?

उपस् + कृ (गरमी पहुँचाना) एधः उदकस्य उपस्कुरुते ।

वि + कृ (विकार पैदा होना या करना) बुधैः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते ।

परि + ष्कृ (सजाना) रथो हेमपरिष्कृतः ।

अलम् + कृ (शोभा बढ़ाना) कृष्णः वनमिदम् अलङ्करिष्यति ।

निर् + आ + कृ = (हटाना) सत्पुरुषः दोषान् निराकरोति ।

च्वि प्रत्ययान्त कृ

१ — अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।

२ कदा रामभद्रो वनमिदं सनाथीकरिष्यति ?

३ - विरहकथा आकुलीकरोति मे हृदयम् ।

४ — सफलीकृतं भवता मम जीवनं शुभागमनेन ।

क्रम् (चलना) —

अति + क्रम् (गुजरना) यथा यथा यौवनमतिचक्राम ।

अति + क्रम् (उल्लङ्घन करना) कथमतिक्रान्तमगस्त्याश्रमपदम् ।

अप + क्रम् (दूर हटना) नगरादपक्रान्तः ।

आ + क्रम् (आक्रमण करना) पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी ।

आ + क्रम् (नक्षत्र का उदित होना) आक्रमते सूर्यः ।

निस् + क्रम् (निकलना) सर्वे निष्क्रान्ताः ।

उप + क्रम् (आरम्भ करना) राज्ञस्तन्याज्ञया देवी वसिष्ठमुपचक्रमे ।

परि + क्रम् (परिक्रमा करना) बालकः परिक्रामति ।

वि + क्रम् (चलना, कदम रखना) विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे ।

सम् + क्रम् (संक्रमण करना) कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ।

क्षिप् (फेंकना)—

अव + क्षिप् (निन्दा करना) मदलेखामवक्षिप्य ।

आ + क्षिप् (अपमान करना) किमेवमाक्षिपसि ?

उत् + क्षिप् (ऊपर फेंकना) बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ।

सम् + क्षिप् (संक्षिप्त करना) संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा ।

गम् (जाना)—

गम् (जाना) – काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।

अनु + गम् (पीछा करना) मामनुगच्छ ।

अव + गम् (जानना) न किञ्चिदपि अवगच्छामि ।

अधि + गम् (प्राप्त करना) महिमानमधिगच्छति चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः ।

अभि + उप + गम् (स्वीकार होना) अपीमं प्रस्तावमभ्युपगच्छसि ?

प्रति + आ + गम् (लौटना) सः गृहं प्रत्यागच्छति ।

निर् + गम् (बाहर जाना) माणवकः गृहान्निर्गतः ।

सम् + गम् (मिलना) दमयन्ती सखीभिः सङ्गच्छते ।

उत् + गम् (उड़ना) खगः आकाशमुदगच्छन् ।

ग्रह् (लेना)—

वि + ग्रह् (लड़ाई करना) विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ।

प्रति + ग्रह् (स्वीकार करना) तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः ।

चर् (चलना)—

अनु + चर् (व्यवहार करना) प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।

अनु + चर् (पीछा करना) धर्ममार्गमनुचरेत् ।

उत् + चर् (उल्लंघन करना) सत्यमुच्चरते ।

परि + चर् (सेवा करना) भृत्याः नृपम् परिचरन्ति ।

सम् + चर् (आना-जाना) मार्गेणानेन जनाः संचरन्ते ।

प्र + चर् (प्रचार होना) यावत्स्थास्यन्ति गिरयः तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।

उप + चर् (सेवा करना) लक्ष्मणः अहोरात्रं राममुपचचार ।

चि (चुनना) –

उप + चि (बढ़ाना) अधोऽधः पश्यतः कस्य महिमा नोपचीयते ।

अप + चि (घटना) राजहंस तव सैव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते ।

अव + चि (चुनना) मालाकारः उद्याने बहूनि कुसुमान्यवाचिनोत् ।

आ + चि (बिछाना) सेवकः शय्याम् आचिनोति ।

उप + चि (बढ़ाना) मांसाशिनो मांसमेवोपचिन्वन्ति न प्रज्ञाम् ।

विनि + चि (निश्चय करना) विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा ।

सम् + चि (इकट्ठा करना) रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति ।

ज्ञा (जानना) –

अनु + ज्ञा (आज्ञा देना) तत् अनुजानीहि मां गमनाय ।

प्रति + ज्ञा (प्रतिज्ञा करना) कन्यादानं प्रतिजानीते ।

अव + ज्ञा (अनादर करना) अवजानासि माम् ।

अप + ज्ञा (अस्वीकार करना) शतमपजानीते ।

सम् + ज्ञा (सोचना) मातरं संजानाति ।

सम् + ज्ञा (खोजना) शतं सञ्जानीते ।

तप् (तपना)—

(अकर्मक) तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ।

उत् + तप् (झुलसना) तीव्रमुत्तपमानोऽयमशक्यः सोढुमातपः ।

उत् + तप् (तपाना) उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः ।

उत् + तप् (सेंकना) उत्तपते वितपते पाणी (वह अपने हाथों को सेंकता है) ।

तॄ (तैरना)—

अव + तॄ (उतरना) अवतरति आकाशात् खगः ।

उत् + तॄ (तैरना) श्यामः गङ्गामुदतरत् ।

वि + तॄ (देना) वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्याम् ।

सम् + तॄ (तैरना) सः नद्यां सन्तरेत् ।

दिश् (देना)

आ + दिश् (आज्ञा देना) अध्यापकः छात्रमादिशति ।

उप + दिश् (उपदेश देना) गुरुः शिष्यानुपदिशति ।

सम् + दिश् (संदेश देना) किं संदिशतु स्वामी ।

दा (देना)—

आ + दा (ग्रहण करना) नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा ।

आ + दा (कहना प्रारम्भ करना) अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वरः ।

वि + आ + दा (मुख खोलना) व्याघ्रः मुखं व्याददाति ।

द्रु (पिघलना)—

द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ।

वि + द्रु (भागना) जलसङ्घात इवासि विद्रुतः ।

धा (धारण करना)—

अभि + धा (कहना) पयोऽपि शौण्डिकीहस्ते वारुणीत्यभिधीयते ।

अव + धा (ध्यान देना) श्यामः पठने नावधत्ते ।

सम् + धा (सन्धि करना) बलीयसा शत्रुणा संदध्यात् ।

वि + धा (करना) सहसा विदधीत न क्रियाम् ।

वि + परि + धा (बदलना) विपरिधेहि वासांसि मलिनानि ।

परि + धा (पहनना) उत्सवे नरः नवीनानि वस्त्राणि परिदधाति ।

नि + धा (विश्वास रखना) निदधे विजयाशंसा चापे सीता च लक्ष्मणे ।

नि + धा (नीचे बैठना) सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ ।

नी (ले जाना)—

अनु + नी (मनाना) अनुनय मित्रम् ।

अभि + नी (अभिनय करना) श्यामः रमायाः पात्रमभिनयेत् ।

आ + नी (लाना) जलमानय ।

उप + नी (लाना) उपनयति मुनिकुमारकेभ्यः फलानि ।

उप + नी (उपनयन करना) बालकमुपनयते ।

उप + नी (किराये पर रखना) कर्मकरानुपनयते ।

उप + नी (समर्पण करना) दिलीपः हरये स्वदेहमुपानयत् ।

परि + नी (ब्याह करना) दुष्यन्तः शकुन्तलां परिणिनाय ।

प्र + नी (बनाना) तुलसीदासः रामायणं प्रणिनाय ।

उद् + नी (उठाना) दण्डमुन्नयते ।

वि + नी (कर चुकाना) करं विनयते ।

वि + नी (क्रोध दूर करना) विनेष्ये क्रोधम् ।

पत् (गिरना)—

आ + पत् (आ पड़ना) अहो कष्टमापतितम् ।

उत् + पत् (उड़ना) खगाः उत्पतन्ति ।

प्र + नि + पत् (प्रणाम करना) शिष्यः प्रणिपतति ।

वि + नि + पत् (पतन होना) विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।

नि + पत् (गिरना) क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम् ।

पद् (जाना)—

प्र + पद् (भजना) ये यथा मां प्रपद्यन्ते ।

उप + पद् (योग्य होना) नैतत् त्वय्युपपद्यते ।

भू (होना)—

अनु + भू (अनुभव करना) मुनयः सुखमनुभवन्ति ।

आविर् + भू (निकलना) शशिनि आविर्भूते तमो विलीयते ।

प्रादुः + भू (प्रगट होना) प्रादुर्भवति भगवान् विपदि ।

प्र + भू (समर्थ होना) प्रभवति शुचिर्विम्बोद्ग्राहे मणिः ।

प्र + भू (निकलना) गङ्गा हिमालयात् प्रभवति ।

सम् + भू (पैदा करना) सम्भवामि युगे युगे ।

सम् + भू (मिलना) सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ।

च्वि प्रत्ययान्त भू के प्रयोग

(अ) भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?

(ब) भवतां शुभागमनेन पवित्रीभूतं मे गृहम् ।

मन् (सोचना)—
अव + मन् (अनादर करना) नावमन्येत निर्धनम् ।
अनु + मन् (आज्ञा, सलाह देना) राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने ।
सम् + मन् (आदर करना) कच्चिदग्निमिवानार्घ्यं काले संमन्यसेऽतिथिम् ।
मन्त्र् (सलाह करना)—
आ + मन्त्र् (विदा होना) तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रये ?
आ × मन्त्र् (बुलाना) आमन्त्रयध्वं राष्ट्रेषु ब्राह्मणान् ।
नि + मन्त्र् (निमन्त्रण देना) विप्रान् निमन्त्रयस्व ।
रम् (क्रीडा करना)—
वि + रम् (रुकना) विरम विरम पापात् ।
उप + रम् (लगाना) यत्रोपरमते चित्तम् ।
रुध् (ढाँकना)—
अनु + रुध् (आज्ञा मानना) अनुरुध्यस्व भगवतो वसिष्ठस्यादेशम् ।
लप् (बोलना)—
अप + लप् (छिपाना) खलः सत्यमपलपति ।
प्र + लप् (बकवास करना) उन्मत्तः प्रलपति ।
वि + लप् (रोना) विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
सम् + लप् (बातचीत करना) संलापितानां मधुरैः वचोभिः ।
वद् (कहना)—
अप + वत् (निन्दा करना) न्यायमपवदते ।
उप + वद् (चापलूसी करना, प्रार्थना करना) दातारमुपवदते ।
वह् (ले जाना)—
उद् + वह् (ब्याह करना) इति शिरसि स वामं पादमाधाय राज्ञामुदवहदनवद्यां तामवद्यादपेतः ।
अति + वह् (बिताना) किं वा मयापि न दिनान्यतिवाहितानि ।
आ + वह् (पहनना) मण्डनमावहन्तीम् ।
आ + वह् (धारण करना) मा रोदीः, धैर्यमावह ।
विद् (जानना)—
सम् + विद् (जानना) के न संविदन्ते वायोर्मैनाद्रिर्यथा सखा ।
प्रति + सं + विद् (पहचानना) पितरावपि मां न प्रतिसंविदाते ।
विश् (प्रवेश करना)—
अभि + निविश् (घुस जाना) भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम् ।
उप + विश् (बैठना) भवान् उपविशतु ।

वृत् (होना)—

आ + वृत् (वापस जाना) अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुरावव्रृते वनात् ।

परि + वृत् (घूमना) चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ।

नि + वृत् (रुकना) प्रसमीक्ष्य निवर्तेत ।

नि + वृत् (लौटना) न च निम्नादिव सलिलं निवर्तते मे ततो हृदयम् ।

प्र + वृत् (लगना) अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे ?

सद् (जाना) –

आ + सद् (पाना) पान्थः कूपमेकमाससाद ।

प्र + सद् (प्रसन्न होना) प्रसीद विश्वेश्वरि ।

वि सद् (दुःखी होना) मा विषीदत ।

सृ (जाना)—

अप + सृ (हटना) दूरमपसर ।

अभि + सृ (पति के पास जाना) सा नायिका अभिसरति ।

स्था (ठहरना —

आ + स्था (प्रतिज्ञा करना) जलं विषं वा तव कारणात् आस्थास्ये ।

उत् + स्था (उठना) उत्तिष्ठ गोविन्द !

प्र + स्था (रवाना होना) प्रीतः प्रतस्थे मुनिराश्रमाय ।

उप + स्था (जाना) अयं पन्थाः काशीमुपतिष्ठते ।

उप + स्था (पूजा करना) स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती ।

हृ (चुरा ले जाना) —

अनु + हृ (निरन्तर अभ्यास करना) पैतृकमश्वा अनुहरन्ते ।

अप + हृ (दूर करना) अपहियै खलु परिश्रमजनितया निद्रया ।

आ + हृ (लाना) वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति ।

उत् + हृ (उद्धार करना) मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या ।

उत् + आ + हृ (उदाहरण देना) त्वां कामिनां मदनदूतिमुदाहरन्ति ।

अभ्यव + हृ (खाना) सक्तून् पिब धानाः खादेत्यभ्यवहरति ।

परि + हृ (छोड़ना) स्त्रीसन्निकर्षं परिहर्तुमिच्छन्नन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः ।

वि + हृ(क्रीड़ा करना) विहरति हरिरिह सरसवसन्ते ।

सम् + हृ (हटाना) न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः ।

सं + हृ (रोकना) क्रोधं प्रभो संहर ।

आ + ह्वे (पुकारना)—आह्वयत चेदिराट् मुरारिम् ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—गंगा हिमालय से निकलती है (प्र + भू)। २—सिंह वन में घूमता है (विचर्)। ३ – रात्रि में चन्द्रमा निकलता है (आविर्भू)। ४—शिशु पलग पर बैठा

है (अध्यास्)। ५—दिन में तारे छिप जाते हैं (तिरोभू)। ६—भरत सिंह के बच्चे को तिरस्कृत कर रहा है (परिभू)। ७—श्यामा विद्यालय से घर लौट आई (प्रत्यागम्) ८—गुरु शिष्य की नम्रता से प्रसन्न होता है (प्र + सद्)। ९—मांस-भक्षण से रुके (निवृत्)। १०—वह शिव की पूजा करता है (उपस्था, आ०)। ११—पुत्र पिता को प्रणाम करता है (प्रणिपत्)। १२—धैर्य धारण करो (आवह्)। १३—राम ने सीता से विवाह किया (परि + नी)। १४—उसने गुरु को मनाया (अनु + नी)। १५—उसने बात कही (उदाहृ)। १६—राम ने सिर पर प्रहार किया (प्र + हृ)। १७—कामभाव चित्त को विकृत करता है (वि + कृ)। १८—वह शत्रुओं को पराजित करता है (परा + जि)। १९—उस ईश्वर की शैव शिव नाम से उपासना करते हैं (उपासते)। २०—वह लोगों का उपकार करता है (उपकृ)।

दशम सोपान

धातुरूप-कोष

(सिद्धान्त कौमुदी की सभी प्रसिद्ध धातुओं के रूपों का संग्रह)

आवश्यक निर्देश

सिद्धान्तकौमुदी की समस्त प्रसिद्ध धातुओं का यहां पर अकारादि क्रम से संग्रह किया गया है। प्रत्येक धातु के पूरे १० लकारों के प्रथम पुरुष एकवचन यहां पर प्रस्तुत किए गए हैं। पुनश्च प्रत्येक धातु के णिच् प्रत्यय और कर्मवाच्य के रूप भी दिये गए हैं।

निम्नलिखित क्रम से यहां धातुओं के रूप उपस्थित किए गए हैं—

लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ्। अन्त में णिच् प्रत्यय और भाव कर्मवाच्य का प्रथम पुरुष एकवचन का रूप दिया गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर ऊपर लकारों के नाम दिये गए हैं। उसके नीचे प्रत्येक पंक्ति में उस लकार के रूप दिये गए हैं। रूप दाएं और बाएं दोनों पृष्ठ पर फैले हुए हैं, अतः उस धातु के सामने के दोनों पृष्ठ देखें।

प्रत्येक धातु के बाद कोष्ठ में संकेत कर दिया गया है कि वह धातु किस गण की है और किस पद में उसके रूप चलते हैं। इसके साथ ही साथ हिन्दी में अर्थ भी दिया गया है।

इस कोष में निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग किया गया :—

प०=परस्मैपदी। आ०=आत्मनेपदी। उ०=उभयपदी। १=भ्वादिगण। २=अदादिगण। ३=जुहोत्यादिगण। ४=दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७=रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = क्र्यादिगण। १० = चुरादिगण। ११ = कण्ड्वादिगण। ० = करना।

जो धातु जिस गण की है, उस धातु के रूप उस गण की धातुओं के तुल्य ही चलेंगे। जो धातु जिस गण की हो और जिस पद (परस्मै०, आत्मने०, उभयपद) की हो, उसके रूप उस गण में निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप लगाकर बनावें। जो उभयपदी धातुएँ परस्मैपद में ही अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित हैं, उनके ही रूप यहां दिये गए हैं; जिन धातुओं के दोनों पदों में रूप प्रचलित हैं उनके दोनों पदों के रूप दिये गए हैं। जिन उभयपदी धातुओं के रूप यहां आत्मनेपद में नहीं प्रस्तुत किए हैं, उन धातुओं के आत्मनेपद के रूप उस गण की अन्य आत्मनेपदी धातुओं के तुल्य चलावें।

लङ्, लुङ् और लृङ् लकार में अ अथवा आ उपसर्ग से पूर्व कभी नहीं लगता,

अपितु शुद्ध धातु से ही पूर्व लगता है। स्वर आदि वाली धातुओं के पूर्व आ लगता है व्यञ्जन-आदि वाली धातुओं के पूर्व अ लगता है।

धातु-अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
अघ् (१० उ, पाप करना)	अघयति-ते	अघयांचकार	अघयिता	अघयिष्यति	अघयतु
अङ्क (१० उ, चिह्न०)	अङ्कयति-ते	अङ्कयांचकार	अङ्कयिता	अङ्कयिष्यति	अङ्कयतु
अञ्ज् (७ प०, स्वच्छ०)	अनक्ति	आनञ्ज	अञ्जिता	अञ्जिष्यति	अनक्तु
अट् (१ प०, घूमना)	अटति	आट	अटिता	अटिष्यति	अटतु
अत् (१ प०, सदा घूमना)	अतति	आत	अतिता	अतिष्यति	अततु
अद् (२ प०, खाना)	अत्ति	आद, जघास	अत्ता	अत्स्यति	अत्तु
अन् (२ प०, जीवित रहना)	प्र + अनिति	आन	अनिता	अनिष्यति	अनितु
अय् (१ आ०, जाना)	परा + अयते	अयांचक्रे	अयिता	अयिष्यते	अयताम्
अर्च् (१ प०, पूजना)	अर्चति	आनर्च	अर्चिता	अर्चिष्यति	अर्चतु
अर्ज् (१ प०, संग्रह०)	अर्जति	आनर्ज	अर्जिता	अर्जिष्यति	अर्जतु
अर्ह् (१ प०, योग्य होना)	अर्हति	आनर्ह	अर्हिता	अर्हिष्यति	अर्हतु
अव् (१ प०, रक्षा०)	अवति	आव	अविता	अविष्यति	अवतु
अश् (९ प०, खाना)	अश्नाति	आश	अशिता	अशिष्यति	अश्नातु
अस् (२ प०, होना)	अस्ति	बभूव	भविता	भविष्यति	अस्तु
अस् (४ प०, फेंकना)	अस्यति	आस	असिता	असिष्यति	अस्यतु
अस् (११ प०, द्रोह०)	असूयति	असूयांचकार	असूयिता	असूयिष्यति	असूयतु
आप (५ प०, पाना)	आप्नोति	आप	आप्ता	आप्स्यति	आप्नोतु
आप् (१० उ०, पहुँचाना)	आपयति-ते	आपयांचकार	आपयिता	आपयिष्यति	आपयतु
आस (२ आ०, बैठना)	आस्ते	आसांचक्रे	आसिता	आसिष्यते	आस्ताम्
इ (२ प०, जाना)	एति	इयाय	एता	एष्यति	एतु
इ (अधि +, २ आ०, पढ़ना)	अधीते	अधिजगे	अध्येता	अध्येष्यते	अधीताम्
इष् (४ प०, जाना)	अनु + इष्यति	इयेष	एषिता	एषिष्यति	इष्यतु
ईक्ष् (१ आ०, देखना)	ईक्षते	ईक्षांचक्रे	ईक्षिता	ईक्षिष्यते	ईक्षताम्
ईर् (१० उ०, प्रेरणा०)	प्र + ईरयति-ते	ईरयांचकार	ईरयिता	ईरयिष्यति	ईरयतु
ईर्ष्य् (१ प०, ईर्ष्या०)	ईर्ष्यति	ईर्ष्यांचकार	ईर्ष्यिता	ईर्ष्यिष्यति	ईर्ष्यतु
ईह् (१ आ०, चाहना)	ईहते	ईहांचक्रे	ईहिता	ईहिष्यते	ईहताम्
उज्झ (६ प०, छोड़ना)	उज्झति	उज्झांचकार	उज्झिता	उज्झिष्यति	उज्झतु
उन्द् (७ प०, भिगोना)	उनत्ति	उन्दांचकार	उन्दिता	उन्दिष्यति	उनत्तु
ऊह् (१ आ०, तर्क०)	ऊहते	ऊहांचक्रे	ऊहिता	ऊहिष्यते	ऊहताम्
ऋच्छ् (६ प०, जाना)	ऋच्छति	आनर्च्छ	ऋच्छिता	ऋच्छिष्यति	ऋच्छतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
आघयत्	अघयेत्	अघ्यात्	आजिघत्	आघयिष्यत्	अघयति	अघ्यते
आङ्कयत्	अङ्कयेत्	अङ्क्यात्	आञ्चिकत्	आङ्कयिष्यत्	अङ्कयति	अङ्क्यते
आनक्	अञ्ज्यात्	अज्यात्	आञ्जीत्	आञ्जिष्यत्	आञ्जयति	अज्यते
आटत्	अटेत्	अट्यात्	आटीत्	आटिष्यत्	आटयति	अट्यते
आतत्	अतेत्	अत्यात्	आतीत्	आतिष्यत्	आतयति	अत्यते
आदत्	अद्यात्	अद्यात्	अघसत्	आत्स्यत्	आदयति	अद्यते
आनत्	अन्यात्	अन्यात्	आनीत्	आनिष्यत्	आनयति	अन्यते
आयत	अयेत	अयिषीष्ट	आयिष्ट	आयिष्यत्	आययते	अय्यते
आर्चत्	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्	अर्चयति	अर्च्यते
आर्जत्	अर्जेत्	अर्ज्यात्	आर्जीत्	आर्जिष्यत्	अर्जयति	अर्ज्यते
आर्हत्	अर्हेत्	अर्ह्यात्	आर्हीत्	आर्हिष्यत्	अर्हयति	अर्ह्यते
आवत्	अवेत्	अव्यात्	आवीत्	आविष्यत्	आवयति	अव्यते
आश्नात्	अश्नीयात्	अश्यात्	आशीत्	आशिष्यत्	आशयति	अश्यते
आसीत्	स्यात्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
आस्यत्	अस्येत्	अस्यात्	आस्थत्	आसिष्यत्	आसयति	अस्यते
आसूयत्	असूयेत्	असूय्यात्	आसूयीत्	असूयिष्यत्	असूययति	असूय्यते
आप्नोत्	आप्नुयात्	आप्यात्	आपत्	आप्स्यत्	आपयति	आप्यते
आपयत्	आपयेत्	आप्यात्	आपिपत्	आपयिष्यत्	आपयति	आप्यते
आस्त	आसीत	आसिषीष्ट	आसिष्ट	आसिष्यत	आसयति	आस्यते
ऐत्	इयात्	ईयात्	अगात्	ऐष्यत्	गमयति	ईयते
अध्यैत	अधीयीत	अध्येषीष्ट	अध्यैष्ट	अध्यैष्यत्	अध्यापयति	अधीयते
ऐष्यत्	इष्येत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐक्षत	ईक्षेत्	ईक्षिषीष्ट	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिष्यत	ईक्षयति	ईक्ष्यते
ऐरयत्	ईरयेत्	ईर्यात्	ऐरिरत्	ऐरयिष्यत्	ईरयति	ईर्यते
ऐर्ष्यत्	ईर्ष्येत्	ईर्ष्यात्	ऐर्ष्यीत्	ऐर्ष्यिष्यत्	ईर्ष्ययति	ईर्ष्यते
ऐहत	ईहेत	ईहिषीष्ट	ऐहिष्ट	ऐहिष्यत	ईहयति	ईह्यते
औज्झत्	उज्झेत्	उज्झ्यात्	औज्झीत्	औज्झिष्यत्	उज्झयति	उज्झ्यते
औनत्	उन्द्यात्	उद्यात्	औन्दीत्	औन्दिष्यत्	उन्दयति	उद्यते
औहत	ऊहेत	ऊहिषीष्ट	औहिष्ट	औहिष्यत	ऊहयति	ऊह्यते
आर्च्छत्	ऋच्छेत्	ऋच्छ्यात्	आर्च्छीत्	आर्च्छिष्यत्	ऋच्छयति	ऋच्छ्यते

धातु-अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
एज् (१ प०, काँपना)	एजति	एजांचकार	एजिता	एजिष्यति	एजतु
एध् (१ आ० बढ़ना)	एधते	एधांचक्रे	एधिता	एधिष्यते	एधताम्

कण्डू (११ उ०, खुजाना)	कण्डूयति-ते	कण्डूयांचकार	कण्डूयिता	कण्डूयिष्यति	कण्डूयतु
कथ् (१० उ०, कहना) प०	कथयति	कथयांचकार	कथयिता	कथयिष्यति	कथयतु
आ०	कथयते	कथयांचक्रे	कथयिता	कथयिष्यते	कथयताम्
कम् (१ आ०, चाहना)	कामयते	कामयांचक्रे	कामयिता	कामयिष्यते	कामयताम्
कम्प् (१ आ०, काँपना)	कम्पते	चकम्पे	कम्पिता	कम्पिष्यते	कम्पताम्
कांक्ष् (१ प०, चाहना)	कांक्षति	चकांक्ष	कांक्षिता	कांक्षिष्यति	कांक्षतु
काश् (१ आ०, चमकना)	काशते	चकाशे	काशिता	काशिष्यते	काशताम्
कास् (१ आ०, खाँसना)	कासते	कासांचक्रे	कासिता	कासिष्यते	कासताम्
कित् (१ प०, चिकित्सा०)	चिकित्सति	चिकित्सांचकार	चिकित्सिता	चिकित्सिष्यति	चिकित्सतु
कील् (१ प०, गाड़ना)	कीलति	चिकील	कीलिता	कीलिष्यति	कीलतु
कु (२ प०, गूंजना)	कौति	चुकाव	कोता	कोष्यति	कौतु
कुञ्च् (१ प०, कम होना)	कुञ्चति	चुकुञ्च	कुञ्चिता	कुञ्चिष्यति	कुञ्चतु
कुत्स् (१० आ०, दोष देना)	कुत्सयते	कुत्सयांचक्रे	कुत्सयिता	कुत्सयिष्यते	कुत्सयताम्
कुप् (४ प०, क्रोध०)	कुप्यति	चुकोप	कोपिता	कोपिष्यति	कुप्यतु
कुर्द् (आ०, कूदना)	कूर्दते	चुकूर्दे	कूर्दिता	कूर्दिष्यते	कूर्दताम्
कूज् (१ प०, कूजना)	कूजति	चुकूज	कूजिता	कूजिष्यति	कूजतु
कृ (८ उ०, करना), प०	करोति	चकार	कर्ता	करिष्यति	करोतु
आ०	कुरुते	चक्रे	कर्ता	करिष्यते	कुरुताम्
कृत् (६ प०, काटना)	कृन्तति	चकर्त	कर्तिता	कर्तिष्यति	कृन्ततु
कृप् (१ आ०, समर्थ होना)	कल्पते	चक्लृपे	कल्पिता	कल्पिष्यते	कल्पताम्
कृष् (१ प०, जोतना)	कर्षति	चकर्ष	कर्ष्टा	कर्क्ष्यति	कर्षतु
कॄ (६ प०, बिखेरना)	किरति	चकार	करिता	करिष्यति	किरतु
कृत् (१० उ०, नाम लेना)	कीर्तयति-ते	कीर्तयांचकार	कीर्तयिता	कीर्तयिष्यति	कीर्तयतु
क्रन्द् (१ प० रोना)	क्रन्दति	चक्रन्द	क्रन्दिता	क्रन्दिष्यति	क्रन्दतु
क्रम् (१ प०, चलना)	क्रामति	चक्राम	क्रमिता	क्रमिष्यति	क्रामतु
क्री (९ उ०, खरीदना) प०	क्रीणाति	चिक्राय	क्रेता	क्रेष्यति	क्रीणातु
आ०	क्रीणीते	चिक्रिये	क्रेता	क्रेष्यते	क्रीणीताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
ऐजत्	एजेत्	एज्यात्	ऐजीत्	ऐजिष्यत्	ऐजयति	एज्यते
ऐधत	एधेत	एधिषीष्ट	ऐधिष्ट	ऐधिष्यत	एधयति	एध्यते
अकण्डूयत्	कण्डूयत्	कण्डूय्यात्	अकण्डूयीत्	अकण्डूयिष्यत्	कण्डूययति	कण्डूय्यते
अकथयत्	कथयेत्	कथ्यात्	अचकथत्	अकथयिष्यत्	कथयति	कथ्यते
अकथयत	कथयेत	कथयिषीष्ट	अचकथत	अकथयिष्यत	कथयति	कथ्यते
अकामयत	कामयेत	कामयिषीष्ट	अचीकमत	अकामयिष्यत	कामयति	काम्यते

अकम्पत	कम्पेत	कम्पिषीष्ट	अकम्पिष्ट	अकम्पिष्यत	कम्पयति	कम्प्यते
अकांक्षत्	कांक्षेत्	कांक्ष्यात्	अकांक्षीत्	अकांक्षिष्यत्	कांक्षयति	कांक्ष्यते
अकाशत	काशेत	काशिषीष्ट	अकाशिष्ट	अकाशिष्यत	काशयति	काश्यते
अकासत	कासेत	कासिषीष्ट	अकासिष्ट	अकासिष्यत	कासयति	कास्यते
अचिकित्सत्	चिकित्सेत्	चिकित्स्यात्	अचिकित्सीत्	अचिकित्सिष्यत्	चिकित्सयति	चिकित्स्यते
अकीलत्	कीलेत्	कील्यात्	अकीलीत्	अकीलिष्यत्	कीलयति	कील्यते
अकौत्	कुयात्	कूयात्	अकौषीत्	अकोष्यत्	कावयति	कूयते
अकुञ्चत्	कुञ्चेत्	कुच्यात्	अकुञ्चीत्	अकुञ्चिष्यत्	कुञ्चयति	कुच्यते
अकुत्सत	कुत्सयेत	कुत्सयिषीष्ट	अचुकुत्सत	अकुत्सयिष्यत	कुत्सयते	कुत्स्यते
अकुप्यत्	कुप्येत्	कुप्यात्	अकुपत्	अकोपिष्यत्	कोपयति	कुप्यते
अकूर्दत	कूर्देत	कूर्दिषीष्ट	अकूर्दिष्ट	अकूर्दिष्यत	कूर्दयति	कूर्द्यते
अकूजत्	कूजेत्	कूज्यात्	अकूजीत्	अकूजिष्यत्	कूजयति	कूज्यते
अकरोत्	कुर्यात्	क्रियात्	अकार्षीत्	अकरिष्यत्	कारयति	क्रियते
अकुरुत	कुर्वीत	कृषीष्ट	अकृत	अकरिष्यत	कारयति	क्रियते
अकृन्तत्	कृन्तेत्	कृत्यात्	अकर्तीत्	अकर्तिष्यत्	कर्तयति	कृत्यते
अकल्पत	कल्पेत	कल्पिषीष्ट	अक्लृपत	अकल्पिष्यत	कल्पयति	क्लृप्यते
अकर्षत्	कर्षेत्	कृष्यात्	अकार्क्षीत्	अकर्क्ष्यत्	कर्षयति	कृष्यते
अकिरत्	किरेत्	कीर्यात्	अकारीत्	अकरिष्यत्	कारयति	कीर्यते
अकीर्तयत्	कीर्तयेत्	कीर्त्यात्	अचिकीर्तत्	अकीर्तयिष्यत्	कीर्तयति	कीर्त्यते
अक्रन्दत्	क्रन्देत्	क्रन्द्यात्	अक्रन्दीत्	अक्रन्दिष्यत्	क्रन्दयति	क्रन्द्यते
अक्रामत्	क्रामेत्	क्रम्यात्	अक्रमीत्	अक्रमिष्यत्	क्रमयति	क्रम्यते
अक्रीणात्	क्रीणीयात्	क्रीयात्	अक्रैषीत्	अक्रेष्यत्	क्रापयति-ते	क्रीयते
अक्रीणीत	क्रीणीत	क्रेषीष्ट	अक्रेष्ट	अक्रेष्यत	,,	,,

धातु-अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
क्रीड् (१ प०, खेलना)	क्रीडति	चिक्रीड	क्रीडिता	क्रीडिष्यति	क्रीडतु
क्रुध् (४ प०, क्रुद्ध होना)	क्रुध्यति	चुक्रोध	क्रोद्धा	क्रोत्स्यति	क्रुध्यतु
क्रुश् (१ प०, रोना)	क्रोशति	चुक्रोश	क्रोष्टा	क्रोक्ष्यति	क्रोशतु
क्लम् (४ प०, थकना)	क्लाम्यति	चक्लाम	क्लमिता	क्लमिष्यति	क्लाम्यतु
क्लिद् (४ प०, गीला होना)	क्लिद्यति	चिक्लेद	क्लेदिता	क्लेदिष्यति	क्लिद्यतु
क्लिश् (४ आ०, खिन्न होना)	क्लिश्यते	चिक्लिशे	क्लेशिता	क्लेशिष्यते	क्लिश्यताम्
क्लिश् (९ प०, दुःख देना)	क्लिश्नाति	चिक्लेश	क्लेशिता	क्लेशिष्यति	क्लिश्नातु
क्वण् (१ प०, झनझन करना)	क्वणति	चक्वाण	क्वणिता	क्वणिष्यति	क्वणतु
क्वथ् (१ प०, पकाना)	क्वथति	चक्वाथ	क्वथिता	क्वथिष्यति	क्वथतु

क्षम् (१ आ०, क्षमा करना)	क्षमते	चक्षमे	क्षमिता	क्षमिष्यते	क्षमताम्
क्षम् (४ प०, क्षमा०)	क्षाम्यति	चक्षाम	क्षमिता	क्षमिष्यति	क्षाम्यतु
क्षर् (१ प०, बहना)	क्षरति	चक्षार	क्षरिता	क्षरिष्यति	क्षरतु
क्षल् (१० उ०, धोना) प्र +	क्षालयति-ते	क्षालयांचकार	क्षालयिता	क्षालयिष्यति	क्षालयतु
क्षि (१ प०, नष्ट होना)	क्षयति	चिक्षाय	क्षेता	क्षेष्यति	क्षयतु
क्षिप् (६ उ०, फेंकना)	क्षिपति-ते	चिक्षेप	क्षेप्ता	क्षेप्स्यति	क्षिपतु
क्षीव् (१ आ०, मत्त होना)	क्षीवते	चिक्षीवे	क्षीविता	क्षीविष्यते	क्षीवताम्
क्षुद् (७ उ०, पीसना)	क्षुणत्ति	चुक्षोद	क्षोत्ता	क्षोत्स्यति	क्षुणत्तु
क्षुभ् (१ आ०, क्षुब्ध होना)	क्षोभते	चुक्षुभे	क्षोभिता	क्षोभिष्यते	क्षोभताम्
क्षै (१ प०, क्षीण होना)	क्षायति	चक्षौ	क्षाता	क्षास्यति	क्षायतु
क्ष्णु (२ प०, तेज करना)	क्ष्णौति	चुक्ष्णाव	क्ष्णविता	क्ष्णविष्यति	क्ष्णौतु
खण्ड् (१० उ०, तोड़ना)	खण्डयति-ते	खण्डयांचकार	खण्डयिता	खण्डयिष्यति	खण्डयतु
खन् (१ उ०, खोदना)	खनति-ते	चखान	खनिता	खनिष्यति	खनतु
खाद् (१ प०, खाना)	खादति	चखाद	खादिता	खादिष्यति	खादतु
खिद् (४ आ०, खिन्न होना)	खिद्यते	चिखिदे	खेत्ता	खेत्स्यते	खिद्यताम्
खेल् (१ प०, खेलना)	खेलति	चिखेल	खेलिता	खेलिष्यति	खेलतु
गण् (१० उ०, गिनना)	गणयति-ते	गणयांचकार	गणयिता	गणयिष्यति	गणयतु
गद् (१ प०, कहना)	नि + गदति	जगाद	गदिता	गदिष्यति	गदतु
गम् (१ प०, जाना)	गच्छति	जगाम	गन्ता	गमिष्यति	गच्छतु
गर्ज् (१ प०, गरजना)	गर्जति	जगर्ज	गर्जिता	गर्जिष्यति	गर्जतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अक्रीडत्	क्रीडेत्	क्रीड्यात्	अक्रीडीत्	अक्रीडिष्यत्	क्रीडयति	क्रीड्यते
अक्रुध्यत्	क्रुध्येत्	क्रुध्यात्	अक्रुधत्	अक्रोत्स्यत्	क्रोधयति	क्रुध्यते
अक्रोशत्	क्रोशेत्	क्रुश्यात्	अक्रुक्षत्	अक्रोक्ष्यत्	क्रोशयति	क्रुश्यते
अक्लाम्यत्	क्लाम्येत्	क्लम्यात्	अक्लमत्	अक्लमिष्यत्	क्लमयति	क्लम्यते
अक्लिद्यत्	क्लिद्येत्	क्लिद्यात्	अक्लिदत्	अक्लेदिष्यत्	क्लेदयति	क्लिद्यते
अक्लिश्यत	क्लिश्येत	क्लेशिषीष्ट	अक्लेशिष्ट	अक्लेशिष्यत	क्लेशयति	क्लिश्यते
अक्लिश्नात्	क्लिश्नीयात्	क्लिश्यात्	अक्लिशीत्	अक्लेशिष्यत्	,,	,,
अक्वणत्	क्वणेत्	क्वण्यात्	अक्वणीत्	अक्वणिष्यत्	क्वाणयति	क्वण्यते
अक्वथत्	क्वथेत्	क्वथ्यात्	अक्वथीत्	अक्वथिष्यत्	क्वाथयति	क्वथ्यते
अक्षमत	क्षमेत	क्षमिषीष्ट	अक्षमिष्ट	अक्षमिष्यत	क्षमयति	क्षम्यते
अक्षाम्यत्	क्षाम्येत्	क्षम्यात्	अक्षमत्	अक्षमिष्यत्	क्षमयति	क्षम्यते
अक्षरत्	क्षरेत्	क्षर्यात्	अक्षारीत्	अक्षरिष्यत्	क्षारयति	क्षर्यते
अक्षालयत्	क्षालयेत्	क्षाल्यात्	अचिक्षलत्	अक्षालयिष्यत्	क्षालयति	क्षाल्यते

अक्षयत्	क्षयेत्	क्षीयात्	अक्षैषीत्	अक्षेष्यत्	क्षाययति	क्षीयते
अक्षिपत्	क्षिपेत्	क्षिप्यात्	अक्षैप्सीत्	अक्षेप्स्यत्	क्षेपयति	क्षिप्यते
अक्षीवत	क्षीवेत	क्षीविषीष्ट	अक्षीविष्ट	अक्षीविष्यत	क्षीवयति	क्षीव्यते
अक्षुणत्	क्षुन्द्यात्	क्षुद्यात्	अक्षुदत्	अक्षोत्स्यत्	क्षोदयति	क्षुद्यते
अक्षोभत	क्षोभेत	क्षोभिषीष्ट	अक्षुभत्	अक्षोभिष्यत्	क्षोभयति	क्षुभ्यते
अक्षायत्	क्षायेत्	क्षायात्	अक्षासीत्	अक्षास्यत्	क्षपयति	क्षायते
अक्ष्णौत्	क्ष्णुयात्	क्ष्णूयात्	अक्ष्णावीत्	अक्ष्णविष्यत्	क्ष्णावयति	क्ष्णूयते
अखण्डयत्	खण्डयेत्	खण्ड्यात्	अचखण्डत्	अखण्डयिष्यत्	खण्डयति	खण्ड्यते
अखनत्	खनेत्	खन्यात्	अखनीत्	अखनिष्यत्	खानयति	खन्यते
अखादत्	खादेत्	खाद्यात्	अखादीत्	अखादिष्यत्	खादयति	खाद्यते
अखिद्यत	खिद्येत	खित्सीष्ट	अखित्त	अखेत्स्यत	खेदयति	खिद्यते
अखेलत्	खेलेत्	खेल्यात्	अखेलीत्	अखेलिष्यत्	खेलयति	खेल्यते
अगणयत्	गणयेत्	गण्यात्	अजीगणत्	अगणयिष्यत्	गणयति	गण्यते
अगदत्	गदेत्	गद्यात्	अगादीत्	अगदिष्यत्	गादयति	गद्यते
अगच्छत्	गच्छेत्	गम्यात्	अगमत्	अगमिष्यत्	गमयति	गम्यते
अगर्जत्	गर्जेत्	गर्ज्यात्	अगर्जीत्	अगर्जिष्यत्	गर्जयति	गर्ज्यते

धातु-अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
गर्ह् (१ आ०, निन्दा करना)	गर्हते	जगर्हे	गर्हिता	गर्हिष्यते	गर्हताम्
गर्ह् (१० उ०, „ „)	गर्हयति-ते	गर्हयांचकार	गर्हयिता	गर्हयिष्यति	गर्हयतु
गवेष् (१० उ०, खोजना)	गवेषयति	गवेषयांचकार	गवेषयिता	गवेषयिष्यति	गवेषयतु
गाह् (१ आ०, घुसना)	गाहते	जगाहे	गाहिता	गाहिष्यते	गाहताम्
गुञ्ज् (१ प०, गूंजना)	गुञ्जति	जुगुञ्ज	गुञ्जिता	गुञ्जिष्यति	गुञ्जतु
गुण्ठ् (१० उ०, घूँघट०)	अव + गुण्ठयति	गुण्ठयांचकार	गुण्ठयिता	गुण्ठयिष्यति	गुण्ठयतु
गुप् (१ प०, रक्षा करना)	गोपायति	जुगोप	गोपिता	गोपिष्यति	गोपायतु
गुप् (१ आ०, निन्दा करना)	जुगुप्सते	जुगुप्सांचक्रे	जुगुप्सिष्यते	जुगुप्सिता	जुगुप्सताम्
गुम्फ् (६ प०, गूंथना)	गुम्फति	जुगुम्फ	गुम्फिता	गुम्फिष्यति	गुम्फतु
गुह् (१ उ०, छिपाना)	गूहति-ते	जुगूह	गूहिता	गूहिष्यति	गूहतु
गॄ (६ प०, निगलना)	गिरति	जगार	गरिता	गरिष्यति	गिरतु
गॄ (९ प०, कहना)	गृणाति	„	„	„	गृणातु
गै (१ प०, गाना)	गायति	जगौ	गाता	गास्यति	गायतु
ग्रन्थ (९ प० संग्रह०)	संग्रथ्नाति	जग्रन्थ	ग्रन्थिता	ग्रन्थिष्यति	ग्रथ्नातु
ग्रह् (९ उ० लेना) प०	गृह्णाति	जग्राह	ग्रहीता	ग्रहीष्यति	गृह्णातु
आ०	गृह्णीते	जगृहे	ग्रहीता	ग्रहीष्यते	गृह्णीताम्
ग्लै (१ प०, थकना)	ग्लापयति	जग्लौ	ग्लाता	ग्लास्यति	ग्लायतु

घट् (१ आ०, लगना)	घटते	जघटे	घटिता	घटिष्यते	घटताम्
घुष् (१० उ०, घोषणा०)	घोषयति	घोषयांचकार	घोषयिता	घोषयिष्यति	घोषयतु
घूर्ण (१ आ०, घूमना)	घूर्णते	जुघूर्णे	घूर्णिता	घूर्णिष्यते	घूर्णताम्
घूर्ण् (६ प०, घूमना)	घूर्णति	जुघूर्ण	घूर्णिता	घूर्णिष्यति	घूर्णतु
घ्रा (१ प०, सूघना)	जिघ्रति	जघ्रौ	घ्राता	घ्रास्यति	जिघ्रतु
चकास (२ प०, चमकना)	चकास्ति	चकासाचकार	चकासिता	चकासिष्यति	चकास्तु
चक्ष (२ आ०, कहना)	आ + चष्टे	आचचक्षे	आख्याता	आख्यास्यति	आचष्टाम्
चम् (आ + १, प० पीना)	आचामति	आचचाम	आचमिता	आचमिष्यति	आचामतु
चर (१ प०, चलना)	चरति	चचार	चरिता	चरिष्यति	चरतु
चर्व् (१ प०, चबाना)	चर्वति	चचर्व	चर्विता	चर्विष्यति	चर्वतु
चल (१ प०, हिलना)	चलति	चचाल	चलिता	चलिष्यति	चलतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अगर्हत	गर्हेत	गर्हिषीष्ट	अगर्हिष्ट	अगर्हिष्यत	गर्हयति	गर्ह्यते
अगर्हयत्	गर्हयेत्	गर्ह्यात्	अजगर्हत	अगर्हयिष्यत	,,	,,
अगवेषयत्	गवेषयेत्	गवेष्यात्	अजगवेषत	अगवेषयिष्यत्	गवेषयति	गवेष्यते
अगाहत	गाहेत	गाहिषीष्ट	अगाहिष्ट	अगाहिष्यत	गाहयति	गाह्यते
अगुञ्जत्	गुञ्जेत्	गुञ्ज्यात्	अगुञ्जीत्	अगुञ्जिष्यत्	गुञ्जयति	गुञ्ज्यते
अगुण्ठयत्	गुण्ठयेत्	गुण्ठ्यात्	अजुगुण्ठत्	अगुण्ठयिष्यत्	गुण्ठयति	गुण्ठ्यते
अगोपायत्	गोपायेत्	गुप्यात्	अगौप्सीत्	अगोपिष्यत्	गोपयति	गुप्यते
अजुगुप्सत	जुगुप्सेत	जुगुप्सिषीष्ट	अजुगुप्सिष्ट	अजुगुप्सिष्यत	जुगुप्सयति	जुगुप्स्यते
अगुम्फत्	गुम्फेत्	गुम्फ्यात्	अगुम्फीत्	अगुम्फिष्यत्	गुम्फयति	गुम्फ्यते
अगूहत्	गूहेत्	गुह्यात्	अगूहीत्	अगूहिष्यत्	गूहयति	गुह्यते
अगिरत्	गिरेत्	गीर्यात्	अगारीत्	अगरिष्यत्	गारयति	गीर्यते
अगृणात्	गृणीयात्	,,	,,	,,	,,	,,
अगायत	गायेत्	गेयात्	अगासीत्	अगास्यत्	गापयति	गीयते
अग्रथ्नात्	ग्रथ्नीयात्	ग्रथ्यात्	अग्रन्थीत्	अग्रन्थिष्यत्	ग्रन्थयति	ग्रथ्यते
अग्रसत	ग्रसेत	ग्रसिषीष्ट	अग्रसिष्ट	अग्रसिष्यत	ग्रासयति	ग्रस्यते
अगृह्णात	गृह्णीयात्	गृह्यात	अग्रहीत्	अग्रहीष्यत्	ग्राहयति	गृह्यते
अगृह्णीत	गृह्णीत	ग्रहीषीष्ट	अग्रहीष्ट	अग्रहीष्यत	,,	,,
अग्लायत	ग्लायेत्	ग्लायात्	अग्लासीत्	अग्लास्यत्	ग्लापयति	ग्लायते
अघटत	घटेत	घटिषीष्ट	अघटिष्ट	अघटिष्यत	घटयति	घट्यते
अघोषयत्	घोषयेत	घोष्यात्	अजूघुषत्	अघोषयिष्यत्	घोषयति	घोष्यते
अघूर्णत	घूर्णेत	घूर्णिषीष्ट	अघूर्णिष्ट	अघूर्णिष्यत	घूर्णयति	घूर्ण्यते
अघूर्णत्	घूर्णेत्	घूर्ण्यात्	अघूर्णीत्	अघूर्णिष्यत्	,,	,,

अजिघ्रत्	जिघ्रेत्	घ्रेयात्	अघ्रात्	अघ्रास्यत्	घ्रापयति	घ्रायते
अचकात्	चकासे	चकास्यात्	अचकासीत्	अचकासिष्यत्	चकासयति	चकास्यते
आचष्ट	आचक्षीत	आख्यायात्	आख्यत्	आख्यास्यत्	ख्यापयति	ख्यायते
आचामत्	आचामेत्	आचम्यात्	आचमीत्	आचमिष्यत्	आचामयति	आचम्यते
अचरत्	चरेत्	चर्यात्	अचारीत्	अचरिष्यत्	चारयति	चर्यते
अचर्वत्	चर्वेत	चर्व्यात्	अचर्वीत्	अचर्विष्यत्	चर्वयति	चर्व्यते
अचलत्	चलेत्	चल्यात्	अचालीत्	अचलिष्यत्	चलयति	चल्यते

धातु-अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
चि (५ उ०, चुनना)	प०—चिनोति	चिचाय	चेता	चेष्यति	चिनोतु
	आ०—चिनुते	चिच्ये	चेता	चेष्यते	चिनुताम्
चित् (१ प०, समझना)	चेतति	चिचेत	चेतिता	चेतिष्यति	चेततु
चित् (१० आ०, सोचना)	चेतयते	चेतयांचक्रे	चेतयिता	चेतयिष्यते	चेतयताम्
चित्र् (१० उ, चित्र बनाना)	चित्रयति	चित्रयांचकार	चित्रयिता	चित्रयिष्यति	चित्रयतु
चिन्त् (१० उ०, सोचना,	प०—चिन्तयति	चिन्तयांचकार	चिन्तयिता	चिन्तयिष्यति	चिन्तयतु
	आ०—ते	—चक्रे	,,	—ते	—ताम्
चिह्न् (१० उ०, चिह्न लगाना)	चिह्नयति	चिह्नयांचकार	चिह्नयिता	चिह्नयिष्यति	चिह्नयतु
चुद् (१० उ०, प्रेरणा देना)	चोदयति	चोदयांचकार	चोदयिता	चोदयिष्यति	चोदयतु
चुम्ब् (१ प०, चूमना)	चुम्बति	चुचुम्ब	चुम्बिता	चुम्बिष्यति	चुम्बतु
चुर् (१० उ० चुराना)	प०—चोरयति	चोरयांचकार	चोरयिता	चोरयिष्यति	चोरयतु
	आ०—ते	—चक्रे	,,	—ते	—ताम्
चूर्ण् (१० उ०, चूर करना)	चूर्णयति	चूर्णयांचकार	चूर्णयिता	चूर्णयिष्यति	चूर्णयतु
चृप् (१ प०, चूसना)	चृपति	चुचृप	चृपिता	चृपिष्यति	चृपतु
चेष्ट् (१ आ०, चेष्टा करना)	चेष्टते	चिचेष्टे	चेष्टिता	चेष्टिष्यते	चेष्टताम्
छद् (१० उ०, ढकना)	आ + छादयति	छादयांचकार	छादयिता	छादयिष्यति	छादयतु
छिद् (७ उ०, काटना)	छिनत्ति	चिच्छेद	छेत्ता	छेत्स्यति	छिनत्तु
छुर् (६ प०, काटना)	छुरति	चुच्छोर	छुरिता	छुरिष्यति	छुरतु
छो (४ प०, काटना)	छयति	चच्छौ	छाता	छास्यति	छयतु
जन् (४ आ०, पैदा होना)	जायते	जज्ञे	जनिता	जनिष्यते	जायताम्
जप (१ प०, जपना)	जपति	जजाप	जपिता	जपिष्यति	जपतु
जल्प् (१ प०, बात करना)	जल्पति	जजल्प	जल्पिता	जल्पिष्यति	जल्पतु
जागृ (२ प०, जागना)	जागर्त्ति	जजागार	जागरिता	जागरिष्यति	जागर्तु
जि (१ प०, जीतना)	जयति	जिगाय	जेता	जेष्यति	जयतु
जीव् (१ प०, जीना)	जीवति	जिजीव	जीविता	जीविष्यति	जीवतु

जुष् (१० उ०, प्रसन्न होना) जोषयति	जोषयांचकार	जोषयिता	जोषयिष्यति	जोषयतु
जृम्भ (१ आ०, जभाई लेना) जृम्भते	जजृम्भे	जृम्भिता	जृम्भिष्यते	जृम्भताम्
जॄ (४ प०, वृद्ध होना) जीर्यते	जजार	जरिता	जरिष्यति	जीर्यतु
ज्ञा (९ उ०, जानना) प०—जानाति	जज्ञौ	ज्ञाता	ज्ञास्यति	जानातु
आ०—जानीते	जज्ञे	ज्ञाता	ज्ञास्यते	जानीताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अचिनोत्	चिनुयात्	चीयात्	अचैषीत्	अचेष्यत्	चाययति	चीयते
अचिनुत	चिन्वीत	चेषीष्ट	अचेष्ट	अचेष्यत	,,	,,
अचेतत्	चेतेत्	चित्यात्	अचेतीत्	अचेतिष्यत्	चेतयति	चित्यते
अचेतयत	चेतयेत	चेतयिषीष्ट	अचीचितत	अचेतयिष्यत	,,	चेत्यते
अचित्रयत्	चित्रयेत्	चित्र्यात्	अचिचित्रत्	अचित्रयिष्यत्	चित्रयति	चित्र्यते
अचिन्तयत्	चिन्तयेत्	चिन्त्यात्	अचिचिन्तत्	अचिन्तयिष्यत्	चिन्तयति	चिन्त्यते
—यत	येत	चिन्तयिषीष्ट	न्तत	—ष्यत	,,	,,
अचिह्नयत्	चिह्नयेत्	चिह्नयात्	अचिचिह्नत्	अचिह्नयिष्यत्	चिह्नयति	चिह्नयते
अचोदयत्	चोदयेत्	चोद्यात्	अचूचुदत्	अचोदयिष्यत्	चोदयति	चोद्यते
अचुम्बत्	चुम्बेत्	चुम्ब्यात्	अचुम्बीत्	अचुम्बिष्यत्	चुम्बयति	चुम्ब्यते
अचोरयत्	चोरयेत्	चोर्यात्	अचूचुरत्	अचोरयिष्यत्	चोरयति	चोर्यते
—त	—त	चोरयिषीष्ट	रत	त	,,	,,
अचूर्णयत्	चूर्णयेत्	चूर्ण्यात्	अचुचूर्णत्	अचूर्णयिष्यत्	चूर्णयति	चूर्ण्यते
अचूषत्	चूषेत्	चूष्यात्	अचूषीत्	अचूषिष्यत्	चूषयति	चूष्यते
अचेष्टत	चेष्टेत	चेष्टिषीष्ट	अचेष्टिष्ट	अचेष्टिष्यत	चेष्टयति	चेष्ट्यते
अच्छादयत्	छादयेत्	छाद्यात्	अचिच्छदत्	अच्छादयिष्यत्	छादयति	छाद्यते
अच्छिनत्	छिन्द्यात्	छिद्यात्	अच्छैत्सीत्	अच्छेत्स्यत्	छेदयति	छिद्यते
अच्छुरत्	छुरेत्	छुर्यात्	अच्छुरीत्	अच्छुरिष्यत्	छोरयति	छुर्यते
अच्छ्यत्	छ्येत्	छायात्	अच्छात्	अच्छास्यत्	छाययति	छायते
अजायत	जायेत	जनिषीष्ट	अजनिष्ट	अजनिष्यत	जनयति	जन्यते
अजपत्	जपेत्	जप्यात्	अजपीत्	अजपिष्यत्	जापयति	जप्यते
अजल्पत्	जल्पेत्	जल्प्यात्	अजल्पीत्	अजल्पिष्यत्	जल्पयति	जल्प्यते
अजागः	जागृयात्	जागर्यात्	अजागरीत्	अजागरिष्यत्	जागरयति	जागर्यते
अजयत्	जयेत्	जीयात्	अजैषीत्	अजेष्यत्	जापयति	जीयते
अजीवत्	जीवेत्	जीव्यात्	अजीवीत्	अजीविष्यत्	जीवयति	जीव्यते
अजोषयत्	जोषयेत्	जोष्यात्	अजूजुषत्	अजोषयति	जोष्यते	जोष्यते
अजृम्भत	जृम्भेत	जृम्भिषीष्ट	अजृम्भिष्ट	अजृम्भिष्यत	जृम्भयति	जृम्भ्यते
अजीर्यत्	जीर्येत्	जीर्यात्	अजरीत्	अजरिष्यत्	जरयति	जीर्यते

अजानात्	जानीयात्	ज्ञेयात्	अज्ञासीत्	अज्ञास्यत्	ज्ञापयति	ज्ञायते
अजानीत	जानीत	ज्ञासीष्ट	अज्ञास्त	अज्ञास्यत	,,	,,

धातु-अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
ज्ञा (१० उ०, आज्ञा देना)	आ + ज्ञापयति	ज्ञापयांचकार	ज्ञापयिता	ज्ञापयिष्यति	ज्ञापयतु
ज्वर (१ प०, रुग्ण होना)	ज्वरति	जज्वार	ज्वरिता	ज्वरिष्यति	ज्वरतु
ज्वल् (१ प, जलना)	ज्वलति	जज्वाल	ज्वलिता	ज्वलिष्यति	ज्वलतु
टंक् (१० उ०, चिह्न लगाना	टंकयति	टंकयांचकार	टंकयिता	टंकयिष्यति	टंकयतु
डी (१ आ , उड़ना)	उत् + डयते	डिड्ये	डयिता	डयिष्यते	डयताम्
डी (४ आ० ,,)	उत् + डीयते	,,	,,	,,	डीयताम्
ढौक् (१ आ०, पहुँचना)	ढौकते	डुढौके	ढौकिता	ढौकिष्यते	ढौकताम्
तक्ष् (१ प० छीलना)	तक्षति	ततक्ष	तक्षिता	तक्षिष्यति	तक्षतु
तड् (१० उ०, पीटना)	ताडयति	ताडयांचकार	ताडयिता	ताडयिष्यति	ताडयतु
तन् (८ उ०, फैलाना) प०–	तनोति	ततान	तनिता	तनिष्यति	तनोतु
आ०–	तनुते	तेने	तनिता	तनिष्यते	तनुताम्
तन्त्र (१० आ०, पालन०)	तन्त्रयते	तन्त्रयांचक्रे	तन्त्रयिता	तन्त्रयिष्यते	तंत्रयताम्
तप् (१ प०, तपना)	तपति	तताप	तप्ता	तप्स्यति	तपतु
तर्क (१० उ०, सोचना)	तर्कयति	तर्कयांचकार	तर्कयिता	तर्कयिष्यति	तर्कयतु
तर्ज् (१ प०, डाटना)	तर्जति	ततर्ज	तर्जिता	तर्जिष्यति	तर्जतु
तर्ज् (१० आ० डाँटना)	तर्जयते	तर्जयांचक्रे	तर्जयिता	तर्जयिष्यते	तर्जयताम्
तंस (१० उ०, सजाना)	अव + तंसयति	तंसयांचकार	तंसयिता	तंसयिष्यति	तंसयतु
तिज (१ आ०, क्षमा०)	तितिक्षते	तितिक्षांचक्रे	तितिक्षिता	तितिक्षिष्यते	तितिक्षताम्
तुद् (६ उ , दुःख देना)	तुदति–ते	तुतोद	तोत्ता	तोत्स्यति	तुदतु
तुरण् (११ प० जल्दी करना)	तुरण्यति	तुरणांचकार	तुरणिता	तुरणिष्यति	तुरण्यतु
तुल् (१० उ०, तोलना)	तोलयति	तोलयांचकार	तोलयिता	तोलयिष्यति	तोलयतु
तुष् (४ प०, तुष्ट होना)	तुष्यति	तुतोष	तोष्टा	तोक्ष्यति	तुष्यतु
तृप् (४ प०, तृप्त होना)	तृप्यति	ततर्प	तर्पिता	तर्पिष्यति	तृप्यतु
तृष् (४ प०, प्यासा होना)	तृष्यति	ततर्ष	तर्षिता	तर्षिष्यति	तृष्यतु
तॄ (१ प०, तैरना)	तरति	ततार	तरिता	तरिष्यति	तरतु
त्यज् (१ प० छोड़ना)	त्यजति	तत्याज	त्यक्ता	त्यक्ष्यति	त्यजतु
त्रप् (१ आ०, लजाना)	त्रपते	त्रेपे	त्रपिता	त्रपिष्यते	त्रपताम्
त्रस (४ प०, डरना)	त्रस्यति	तत्रास	त्रसिता	त्रसिष्यति	त्रस्यतु
त्रुट् (६ प०, टूटना)	त्रुटति	तुत्रोट	त्रुटिता	त्रुटिष्यति	त्रुटतु
त्रुट् (१० आ०, तोड़ना)	त्रोटयते	त्रोटयांचक्रे	त्रोटयिता	त्रोटयिष्यते	त्रोटयताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अज्ञापयत्	ज्ञापयेत्	ज्ञाप्यात्	अजिज्ञपत्	अज्ञापयिष्यत्	ज्ञापयति	ज्ञाप्यते
अज्वरत्	ज्वरेत्	ज्वर्यात्	अज्वारीत्	अज्वरिष्यत्	ज्वरयति	ज्वर्यते
अज्वलत्	ज्वलेत्	ज्वल्यात्	अज्वालीत्	अज्वलिष्यत्	ज्वालयति	ज्वल्यते
अटंकयत्	टंकयेत्	टंक्यात्	अटटंकत्	अटंकयिष्यत्	टंकयति	टंक्यते
अडयत	डयेत	डयिषीष्ट	अडयिष्ट	अडयिष्यत	डाययति	डीयते
अडीयत	डीयेत	,,	,,	,,	,,	,,
अढौकत	ढौकेत	ढौकिषीष्ट	अढौकिष्ट	अढौकिष्यत	ढौकयति	ढौक्यते
अतक्षत्	तक्षेत्	तक्ष्यात्	अतक्षीत्	अतक्षिष्यत्	तक्षयति	तक्ष्यते
अताडयत्	ताडयेत्	ताड्यात्	अतीतडत्	अताडयिष्यत्	ताडयति	ताड्यते
अतनोत्	तनुयात्	तन्यात्	अतानीत्	अतनिष्यत्	तानयति	तन्यते
अतनुत	तन्वीत	तनिषीष्ट	अतनिष्ट	अतनिष्यत	,,	,,
अतन्त्रयत	तन्त्रयेत	तन्त्रयिषीष्ट	अततन्त्रत्	अतन्त्रयिष्यत	तन्त्रयति	तन्त्र्यते
अतपत्	तपेत्	तप्यात्	अताप्सीत्	अतप्स्यत्	तापयति	तप्यते
अतर्कयत्	तर्कयेत्	तर्क्यात्	अततर्कत्	अतर्कयिष्यत्	तर्कयति	तर्क्यते
अतर्जत्	तर्जेत्	तर्ज्यात्	अतर्जीत्	अतर्जिष्यत्	तर्जयति	तर्ज्यते
अतंसयत्	तंसयेत्	तंस्यात्	अततंसत्	अतंसयिष्यत्	तंसयति	तंस्यते
अतितिक्षत	तितिक्षेत	तितिक्षिषीष्ट	अतितिक्षिष्ट	अतितिक्षिष्यत	तेजयति	तितिक्ष्यते
अतुदत्	तुदेत्	तुद्यात्	अतौत्सीत्	अतोत्स्यत्	तोदयति	तुद्यते
अतुरण्यत्	तुरण्येत्	तुरण्यात्	अतुरणीत्	अतुरणिष्यत्	तुरणयति	तुरण्यते
अतोलयत्	तोलयेत्	तोल्यात्	अतूतुलत्	अतोलयिष्यत्	तोलयति	तोल्यते
अतुष्यत्	तुष्येत्	तुष्यात्	अतुषत्	अतोक्ष्यत्	तोषयति	तुष्यते
अतृप्यत्	तृप्येत्	तृप्यात्	अतृपत्	अतर्प्स्यत	तर्पयति	तृप्यते
अतरत्	तरेत्	तीर्यात्	अतारीत्	अतरिष्यत्	तारयति	तीर्यते
अत्यजत्	त्यजेत्	त्यज्यात्	अत्याक्षीत्	अत्यक्ष्यत्	त्याजयति	त्यज्यते
अत्रपत	त्रपेत	त्रपिषीष्ट	अत्रपिष्ट	अत्रपिष्यत	त्रपयति	त्रप्यते
अत्रस्यत्	त्रस्येत्	त्रस्यात्	अत्रसीत्	अत्रसिष्यत्	त्रासयति	त्रस्यते
अत्रुटत्	त्रुटेत्	त्रुट्यात्	अत्रुटीत्	अत्रुटिष्यत्	त्रोटयति	त्रुट्यते
अत्रोटयत	त्रोटयेत	त्रोटयिषीष्ट	अतुत्रुटत	अत्रोटयिष्यत	,,	त्रोट्यते

धातु-अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
त्रै (१ आ०, बचाना)	त्रायते	तत्रे	त्राता	त्रास्यते	त्रायताम्
त्वक्ष् (१ प०, छीलना)	त्वक्षति	तत्वक्ष	त्वक्षिता	त्वक्षिष्यति	त्वक्षतु
त्वर् (१ आ०, जल्दी करना)	त्वरते	तत्वरे	त्वरिता	त्वरिष्यते	त्वरताम्
त्विष् (१ उ०, चमकना)	त्वेषति-ते	तित्वेष	त्वेष्टा	त्वेक्ष्यति	त्वेषतु

दण्ड् (१० उ०, दण्ड देना)	दण्डयति-ते	दण्डयांचकार	दण्डयिता	दण्डयिष्यति	दण्डयतु
दम् (४ प०, दमन करना)	दाम्यति	ददाम	दमिता	दमिष्यति	दाम्यतु
दन्भ् (५ प०, धोखा देना)	दभ्नोति	ददन्भ	दम्भिता	दम्भिष्यति	दभ्नोतु
दय् (१ आ०, दया करना)	दयते	दयांचक्रे	दयिता	दयिष्यते	दयताम्
दंश् (१ प०, डँसना)	दशति	ददंश	दंष्टा	दंक्ष्यति	दशतु
दह् (१ प०, जलाना)	दहति	ददाह	दग्धा	धक्ष्यति	दहतु
दा (१ प०, देना)	यच्छति	ददौ	दाता	दास्यति	यच्छतु
दा (२ प०, काटना)	दाति	,,	,,	,,	दातु
दा (३ उ०, देना) प०—	ददाति	,,	,,	,,	ददातु
आ०—	दत्ते	ददे	,,	दास्यते	दत्ताम्
दिव् (४ प० चमकना आदि)	दीव्यति	दिदेव	देविता	देविष्यति	दीव्यतु
दिव् (१० आ०, रुलाना)	देवयते	देवयांचक्रे	देवयिता	देवयिष्यते	देवयताम्
दिश् (६ उ०, देना, कहना)	दिशति-ते	दिदेश	देष्टा	देक्ष्यति	दिशतु
दीक्ष् (१ आ०, दीक्षा देना)	दीक्षते	दिदीक्षे	दीक्षिता	दीक्षिष्यते	दीक्षताम्
दीप् (४ आ०, चमकना)	दीप्यते	दिदीपे	दीपिता	दीपिष्यते	दीप्यताम्
दु (५ प०, दुःखित होना)	दुनोति	दुदाव	दोता	दोष्यति	दुनोतु
दुष् (४ प०, बिगड़ना)	दुष्यति	दुदोष	दोष्टा	दोक्ष्यति	दुष्यतु
दुह् (२ उ०, दुहना) प०—	दोग्धि	दुदोह	दोग्धा	धोक्ष्यति	दोग्धु
आ०—	दुग्धे	दुदुहे	,,	—ते	दुग्धाम्
दू (४ आ०, दुःखित होना)	दूयते	दुदुवे	दविता	दविष्यते	दूयताम्
दृ (६ आ०, आदर करना) आ +	आद्रियते	आदद्रे	आदर्ता	आदरिष्यते	आद्रियताम्
दृप् (४ प०, गर्व करना)	दृप्यति	ददर्प	दर्पिता	दर्पिष्यति	दृप्यतु
दृश् (१ प०, देखना)	पश्यति	ददर्श	द्रष्टा	द्रक्ष्यति	पश्यतु
दॄ (९ प०, फाड़ना)	दृणाति	ददार	दरिता	दरिष्यति	दृणातु
दो (४ प०, काटना)	द्यति	ददौ	दाता	दास्यति	द्यतु
द्युत् (१ आ०, चमकना)	द्योतते	दिद्युते	द्योतिता	द्योतिष्यते	द्योतताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
अत्रायत	त्रायेत	त्रासीष्ट	अत्रास्त	अत्रास्यत	त्रापयति	त्रायते
अत्वक्षत्	त्वक्षेत्	त्वक्ष्यात्	अत्वक्षीत्	अत्वक्षिष्यत्	त्वक्षयति	त्वक्ष्यते
अत्वरत	त्वरेत	त्वरिषीष्ट	अत्वरिष्ट	अत्वरिष्यत	त्वरयति	त्वर्यते
अत्वेषत्	त्विषेत्	त्विष्यात्	अत्विक्षत्	अत्वेक्ष्यत्	त्वेषयति	त्विष्यते
अदण्डयत्	दण्डयेत्	दण्ड्यात्	अददण्डत्	अदण्डयिष्यत्	दण्डयति	दण्ड्यते
अदाम्यत्	दाम्येत्	दम्यात्	अदमत्	अदमिष्यत्	दमयते	दम्यते
अदभ्नोत्	दभ्नुयात्	दभ्यात्	अदम्भीत्	अदम्भिष्यत्	दम्भयति	दभ्यते

अदयत	दयेत	दयिषीष्ट	अदयिष्ट	अदयिष्यत	दाययति	दय्यते
अदशत्	दशेत्	दश्यात्	अदाङ्क्षीत्	अदंक्ष्यत्	दंशयति	दश्यते
अदहत्	दहेत्	दह्यात्	अधाक्षीत्	अधक्ष्यत्	दाहयति	दह्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अदात्	दायात्	दायात्	अदासीत्	,,	,,	दायते
अददात्	दद्यात्	देयात्	अदात्	,,	,,	दीयते
अदत्त	ददीत	दासीष्ट	अदित	अदास्यत	,,	,,
अदीव्यत्	दीव्येत्	दीव्यात्	अदेवीत्	अदेविष्यत्	देवयति	दीव्यते
अदेवयत	देवयेत	देवयिषीष्ट	अदीदिवत	अदेवयिष्यत	देवयति	देव्यते
अदिशत्	दिशेत्	दिश्यात्	अदिक्षत्	अदेक्ष्यत्	देशयति	दिश्यते
अदीक्षत	दीक्षेत	दीक्षिषीष्ट	अदीक्षिष्ट	अदीक्षिष्यत	दीक्षयति	दीक्ष्यते
अदीप्यत	दीप्येत	दीपिषीष्ट	अदीपिष्ट	अदीपिष्यत्	दीपयति	दीप्यते
अदुनोत्	दुनुयात्	दूयात्	अदौषीत्	अदोष्यत्	दावयति	दूयते
अदुष्यत्	दुष्येत्	दुष्यात्	अदुषत्	अदोक्ष्यत्	दूषयति	दुष्यते
अधोक्	दुह्यात्	दुह्यात्	अधुक्षत्	अधोक्ष्यत्	दोहयति	दुह्यते
अदुग्ध	दुहीत	धुक्षीष्ट	अधुक्षत	—क्ष्यत	,,	,,
अदूयत	दूयेत	दविषीष्ट	अदविष्ट	अदविष्यत	दावयति	दूयते
आद्रियत	आद्रियेत	आदृषीष्ट	आदृत	आदरिष्यत	आदारयति	आद्रियते
अदृप्यत्	दृप्येत्	दृप्यात्	अदृपत्	अदर्पिष्यत्	दर्पयति	दृप्यते
अपश्यत्	पश्येत्	दृश्यात्	अद्राक्षीत्	अद्रक्ष्यत्	दर्शयति	दृश्यते
अदृणात्	दृणीयात्	दीर्यात्	अदारीत्	अदरिष्यत्	दारयति	दीर्यते
अद्यत्	द्येत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अद्योतत	द्योतेत	द्योतिषीष्ट	अद्योतिष्ट	अद्योतिष्यत	द्योतयति	द्युत्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
द्रा	(२ प०, सोना)	नि + निद्राति	निदद्रौ	निद्राता	निद्रास्यति	निद्रातु
द्रु	(१ प०, पिघलना)	द्रवति	दुद्राव	द्रोता	द्रोष्यति	द्रवतु
द्रुह्	(४ प०, द्रोह करना)	द्रुह्यति	दुद्रोह	द्रोहिता	द्रोहिष्यति	द्रुह्यतु
द्विष्	(२ उ०, द्वेष करना)	द्वेष्टि	दिद्वेष	द्वेष्टा	द्वेक्ष्यति	द्वेष्टु
धा	(३ उ०, धारण०)	प०—दधाति	दधौ	धाता	धास्यति	दधातु
		आ०—धत्ते	दधे	,,	धास्यते	धत्ताम्
धाव्	(१ उ०, दौड़ना, धोना)	धावति-ते	दधाव	धाविता	धाविष्यति	धावतु
धु	(५ उ०, हिलाना)	धुनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धुनोतु
धुक्ष्	(१ आ०, जलना)	धुक्षते	दुधुक्षे	धुक्षिता	धुक्षिष्यते	धुक्षताम्
धू	(५ उ०, हिलाना)	धूनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धूनोतु

धूप् (१ प०, सुखाना) धूपायति	धूपायांचकार	धूपायिता	धूपायिष्यति	धूपायतु
धृ (१ उ०, रखना) धरति-ते	दधार	धर्ता	धरिष्यति	धरतु
धृ (१० उ०, रखना) धारयति-ते	धारयांचकार	धारयिता	धारयिष्यति	धारयतु
धृष् (१० उ०, दबाना) धर्षयति-ते	धर्षयांचकार	धर्षयिता	धर्षयिष्यति	धर्षयतु
धे (१ प०, पीना, चूसना) धयति	दधौ	धाता	धास्यति	धयतु
ध्मा (१ प०, फूकना) धमति	दध्मौ	ध्माता	ध्मास्यति	धमतु
ध्यै (१ प०, सोचना) ध्यायति	दध्यौ	ध्याता	ध्यास्यति	ध्यायतु
ध्वन् (१ प, शब्द०) ध्वनति	दध्वान	ध्वनिता	ध्वनिष्यति	ध्वनतु
ध्वंस् (१ आ०, नष्ट होना) ध्वंसते	दध्वंसे	ध्वंसिता	ध्वंसिष्यते	ध्वंसताम्
नद् (१ प०, नाद करना) नदति	ननाद	नदिता	नदिष्यति	नदतु
नन्द् (१ प०, प्रसन्न होना) नन्दति	ननन्द	नन्दिता	नन्दिष्यति	नन्दतु
नम् (१ प०, झुकना) प्र + नमति	ननाम	नन्ता	नंस्यति	नमतु
नश् (४ प०, नष्ट होना) नश्यति	ननाश	नशिता	नशिष्यति	नश्यतु
नह् (४ उ०, बाँधना) नह्यति-ते	ननाह	नद्धा	नत्स्यति	नह्यतु
निज् (३ उ०, धोना) नेनेक्ति	निनेज	नेक्ता	नेक्ष्यति	नेनेक्तु
निन्द् (१ प०, निन्दा करना) निन्दति	निनिन्द	निन्दिता	निन्दिष्यति	निन्दतु
नी (१ उ०, ले जाना) प०-नयति	निनाय	नेता	नेष्यति	नयतु
आ०-नयते	निन्ये	,,	नेष्यते	नयताम्
नु (२ प०, स्तुति०) नौति	नुनाव	नविता	नविष्यति	नौतु
नुद् (६ उ०, प्रेरणा देना) नुदति-ते	नुनोद	नोत्ता	नोत्स्यति	नुदतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
न्यद्रात्	निद्रायात्	निद्रायात्	न्यद्रासीत्	न्यद्रास्यत्	निद्रापयति	निद्रायते
अद्रवत्	द्रवेत्	द्रूयात्	अदुद्रुवत्	अद्रोष्यत्	द्रावयति	द्रूयते
अद्रुह्यत्	द्रुह्येत्	द्रुह्यात्	अद्रुहत्	अद्रोहिष्यत्	द्रोहयति	द्रुह्यते
अद्वेट्	द्विष्यात्	द्विष्यात्	अद्विक्षत्	अद्वेक्ष्यत्	द्वेषयति	द्विष्यते
अदधात्	दध्यात्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयति	धीयते
अधत्त	दधीत	धासीष्ट	अधित	अधास्यत	,,	,,
अधावत्	धावेत्	धाव्यात्	अधावीत्	अधाविष्यत्	धावयति	धाव्यते
अधुनोत्	धुनुयात्	धूयात्	अधावीत्	अधोष्यत्	धावयति	धूयते
अधुक्षत	धुक्षेत	धुक्षिषीष्ट	अधुक्षिष्ट	अधुक्षिष्यत	धुक्षयति	धुक्ष्यते
अधूनोत्	धूनुयात्	धूयात्	अधावीत्	अधोष्यत्	धूनयति	धूयते
अधूपायत्	धूपायेत्	धूपाय्यात्	अधूपायीत्	अधूपायिष्यत्	धूपाययति	धूपाय्यते
अधरत्	धरेत्	ध्रियात्	अधार्षीत्	अधरिष्यत्	धारयति	ध्रियते
अधारयत्	धारयेत्	धार्यात्	अदीधरत्	अधारयिष्यत्	,,	धार्यते

अधर्षयत्	धर्षयेत्	धर्ष्यात्	अदवर्षत्	अधर्षयिष्यत्	धर्षयति	धर्ष्यते
अधयत्	धयेत्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयते	धीयते
अधमत्	धमेत्	ध्मायात्	अध्मासीत्	अध्मास्यत्	ध्मापयति	ध्मायते
अध्यायत्	ध्यायेत्	ध्यायात्	अध्यासीत्	अध्यास्यत्	ध्यापयति	ध्यायते
अध्वनत्	ध्वनेत्	ध्वन्यात्	अध्वानीत्	अध्वनिष्यत्	ध्वनयति	ध्वन्यते
अध्वंसत	ध्वंसेत	ध्वंसिषीष्ट	अध्वंसिष्ट	अध्वंसिष्यत	ध्वंसयति	ध्वस्यते
अनदत्	नदेत्	नद्यात्	अनादीत्	अनदिष्यत्	नादयति	नद्यते
अनन्दत्	नन्देत्	नन्द्यात्	अनन्दीत्	अनन्दिष्यत्	नन्दयति	नन्द्यते
अनमत्	नमेत्	नम्यात्	अनंसीत्	अनंस्यत्	नमयति	नम्यते
अनश्यत्	नश्येत्	नश्यात्	अनशत्	अनशिष्यत्	नाशयति	नश्यते
अनह्यत्	नह्येत्	नह्यात्	अनात्सीत्	अनत्स्यत्	नाहयति	नह्यते
अनेनेक्	नेनिज्यात्	निज्यात्	अनिजत्	अनेक्ष्यत्	नेजयति	निज्यते
अनिन्दत्	निन्देत्	निन्द्यात्	अनिन्दीत्	अनिन्दिष्यत्	निन्दयति	निन्द्यते
अनयत्	नयेत्	नीयात्	अनैषीत्	अनेष्यत्	नाययति	नीयते
अनयत	नयेत	नेषीष्ट	अनेष्ट	अनेष्यत	,,	,,
अनौत्	नुयात्	नूयात्	अनावीत्	अनविष्यत्	नावयति	नूयते
अनुदत्	नुदेत्	नुद्यात्	अनौत्सीत्	अनोत्स्यत्	नोदयति	नुद्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
नृत्	(४ प०, नाचना)	नृत्यति	ननर्त	नर्तिता	नर्तिष्यति	नृत्यतु
पच्	(१ उ०, पकाना)	प०—पचति	पपाच	पक्ता	पक्ष्यति	पचतु
		आ०—पचते	पेचे	पक्ता	पक्ष्यते	पचताम्
पठ्	(१ प०, पढ़ना)	पठति	पपाठ	पठिता	पठिष्यति	पठतु
पण्	(१ आ०, खरीदना)	पणते	पेणे	पणिता	पणिष्यते	पणताम्
पत्	(१ प०, गिरना)	पतति	पपात	पतिता	पतिष्यति	पततु
पद्	(४ आ०, जाना)	पद्यते	पेदे	पत्ता	पत्स्यते	पद्यताम्
पर्द्	(१ आ०, कुशब्द करना)	पर्दते	पपर्दे	पर्दिता	पर्दिष्यते	पर्दताम्
पश्	(१० उ०, बाँधना)	पाशयति—ते	पाशयांचकार	पाशयिता	पाशयिष्यति	पाशयतु
पा	(१ प०, पीना)	पिबति	पपौ	पाता	पास्यति	पिबतु
पा	(२ प०, रक्षा करना)	पाति	पपौ	पाता	पास्यति	पातु
पाल्	(१० उ०, पालना)	पालयति—ते	पालयांचकार	पालयिता	पालयिष्यति	पालयतु
पिष्	(७ प०, पीसना)	पिनष्टि	पिपेष	पेष्टा	पेक्ष्यति	पिनष्टु
पीड्	(१० उ०, दुःख देना)	पीडयति-ते	पीडयांचकार	पीडयिता	पीडयिष्यति	पीडयतु
पुष्	(४ प०, पुष्ट करना)	पुष्यति	पुपोष	पोष्टा	पोक्ष्यति	पुष्यतु
पुष्	(९ प०, पुष्ट करना)	पुष्णाति	पुपोष	पोषिता	पोषिष्यति	पुष्णातु

पुष् (१० उ०, पालना) पोषयति-ते	पोषयांचकार	पोषयिता	पोषयिष्यति	पोषयतु
पुष्प् (४ प०, खिलना) पुष्प्यति	पुपुष्प	पुष्पिता	पुष्पिष्यति	पुष्प्यतु
पू (९ उ०, पवित्र करना) पुनाति	पुपाव	पविता	पविष्यति	पुनातु
पू (१ आ०, पवित्र करना) पवते	पुपुवे	पविता	पविष्यते	पवताम्
पूज् (१० उ०. पूजना) पूजयति-ते	पूजयांचकार	पूजयिता	पूजयिष्यति	पूजयतु
पूर् (१० उ०, भरना) पूरयति-ते	पूरयांचकार	पूरयिता	पूरयिष्यति	पूरयतु
पॄ (३ प०, पालना) पिपर्ति	पपार	परिता	परिष्यति	पिपर्तु
पॄ (१० उ०, पालना) पारयति-ते	पारयांचकार	पारयिता	पारयिष्यति	पारयतु
पै (१ प०, शोषण करना) पायति	पपौ	पाता	पास्यति	पायतु
प्यै (१ आ०, बढ़ना) आ+प्यायते	पप्ये	प्याता	प्यास्यते	प्यायताम्
प्रच्छ् (६ प०, पूछना) पृच्छति	पप्रच्छ	प्रष्टा	प्रक्ष्यति	पृच्छतु
प्रथ् (१ आ०, फैलना) प्रथते	पप्रथे	प्रथिता	प्रथिष्यते	प्रथताम्
प्री (४ आ०, प्रसन्न होना) प्रीयते	पिप्रिये	प्रेता	प्रेष्यते	प्रीयताम्
प्री (९ उ०, प्रसन्न करना) प्रीणाति	पिप्राय	प्रेता	प्रेष्यति	प्रीणातु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अनृत्यत्	नृत्येत्	नृत्यात्	अनर्तीत्	अनर्तिष्यत्	नर्तयति	नृत्यते
अपचत्	पचेत्	पच्यात्	अपाक्षीत्	अपक्ष्यत्	पाचयति	पच्यते
अपचत	पचेत	पक्षीष्ट	अपक्त	अपक्ष्यत	पाचयति	पच्यते
अपठत्	पठेत्	पठ्यात्	अपाठीत्	अपठिष्यत्	पाठयति	पठ्यते
अपणत	पणेत	पणिषीष्ट	अपणिष्ट	अपणिष्यत	पाणयति	पण्यते
अपतत्	पतेत्	पत्यात्	अपप्तत्	अपतिष्यत्	पातयति	पत्यते
अपद्यत	पद्येत	पत्सीष्ट	अपादि	अपत्स्यत	पादयति	पद्यते
अपर्दत	पर्देत	पर्दिषीष्ट	अपर्दिष्ट	अपर्दिष्यत	पर्दयति	पर्द्यते
अपाशयत्	पाशयेत्	पाश्यात्	अपीपशत्	अपाशयिष्यत्	पाशयति	पाश्यते
अपिबत्	पिबेत्	पेयात्	अपात्	अपास्यत्	पाययति	पीयते
अपात्	पायात्	पायात्	अपासीत्	अपास्यत्	पालयति	पायते
अपालयत्	पालयेत्	पाल्यात्	अपीपलत्	अपालयिष्यत्	पालयति	पाल्यते
अपिनट्	पिंष्यात्	पिष्यात्	अपिषत्	अपेक्ष्यत्	पेषयति	पिष्यते
अपीडयत्	पीडयेत्	पीड्यात्	अपिपीडत्	अपीडयिष्यत्	पीडयति	पीड्यते
अपुष्यत्	पुष्येत्	पुष्यात्	अपुषत्	अपोक्ष्यत्	पोषयति	पुष्यते
अपुष्णात्	पुष्णीयात्	पुष्यात्	अपोषीत्	अपोषिष्यत्	पोषयति	पुष्यते
अपोषयत्	पोषयेत्	पोष्यात्	अपूपुषत्	अपोषयिष्यत्	पोषयति	पुष्यते
अपुष्प्यत्	पुष्प्येत्	पुष्प्यात्	अपुष्प्यत्	अपुष्पिष्यत्	पोष्पयति	पुष्प्यते

अपुनात्	पुनीयात्	पूयात्	अपावीत्	अपविष्यत्	पावयति	पूयते
अपवत	पवेत	पविषीष्ट	अपविष्ट	अपविष्यत	पावयति	पूयते
अपूजयत्	पूजयेत्	पूज्यात्	अपूपुजत्	अपूजयिष्यत्	पूजयति	पूज्यते
अपूरयत्	पूरयेत्	पूर्यात्	अपूपुरत्	अपूरयिष्यत्	पूरयति	पूर्यते
अपिपः	पिपूर्यात्	पूर्यात्	अपारीत्	अपरिष्यत्	पारयति	पूर्यते
अपारयत्	पारयेत्	पार्यात्	अपीपरत्	अपारयिष्यत्	पारयति	पार्यते
अपायत्	पायेत्	पायात्	अपासीत्	अपास्यत्	पाययति	पायते
अप्यायत	प्यायेत	प्यासीष्ट	अप्यास्त	अप्यास्यत	प्यापयति	प्यायते
अपृच्छत्	पृच्छेत्	पृच्छयात्	अप्राक्षीत्	अप्रक्ष्यत्	प्रच्छयति	पृच्छयते
अप्रथत	प्रथेत	प्रथिषीष्ट	अप्रथिष्ट	अप्रथिष्यत	प्रथयति	प्रथ्यते
अप्रीयत	प्रीयेत	प्रेषीष्ट	अप्रेष्ट	अप्रेष्यत	प्राययति	प्रीयते
अप्रीणात्	प्रीणीयात्	प्रीयात्	अप्रैषीत्	अप्रेष्यत्	प्रीणयति	प्रीयते

धातु-अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
प्री (१० उ०, प्रसन्नकरना)	प्रीणयति	प्रीणयांचकार	प्रीणयिता	प्रीणयिष्यति	प्रीणयतु
प्लु (१ आ०, कूदना)	प्लवते	पुप्लुवे	प्लोता	प्लोष्यते	प्लवताम्
प्लुष् (१ प०, जलाना)	प्लोषति	पुप्लोष	प्लोषिता	प्लोषिष्यति	प्लोषतु
फल् (१ प०, फलना)	फलति	फफाल	फलिता	फलिष्यति	फलतु
बध् (१ आ०, बीभत्सहोना)	बीभत्सते	बीभत्सांचक्रे	बीभत्सिता	बीभत्सिष्यते	बीभत्सताम्
बध् (१० उ०, बांधना)	बाधयति	बाधयांचकार	बाधयिता	बाधयिष्यति	बाधयतु
बन्ध् (९ प०, बाँधना)	बध्नाति	बबन्ध	बन्द्धा	भन्त्स्यति	बध्नातु
बाध् (१ आ०, पीड़ा देना)	बाधते	बबाधे	बाधिता	बाधिष्यते	बाधताम्
बुध् (१ उ०, समझना)	बोधति-ते	बुबोध	बोधिता	बोधिष्यति	बोधतु
बुध् (४ आ०, जानना)	बुध्यते	बुबुधे	बोद्धा	भोत्स्यते	बुध्यताम्
ब्रू (२ उ०, बोलना)	प०-ब्रवीति	उवाच	वक्ता	वक्ष्यति	ब्रवीतु
	आ०-ब्रूते	ऊचे	वक्ता	वक्ष्यति	ब्रूताम्
भक्ष् (१० उ०, खाना)	प०-भक्षयति	भक्षयांचकार	भक्षयिता	भक्षयिष्यति	भक्षयतु
	आ०-भक्षयते	भक्षयांचक्रे	भक्षयिता	भक्षयिष्यते	भक्षयताम्
भज् (१ उ०, सेवा करना)	भजति-ते	बभाज	भक्ता	भक्ष्यति	भजतु
भञ्ज् (७ प०, तोड़ना)	भनक्ति	बभञ्ज	भक्ता	भक्ष्यति	भनक्तु
भण (१ प०, कहना)	भणति	बभाण	भणिता	भणिष्यति	भणतु
भर्त्स (१० आ०, डाँटना)	भर्त्सयते	भर्त्सयांचक्रे	भर्त्सयिता	भर्त्सयिष्यते	भर्त्सयताम्
भा (२ प० चमकना)	भाति	बभौ	भाता	भास्यति	भातु
भाष् (१ आ० कहना)	भाषते	बभाषे	भाषिता	भाषिष्यते	भाषताम्
भास् (१ आ०, चमकना)	भासते	बभासे	भासिता	भासिष्यते	भासताम्

भिक्ष (१ आ०, माँगना)	भिक्षते	बिभिक्षे	भिक्षिता	भिक्षिष्यते	भिक्षताम्
भिद् (७ उ०, तोड़ना)	भिनत्ति	बिभेद	भेत्ता	भेत्स्यति	भिनत्तु
भिदि (१ प०, टुकड़े करना)	भिन्दति	बिभिन्द	भिन्दिता	भिन्दिष्यति	भिन्दतु
भी (३ प०, डरना)	बिभेति	बिभाय	भेता	भेष्यति	बिभेतु
भुज (७ प०, पालना)	भुनक्ति	बुभोज	भोक्ता	भोक्ष्यति	भुनक्तु
(७ आ, खाना)	भुङ्क्ते	बुभुजे	भोक्ता	भोक्ष्यते	भुङ्क्ताम्
भू (१ प० होना)	भवति	बभूव	भविता	भविष्यति	भवतु
भूष (१ प०, सजाना)	भूषति	बुभूष	भूषिता	भूषिष्यति	भूषतु
भृ (१ उ०, पालना)	भरति-ते	बभार	भर्ता	भरिष्यति	भरतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अप्रीणयत्	प्रीणयेत्	प्रीण्यात्	अपीप्रिणत्	अप्रीणयिष्यत्	प्रीणयति	प्रीण्यते
अप्लवत	प्लवेत	प्लोषीष्ट	अप्लोष्ट	अप्लोष्यत	प्लावयति	प्लूयते
अप्लोषत्	प्लोषेत्	प्लुष्यात्	अप्लोषीत्	अप्लोषिष्यत्	प्लोषयति	प्लुष्यते
अफलत्	फलेत्	फल्यात्	अफालीत्	अफलिष्यत्	फालयति	फल्यते
अबीभत्सत	बीभत्सेत	बीभत्सिषीष्ट	अबीभत्सिष्ट	अबीभत्सिष्यत	बीभत्सयति	बीभत्स्यते
अबाधयत्	बाधयेत्	बाध्यात्	अबीबधत्	अबाधयिष्यत्	बाधयति	बाध्यते
अबध्नात्	बध्नीयात्	बध्यात्	अभान्त्सीत्	अभन्त्स्यत्	बन्धयति	बध्यते
अबाधत	बाधेत	बाधिषीष्ट	अबाधिष्ट	अबाधिष्यत	बाधयति	बाध्यते
अबोधत्	बोधेत्	बुध्यात्	अबुधत्	अबोधिष्यत्	बोधयति	बुध्यते
अबुध्यत	बुध्येत	भुत्सीष्ट	अबोधि	अभोत्स्यत	बोधयति	बुध्यते
अब्रवीत्	ब्रूयात्	उच्यात्	अवोचत्	अवक्ष्यत्	वाचयति	उच्यते
अब्रूत	ब्रुवीत	वक्षीष्ट	अवोचत	अवक्ष्यत	वाचयति	उच्यते
अभक्षयत्	भक्षयेत्	भक्ष्यात्	अभक्षत्	अभक्षयिष्यत्	भक्षयति	भक्ष्यते
अभक्षयत	भक्षयेत	भक्षयिषीष्ट	अबभक्षत	अभक्षिष्यत	भक्षयति	भक्ष्यते
अभजत्	भजेत्	भज्यात्	अभाक्षीत्	अभक्ष्यत्	भाजयति	भज्यते
अभनक्	भञ्ज्यात्	भज्यात्	अभाङ्क्षीत्	अभंक्ष्यत्	भञ्जयति	भज्यते
अभणत्	भणेत्	भण्यात्	अभाणीत्	अभणिष्यत्	भाणयति	भण्यते
अभर्त्सयत	भर्त्सयेत	भर्त्सयिषीष्ट	अबभर्त्सत	अभर्त्सयिष्यत	भर्त्सयति	भर्त्स्यते
अभात्	भायात्	भायात्	अभासीत्	अभास्यत्	भापयति	भायते
अभाषत	भाषेत	भाषिषीष्ट	अभाषिष्ट	अभाषिष्यत	भाषयति	भाष्यते
अभासत	भासेत	भासिषीष्ट	अभासिष्ट	अभासिष्यत	भासयति	भास्यते
अभिक्षत	भिक्षेत	भिक्षिषीष्ट	अभिक्षिष्ट	अभिक्षिष्यत	भिक्षयते	भिक्ष्यते
अभिनत्	भिन्द्यात्	भिद्यात्	अभिदत्	अभेत्स्यत्	भेदयति	भिद्यते
अभिन्दत्	भिन्देत्	भिन्द्यात्	अभिन्दीत्	अभिन्दिष्यत्	भिन्दयति	भिन्द्यते

अबिभेत्	बिभीयात्	भीयात्	अभैषीत्	अभेष्यत्	भापयति	भीयते
अभुनक्	भुञ्ज्यात्	भुज्यात्	अभौक्षीत्	अभोक्ष्यत्	भोजयति	भुज्यते
अभुङ्क्त	भुञ्जीत	भुक्षीष्ट	अभुक्त	अभोक्ष्यत	भोजयति	भुज्यते
अभवत्	भवेत्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
अभूषत्	भूषेत्	भूष्यात्	अभूषीत्	अभूषिष्यत्	भूषयति	भूष्यते
अभरत्	भरेत्	भ्रियात्	अभार्षीत्	अभरिष्यत्	भारयति	भ्रियते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
भृ	(३ उ०, पालना)	बिभर्ति	बभार	भर्ता	भरिष्यति	बिभर्तु
भ्रम्	(१ प०, घूमना)	भ्रमति	बभ्राम	भ्रमिता	भ्रमिष्यति	भ्राम्यतु
भ्रम्	(४ प०, घूमना)	भ्राम्यति	बभ्राम	भ्रमिता	भ्रमिष्यति	भ्राम्यतु
भ्रंश्	(१ आ०, गिरना)	भ्रंशते	बभ्रंशे	भ्रंशिता	भ्रंशिष्यते	भ्रंशताम्
भ्रस्ज्	(६ उ०, भूनना)	भृज्जति-ते	बभ्रज्ज	भ्रष्टा	भ्रक्ष्यति	भृज्जतु
भ्राज्	(१ आ०, चमकना)	भ्राजते	बभ्राजे	भ्राजिता	भ्राजिष्यते	भ्राजताम्
मण्ड्	(१० उ०, सजाना)	मण्डयति-ते	मण्डयांचकार	मण्डयिता	मण्डयिष्यति	मण्डयतु
मथ्	(१ प०, मथना)	मथति	ममाथ	मथिता	मथिष्यति	मथतु
मद्	(४ प०, प्रसन्न होना)	माद्यति	ममाद	मदिता	मदिष्यति	माद्यतु
मन्	(४ आ०, मानना)	मन्यते	मेने	मन्ता	मंस्यते	मन्यताम्
मन्	(८ आ०, मानना)	मनुते	मेने	मनिता	मनिष्यते	मनुताम्
मन्त्र्	(१० आ०, मंत्रणा०)	मन्त्रयते	मन्त्रयांचक्रे	मन्त्रयिता	मन्त्रयिष्यते	मन्त्रयताम्
मन्थ्	(९ प०, मथना)	मथ्नाति	ममन्थ	मन्थिता	मन्थिष्यति	मथ्नातु
मस्ज्	(६ प०, डूबना)	मज्जति	ममज्ज	मङ्क्ता	मङ्क्ष्यति	मज्जतु
मह्	(१ प०, पूजा करना)	महति	ममाह	महिता	महिष्यति	महतु
मा	(२ प०, नापना)	माति	ममौ	माता	मास्यति	मातु
मा	(३ आ०, नापना)	मिमीते	ममे	माता	मास्यते	मिमीताम्
मान्	(१ आ०, जिज्ञासा०)	मीमांसते	मीमांसांचक्रे	मीमांसिता	मीमांसिष्यते	मीमांसताम्
मान्	(१० उ०, आदर०)	मानयति-ते	मानयांचकार	मानयिता	मानयिष्यति	मानयतु
मार्ग्	(१० उ०, ढूढ़ना)	मार्गयति-ते	मार्गयांचकार	मार्गयिता	मार्गयिष्यति	मार्गयतु
मार्ज्	(१० उ०, साफ़ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मिल्	(६ उ०, मिलना)	मिलति-ते	मिमेल	मेलिता	मेलिष्यति	मिलतु
मिश्र्	(१० उ०, मिलाना)	मिश्रयति-ते	मिश्रयांचकार	मिश्रयिता	मिश्रयिष्यति	मिश्रयतु
मिह्	(१ प०, गीला करना)	मेहति	मिमेह	मेढा	मेक्ष्यति	मेहतु
मील्	(१ प०, आँख मीचना)	मीलति	मिमील	मीलिता	मीलिष्यति	मीलतु
मुच्	(६ उ०, छोड़ना)	प०—मुञ्चति	मुमोच	मोक्ता	मोक्ष्यति	मुञ्चतु
		आ०—मुञ्चते	मुमुचे	मोक्ता	मोक्ष्यते	मुञ्चताम्

मुच् (१० उ०, मुक्त करना)	मोचयति-ते	मोचयांचकार	मोचयिता	मोचयिष्यति	मोचयतु
मुद् (१ आ०, प्रसन्न होना)	मोदते	मुमुदे	मोदिता	मोदिष्यते	मोदताम्
मुर्छ् (१ प०, मूर्छित होना)	मूर्च्छति	मुमूर्च्छ	मूर्च्छिता	मूर्च्छिष्यति	मूर्च्छतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अबिभः	बिभृयात्	भ्रियात्	अभार्षीत्	अभरिष्यत्	भारयति	भ्रियते
अभ्रमत्	भ्रमेत्	भ्रम्यात्	अभ्रमीत्	अभ्रमिष्यत्	भ्रमयति	भ्रम्यते
अभ्राम्यत्	भ्राम्येत्	भ्रम्यात्	अभ्रमत्	अभ्रमिष्यत्	भ्रमयति	भ्रम्यते
अभ्रंशत	भ्रंशेत	भ्रंशिषीष्ट	अभ्रंशिष्ट	अभ्रंशिष्यत	भ्रंशयति	भ्रंश्यते
अभृज्जत्	भृज्जेत्	भृज्ज्यात्	अभ्राक्षीत्	अभ्रक्ष्यत्	भ्रज्जयति	भृज्ज्यते
अभ्राजत	भ्राजेत	भ्राजिषीष्ट	अभ्राजिष्ट	अभ्राजिष्यत	भ्राजयति	भ्राज्यते
अमण्डयत्	मण्डयेत्	मण्ड्यात्	अममण्डत्	अमण्डयिष्यत्	मण्डयति	मण्ड्यते
अमथत्	मथेत्	मथ्यात्	अमथीत्	अमथिष्यत्	माथयति	मथ्यते
अमाद्यत्	माद्येत्	मद्यात्	अमदात्	अमदिष्यत्	मादयति	मद्यते
अमन्यत	मन्येत	मंसीष्ट	अमंस्त	अमंस्यत	मानयति	मन्यते
अमनुत	मन्वीत	मनिषीष्ट	अमत	अमनिष्यत	मानयति	मन्यते
अमन्त्रयत	मन्त्रयेत	मन्त्रयिषीष्ट	अममन्त्रत	अमन्त्रयिष्यत	मन्त्रयति	मन्त्र्यते
अमथ्नात्	मथ्नीयात्	मथ्यात्	अमन्थीत्	अमन्थिष्यत्	मन्थयति	मथ्यते
अमज्जत्	मज्जेत्	मज्ज्यात्	अमाङ्क्षीत्	अमङ्क्ष्यत्	मज्जयति	मज्ज्यते
अमहत्	महेत्	मह्यात्	अमहीत्	अमहिष्यत्	माहयति	मह्यते
अमात्	मायात्	मेयात्	अमासीत्	अमास्यत्	मापयति	मीयते
अमिमीत	मिमीत	मासीष्ट	अमास्त	अमास्यत	मापयति	मीयते
अमीमांसत	मीमांसेत	मीमांसिषीष्ट	अमीमांसिष्ट	अमीमांसिष्यत	मीमांसयति	मीमांस्यते
अमानयत्	मानयेत्	मान्यात्	अमीमनत्	अमानयिष्यत्	मानयति	मान्यते
अमार्गयत्	मार्गयेत्	मार्ग्यात्	अममार्गत्	अमार्गयिष्यत्	मार्गयति	मार्ग्यते
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमिलत्	मिलेत्	मिल्यात्	अमेलीत्	अमेलिष्यत्	मेलयति	मिल्यते
अमिश्रयत्	मिश्रयेत्	मिश्र्यात्	अमिमिश्रत्	अमिश्रयिष्यत्	मिश्रयति	मिश्र्यते
अमेहत्	मेहेत्	मिह्यात्	अमिक्षत्	अमेक्ष्यत्	मेहयति	मिह्यते
अमीलत्	मीलेत्	मील्यात्	अमीलीत्	अमीलिष्यत्	मीलयति	मील्यते
अमुञ्चत्	मुञ्चेत्	मुच्यात्	अमुचत्	अमोक्ष्यत्	मोचयति	मुच्यते
अमुञ्चत	मुञ्चेत	मुक्षीष्ट	अमुक्त	अमोक्ष्यत	मोचयति	मुच्यते
अमोचयत्	मोचयेत्	मोच्यात्	अमूमुचत्	अमोचयिष्यत्	मोचयति	मोच्यते
अमोदत	मोदेत	मोदिषीष्ट	अमोदिष्ट	अमोदिष्यत	मोदयति	मुद्यते
अमूर्च्छत्	मूर्च्छेत्	मूर्च्छ्यात्	अमूर्च्छीत्	अमूर्च्छिष्यत्	मूर्च्छयति	मूर्च्छ्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
मुष् (९ प०, चुराना)	मुष्णाति	मुमोष	मोषिता	मोषिष्यति	मुष्णातु
मुह् (४ प०, मोह में पड़ना)	मुह्यति	मुमोह	मोहिता	मोहिष्यति	मुह्यतु
मृ (६ आ०, मरना)	म्रियते	ममार	मर्ता	मरिष्यति	म्रियताम्
मृग् (१० आ०, ढूढ़ना)	मृगयते	मृगयाञ्चक्रे	मृगयिता	मृगयिष्यते	मृगयताम्
मृज् (२ प०, साफ करना)	मार्ष्टि	ममार्ज	मर्जिता	मर्जिष्यति	मार्ष्टु
मृज् (१०उ०,साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मृष् (१०उ०,क्षमा करना)	मर्षयति-ते	मर्षयांचकार	मर्षयिता	मर्षयिष्यति	मर्षयतु
म्ना (१ प०, मानना)	आ + मनति	मम्नौ	म्नाता	म्नास्यति	मनतु
म्लै (१ प०, मुरझाना)	म्लायति	मम्लौ	म्लाता	म्लास्यति	म्लायतु
यज् (१ उ०, यज्ञ करना)	यजति-ते	इयाज	यष्टा	यक्ष्यति	यजतु
यत् (१ उ०, यत्न करना)	यतते	येते	यतिता	यतिष्यते	यतताम्
यन्त्र् (१०उ०, नियमित०)	यन्त्रयति	यन्त्रयांचकार	यन्त्रयिता	यन्त्रयिष्यति	यन्त्रयतु
यभ् (१ प०, संभोग करना)	यभति	ययाभ	यब्धा	यप्स्यति	यभतु
यम् (१ प०, रोकना)	नि + यच्छति	ययाम	यन्ता	यंस्यति	यच्छतु
यस् (४प०,यत्न करना)	प्र + यस्यति	ययास	यसिता	यसिष्यति	यस्यतु
या (२ प०, जाना)	याति	ययौ	याता	यास्यति	यातु
याच् (१ उ०, माँगना)	प०—याचति	ययाच	याचिता	याचिष्यति	याचतु
	आ०—याचते	ययाचे	याचिता	याचिष्यते	याचताम्
युज् (४ आ०, ध्यान लगाना)	युज्यते	युयुजे	योक्ता	योक्ष्यते	युज्यताम्
युज् (७ उ०, मिलाना)	युनक्ति	युयोज	योक्ता	योक्ष्यति	युनक्तु
युज् (१० उ०, लगाना)	योजयति-ते	योजयांचकार	योजयिता	योजयिष्यति	योजयतु
युध् (४ आ०, लड़ना)	युध्यते	युयुधे	योद्धा	योत्स्यते	युध्यताम्
रक्ष् (१ प०, पालन०)	रक्षति	ररक्ष	रक्षिता	रक्षिष्यति	रक्षतु
रच् (१० उ०, बनाना)	रचयति-ते	रचयांचकार	रचयिता	रचयिष्यति	रचयतु
रञ्ज् (४ उ०, प्रसन्न होना)	रज्यति-ते	ररञ्ज	रङ्क्ता	रङ्क्ष्यति	रज्यतु
रट् (१ प०, रटना)	रटति	रराट	रटिता	रटिष्यति	रटतु
रम् (१ आ०, रमना)	रमते	रेमे	रन्ता	रंस्यते	रमताम्
रस् (१० उ०, स्वादलेना)	रसयति-ते	रसयाञ्चकार	रसयिता	रसयिष्यति	रसयतु
राज् (१ उ०, चमकना)	प०—राजति	रराज	राजिता	राजिष्यति	राजतु
	आ०—राजते	रेजे	राजिता	राजिष्यते	राजताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अमुष्णात्	मुष्णीयात्	मुष्यात्	अमोषीत्	अमोषिष्यत्	मोषयति	मुष्यते
अमुह्यत्	मुह्येत्	मुह्यात्	अमुहत्	अमोहिष्यत्	मोहयति	मुह्यते

अम्रियत	म्रियेत	मृषीष्ट	अमृत	अमरिष्यत्	मारयति	म्रियते
अमृगयत	मृगयेत	मृगयिषीष्ट	अममृगत	अमृगयिष्यत	मृगयति	मृग्यते
अमार्ट्	मृज्यात्	मृज्यात्	अमार्जीत्	अमार्जिष्यत्	मार्जयति	मृज्यते
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमर्षयत्	मर्षयेत्	मर्ष्यात्	अममर्षत्	अमर्षयिष्यत्	मर्षयति	मर्ष्यते
अमनत्	मनेत्	म्नायात्	अम्नासीत्	अम्नास्यत्	म्नापयति	म्नायते
अम्लायत्	म्लायेत्	म्लायात्	अम्लासीत्	अम्लास्यत्	म्लापयति	म्लायते
अयजत्	यजेत्	इज्यात्	अयाक्षीत्	अयक्ष्यत्	याजयति	इज्यते
अयतत	यतेत	यतिषीष्ट	अयतिष्ट	अयतिष्यत	यातयति	यत्यते
अयन्त्रयत्	यन्त्रयेत्	यन्त्र्यात्	अययन्त्रत्	अयन्त्रयिष्यत्	यन्त्रयति	यन्त्र्यते
अयमत्	यमेत्	यम्यात्	अयाम्सीत्	अयम्स्यत्	यामयति	यम्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	यम्यात्	अयंसीत्	अयंस्यत्	नि + यमयति	नि + यम्यते
अयस्यत्	यस्येत्	यस्यात्	अयसत्	अयसिष्यत्	आयासयते	यस्यते
अयात्	यायात्	यायात्	अयासीत्	अयास्यत्	यापयति	यायते
अयाचत्	याचेत्	याच्यात्	अयाचीत्	अयाचिष्यत्	याचयति	याच्यते
अयाचत	याचेत	याचिषीष्ट	अयाचिष्ट	अयाचिष्यत	,,	,,
अयुज्यत	युज्येत	युक्षीष्ट	अयुक्त	अयोक्ष्यत	योजयति	युज्यते
अयुनक्	युज्यात्	युज्यात्	अयुजत्	अयोक्ष्यत्	,,	,,
अयोजयत्	योजयेत्	योज्यात्	अयूयुजत्	अयोजयिष्यत्	,,	,,
अयुध्यत	युध्येत	युत्सीष्ट	अयुद्ध	अयोत्स्यत	योधयति	युध्यते
अरक्षत्	रक्षेत्	रक्ष्यात्	अरक्षीत्	अरक्षिष्यत्	रक्षयति	रक्ष्यते
अरचयत्	रचयेत्	रच्यात्	अररचत्	अरचयिष्यत्	रचयति	रच्यते
अरज्यत्	रज्येत्	रज्यात्	अराङ्क्षीत्	अरङ्क्ष्यत्	रञ्जयति	रज्यते
अरटत्	रटेत्	रट्यात्	अरटीत्	अरटिष्यत्	राटयति	रट्यते
अरमत	रमेत	रंसीष्ट	अरंस्त	अरंस्यत	रमयति	रम्यते
अरसयत्	रसयेत्	रस्यात्	अररसत्	अरसयिष्यत्	रसयति	रस्यते
अराजत्	राजेत्	राज्यात्	अराजीत्	अराजिष्यत्	राजयति	राज्यते
अराजत	राजेत	राजिषीष्ट	अराजिष्ट	अराजिष्यत	,,	,,

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
राध्	(५प०, पूरा करना)	आ + राध्नोति	रराध	राद्धा	रात्स्यति	राध्नोतु
रु	(२ प०, शब्द करना)	रौति	रुराव	रविता	रविष्यति	रौतु
रुच्	(१आ०, अच्छा लगना)	रोचते	रुरुचे	रोचिता	रोचिष्यते	रोचताम्
रुद्	(२ प०, रोना)	रोदिति	रुरोद	रोदिता	रोदिष्यति	रोदितु
रुध्	(७ उ०, रोकना)	प०—रुणद्धि	रुरोध	रोद्धा	रोत्स्यति	रुणद्धु

विद् (४ आ०, होना)	विद्यते	विविदे	वेत्ता	वेत्स्यते	विद्यताम्
विद् (६ उ०, पाना)	विन्दति-ते	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	विन्दतु
विद् (१० आ०, कहना)	नि + वेदयते	वेदयाञ्चक्रे	वेदयिता	वेदयिष्यते	वेदयताम
विश् (६ प०, घुसना)	प्र + विशति	विवेश	वेष्टा	वेक्ष्यति	विशतु
विष्ल् (५ उ०, व्याप्त होना)	वेवेष्टि	विवेष	वेष्टा	वेक्ष्यति	वेवेष्टु
वीज् (१० उ०, पंखा हिलाना)	वीजयति-ते	वीजयांचकार	वीजयिता	वीजयिष्यति	वीजयतु
वृ (५ उ०, चुनना)	वृणोति	ववार	वरिता	वरिष्यति	वृणातु
वृ (९ आ०, छाँटना)	वृणीते	वव्रे	वरिता	वरिष्यते	वृणीताम्
वृ (१० उ०, हटाना, रुकना)	वारयति-ते	वारयांचकार	वारयिता	वारयिष्यति	वारयतु
वृज् (१० उ०, छोड़ना)	वर्जयति-ते	वर्जयांचकार	वर्जयिता	वर्जयिष्यति	वर्जयतु
वृत् (१ आ०, होना)	वर्तते	ववृते	वर्तिता	वर्तिष्यते	वर्तताम्
वृध् (१ आ०, बढ़ना)	वर्धते	ववृधे	वर्धिता	वर्धिष्यते	वर्धताम्
वृष् (१ प०, बरसना)	वर्षति	ववर्ष	वर्षिता	वर्षिष्यति	वर्षतु
वे (१ उ०, बुनना)	वयति-ते	ववौ	वाता	वास्यति	वयतु
वेप् (१ आ०, काँपना)	वेपते	विवेपे	वेपिता	वेपिष्यते	वेपताम्
वेष्ट् (१ आ०, घेरना)	वेष्टते	विवेष्टे	वेष्टिता	वेष्टिष्यते	वेष्टताम्
व्य् (१ आ०, दुखित होना)	व्यथते	विव्यथे	व्यथिता	व्यथिष्यते	व्यथताम्
व्यध् (४ प०, बींधना)	विध्यति	विव्याध	व्यद्धा	व्यत्स्यति	विध्यतु
व्रज् (१ प०, जाना)	परि + व्रजति	वव्राज	व्रजिता	व्रजिष्यति	व्रजतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अवाचयत्	वाचयेत्	वच्यात्	अवावचत्	अवाचयिष्यत्	वाचयति	वाच्यते
अवञ्चयत	वञ्चयेत	वञ्चयिषीष्ट	अववञ्चत	अवञ्चयिष्यत	वञ्चयति	वञ्च्यते
अवदत्	वदेत्	उद्यात्	अवादीत्	अवदिष्यत्	वादयति	उद्यते
अवन्दत	वन्देत	वन्दिषीष्ट	अवन्दिष्ट	अवन्दिष्यत	वन्दयति	वन्द्यते
अवपत्	वपेत्	उप्यात्	अवाप्सीत्	अवप्स्यत्	वापयति	उप्यते
अवमत्	वमेत्	वम्यात्	अवमीत्	अवमिष्यत्	वमयति	वम्यते
अवसत्	वसेत्	उष्यात्	अवात्सीत्	अवात्स्यत्	वासयति	उष्यते
अवहत्	वहेत्	उह्यात्	अवाक्षीत्	अवक्ष्यत्	वाहयति	उह्यते
अवात्	वायात्	वायात्	अवासीत्	अवास्यत्	वापयति	वायते
अवाञ्छत्	वाञ्छेत्	वाञ्छयात्	अवाञ्छीत्	अवाञ्छिष्यत्	वाञ्छयति	वाञ्छयते
अवेत्	विद्यात्	विद्यात्	अवेदीत्	अवेदिष्यत्	वेदयति	विद्यते
अविद्यत	विद्येत	वित्सीष्ट	अवित्त	अवेत्स्यत	,,	,,
अविन्दत्	विन्देत्	विद्यात्	अविदत्	अवेदिष्यत	,,	,,
अवेदयत	वेदयेत	वेदयिषीष्ट	अवीविदत	अवेदयिष्यत	,,	,,

अविशत्	विशेत्	विश्यात्	अविक्षत्	अवेक्ष्यत्	वेशयति	विश्यते
अवेवेट्	वेविष्यात्	विष्यात्	अविषत्	अवेक्ष्यत्	वेषयति	विष्यते
अवीजयत्	वीजयेत्	वीज्यात्	अवीविजत्	अवीजयिष्यत्	वीजयति	वीज्यते
अवृणोत्	वृणुयात्	व्रियात्	अवारीत्	अवरिष्यत्	वारयति	व्रियते
अवृणीत	वृणीत	वृषीष्ट	अवरिष्ट	अवरिष्यत	,,	,,
अवारयत्	वारयेत्	वार्यात्	अवीवरत्	अवारयिष्यत्	,,	,,
अवर्जयत्	वर्जयेत्	वर्ज्यात्	अवीवृजत्	अवर्जयिष्यत्	वर्जयति	वर्ज्यते
अवर्तत	वर्तेत	वर्तिषीष्ट	अवर्तिष्ट	अवर्तिष्यत	वर्तयति	वृत्यते
अवर्धत	वर्धेत	वर्धिषीष्ट	अवर्धिष्ट	अवर्धिष्यत	वर्धयति	वृध्यते
अवर्षत्	वर्षेत्	वृष्यात्	अवर्षीत्	अवर्षिष्यत्	वर्षयति	वृष्यते
अवयत्	वयेत्	ऊयात्	अवासीत्	अवास्यत्	वाययति	ऊयते
अवेपत	वेपेत	वेपिषीष्ट	अवेपिष्ट	अवेपिष्यत	वेपयति	वेप्यते
अवेष्टत	वेष्टेत	वेष्टिषीष्ट	अवेष्टिष्ट	अवेष्टिष्यत	वेष्टयति	वेष्ट्यते
अव्यथत	व्यथेत	व्यथिषीष्ट	अव्यथिष्ट	अव्यथिष्यत	व्यथयति	व्यथ्यते
अविध्यत्	विध्येत्	विध्यात्	अव्यात्सीत्	अव्यत्स्यत्	व्याधयति	विध्यते
अव्रजत्	व्रजेत्	व्रज्यात्	अव्राजीत्	अव्रजिष्यत्	व्राजयति	व्रज्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
शक्	(५ प०, सकना)	शक्नोति	शशाक	शक्ता	शक्ष्यति	शक्नोतु
शङ्क्	(१ आ०, शङ्का करना)	शङ्कते	शशङ्के	शङ्किता	शङ्किष्यते	शङ्कताम्
शप्	(१ उ०, शाप देना)	शपति-ते	शशाप	शप्ता	शप्स्यति	शपतु
शम्	(४ प०, शान्त होना)	शाम्यति	शशाम	शमिता	शमिष्यति	शाम्यतु
शंस्	(१ प०, प्रशंसा करना)	प्र + शंसति	शशंस	शंसिता	शंसिष्यति	शंसतु
शास्	(२ प०, शिक्षा देना)	शास्ति	शशास	शासिता	शासिष्यति	शास्तु
शिक्ष्	(१ आ०, सीखना)	शिक्षते	शिशिक्षे	शिक्षिता	शिक्षिष्यते	शिक्षताम्
शी	(२ आ०, सोना)	शेते	शिश्ये	शयिता	शयिष्यते	शेताम्
शुच्	(१ प०, शोक करना)	शोचति	शुशोच	शोचिता	शोचिष्यति	शोचतु
शुध्	(४ प०, शुद्ध होना)	शुध्यति	शुशोध	शोद्धा	शोत्स्यति	शुध्यतु
शुभ्	(१ आ०, चमकना)	शोभते	शुशुभे	शोभिता	शोभिष्यते	शोभताम्
शुष्	(४ प०, सूखना)	शुष्यति	शुशोष	शोष्टा	शोक्ष्यति	शुष्यतु
शॄ	(९ प० नष्ट करना)	शृणाति	शशार	शरिता	शरिष्यति	शृणातु
शो	(४ प०, छीलना)	श्यति	शशौ	शाता	शास्यति	श्यतु
श्रम्	(४ प०, श्रम करना)	श्राम्यति	शश्राम	श्रमिता	श्रमिष्यति	श्राम्यतु
श्रि	(१ उ०, आश्रय लेना)	आश्रयति-ते	शिश्राय	श्रयिता	श्रयिष्यति	श्रयतु

श्रु (१ प०, सुनना)	शृणोति	शुश्राव	श्रोता	श्रोष्यति	शृणोतु
श्लाघ् (१ आ०, प्रशंसा करना)	श्लाघते	शश्लाघे	श्लाघिता	श्लाघिष्यते	श्लाघताम्
श्लिष् (४ प०, आलिंगन०)	श्लिष्यति	शिश्लेष	श्लेष्टा	श्लेक्ष्यति	श्लिष्यतु
श्वस् (२ प०, साँस लेना)	श्वसिति	शश्वास	श्वसिता	श्वसिष्यति	श्वसितु
ष्ठीव् (१ प०, थूकना)	नि + ष्ठीवति	तिष्ठेव	ष्ठेविता	ष्ठेविष्यति	ष्ठीवतु
सञ्ज् (१ प०, मिलना)	सजति	ससञ्ज	सङ्क्ता	सङ्क्ष्यति	सजतु
सद् (१ प०, बैठना)	नि + सीदति	ससाद	सत्ता	सत्स्यति	सीदतु
सह् (१ आ०, सहना)	सहते	सेहे	सहिता	सहिष्यते	सहताम्
सि (५ उ०, बाँधना)	सिनोति	सिषाय	सेता	सेष्यति	सिनोतु
सिच् (६ उ०, सींचना)	सिंचति-ते	सिषेच	सेक्ता	सेक्ष्यति	सिंचतु
सिध् (४ प०, पूरा होना)	सिध्यति	सिषेध	सेद्धा	सेत्स्यति	सिध्यतु
सिव् (४ प०, सीना)	सीव्यति	सिषेव	सेविता	सेविष्यति	सीव्यतु
सु (५ उ०, निचोड़ना)	सुनोति	सुषाव	सोता	सोष्यति	सुनोतु
सू (२ आ०, जन्म देना)	सूते	सुषुवे	सविता	सविष्यते	सूताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अशक्नोत्	शक्नुयात्	शक्यात्	अशकत्	अशक्ष्यत्	शाकयति	शक्यते
अशंकत	शंकेत	शंकिषीष्ट	अशंकिष्ट	अशंकिष्यत	शंकयति	शंक्यते
अशपत्	शपेत्	शप्यात्	अशाप्सीत्	अशप्स्यत्	शापयति	शप्यते
अशाम्यत्	शाम्येत्	शम्यात्	अशमत्	अशमिष्यत्	शमयति	शम्यते
अशंसत्	शंसेत्	शंस्यात्	अशंसीत्	अशंसिष्यत्	शंसयति	शस्यते
अशात्	शिष्यात्	शिष्यात्	अशिषत्	अशासिष्यत्	शासयति	शिष्यते
अशिक्षत	शिक्षेत	शिक्षिषीष्ट	अशिक्षिष्ट	अशिक्षिष्यत	शिक्षयति	शिक्ष्यते
अशेत	शयीत	शयिषीष्ट	अशयिष्ट	अशयिष्यत	शाययति	शय्यते
अशोचत्	शोचेत्	शुच्यात्	अशोचीत्	अशोचिष्यत्	शोचयति	शुच्यते
अशुध्यत्	शुध्येत्	शुध्यात्	अशुधत्	अशोत्स्यत्	शोधयति	शुध्यते
अशोभत	शोभेत	शोभिषीष्ट	अशोभिष्ट	अशोभिष्यत	शोभयति	शुभ्यते
अशुष्यत्	शुष्येत्	शुष्यात्	अशुषत्	अशोक्ष्यत्	शोषयति	शुष्यते
अशृणात्	शृणीयात्	शीर्यात्	अशारीत्	अशरिष्यत्	शारयति	शीर्यते
अश्यत्	श्येत्	शायात्	अशासीत्	अशास्यत्	शाययति	शायते
अश्राम्यत्	श्राम्येत्	श्रम्यात्	अश्रमत्	अश्रमिष्यत्	श्रमयति	श्रम्यते
अश्रयत्	श्रयेत्	श्रीयात्	अशिश्रियत्	अश्रयिष्यत्	श्राययति	श्रीयते
अशृणोत्	शृणुयात्	श्रूयात्	अश्रौषीत्	अश्रोष्यत्	श्रावयति	श्रूयते
अश्लाघत	श्लाघेत	श्लाघिषीष्ट	अश्लाघिष्ट	अश्लाघिष्यत	श्लाघयति	श्लाघ्यते
अश्लिष्यत्	श्लिष्येत्	श्लिष्यात्	अश्लिक्षत्	अश्लेक्ष्यत्	श्लेषयति	श्लिष्यते

अश्वसीत्	श्वस्यात्	श्वस्यात्	अश्वसीत्	अश्वसिष्यत्	श्वासयति	श्वस्यते
अष्ठीवत्	ष्ठीवेत्	ष्ठीव्यात्	अष्ठेवीत्	अष्ठेविष्यत्	ष्ठेवयति	ष्ठीव्यते
असजत्	सजेत्	सज्यात्	असाङ्क्षीत्	असङ्क्ष्यत्	सञ्जयति	सज्यते
असीदत्	सीदेत्	सद्यात्	असदत्	असत्स्यत्	सादयति	सद्यते
असहत	सहेत	सहिषीष्ट	असहिष्ट	असहिष्यत	साहयति	सह्यते
असिनोत्	सिनुयात्	सीयात्	असैषीत्	असेष्यत्	साययति	सीयते
असिञ्चत्	सिञ्चेत्	सिच्यात्	असिचत्	असेक्ष्यत्	सेचयति	सिच्यते
असिध्यत्	सिध्येत्	सिध्यात्	असिधत्	असेत्स्यत्	साधयति	सिध्यते
असीव्यत्	सीव्येत्	सीव्यात्	असेवीत्	असेविष्यत्	सेवयति	सीव्यते
असुनोत्	सुनुयात्	सूयात्	असावीत्	असोष्यत्	सावयति	सूयते
असूत	सुवीत	सविषीष्ट	असविष्ट	असविष्यत	सावयति	सूयते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
सूच्	(१० उ०, सूचना देना)	सूचयति	सूचयांचकार	सूचयिता	सूचयिष्यति	सूचयतु
सृ	(१ प०, सरकना)	सरति	ससार	सर्ता	सरिष्यति	सरतु
सृज्	(६ प०, बनाना)	सृजति	ससर्ज	स्रष्टा	स्रक्ष्यति	सृजतु
सेव्	(१ आ०, सेवा-)	सेवते	सिषेवे	सेविता	सेविष्यते	सेवताम्
स्तु	(२ उ०, स्तुति०)	स्तौति	तुष्टाव	स्तोता	स्तोष्यति	स्तौतु
स्था	(१ प०, रुकना)	तिष्ठति	तस्थौ	स्थाता	स्थास्यति	तिष्ठतु
स्ना	(२ प०, नहाना)	स्नाति	सस्नौ	स्नाता	स्नास्यति	स्नातु
स्पर्ध्	(१ आ०, स्पर्धा करना)	स्पर्धते	पस्पर्धे	स्पर्धिता	स्पर्धिष्यते	स्पर्धताम्
स्पृश्	(६ प०, छूना)	स्पृशति	पस्पर्श	स्प्रष्टा	स्प्रक्ष्यति	स्पृशतु
स्पृह्	(१० उ०, चाहना)	स्पृहयति	स्पृहयांचकार	स्पृहयिता	स्पृहयिष्यति	स्पृहयतु
स्मि	(१ आ०, मुस्कराना)	स्मयते	सिष्मिये	स्मेता	स्मेष्यते	स्मयताम्
स्मृ	(१ प०, सोचना)	स्मरति	सस्मार	स्मर्ता	स्मरिष्यति	स्मरतु
स्यन्द्	(१ आ०, बहना)	स्यन्दते	सस्यन्दे	स्यन्दिता	स्यन्दिष्यते	स्यन्दताम्
स्रंस्	(१ आ०, सरकाना)	स्रंसते	सस्रंसे	स्रंसिता	स्रंसिष्यते	स्रंसताम्
स्रु	(१ प०, चूना, निकलना)	स्रवति	सुस्राव	स्रोता	स्रोष्यति	स्रवतु
स्वप्	(२ प०, सोना)	स्वपिति	सुष्वाप	स्वप्ता	स्वप्स्यति	स्वपितु
हन्	(२ प०, मारना)	हन्ति	जघान	हन्ता	हनिष्यति	हन्तु
हस्	(१ प०, हँसना)	हसति	जहास	हसिता	हसिष्यति	हसतु
हा	(३ प०, छोड़ना)	जहाति	जहौ	हाता	हास्यति	जहातु
हिंस्	(७ प०, हिंसा करना)	हिनस्ति	जिहिंस	हिंसिता	हिंसिष्यति	हिनस्तु
हु	(३ प०, यज्ञ करना)	जुहोति	जुहाव	होता	होष्यति	जुहोतु
हृष्	(४ प०, खुश होना)	हृष्यति	जहर्ष	हर्षिता	हर्षिष्यति	हृष्यतु

ह्नु (२ आ०, छिपाना) अप + ह्नुते	जुह्नुवे	ह्नोता	ह्नोष्यते	ह्नुताम्
ह्रस् (१ प०, कम होना) ह्रसति	जह्रास	ह्रसिता	ह्रसिष्यति	ह्रसतु
ह्री (३ प०, लजाना) जिह्रेति	जिह्राय	ह्रेता	ह्रेष्यति	जिह्रेतु
ह्वे (१ उ०, बुलाना आ +) आह्वयति	आजुहाव	आह्वाता	आह्वास्यति	आह्वयतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
असूचयत्	सूचयेत्	सूच्यात्	असूसुचत्	असूचयिष्यत्	सूचयति	सूच्यते
असरत्	सरेत्	स्रियात्	असार्षीत्	असरिष्यत्	सारयति	स्रियते
असृजत्	सृजेत्	सृज्यात्	अस्राक्षीत्	अस्रक्ष्यत्	सर्जयति	सृज्यते
असेवत	सेवेत	सेविषीष्ट	असेविष्ट	असेविष्यत	सेवयति	सेव्यते
अस्तौत्	स्तुयात्	स्तूयात्	अस्तावीत्	अस्तोष्यत्	स्तावयति	स्तूयते
अतिष्ठत्	तिष्ठेत्	स्थेयात्	अस्थात्	अस्थास्यत्	स्थापयति	स्थीयते
अस्नात्	स्नायात्	स्नायात्	अस्नासीत्	अस्नास्यत्	स्नपयति	स्नायते
अस्पर्धत	स्पर्धेत	स्पर्धिषीष्ट	अस्पर्धिष्ट	अस्पर्धिष्यत	स्पर्धयति	स्पर्ध्यते
अस्पृशत्	स्पृशेत्	स्पृश्यात्	अस्प्राक्षीत्	अस्प्रक्ष्यत्	स्पर्शयति	स्पृश्यते
अस्पृहयत्	स्पृहयेत्	स्पृह्यात्	अपस्पृहत्	अस्पृहयिष्यत्	स्पृहयति	स्पृह्यते
अस्मयत	स्मयेत	स्मेषीष्ट	अस्मेष्ट	अस्मेष्यत	स्माययति	स्मीयते
अस्मरत्	स्मरेत्	स्मर्यात्	अस्मार्षीत्	अस्मरिष्यत्	स्मारयति	स्मर्यते
अस्यन्दत	स्यन्देत	स्यन्दिषीष्ट	अस्यन्दिष्ट	अस्यन्दिष्यत	स्यन्दयति	स्यन्द्यते
अस्रंसत	स्रंसेत	स्रंसिषीष्ट	अस्रंसिष्ट	अस्रंसिष्यत	स्रंसयति	स्रस्यते
अस्रवत्	स्रवेत्	स्रूयात्	असुस्रुवत्	अस्रोष्यत्	स्रावयति	स्रूयते
अस्वपीत्	स्वप्यात्	सुप्यात्	अस्वाप्सीत्	अस्वप्स्यत्	स्वापयति	सुप्यते
अहन्	हन्यात्	वध्यात्	अवधीत्	अहनिष्यत्	घातयति	हन्यते
अहसत्	हसेत्	हस्यात्	अहसीत्	अहसिष्यत्	हासयति	हस्यते
अजहात्	जह्यात्	हेयात्	अहासीत्	अहास्यत्	हापयति	हीयते
अहिनत्	हिंस्यात्	हिंस्यात्	अहिंसीत्	अहिंसिष्यत्	हिंसयति	हिंस्यते
अजुहोत्	जुहुयात्	हूयात्	अहौषीत्	अहोष्यत्	हावयति	हूयते
अहृष्यत्	हृष्येत्	हृष्यात्	अहृषत्	अहर्षिष्यत्	हर्षयति	हृष्यते
अह्नुत	ह्नुवीत	ह्नोषीष्ट	अह्नोष्ट	अह्नोष्यत	ह्नावयति	ह्नूयते
अह्रसत्	ह्रसेत्	ह्रस्यात्	अह्रासीत्	अह्रसिष्यत्	ह्रासयति	ह्रस्यते
अजिह्रेत्	जिह्रीयात्	ह्रीयात्	अह्रैषीत्	अह्रेष्यत्	ह्रेपयति	ह्रीयते
आह्वयत	आह्वयेत्	आहूयात्	आह्वत	आह्वास्यत्	आह्वाययति	आहूयते

एकादश सोपान

कृदन्त-विचार

धातोः ।३।१।९१।

धातुओं के अन्त में लगाकर जो प्रत्यय संज्ञा, विशेषण और अव्यय के वाचक शब्दों को बनाते हैं वे प्रत्यय कृत् प्रत्यय कहे जाते हैं और उनके योग से बने शब्द कृदन्त कहे जाते हैं। उदाहरणार्थ कृ धातु से तृच् प्रत्यय जोड़कर 'कर्तृ' शब्द बनता है। यहाँ तृच् कृत् प्रत्यय है एवं 'कर्तृ' कृदन्त है।

संज्ञा होने के कारण इनके रूप अन्य संज्ञाओं के तुल्य विभक्तियों में चलते हैं।

कृदतिङ् ।३।१।९३।

धातुओं के साथ ति तः आदि विभक्ति-प्रत्यय लगने पर तिङन्त के रूप निष्पन्न होते हैं और ऐसे विभक्ति-प्रत्यय तिङ् कहे जाते हैं। तिङ् प्रत्यय सदैव क्रिया ही में होते हैं किन्तु कृदन्त संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय होते हैं। यही कृत् और तिङ् प्रत्ययों में अन्तर है।

तद्धित सदा किसी सिद्ध संज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया के बाद लगाकर अन्य संज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया आदि बनाने के लिए होता है। इसके विपरीत 'कृत्' प्रत्यय धातु में ही जोड़ा जाता है।

कर्तृवाच्य में कृदन्त शब्द कर्ता के विशेषण होते हैं तथा कर्मवाच्य में कर्म के विशेषण और भाववाच्य में नपुंसकलिङ्ग में एकवचनान्त प्रयुक्त होते हैं। जो कृदन्त अव्यय होते हैं, वे एक रूप रहते हैं। उदाहरणार्थ क्त्वा लगाकर 'गत्वा' बनने पर यह सदा एक रूप रहेगा।

कभी-कभी कोई कृदन्त भी क्रिया का काम देते हैं। यथा—स गतः (वह गया) में 'गतः' शब्द। यथार्थ रूप में यह विशेषण है। इस वाक्य में क्रिया छिपी हुई है।

कृत् प्रत्ययों के मुख्य तीन भेद हैं—कृत्य, कृत् और उणादि।

(अ) कृत्य प्रत्यय

कृत्याः ।३।१।९५।

कृत्य प्रत्यय सात हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, ण्यत्।

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ।३।४।७०।

उपर्युक्त प्रत्यय सदा भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं, कर्तृवाच्य में नहीं।

संस्कृत भाषा में लाघव लाने में ये कृत्य प्रत्यय काम देते हैं। अंग्रेजी भाषा में जिन विचारों को प्रकट करने के लिए कई शब्दों की आवश्यकता होती है, संस्कृत भाषा में उन्हें कृत्य प्रत्यय द्वारा एक ही शब्द में प्रकट किया जा सकता है।

यथा :—Capable of Bing Killed इन चार शब्दों के स्थान पर संस्कृत में केवल तव्य प्रत्यय से बना हुआ 'हन्तव्य' पर्याप्त है। कृत्य प्रत्यय यह बतलाते हैं कि धातु द्वारा बोधित कार्य अथवा दशा अवश्य की जानी चाहिए। यथा–वक्तव्यम्, वाच्यम्, वचनीयम्–जो कि कहा जाना चाहिए। इस प्रकार कृत्य प्रत्यय से चाहिए[1], उचित, अवश्य, योग्य आदि अर्थों का बोध होता है। यथा—छात्रैः पुस्तकं पठितव्यम्, पठनीयं वा (छात्रों से पुस्तक पढ़ी जानी चाहिए)।

कृत्य-प्रत्ययान्त शब्दों को संज्ञाओं के विशेषण स्वरूप भी प्रयोग में लाते हैं। यथा—

पक्तव्याः माषाः—वे उड़द जो पकाये जाने चाहिए।
कर्तव्य कर्म—वह काम जिसे करना चाहिए।
प्राप्तव्या सम्पत्तिः—वह सम्पत्ति जिसे प्राप्त करना चाहिए।
गन्तव्या नगरी—वह नगरी जहाँ जाना चाहिए।
स्नानीयं चूर्णम्—वह चूर्ण जिससे स्नान किया जाय।
दानीयो विप्रः—दान देने योग्य ब्राह्मण।

१. 'चाहिए' वाला भाव कर्तृवाच्य में प्रायः विधिलिङ् से भी सूचित होता है। यथा—भृत्यः स्वामिनं सेवेत—नौकर मालिक की सेवा करे, नौकर को मालिक की सेवा करनी चाहिए अथवा करनी योग्य है। इस प्रकार की विधिलिङ् की क्रिया को कर्तृवाच्य से भाववाच्य में पलटने के लिए कृत्यान्त शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। यथा—भृत्येन स्वामी सेवनीयः।

तव्यत्तव्यानीयरः। ३।१।९२। केलिमर उपसंख्यानम्। वा०।

तव्यत् (तव्य), तव्य, अनीयर् (अनीय) और केलिमर् (एलिम) ये प्रायः सब धातुओं में लगाये जा सकते हैं। तव्यत् का तव्य और अनीयर् का अनीय शेष रहता है। तव्य और तव्यत् में कोई भेद नहीं है। वेद में तव्यत् वाला शब्द स्वरित होता है, तव्य वाला नहीं। केलिमर् प्रत्यय का एलिम शेष रहता है। यह प्रत्यय केवल कुछ सकर्मक धातुओं में ही जुड़ता है।

इन प्रत्ययों के पूर्व धातु के अन्तिम स्वर का अथवा अन्तिम स्वर के न होने पर उपधा वाले ह्रस्व का गुण हो जाता है और साधारण सन्धि के नियम लगते हैं। सेट् धातुओं में प्रत्यय और धातु के बीच में इ आ जाती है, अनिट् धातुओं में नहीं और वेट् धातुओं में विकल्प से आती है। उदाहरणार्थ :—

धातु	तव्य	अनीय	एलिम
अद्	अत्तव्य	अदनीय	
कथ्	कथितव्य	कथनीय	
गम्	गन्तव्य	गमनीय	
चर्	चरितव्य	चरणीय	

चि	चेतव्य	चयनीय	
चुर्	चोरितव्य	चोरणीय	
छिद्	छेत्तव्य	छेदनीय	छिदेलिम
जिगमिष्	जिगमिषितव्य	जिगमिषणीय	
दा	दातव्य	दानीय	
नी	नेतव्य	नयनीय	
पठ्	पठितव्य	पठनीय	
पच्	पक्तव्य	पचनीय	पचेलिम
बुबोधिष्	बुबोधिषितव्य	बुबोधिषणीय	
भिद्	भेत्तव्य	भेदनीय	भिदेलिम
भुज्	भोक्तव्य	भोजनीय	
शंस्	शंसितव्य	शंसनीय	
सृज्	स्रष्टव्य	सर्जनीय	

अचो यत् । ३।१।९७। पोरदुपधात् । ३।१।९८।

चाहिए अथवा योग्य अर्थ में यत् प्रत्यय केवल ऐसी धातुओं में जोड़ा जाता है जिनके अन्त में आ, इ, ई, उ, ऊ हो अथवा पवर्गान्त हो और उपधा में अकार हो।

यत् प्रत्यय लगाने पर धातु में निम्नलिखित अन्तर होते हैं:—

(१) ईद्यति । ६।४।६५।

आ को ई होकर ए हो जाता है।

(२) इ ई को गुण होकर ए हो जाता है।

(३) उ ऊ को गुण ओ होकर अव् हो जाता है। उदाहरणार्थः—

दा + यत् = द् + ई + य	= द् + ए + य	= देय
धा + यत् = धी + य	= धे + य	= धेय
गै + यत् = गी + य	= गे + य	= गेय
छो + यत् = छी + य	= छे + य	= छेय
चि + यत् = चे + य		= चेय
नी + यत् = ने + य		= नेय
शप् + यत् = शप् + य		= शप्य
जप् + यत् = जप् + य		= जप्य
लप् + यत् = लप् + य		= लप्य
लभ् + यत् = लभ् + य		= लभ्य
आ + लभ् + यत् + य		= आलम्भ्य
उप + लभ् + यत्		= उपलम्भ्य

आङो यि । ७।१।६५। उपात्प्रशंसायाम् । ७।१।६६।

लभ् धातु के पूर्व आ उपसर्ग होने पर अथवा प्रशंसा-वाचक उप उपसर्ग होने पर और आगे यकारादि प्रत्यय होने पर बीच में नुम् (न् = म्) आ जाता है। यथा, उपलम्भ्यः साधुः (साधु प्रशंसनीय होता है)। प्रशंसा का अर्थ न होने पर 'उपलभ्य' ही रूप बनेगा। इसका अर्थ 'उलाहनायोग्य' होगा।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित व्यञ्जनान्त धातुओं में भी लगता है—तकिशसिचतिजनिभ्यो यद्वाच्यः। वा०।

तक्, शस्, चते, यत्, जन् धातुओं से यत् होता है। तक्य, शस्य, चत्य यत्य, जन्य।

हनो वा यद्वधश्च वक्तव्यः। वा०।

हन् धातु से यत्। वध्य। यत् के पूर्व हन् का रूप वध् हो जाता है। इसमें कि विकल्प से ण्यत् लगकर 'घात्य' भी बनता है।

शकिसहोश्च। ३।१।९९।

शक् और सह् धातु से यत्। शक्य, सह्य।

गदमदचरयमश्चानुपसर्गे। ३।१।१००।

गद्, मद्, चर्, यम् धातु से यत्। गद्य, मद्य, चर्य, यम्य।

वह्यं करणम्। ३।१।१०२।

वह् धातु से यत्। वह्य। यथा वह्यं शकटम् (वहन्ति अनेनेति अर्थात् ढोने की गाड़ी।

अर्यः स्वामिवैश्ययोः। ३।१।१०३।

स्वामी या वैश्य अर्थ में ऋ यत्। 'अर्य'। ब्राह्मण के लिए प्रयोग होने पर 'आर्य' होगा।

अजर्यं संगतम्। ३।१।१०५।

न + जृ + यत् = अजर्य। यह तभी बनेगा जब जृ के पूर्व नञ् हो और सिद्ध शब्द संगत का विशेषण हो। यथा 'अजर्यं (स्थायि, अविनाशि वा) सङ्गतम्।

क्यप् प्रत्यय

कुछ ही धातुओं में क्यप् प्रत्यय लगता है। इसके पूर्व धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व होने पर धातु और प्रत्यय के बीच में त् जुड़ता है। यथा—

स्तु + क्यप् = स्तु + त् + य = स्तुत्य। इसके साथ गुण नहीं होता।

एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्। ३।१।१०९। मृजेर्विभाषा। ३।१।११३। मृषोऽसंज्ञायाम्। ३।१।११२। विभाषा कृवृषोः। ३।१।१२०।

इ (जाना) + क्यप्		= इत्य (जाने योग्य)
स्तु	,,	= स्तुत्य
शास्	,,	= शिष्य
वृ	,,	= वृत्य (वरणीय)

दृ	क्यप्	=(आ+)दृत्य (आदरणीय)
जुष्	,,	=जुष्य (सेव्य)
मृज्	,,	=मृज्य (पवित्र करने योग्य)
भृ	,,	=भृत्य (सेवक)
कृ	,,	=कृत्य
वृष्	,,	=वृष्य (सींचने योग्य)

सूचना—मृज्, भृ, कृ तथा वृष् में विकल्प से क्यप् प्रत्यय जुड़ता है। क्यप् न जुड़ने पर ण्यत् जुड़ता है और क्रमशः मार्ग्य, भार्या, कार्य एवं वर्ष्य शब्द बनते हैं।

ण्यत्-प्रत्यय

ऋहलोर्ण्यत् ।३।१।१२४।

ऋकारान्त और हलन्त धातुओं के उपरान्त ण्यत् (य) प्रत्यय जुड़ता है।

इस प्रत्यय के जुड़ने पर अन्तिम ऋ को आर् वृद्धि और उपधा के इ, उ, ऋ को गुण होता है।

चजोः कु घिण्ण्यतोः। ७।३।५२। न क्वादेः। ७।३।५९।

ण्यत् तथा घित् प्रत्यय जुड़ने पर पूर्व के च् और ज् के स्थान में क् और ग् क्रमशः हो जाते हैं, किन्तु यदि धातु कवर्ग से आरम्भ होती हो, तो यह परिवर्तन नहीं होता है। यथा गर्ज् धातु।

ऋकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में यत् जुड़ता है और ऋकारान्त धातुओं में ण्यत्। इसी प्रकार उन व्यञ्जनान्त धातुओं के अतिरिक्त जिनमें यत् और क्यप् लगता है, शेष में ण्यत् लगता है। उदाहरणार्थ—

कृ + ण्यत् = क् + आर् (वृद्धि) क्य = कार्य

पठ् + ण्यत् = प् + आ + ठ् + य = पाठ्य (उपधा के अ की वृद्धि)

वृष् + ण्यत् = व् + अर् + य = वर्ष्य (उपधा के ऋ को गुण)।

पच् + ण्यत् = प + आ + क् + य = पाक्य-पकाने योग्य (उपधा के अ की वृद्धि और च् को क्)।

मृज् + ण्यत् = म् + आर् + ग् + य = मार्ग्य-पवित्र करने योग्य (उपधा के ऋ की वृद्धि और ज् को ग्)

यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ।७।३।६६। त्यजेश्च। वा०।

यज्, याच्, रुच्, प्रवच्, ऋच् और त्यज् धातुओं में च और ज का क् और ग् हो जाने वाला नियम नहीं लगता। उदाहरणार्थः—

याज्य (यज्ञ में देने योग्य, पूज्य)

याच्य (माँगने योग्य)

रोच्य (प्रकाश करने योग्य)

प्रवाच्य (ग्रन्थ विशेष-सिद्धान्तकौमुदी)

अर्च्य (पूज्य)

त्याज्य ।

भोज्यं भक्ष्ये । ७।३।६९ । भोग्यमन्यत् ।

भुज् के दो रूप बनते हैं—भोग्य (भोग करने योग्य) और भोज्य (खाने योग्य) इसी प्रकार वच् के भी वाच्य (कहने योग्य) और वाक्य (पद-समूह) ये दो रूप बनते हैं । (वचोऽशब्दसंज्ञायाम् । ७।३।६७) ।

ओरावश्यके ।३।१।१२५।

अवश्य अर्थ में उकारान्त अथवा ऊकारान्त धातुओं के बाद भी ण्यत् प्रत्यय जुड़ता है । यथा—

श्रु + ण्यत् = श्राव्य (अवश्य सुनने योग्य)

पू + ण्यत् = पाव्य (अवश्य पवित्र करने योग्य)

लू + ण्यत् = लाव्य (अवश्य काटने योग्य)

यु + ण्यत् = याव्य (अवश्य मिलाने योग्य)

वसेस्तव्यत् कर्तरि णिच्च । वा० । भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ।३।४।६८।

यद्यपि प्रत्ययान्त शब्द भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं तथापि कुछ ऐसे शब्द हैं जो कृत्यान्त होते हुए भी कर्तृवाच्य में भी प्रयुक्त होते हैं । वे निम्नलिखित हैं :—

वस् + तव्य = वास्तव्यः (बसने वाला)—इस अर्थ में णिच् भी हो जाता है इसीलिए वृद्धि रूप 'वास्' हो गया ।

भू + यत् = भव्यः (होने वाला)

गै + यत् = गेयः (गाने वाला)

प्रवच् + अनीयर् = प्रवचनीयः (व्याख्यान करने वाला)

उपस्था + अनीयर् = उपस्थानीयः (निकट खड़ा होने वाला)

जन् + यत् = जन्यः (पैदा करने वाला)

आप्लु + ण्यत् = आप्लाव्यः (तैरने वाला)

आपत् + ण्यत् + आपात्यः (गिरने वाला)

भव्य से लेकर आपात्य तक के शब्द विकल्प से ही कर्तृवाच्य में प्रयोग आते हैं । कृत्यान्त होने के कारण कर्म और भाववाच्य में तो प्रयुक्त होते ही हैं । उदाहरणार्थ, गेयः साम्नामयम्—यह साम का गाने वाला है (कर्तृवाच्य); गेयं समानेन (कर्मवाच्य) । इसी प्रकार भव्योऽयं, भव्यमनेन वा ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—पूज्य का अपमान नहीं करना चाहिए । २—पराई स्त्री को नहीं देखना चाहिए । ३—गुरुओं की आज्ञा अनुल्लंघनीय होती है । ४—सोच-विचार करके ही गुप्त

प्रेम करना चाहिए।५—स्वहिततत्पर नहीं होना चाहिए। ६—मूर्खों की बुद्धि दूसरों के विश्वास पर चलती है। ७—इस समस्या पर विचार करना चाहिए। ८—अतिथि का सम्मान करना चाहिए। ९—ब्राह्मण को वेद पढ़ना चाहिए। १०—प्रेमी के साथ जलाशय तक जाना चाहिए। ११—युद्ध के लिए तैयारी करनी चाहिए। १२—सज्जन कभी शोकार्त्तान नहीं हुआ करते। १३—सत्य और प्रिय बोलना चाहिए। १४—धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। १५—शत्रुओं पर विश्वास नहीं करना चाहिए। १६—प्रतिदिन संध्या अवश्य करनी चाहिए। १७—दुष्टों का दमन करना चाहिए। १८—परिश्रम करके ही निर्वाह करना चाहिए। १९—योग्य पुरुष को ही उपदेश देना चाहिए। २०—दुष्ट को शिक्षा नहीं देनी चाहिए।

(ब) भूतकाल के कृत् प्रत्यय

भूते।३।२।८४। क्तक्तवतू निष्ठा।१।१।२६।

भूतकाल के कृत् प्रत्यय प्रधानतः दो हैं—क्त (त) और क्तवतु (तवत्)।

क्त का त और क्तवतु का तवत् शेष रहता है। क्त कर्मवाच्य या भाववाच्य में होता है, क्तवतु कर्तृवाच्य में।

इन दोनों प्रत्ययों को "निष्ठा" भी कहते हैं। इस शब्द का यौगिक अर्थ है—'समाप्ति'। ये दोनों प्रत्यय किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराते हैं, इसी कारण इन्हें निष्ठा कहा जाता है। उदाहरणार्थ 'तेन भुक्तम्'—यहाँ भुज् धातु में क्त प्रत्यय जोड़ने से यह भाव निकला कि भोजन का कार्य समाप्त हो गया। इसी प्रकार सोऽपराधं कृतवान्—यहाँ क्तवतु प्रत्यय से यह निश्चय हुआ कि उसने अपराध कर डाला।

क्त प्रत्ययान्त के रूप पुंलिङ्ग में रामवत्, स्त्रीलिङ्ग में आ लगाकर रमावत् और नपुंसकलिङ्ग में गृहवत् चलते हैं। क्तवतु में अन्त होने वाले शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में श्रीमत् के समान और स्त्रीलिङ्ग में नदी के समान चलते हैं।

अब कुछ धातुओं के क्तान्त और क्तवत्वन्त रूप तीनों लिङ्गों में प्रथमा के एकवचन में दिये जा रहे हैं:—

क्त-प्रत्ययान्त

धातु	पुं०	न०	स्त्री०
पठ्	पठितः	पठितम्	पठिता
स्ना	स्नातः	स्नातम्	स्नाता
पा	पातः	पातम्	पाता
भू	भूतः	भूतम्	भूता
कृ	कृतः	कृतम्	कृता
त्यज्	त्यक्तः	त्यक्तम्	त्यक्ता
तृप्	तृप्तः	तृप्तम्	तृप्ता
शक्	शक्तः	शक्तम्	शक्ता
सिच्	सिक्तः	सिक्तम्	सिक्ता

क्तवतु-प्रत्ययान्त

पठितवान्	पठितवत्	पठितवती
स्नातवान्	स्नातवत्	स्नातवती
पातवान्	पातवत्	पातवती
भूतवान्	भूतवत्	भूतवती
कृतवान्	कृतवत्	कृतवती
त्यक्तवान्	त्यक्तवत्	त्यक्तवती
तृप्तवान्	तृप्तवत्	तृप्तवती
शक्तवान्	शक्तवत्	शक्तवती
सिक्तवान्	सिक्तवत्	सिक्तवती

इग्यणः सम्प्रसारणम् ।१।१।४५।

निष्ठा प्रत्ययों के पूर्व जिन धातुओं में संप्रसारण होता है, निष्ठा प्रत्यय जुड़ने पर भी उनमें संप्रसारण हो जाता है अर्थात् यदि प्रथम वर्ण य, र, ल, व, हों, तो उनके स्थान पर क्रमशः इ, ऋ, लृ, उ हो जाते हैं। यथा—

वद् + क्त = उक्त ।

वद् + क्तवतु = उक्तवत् ।

वस् + क्त = उषित ।

वस् + क्तवतु = उषितवत् ।

रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२।

यदि निष्ठा प्रत्यय ऐसी धातु के बाद आवे जिसके अन्त में र् अथवा द् हो (और निष्ठा तथा धातु के मध्य में सेट् या वेट् की "इ" न आवे) तो निष्ठा के त के स्थान में न् हो जाता है और उसके पूर्व के द् को भी न् हो जाता है। यथा—

शॄ + क्त = शीर्ण ।	शॄ + क्तवतु = शीर्णवत् ।
जॄ + क्त = जीर्ण ।	जॄ + क्तवतु = जीर्णवत् ।
छिद् + क्त = छिन्न ।	छिद् + क्तवतु = छिन्नवत् ।
भिद् + क्त = भिन्न ।	भिद् + क्तवतु = भिन्नवत् ।

संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ।८।१।४३।

संयुक्त अक्षरों से आरम्भ होने वाली और आकार में अन्त होने वाली तथा कहीं न कहीं य्, र्, ल्, व्, में से कोई अक्षर रखने वाली धातु की निष्ठा के त को भी न हो जाता है। उदाहरणार्थ, म्लान, ग्लान, स्त्यान, गान, ध्यान ।

अपवाद—ख्यात, ध्यात आदि ।

कर्तरि कृत् ।३।४।६७।

क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द सदैव कर्तृवाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं। यथा—स भुक्तवान्, भुक्तवत्सु तेषु आदि ।

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ।३।४।७०।

खल् तथा कृत्य प्रत्यय की ही तरह क्त प्रत्यय भी कर्मवाच्य और भाववाच्य में प्रयुक्त होता है । अर्थात् कर्म (Object) का विशेषण होता है । यथा—रामेण सीता त्यक्ता, तेन गतम् आदि ।

गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ।३।४।७२।

गत्यर्थक धातु, अकर्मक धातु, श्लिष् (आलिंगन करना), शी (लेटना, सोना), स्था (ठहरना), आस् (बैठना), वस् (रहना), जन् , रुह् और जॄ (बुड्ढा होना या पुराना होना) में क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है । यथा—

गतोऽहं कलिंगान्—मैं कलिंग चला गया ।

जलं पातुं यमुनाकच्छमवतीर्णः—वह पानी पीने के लिए यमुना जी के तीर पर चला गया ।

लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः—हरि ने लक्ष्मी को आलिंगन किया ।

शेषमधिशयितः—शेषनाग के ऊपर शयन किया ।

शिवमुपासितः—शिवजी की उपासना की ।

विश्वमनुजीर्णः—संसार के पीछे वृद्ध हो गया ।

उपरते भर्तरि—पति के मर जाने पर ।

वैकुण्ठमधिष्ठितः, सुतो जातः इत्यादि ।

नपुंसके भावे क्तः ।३।३।११४।

नपुंसकलिङ्ग में क्त प्रत्ययान्त शब्द कभी-कभी उस क्रिया से बोधित कार्य (Verbal Noun) के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं । यथा—तस्य गतं वरम् (उसका चला जाना अच्छा है) । इस उदाहरण में 'गतं' 'गमनं' के अर्थ में आया है । इसी प्रकार पठितम् = पठनम् सुप्तम् = स्वापः आदि ।

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः ।

मन् , बुध् , पूज् के अर्थ वाली धातुओं में 'क्त' प्रत्यय वर्तमान काल के अर्थ में भी लगाया जाता है और इसके योग में कर्तृपद षष्ठ्यन्त हो जाता है ।

सूचना—और भी दूसरे शब्द हैं जो कि इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं । वे निम्न-लिखित श्लोकों पर दिए गए हैं—

> शीलितो रक्षितः क्षांत आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि ।
> रुष्टश्च रुपितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि ।
> हृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ ।
> कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत् स्मृताः ॥ (महाभाष्य)

लिटः कानज्वा ।३।२।१०६। क्वसुश्च ३।२।१०७।

लिट् (परोक्षभूत) के अर्थ का बोध कराने के लिए दो कृत् प्रत्यय क्वसु (वस्) और कानच् (आन) हैं। परन्तु इन प्रत्ययों का प्रयोग बहुत कम होता है।

क्वसु परस्मैपदी धातु के बाद जोड़ा जाता है और कानच् आत्मनेपदी धातु के बाद। लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगाने के पूर्व धातु का जो रूप होता है, उसमें ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यथा—

श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते—जो पुरुष समस्त अच्छी अच्छी वस्तुएँ प्राप्त कर चुका है।

निषेदुषीमासनबन्धधीरः—जब वह बैठ जाया करती थी तब जम कर वह भी बैठ जाते थे।

यदि उपर्युक्त धातु का रूप एकाक्षर हो अथवा अन्त में आ हो तो धातु और प्रत्यय के बीच में इ हो जाती है। उदाहरणार्थ—

धातु	क्वसु	कानच्
गम्	जग्मिवस्	
नी	निनीवस्	निन्यान
दा	ददिवस्	ददान
वच्	ऊचिवस्	ऊचान
कृ	चकृवस्	चक्राण
दृश्	ददृश्वस् अथवा ददृशिवस्	

इनके रूप तीनों लिङ्गों में अलग-अलग संज्ञाओं के समान चलते हैं। यथा—

स जग्मिवान्—वह गया।

तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे—नगर के निकट खड़े हुए उसको।

श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मिवांस्त्वम्—तुमने समस्त अच्छी बातें प्राप्त की थीं।

क्त प्रत्ययान्त का क्तवतु प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरलतम प्रकार यह है कि क्त प्रत्ययान्त के बाद में 'वत्' और जोड़ दो।

धातु	क्त	क्तवतु
अधि + इ	अधीतः	अधीतवान्
अर्च	अर्चितः	अर्चितवान्
आप्	आप्तः	आप्तवान्
कथ्	कथितः	कथितवान्
कम्	कान्तः	कान्तवान्
कम्प्	कम्पितः	कम्पितवान्
कुप्	कुपितः	कुपितवान्

धातु	क्त	क्तवतु
कृ	कृतः	कृतवान्
कृष्	कृष्टः	कृष्टवान्
कॄ	कीर्णः	कीर्णवान्
क्री	क्रीतः	क्रीतवान्
क्षि	क्षीणः	क्षीणवान्
क्षिप्	क्षिप्तः	क्षिप्तवान्
गण्	गणितः	गणितवान्
गम्	गतः	गतवान्
गॄ	गीर्णः	गीर्णवान्
ग्रस्	ग्रस्तः	ग्रस्तवान्
ग्रह्	गृहीतः	गृहीतवान्
चल	चलितः	चलितवान्
चिन्त्	चिन्तितः	चिन्तितवान्
छिद्	छिन्नः	छिन्नवान्
जन्	जातः	जातवान्
जि	जितः	जितवान्
जॄ	जीर्णः	जीर्णवान्
ज्ञा	ज्ञातः	ज्ञातवान्
तप्	तप्तः	तप्तवान्
तृप्	तृप्तः	तृप्तवान्
त्यज्	त्यक्तः	त्यक्तवान्
दंश	दष्टः	दष्टवान्
दम्	दान्तः	दान्तवान्
दह्	दग्धः	दग्धवान्
दा	दत्तः	दत्तवान्
दिश्	दिष्टः	दिष्टवान्
दीप्	दीप्तः	दीप्तवान्
दुह्	दुग्धः	दुग्धवान्
दृश्	दृष्टः	दृष्टवान्
धा	हितः	हितवान्
धृ	धृतः	धृतवान्
ध्वंस्	ध्वस्त	ध्वस्तवान्
नम्	नतः	नतवान्

धातु	क्त	क्तवतु
धातु	क्त	क्तवतु
नश्	नष्टः	नष्टवान्
नी	नीतः	नीतवान्
नृत्	नृत्तः	नृत्तवान्
पच्	पक्कः	पक्कवान्
पठ्	पठितः	पठितवान्
पत्	पतितः	पतितवान्
पा	पीतः	पीतवान्
पुष्	पुष्टः	पुष्टवान्
पूज्	पूजितः	पूजितवान्
प्रच्छ्	पृष्टः	पृष्टवान्
प्रथ्	प्रथितः	प्रथितवान्
प्रेर्	प्रेरितः	प्रेरितवान्
ब्रू	उक्तः	उक्तवान्
भक्ष्	भक्षितः	भक्षितवान्
भञ्ज्	भग्नः	भग्नवान्
भी	भीतः	वान्
भुञ्ज्	भुक्तः	वान्
भू	भूतः	वान्
मद्	मत्तः	वान्
मन्	मतः	मतवान्
मिल्	मिलितः	मिलितवान्
मुच्	मुक्तः	मुक्तवान्
मुद्	मुदितः	मुदितवान्
याच्	याचितः	याचितवान्
रक्ष्	रक्षितः	रक्षितवान्
रच्	रचितः	रचितवान्
लभ्	लब्धः	लब्धवान्
लिख्	लिखितः	लिखितवान्
वस्	उषितः	उषितवान्
वह्	ऊढः	ऊढवान्
शंक्	शंकितः	शंकितवान्
शक्	शक्तः	शक्तवान्
शास्	शिष्टः	शिष्टवान्

धातु	क्त	क्तवतु
सह्	सोढः	सोढवान्
स्ना	स्नात	स्नातवान्
हन्	हतः	हतवान्
हस्	हसितः	हसितवान्
हु	हुतः	हुतवान्

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—मैंने रामायण के चार काण्ड पढ़े। २—शकुन्तला का मन कहीं अन्यत्र है। ३—अभिमन्यु ने युद्ध में बहुत वीरता दिखाई। ४—राजा सिंहासन पर बैठा। ५—बच्चे को भाग्य पर छोड़ दिया। ६—अच्छी याद दिलाई। ७—अपत्यस्नेह ने जीत लिया। ८—यह किसका चित्र है। ९—यह क्या वार्ता प्रारम्भ की। १०—दमयन्ती का क्या हाल हुआ। ११—शिशु व्यर्थ ही रोया। १२—उसने स्वयं अपना सत्यानाश किया है। १३—जंगल में आग लग गई। १४—वह बहुत दुःखी हुआ। १५—मेरी प्रतिज्ञा उसको विदित हो गई। १६—बालिका पेड़ों से ओझल हो गई। १७—आचार्य की घोषणा का विद्यार्थियों ने स्वागत किया। १८—वह पिता के पीछे-पीछे आया। १९—मैंने उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं किया। २०—तुमने देर क्यों की?

वर्तमानकालिक कृत् प्रत्यय

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे।३।२।१२४। तौ सत्।३।२।१२७।

जब किसी कार्य की समानाधिकरणता या समकालीनता पाई जाती है तब वर्तमान कालिक कृदन्त शतृ एवं शानच् से निष्पन्न शब्दों का प्रयोग होता है। अंग्रेजी की क्रिया (Verb) में ing लगाकर अथवा हिन्दी में क्रियया के साथ 'ता हुआ' लगाकर जिन अर्थों का बोध होता है, उन अर्थों की प्रतीति संस्कृत में धातुओं के साथ शतृ और शानच् प्रत्यय लगाने से होती है। इन दोनों को संस्कृत वैयाकरण 'सत्' कहते हैं 'सत्' का तात्पर्य है—विद्यमान, वर्तमान'। क्रिया के जारी रहने का अर्थ सत् प्रत्ययों से सूचित किया जाता है।

परस्मैपदी धातुओं से शतृ प्रत्यय और आत्मनेपदी धातुओं से शानच् प्रत्यय लगाये जाते हैं। धातुओं का वर्तमान काल के अन्य पुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगाने के पूर्व जो रूप होता है (जैसे गच्छन्ति—गच्छ), उसी में सत् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यदि धातु के रूप के अन्त में अ हो तो शतृ (अत्) के पूर्व उसका लोप हो जाता है।

आने मुक्।७।२।८२।

यदि शानच् के पूर्व अकारान्त धातुरूप आवे तो शानच् (आन) के स्थान पर 'मान्' जुड़ता है। उदाहरणार्थ—

धातु	परस्मै०	आत्मने०	कर्मवाच्य
पठ्	पठत्		पठ्यमान

धातु	परस्मै०	आत्मने	कर्मवाच्य
कृ	कुर्वत्	कुर्वाण	क्रियमाण
गम्	गच्छत्		गम्यमान
नी	नयत्	नयमान	नीयमान
दा	ददत्	ददान	दीयमान
चुर्	चोरयत्	चोरयमाण	चोर्यमाण
पिपठिष्	पिपठिषत्	पिपठिषमाण	पिपठिष्यमाण (सन्नन्त)

ईदासः ।७।२।८३।

आस् धातु के बाद शानच् आने से शानच् के 'आन' को 'ईन' हो जाता है। यथा—आस् + शानच् = आसीन।

विदेः शतुर्वसुः ।७।१।३६।

विद् धातु के अनन्तर शतृ प्रत्यय जुड़ता है और शतृ के ही अर्थ में विकल्प से 'वसु' आदेश हो जाता है। इस प्रकार विद् + शतृ = विदत्, विद् + वसु = विद्वस्। स्त्रीलिङ्ग में विदुषी बनेगा।

पूङ्यजोः शानन् ।३।२।१२८।

वर्तमान का ही अर्थ प्रकट करने के लिए पू (पवित्र करना) तथा यज् धातुओं के बाद शानन् प्रत्यय जुड़ते हैं। यथा—पू + शानन् = पवमानः। यज् + शानन् = यजमानः।

ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ।३।२।१२९।

किसी की आदत, उम्र अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिए परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों प्रकार की धातुओं में चानश् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

भोगं भुञ्जानः—भोग भोगने की आदत वाला।

कवचं बिभ्राणः—कवच धारण करने की अवस्था वाला।

शत्रुं निघ्नानः—शत्रु को मारने वाला।

शतृ एवं शानच् उभय प्रत्ययों से निम्नलिखित अर्थों का भास होता है:—

(क) अविच्छिन्नता—गच्छन् बालकः पतति।

(ख) स्वभाव, मनोवृत्ति—भोगं भुञ्जानः जीवः संसारे भ्रमति।

(ग) अवस्था या कोई मापदण्ड—शयानाः भुञ्जते यवनाः।

(घ) योग्यता—हरिं भजन् मुच्यते।

(ङ) क्षमता—इन्द्रियाणि जयन् योगी भवति।

प्रायः शत्रन्त शब्दों के रूप पुंलिङ्ग में धावत् के समान, स्त्रीलिङ्ग में नदी के समान और नपुंसकलिङ्ग में जगत् के समान होते हैं। शानच् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुंलिङ्ग में देव के समान, स्त्रीलिङ्ग में लता के समान और नपुंसकलिङ्ग में फल के समान होते हैं।

कुछ परस्मैपदी धातुओं के शतृ प्रत्ययान्त रूप

धातु	अर्थ	पुं०	स्त्री०	नपुं०
अस्	(होना)	सन्	सती	सत्
आप्	(प्राप्त करना)	आप्नुवन्	आप्नुवती	आप्नुवत्
कथ्	(कहना)	कथयन्	कथयन्ती	कथयत्
कूज्	(कूजना)	कूजन्	कूजन्ती	कूजत्
क्रीड्	(खेलना)	क्रीडन्	क्रीडन्ती	क्रीडत्
क्री	(खरीदना)	क्रीणन्	क्रीणती	क्रीणत्
क्रुध्	(नाराज होना)	क्रुध्यन्	क्रुध्यन्ती	क्रुध्यत्
गर्ज्	(गर्जना)	गर्जन्	गर्जन्ती	गर्जत्
गुञ्ज्	(गूंजना)	गुञ्जन्	गुञ्जन्ती	गुञ्जत्
गै	(गाना)	गायन्	गायन्ती	गायत्
घ्रा	(सूंघना)	जिघ्रन्	जिघ्रन्ती	जिघ्रत्
चल्	(चलना)	चलन्	चलन्ती	चलत्
चिन्त्	(सोचना)	चिन्तयन्	चिन्तयन्ती	चिन्तयत्
दंश्	(डसना)	दशन्	दशन्ती	दशत्
दृश्	(देखना)	पश्यन्	पश्यन्ती	पश्यत्
नृत्	(नाचना)	नृत्यन्	नृत्यन्ती	नृत्यत्
पूज्	(पूजा करना)	पूजयन्	पूजयन्ती	पूजयत्
रच्	(बनाना)	रचयन्	रचयन्ती	रचयत्
स्पृश्	(छूना)	स्पृशन्	स्पृशती-न्ती	स्पृशत्

इसी प्रकार अन्य परस्मैपदी धातुओं के शतृ प्रत्ययान्त रूप बनेंगे। भय विस्तार से केवल इतनी ही धातुओं का रूप देना उचित समझा गया।

आत्मनेपदी धातुओं के शानच् प्रत्ययान्त रूप

धातु	अर्थ	पुं०	स्त्री०	नपुं०
कम्प्	(काँपना)	कम्पमानः	कम्पमाना	कम्पमानम्
जन्	(पैदा करना)	जायमानः	जायमाना	जायमानम्
दय्	(दया करना)	दयमानः	दयमाना	दयमानम्
वृत्	(होना)	वर्तमानः	वर्तमाना	वर्तमानम्
लभ्	(पाना)	लभमानः	लभमाना	लभमानम्
सेव्	(सेवा करना)	सेवमानः	सेवमाना	सेवमानम्

उभयपदी धातुओं के शतृ और शानच् प्रत्ययान्त शब्द

धातु	पुंलिङ्ग	स्त्री०	नपुं०	शानच्
छिद् (काटना)	छिन्दन्	छिन्दती	छिदत्	छिन्दानः
ज्ञा (जानना)	जानन्	जानती	जानत्	जानानः

नी (ले जाना)	नयन्	नयन्ती	नयत्	नयमानः
ब्रू (कहना)	ब्रुवन्	ब्रुवती	ब्रुवत्	ब्रुवाणः
लिह् (चाटना)	लिहन्	लिहती	लिहत्	लिहानः
धा (रखना)	दधन्	दधती	दधत्	दधानः

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—ऐसा सोचता हुआ ही वह घोड़े से उतर गया। २—जाते हुए वह सोचत जाता था। ३—कार्य करता हुआ वह खेलता है। ४—यवन लोग लेटे लेटे भोजन करते हैं। ५—जो पढ़ रहा है, वह श्याम है। ६—गीत की समाप्ति के अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। ७—दीमकों के घर के शिखरों को ढहाता हुआ बड़ी जोर से गरजता रहा। ८—धीरे-धीरे चलते हुए आदमियों को मैंने सड़क पर देखा। ९—अपने पति के शव को देखती हुई रति बहुत देर तक रोती रही। १०—पुत्र और शिष्य को बढ़ता हुआ देखना चाहे। ११—बिस्तर के पास में बैठे हुए हर्ष को राजा ने देखा। १२—कृष्ण जब रो रहे थे, तभी कौआ रोटी लेकर उड़ गया। १३—सूर्योदय होने पर सोने वाले को लक्ष्मी छोड़ देती है। १४—जंगली जानवरों को विनीत करता हुआ वह वन में घूमा। १५—राजा कवच पहनता है, शत्रुओं को मारता है और भोगों को भोगता है। १६—न्यायशास्त्र में निपुण होने की इच्छा करता हुआ वह काशी गया। १७—राजकुमार का ध्यान आकृष्ट करते हुए शुकनास ने मंत्रणा दी। १८—यह कहते कहते शकुन्तला का गला भर आया। १९—विद्यार्थी प्रयत्न करता हुआ भी परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहा। २०—बालक दौड़ता हुआ गिर पड़ा।

भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय

लृटः सद्वा।३।३।१४।

करने जा रहा है या करने वाला है, इस अर्थ में लृट् को परस्मै० में शतृ और आत्मने० में शानच् होता है। लृट् के अन्य पुरुष के बहुवचन में जो धातु-रूप होता है उसके अनन्तर शतृ अथवा शानच् लगाया जाता है। उदाहरणार्थ—

वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्। करिष्यमाणः सशरं शरासनम्।

इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के रूप भी तीनों लिङ्गों में अलग २ संज्ञाओं के समान चलते हैं।

भविष्यत्कालिक कृदन्त शब्दों के रूप

	परस्मै०	आत्मने०	कर्म
पठ्	पठिष्यत्		पठिष्यमाण
कृ	करिष्यत्	करिष्यमाण	करिष्यमाण
गम्	गमिष्यत्		गमिष्यमाण

नी	नेष्यत्	नेष्यमाण	नेष्यमाण
दा	दास्यत्	दास्यमान	दास्यमान
चुर्	चोरयिष्यत्	चोरयिष्यमाण	चोरयिष्यमाण
पिपठिष्	पिपठिष्यत्	पिपठिष्यमाण	पिपठिष्यमाण

तुमुन् (तुम्) प्रत्यय

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ।३।३।१०।

जिस क्रिया के लिए कोई क्रिया की जाती है, उसकी धातु में भविष्यत् अर्थ प्रकट करने के लिए तुमुन् और ण्वुल् (अक) प्रत्यय जुड़ते हैं। यथा 'बालकं द्रष्टुं दर्शको वा याति।'

जब एक क्रिया के लिए कोई दूसरी क्रिया की जाय तब जिस क्रिया के लिए दूसरी क्रिया होती है उस क्रिया के वाचक धातु में ही तुमुन् प्रत्यय लगता है। यथा :—बालकं द्रष्टुं गच्छति। (बालक को देखने के लिए जाता है)। यहां देखना और जाना दो क्रियायें हैं, जाने की क्रिया देखने के निमित्त होती है अतएव देखना (दृश्, में तुमुन् जोड़कर द्रष्टुं बनाया गया है। तुमुनन्त क्रिया जिस क्रिया के साथ आती है, उसकी अपेक्षा सदा बाद को होती हैं। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में देखने की क्रिया जाने की क्रिया के बाद ही सम्भव है। इस प्रकार तुमुनन्त क्रिया दूसरी क्रिया की अपेक्षा भविष्य में होती है।

तुमुन् प्रत्यय 'के लिए' का अर्थ सूचित करता है और अंग्रेजी के Gerundial Infinitive का सा काम करता है। इस प्रकार तुमुन् प्रत्यय सम्प्रदान के अर्थ का बोध कराता है और आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रयोग न कर धातु में कृदन्त प्रत्यय लगाकर संज्ञा बनाकर और उसे चतुर्थी में रखकर काम चला सकते हैं। उदाहरणार्थ—पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे—तब वह फारसदेशनिवासियों को जीतने के लिए चल पड़ा।

यहाँ पर 'जेतुम्' के स्थान पर जयाय करके वाक्य को निम्नलिखित प्रकार से बना सकते हैं—पारसीकानां जयाय प्रतस्थे।

इसी प्रकार स्वेदसलिलस्नातापि पुनः स्नातुमवातरम्। यहाँ पर स्नातुम् = स्नानाय।

समानकर्तृकेषु तुमुन् ।३।३।१५८।

जब तुमुनन्त शब्द का एवं प्रधान क्रिया का कर्ता एक ही होगा तभी तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग हो सकता है। यदि तुमुनन्त क्रिया का कर्ता कोई दूसरा हो और प्रधान क्रिया का कर्ता कोई दूसरा हो तो तुमुन् प्रत्यय नहीं आ सकता। यथा—

पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति (महादेव जी को अपना पति चाहती है) परन्तु त्वां गन्तुम् अहमिच्छामि-ऐसा प्रयोग कभी नहीं हो सकता क्योंकि 'गन्तुम्' का कर्ता त्वम् है और इच्छामि का कर्ता अहम् है।

कालसमयवेलासु तुमुन् ।३।३।१६७।

समय, काल, वेला, अवसर इत्यादि कालवाची शब्दों के साथ समान कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग में आता है। यथा—

समयः खलु स्नान-भोजने सेवितुम्—यह नहाने और खाने का समय है।

निम्नलिखित अवस्थाओं में भी तुमुन् प्रयुक्त होता है:—

(१) शक्त्यर्थक धातुओं के योग में—भोक्तुम् शक्नोति (खा सकता है)।

(२) ज्ञानार्थक धातुओं के योग में—गातुं जानाति (गाना जानता है)।

(३) प्रयत्नार्थक धातुओं के योग में—पठितुं यतते (पढ़ने का यत्न करता है)।

(४) सहार्थक धातुओं के योग में—ग्रीष्मे बहिर्गन्तुं न सहे (गर्मी में बाहर जाने के लिए समर्थ नहीं होता)।

(५) प्रार्थना और अभ्यर्थना के अर्थ में 'अर्ह' धातु के साथ तुमुन् का प्रयोग—इदानीं वक्तुमर्हति भवान् (अब आप बोल सकते हैं)।

(६) अस्ति, भवति, विद्यते के योग में—भोक्तुमन्नमस्ति विद्यते वा (खाने के लिए अन्न है) भोक्तुम् अन्नं भवति (खाने भर के लिए अन्न होता है)।

(७) पर्याप्त, समर्थ, योग्य इत्यादि अर्थों के वाचक शब्दों के योग में—लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः (मस्तक में जो लिखा है उसे कौन मिटा सकता है)।

(८) इच्छार्थक धातुओं के योग में—भोक्तुम् इच्छति (खाना चाहता है)।

(९) आरम्भार्थक धातुओं के योग में—पठितुम् आरभते (पढ़ना आरम्भ करता है)।

तुमुनन्त शब्द अव्यय होता है अतः इसका रूप नहीं चलता।

अद्	अत्तुम्	क्रीड्	क्रीडितुम्
अर्च्	अर्चितुम्	क्षिप्	क्षेप्तुम्
आप्	आप्तुम्	खन्	खनितुम्
ईक्ष्	ईक्षितुम्	गम्	गन्तुम्
		गै	गातुम्
कथ्	कथयितुम्	ग्रह्	ग्रहीतुम्
कम्	कमितुम्	घ्रा	घ्रातुम्
कम्प्	कम्पितुम्	चर्	चरितुम्
कूर्द्	कूर्दितुम्	चल्	चलितुम्
कृ	कर्तुम्	चुर्	चोरयितुम्
क्लृप्	कल्पितुम्	छिद्	छेत्तुम्
क्रन्द्	क्रन्दितुम्	जन्	जनितुम्
क्रम्	क्रमितुम्	जप्	जपितुम्
		डी	डयितुम्
क्री	क्रेतुम्	तृप्	तर्पितुम्

तृ	तरितुम्	रम्	रन्तुम्
त्यज्	त्यक्तुम्	लभ्	लब्धुम्
त्रै	त्रातुम्	लिख्	लेखितुम्
दंश्	दंष्टुम्	लिह्	लेढुम्
दह्	दग्धुम्	वह्	वोढुम्
दिश्	देष्टुम्	वृ	वारयितुम्
दुह्	दोग्धुम्	वृष्	वर्षितुम्
द्रुह्	द्रोग्धुम्	शक्	शक्तुम्
धृ	धर्तुम्	श्रि	श्रयितुम्
नम्	नन्तुम्	श्रु	श्रोतुम्
पच्	पक्तुम्	सह्	सोढुम्
पद्	पत्तुम्	सिच्	सेक्तुम्
प्रच्छ्	प्रष्टुम्	सिव्	सेवितुम्
ब्रू	वक्तुम्	सृ	सर्तुम्
भिद्	भेत्तुम्	सृज्	स्रष्टुम्
भृ	भर्तुम्	स्तु	स्तोतुम्
मुच्	मोक्तुम्	स्पृश्	स्प्रष्टुम्
मुद्	मोदितुम्	स्मृ	स्मर्तुम्
मृ	मर्तुम्	हु	होतुम्
यज्	यष्टुम्	हृ	हर्तुम्
यम्	यन्तुम्	हृष्	हर्षितुम्
युज्	योक्तुम्		

संस्कृत में अनुवाद करो :—

१—मैं अपने हृदय को रोक नहीं सकता (हृदयमवस्थापयितुम्)। २—रानी का मनोरञ्जन करना जानते हो। ३—मैं विपत्ति नहीं सहन कर सकता। ४—उसकी तपस्या लोकों को जला देने के लिए पर्याप्त है। ५—मुझमें सब कुछ जानने की शक्ति है। ६—अग्नि के अतिरिक्त और कौन जलाने में समर्थ होगा। ७-अपने आपको प्रकट कर देने का अब यह अवसर है। ८—मैं इस काम को कर सकता हूँ। ९—वह कुछ कहना चाहता है। १०—वह पढ़ने के लिए विद्यालय जाता है।

पूर्वकालिक क्रिया (क्त्वा और ल्यप्)

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१।

जब एक ही कर्त्ता कई क्रियाओं का सम्पादन करता है और जब एक क्रिया पहले

हो चुकी रहती है और उसके बाद ही दूसरी क्रिया होती है तब पहले सम्पन्न हो जाने वाली क्रिया के वाचक धातु के साथ क्त्वा या ल्यप् प्रत्यय होता है। यथा—प्रतीहारी उपसृत्य सविनयमब्रवीत् (समीप में आकर प्रतीहारी नम्रतापूर्वक बोली)

वैशम्पायनो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत् (मानो कुछ देर तक ध्यान कर वैशम्पायन ने आदरपूर्वक कहा)

समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७।

यदि धातु के पूर्व में कोई उपसर्ग हो अथवा उपसर्गस्थानीय कोई पद हो तो क्त्वा के स्थान में ल्यप् (य) प्रत्यय होता है, परन्तु नञ् के पूर्व होने पर नहीं।

यथाः—	गम् + क्त्वा	= गत्वा; किन्तु।
	अवगम् + ल्यप्	= अवगत्य; अवगत्वा नहीं।
	पठ् + क्त्वा	= पठित्वा किन्तु।
	प्रपठ् + ल्यप्	= प्रपठ्य, प्रपठित्वा नहीं।

क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययों के योग से बनने वाले शब्द अव्यय होते हैं, अतः इनके रूप नहीं चलते।

क्त्वा-का 'त्वा' प्रायः धातु में जैसा का तैसा ही जोड़ा जाता है। यथा – स्ना-स्नात्वा; ज्ञा—ज्ञात्वा; नी—नीत्वा; भू—भूत्वा; कृ—कृत्वा; हृ—हृत्वा। ऐसी नकारान्त धातुएँ जिनमें सेट् या वेट् की इ नहीं जुड़ती, न् का लोप करके जोड़ी जाती हैं। यथा :—हन्—हत्वा; मन्—मत्वा; किन्तु जन्—जनित्वा; खन्—खनित्वा। धातु का प्रथम अक्षर यदि य, र, ल, व हो तो बहुधा क्रम से इ, ऋ, लृ, उ हो जाता है। यथाः—यज् + क्त्वा = इष्ट्वा, प्रच्छ् + क्त्वा = पृष्ट्वा; वप् + क्त्वा = उप्त्वा। यदि धातु और प्रत्यय के बीच में इ आ जावे तो पूर्व स्वर को गुण हो जाता। यथा—शी + क्त्वा = श् + ए + इ + त्वा = शे + इ + त्वा = शयित्वा। इसी प्रकार जागरित्वा आदि।

जान्तनशां विभाषा। ६।४।३२।

जान्त एवं नश् धातु के बाद क्त्वा जुड़ने पर विकल्प से 'न्' का लोप होता है। यथा—भुञ्ज् + क्त्वा = भुक्त्वा या भुङ्क्त्वा; रञ्ज् + क्त्वा = रक्त्वा या रङ्क्त्वा; नश् + क्त्वा = नष्ट्वा, नंष्ट्वा। इसका नशित्वा रूप भी होगा।

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्। ६।१।७१।

ल्यप् के पूर्व यदि ह्रस्व स्वर हो तो धातु और ल्यप् के 'य' के बीच में त् जुड़ जाता है। यथा—निश्चित्य, अवहृत्य, विजित्य; किन्तु आ + दा + ल्यप् = आदाय। इसी प्रकार विनीय, अनुभूय इत्यादि क्योंकि दा, नी एवं भू धातुएँ दीर्घस्वरान्त हैं।

प्रायः नकारान्त धातुओं के न् का लोप करके त्य जोड़ा जाता है; जैसे अवमत्य, प्रहत्य, वितत्य; किन्तु प्रखन्य। गम्, नम्, यम्, रम् के म रहने पर अवगम्य आदि और लोप होने पर अवगत्य आदि दो दो रूप होते हैं।

ल्यपि लघुपूर्वात् । ६।४।५६।

णिजन्त और चुरादि गण की धातुओं की उपधा में यदि ह्रस्व स्वर हो तो उनमें ल्यप् के पूर्व अय् जोड़ा जाता है, अन्यथा नहीं। उदाहरणार्थ प्रणम् (णिजन्त) + अय् + ल्यप् (य) = प्रणमय्य, किन्तु प्रचोर् + य = प्रचोर्य।

विभाषापः । ६।१।५७।

आप् धातु के अनन्तर जुड़ने पर अय् आदेश विकल्प से होता है। यथा— प्र + आप् + ल्यप् = प्रापय्य, प्राप्य।

अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा । ३।४।१८।

जब अलम् और खलु शब्द के साथ पूर्वकालिक क्रिया (क्त्वान्त तथा ल्यबन्त) आती है, तब पूर्वकाल का बोध नहीं कराती है, अपि तु प्रतिषेध (मना करने) का भाव सूचित करती है। उदाहरणार्थ—

अलं कृत्वा (बस, मत करो)।

पीत्वा खलु (मत पियो)

विजित्य खलु (बस, न जीतो)

अवमत्यालम् (बस, अपमान मत करो)।

घटनाओं का वर्णन करते समय क्रिया के रूपों और समुच्चय-बोधक अव्ययों के प्रयोग में लाघव लाने के लिए क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय बहुत काम देते हैं। 'ऐसा करने' अथवा 'किए जाने के बाद', 'जब' और 'बाद' से आरम्भ होने वाले प्रयोगों के अनुवाद में क्त्वा अथवा ल्यप् से काम चल जाता है। यथा रावणं हत्वा।

स तत्र गत्वा न किमपि लेभे (जब वह वहाँ गया तो उसने कुछ भी नहीं पाया)।

मुख्य धातुओं के क्त्वा और ल्यप् के रूप

धातु	क्त्वा	ल्यप्	धातु	क्त्वा	ल्यप्
अद्	जग्ध्वा	प्रजग्ध्य	क्रुध्	क्रुद्ध्वा	संक्रुध्य
अर्च्	अर्चित्वा	समर्च्य	क्षम्	क्षमित्वा	संक्षम्य
अस् (२ प०)	भूत्वा	सम्भूय	क्षिप्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य
अस् (४ प०)	असित्वा	प्रास्य	गण्	गणयित्वा	विगणय्य
आप्	आप्त्वा	प्राप्य	गॄ	गीर्त्वा	उद्गीर्य
इ	इत्वा	प्रेत्य	ग्रस्	ग्रसित्वा	संग्रस्य
ईक्ष्	ईक्षित्वा	समीक्ष्य	ग्रह्	गृहीत्वा	संगृह्य
कम्	कमित्वा	संक्राम्य	घ्रा	घ्रात्वा	आघ्राय
कूर्द्	कूर्दित्वा	प्रकूर्द्य	चल्	चलित्वा	प्रचल्य
कॄ	कीर्त्वा	विकीर्य	चि	चित्वा	संचित्य
क्रन्द्	क्रन्दित्वा	आक्रन्द्य	छिद्	छित्त्वा	उच्छिद्य
क्री	क्रीत्वा	विक्रीय	जन्	जनित्वा	संजाय
क्रीड्	क्रीडित्वा	प्रक्रीड्य	जि	जित्वा	विजित्य

धातु	क्त्वा	ल्यप्	धातु	क्त्वा	ल्यप्
जीव्	जीवित्वा	संजीव्य	मिल्	मिलित्वा	संमिल्य
ज्ञा	ज्ञात्वा	विज्ञाय	मुच्	मुक्त्वा	विमुच्य
तन्	तनित्वा	वितत्य	या	यात्वा	प्रयाय
तॄ	तीर्त्वा	उत्तीर्य	युज्	युक्त्वा	प्रयुज्य
दा	दत्त्वा	आदाय	रक्ष्	रक्षित्वा	संरक्ष्य
दिव्	देवित्वा	संदीव्य	रम्	रत्वा	विरम्य
दीप्	दीपित्वा	संदीप्य	लप्	लपित्वा	विलप्य
धा	हित्वा	विधाय	ली	लीत्वा	निलीय
धाव्	धावित्वा	प्रधाव्य	वप्	उप्त्वा	समुप्य
धृ	धृत्वा	आधृत्य	व्यध्	विद्ध्वा	आविध्य
नम्	नत्वा	प्रणम्य	शप्	शप्त्वा	अभिशप्य
नी	नीत्वा	आनीय	शम्	शान्त्वा	निशम्य
पच्	पक्त्वा	संपच्य	शी	शयित्वा	संशय्य
पठ्	पठित्वा	संपठ्य	श्रि	श्रित्वा	आश्रित्य
पत्	पतित्वा	निपत्य	श्रु	श्रुत्वा	संश्रुत्य
पूज्	पूजयित्वा	संपूज्य	सिव्	सेवित्वा	संसीव्य
बन्ध्	बद्ध्वा	आबध्य	सेव्	सेवित्वा	निषेव्य
ब्रू	उक्त्वा	प्रोच्य	स्तु	स्तुत्वा	प्रस्तुत्य
भक्ष्	भक्षयित्वा	संभक्ष्य	स्ना	स्नात्वा	प्रस्नाय
भज्	भक्त्वा	विभज्य	स्मृ	स्मृत्वा	विस्मृत्य
भी	भीत्वा	संभीय	स्वप्	सुप्त्वा	संसुप्य
भुज्	भुक्त्वा	उपभुज्य	हन्	हत्वा	निहत्य
भू	भूत्वा	संभूय	हस्	हसित्वा	विहस्य
मथ्	मथित्वा	विमथ्य	हा	हित्वा	विहाय
मन्	मत्वा	अनुमत्य	हु	हुत्वा	आहुत्य
मा	मित्वा	प्रमाय	ह्वे	हूत्वा	आहूय

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—इन्द्र को आगे रखकर वे लोग ब्रह्मा के स्थान पर गए। २—मुझे खून से पोतकर वृक्ष के नीचे फेंककर, ऋष्यमूक पर्वत पर चले जाओ। ३—वह भाग्य को कोस कर घर को रवाना हो गया। ४—उस पशु को राक्षस समझ कर ब्राह्मण ने डर से उसे पृथ्वी पर फेंक दिया। ५—बहेलिए को आता हुआ देखकर सारे पशु भयभीत

होकर भाग गए। ६—यह समाचार बता करके तुम कब आए? ७—दृढ़ संकल्प करके अपना कार्य आरम्भ करो। ८—धूर्तों की बातें सुनकर मूर्ख व्यक्ति ने बकरे को पृथ्वी पर रख दिया। ९—पुस्तकों को हाथ में लेकर विद्यालय की ओर चला गया। १०—दवा को उबाल कर पियो। ११—दुष्ट दुःख देकर सुख का अनुभव करता है। १२—सज्जन दूसरों का उपकार करके सुखी होते हैं। १३—शकुन्तला ने लम्बी साँस लेकर करुण कथा सुनाई। १४—अभीष्ट वस्तु को पाकर सभी सुखी होते हैं। १५—वह छिपकर देखता है।

णमुल् प्रत्यय

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च। ३।४।२२। नित्य वीप्सयोः। ८।१।४।

बार बार करने का भाव सूचित करने के लिए क्त्वा प्रत्ययान्त अथवा णमुल् प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग किया जाता है और इन प्रत्ययों के होने पर शब्द दो बार रखा जाता है। यथा—वह बार-बार याद करके राम को प्रणाम करता है। यहाँ याद करने की क्रिया बार-बार होती है, अतएव संस्कृत में कहेंगे—"सः स्मारं स्मारं प्रणमति रामम्" अथवा "स स्मृत्वा स्मृत्वा प्रणमति रामम्"। याद करने की क्रिया प्रणाम करने की क्रिया के पूर्व होती है। इसी प्रकार—

पायं पायं अथवा पीत्वा पीत्वा—पा (पी-पी कर अर्थात् बार-बार पीकर)

भोजं भोजं अथवा भुक्त्वा भुक्त्वा—भुज् (खा खाकर अर्थात् बार-बार खाकर)

श्रावं श्रावं अथवा श्रुत्वा श्रुत्वा—श्रु (सुन सुनकर अर्थात् बार बार सुनकर)

लाभं लाभं अथवा लब्ध्वा लब्ध्वा—लभ् (पा-पाकर अर्थात् बार-बार पाकर)

गामं गामं अथवा गत्वा गत्वा—गम् (जा-जाकर अर्थात् बार-बार जाकर)

जागरं जागरं अथवा जागरित्वा जागरित्वा—जागृ (जग जगकर अर्थात् बार-बार जगकर)

णमुल् प्रत्यय का 'अम्' धातु में जोड़ा जाता है। आकारान्त धातु में णमुल् के अम् और इस अ के बीच 'य' जोड़ा जाता है। जैसे दायं दायं; इसी प्रकार पायं, पायं स्नायं स्नायं। प्रत्यय में ण् होने के कारण पूर्वस्वर की वृद्धि भी होती है। यथा स्मृ + अम् = स्मारम्; श्रु + अम् = श्रौ + अम् = श्रावम् इत्यादि।

णमुल् प्रत्ययान्त शब्द के रूप नहीं चलते। यह अव्यय होता है।

कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये। ३।४।२९।

दृश् एवं विद् धातु के कर्म के बाद दृश् + णमुल् = दर्शम्, विद् + णमुल् वेदम्, जोड़ दिया जाता है जब कि उस कर्म की सारी जाति का बोध कराना अभीष्ट होता है। यथा—

कन्यादर्शं वरयति—जितनी कन्याओं को देखता है उन सब को वरण कर लेता है।

ब्राह्मणवेदं भोजयति—जितने ब्राह्मणों को जानता है उन सबों को खिलाता है।

यावति विन्दजीवोः।३।४।३०।

'विद्' (पाना) + णमुल् = वेदम् और जीव् (जीना) + णमुल् = जीवम् यावत् के बाद साकल्य का ही बोध कराने के लिए जोड़ दिये जाते हैं। जैसे—

यावद्वेदं भुंक्ते—वह जितना पाता है उतना खाता है।

यावज्जीवमधीते—वह जब तक जीता है, तब तक अध्ययन करता है।

चर्मोदरयोः पूरे।३।४।३१।

चर्म और उदर के बाद पूर् + णमुल् = 'पूरम्' जोड़ दिया जाता है। जैसे—

उदरपूरं भुंक्ते—पेट भर खाता है।

चर्मपूरं स्तृणाति—चमड़े को ढक लेने भर को फैलाता है।

शुष्कचूर्णरुक्षेषु पिषः ३।४।३५।

शुष्क, चूर्ण और रुक्ष शब्दों के बाद पेपम् (पिप् + णमुल्) जोड़ दिया जाता है। इसके साथ ही साथ पिप् (पीसना) धातु भी किसी न किसी लकार में प्रयुक्त होती है। यथा—चूर्णपेषं पिनष्टि—वह यहाँ तक पीसता है कि बिल्कुल चूर-चूर हो जाता है।

इसी प्रकार शुष्कपेषं पिनष्टि, रुक्षपेषं पिनष्टि।

समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः।३।४।३६।

समूल, अकृत और जीव के बाद 'घातम्' (हन् + णमुल्), कारम् (कृ + णमुल्), ग्राहम् (ग्रह् + णमुल्) जोड़ दिए जाते हैं और साथ ही साथ हन्, कृ एवं ग्रह् धातु भी किसी न किसी लकार में प्रयुक्त होती है। यथा—

समूलघातं हन्ति—वह बिल्कुल जड़ से नाश कर देता है।

अकृतकारं करोति—वह कभी भी न हुई चीज को कर डालता है।

तं जीवग्राहं गृह्णाति—वह उसको जीता जागता पकड़ लाता है।

इसी प्रकार 'घातम्' (हन् + णमुल्) और 'पेषम्' (पिष् + णमुल्) संज्ञा के बाद जोड़े जाते हैं और यह सूचित करते हैं कि वह संज्ञा हन् और पिष् क्रिया के सम्पादन में साधनभूत हैं। यथा—

पादघातं हन्ति—वह पैर से मारता है।

उदपेषं पिनष्टि—वह पानी से पीसता है।

उपमाने कर्मणि च। ३।४।४५।

कभी-कभी तुल्यता या सादृश्य का बोध कराने के लिए णमुल् प्रत्यय का प्रयोग उस संज्ञा के बाद होता है जिससे सादृश्य दिखलाना होता है। यथा—

अजनाशं नष्टः—वह बकरे के समान नष्ट हो गया।

पार्थसंचारं चरति—वह पार्थ के समान चलता है।

घृतनिधायं निहितं जलम्—घी के समान जल रक्खा गया था।

हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम्। ३।४।४९।

हन्, तड् इत्यादि हिंसार्थक धातुओं का णमुलन्त रूप संज्ञाओं के बाद प्रयुक्त होता है यदि णमुलन्त तथा प्रधान क्रिया का कर्म समान हो और क्त्वान्त रूप प्रयोग करने की दशा में वह संज्ञा तृतीया में प्रयुक्त होती हो। यथा—

दण्डोपघातं गाः कालयति—गायों को डण्डे से मारकर वह उन्हें एकत्र करता है।

व्रजोपरोधं गाः स्थापयति—वह गायों को इस प्रकार रखता है कि सब की सब बाड़े में आ जाती हैं।

स्वांगेऽध्रुवे। ३।४।५४।

शरीरावयवबोधक शब्दों के बाद अवयव की चंचलता प्रकट करने के लिए णमुलन्त प्रयुक्त होता है। यथा—

भ्रूविक्षेपं कथयति (वृत्तान्तम्)—वह अपनी भौं हर दिशा में चलाता हुआ वृत्तान्त कहता है।

परिक्लिश्यमाने च। ३।४।५५।

जब किसी कार्य को सम्पादित करने में शरीर का कोई अवयव आहत हो जाता है अथवा पीड़ित होता है, तब उस अवयव के बाद णमुलन्त शब्द का प्रयोग कर्मकारक के अर्थ में होता है। यथा—

उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते—वे लोग इस प्रकार युद्ध करते हैं कि उनका सारा वक्षःस्थल पीडित हो उठता है।

नाम्न्यादिशिग्रहोः। ३।४।५८।

आ + दिश् के साथ एवं ग्रह् के साथ णमुल् प्रत्यय 'नामन्' के बाद कर्मकारक के अर्थ में आता है। यथा—

नामग्राहं मामाह्वयति—वह मेरा नाम लेकर पुकारता है।

अन्यथैवङ्कथमित्थंसु सिद्धा प्रयोगश्चेत्।३।४।२७।

अन्यथा, एवं, कथं, इत्थं शब्द जब कृ धातु के पूर्व आवें और कृ धातु का अर्थ वाक्य में इष्ट न हो और केवल अव्ययों का अर्थ प्रकट करना ही अभीष्ट हो तो भी णमुल् प्रयुक्त होता है। यथा—अन्यथाकारं ब्रूते—वह दूसरी ही तरह बोलता है।

इसी प्रकार एवङ्कारं (इस तरह), कथङ्कारं (किसी तरह), इत्थङ्कारं (इस तरह)।

स्वादुमि णमुल्।३।४।२६।

स्वादु के अर्थ में कृ धातु में णमुल् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। इसी प्रकार सम्पन्नकारं, लवणङ्कारम्।

निमूलसमूलयोः कषः।३।४।३४।

जब निमूल और समूल कष् के कर्म हों तो कष् में णमुल् जुड़ता है। यथा—

निमूलकाषं कषति, समूलकाषं कषति (समूल अर्थात् जड़ से गिरा देता है)।

समासत्तौ ।३।४।५०।

यदि धातु के पूर्व आने वाले उपपद तृतीया या सप्तमी विभक्ति का अर्थ प्रकट करते हों तो धातु के बाद णमुल् प्रत्यय लगता है और समस्त पद सामीप्य अर्थ को ध्वनित करता है। यथा—केशग्राहं युध्यन्ते (केशों को पकड़ कर युद्ध कर रहे हैं)।

कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

ण्वुल्तृचौ ।३।१।१३३।

किसी भी धातु के बाद ण्वुल् (वु = अक) और तृच् (तृ) प्रत्यय उस धातु से सूचित कार्य के करने वाले (Agent) के अर्थ में जोड़े जाते हैं। उदाहरणार्थ कृ धातु से सूचित अर्थ हुआ 'करना'। करने वाला यह भाव प्रकट करने के लिए कृ + ण्वुल् = कृ + अक = कारक शब्द हुआ और कृ + तृच् = कृ + तृ = कर्तृ शब्द हुआ। इसी प्रकार पठ् से पाठक, पठितृ, दा से दायक, दातृ, पच् से पाचक, पक्तृ; हृ से हारक, हर्तृ इत्यादि। उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो है कि ण्वुल् के पूर्व धातु में वृद्धि तथा तृच् के पूर्व धातु में गुण होता है।

सूचना—तुमुन् की तरह ण्वुल् प्रत्यय भी क्रियार्थ प्रयुक्त होता है[1]। यथा—बालकं दर्शको याति (बालक को देखने के लिए जाता है)।

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ।३।१।१३४।

नन्दि आदि (नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वर्धि, शोभि, रोचि के णिजन्त रूप) धातुओं के बाद ल्यु (अन), ग्रहि आदि (ग्राही, उत्साही, स्थायी, मन्त्री, अयाची, अवादी, विषयी, अपराधी इत्यादि) के बाद णिनि (इन्); पच् आदि (पचः, वदः, चलः, पतः, जरः, मरः, क्षमः, सेवः, व्रणः, सर्पः आदि) धातुओं के बाद अच् (अ) लगाकर कर्तृबोधक शब्द बनाये जाते हैं। यथाः—

नन्द् + ल्यु = नन्दनः (नन्दयतीति नन्दनः)।

इसी प्रकार वाशनः, मदनः, दूषणः, साधनः, वर्धनः, शोभनः, रोचनः।

गृह्णातीति ग्राही (ग्रह् + इन् = ग्राहिन्)।

पच् + अच् (अ) = पचः (पचतीति पचः)।

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ।३।१।१३५।

जिन धातुओं की उपधा में इ, उ, ऋ, लृ में से कोई स्वर हो, उनके बाद तथा

---

१. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ।३।३।१०।

ज्ञा (जानना), प्री (प्रसन्न करना) और कॄ (बिखेरना) के बाद कर्तृवाचक क (अ) प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

क्षिप् + क = क्षिपः (क्षिपतीति क्षिपः—फेंकने वाला)।

इसी प्रकार लिखः लिखने वाला), बुधः (समझने वाला), कृशः (दुर्बल), ज्ञः जानने वाला), प्रियः (प्रसन्न करने वाला), किरः (बिखेरने वाला)।

आतश्चोपसर्गे ।३।१।१३६।

आकारान्त धातु (तथा ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होने वाली जो धातु आकारान्त हो जाती है) के पूर्व भी उपसर्ग रहने पर 'क' प्रत्यय जुड़ता है।

यथा—प्रजानातीति प्रज्ञः (प्रज्ञा + क)।

कर्मण्यण् ।३।२।१।

कर्म के योग में धातु आने पर कर्तृवाचक अण् (अ) प्रत्यय होता है; यथा कुम्भं करोतीति कुम्भकारः (कुम्भ + कृ + अण्):।

भारं हरतीति भारहारः (भार + हृ + अण्)। अण् के पूर्व वृद्धि हो जाती है।

सूचना—अण् कर्मणि च।

कर्म के योग में अण् प्रत्यय क्रियार्थ तुमुन् की तरह प्रयुक्त होता है। जैसे, कम्बल दायो याति (कम्बल देने के लिए जाता है)।

आतोऽनुपसर्गे कः ।३।२।३।

परन्तु आकारान्त धातु होने पर और उसके पूर्व कोई उपसर्ग न रहने पर कर्म के योग में धातु के बाद क (अ) प्रत्यय लगता है, अण् नहीं। यथा—गोदः (गो + दा + क) = गां ददाति।

परन्तु गोसन्दायः (गो + सम् + दा + अण्) = गाः सन्ददाति।

कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् (वा०)

मूलविभुज, नखमुच, काकग्रह, कुमुद, महीध्र, कुध्र, गिरिध्र आदि शब्दों के बाद भी इसी अर्थ में क प्रत्यय जुड़ता है।

अर्हः ।३।२।१२।

कर्म के योग में अर्ह् धातु के बाद अच् (अ) प्रत्यय लगता है, अण् नहीं।

यथा—पूजामर्हतीति पूजार्हः ब्राह्मणः (पूजा + अर्ह् + अच्)।

चरेष्टः ।३।२।१६।

चर् के पूर्व, अधिकरण का योग होने पर धातु से कर्तृवाचक शब्द बनाने के लिए ट (अ) प्रत्यय जोड़ते हैं। यथा—

कुरुषु चरतीति—कुरुचरः (कुरु + चर् + ट)

भिक्षासेनादायेषु च ।३।२।१७।

चर् के पूर्व भिक्षा, सेना, आदाय शब्दों में से किसी का योग होने पर भी ट प्रत्यय लगता है। यथा—

भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः (भिक्षा + चर् + ट)।

सेनां चरति (प्रविशतीति) सेनाचरः।

आदाय (गृहीत्वा) चरति (गच्छतीति) आदायचरः।

कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु। ३।२।२०।

कृ धातु के पूर्व कर्म का योग होने पर और हेतु आदत (ताच्छील्य) अथवा अनुकूलता (आनुलोम्य) का बोध होने पर ट प्रत्यय लगता है, अण् नहीं। यथा—यशः करोतीति यशस्करी विद्या—यश पैदा करने वाली विद्या। (यहां विद्या यश को हेतु है, इसलिए ट प्रत्यय हुआ)।

इसी प्रकार श्राद्धं करोतीति श्राद्धकरः (श्राद्ध करने की आदत वाला)।

वचनं करोतीति वचकरः (वचनानुकूल कार्य करने वाला)। दिवविभरनिशाप्रभा-भास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुर-रुष्षु। ३।२।२१।

यदि कृ धातु के पूर्व दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, अन्त, अनन्त आदि, बहु, नान्दी, किं, लिपि, लिबि, बलि, भक्ति, कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, संख्या (संख्यावाचक शब्द,), जङ्घा, बाहु, अहर् (अहस्), यत्, तत्, धनुर् (धनुष्), अरुष् आदि कर्मरूप में आवें तो ट प्रत्यय जुड़ता है, अण् नहीं। यथा—दिवाकरः, विभाकरः, निशाकरः, बहुकरः, एककरः, धनुष्करः, अरुष्करः, यत्करः, तत्करः इत्यादि।

एजेः खश्। ३।२।२८।

णिजन्त एज् धातु के पूर्व कर्म का योग होने पर खश् (अ) प्रत्यय लगता है। यथा—जनम् एजयतीति जनमेजयः (जन + एज् + खश्)।

अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्। ६।३।६७।

अरुष्, द्विषत् तथा अजन्त शब्द (यदि वे अव्यय नहीं हैं) के बाद खित् प्रत्यय में अन्त होने वाला शब्द आने पर बीच में एक म् आ जाता है। यथा जन + म् + एजयः = जनमेजयः।

यहां जन शब्द अकारान्त है, इसके बाद एजयः शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसमें खश् प्रत्यय जुड़ा है जो खित् है अतः बीच में म् आया है।

नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः। ३।२।२९।

ध्मा और धेट् के पूर्व यदि नासिका और स्तन कर्मरूप में हों तो इनके आगे खश् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

नासिकां ध्मायतीति नासिकन्धमः, स्तनं धयतीति स्तनन्धयः।

सूचना—खिद्यनव्ययस्य ।६।३।६६।

खिदन्त शब्दों के आगे आने पर पूर्वपद का दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता है और तब मुमागम होता है। इसीलिए नासिका में 'का' का आकार अकार में बदल गया।

उदिकूले रुजिवहोः । ३।२।३१।

उत्पूर्वक रुज् और वह् धातुओं के पूर्व यदि 'कूल' शब्द कर्म रूप में हो तो खश् प्रत्यय लगता है। यथा—

कूल + उद् + रुज् + खश् = कूलमुद्रुजः । इसी प्रकार कूलमुद्वहः ।

वहाभ्रे लिहः ।३।२।३२।

लिह् के पूर्व यदि वह (स्कन्ध) और अभ्र कर्मरूप में हों तो खश् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—वहं (स्कन्धं) लेढीति वहंलिहो गौः । इसी प्रकार अभ्रंलिहो वायुः ।

विध्वरुषोस्तुदः ।३।२।३५।

तुद् के पूर्व यदि विधु और अरुस् कर्मरूप में हों तो खश् प्रत्यय जुड़ता है।

यथा—विधुं तुदतीति विधुन्तुदः । इसी प्रकार अरुन्तुदः ।

असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ३।२।३६।

यदि दृश् के पूर्व असूर्य हो और तप् के पूर्व ललाट हो तो खश् प्रत्यय जुड़ता है। असूर्य में नञ् का सम्बन्ध दृश् धातु के साथ होता है। यथा—

सूर्यं न पश्यन्तीति असूर्यंपश्याः (राजदाराः) । इसी प्रकार ललाटन्तपः सूर्यः ।

प्रियवशे वदः खच् । ३।२।३८।

वद् धातु के पूर्व यदि प्रिय और वश शब्द कर्मरूप में आवें तो वद् धातु में खच् (अ) प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

प्रियं वदतीति प्रियंवदः (प्रिय + म् + वद् + खच्) ।

वशंवदः (वश + म् + वद् + खच्) ।

संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः । ३।२।४६। गमश्च । ३।२।४७।

भृ, तॄ, वृ, जि, धृ, सह्, तप्, दम् धातुओं के योग में तथा गम् धातु के योग में कर्मरूप कोई शब्द आने पर और पूरा शब्द किसी का नाम होने पर खच् (अ) प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरा (विश्व + म् + भृ + खच् + टाप्)—पृथ्वी का नाम ।

रथं तरतीति रथन्तरम् (रथ + म् + तॄ + खच्)—साम का नाम ।

पतिं वरतीति पतिंवरा—कन्या का नाम ।

शत्रुञ्जयतीति शत्रुञ्जयः—एक हाथी का नाम ।

युगन्धरः—पर्वत का नाम ।

शत्रुंसहः—राजा का नाम ।

परन्तपः—राजा का नाम।

अरिन्दमः—राजा का नाम।

द्विषत्परयोस्तापेः। ३।२।३९।

यदि ताप् के पूर्व द्विषत् और पर शब्द कर्मरूप में आवें तो ताप् धातु के आगे खच् प्रत्यय जुड़ता है। यथा द्विषन्तं परं वा तापयतीति द्विषन्तपः, परन्तपः।

वाचि यमो व्रते। ३।२।४०।

यदि व्रत का अर्थ प्रकट करना हो तो वाक् शब्द के उपपद होने पर यम् धातु के आगे खच् लगता है। यथा—

वाचं यच्छतीति वाचंयमो मौनव्रती इत्यर्थः।

क्षेमप्रियमद्रेऽण च। ३।२।४४।

यदि क्षेम, प्रिय और मद्र शब्द उपपद हों तो कृ धातु के आगे खच् लगता है और अण् भी। यथा—क्षेमङ्करः, क्षेमकारः, प्रियङ्करः, प्रियकारः, मद्रङ्करः, मद्रकारः।

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च। ३।२।६०. समानान्ययोश्चेति वाच्यम्। वा०।

क्सोऽपि वाच्यः। वा०।

दृश् धातु के पूर्व यदि त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्, अन्य तथा समान शब्दों में से कोई रहे और दृश् धातु का अर्थ देखना न हो तो उसके बाद कञ् (अ) प्रत्यय लगता है तथा विकल्प से क्विन् भी। यथा—तद् + दृश् + कञ् = तादृशः। इसी प्रकार त्यादृशः, यादृशः, एतादृशः, सदृशः, अन्यादृशः। क्विन् का लोप हो जाता है और धातु में कुछ नहीं जुड़ता है।

इसी अर्थ में क्स भी लगता है, क्स का स जुड़ता है। यथा—

तादृश् (तद् + दृश् + क्विन्)।

तादृक्ष् (तद् + दृश् + क्स)।

अन्यादृश् (अन्य + दृश् + क्विन्)।

अन्यादृक्ष (अन्य + दृश् + क्स) इत्यादि।

सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्। ३।२।६१।

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः।३।२।८९।

सत् (बैठना), सू (पैदा करना), द्विष् (वैर करना), द्रुह् (द्रोह करना) दुह् (दुहना), युज् (जोड़ना), विद् (जानना होना), भिद् (भेदना, काटना), छिद् (काटना, टुकड़े करना), जि (जीतना), नी (ले जाना) और राज् (शोभित होना) धातुओं के पूर्व कोई उपसर्ग रहे, इनके अनन्तर क्विप् प्रत्यय लगता है।

कृ धातु के पूर्व सु, कर्म, पाप, मन्त्र तथा पुण्य शब्दों के कर्मरूप में आने पर भी क्विप् प्रत्यय जुड़ता है। क्विप् का कुछ भी नहीं रहता, सब लोप हो जाता है। यथा—

द्युसुत् (स्वर्ग में बैठने वाला—देवता), प्रसूः (माता), द्विट् (शत्रु), मित्र ध्रुक् (मित्र से द्रोह करने वाला), गोधुक् (गाय दुहने वाला), अश्वयुक् (घोड़ा जोतने वाला), वेदवित् (वेद जानने वाला), गोत्रभित् (पहाड़ों को तोड़ने वाला-इन्द्र), पक्षच्छित् (पक्ष काटने वाला – इन्द्र), इन्द्रजित् (मेघनाद), सेनानी (सेनापति), सम्राट् (महाराज), सुकृत् , कर्मकृत् , पापकृत् , मन्त्रकृत् ।

कुछ अन्य धातुओं के बाद भी क्विप् प्रत्यय जुड़ता है। जैसे—

चि—अग्निचित् , स्तु—देवस्तुत् , कृ—टीकाकृत् , दृश् – सर्वदृश् , स्पृश—मर्मस्पृश् , सृज्—विश्वसृज् आदि ।

ब्रह्मभ्रूण वृत्रेषु क्विप् ।३।२।८७।

ब्रह्म, भ्रूण तथा वृत्र शब्दों के कर्म-रूप में हन् धातु के पूर्व होने पर क्विप् प्रत्यय जुड़ता है। जैसे—ब्रह्म + हन् + क्विप् = ब्रह्महा ।

इसी प्रकार, भ्रूणहा, वृत्रहा ।

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये । ३।२।७८। साधुकारिण्युपसंख्यानम् । वा० । ब्रह्मणि वदः । वा० । जातिवाचक संज्ञा (ब्राह्मण, हंस, गो आदि) के अतिरिक्त यदि कोई अन्य सुबन्त (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) किसी धातु के पहले आवे और ताच्छील्य (आदत) का भाव सूचित करना हो तो उस धातु के बाद णिनि (इन्) प्रत्यय लगता है। यथा—

उष्णं भोक्तुं शीलमस्य उष्णभोजी (उष्ण + भुज् + णिनि) – गरम-गरम खाने की जिसकी आदत हो।

यदि ताच्छील्य न सूचित करना हो तो यह प्रत्यय नहीं लगेगा। परन्तु कृ तथा वद् के पूर्व क्रमशः साधु तथा ब्रह्मन् शब्द होने पर ताच्छील्य अर्थ के अभाव में भी णिनि प्रत्यय जुड़ता है। यथा—साधुकारी, ब्रह्मवादी।

कुमारशीर्षयोर्णिनिः ।३।२।५१।

यदि हन् धातु के पूर्व कुमार और शीर्ष उपपद हो तो णिनि प्रत्यय जुड़ता है। यथा कुमारघाती। शिरस् शब्द का 'शीर्ष' भाव हो जाता है। इस प्रकार शीर्षघाती शब्द बनेगा।

मनः । ३।२।८२ ।

मन् के पूर्व सुबन्त रहने पर भी णिनि जुड़ता है, चाहे आदत का भाव सूचित करना हो या न करना हो। यथा—

पण्डितमात्मानं मन्यते इति पण्डितमानी (पण्डित + मन् + णिनि) ।

आत्ममाने खश्च ।३।२।८३।

अपने आप को कुछ मानने के अर्थ में खश् प्रत्यय भी होता है। खिदन्त शब्द के पूर्व म् आ जाता है। यथा—पण्डितम्मन्यः ।

सप्तम्यां जनेर्डः ।३।२।९७।

अधिकरण पूर्व में रहने पर जन् धातु के बाद प्रायः ड (अ) प्रत्यय जुड़ता है। यथा—प्रयागे जातः प्रयागजः; मन्दुरायां जातो मन्दुरजः।

पञ्चम्यामजातौ ।३।२।९८।

जाति-वर्जित पञ्चम्यन्त उपपद होने पर भी ड जुड़ता है। यथा—

संस्काराज्जातः—संस्कारजः ।

उपसर्गे च संज्ञायाम् ।३।२।९९।

पूर्व में उपसर्ग होने पर भी जन् में ड लगता है (यदि बना हुआ शब्द किसी का नाम विशेष हो तो)। यथा—प्रजा (प्रजन् + ड + टाप्)।

अनौ कर्मणि ।३।२।१००।

अनुपूर्वक जन् धातु के पूर्व कर्म उपपद होने पर भी यदि ड प्रत्यय जुड़ता है। यथा—पुंमासमनुरुध्य जाता पुमनुजा।

अन्येष्वपि दृश्यते ।३।२।१०१।

अन्य उपपदों के पूर्व में होने पर भी जन् में ड लगता है। यथा—अजः, द्विजः इत्यादि। अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ।३।२।४८। सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम्। वा०। उरसो लोपश्च। वा०। सुदुरोधिकरणे। वा०।

अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व, अनन्त, सर्वत्र, पन्न, उरस् और अधिकरण अर्थ में सु तथा दुः के बाद गम् धातु में ड प्रत्यय लगता है। यथा—

अन्तगः, अत्यन्तगः, अध्वगः, दूरगः, पारगः, सर्वगः, अनन्तगः, सर्वत्रगः, पन्नगः, उरगः, (सर्पः) सुगः (सुखेन गच्छत्यत्रेति), दुर्गः (दुःखेन गच्छत्यत्रेति)। सूचना—उरस् के स् का लोप हो जाता है।

शील-धर्म-साधुकारिता वाचक कृत्

(१) आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ।३।२।१३४। तृन् ।३।२।१३५।

शील, धर्म तथा भली प्रकार सम्पादन—इनमें से किसी भी बात का भाव लाने के लिए किसी भी धातु के बाद तृन् (तृ) प्रत्यय प्रयुक्त होता है यथा—कृ + तृन् = कर्तृ—कर्ता कटम् (जो चटाई बनाया करता है अथवा जिसका धर्म चटाई बनाना है अथवा जो चटाई भली प्रकार बनाता है)।

(२) अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच् ।३।२।१३६।

अलंकृ, निराकृ, प्रजन्, उत्पच्, उत्पत, उन्मद्, रुच्, अप्-त्रप्, वृत्, वृध्, सह, चर् धातुओं के बाद उपर्युक्त अर्थ में ही इष्णुच् (इष्णु) प्रत्यय लगता है। जैसे—

अलङ्करिष्णुः (अलंकृत करने वाला); निराकरिष्णुः (अपमान करने वाला), प्रजनिष्णुः (पैदा करने वाला); उत्पचिष्णुः (पकाने वाला);

उत्पतिष्णुः (ऊपर उड़ने वाला); उन्मदिष्णुः (उन्मत्त होने वाला);
रोचिष्णुः (अच्छा लगने वाला); अपत्रपिष्णुः (लज्जा करने वाला);
वर्तिष्णुः (विद्यमान रहने वाला); वर्धिष्णुः (बढ़ने वाला);
सहिष्णुः (सहनशील); चरिष्णुः (भ्रमरशील)।

(३) निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् । ३।२।१४६ । निन्द, हिंस, क्लिश्, खाद्, विनाश्, परिक्षिप्, परिरट्, परिवाद्, व्ये, भाष्, असूय धातुओं के बाद उपर्युक्त ही भावों को लाने के लिए वुञ् (अक) प्रत्यय लगता है । यथा—

निंदकः, हिंसकः, क्लेशकः, खादकः, विनाशकः, परिक्षेपकः, परिरटकः, परिवादकः, व्यायकः, भाषकः, असूयकः ।

(४) चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् । ३।२।१४८ । क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च । ३।२।१५१ ।

चलना, शब्द करना अर्थ वाली अकर्मक धातुओं के बाद तथा क्रोध करना, आभूषित करना अर्थों वाली धातुओं के बाद शील आदि अर्थ में युच् (अन) प्रत्यय लगता है । यथा—

चलितुं शीलमस्य सः चलनः (चल् + युच्) ।

(५) जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ।३।२।१५५। जल्प् , भिक्ष् , कुट्ट, लुण्ट् (लूटना) और वृ (चाहना) के बाद शील, धर्म और साधुकारिता का द्योतक षाकन् (आक) प्रत्यय प्रयुक्त होता है । यथा—जल्पाकः (बहुत बोलने वाला), भिक्षाकः (भिखारी), कुट्टाकः (काटने वाला), लुण्टाकः (लूटने वाला), वराकः (बेचारा) ।

(६) स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्यः आलुच् । ३।२।१५८ ।

शीङो वाच्यः । वा० । स्पृह्, ग्रह्, पत, दय्, शी धातुओं के बाद तथा निद्रा, तन्द्रा, श्रद्धा के बाद आलुच् (आलु) जोड़ा जाता है । यथा—स्पृहयालुः, गृहयालुः, पतयालुः, दयालुः, शयालुः, निद्रालुः, तन्द्रालुः, श्रद्धालुः ।

(७) सनाशंसभिक्ष उः । ३।२।१६८ ।

सन्नन्त (इच्छावाची) धातु तथा आशंस् और भिक्ष् के बाद उ प्रत्यय प्रयुक्त होता है । यथा—

कर्तुमिच्छति चिकीर्षुः, आशंसुः, भिक्षुः ।

(८) भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् । ३।२।१७७ । अन्येभ्योऽपि दृश्यते । ३।२।१७८ ।

भ्राज, भास्, धुर्, विद्युत्, ऊर्ज, पृ, जु, ग्रावस्तु तथा अन्य धातुओं के भी बाद क्विप् प्रयुक्त होता है । यथा—

विभ्राट्, भाः, धूः, विद्युत्, ऊर्क्, पूः, जूः, ग्रावस्तुत्, दित् , श्रीः, धीः, प्रतिभूः इत्यादि ।

खलर्थ कृत् प्रत्यय

(१) ईषद्दुःसुषुकृच्छ्रार्थेषु खल् ।३।३।१२६।

कठिन और सरल के भाव का बोध कराने के लिए धातुओं के बाद खल् (अ) प्रत्यय जोड़ा जाता है। इस भाव को प्रदर्शित करने के लिए सु और ईषत् शब्द (सुखार्थ) तथा दुर् (दुःखार्थ) धातु के पूर्व जुड़ रहते हैं। यथा—सुखेन कर्तुं योग्यः सुकरः (सुकृ + खल्)—सुकरः कटो भवता = चटाई आप से आसानी से बन सकती है। ईषत्करः—ईषत्करः कटो भवता—चटाई आप से अनायास ही बन सकती है। दुःखेन कर्तुंयोग्यः दुष्करः (दुष्कृ + खल्)—दुष्करः कटो भवता—चटाई आप से मुश्किल से (दुःख से) बन सकती है।

(२) आतो युच् ।३।३।१२८।

आकारान्त धातुओं के बाद खल् के अर्थ में युच् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—सुखेन पातुं योग्यः सुपानः, ईषत्पानः। इसी प्रकार दुष्पानः!

भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्यः। वा०।

इसी प्रकार दुःशासनः, दुर्योधनः, दुर्वहः, सुवहः, ईषद्वहः इत्यादि तथा स्त्रीलिङ्ग दुष्करा, दुर्वहा आदि तथा नपुं० दुष्करं, दुर्वहं आदि रूप होते हैं।

उणादि प्रत्यय

उणादि का अर्थ है—उण् आदि प्रत्यय। अर्थात् उस वर्ग के प्रत्यय जिनका पहला उण् है।

उणादयो बहुलम्। ३।३।१।

उणादि का प्रयोग बहुल है—कभी किसी अर्थ में, कभी किसी अर्थ में। उदाहरणार्थ—

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्। उणादि, सूत्र १।

करोतीति 'कारुः' (कृ + उण्) शिल्पी कारकश्च।

वातीति 'वायुः' पिबत्यनेनेति 'पायुः' गुदम्' 'जयति रोगान् इति 'जायुः' औषधम्, मिनोति प्रक्षिपति देहे ऊष्माणमिति 'मायुः' पित्तम्, स्वदते रोचते इति 'स्वादुः', साध्नोति परकार्यमिति 'साधुः', अश्नुते इति 'आशु' शीघ्रम्।

पॄनहिकलिभ्य उपच्।

परुषम् (पॄ + उपच्), नहुषः (नह् + उपच्), कलुषम् (कल् + उपच्) इत्यादि।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—शकुन्तला रति को भी मात करती है। २—हृदय शोक से क्षुब्ध होने पर बिलाप से ही संभलता है। ३—विषयों का अन्त दुःखद होता है। ४—परिश्रमी व्यक्ति

के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। ५—इसने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से भेंट की। ६—मधुर आकृति वालों के लिए क्या मण्डन नहीं है? ७—जीवन में उत्थान-पतन तो लगा ही रहता है। ८—चटाई बनाना दुष्कर है। ९—जगत् में सौन्दर्य सुलभ है, गुण का अर्जन करना कठिन है। १०—महान पुरुषों की इच्छा ऊँची होती है। ११—इच्छाओं के लिए कुछ भी अगम्य नहीं हैं। १२—अविवेक आपत्तियों का घर है। १३—सरसिज सिवार से घिरा हुआ भी सुन्दर लगता है। १४—मरना मनुष्य का स्वभाव है। १५—पर्वत तूफान में भी निष्कम्प रहते हैं। १६—यह काम गुप्त रूप से करना कठिन है। १७—शिकारियों के लिए मृग पकड़ना कठिन नहीं है। १८—विद्या यशस्करी है। १९—सन्तान न होने के कारण दशरथ दुःखित हुए। २०—मैं ने माता के द्वारा दिए हुए पैसे को खर्च कर दिया। २१—आंखें चार होने से मुहब्बत हो ही जाती हैं। २२—इस प्रकार वह कथा समाप्त हुई। २३—वह निद्रा के अधीन हो गया। २४—गुप्त प्रेम परीक्षा करके ही करना चाहिए। २५—कायर निन्दा को प्राप्त होता है।

दत्ता + ढक् = दात्तेयः (दत्तायाः अपत्यं पुमान्)।

अत्रि + ढक् = आत्रेयः (अत्रेरपत्यं पुमान्)

(३) अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४।१।८४।

अश्वपति आदि (अश्वपति, शतपति, धनपति, गणपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धन्वपति, सभापति, प्राणपति, क्षेत्रपति) प्रतिपदिकों में अपत्य का अर्थ बताने के लिए अण् प्रत्यय लगाया जाता है। यथा—

गणपति + अण् = गाणपतम्।

(४) राजश्वशुराद्यत्। ४।१।१३७।

राजन् और श्वशुर शब्द के बाद अपत्यार्थ में यत् (य) प्रत्यय जुड़ता है। यथा—राजन् + यत् = राजन्यः (राजवंश वाले, क्षत्रिय)।

श्वशुर + यत् = श्वशुर्यः (साला)।

राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्। वा०।

राजन् शब्द में यत् प्रत्यय जाति के ही अर्थ में प्रयुक्त होता है।

मत्वर्थीय

हिन्दी के 'वान्', 'वाला' आदि अर्थ का बोध कराने वाले प्रत्ययों को मत्वर्थीय (मतुप् प्रत्यय के अर्थ वाले) कहते हैं।

(१) तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्। ५।२।९४। भूमनिन्दा प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। सम्बन्धेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः। वा०।

किसी वस्तु का होना किसी दूसरी वस्तु में सूचित करने के लिए जिस वस्तु का सूचित करना हो—उसके बाद मतुप् (मत्) प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा—

गो + मतुप् = गोमान् (गावः अस्य सन्ति इति)।

किसी वस्तु के बाहुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अधिकता अथवा सम्बन्ध का बोध कराने के लिए प्रायः मत्वर्थीय प्रयोग में लाए जाते हैं। यथा—

गोमान् (बहुत गायों वाला)।

ककुदावर्तिनी कन्या (कुबड़ी लड़की)। (मत्वर्थीय इनिः) रूपवान् (अच्छे रूप वाला)।

क्षीरी वृक्षः (जिसमें नित्य दूध रहता हो)। (मत्वर्थीय इनिः)

उदरिणी कन्या (बड़े पेट वाली लड़की) (,, ,,)

दण्डी (दण्ड के साथ रहनेवाला साधु) (,, ,,)

विशेषकर गुणवाची शब्दों के बाद ही मतुप् प्रत्यय लगता है। यथा—

गुणवान्, रसवान् इत्यादि।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः।८।२।९। झयः।८।२।१०। मतुप् प्रत्यय के पूर्व ऐसे शब्द होने पर जो म् अथवा अ, आ अथवा पाँचों वर्गों के प्रथम चार वर्णों में

अन्त होते हों या जिनकी उपधा म्, अ अथवा आ हो तो मतुप् के म् के स्थान में व् हो जाता है। यथा—विद्यावान, लक्ष्मीवान्, यशस्वान्, विद्युत्वान्, तडित्वान्। किन्तु यव आदि कुछ शब्दों में यह नियम नहीं लगता।

(२) अत इनि ठनौ ।५।२।११५।

अकारान्त शब्दों के बाद इनि (इन्) और ठन् (इक) भी लगते हैं। यथा—

दण्डी (दण्ड + इनि), दण्डिकः (दण्ड + ठन्)।

(३) तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ।५।२।३६।

तारका आदि (तारका, पुष्प, मंजरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कुड्मल, कन्टक, मुकुल, कुसुम, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, श्रद्धा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, अभ्र, पुलक, द्रोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक, अन्धकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, क्षुध्, सीमन्त, ज्वर, रोग, पण्डा, कज्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, फल, कञ्चुल, शृङ्गार, अंकुर, बकुल, कलङ्क, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, अङ्गार, प्रतिबिम्ब, प्रत्यय, दीक्षा, गर्ज आदि) शब्दों के बाद 'यह उत्पन्न (प्रकट) हो गया है जिसमें'—इस अर्थ को सूचित करने के लिए इतच् (इत) प्रत्यय जोड़ते हैं। यथा —

तारका + इतच् = तारकित (तारे निकल आए हैं जिसमें) पिपासित (प्यास है जिसमें); इसी प्रकार पुष्पित, कुसुमित आदि बनते हैं।

भावार्थ तथा कर्मार्थ

तस्य भावस्त्वतलौ। ५।१।११९। किसी शब्द से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए उस शब्द में त्व अथवा तल् (ता) जोड़ दिया जाता है। त्व में अन्त होने वाले शब्द सदा नपुंसकलिङ्ग होते हैं और तल् में अन्त होने वाले स्त्रीलिङ्ग। यथा—

गो + त्व = गोत्वम्,
गो + तल् = गोता,
शिशु + त्व = शिशुत्वम्,
शिशु + तल् = शिशुता।

(१) पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ।५।१।१२२।

पृथु आदि (पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु, उरु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिञ्चन, बाल, होड, पाक, वत्स, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, (क्षुद्र) शब्दों के बाद भाव का अर्थ प्रकट करने के लिए इमनिच् (इमन्) प्रत्यय भी विकल्प से प्रयुक्त होते हैं।

र ऋतो हलादेर्लघोः। ६।४।१६१।

जिस शब्द में उपर्युक्त प्रत्यय प्रयुक्त होता है, वह यदि व्यञ्जन से आरम्भ हो और उसके बाद ऋकार (मृदु, पृथु आदि) आवे तो उस ऋकार के स्थान में र हो जाता है। इमनिच् प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग होते हैं। यथा—

पृथु + इमनिच् = प्रथिमन् (महिमन् की तरह रूप चलेगा), पृथुत्वम् , पृथुता, म्रदिमन्, महिमन्, परिमन्, तनिमन्, लघिमन्, वहिमन् आदि ।

(२) वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ५।१।१२३।

वर्णवाची शब्द (नील, शुक्ल, आदि) के बाद तथा दृढ आदि (दृढ, वृढ, परिवृढ, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, धाम्र, कृष्ट, लवण, ताम्र, शीत, उष्ण, जड, वधिर, पण्डित, मधुर, मूर्ख, मूक, स्थिर) के बाद भाव का अर्थ प्रकट करने के लिए इमनिच् अथवा ष्यञ् प्रयोग में लाये जाते हैं। यथा—शुक्लस्य भावः शुक्लिमा, शौक्ल्यम् (अथवा शुक्लत्वं, शुक्लता) इसी प्रकार—
माधुर्यम् , मधुरिमा, दार्ढ्यम् , द्रढिमा, दृढत्व, दृढता आदि ।

ष्यञ् प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं ।

(३) गुणवचन ब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च ।५।१।१२४।

गुणवाची तथा ब्राह्मण आदि (ब्राह्मण, चोर, धूर्त, आराधय, विराधय, अपराधय, उपराधय, एकभाव, द्विभाव, त्रिभाव, अन्यभाव, संवादिन् , संवेशिन् , संभाषिन् , बहुभाषिन् , शीर्षघातिन् , विघातिन् , समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, वालिश, अलस, दुष्पुरुष, कापुरुष, राजन् , गणपति, अधिपति, दायाद, विषम विपात, निपात आदि) शब्दों के बाद कर्म या भाव अर्थ सूचित करने के लिए ष्यञ् (य) प्रत्यय प्रयुक्त किया जाता है । यथा—

ब्राह्मणस्य भाव कर्म वा = ब्राह्मण्यम् । इसी प्रकार—

चौर्यम् , धौर्त्यम् , आपराध्यम् , ऐकभाव्यम् , सामस्थ्यम् , कौशल्यम् , चापल्यम् , नैपुण्यम् , पैशुन्यम् , कौतूहल्यम् , वालिश्यम् , आलस्यम् , राज्यम् , आधिपत्यम् , दायाद्यम् , जाड्यम्-मालिन्यम् , मौढ्यम् आदि ।

(४) इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ।५।१।१३१।

इ, उ, ऋ अथवा ऌ में अन्त होने वाले शब्दों के बाद (यदि पूर्व वर्ण में लघु अक्षर हो; यथा—शुचि, मुनि आदि—पाण्डु नहीं) कर्म अथवा भाव अर्थ सूचित करने के लिए अण् (अ) प्रत्यय प्रयुक्त किया जाता है। यथा—शुचेर्भावः कर्म वा शौचम्; मुनेर्भावः कर्म वा मौनम् ।

(५) तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ।५।१।११५।

यदि किसी के तुल्य क्रिया करने का अर्थ हो तो जिसके समान क्रिया की जाती है, उसके बाद वति (वत्) प्रत्यय जुड़ता है । यथा—

ब्राह्मणेन तुल्यमधीते = ब्राह्मणवत् अधीते ।

(६) तत्र तस्येव ।५।१।११६।

यदि किसी में अथवा किसी के तुल्य कोई वस्तु हो, तब भी वति प्रत्यय प्रयुक्त होता है । यथा—

इन्द्रप्रस्थे इव प्रयागे दुर्गः = इन्द्रप्रस्थवत् प्रयागे दुर्गः ।

चैत्रस्य इव मैत्रस्य गावः = चैत्रवन्मैत्रस्य गावः (जैसी गाएँ चैत्र की हैं, वैसी ही मैत्र की हैं)।

(८) इवे प्रतिकृतौ ।५।३।९६।

यदि किसी के तुल्य किसी की मूर्ति अथवा चित्र हो या किसी के स्थान पर उसे रख लिया जाय तो उस शब्द के बाद इस अर्थ का बोध कराने के लिए कन् (क) प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

अश्व इव प्रतिकृतिः = अश्वकः (अश्व के तुल्य मूर्ति अथवा चित्र है जिसका)

पुत्रकः (पुत्र के स्थान पर किसी वृक्ष अथवा पक्षी को पुत्र मान लेना)।

समूहार्थ

तस्य समूहः ।४।२।३७। भिक्षादिभ्योऽण् ।४।२।३८।

किसी वस्तु के समूह का अर्थ बतलाने के लिए उस वस्तु के बाद अण् (अ) प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा—

बकानां समूहः = बाकम्।

काकानां समूहः = काकम्।

वृकाणां समूहः = वार्कम् (भेड़ियों का समूह)

इसी प्रकार मायूरम्, कापोतम्, भैक्षम्, गार्भिणम्।

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ।४।२।४३। गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्। वा०।

ग्राम, जन, बन्धु, गज, सहाय शब्दों के बाद समूह के अर्थ के लिए तल् (ता) प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा—

ग्रामता (ग्रामों का समूह), जनता, बन्धुता, गजता, सहायता।

सम्बन्धार्थ व विकारार्थ

तस्येदम् ।४।३।१२०।

'यह इसका है'—इस अर्थ को सूचित करने के लिए जिसका सम्बन्ध बताना हो उसके बाद अण् प्रयुक्त करते हैं। यथा—

उपगोरिदम् (उपगु + अण्) = औपगवम्।

देवस्य अयम् = दैवः।

ग्रीष्म + अण् = ग्रैष्मम्।

अण् प्रत्ययान्त शब्दों का लिङ्ग सम्बद्ध वस्तु के लिङ्ग के अनुसार बदलता है।

(१) हलसीराट्ठक् ।४।३।१२४।

सम्बन्ध अर्थ सूचित करने के लिए हल और सीर शब्द के बाद ठक् (इक) लगता है। यथा—हालिकम्, सैरिकम्।

(२) तस्य विकारः ।४।३।१३४।

जिस वस्तु से निर्मित (विकार स्वरूप) कोई दूसरी वस्तु दिखानी हो तो उसके बाद अण् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

भस्मनो विकारः = भास्मनः (भस्म से बना हुआ)

मार्त्तिकः (मिट्टी से बना हुआ, मिट्टी का विकार)

(३) अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ।४।३।१३५।

प्राणिवाचक, ओषधिवाचक और वृक्षवाचक शब्दों के बाद यही प्रत्यय विकार बताने के साथ ही साथ 'अवयव' का भी अर्थ सूचित करता है। यथा—

मयूरस्य विकारः अवयवो वा = मायूरः ।

मर्कटस्य ,, ,, = मार्कटः ।

मूर्वायाः ,, ,, = मौर्वं काण्डम् , भस्म वा ।

पिप्पलस्य ,, ,, = पैप्पलः ।

(४) ओरञ् ।४।३।१३९।

उ, ऊ में अन्त होने वाले शब्दों के बाद अवयव का अर्थ बतलाने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा—

देवदारु + अञ् = दैवदारम् ।

(५) मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ।४।३।१४३

विकार अथवा अवयव का अर्थ बतलाने के लिए विकल्प से मयट् प्रत्यय भी प्रयुक्त हो सकता है, परन्तु खाने पहनने की वस्तुओं के बाद नहीं। यथा—

अश्मनः विकारो अवयवो वा = आश्मनम् , अश्ममयम् वा ।

इसी प्रकार भास्मनम् भस्ममयम् वा, सौवर्णम् सुवर्णमयम् वा ।

परिमाणार्थ तथा संख्यार्थ

परिमाणार्थ प्रत्यय परिमाण बताने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

(१) यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ।५।२।३९। किमिदंभ्यां वो घः ।५।२।४०।

यत् , तत् , एतत् के बाद वतुप प्रत्यय प्रयुक्त होता है। वतुप् का व 'घ' (इय्) में परिवर्तित हो जाता है। यथा—कियत् , इयत् आदि ।

(२) प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रज्वक्तव्यः । वा० ।

प्रमाण, परिमाण और संख्या का संशय हटाकर निश्चय स्थापित करने के लिए मात्रच् प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा—

रामः प्रमाणम् = राममात्रम् (निश्चय ही राम प्रमाण है)।

सेरमात्रम् (सेर ही भर)।

पञ्चमात्रम् (पाँच ही)।

(३) पुरुषहस्तिभ्यामण् च ।५।२।३८।

पुरुष और हस्तिन् के बाद अण् प्रत्यय प्रयुक्त कर प्रमाण बताया जाता है। यथा—

पौरुषम् (जलमस्यां सरिति) = इस नदी में आदमी भर (आदमी के डूबने पर) जल है।

इसी प्रकार हास्तिनम् (जलम्)

(४) किमः संख्यापरिमाणे डति च ।५।२।४१।

किम् शब्द के बाद डति (अति) लगाकर संख्या और परिमाण का भी बोध कराया जाता है। यथा—किम् + डति = कति (कितने)।

(५) संख्याया अवयवे तयप् ।५।२।४२।

संख्या शब्द के बाद तयप् प्रयुक्त कर संख्या समूह का बोध कराया जाता है। यथा द्वितयम् , त्रितयम् आदि।

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ।५।२।४३।

उपर्युक्त अर्थ में द्वि और त्रि के बाद अयच् भी प्रयुक्त होता है। यथा—द्वयम् , त्रयम्।

हितार्थ

तस्मै हितम् ।५।१।५।

जिसके हित की कोई वस्तु हो, उसके बाद छ (ईय) प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा—वत्सेभ्यः हितं दुग्धम् = वत्सीयम् दुग्धम् (बछड़ों के लिए दूध)।

शरीरावयवाच्च ।५।१।६। उगवादिभ्यो यत् ।५।१।२।

इसी अर्थ में शरीर के अवयव वाची शब्दों के बाद, तथा उकारान्त एवं गो आदि (गो, हविस् , अक्षर, विष, बर्हिस् , अष्टका, युग, मेधा, नाभि, श्वन् , कूप, दर, खर, असुर, वेद, बीज) के बाद 'यत्' प्रयुक्त होता है। यथा—दन्तेभ्यः हिता (ओषधिः) = दन्त्या (दन्त + यत्)। इसी प्रकार कण्ठ्यः गोभ्यः हितं = गव्यम् (गो + यत्), शरवे हितं = शरव्यम् (शरु + यत्) शून्यम् , शून्यम् , असुर्यम् , वेद्यम् , बीज्यम् आदि।

क्रियाविशेषणार्थ

(१) पञ्चम्यास्तसिल् ।५।३।७। पर्यभिभ्यां च ।५।३।९। सर्वोभयार्थाभ्यामेव । वा० ।

पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण के बाद तथा परि (सर्वार्थक) और अभि (उभयार्थक) उपसर्गों से बाद तसिल् (तस्) प्रयुक्त होता है। इस प्रत्यय के पूर्व तथा निम्नलिखित प्रत्ययों के पूर्व सर्वनाम के रूप में कुछ परिवर्तन हो जाता है। यथा—

त्वत्तः मत्तः, युष्मत्तः, अस्मत्तः, अतः, यतः, ततः, मध्यतः, परतः, कुतः, सर्वतः, इतः, अमुतः, उभयतः, परितः, अभितः।

(२) सप्तम्यास्त्रल् ।५।३।१०।

सप्तमी विभक्ति के अर्थ में सर्वनाम तथा विशेषण के बाद त्रल् प्रत्यय लगता है। जैसे—तत्र, यत्र, बहुत्र, सर्वत्र, एकत्र इत्यादि।

इदमो हः ।५।३।११।

इदम् में अल् न लगकर 'ह' लगता है और 'इह' रूप बनता है।

(३) सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा ।५।३।१५।

कब, जब आदि अर्थ प्रकट करने के लिए सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् तथा तद् शब्दों के अनन्तर 'दा' प्रयुक्त होता है। यथा—

सर्वदा, एकदा, अन्यदा, कदा, यदा, तदा।

दानीं च ।५।३।१८।

इसी अर्थ में 'दानीम्' भी प्रयुक्त होता है। यथा—कदानीम्, यदानीम्, तदानीम्, इदानीम् आदि।

(४) प्रकार वचने थाल् ।५।३।२३।

'प्रकार, अर्थ को बताने के लिए थाल् (था) प्रत्यय प्रयुक्त होता है। जैसे :—यथा, तथा आदि।

इदमस्थमुः ।५।३।२४। किमश्च ।५।३।२५।

इदम्, एतद् तथा किम् में 'थमु' प्रयुक्त होता है। यथा—

कथम्, इत्थम्।

(५) दिक्शब्देभ्यः सप्तमी पञ्चमी प्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ।५।३।२७।

आगे, पीछे आदि शब्दों का अर्थ बताने के लिए पूर्व आदि दिशावाची शब्दों के बाद प्रथमा, पञ्चमी तथा सप्तमी के अर्थ में अस्ताति (अस्तात) प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

पूर्व + अस्ताति = पुरस्तात्।

इसी प्रकार अधस्तात्, अवस्तात्, अवरस्तात्, उपरिष्टात्।

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः। ५।३।३५। पश्चात्। ५।३।३२।

उत्तराधरदक्षिणादातिः। ५।३।३४।

प्रथमा और सप्तमी का अर्थ बताने के लिए एनप् भी प्रयुक्त होता है। यथा—दक्षिणेन, उत्तरेण, अधरेण, पूर्वेण, पश्चिमेन। 'आति' भी प्रयुक्त होता है। यथा—पश्चात्, उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात्।

(६) संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ।५।४।१७।

'बार' शब्द का अर्थ बताने के लिए संख्यावाची शब्दों के बाद कृत्वसुच् (कृत्वस्) प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

पञ्चकृत्वः भुङ्क्ते (पाँच बार खाता है)।

इसी प्रकार— षट्कृत्वः, सप्तकृत्वः आदि।

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ।५।४।१८।

इसी अर्थ में द्वि, त्रि, चतुर् के बाद सुच् (स) जुड़ता है। यथा—

द्विः (दो बार), त्रिः (तीन बार), चतुः (चार बार)।

एकस्य सकृच्च ।५।४।१९।

इसी अर्थ में 'एक' में भी सुच् प्रयुक्त होता है और 'एक' के स्थान में 'सकृत्' आदेश हो जाता है। यथा—

एक + सुच् = सकृत् + सुच् = सकृत्।

विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ५।४।२०।

इसी अर्थ में बहु के बाद कृत्वसुच् और धा दोनों प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। यथा—

बहुकृत्वः, बहुधा—बहुत बार।

शैषिक

जिन अर्थों का बोध अपत्यार्थ, चातुरर्थिक, रक्ताद्यर्थक प्रत्ययों से नहीं होता, वे तद्धित अर्थ 'शेष' शब्द से बतलाये गए हैं।

शेषे। ४।२।९२।

'शेष' तद्धित अर्थों के लिए अण् आदि जोड़े जाते हैं। यथा—

चक्षुषा गृह्यते (रूपं) = चाक्षुषम् (चक्षुष् + अण्)।

श्रवणेन श्रूयते (शब्दः) = श्रावणः (श्रवण + अण्)।

अश्वैरुह्यते (रथः) = आश्वः।

चतुर्भिरुह्यते (शकटम्) = चातुरम्।

चतुर्दश्यां दृश्यते (रक्षः) = चातुर्दशम्।

(१) ग्रामाद्यखञौ।४।२।९४।

ग्राम शब्द के बाद शैषिक प्रत्यय 'य' और 'खञ्' (ईन) होते हैं। यथा—ग्राम्यः, ग्रामीणः।

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्।४।२।१०१।

द्यु, प्राच्, अपाच्, उदच्, प्रतीच् शब्दों के बाद 'यत्' होता है। यथा—

दिव्यम् , प्राच्यम् , अपाच्यम् , उदीच्यम् , प्रतीच्यम्।

अव्ययात्त्यप्।४।२।१०४। अमेहक्वतसित्रेभ्य एव। वा०। त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्। वा०। अमा, इह, क्व के बाद तथा नि के बाद, तसि-प्रत्ययान्त एवं त्रल् प्रत्ययान्त शब्दों के बाद त्यप् (त्य) प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा—

अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यः, नित्यः, ततस्त्यः, यतस्त्यः, कुत्रत्यः, तत्रत्यः, अत्रत्यः आदि।

(२) वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्। त्यदादीनि च।१।१।७३-७४।

जिस शब्द के स्वरों में प्रथम स्वर, आ, ऐ, औ हो, उन शब्दों को तथा त्यद् आदि (त्यद् , तद् , यद् , एतद् , इदम् , अदस् , एक, द्वि, युष्मद् , अस्मद् , भवत् , किम्) शब्दों को पाणिनि ने 'वृद्ध' की संज्ञा से अभिहित किया है। इन शब्दों के अनन्तर छ (ईय) प्रत्यय लगता है। यथा—

शाला + छ = शालीय; माला + छ = मालीयः तद् + छ = तदीय।

इस प्रकार यदीय, एतदीय, युष्मदीय, अस्मदीय, भवदीय आदि।

(३) युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् ।४।३।१। तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ।४।३।२।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों के अनन्तर उपर्युक्त अर्थ में 'छ' के अतिरिक्त अण् और खञ् भी विकल्प से प्रयुक्त होते हैं, परन्तु इनके प्रयुक्त होने पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान में युष्माक और अस्माक तथा एकवचन में तवक और ममक आदेश हो जाते हैं। यथा —

युष्मद्—युष्माक (+ अण्) = यौष्माक ।
युष्माक + खञ् = यौष्माकीण ।
तवक + अण् = तावक ।
तवक + खञ् = तावकीन ।
युष्मद् + छ = युष्मदीय ।
अस्मद्—अस्माक + अण् + आस्माक ।
अस्माक + खञ् = आस्माकीन (हमारा) ।
ममक + अण् = मामक ।
ममक + खञ् = मामकीन (मेरा) ।

(४) कालाट्ठञ् ।४।३।११।

कालवाची शब्दों के बाद शैषिक ठञ् प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा — मास + ठञ् (इक) = मासिक । इसी प्रकार सांवत्सरिक सायंप्रातिक, पौनःपुनिकः आदि ।

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ।४।३।१६।

सन्धिवेलाशब्द, सन्ध्या, अमावस्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् तथा ऋतुवाची शब्द (ग्रीष्म आदि) और नक्षत्रवाची शब्द के बाद अण् प्रयुक्त होता है। यथा—

सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, आमावास्यम्, त्रयोदशम्, चातुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रातिपदम्, ग्रैष्मम्, शारदम्, हैमन्तम्, शैशिरम्, वासन्तम्, पौषम् आदि ।

(५) सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च । ४।३।२३ ।

सायं, चिरं, प्राह्णे, प्रगे शब्दों के बाद तथा अव्ययों के बाद शैषिक ट्यु–ट्युल् (अन) प्रयुक्त होता है तथा शब्द और प्रत्यय के बीच में त् भी आता है। यथा—

सायं + त् + ट्युल् (अन) सायन्तनम् ।

इसी प्रकार चिरन्तनम्, प्राह्णतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम् इत्यादि ।

(६) द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ । ५।३।५७। अतिशायने तमबिष्ठनौ । ५।३।५५। दो में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तरप् और ईयसुन् प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है और दो से अधिक में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तमप् और इष्ठन् । यथा—

दो के लिए—लघु से लघीयस्, लघुतर ।

दो से अधिक के लिए—लघिष्ठ, लघुतम।

(७) किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ।५।४।११।

किम्, एत् प्रत्ययान्त (प्रगे आदि), अव्यय तथा तिङन्त के बाद तमप् + आमु (= तमाम्) प्रत्यय लगाया जाता है। यथा—

किन्तमाम्, प्रगेतमाम्, उच्चैस्तमाम् (खूब ऊँचा), पचतितमाम् (खूब अच्छी तरह पकाता है)। इसी प्रकार नीचैस्तमाम्, गच्छतितमाम्, दहतितमाम् आदि।

द्रव्यसम्बन्धी प्रकर्ष सूचित होने पर 'आमु' नहीं लगता है। यथा—उच्चैस्तमः तरुः।

(८) ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ।५।३।६७।

कुछ कमी का प्रदर्शन करने के लिए कल्पप् (कल्प), देश्य, देशीयर् (देशीय) प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। यथा—

विद्वत्कल्पः विद्वद्देश्यः विद्वद्देशीयः—कुछ कम विद्वान् पुरुष।

पञ्चवर्षकल्पः पञ्चवर्षदेश्यः पञ्चवर्षदेशीयः—कुछ कम पाँच बरस का। यजतिकल्पम्—जरा कम यज्ञ करता है।

(९) अनुकम्पायाम् ।५।३।७६।

अनुकम्पा का बोध कराने के लिए कन् (क) प्रत्यय लगाते हैं। यथा—पुत्रकः (बेचारा लड़का), भिक्षुकः (बेचारा भिखारी)।

(१०) कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः ।५।४।५०। अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्। वा०।

अस्य च्वौ ।७।४।३२। च्वौ च ।७।४।२६।

जब कोई वस्तु कुछ से कुछ हो जाए; जो पहले नहीं थी, वह हो जाय, तो च्वि प्रत्यय जोड़कर इस अर्थ का बोध कराया जाता है। यह प्रत्यय केवल कृ, भू और अस् धातु के ही योग में प्रयुक्त होता है।

च्वि का लोप हो जाता है परन्तु पूर्व पद का अकार अथवा आकार ईकार में परिवर्तित हो जाता है और यदि अन्य स्वर पूर्व में आवे तो वह दीर्घ हो जाता है। यथा—

अकृष्णः कृष्णः क्रियते = कृष्ण + च्वि + क्रियते = कृष्ण् + ई + क्रियते = कृष्णीक्रियते।

अब्रह्मा ब्रह्मा भवति 'ब्रह्मीभवति'।

अगङ्गा गङ्गा स्यात् 'गङ्गीस्यात्'।

इसी प्रकार शुचीभवति, पटूकरोति इत्यादि।

(११) [1]यदि किसी वस्तु में परिणत हो जाना प्रदर्शित करना हो तो च्वि के अतिरिक्त साति (सात्) प्रत्यय भी प्रयुक्त होते हैं। यथा :—

---

१. विभाषा साति कार्त्स्न्ये ।५।४।५२।

कृत्स्नं इन्धनम् अग्निर्भवति = इन्धनम् 'अग्निसात्' भवति, वा (ईन्धन आग हो जाता है)।

अग्निः भस्मसात् भवति वा = आग भस्म हो जाती है।

प्रकीर्णक

पूर्वोक्त अर्थों के अतिरिक्त निम्नलिखित अर्थों के लिए भी तद्धित प्रयुक्त होते हैं—

(१) तत्र भवः ।४।३।५३।

यदि किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की सत्ता हो तो जिस वस्तु में सत्ता होती है, उसके बाद अण् प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा—

स्रुघ्न + अण् = स्रौघ्नः (स्रुघ्ने भवः)—स्रुघ्न में वर्तमान है।

दिगादिभ्यो यत्। शरीरावयवाच्च। ४।३।५४–५५।

उपर्युक्त अर्थ में शरीर के अवयवों में तथा दिश्, वर्ग, पूग, पक्ष, पथिन्, रहस्, उखा, साक्षिन्, आदि, अन्त, मेध, यूथ, न्याय, वंश, काल, मुख और जघन शब्दों में यत् (य) जोड़ा जाता है। यथा—

दन्त्य, मुख्य, नासिक्य, दिश्य, पूग्य, वर्ग्यः (पुरुषः), पक्ष्यः (राजा), रहस्य (मन्त्रः), उख्यम्, साक्ष्यम्, आद्यः (पुरुषः), अन्त्य, मेध्य, यूथ्य, न्याय्य, वंश्य, काल्य, मुख्य (सेना आदि के अङ्ग के अर्थ में), जघन्य (नीच)। इनका लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होता है।

अव्ययीभावाच्च। ४।३।५९।

उपर्युक्त अर्थ में कुछ अव्ययीभाव समासों के बाद 'ञ्य' (य) जुड़ता है। यथा—परिमुखं भवम् 'पारिमुख्यम्'।

(२) सोऽस्य निवासः ।४।३।८९। अभिजनश्च ।४।३।९०।

यदि किसी में किसी मनुष्य का निवास (अपना अथवा पूर्वजों का) हो और यह सूचित करना हो कि यह अमुक स्थान का निवासी है, तो स्थानवाचक शब्द में अण् प्रयुक्त होता है। यथा—

मथुरायां निवासः अभिजनो वाऽस्य—माथुरः, भाटनागरः।

विषयो देशे ।४।२।४२। तस्य निवासः ।४।२।६९।

यदि किसी देश के जनविशेष के निवास अथवा अन्य किसी सम्बन्ध से सूचित करना हो तो जनवाची शब्द के बाद अण् प्रयुक्त करते हैं। यथा—शिबीनां विषयो देशः—शैबः देशः (शिबि लोगों के रहने का देश)।

(३) तत आगतः ।४।३।७४।

यदि किसी वस्तु, स्थान अथवा मनुष्य आदि से कोई वस्तु आवे और यह दिखाना हो कि यह अमुक स्थान, अमुक वस्तु अथवा मनुष्य से आयी है तो स्थानवाचक शब्द के बाद प्रायः अण् प्रयुक्त है। यथा—

स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः।

ठगायस्थानेभ्यः।४.३।७५।

आमदनी के स्थान (दुकान आदि) के बाद ठक् (इक) होता है। यथा—शुल्कशालायाः आगतः शौल्कशालिकः।

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्।४।३।७७।

जिनसे विद्या अथवा योनि का सम्बन्ध हो, वुञ् (अक) होता है। यथा—उपाध्यायादागता विद्या औपाध्यायिका, पितामहादागतं धनं पैतामहकम्।

ऋतष्ठञ्।४।३।७८। पितुर्यच्च।४।३।७९।

उपर्युक्त अर्थ में ऋकारान्त शब्दों के अनन्तर ठञ् प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यथा—भ्रातृकम्, हौतृकम्। 'पितृ' शब्द के बाद 'यत्' और 'वुञ्' दोनों जुड़ते हैं। यथा—पित्र्यम्, पैतृकम्।

(४) तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम्।४।४।२। तरति। ४।४।५। चरति।४।४।८।

यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु से जुआ खेले, कुछ खोदे, कुछ जीते, तैरे, चले तो उस वस्तु के बाद ठक् प्रयुक्त कर उस व्यक्ति का बोध कराया जाता है। यथा—

अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः (अक्ष + ठक्)—ऐसा मनुष्य जो अक्ष (पाँसे) से जुआ खेलता है। इसी प्रकार अभ्रा खनति आभ्रिकः —फावड़े से खोदने वाला।

अक्षैर्जयति आक्षिकः —पाँसों से जीतने वाला।

उडुपेन तरति औडुपिकः —डोंगी से तैरने वाला।

हस्तिना चरति हास्तिकः— —हाथी के साथ चलने वाला।

(५) अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः।४।४।६०। प्रहरणम्। ४।४।५७। शीलम्।४।४।६१। तत्र नियुक्तः। ४।४।६९।

अस्ति, नास्ति, दिष्ट इनके बाद मति अर्थ में, प्रहरणवाची शब्दों के अनन्तर 'यह प्रहरण इसके पास है' इस अर्थ में, जिस काम के करने का स्वभाव हो उसके बाद एवं जिस काम पर नियुक्त किया गया हो उसके बाद, मनुष्य का बोध कराने के लिए ठक् प्रत्यय लगता है। यथा—

अस्ति परलोकः इति मतिर्यस्य सः आस्तिकः (अस्ति + ठक्)।

नास्ति परलोकः इति मतिर्यस्य सः नास्तिकः।

दिष्टमिति मतिर्यस्य सः दैष्टिकः।

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः (जिसकी पुआ खाने की आदत हो)

आकरे नियुक्तः—आकरिकः (खजांची)।

(६) वशं गतः।४।४।८६। धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते।४।४।९२। हृदयस्य प्रियः। ४।४।९५। तत्र साधुः।४।४।९८।

वश के बाद 'वश में आया हुआ' के अर्थ में, अनुकूल के अर्थ में धर्म, पथ, अर्थ और न्याय के अनन्तर, प्रिय अर्थ में हृद् (हृदय) के बाद तथा यदि किसी

वस्तु के लिए अच्छा और योग्य कोई हो तो उस वस्तु के अनन्तर यत् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

वश + यत् = वश्यः (वशं गतः)।

धर्म्यम् (धर्मादनपेतम्)— धर्मानुकूल।

इसी प्रकार पथ्यम्, अर्घ्यम्, न्याय्यम्, हृदयस्य प्रियः 'हृद्यः' (प्रिय), शरणे साधुः 'शरण्यः' (शरण लेने के लिए अच्छा), कर्मणि साधुः 'कर्मण्यः' (काम के लिए अच्छा)।

(७) तदर्हति।५।१।६३।

जिस वस्तु के जो योग्य होता है, उस मनुष्य का बोध कराने के लिए उस वस्तु के बाद ठञ् आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं। यथा—

प्रस्थमर्हति (असौ याचकः) 'प्रास्थिकः' (प्रस्थ + ठञ्)— प्रस्थभर अन्न के योग्य।

(द्रोणमर्हति) 'द्रौणिकः' (द्रोण + ठञ्)।

श्वेतच्छत्रमर्हति 'श्वैतच्छत्रिकः' (श्वेतछत्र + ठक्)

दण्डादिभ्यः।५।१।६६।

उपर्युक्त अर्थ में ही दण्ड आदि (दण्ड, मुसल, मधुपर्क, कशा, अर्घ, मेघ, मेधा, सुवर्ण, उदक, वध, युग, गुहा, भाग, इभ, भङ्ग) शब्दों के बाद यत् प्रत्यय लगता है। यथा—

दण्ड्य, मुसल्य, मधुपर्क्य, अर्घ्य, मेघ्य, मेध्य, वध्य, युग्य, गुह्य, भाग्य, इभ्य भंग्य आदि।

(८) प्रयोजनम्।५।१।१०९।

प्रयोजन के अर्थ में ठञ् लगता है।—

इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य 'ऐन्द्रमाहिकः' (पदार्थः)—इन्द्र के उत्सव के लिए। प्रयोजन का अर्थ फल अथवा कारण दोनों है।

(९) तेन रक्तं रागात्।४।२।१।

जिस रंग से रंगी हुई वस्तु हो, उस रङ्गवाची शब्द के अनन्तर अण् प्रत्यय जोड़ते हैं। यथा—

कषाय + अण् = काषायम् (वस्त्रम्)।

मञ्जिष्ठा + अण् = माञ्जिष्ठम्।

लाक्षारोचनात् ठक्।४।२।२। शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् (वा०)।

इसी अर्थ में लाक्षा, रोचन, शकल, कर्दम के बाद ठक् जुड़ता है। लाक्षिक, रौचनिक, शाकलिक, कार्दमिक।

नील्या अन्। वा०।

इसी अर्थ में नीली के अनन्तर अन् जुड़ता है। यथा—

नीली + अन् = नील।

पीतात्कन्। वा०।

पीत के बाद इसी अर्थ में कन् जुड़ता है। यथा—पीतकम्।

हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् (वा०)।

हरिद्रा और महारजन के बाद इसी अर्थ में अञ् लगता है। यथा—हारिद्रम्, माहारजनम्।

(१०) नक्षत्रेण युक्तः कालः ।४।२।३।

नक्षत्र से युक्त समयवाची शब्द बनाने के लिए नक्षत्रवाची शब्द में अण् जोड़ा जाता है। यथा—

चित्रया युक्तः मासः = चैत्रः।
पुष्येण युक्ता रात्रिः = पौषी (रात्रिः) इत्यादि।

(११) संस्कृतं भक्षाः ।४।२।१६। दध्नष्ठक् ।४।४।१८।

जिस वस्तु में खाने की वस्तु तैयार की जाए तो यह बोध कराने के लिए कि अमुक वस्तु तैयार हुई है, उस वस्तु के बाद अण् जोड़ते हैं। यथा—

भ्राष्ट्रे संस्कृताः (यवाः) भ्राष्ट्राः (भाड़ में भुने हुए जौ)।

पयसि संस्कृतं (भक्तम्) पायसम् (दूध में बना हुआ भात)।

पयसा संस्कृतं पायसम् (दूध से बनी चीज)।

परन्तु दधि शब्द के बाद ठक् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

दध्नि संस्कृतम् दाधिकम् (दही में बनी चीज)।

दध्ना संस्कृतम् दाधिकम् (दही से बनी वस्तु)।

किसी वस्तु (मिर्च, घी आदि) से संस्कार की हुई वस्तु के अनन्तर ठक् लगता है। यथा—

तैलेन संस्कृतम् तैलिकम् (तेल से बनी वस्तु) घार्तिकम् (घी से बनी), मारीचिकम् (मिर्च से छौंकी हुई)।

(१२) तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः ।४।२।५७।

जिस क्रीडा में कोई प्रहरण प्रयोग में लाया जाए तो उस खेल का बोध कराने के लिए प्रहरणवाची शब्द के बाद ण (अ) प्रत्यय जोड़ते हैं। यथा—

दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां सा 'दाण्डा; (डण्डेबाजी)।

मुष्टिः प्रहरणमस्यां क्रीडायां सा 'मौष्टा' (मुक्केबाजी)।

कोई चीज पढ़ने वाले या जानने वाले का बोध कराने के लिए ञ (अ) जोड़ते हैं। यथा—

व्याकरणमधीते वेद वा = वैयाकरणः (व्याकरण + ञ)।

(१३) तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ।४।२।६७। तेन निर्वृत्तम् ।४।२।६८। तस्य निवासः ।४।२।६९। अदूरभवश्च ।४।२।७०।

"इसमें वह वस्तु है" "उससे यह बनी है" "इसमें उसका निवास है", "यह उससे दूर नहीं है"—इनका बोध कराने के लिए अण् प्रत्यय लगाते हैं। यथा—

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे 'औदुम्बरः' देशः।

कुशाम्बेन निर्वृत्ता 'कौशाम्बी' (नगरी)।

शिवीनां निवासो देशः शैवः देशः।

विदिशायाः अदूरभवं (नगरम्) 'वैदिशम्'।

उपर्युक्त चार अर्थों के बोधक प्रत्ययों को चातुरर्थिक तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

जनपदे लुप् ।४।२।८१।

यदि जनपद के अर्थ का बोध कराना हो तो चातुरर्थिक प्रत्ययों का लोप हो जाता है। यथा—

पञ्चालानां निवासो जनपदः = पञ्चालाः।

इसी प्रकार कुरवः, वङ्गा, कलिङ्गाः आदि।

जनपदवाची शब्द सदा बहुवचनान्त होते हैं।

नद्यां मतुप् ।४।२।८५।

इ, ई, उ, ऊ अन्त में होने वाले शब्दों में चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय जुड़ता है। उदाहरणार्थ इक्षुमती।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—दाशरथि रामने जामदग्न्य राम को उत्तर दिया। २—वासुदेव ने कुन्ती के पुत्र अर्जुन का सारथि होना स्वीकार किया। ३—राधा के पुत्र कर्ण ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा से कहा। ४—चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने पर चैत्र मास नाम पड़ा है। ५—संन्यासी गेरुआ वस्त्र पहनता है। ६—वेदान्ती वेदान्त पढ़ता है, वैयाकरण व्याकरण को। ७—विद्यालयों में त्रैमासिक, षाण्मासिक और वार्षिक परीक्षाएँ होती हैं। ८—धनवान् को अपने धन का अभिमान होता है और बलवान् को अपने बल का। ९—गुणी अपने गुणों से विश्व को उपकृत करते हैं। १०—इस विषय में मैं पूज्य आपको प्रमाण मानता हूँ। ११—क्रम से लड़कों को मिठाई बांटो। १२—जगत् में मानव के सत्कर्म ही उसे गौरव देते हैं। १३—सन्तान-हीनता दुःखद है। १४—अच्छे स्वास्थ्य के लिए पञ्चगव्य का सेवन करना चाहिए। १५—जुआड़ी पासों से जुआ खेलता है। १६—श्याम आठ वर्ष का है। १७—अग्नि समस्त वस्तुओं को भस्मसात् कर देती है। १८—सभी घर जलकर राख हो गए। १९—स्वधर्म परधर्म से बढ़कर है। २०—मोहन गोविन्द से अधिक बड़ा है। २१—बालक बालिका से छोटा है। २२—इस विषय में वह बुरा नहीं मानेगा। २३—उसने मुक्केबाजी के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। २४—मेधावी अपनी मेधा से दूसरों का पथ-प्रदर्शन करते हैं। २५—तुम्हारी वस्तु तुम्हें भेंट करता हूँ।

त्रयोदश सोपान

लिङ्गानुशासन

संस्कृत में समस्त संज्ञाएं पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग—इन तीन लिङ्गों में विभक्त हैं किन्तु इसमें लिङ्गों का वर्गीकरण बिल्कुल मनमाना है। हाँ, जहाँ पुरुष और स्त्री बिल्कुल स्पष्ट मालूम पड़ते हैं और पुरुष तथा स्त्री का अन्तर स्वाभाविक है, वहां संज्ञाओं में किन्हीं विशेष नियमों का पालन किया गया है। चटकः (नर गौरैया), चटका (मादा गौरैया)। इसी प्रकार 'हंसः हंसी,' 'अजः अजा' इत्यादि।

लिङ्ग के विषय में कितना मनमानापन है—इसका भान तो इसी से हो सकता है कि 'स्त्री' के बोधक संस्कृत में 'दार', 'कलत्र' और 'भार्या' ये तीन शब्द हैं और तीनों भिन्न-भिन्न लिङ्ग में हैं—'दार' पुं० है।

'कलत्र' नपुं० है, भार्या स्त्री० है। अत एव लिङ्ग का अध्ययन प्रायः कोष से किया जाना चाहिए।

व्याकरण के कुछ नियम हैं, उनसे भी कुछ सहायता ली जा सकती है।

पुंल्लिङ्ग

(१) घञ्, घ, अच् और अप् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—पाकः, करः, विस्तरः, चयः इत्यादि (परन्तु भय, लिङ्ग, भग और पद शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं)।

(२) नङ् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा यज्ञः, यत्नः, किन्तु याच्ञा स्त्री-लिङ्ग है।

(३) कि प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा जलधिः, विधिः निधिः (परन्तु इषुधिः पुं० व स्त्री० दोनों हैं।

(४) 'रु' और 'तु' प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा मेरुः, सेतुः आदि। (परन्तु 'दारु', 'कसेरु' (एक प्रकार का पौधा), जत्रु (कण्ठ की दोनों ओर की हड्डियां), 'वस्तु', 'मस्तु' (कढ़ी का जलीय अंश) नपुं० है।)

(५) इमन् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—लघिमन्, महिमन्, गरिमन्, नीलिमन् आदि।

(६) राजन्, आत्मन्, युवन्, श्वन्, मघवन् आदि सभी नकारान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। (परन्तु चर्मन् (चमड़ा), वर्म्मन् (कवच), शर्मन् (कल्याण), जन्मन् (जन्म), नामन् (नाम), ब्रह्मन् (ब्रह्म), धामन् (घर) आदि कुछ शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं।)

(७) निम्नलिखित शब्दों के पर्याय पुंल्लिङ्ग होते हैं—

देवः (देवता), सुरः, अमरः, निर्जरः, विबुधः, त्रिदश आदि। परन्तु 'देवता स्त्रीलिङ्ग है। मनुष्यः (आदमी), नरः, मनुष्यः, पुरुषः, पुमान्, ना आदि। असुरः (असुर), दनुजः, दानवः, दितिजः आदि। समुद्रः (समुद्र), सिन्धुः, अब्धिः, पयोधिः, रत्नाकरः, पारावारः, सागरः आदि। गिरिः (पहाड़), पर्वतः, अचलः, अद्रिः, सानुमान, भूधरः आदि। नखः (नह), करजः आदि। केशः (केश), कचः, शिरोरुहः आदि। दन्तः (दाँत), द्विजः, दशनः, रदः, रदनः आदि। मेघः (मेघ), पयोधरः, वारिधरः, वारिदः, अम्बुदः, अम्बुधरः, जलधरः, वारिवाहः, पयोदः आदि। परन्तु अभ्रम् नपुं० है। अग्निः, (आग), वह्निः, पावकः, दहनः, अनलः आदि। वायुः (हवा), पवनः, मरुत्, मारुतः, अनिलः, श्वसनः आदि। किरणः (किरण), मयूखः, रश्मिः, करः, अंशुः आदि। परन्तु, 'दीधिति' स्त्री० है तथा दिन, अहन् नपुं० है। शरः, सायकः आदि, परन्तु 'इषुः' पुं० व स्त्री० दोनों है तथा बाण और काण्ड उभयलिङ्ग हैं। खड्गः (तलवार), असिः, करवालः, चन्द्रहासः आदि। वृक्षः (पेड़), तरुः, महीरुहः, शाखी, विटपी, द्रुमः, भूरुहः आदि। स्वर्गः (स्वर्ग), सुरालयः, देवलोकः, नाकः आदि, परन्तु 'दिव्' शब्द स्त्री० तथा 'त्रिविष्टप' नपुं० है। खगः (पक्षी), पक्षी, विः, गगनचरः आदि। पङ्कः (कीचड़), कर्दमः आदि। कण्ठः (कण्ठ), गलः, शिरोधरः आदि। भुजः (भुजा) आदि पुंल्लिङ्ग हैं परन्तु 'बाहुः' पुं० तथा स्त्री० है।

(८) ऋतु, (यज्ञ), पुरुष, कपोल (गाल), गुल्फ (गट्टा) और मेघ पर्याय-वाची शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं।

(९) उकारान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—प्रभुः (स्वामी), विभुः, (व्यापक), साधुः (सज्जन), वायुः, विधुः (चन्द्रमा) आदि। परन्तु धेनुः (गाय), रज्जुः (रस्सी), कुहूः (कोयल की बोली, अमावस्या), सरयुः (एक नदी), तनुः (शरीर), रेणुः (धूल), प्रियङ्गुः (एक पौधा) ये सभी शब्द स्त्री हैं और श्मश्रु (दाढ़ी), जानु (घुटना), स्वादु, अश्रु, जतु (लाह), त्रपु (टीन), तालु तथा वसु (धन) नपुं० हैं। मद्गु (एक प्रकार का पक्षी), मधु (मदिरा, शहद,), सीधु (मद्य), सानु (पर्वत की समतल भूमि), कमण्डलु (कमण्डल) ये पुंल्लिङ्ग और नपुं० हैं।

(१०) अकारान्त ककारोपध (जिनके अन्त में अकार हो और उसके पूर्व ककार हो) ऐसे शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा स्तवकः (गुच्छ), नाकः (स्वर्ग), नरकः, तर्कः आदि। परन्तु चिबुक (ठुड्डी), शालुक (जायफल), प्रातिपदिक (शब्द), अंशुक (महीन कपड़ा), उल्मुक (अंगार) ये शब्द नपुं० हैं। कण्टक (काँटा), अनीक (सेना), मोदक (लड्डू),, चषक (शराब का प्याला), मस्तक, पुस्तक, तडाग

(तालाब), त्रयो निष्क, शुल्क, वर्चस्क (चमकीला), पिनाक (धनुष), भाण्डक (बर्तन)। कटक (शिविर, एक प्रकार का आभूषण), दण्डक, पिटक (फोड़ा), तालक, फलक (चौकी), पुलक (रोमाञ्च) ये शब्द नपुं० है।

(११) अकारान्त टकारोपध (जिनके अन्त में अकार और उसके पूर्व टकार हो) शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—घटः (घड़ा), पटः (वस्त्र), नटः आदि। परन्तु किरीट, मुकुट, ललाट, लोष्ट शब्द नपुं० हैं और कपट, विकट आदि पुं० और नपुं० हैं।

(१२) अकारान्त शब्द, जिनके अन्त्य अकार के पूर्व 'ण' हो, पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—गुणः, गणः (समूह), कणः, शोणः (एक नदी), द्रोणः (काक) आदि। परन्तु ऋण (कर्ज), लवण (नमक), तोरण (मेहराब), पर्ण (पत्ता), सुवर्ण, चरण, चूर्ण, तृण (घास) शब्द उभयलिङ्ग (पुं० और नपुं०) हैं।

(१३) अकारान्त थकारोप शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—रथः। परन्तु तीर्थ, यूथ (दल) नपुं० हैं।

(१४) अकारान्त नकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा फेनः। परन्तु तुहिन (पाला, बर्फ), कानन (वन), विपिन (जंगल), वेतन, शासन, श्मशान, मिथुन, रत्न, निम्न, चिह्न शब्द पुं० और नपुं० हैं।

(१५) अकारान्त पकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा दीप, दर्प आदि। परन्तु पाप, रूप, शिल्प, पुष्प, शष्प, समीप, अन्तरीप शब्द नपुं० हैं।

(१६) अकारान्त भकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा स्तम्भः (खंभा), कुम्भः, दम्भः आदि।

(१७) अकारान्त मकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा सोमः (चन्द्रमा), भीमः (भयानक), कामः, घर्मः (घाम, पसीना) आदि। परन्तु अध्यात्म, कुसुम शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं।

(१८) अकारान्त यकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा हयः (घोड़ा), समयः (काल), जयः (जीत), रयः (वेग), नयः, (नीति), लयः (नाश) आदि किन्तु भय, किसलय (पल्लव), हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय नपुं० हैं।

(१९) अकारान्त रकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा वरः (दूल्हा), अङ्कुरः स्वरः, करः (हाथ, किरण), चरः (गुप्तचर), ज्वरः, भारः (बोझा), मारः (कामदेव) आदि। परन्तु द्वार, अग्र, चक्र, क्षिप्र, छिद्र, तीर, नीर, दूर, कृच्छ्र, रन्ध्र, उदर, अजस्र (निरन्तर), शरीर, कन्दर (कन्दरा), पञ्जर, जठर इत्यादि कई शब्द नपुं० हैं।

(२०) अकारान्त षकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—वृक्षः, मेषः, वृषः (बैल) आदि। परन्तु पीयूष (अमृत), पुरीष (विष्ठा) शब्द नपुं० हैं।

(२१) अकारान्त सकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा राक्षसः, वत्सः (बछड़ा), वायसः (कौवा) आदि। किन्तु पनस (कटहल) और साहस शब्द नपुं० है।

(२२) दार (स्त्री०), अक्षत, असु (प्राण), लाज (लावा) शब्द पुंल्लिङ्ग और बहुवचनान्त हैं।

(२३) नाडी, अप, जन शब्द के बाद क्रमशः व्रण, अंग, पद शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा नाडीव्रणः (शैनघाव), अपाङ्गः (कटाक्ष), जनपदः (राष्ट्र)।

(२४) मरुत (वायु), गरुत् (पंख), ऋत्विज् (यज्ञ कराने वाला), ऋषि, राशि (ढेर), ग्रन्थि (गांठ), कृमि (कीड़ा), ध्वनि, बलि, मौलि (मस्तक, ललाट), कपि, मुनि, ध्वज (पताका), गज (हाथी), हस्त, दूत, धूर्त, सूत (सारथी) इत्यादि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

(२५) ऐसे समासान्त पद जिनके अन्त में अह्न, 'अह', 'रात्र' शब्द हों वे पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा पूर्वाह्णः (दोपहर के पूर्व वाला समय), मध्याह्नः, अर्द्धरात्र' शब्द नपुंसकलिङ्ग होता है। यथा द्विरात्रम् (दो रात), त्रिरात्रम् (तीन रात), पञ्चरात्रम् (पांच रात)।

स्त्रीलिङ्ग

(१) क्तिन् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं यथा, गतिः, मतिः, वृद्धिः, सिद्धिः, शुद्धिः, दृष्टिः, वृष्टिः, सृष्टिः, बुद्धिः, स्तुतिः, नुतिः (प्रणाम), सृतिः (मार्ग), श्रुतिः, धृतिः आदि।

(२) आकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा माया, दया, लज्जा, श्रद्धा, लता, कृपा, करुणा, शय्या, क्रिया, विद्या, चर्य्या, मृगया, सेवा, प्रजा, वाटिका, पुस्तिका, बाला, बालिका, माला, मालिका, गङ्गा, भार्या, चपला, शोभा, चिन्ता आदि। परन्तु विश्व पा (भगवान्), हाहा (गन्धर्व का नाम) शब्द पुंल्लिङ्ग है।

(३) सन्नन्त से बनी संज्ञाएं स्त्रीलिङ्ग होती हैं। यथा पिपासा (प्यास), जिज्ञासा (ज्ञान की इच्छा), बुभुक्षा (भोजनेच्छा), लिप्सा (लेने की इच्छा), चिकित्सा, मीमांसा, जिहीर्षा· मुमूर्षा (मरने की इच्छा), दिदृक्षा (देखने की इच्छा) आदि।

(४) ईकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—श्रीः (लक्ष्मी), धीः (बुद्धि), ह्रीः (लज्जा), सरस्वती, नदी आदि। परन्तु सुधीः, प्रधीः (पण्डित), सेनानीः (सेनापति) अग्रणीः पुं० है।

(५) ऊकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा भ्रूः (भौं), भूः (पृथ्वी), वधूः (बहू), प्रसूः (माता), चमूः (सेना) आदि। परन्तु खलपूः (खलिहान साफ करने वाला), सुलूः (अच्छी प्रकार काटने वाला), प्रतिभूः, वर्षाभूः (मेढक), स्वयम्भूः (ब्रह्मा), हूहूः (गन्धर्व) आदि कुछ शब्द पुं० हैं।

(६) ऋकारान्त मातृ (माता), दुहितृ (बेटी), स्वसृ (बहिन), यातृ (जेठानी), ननान्दृ (ननद) शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

(७) तल् (ता) प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा पटुता, मृदुता, लघुता, महत्ता, सुन्दरता, चतुरता, सभ्यता, गुरुता, मूर्खता, विद्वत्ता आदि।

(८) संख्यावाची शब्दों में 'ऊनविंशतिः' (१९) 'नवनवतिः' (९९) पर्यन्त समस्त शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं—

(९) निम्नलिखित शब्दों के पर्याय प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं—

(अ) स्त्री :— वामा, ललना, वनिता, महिला, योषित्, योषा आदि।

(ब) पृथ्वी :—धरा, धरित्री, धरणी, विश्वम्भरा, स्थिरा, अनन्ता, अचला, मेदिनी भू आदि।

(स) नदी :—सरित्, निम्नगा, स्रोतस्विनी, तटिनी, स्रोतस्वती आदि।

(द) विद्युत् :— चञ्चला, चपला, विद्युत्, सौदामिनी आदि।

(य) लता :— वल्ली, लतिका, व्रततिः आदि।

(र) रात्रि :—निशा, दोषा, क्षपा, त्रियामा, तमिस्रा, रजनी।

(ल) बुद्धि :—धीः, धिषणा, मतिः, प्रज्ञा, संवित् आदि।

(व) वाणी :—गीः, वाक्, वाणी, सरस्वती, भारती आदि।

नपुंसकलिङ्ग

(१) भावार्थक ल्युट् (अन), क्त (त) तद्धितीय 'त्व' और 'ष्यञ्' प्रत्ययों से बने हुए शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं। यथा—

ल्युट्—(अन)— पठनम्, गमनम्, दर्शनम्, शयनम् आदि।

क्त —श्रुतम्, पठितम्, चलितम् आदि।

त्व —प्रभुत्वम्, महत्त्वम्, मूर्खत्वम्, पटुत्वम् आदि।

ष्यञ् —सौख्यम्, मान्द्यम्, जाड्यम्, दार्ढ्यम् आदि।

(२) भावार्थक ण्यत् (कृत् प्रत्यय), तव्य, अनीय, यत्, क्यप् प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं। यथा—

ण्यत्—कार्यम्, हार्यम् धार्यम्, भोज्यम् आदि।

तव्य—कर्तव्यम्, द्रष्टव्यम्, गन्तव्यम्, दातव्यम् आदि।

अनीय—पठनीयम्, स्मरणीयम्, दर्शनीयम्, रमणीयम्, गमनीयम् आदि।

यत्—देयम्, गेयम् आदि।

क्यप्—कृत्यम्, सत्यम् आदि।

(३) जिनके अन्त में अकारान्त 'ल' हो वे नपुंसकलिङ्ग होते हैं। यथा—कूलम्, (तट), कुलम् (वंश), जलम्, मल्म्, बलम्, हलम्, स्थलम् आदि। परन्तु तूल (रुई), उपल (पत्थर), कम्बल इत्यादि पुं० हैं और शील, मूल (जड़), मङ्गल, कमल, तल, मुसल, कुण्डल, मृणाल, बाल, अखिल, शब्द उभयलिङ्ग (पुं० और नपुं०) हैं।

बृहत् आदि) के बाद ङीप् (ई) जोड़ा जाता है । यथा—मृगाक्ष—मृगाक्षी, सुन्दराक्ष—सुन्दराक्षी, गौर—गौरी, सुन्दर—सुन्दरी, नर्त्तक—नर्त्तकी । इसी प्रकार मण्डली, मङ्गली इत्यादि ।

(२) पुंयोगादाख्यायाम् ।४।१।४८। पालकान्तान्न । वा० ।

जातिवाचक अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के बाद स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीप् जोड़ा जाता है । यथा—

गोपः—गोपी, शूद्रः—शूद्री ।

किन्तु पालक आदि शब्दों के बाद ई नहीं होता है । यथा—

पालक—पालिका, अश्वपालक—अश्वपालिका, गोपालिका इत्यादि ।

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ।४।१।४९।

हिमारण्ययोर्महत्त्वे । यवाद्दोषे । यवनाल्लिप्याम् । वा० ।

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र और मृड शब्द के अनन्तर ङीप् लगाने के पूर्व आनुक् (आन्) जोड़ दिया जाता है । यथा—

इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी । भवस्य स्त्री—भवानी । इसी प्रकार वरुणानी, रुद्राणी, शर्वाणी, मृडानी ।

हिम और अरण्य शब्द के बाद महत्त्व अर्थ में ङीप् लगाने के पूर्व आनुक् जोड़ दिया जाता है । यथा—

हिम—हिमानी (बहुत पाला), अरण्य—अरण्यानी (बड़ा वन) यव शब्द से दुष्ट अर्थ में और यवन से लिपि अर्थ में आनीप् (आनी) होता है । यथा—दुष्टः यवः यवानी, यवनानां लिपिः यवनानी ।

मातुल और उपाध्याय शब्द के बाद विकल्प से आनीप् और ई होता है । यथा—

मातुलस्य स्त्री—मातुलानी, मातुली ।

उपाध्यायस्य स्त्री उपाध्यायी, उपाध्यायानी ।

(१) वोतो गुणवचनात् ।४।१।४४।

उकारान्त गुणवाची शब्दों के बाद स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से ङीप् जोड़ा जाता है । यथा—मृदु से मृदुः अथवा मृद्वी ।

पटु-पट्वी, पटुः ।

कुछ ज्ञातव्य स्त्री प्रत्ययान्त शब्द

पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
नायक	नायिका	खचर	खचरी
गायक	गायिका	बलवत्	बलवती
वैश्य	वैश्या	कुरुचर	कुरुचरी
किशोर	किशोरी	यादृश	यादृशी
स्वामिन्	स्वामिनी	कुम्भकार	कुम्भकारी

पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
गुणिन्	गुणिनि	जलमय	जलमयी
वैष्णव	वैष्णवी	अरण्य	अरण्यानी
बुद्धिमत्	बुद्धिमती	पाचक	पाचिका
सुन्दर	सुन्दरी	पाठक	पाठिका
युवन्	युवतिः	क्षत्रिय	क्षत्रिया, क्षत्रियाणी
अर्थकर	अर्थकरी	कुमार	कुमारी
विद्वस्	विदुषी	सखि	सखी
श्वशुर	श्वश्रूः	पुत्रवत्	पुत्रवती
कुर्वत्	कुर्वती	करिष्यत्	करिष्यन्ती
चन्द्रमुख	चन्द्रमुखा, चन्द्रमुखी	सुकेश	सुकेशा, सुकेशी
औत्स	औत्सी	कीदृश	कीदृशी
पति	पत्नी	भागिनेय	भागिनेयी

संस्कृत में अनुवाद करो

१—देवता और राक्षस परस्पर युद्ध किया करते थे। २—नाचने वाली ने अपने कौशल से सभा को प्रसन्न कर दिया। ३—मन्दिर में हनुमान् हैं। ४—एक छोटी उम्रवाला बालक दौड़ रहा है। ५—धैर्य बड़ा भारी गुण है। ६—यह मेरी बहन की लड़की है। ७—यह तुम्हारी दुष्टता है। ८—उपाध्याय की स्त्री लड़कियों को पढ़ा रही है। ९—इसी वट की छाया में विश्राम करता हूँ। १०—मेरे मामा की स्त्री अच्छे लक्षणों वाली है। ११—यह फूल सुन्दर है। १२—अपाला पढ़ी लिखी स्त्री थी। १३—तुम्हारा क्या नाम है? १४—तप करती हुई पार्वती ने शिव को प्रसन्न किया। १५—मुख पर घूँघट डाले हुए यह स्त्री कौन है?

चतुर्दश सोपान

अव्यय-विचार

अव्यय शब्द तीनों लिङ्गों, सातों विभक्तियों और तीनों वचनों में एक समान रहते हैं अर्थात् इनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता।

अव्यय के चार भेद हैं—

(अ) उपसर्ग (इसका वर्णन पहले किया जा चुका है)। (ब) क्रियाविशेषण (स) समुच्चयबोधक शब्द (Conjunction)। (द) मनोविकारसूचक शब्द। इनके अतिरिक्त प्रकीर्णक भी हैं।

क्रियाविशेषण

कुछ क्रियाविशेषण स्वः आदि अव्ययों में पठित शब्द हैं, यथा—पृथक्, विना, वृथा आदि; कुछ सर्वनामों से बनते हैं, यथा—इदानीम्, यथा, तथा आदि; कुछ संख्यावाची शब्दों से बने हैं, जैसे एकधा, द्विः आदि एवं कुछ संज्ञाओं में तद्धित प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं। यथा पुत्रवत्, भस्मसात् आदि।

मुख्य-मुख्य क्रियाविशेषण निम्नलिखित हैं जो अकारादि क्रम से दिए गए हैं :—

अकस्मात्	इकबारगी	अपरेद्युः	दूसरे दिन
अग्रतः	आगे	अधुना	अब
अग्रे	पहले	अनिशम्	निरन्तर
अचिरम्, अचिरात्, अचिरेण	शीघ्र	अन्तरेण	बारे में, विना
		अन्तरा	विना, बीच में
		अन्तरे	बीच में
अजस्रम्	निरन्तर	अन्यच्च	और
अन्तर्	अन्दर		
अतः	इसलिए	अन्यत्र	दूसरी जगह
अतीव	बहुत	अन्यथा	दूसरी तरह
अत्र	यहाँ	अभितः	चारों ओर, पास
अथ	तब, फिर	अभीक्ष्णम्	निरन्तर
अथकिम्	हाँ, तो क्या	अर्वाक्	पहले
अद्य	आज	अलम्	बस, पर्याप्त
अधः, अधस्तात्	नीचे	असकृत्	कई बार
		असम्प्रति	अनुचित
अपरम्	और	असाम्प्रतम्	अनुचित

आरात्	दूर, समीप	कुतः	कहाँ से
इतः	यहाँ से	कुत्र	कहाँ
इतस्ततः	इधर उधर	कुत्रचित्	कहीं
इति	इस प्रकार	कृतम्	बस, हो गया
इत्थम्	इस प्रकार	केवलम्	केवल
इदानीम्	इस समय	क्व	कहाँ
इह	यहाँ	क्वचित्	कहीं
ईषत्	कुछ, थोड़ा	खलु	निश्चय करके
उच्चैः	ऊँचे	चिरम्	देर तक
उभयतः	दोनों ओर	जातु	कभी भी
ऋतम्	सच	झटिति	शीघ्र
ऋते	बिना	तत्	इसलिए
एकत्र	एक जगह	ततः	फिर
एकदा	एक बार	तत्र	वहाँ
एकधा	एक प्रकार	तदा	तब
एकपदे	एक साथ	तदानीम्	तब
एतर्हि	अब	तथा	उस तरह
एव	हाँ	तथाहि	जैसे
एवम्	इस तरह	तस्मात्	इसलिए
कच्चित्	क्या ?	तर्हि	तब, तो
कच्चन	क्या ?	तिरः	तिर्छे
कथम्	कैसे ?	तिर्यक्	तिर्छे
कथञ्चन	किसी प्रकार	तूष्णीम्	चुपचाप
कथञ्चित्	किसी प्रकार	दिवा	दिन में
कदा	कब	दिष्ट्या	सौभाग्य से
कदाचित्	कभी, शायद	दूरम्	दूर
कदापि	कभी	दोषा	रात को
कदापि न	कभी नहीं	द्राक्	शीघ्र, फौरन
किञ्च	और	ध्रुवम्	निश्चय ही
किन्तु	लेकिन	नक्तम्	रात को
किम्	क्या ? क्यों ?	न	नहीं
किमुत	और कितना ?	न वरम्	परन्तु
किम्वा	या	नाना	हर प्रकार से
किल	सचमुच	नाम	नाम वाला, नामक

निकष	निकट	मिथ्या	झूठ
नीचैः	नीचे	मुधा	बेकार
नूनम्	निश्चित	मुहुः	बार बार
नो	नहीं	मृषा	झूठ, बेकार
परम्	फिर, परन्तु	यत्	जो, क्योंकि
परश्वः	परसों	यतः	क्योंकि
परितः	चारों ओर	यत्र	जहाँ
परेद्युः	दूसरे दिन (कल)	यथा	जैसे
पर्याप्तम्	काफी	यथा तथा	जैसे-तैसे
पश्चात्	पीछे	यथा यथा	जैसे-जैसे
पुनः	फिर	यदा	जब
पुरतः, पुरः, पुरस्तात्	आगे	यावत्	जब तक
		युगपत्	साथ, इकबारगी
		विना	विना
पुरा	पहले	वृथा	बेकार
पूर्वेद्युः	पहले दिन (कल)	वै	निश्चय
पृथक्	अलग-अलग	शनैः	धीरे-धीरे
प्रकामम्	यथेष्ट, बहुत	श्वः	कल (आनेवाला दिन)
प्रतिदिनम्	हर रोज	शश्वत्	सदा
प्रत्युत	उलटे	सर्वथा	सब प्रकार से
प्रसह्य	जबर्दस्ती	सर्वदा	सबदिन
प्राक्	पहले	सह	साथ
प्रातः	सवेरे	सहसा	इकबारगी
प्रायः	अक्सर	सहितम्	साथ
प्रेत्य	मरकर, दूसरी दुनियाँ में	साकम्	साथ
		सकृत्	एकबार
बलात्	जबर्दस्ती	सततम्	बराबर, सबदिन
बहिः	बाहर	सदा	हमेशा
बहुधा	बहुत प्रकार से	सद्यः	तुरन्त, शीघ्र
भूयः	फिर-फिर अधिक	समन्तात्	चारों ओर
भृशम्	बार-बार, अधिकाधिक	समम्	बराबर-बराबर
		समया	निकट
मनाक्	थोड़ा	समीपे, समीपम्	निकट
मिथः	परस्पर	समीचीनम्	ठीक

सम्प्रति	इस समय, अभी	सुष्ठु	अच्छी तरह
सम्मुखम्	सामने	स्वस्ति	आशीर्वाद
सम्यक्	भली प्रकार	स्वयम्	अपने आप
सर्वतः	चारों ओर	हि	इसलिए
सर्वत्र	सब कहीं	साक्षात्	आँखों के सामने
साम्प्रतम्	अब, उचित	सार्धम्	साथ
सायम्	शाम को	ह्यः	कल (बीता हुआ दिन)

समुच्चयबोधक शब्द

अथ, अथो, अथ च—तब (वाक्य के आदि में आते हैं ।)

तु—तो (वाक्य के आदि में नहीं आता ।)

किन्तु, परन्तु, परञ्च—लेकिन

वा—या (इसका प्रयोग प्रत्येक शब्द के उपरान्त अथवा दोनों के उपरान्त होता है ।)

अथवा – या (वा की तरह प्रयुक्त होता है ।)

च—और प्रत्येक शब्द के उपरान्त अथवा दोनों के उपरान्त होता है । यथा रामो श्यामश्च, रामश्च श्यामश्च ।)

चेत्, यदि—यदि, अगर (वाक्य के आदि में नहीं प्रयुक्त होता ।)

नोचेत्—नहीं तो ।

यदि, तर्हि = यदि, तो

तत्—इसलिए

हि—क्योंकि

यावत्-तावत्—जब तक तब तक

यदा-तदा—जब-तब

इति—वाक्य के अन्त में समाप्तिसूचक

मनोविकार सूचक अव्यय

इनका वाक्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता ।

हन्त – हर्षसूचक, खेदसूचक ।

आः, हुम्, हम्—क्रोधसूचक ।

हा, हा हा, हन्त—शोकसूचक ।

बत—दयासूचक, खेदसूचक ।

किम्, धिक्—धिक्कार सूचक ।

अङ्ग, अयि, अये, भोः—आदर सहित बुलाने के लिए काम में आते हैं ।

अरे, रे, रे रे—अवज्ञा से बुलाने में ।

अहो, हो—विस्मयसूचक ।

प्रकीर्णक अव्यय

कई तद्धित—प्रत्ययान्त, कई कृदन्त तथा कुछ समासान्त शब्द अव्यय होते हैं। उन्हें प्रकीर्णक अव्यय कहते हैं।

तद्धितों[1] से—तसिल् प्रत्ययान्त, त्रल्-प्रत्ययान्त, दा-प्रत्ययान्त, दानीम् प्रत्ययान्त, अधुना, कर्हि, यर्हि, तर्हि, सद्यः से लेकर उत्तरेद्युः तक (५।३।२२), थाल् प्रत्ययान्त, दिक् और कालवाचक पुरः, पश्चात्, उत्तरा, उत्तरेण आदि, धा प्रत्ययान्त (एकधा आदि), शस् प्रत्ययान्त (बहुशः, अल्पशः आदि), च्वि- प्रत्ययान्त (भस्मीभूय, शुक्लीभूय आदि), साति प्रत्ययान्त (अग्निसात्, ब्रह्मसात् आदि), कृत्वसुच्-प्रत्ययान्त (द्विकृत्वः, त्रिकृत्वः) तथा इसके अर्थ में आने वाले (द्विः, त्रिः)

कृदन्तों[2] में—म् में अन्त होने वाले, यथा—णमुल्-प्रत्ययान्त (स्मारं स्मारम् आदि), तुमुन् प्रत्ययान्त (गन्तुम्) तथा ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होने वाले, यथा—गन्तुम्, जीव से, पिबध्यै तथा क्त्वा[3] (और क्त्वार्थ ल्यप्), तोसुन् और कसुन् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द; यथा—कृत्वा, उदेतोः, विसृपः। अव्ययीभाव समास—[4] अधिहरि, यथाशक्ति इत्यादि।

अव्ययों का वाक्यों में प्रयोग

(१) अथ :—इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में किया जाता है।

(अ) मंगल के लिए :—अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (अब इसके आगे ब्रह्म के विषय में विचार।)

(ब) किसी वक्तव्य या कथन के प्रारम्भ में—अथेदमारभ्यते द्वितीयं तन्त्रम् (अब दूसरा तन्त्र प्रारम्भ होता है।)

(स) बाद, अनन्तर, पीछे के अर्थ में—अथ प्रजानामधिपः प्रभाते वनाय धेनुं मुमोच (इसके बाद राजा ने प्रातःकाल गाय को वन जाने के लिए छोड़ दिया।)

(द) यदि के अर्थ में—अथ आग्रहश्चेदावेदयामि (यदि आग्रह है तो कहता हूँ।)

(य) प्रश्न पूछने में—अथ शक्तोऽसि तत्र गन्तुम् (क्या वहाँ जाओगे ?)

(र) 'और' तथा 'भी' अर्थ में—भीमोऽथार्जुन (भीम और अर्जुन), गणितमथ कलां कौशिकाम् (गणित और कौशिकी कला भी।)

(ल) 'साकल्य' और 'पूर्णता' अर्थ में—अथ धर्मं व्याख्यास्यामः (हम पूरा-पूरा धर्म-वर्णन करेंगे।)

(व) सन्देह और अनिश्चय में—शब्दो नित्योऽथानित्यः (शब्द नित्य है या अनित्य।)

---

१. तद्धितश्चासर्वविभक्तिः।१।१।३८।

२. कृन्मेजन्तः।१।१।३९।

३. क्त्वातोसुन्कसुनः।१।१।४०।

४. अव्ययीभावश्च।१।१।४१।

(२) अथकिम्—'हाँ,' 'ऐसा ही,' 'क्या' इन अर्थों में प्रयुक्त होता है। यथा—

शकारः—चेट प्रवहणमागतम् (क्या गाड़ी आ गई।)

भृत्यः—अथ किम् (हाँ।)

(३) अथवा—'वा', 'या', 'ऐसा क्यों' इन अर्थों में विभाजक की तरह या पूर्व के कथन में परिवर्तन या संशोधन के लिए प्रयुक्त होता है। यथा—दीर्यें किं न सहस्रधाहमथवा रामेण किं दुष्करम् (मैं हजारों टुकड़ों में क्यों नहीं फट जाती अथवा राम के द्वारा किस काम का किया जाना कठिन है।)

अथवा ममेदं—कर्त्तव्यमिदमधुना (ऐसा क्यों यह तो स्वयं मेरा इस समय कर्त्तव्य है)

(४) अपि—यह अव्यय निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(अ) यद्यपि, चाहे—सेवितोऽपि महाजनैः (यद्यपि बड़े लोगों से सेवित हुआ।)

(ब) भी, और—अपि सिञ्च अपि स्तुहि (पटाओ भी और स्तुति भी करो।)

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम् (हितेच्छु भी आने वाली आपत्तियों का कारण बन जाता है।)

(स) सम्भावना—अपि स बुद्ध्या महाशक्तिशालिनमपि तं जयेत् (सम्भव है उस महाशक्तिशाली को भी अपनी बुद्धि से जीत ले।)

(द) प्रश्न पूछने में—अप्येतत्तपोवनम् (क्या यह तपोवन है।)

(य) आशा, प्रतीक्षा—अपि उत्तरेत् स इमामग्निपरीक्षाम् (आशा है इस अग्नि परीक्षा में वह उत्तीर्ण हो जाय।)

(र) सन्देह, अनिश्चय—अपि श्यामः आगतो भवेत् (हो सकता है, श्याम आ गया हो।)

(५) अधिकृत्य—बारे में—अथ कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि (किस ऋतु के बारे में गाऊँ ?) कतमं पुनर्विषयमधिकृत्य वदिष्यामि (किस विषय के सम्बन्ध में कहूँ।)

(६) उद्दिश्य—बारे में, तरफ़—स्वपुरं मुद्दिश्य प्रतस्थे (वह अपने नगर की ओर चल पड़ा।) किमुद्दिश्यामी ऋषयो मत्सकाशं प्रेषिताः स्युः (किस उद्देश्य से ये ऋषि मेरे पास भेजे गए होंगे।)

(७) अकस्मात्—अचानक—सः अकस्मात् पतितः (वह अचनानक गिर गया।

(८) अग्रतः, अग्रे—आगे, पहले—दुष्टः तवाग्रत एव पलायितः (दुष्ट तेरे सामने ही से अथवा पहले ही भाग गया।)

(९) अचिरात्—तुरंत—स अचिरादेव गमिष्यति (वह तुरंत ही जायगा)

(१०) अतः—इसीलिए—त्वमतीवशठः अतस्त्वां निस्सारयामि (तू अत्यन्त शठ है इसलिए तुझे निकाल रहा हूँ।)

(११) अये—आश्चर्य—अये भगवत्यरुन्धती (ओ हो, यह तो पूज्य अरुन्धती जी हैं।)—खेद, भय—अये महत् दुःखमापतितम् (हा बड़ा दुःख आ पड़ा।)

(१२) अहह—इसका प्रयोग निम्नलिखित भावों में किया जाता है :—

(अ) हर्ष, आश्चर्य अथवा विस्मय—अहह महतां निःसीमानः चरित्र विभूतयः (ओ हो, महापुरुषों के चरित्र की विभूति असीमित होती है ।)

(ब) शोक अथवा बलवती वेदना—अहह दारुणो वज्रनिर्घातः (हा कष्ट, यह तो महाभयंकर वज्र प्रहार है ।) अहह कष्टमपण्डितता विधेः (हाय रे ब्रह्मा की मूर्खता ।)

(१३) अहो—यह सम्बोधन का शब्द है । यथा अहो राजानः—ऐ राजाओ। इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में किया जाता है :—

हर्ष अथवा विषादसूचक 'आ हा' या 'क्या ही' के अर्थ में—अहो मधुरमासां कन्यकानाम् दर्शनम् (आहा, इन कन्याओं का दर्शन क्या ही सुखकर है ।) अहो सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य (आहा, हरदशा में सौन्दर्य की अनिन्द्यता ।) अहो विपाकः (ओ हो, अवस्था का यह परिवर्तन ।)

(१४) आः—इसका प्रयोग निम्नलिखित भावों को प्रकट करने के लिए किया जाता है :—

(अ) हर्ष—आः स्वयं मृतोऽसि (अहा ! आप ही तू मरगया ।)

(ब) दुःख—आः शीतम् (ओ हो कैसा जाड़ा है ।)

(स) क्रोध—आः नाद्यनापि त्वं त्यक्तवान् स्वस्य शाठ्यम् (ओः अब तक तू ने अपनी शठता नहीं छोड़ी ।)

(१५) आम्—स्वीकार, हां—आं तत्र गत्वा मया इदमानीतम् (हां, वहां जाकर मैं यह लाया ।)

अतीत घटना को स्मरण करने में—किं नाम दंडकेयम्—(सर्वतो विलोक्य)—आम् (क्या सच मुच यह दंडकारण्य है । (चारों ओर देखकर) हाँ हाँ (अब मुझे स्मरण आ रहा है ।)

(१६) इति—यह निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(अ) यह—राम इति नाम कृतवान् (राम यह नाम रखा)

(ब) इसी से, इसलिए—ब्राह्मणोऽसीति प्रणमामि (ब्राह्मण हो, इसलिए प्रणाम करता हूँ ।)

(स) इस प्रकार—इति ब्रुवाणां तां दृष्ट्वा (इस प्रकार बोलती हुई उसको देखकर)

(द) इस प्रकार से—रामाभिधानो बालकः इत्युवाच (राम नामक बालक ने इस प्रकार कहा ।)

(य) इस कारण से दरिद्र इति सदयनीयः (दरिद्र होने के कारण दया का पात्र है ।)

(र) समाप्ति—इति प्रथमोऽध्यायः (पहला अध्याय समाप्त हुआ ।)

(१७) इव—यह निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(अ) उपमा देने में—वैनतेय इव विनतानन्दजननः (वह वैनतेय के समान था जो कि विनता को सुख देते थे।

(ब) थोड़ा सा, कुछ कुछ—कह्लार इवाद्यम् (वह थोड़ा थोड़ा (कुछ कुछ) चितकबरा है।)

(स) मानो—मृगानुसारिणंपिनाकिनमिव पश्यामि (मानो मृग का अनुसरण करने वाले पिनाकी को देख रहा हूँ।)

(द) सम्भवतः, वस्तुतः—परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्तु पुरुषः (सम्भवतः पराधीन पुरुष कैसे सुख का आनन्द जाने।)

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (वस्तुतः सुन्दर आकृति वालों के लिए कौन सी वस्तु अलङ्कार नहीं बन जाती।)

(१८) उत—सन्देह, अनिश्चय—त्वं काशीं गमिष्यसि उत प्रयागम् (तू काशी जायगा या प्रयाग।)

कभी-कभी उत के स्थान पर उताहो या आहोस्वित् भी प्रयुक्त होता है। यथा—न जाने किमिदं वल्कलानां सदृशमुताहो जटानां समुचितं किं तपसोनुरूपमाहोस्वित् धर्मोपदेशांगमिदम् (मेरी समझ से नहीं आ रहा है कि यह तुम्हारे वल्कलवस्त्रों के लिए उचित है अथवा तुम्हारी जटाओं के योग्य है ········· ।)

(१९) एव—(अ) ठीक—एवमेव (ठीक ऐसा ही।)

(ब) वही—पुरुषः स एव (वही पुरुष है।)

(स) केवल—सा तय्यमेवाभिहिता भवेन (शिव द्वारा उसको सच्ची बात मात्र बतला दी गई।)

(द) तत्क्षण—उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् (चूंकि वह स्त्री यहाँ है, अतएव जिसी क्षण (ज्यों ही) उसका नाम लिया गया।)

(२०) एवम्—साधारणतया 'एवम्' का अर्थ 'ऐसा' या 'इस प्रकार' होता है। इसका सम्बन्ध किसी पूर्व कथित वस्तु अथवा बाद में आने वाली वस्तु से होता है अथवा किसी कार्य को करने के लिए आदेश देने में यह शब्द प्रयुक्त होता है। यथा—

एवमुक्तः कपिञ्जलः प्रत्युवाच (मुझसे इस प्रकार कहे जाने पर कपिञ्जल ने उत्तर दिया।)

'अच्छा' 'हाँ' 'ठीक है' इनका भी बोध कराने में यह प्रयुक्त होता है। यथा—एवमेतत् (हाँ, यह ऐसा ही है।)

एवं कुर्मः (हाँ, हम लोग ऐसा करेंगे।)

(२१) कच्चित्—इस अव्यय से वक्ता द्वारा व्यक्त की गई हुई किसी आशा का बोध होता है और इसका अर्थ होता है "मैं आशा करता हूँ कि"। वस्तुतः यह प्रश्न-वाचक हुआ करता है। यथा—

शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् (आप के तीर्थजल विघ्नरहित तो हैं ? अर्थात् मैं आशा करता हूँ कि आपके तीर्थ जल विघ्नरहित हैं।)

(२२) कामम्—यह बात ठीक है, यह मैं मानता हूँ—कामं न तिष्ठति मदानन-संमुखी सा (यह ठीक है कि वह मेरे सामने नहीं ठहरती।)

अपनी इच्छा भर, यथेष्ट—कामं मृषा वदतु किन्तु न कार्य सिद्धिः (अपनी इच्छा भर, यथेष्ट झूठ बोल लो किन्तु इससे कुछ काम सधने को नहीं।) भले ही—कामं सन्तु सहस्रशो नृपतयः (भले ही हजारों राजा रहें।)

कामम् के साथ वाक्य में 'तु' या 'तथापि' अवश्य आता है।

(२३) किम्—(अ) प्रश्न करने में—तत्रैव किं न चपले प्रलयं गतासि (ऐ चपल देवि, तू उसी स्थान पर नष्ट क्यों नहीं हो गई।)

(ब) खराब, कुत्सित अर्थ में—स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपम् (जो स्वामी को उचित राय नहीं देता वह क्या मित्र है अर्थात् वह बुरा मित्र है।)

(स) 'किं···या' अर्थ में- ज्ञायतां किमेतदारण्यकं ग्राम्यं वेति (इसका पता लगा लिया जाय कि यह पशु जंगली है या पालतू।)

(२४) 'किमु'-(अ) 'क्या कहना है' अर्थ में—एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्—(एक भी अनर्थकारी है, जहाँ चारों हों वहाँ तो कहना ही क्या है।)

(ब) सन्देह—किमु विष विसर्पः किमु मदः (यह विष का प्रकार है या अत्यन्त मद।)

(२५) कृते—लिए—परोपकारस्य कृते जीवनमपि त्यजेत् (परोपकार के लिए जीवन को दे देना चाहिए।)

(२६) किल (अ) 'निश्चय ही' अर्थ में—अर्हति किल कितव उपद्रवम् (निश्चय ही इस शठ का उपद्रव होना उचित है।)

(ब) 'कहते हैं', 'लोग कहते हैं' अर्थ में—बभूव योगी किल कार्तवीर्यः (लोग कहते हैं कि कार्तवीर्य नामक एक योगी था)।

(स) नकली काम को द्योतित करने के लिए—प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष (एक नकली सिंह ने उसे जबर्दस्ती खींच लिया।)

(द) आशा प्रकट करने के लिए—पार्थः किल विजेष्यति कुरून् (मैं आशा करता हूँ कि पार्थ कुरुओं को जीत लेगा।)

(२७) खलु—इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में किया जाता है :—

(अ) वस्तुतः, निश्चय ही—मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति (सचमुच तेरे कदम रास्ते में ऊंट शण्ड पड़ते हैं।)

(ब) प्रार्थनासूचक शब्द के तौर पर—न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन् (इसके ऊपर बाण न छोड़ा जाय।)

(स) शिष्टतापूर्ण तथा नम्रतापूर्ण प्रश्न करने में—न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः (मैं जानना चाहता हूँ कि क्या गुरु जी उससे क्रुद्ध हो गए ?)

(द) निषेधार्थक क्त्वान्त शब्दों के साथ—निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम् (जब कोई मामला पत्र द्वारा निर्णीत किया जाता हो तो मौखिक सन्देश मत जोड़ दो अर्थात् मौखिक सन्देश कहना आवश्यक है ।)

(घ) कारण—न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः (मैं टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाती हूँ क्योंकि स्त्रियाँ कठोर होती हैं ।)

कभी-कभी यह केवल वाक्यालंकार के तौर पर प्रयुक्त होता है ।

(२८) क्षणात्—क्षण भर में, जल्द—क्षणादूर्ध्वं न जानामि विधाता किं करिष्यति (क्षण भर में न मालूम विधाता क्या करेगा ।)

स क्षणात् मृतः (वह जल्द मर गया ।)

(२९) क्षणम्—थोड़ी देर—क्षणं तिष्ठ (थोड़ी देर ठहर ।)

(३०) च—यह संयोजक समुच्चयबोधक अव्यय है और शब्दों अथवा वक्तव्यों को जोड़ता है । यह कभी भी वाक्य के आदि में नहीं आता है । वाक्य के आदि में रखने के अतिरिक्त 'च' को कहीं भी रखा जा सकता है । यथा—काकोऽप्युड्डीय वृक्षमारूढः मन्थरश्च जलं प्रविष्टः (कौआ भी उड़कर पेड़ पर चढ़ गया और मन्थर पानी में घुस गया ।)

(अ) जब 'च' 'न' के साथ प्रयुक्त होता है, तब उसका अर्थ 'न तो' या 'न' होता है । यथा—न च न परिचितो न चाप्यगम्यः (न तो वह अप्रसिद्ध ही है, न अगम्य ही है ।)

(ब) कभी-कभी 'च' तथापि, परन्तु आदि के अर्थ में विरोधात्मक भाव लेकर प्रयुक्त होता है । यथा—शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः (यह आश्रम तो शान्त है, तथापि मेरी भुजा फड़क रही है ।)

(स) कुछ स्थलों पर इसका अर्थ 'सचमुच', 'वस्तुतः' होता है । यथा—अतीतः पंथानं तव च महिमा वाङ्मनसयोः (आप की महिमा वस्तुतः वाणी और मन के मार्ग से परे है ।)

(द) कभी-कभी 'शर्त' सूचित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है । यथा—जीवितं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु अर्थात् जीवितमिच्छसे चेत् ।

(य) यह वाक्यालङ्कार की तरह अथवा श्लोक का पाद पूरा करने के लिए भी आता है—भीमः पार्थस्तथैव च ।

(र) अन्वाचय (किसी आश्रित घटना या इतिवृत्त को किसी प्रधान घटना या इतिवृत्त के साथ जोड़ना), समाहार (सामूहिक ऐक्य), इतरेतर (पारस्परिक सम्बन्ध), समुच्चय (समूह) के अर्थ में भी 'च' प्रयोग में लाया जाता है । यथा—

अन्वाचय—भिक्षामट गां चानय (भीख माँगने जाओ और गाय लेते आना) ।

समाहार—पाणी च पादौ च पाणिपादम् (हाथ-पैर की समष्टि) ।

इतरेतर—रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणौ ।

समुच्चय—पचति च पठति च ।

(ख) दो घटनाओं का साथ होना अथवा अविलम्ब से होना सूचित करने के लिए 'च' प्रयुक्त होता है । यथा—ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः (ज्यों ही लोग समुद्र पर पहुँचे त्यों ही आदि पुरुष (विष्णु) जाग पड़े ।)

(२१) चिरम्, चिरेण—दीर्घकाल से, यथा—चिरं खलु गतः मैत्रेयः (मैत्रेय बहुत पहले जा चुका है ।)

(२२) जातु—एकदम से, सम्भवतः, कदाचित्, कभी, शायद्—न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति (विषयों के उपभोग से कामनायें कभी पूरी नहीं होतीं ।)

न जातु तेन जाते न (सम्भवतः उसके जन्म लेने से क्या लाभ ?)

न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिम् (उस कुमारी ने जरा भी सुख न भोगा)
पाणिनि के कथनानुसार जातु का प्रयोग नहीं मानना के अर्थ में क्रियालिङ् के साथ किया जाता है । यथा—

जातु यद्भवान् हरिं निन्देत मर्षयामि (मैं नहीं मानता कि आप कभी भी हरि की निन्दा करेगा)।

(२३) तद्—सर्वनाम तथा क्रियाविशेषण अव्यय भी है । क्रियाविशेषण की दशा में इसके निम्नलिखित अर्थ हैं :—

(अ) इस कारण से, इसलिए—राजपुत्रा वयं, तदिमं श्रोतुं नः कुतूहलमस्ति (हम लोग राजपुत्र हैं, इसलिए हमें संग्राम के विषय में सुनने की इच्छा है ।)

(ब) तो, उस दशा में—तदेहि विमर्दक्षमां भूमिमवतरावः (तो आओ, युद्ध के लिए उपयुक्त किसी स्थान पर चलें ।)

(२४) ततः—(अ) तब, इसके बाद, बाद में, वहां से—ततो लोभाकृष्टेन केनचित् पान्थेनालोचितम् (बाद में लोभाभिभूत किसी पथिक ने सोचा ।)

ततः प्रतिनिवृत्य अत्र स्थास्यामि (वहाँ से लौटकर यहाँ रहूँगा ।)

(ब) इस कारण से, इसलिए, फलस्वरूप—नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम् (यदि भगवान् की आराधना नहीं की तो तप से क्या लाभ ?)

(स) इसके परे, आगे, इसके अतिरिक्त—ततः परतो निर्मानुषमरण्यम् (इसके परे एक निर्जन वन है ।)

ततः परं किं वक्तव्यम् (इसके अतिरिक्त और क्या कहना है ?)

(२५) ततस्ततः—फिर इसके आगे, कहते चलिए, आगे कहिए—राजा—उभयोरप्यस्थाने प्रयत्नः । ततस्ततः (राजा—दोनों का प्रयत्न अनुचित था, अच्छा तो आगे क्या हुआ, कहते चलिए ।)

(२६) तथा—इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है—

(अ) इस प्रकार, वैसा ही – तथा मां वंचयित्वा (इस प्रकार मुझे धोखा देकर ।)
सूतस्तथा करोति (सारथि वैसा ही करता है ।)

(ब) और भी, इसी प्रकार से यह भी—अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा (जो भविष्य के लिए व्यवस्था करता है और भी जो प्रत्युत्पन्न मति होता है ।)

(स) हाँ, ऐसा ही हो, इसी प्रकार होगा—तथेति निष्क्रान्ता (ऐसा कहती हुई निकल गई ।)

(द) इतने निश्चयपूर्वक जितने—यथाहमन्यं न चिंतये तथायं पततां पराङ्मुः (जितना यह निश्चय है (सत्य है) कि मैं किसी भी दूसरे पुरुष के बारे में नहीं सोचता हूँ उतने ही निश्चयपूर्वक यह घटना भी घटे कि वह व्यक्ति मर जाय ।)

(३७) तथाहि—क्योंकि, देखिए, कहा है—धर्मशास्त्रेऽपि एतदुक्तम्, तथाहि (धर्मशास्त्र में ऐसा कहा है, देखिए ।)

(३८) तावत् – निम्नोक्त अर्थों में इसका प्रयोग होता है :—

(अ) पहिले, कुछ करने के पहिले—प्रिये इतस्तावदागम्यताम् (मेरी प्यारी, पहिले इधर तो आओ ।)

आह्लादयस्व तावच्चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव—(पहिले तो मुझे प्रसन्न करो जैसे चन्द्रमा की किरण चन्द्रकान्तमणि को प्रसन्न करती है ।)

(ब) रही बात, इसी बीच में, तब तक—सखे स्थिर प्रतिबन्धो भव । अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये (मित्र, विरोध करने में दृढ़ बने रहो, रही बात मेरी, मैं तो अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार आचरण करूंगा ।)

(स) अभी—गच्छ तावत् (अभी जाओ ।)

(द) वस्तुतः—त्वमेव तावत् प्रथमो राजद्रोही (तू ही पहिला राजद्रोही है ।)

(य) रही, विषय में—एवं कृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेशं विना भविष्यति (रही बात तुम्हारी, सो ऐसा हो जाने पर, तुम्हारी जीविका बिना किसी कष्ट के हो जाया करेगी ।)

(३९) तु—परन्तु, इसके विरुद्ध—स सर्वेषां सुखानां प्रायोऽन्तं ययौ, एकं तु सुतमुखदर्शनसुखं न लेभे (वह सभी सुखों को पूर्ण रूप से भोगता था, परन्तु उसने (पुत्रमुखदर्शन का सुख कभी भी नहीं भोगा ।)

(ब) और अब, अब तो—एकदा तु नातिदूरोदिते सहस्रमरीचिमालिनि प्रतिहारी समुपसृत्याब्रवीत् (अब, एक बार, जब सहस्रकिरणधारी भगवान् सूर्यदेव बहुत ऊंचे नहीं चढ़े थे, कि इतने में ही द्वारपाल ने समीप आकर कहा ।)

अवनिपतिस्तु तामनिमेषलोचनो ददर्श (महाराज तो उसकी तरफ टकटकी लगाकर देखने लगे ।)

(स) कभी कभी विभिन्नता या उत्तमतर गुण सूचित करता है । यथा—

प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः (प्रायः अपने प्रेमियों से वियोग हो जाने पर स्त्रियों के ये ही मनोरंजन हुआ करते हैं ।)

(५४) प्रेत्य—परलोक, मरकर—प्रेत्य च दुःखम् (परलोक में भी दुःख है ।)

(५५) बत—निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(अ) शोक दुःख अथवा करुणा प्रकट करने के लिए—अहो बत महत् पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् (हाय, शोक की बात है कि हम लोग कैसा बड़ा पाप करने जा रहे हैं ।)

(ब) हर्ष अथवा आश्चर्य प्रकट करने के लिए—अहो बत महच्चित्रम् (अहा ! बड़ा आश्चर्य है ।)

(५६) बलवत्—बड़े जोरों से, अत्यन्त ही, खूब—शिव इन्द्रियक्षोभं बलवन्निजग्राह (शिव जी ने बड़े जोरों से अपनी इन्द्रियों के क्षोभ को दबाया ।)

बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला (शकुन्तला की तबीयत बहुत ही खराब है ।)

(५७) मा—मत—मा प्रयच्छेश्वरे धनम् (धनी को धन मत दो ।)

(५८) मिथ्या, मृषा—झूठ—मृषा वदति लोकोऽयं ताम्बूलं मुखभूषणम् (लोग झूठ कहते हैं कि मुख की शोभा पान है ।)

(९) मुहुः—(अ) प्रायः—बालो मुहुः रोदिति (बच्चा प्रायः रोया करता है ।)

(ब) किसी समय, दूसरे समय, कभी कभी—मुहुर्भ्रश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफला (एक समय तो उसके बीज लुप्त होते हुए मालूम पड़ते हैं, दूसरे समय वह बहुत से फल देती है ।)

(६०) यत्—(अ) कि—त्वं किं कामोऽसि यदत्र प्रतिदिनमागच्छसि (तू क्या चाहता है कि प्रतिदिन यहाँ आता है ।)

(ब) क्योंकि—प्रियमाचरितं लते त्वया मे यदियं पुनर्मया दृष्टा (ऐ लते, तुमने मेरी एक भलाई की है क्योंकि यह मेरे द्वारा एक बार फिर देख ली गई ।)

(स) जो—तस्य मनसि किं वर्तते यदेवमनुचितं सर्वदा करोति (उसके मन में क्या है जो बराबर ऐसा अनुचित करता है ।)

(६१) यतः जहां से, जिससे—यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी (जहां से यह पुरातन सृष्टि चली ।)

(ब) क्योंकि—यतोऽयं पुण्यकर्मणा धुरीणः हिरण्यको नाम मूषिकराजः (क्योंकि यह पुण्यात्माओं में अग्रगण्य हिरण्यक नामक मूषिकराज है ।)

(६२) यत्सत्यम्—निश्चय ही, अवश्य ही, सच पूछिये तो—अमंगलाशंसयास्य वो वचनस्य यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् (तुम्हारे अमंगलसूचक वचन से, सच पूछिये तो मेरा हृदय काँपता है ।)

(६३) यथा—निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

(अ) जैसा—यथा दिशति भवान् (जैसी आपकी आज्ञा ।)

(ब) तुल्य, समान—आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः (यह दशरथ के घर में लक्ष्मी के समान थी ।)

(स) ताकि, जिसमें—त्वं दर्शय तमाततायिनं यथा तं मारयामि (तू उस आततायी को दिखला ताकि मैं उसको मारूँ ।)

(द) निम्नोक्त प्रकार से—यथानुश्रूयते (जैसा कि निम्नलिखित प्रकार से सुना जाता है ।)

(६४) यथा-तथा (अ) जैसा—वैसा—यथा वृक्षस्तथा फलम् (जैसा वृक्ष वैसा फल ।)

(ब) इस प्रकार—कि—यदि वानुमतं तथा वर्तेयां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि (यदि आप इसका अनुमोदन करें तो इस प्रकार आचरण करूँ कि मैं राजर्षि जी की दया का पात्र बन जाऊं ।)

(स) चूंकि · इसलिए—यथायं चलितमलयाचलशिलासंचयः प्रचण्डो नमस्वांस्तथा तर्कयामि आसन्नीभूतः पक्षिराजः (चूंकि मलयपर्वत पर स्थित प्रस्तर-समूह को हिला देने वाली यह हवा बड़ी प्रचण्ड है, इसलिए मैं समझता हूँ कि पक्षिराज आ गए हैं ।)

(६५) यथा यथा—तथा तथा—(जितना जितना—उतना उतना, जितना ही—उतना ही · यथा यथा प्रियं वदति परिभूयते तथा तथा (ज्यों ज्यों (जितना ही) पुरुष मीठा बोलता है त्यों २ (उतना ही) तिरस्कृत होता है ।)

(६६) यावत् (अ) जहां तक, तक—स्तन्यत्यागं यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व (इन पुत्रों की तब तक देख रेख करो जब तक ये स्तन का दूध पीना छोड़ न दें ।) कियंतमवधिं यावदस्मच्चरितं चित्रकारेणालिखितम् (चित्रकार द्वारा हमारी जीवन-घटना कहाँ तक चित्रित की गई है ?)

(ब) अभी, तो—तद् यावद् गृहिणीमाहूय संगीतकमनुतिष्ठामि (तो अपनी स्त्री को बुलाकर मैं संगीत प्रारम्भ करता हूँ ।)

यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि ताम् (इस छाया का सहारा लेकर मैं उसकी प्रतीक्षा करता हूँ ।)

(६७) यावत्-तावत्-(अ) जब तक, तब तक—तावद् भयाद्धि भेतव्यं यावद् भयमनागतम् (जब तक भय नहीं आया हो, तभी तक भय से डरना चाहिए ।)

(ब) ज्यों ही त्यों ही, जब तब—यावत् सरः स्नातुं प्रविशति तावन्महापङ्के पतितः पलायितुमक्षमः (ज्यों ही सरोवर में स्नान के लिए प्रविष्ट हुआ त्यों ही बड़े भारी पंक में फंसकर भागने में असमर्थ हो गया ।)

(स) सब, सम्पूर्ण—यावत्पठितं तावद्विस्मृतम् (सम्पूर्ण (जो कुछ) पढ़ा सो भूल गया ।)

(६८) यावन्न—पहिले ही, पूर्व ही—तद् यावन्न लग्नवेला चलति तावदागम्यतां देवेन (तो लग्न काल के टल जाने के पूर्व ही श्रीमान आवें ।)

(४) किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् ।
(कुमार० ५।४४)

(५) विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य । (शकु० ३) ।

(६) वयस्य मया न साधु समर्थितमापत्प्रतीकारः किल प्रमदवनोद्यानप्रवेश इति ॥
(विक्रमो०)

(७) न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ (मनु० २।९४)

(८) सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत्परिवर्तंते दुःखानि च सुखानि च ॥ (हितोप०)

(९) न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ॥ (शकुं १)

(१०) दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते । (शकुं० ७)

(११) सखि लवंगिके दिष्ट्या वर्द्धसे । ननु भणामि प्रतिबुद्ध एव ते प्रियवयस्यः प्रतिपन्नचेतनो महाभागो मकरन्द इति । (मालती० ४)

(१२) आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ (शकुं० १)

(१३) ततो यावदसौ पांथस्तद्वचसि प्रतीतो लोभात्सरसि स्नातुं प्रविशति तावन्महापङ्केनिमग्नः पलायितुमक्षमः (हितोप०)

(१४) यथा यथेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति । (काद०)

(१५) अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
क्रियाः सर्वा विनश्यंति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ (हितोप०)

(१६) यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ (भर्तृहरि० ३।८८)

(१७) हन्त भोः शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम् । (शकुं० ४)

(१८) वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम् ।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि-
र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम् ॥ हितोप०)

(१९) स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यति । (शकु० ६)

(२०) हंत वर्धते संरंभः । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि ।
(शकु० ७)

(२१) यथैव श्लाघ्यते गंगा पदेन परमेष्ठिनः ।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया ॥ (कुमार० ६।७०)

(२२) बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते । तद्यथा नौ प्रियसखी बंधुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाह्य । (शकु० ३)

(२३) यथा यथा यौवनमतिचक्राम तथा तथा अनपत्यताजन्मा महानवर्धतास्य संतापः (काद०) ।

(२४) अयि कठोरयशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम् ।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः कथमनाथ कथं बत मन्यसे ॥ उत्तर० ३)

(२५) सत्योऽयं जनप्रवादो यत् संपत् संपदमनुबध्नातीति । (काद०)

(२६) अहो बतासि स्पृहणीयवीर्यः । (कुमार ३।२०)

(२७) त्यजत मानमलं बत विग्रहैः । (रघु० ९।४७)

(२८) अनियंत्रणानुयोगो नाम तपस्विजनः । (शकुं०, ६)

(२९) अलं रुदित्वा । ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्त्तव्या शकुन्तला । (शकुं० ४)

(३०) इयं ललनाजनं सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता । (दशकु० ११५)

(३१) आर्य ततः किं विलंब्यते । त्वरितं प्रवेशय । (उत्तर० १)

(३२) अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा (पंचतंत्र १।१३)

(३३) तथापि यदि महत् कुतूहलं तत् कथयामि । (काद०)

(३४) मयि नांतकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः । (रघु० २।६२)

(३५) कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखी सा भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(१) ऐ विद्वान् महापुरुष, माणवक को पढ़ाइए ।

(२) धनी पुरुषों का तृण से भी काम पड़ जाया करता है, फिर वाणी तथा हाथों से युक्त मनुष्य का क्या कहना है ।

(३) मेरे हृदय में इनके प्रति सगों जैसा स्नेह भी है ।

(४) आशा करता हूँ कि वह राजकुमार जी जाय ।

(५) राजाओं को सभी से मतलब रहता है ।

(६) ऐ प्राणनाथ, क्या तुम जीवित हो ?

(७) दुःख है, महाराज के चरणकमलों के सेवक की यह दशा है ।

(८) हा कष्ट, यह तो महाभयंकर वज्र प्रहार है ।

(९) ओ हो, अवस्था का यह परिवर्तन ।

(१०) अच्छा, तो बात ऐसी थी ।

(११) मुझे राजा के साले द्वारा आज्ञा मिली है कि हे स्थावरक, गाड़ी लेकर उद्यान में जाओ ।

(१२) चूंकि मैं अनजान (वैदेशिकः) हूँ अतः पूछता हूँ कि यह महाशय कौन हैं ?

(१३) पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशाएं, आत्मा और मन ये द्रव्य हैं।

(१४) सीता से वियुक्त श्री रामचन्द्र जी को, सम्भवतः, क्या वस्तु दुःखदायी न होगी।

(१५) मनुष्य को एक ही वस्तु अभीष्ट होती है, या तो राज्य या आश्रम।

(१६) यह तो होवेगा ही।

(१७) इस प्रकार कहे जाने पर उसने उत्तर दिया ?

(१८) आप के तीर्थजल विघ्नरहित तो हैं।

(१९) अपने लगाए हुए वृक्षों के प्रति तो स्नेह उत्पन्न ही हो जाता है, फिर अपनी सन्तानों के प्रति तो कहना ही क्या है।

(२०) सरस्वती की महिमा वाणी और मन के मार्ग से परे है।

(२१) यदि यह पकड़ लिया गया तो क्या होगा ?

(२२) अभी जाओ।

(२३) वह शत्रुओं में सबसे भयंकर है।

(२४) मैं आपको परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर बधाई देता हूँ।

(२५) योगियों को कोई भी भय नहीं है।

(२६) रावण नामक लङ्का का राजा था।

(२७) क्यों ? आप मेरे सामने हैं ?

(२८) वह अवश्य ही तुमको संकटों से मुक्त करेगा।

(२९) यही बात बार बार कहो।

(३०) ऐ बादलो, खूब जल दो।

(३१) तुम ऐसा क्यों कहते हो ? बड़ा भारी अन्तर है क्योंकि कर्पूर द्वीप साक्षात् स्वर्ग है।

(३२) जहाँ-जहाँ धुआँ रहता है वहाँ-वहाँ आग रहती है, जैसे रसोई घर में।

(३३) यदि अपने पतिदेव के प्रति मेरे आचरण में मनसा, वाचा, कर्मणा कोई भी बुराई न हो, तो ए पृथ्वी देवी, कृपा कर मुझे अपने अन्दर ले लो।

(३४) जब तक मनुष्य अर्थोपार्जन के योग्य रहता है, तब तक उसका परिवार उसमें अनुरक्त रहता है।

(३५) ज्यों ही मैंने एक विपत्ति का पार पाया त्यों ही मेरे ऊपर दूसरी आपत्ति आ उपस्थित हुई।

(३६) प्राण छोड़ देना अच्छा है, परन्तु नीचों का सम्पर्क नहीं।

(३७) तुम्हारा प्रयत्न अनुपयुक्त है।

(३८) सचमुच तुम कैसे जाओगे ?

(३९) वस्तुतः कमलिनी को देखकर हाथी ग्राह की परवाह नहीं करता।

(४०) केवल मूर्ख पुरुष कामदेव से सताया जाता है।

पञ्चदश सोपान

वृत्त-परिचय

छन्द—संस्कृत में रचना प्रायः दो प्रकार की होती है—गद्य और पद्य। छन्दरहित रचना को गद्य और छन्दोबद्ध रचना को पद्य कहते हैं। जो रचना अक्षर, मात्रा, गति, यति आदि के नियमों से युक्त होती है, उसे छन्द की संज्ञा से अभिहित करते हैं। जिन ग्रन्थों में छन्दों के स्वरूप तथा प्रकार आदि की विवेचना की जाती है, उन्हें छन्द-शास्त्र कहते हैं।

वर्ण या अक्षर—छन्द-शास्त्र की दृष्टि से अकेला स्वर या व्यञ्जन-सहित स्वर अक्षर कहलाता है। केवल व्यञ्जन (क् ख् आदि) अक्षर या वर्ण नहीं कहलाते। 'आ' 'का' और 'काम्' में छन्द-शास्त्र की दृष्टि से एक ही अक्षर हैं क्योंकि इनमें स्वर केवल एक 'आ' ही है। छन्द में अक्षरों की गणना करते समय व्यञ्जनों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है।

अक्षरों के दो भेद हैं—लघु और गुरु। ह्रस्व अक्षरों (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) को लघु और दीर्घ अक्षरों (आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ) को गुरु कहते हैं। इसी प्रकार क, कि आदि लघु अक्षर हैं और का, की आदि गुरु हैं।

अनुस्वारयुक्त, दीर्घ, विसर्गयुक्त और संयुक्त अक्षरों से पूर्व वर्ण गुरु होता है। छन्द के पाद या चरण का अन्तिम अक्षर आवश्यकतानुसार लघु या गुरु माना जा सकता है।

"सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥"

इस प्रकार 'कंस' में 'कं' 'काल' में 'का', 'दुःख' में 'दुः' और 'युक्त' में 'यु' गुरु अक्षर हैं। गुरु का चिह्न (ऽ) है और लघु का (।) है।

गण—तीन-तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं। गणों के नाम, स्वरूप तथा उदाहरण निम्नलिखित हैं—

	गणनाम	संक्षिप्त नाम	लक्षण	संकेत	उदाहरण
१	मगण	म	तीनों अक्षर गुरु	ऽऽऽ	विद्यार्थी
२	नगण	न	तीनों अक्षर लघु	।।।	सरल
३	भगण	भ	प्रथम अक्षर गुरु	ऽ।।	भारत
४	यगण	य	प्रथम अक्षर लघु	।ऽऽ	यशोदा
५	जगण	ज	मध्यम अक्षर गुरु	।ऽ।	जिगीषु
६	रगण	र	मध्यम अक्षर लघु	ऽ।ऽ	राधिका
७	सगण	स	अन्तिम अक्षर गुरु	।।ऽ	कमला
८	तगण	त	अन्तिम अक्षर लघु	ऽऽ।	आकाश

गणों का स्वरूप याद रखने के लिए निम्नलिखित श्लोक को कण्ठस्थ कर लेना चाहिए—

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः, कथितोऽन्तलघुस्तः॥

(मगण में तीनों गुरु, नगण में तीनों लघु, भगण में आदि अक्षर गुरु, यगण में आदि का लघु, जगण में मध्यम गुरु, रगण में मध्यम लघु, सगण में अन्तिम गुरु और तगण में अन्तिम लघु होता है।)

मात्रा—ह्रस्व या लघु अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे एक मात्रा कहते हैं और दीर्घ या गुरु के उच्चारण-काल को दो मात्रा। अतएव छन्दों में मात्राओं की गणना करते समय लघु की एक और गुरु की दो मात्राए गिनी जाती हैं।

गति—छन्दों में गति अर्थात् लय या प्रवाह का भी ध्यान रखना पड़ता है। मात्रिक छन्दों में इसकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता रहती है।

यति—जिन छन्दों के एक-एक चरण में अक्षरों या मात्राओं की संख्या थोड़ी होती है उन्हें पढ़ने में तो कोई कठिनाई नहीं होती परन्तु लम्बे चरणों के पाठ में बीच में रुकना ही पड़ता है। उस विश्राम-स्थल को ही यति या विराम कहते हैं।

चरण—प्रायः छन्दों में चार चरण, पाद या पंक्तियाँ होती हैं परन्तु कभी कभी छन्द न्यूनाधिक चरणों के भी दिखाई देते हैं।

छन्दों के भेद—छन्दों के मुख्य दो भेद हैं—वार्णिक छन्द और मात्रिक छन्द। वार्णिक छन्दों में वर्णों की संख्या और गणक्रम पर विशेष ध्यान रहता है एवं मात्रिक छन्दों में मात्राओं की संख्या और गति पर। मात्रिक छन्द को जाति छन्द की भी संज्ञा से अभिहित करते हैं। वर्ण वृत्तों के चरणों में गुरु-लघु क्रम प्रायः समान होता है परन्तु मात्रिक छन्द में इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं रहता है। उपर्युक्त दोनों भेदों के तीन-तीन अवान्तर भेद भी हैं—

सम छन्द, अर्द्ध सम छन्द और विषम छन्द।

सम छन्दों के चारो चरणों में वर्णों या मात्राओं की संख्या समान होती है, अर्द्ध सम छन्दों में प्रथम और तृतीय चरणों की तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों की अक्षर या मात्रा-संख्या समान होती है। विषम छन्द उपर्युक्त विभागों के अन्तर्गत नहीं आते।

अब संस्कृत के कतिपय छन्दों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। विस्तृत अध्ययन के लिये छन्दःशास्त्र, वृत्तरत्नाकर, छन्दोमञ्जरी आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं।

(अ) वर्णवृत्त, समछन्द

प्रतिचरण ८ अक्षरवाले छन्द

अनुष्टुप्

लक्षण—श्लोके षष्ठं गुरुं ज्ञेयं, सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

(इस छन्द के प्रत्येक पाद का पाँचवाँ वर्ण लघु होता है और छठा गुरु। सम (द्वितीय तथा चतुर्थ) चरणों का सातवाँ वर्ण लघु होता है और विषम (प्रथम तथा तृतीय) चरणों का सातवाँ वर्ण गुरु। शेष वर्णों के विषय में लघुगुरु की स्वतंत्रता है।)

उदाहरण—(१) यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
(२) वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

प्रतिचरण ११ अक्षरवाले छन्द

(अ) इन्द्रवज्रा

लक्षण—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

(इन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में दो तगण, जगण और गुरु के क्रम से ११ वर्ण होते हैं।)

तगण	तगण	जगण	ग	ग
ऽऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ	ऽ

उदाहरण—(१) गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा
रुष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्तवृष्टौ ।
यो गोकुलं गोपकुलं च सुस्थं
चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः ॥
(२) ये दुष्टदैत्या इह मर्त्यलोके
(३) मैं जो नया ग्रन्थ विलोकता हूँ,
भाता मुझे सो नव मित्र सा है।
देखूँ उसे मैं नित बार-बार
मानो मिला मित्र मुझे पुराना ॥

(ब) उपेन्द्रवज्रा

लक्षण—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।

(उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण तथा दो गुरु होते हैं।)

जगण	तगण	जगण	ग ग
।ऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽऽ

उदाहरण—(१) जितो जगत्येष भवभ्रमस्तैर्गुरूदितं ये गिरिशं स्मरन्ति।
उपास्यमानं कमलासनाद्यैरुपेन्द्रवज्रायुधवारिनाद्यैः ॥
(२) बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै,
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
विना विचारे यदि काम होगा
कभी न अच्छा परिणाम होगा ॥

(स) उपजाति

लक्षण—अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।

(जिस छन्द के कुछ चरण इन्द्रवज्रा के हों और कुछ उपेन्द्रवज्रा के, उसे उपजाति कहते हैं।)

ISI SSI ISI SS
उदाहरण—(१) अयप्र जानाम धिपःप्र भाते,
SSI SSI ISI SS
जायाप्र तिग्राहि तगन्ध माल्याम्।

(२) यो गोकुलं गोपकुलं च चक्रे सुस्थं स मे रक्षतु चक्रपाणिः।

(३) उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं, (इन्द्र०)
क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्। (उपे०)
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च, (इन्द्र०)
लक्ष्मीः स्वयं वाञ्छति वासहेतोः॥ (उ०)

(४) इच्छा न मेरी कुछ भी बनूँ मैं
कुबेर का भी जग में कुबेर।
इच्छा मुझे एक यही सदा है,
नये नये उत्तम ग्रंथ देखूँ॥

प्रतिचरण १२ अक्षरवाले छन्द

(अ) वंशस्थ

लक्षण—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।

(वंशस्थ छन्द के प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण और रगण के क्रम से १२ अक्षर होते हैं।)

जगण तगण जगण रगण
ISI SSI ISI SIS

उदाहरण—(१) नृपः पराक्रान्तिभुजा महीभुजाम्।

(२) जनस्य तीव्रातपजार्तिवारणा
जयन्ति सन्तः सततं समुन्नताः।
सितातपत्रप्रतिमा विभान्ति ये
विशालवंशस्यतया गुणोच्चिताः॥

(३) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।

(४) निमीलिताक्षीव भियाऽमरावती।

(५) नमो नमो वाङ्मनसाऽतिभूतये।

प्रतिचरण १३ अक्षर वाले छन्द

प्रहर्षिणी

लक्षण—आशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।

(प्रहर्षिणी के प्रत्येक पाद में मगण, नगण, जगण, रगण और गुरु के क्रम से १३ वर्ण होते हैं ।) पुनश्च तीसरे और दसवें अक्षर पर यति होती है ।

मगण	नगण	जगण	रगण	गुरु
SSS	।।।	।S।	S।S	S

उदाहरण—(१) सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम्

(२) ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं,

(३) प्रस्थानप्रणतिभिरंगुलीषु चक्रुः
मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम् ।

(४) मानो जू, रंग रहि प्रेम में तुम्हारे
प्राणों के, तुमहिं अधार हो हमारे ।
वैसो ही, विचरहु रास हे कन्हाई
भावैं जो, शरदप्रहर्षिणी जुन्हाई ॥

प्रतिचरण १४ अक्षरवाला छन्द

(अ) वसन्ततिलका

लक्षण—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः

(वसन्ततिलका के प्रत्येक पाद में तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु के क्रम से १४ वर्ण होते हैं ।)

तगण	भगण	जगण	जगण	गुरु	गुरु
SS।	S।।	।S।	।S।	S	S

उदाहरण—(१) कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने

(२) जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

(३) न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।

(४) दानाम्बुसेकसुभगः सततं करोऽभूत् ।

(५) सोऽयं न पुत्र कृतकः पदवीं मृगस्ते ।

(६) रोगी दुखी विपत-आपत में पड़ी की,
सेवा अनेक करते निज हस्त से थे ।
ऐसा निकेत व्रज में न मुझे दिखाया
कोई जहाँ दुःखित हो पर वे न होवें ॥

प्रतिचरण १५ अक्षर वाला छन्द
मालिनी

लक्षण—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

(मालिनी के प्रत्येक चरण में नगण, नगण, मगण, यगण तथा यगण होते हैं। इसमें आठवें तथा सातवें अक्षर के बाद यति होती है।)

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
। । ।	। । ।	ऽ ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ

उदाहरण—(१) कलयति च हिमांशोर्निष्कलंकस्य लक्ष्मीम्

(२) मनसि वचसि काये, पुण्यपीयूषपूर्णा-
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून्, पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः, सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

(३) न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन् ।

(४) मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

(५) सहृदय जन के जो, कंठ का हार होता,
मुदित मधुकरी का, जीवनाधार होता ।
वह कुसुम रंगीला, धूल में जा पड़ा है,
नियति नियम तेरा, भी बड़ा ही कड़ा है ॥

प्रतिचरण १७ वर्ण वाले छन्द
(अ) शिखरिणी

लक्षण—रसैं रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

(शिखरिणी छन्द के प्रत्येक चरण में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और लघु-गुरु के क्रम से १७ अक्षर होते हैं। ६ और ११ अक्षर के बाद यति रहती है।)

यगण	मगण	नगण	सगण	भगण	ल	गु
। ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	। । ।	। । ऽ	ऽ । ।	।	ऽ

उदाहरण—(१) तृणे वा स्त्रैणे, वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः

(२) मरुन्मन्दंमन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्

(३) करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी, विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः, श्रुतमधिगतं च श्रवणयो-
र्विनाप्यैश्वर्येण, प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥

(४) अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥

(व) हरिणी

लक्षण—नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।

(हरिणी छन्द के प्रत्येक पाद में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण और लघु-गुरु के क्रम से १७ अक्षर होते हैं। छठे, दसवें और सत्रहवें अक्षर के बाद विराम होता है।)

नगण	सगण	मगण	रगण	सगण	लघु	गुरु
।।।	।।ऽ	ऽऽऽ	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

उदाहरण—(१) कनकनिकषस्निग्धाविद्युत्प्रिया न ममोर्वशी

(२) वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते ।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥

(३) प्रबलतमसामेवं प्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः ।

(४) कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकम् ।

(स) मन्दाक्रान्ता

लक्षण—मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।

(मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, भगण, नगण, दो तगण और दो गुरु के क्रम से १७ अक्षर होते हैं। चार छः और फिर सात अक्षरों पर यति होती है।)

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	ग	ग
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ	ऽ

उदाहरण—(१) केषां नैषाकथय कविताकौमुदी कौतुकाय

(२) मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वाचको जल्पको वा,
धृष्टः पार्श्वे भवति च वसन् दूरतोऽप्यप्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥

(३) नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।

(४) उद्देशोऽयं सरसकदलीश्रेणिशोभातिशायी ।

(५) जो लेवेगा, नृपति मुझ से, दण्ड दूँगी करोड़ों;
लोटा थाली, सहित तन के वस्त्र भी बेंच दूँगी ।
जो माँगेगा, हृदय वह तो, काट दूँगी उसे भी ।
बेटा तेरा गमन मथुरा, मैं न आँखों लखूँगी ॥

प्रतिचरण १९ वर्ण वाला छन्द

शार्दूलविक्रीडित

लक्षण—सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक पाद में मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और गुरु के क्रम से १९ वर्ण होते हैं। बारहवें अक्षर के बाद पहिली यति, सातवें अक्षर के बाद दूसरी यति होती है।)

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण	ग
SSS	IIS	ISI	IIS	SSI	SSI	S

उदाहरण—(१) यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ।

(२) केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः ।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥

(३) यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपाः

(४) पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

प्रति चरण २१ वर्ण वाला छन्द

(अ) स्रग्धरा

लक्षण—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

(स्रग्धरा छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण के क्रम से २१ अक्षर होते हैं। इसमें सात-सात अक्षरों पर यति होती है।)

मगण	रगण	भगण	नगण	यगण	यगण	यगण
SSS	SIS	SII	III	ISS	ISS	ISS

उदाहरण—(१) प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः, सत्यवाक्यं,
काले शक्त्या प्रदानं, युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ।
तृष्णास्रोतोविभंगो, गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यं सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ॥

(२) ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥

(ब) वर्णवृत्त, अर्द्ध सम छन्द

पुष्पिताग्रा

लक्षण—अयुजि नयुगरेफतो यकारो,
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

पुष्पिताग्रा के विषम चरणों में दो नगण, रगण और यगण के क्रम से १२-१२ अक्षर तथा सम चरणों में नगण, दो जगण, रगण और गुरु के क्रम से १३-१३ अक्षर होते हैं ।

नगण नगण रगण यगण प्रथम तथा तृतीय पाद
III III SIS ISS

नगण जगण जगण रगण गुरु द्वितीय तथा चतुर्थ पाद
III ISI ISI SIS S

उदाहरण—(१) अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं
व्यसनकृशा परिपालयाम्बभूव ।
शशिन इव दिवातनस्य लेखा
किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम् ॥

(२) करतलगतमप्यमूल्यचिन्तामणिमवधीरयतीङ्गितेन मूर्खः ।
कथमहमपहाय बुद्धिरत्नं जयति धनी गुणवांश्च पण्डितश्च ॥

(स) विषम छन्द

उद्गता

लक्षण—सजसादिमे सलघुकौ च नसजगुरुकेष्वथोद्गता ।
त्र्यङ्घ्रिगतभनजला गयुताः सजसा जगौ चरम एकतः पठेत् ॥

सगण जगण सगण ल
IIS ISI IIS I
तडित्तो ज्ज्वलं ल्दरा शि-

नगण सगण जगण गु
III IIS ISI S
मनिश सुवहा रवन्धु रम्

भगण नगण जगण ल ग
SII III ISI I S
घोरघ नरसि तनीरु व गुः

सगण जगण सगण जगण गु
IIS ISI IIS ISI S
कृपया कयापि महती यमुद्ग ता

(द) मात्रिक व जाति छन्द

आर्या (विषम छन्द)

लक्षण —

यस्याः पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥

(आर्या छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में १२-१२ मात्रायें, द्वितीय में १८ तथा चतुर्थ में १५ मात्राएँ होती हैं ।)

उदाहरण —

(१) अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥

(२) सिंहः शिशुरपि निपतति,
मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां,
न खलु वयस्तेजसां हेतुः ॥

षोडश सोपान

(अ) वाग्व्यवहार के प्रयोग

भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र—होनहार होकर ही रहती है।

भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति—भाग्य से ही धन मिलता है और नष्ट होता है।

यद्भावि तद्भवतु—चाहे जो हो।

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण—मनुष्य का भाग्य रथ-चक्र के समान कभी नीचे जाता है और कभी ऊपर।

तिष्ठतु तावत्—तनिक रुकिये।

अमृतं क्षीरभोजनम्—दूधयुक्त भोजन अमृत है।

इदं ते पादोदकं भविष्यति—यह जल आप के पैर धोने का काम देगा।

अर्थो हि कन्या परकीय एव—कन्या पराया धन है।

न मे बुद्धिर्निश्चयमधिगच्छति—मेरी बुद्धि कुछ निश्चय नहीं कर पा रही है।

अनर्गलप्रलापेन विदुषां मध्ये गमिष्याम्युपहास्यताम्—व्यर्थ की बकवाद से विद्वानों में मेरा उपहास होगा।

छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्—दिलीप छाया की तरह उसके पीछे चला।

संगच्छध्वं संवदध्वम्—मिलकर चलो, मिलकर बोलो।

कृतापराधमिवात्मानमवगच्छामि—मैं स्वयं को अपराधी सा समझ रहा हूँ।

न खल्ववगच्छामि—मैं आपकी बात नहीं समझा।

रचयति रेखाः सलिले यस्तु खले चरति सत्कारम्—दुष्ट का सत्कार करने वाला जल में रेखा खींचता है।

जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्—विद्वान् व्यक्ति जानते हुए भी जड़ के तुल्य लोक में व्यवहार करे।

अलं निर्बन्धेन—हठ मत करो।

अलमतिविस्तरेण—बात बहुत मत बढ़ाओ।

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा—चन्द्रमा के राहु से ग्रस्त होने पर भी रोहिणी उसके पीछे चलती है।

धर्मं चर—धर्म करो।

अलं श्रमेण—श्रम से यह काम सिद्ध नहीं होगा।

अलमुपहासेन—हँसी मत करो।

दिवं विगाहते—आकाश में घूमता है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च—जो जन्म लेगा उसकी मृत्यु अवश्य होगी और जो मरेगा, उसका जन्म अवश्य होगा।

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया—गुरुओं की आज्ञा पर तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः—फल आने पर वृक्ष झुक जाते हैं।

गमिष्याम्युपहास्यताम्—मेरी हँसी होगी।

परं मृत्युर्न पुनरपमानः—मरना श्रेष्ठ है, अपमान सहना अच्छा नहीं।

अविनीता रिपुर्भार्या—अविनीत स्त्री रिपु के समान है।

सीदन्ति गात्राणि—अंग व्याकुल हो रहे हैं।

क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति—उचित पात्र में रक्खी हुई, क्रिया शोभित होती है।

मा विषीदत—दुःखित न होइये।

प्रत्यासीदति गृहगमनकालः—घर जाने का समय हो रहा है।

मनोरथाय नाशंसे—मैं मनोरथ की आशा नहीं करता।

निरीक्षते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कण्टकजालमेव—ऊँट क्रीडोद्यान में जाकर भी काँटे ही ढूंढ़ता है।

पुत्रेण किम्, यः पितुर्दुःखाय वर्तते—ऐसे पुत्र से क्या लाभ, जो पिता को दुःख दे।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते—लौकिक सत्पुरुषों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये—काव्य, यश के लिए, धन के लिए, व्यवहारज्ञान के लिए और कल्याण के लिए होता है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठो लोकस्तदनुवर्तते—श्रेष्ठ पुरुष जैसा करता है, लोग उसका ही अनुसरण करते हैं।

न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते—अपनी इच्छानुसार कार्य करने वाला व्यक्ति निन्दा की परवाह नहीं करता है।

न कालमपेक्षते स्नेहः—स्नेह समय की अपेक्षा नहीं करता है।

दैवमपि पुरुषार्थमपेक्षते—भाग्य भी पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः—अच्छी तरह परीक्षा करके ही गुप्त प्रेम करना चाहिए।

तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते—तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती है।

दिष्ट्या पुत्रमुखदर्शनेन वर्धते भवान्—पुत्र मुख-दर्शन के लिए आपको बधाई।

तीक्ष्णादुद्विजते लोकः—लोग उग्र पुरुष से डरते हैं।

लोकापवादाद् भयं मे—मुझे लोक-निन्दा से भय है।

किमेकाकी मन्त्रयसे—तुम अकेले क्या गुनगुना रहे हो ?

रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना—हंस का मन मानसरोवर के बिना नहीं लगता।

अतिपरिचयादवज्ञा—अति परिचय से अपमान होता है।

सन्ततगमनादनादरो भवति—किसी के यहाँ अधिक जाने से अनादर होता है।

हृदोरैक्यात् स्नेहः संजायते—दो हृदयों की एकता से प्रेम होता है।

अक्षमोऽयं कालहरणस्य—इसमें तनिक भी विलम्ब मत करो।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः—कृत्रिमता के अभाव में भी यह शरीर सुन्दर है।

शासने तिष्ठ भर्तुः—पति के शासन में रहना।

आलाप इव श्रूयते—बातचीत सी सुनाई देती है।

आज्ञापयतु, को नियोगोऽनुष्ठीयताम्—आज्ञा दें, क्या काम करें।

पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन—इसे शिव ने पुत्रवत् माना है।

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी—इसकी विद्या जिह्वा के अग्र भाग पर रहती है।

अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्, विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्—थोड़े के लिए बहुत छोड़ने के इच्छुक तुम मुझे मूर्ख प्रतीत होते हो।

मनोरथानामगतिर्न विद्यते—मनोरथ के लिए कुछ भी अगम्य नहीं है।

नैतदनुरूपं भवतः—यह आपके योग्य नहीं है।

सदृशमेवैतत् स्नेहस्य—यह स्नेह के योग्य ही है।

कापि महती वेला तवादृष्टस्य—आपको न देखे हुए बहुत दिन हो गए।

परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः—परधर्म को अपनाकर जीवित रहनेवाला शीघ्र ही जाति से पतित हो जाता है।

अहो, महद् व्यसनमापतितम्—ओह, विपत्ति आ पड़ी है।

सिंहः शिशुरपि निपतति गजेषु—सिंह छोटा होने पर भी हाथियों पर टूटता है।

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम्—चोट पर ही चोट बार-बार लगती है।

न मे वचनमन्यथा भवितुमर्हति—मेरी बात झूठी नहीं हो सकती है।

न मामयं गणयति—यह मुझे कुछ भी नहीं समझता है।

सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति—समुद्र को छोड़कर महानदी और कहाँ उतरती है।

निस्तीर्णा प्रतिज्ञासरित्—प्रतिज्ञा रूपी नदी पार कर ली।

विजयते भवान्—आपकी विजय हो।

विश्वस्ते नातिविश्वसेत्—विश्वासी पर भी अधिक विश्वास न करे।

विद्वत्सु गुणान् श्रद्दधति—विद्वानों में गुणों की श्रद्धा करते हैं।

अपराद्धोऽस्मि गुरोः—मैंने गुरु के प्रति अपराध किया है।

एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्तत्त्वमीक्षते—बाह्यविषयों से निवृत्त और एकाग्रचित्त मनुष्य तत्त्व को देख पाता है।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः—गुणों के समूह में एक दोष इसी प्रकार छिप जाता है, जैसे चन्द्रमा कि किरणों में उसका कलङ्क।

एके एवं मन्यन्ते—कुछ लोग ऐसा मानते हैं।

भुवि पप्रथे—संसार में प्रसिद्ध हुआ।

त्यजन्त्यसून् शर्म च मानिनो वरं, त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम्—मानी लोग हर्ष से अपने प्राण और सुख छोड़ देते हैं, पर न माँगने के व्रतको नहीं छोड़ते।

विषादं मा गाः—विषाद मत करो।

धृतिमावह—धैर्य धारण करो।

न मे सुखमावहति—मुझे सुख नहीं देता।

कथमपि दिनान्यतिवाहयति—किसी प्रकार दिन बिता रहा है।

व्यपनेष्यामि ते गर्वम्—तुम्हारे गर्व को दूर कर दूंगा।

शशिना सह याति कौमुदी—चन्द्रमा के साथ चाँदनी चली जाती है।

शुश्रूषस्व गुरून्—अपने से बड़ों की सेवा करो।

हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः—जो हित की बात नहीं सुनता वह नीच स्वामी है।

न मे वचनावसरोऽस्ति—मेरे कुछ कहने की गुंजाइश नहीं है।

आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः—सांसारिक विषय ऊपर से सुन्दर लगते हैं, पर अन्त में दुःखद होते हैं।

सर्वं दैवायत्तम्—सब कुछ भाग्य के अधीन है।

समानशीलव्यसनेषु सख्यम्—समानशील और व्यसन वालों में मित्रता होती है।

वर्णपरिचयं करोति—अक्षराभ्यास कर रहा है।

करिष्यामि वचस्तव—मैं तुम्हारा कहना मानूँगा।

परिणतप्रायमहः—दिन लगभग ढल गया है।

किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि—मैं तुम्हारा और अधिक क्या उपकार करूँ?

उत्सवप्रिया राजानः—राजाओं को उत्सव प्रिय होता है।

नलः स भूजानिरभूद्गुणाद्भुतः—अद्भुत गुणों से युक्त नल पृथ्वी का पति था।

एवमेव स्यात्—अच्छा ऐसा ही सही।

शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि—मैं शकुन्तला के विषय में कह रहा हूँ।

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजपयोगिताम्—सज्जन कार्य से अपनी उपयोगिता बताते हैं, न कि मुँह से।

को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः—खिलाने से कौन वश में नहीं आ जाता।

परवानयं जनः—मैं पराधीन हूँ।

स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः—सिद्धि-सम्पन्न महात्माओं की कुशलता अपने हाथ में होती है।

अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्—पत्थर भी रो पड़ते हैं और वज्र का भी हृदय फट जाता है।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि—जिसके पास धन होता है, उसके मित्र हो जाते हैं।

संपत् सम्पदमनुबध्नाति विपद् विपदम्—सम्पत्ति के पीछे सम्पत्ति चलती है और विपत्ति के पीछे विपत्ति।

महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम्—बड़ा आदमी बड़े आदमी पर ही अपना पराक्रम दिखाता है।

भवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः—आपके बारे में उसका प्रेम कैसा है?

निविशते यदि शूकशिखा पदे सृजति तावदियं कियतीं व्यथाम्—यदि कील की नोक पैर में चुभ जाती है तो कितना दर्द हो जाता है।

पश्य सूर्यस्य भासम्—सूर्य की शोभा को देखो।

निर्बुद्धिः क्षयमेति—मूर्ख क्षय को प्राप्त होता है।

दारिद्र्याद् ह्रियमेति—दरिद्रता से मनुष्य लज्जा को प्राप्त होता है।

शशिनं पुनरेति शर्वरी—चन्द्रमा को चाँदनी फिर मिल जाती है।

अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः—मुझे शिव का नौकर जानो।

अपेहि पापे—नीच यहाँ से हट।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः—उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है।

एतदासनमास्यताम्—आप इस आसन पर बैठिए।

परिहीयते गमनवेला—जाने के समय में देर हो रही है।

न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्—रत्न किसी को खोजता नहीं, वह स्वयं खोजा जाता है।

कतम उपालभ्यते—किसको ताना दिया जा सकता है।

अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्—अपने आपको प्रकट करने का यह अवसर है।

एष एवात्मगतो मनोरथः—यह तो तुम्हारी अपनी इच्छा है।

राजेति का गणना मम—मैं राजा को कुछ नहीं समझता।

सुखमुपदिश्यते परस्य—पर उपदेश कुशल बहुतेरे।

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा—आग में ही सोने की स्वच्छता और कालिमा दीखती है।

युवानो विस्मरणशीलाः—युवक भुलक्कड़ होते हैं।

कालुष्यमुपयाति—कलुषित हो जाती है।

मा भैषीः—मत डरो।

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः—गुणवानों के गुण पूजा के योग्य हैं, चिह्न और आयु नहीं।

सदाऽभिमानैकधना हि मानिनः—स्वाभिमानियों का स्वाभिमान ही धन होता है।

शिवास्ते सन्तु पन्थानः—तुम्हारा मार्ग शुभ हो।

सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा—अच्छे चित्तवालों का अच्छे और बुरों पर समान प्रेम होता है।

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्—विद्वान् ही विद्वानों के परिश्रम को जानता है।

इति तेन समयः कृतः—उससे यह शर्त लगाई।

सम्यगनुबोधितोऽस्मि—अच्छी याद दिलाई।

सदैवाधीनः कृतः—उसको भाग्य पर छोड़ दिया।

भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः—विनाश के समय बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

संहतिः कार्य साधिका—एकता से कार्य सिद्ध होते हैं।

नान्या गतिः—और कोई चारा नहीं है।

कां वृत्तिमुपजीवत्यार्यः—आप क्या काम करते हैं।

पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति—सधवा स्त्रियों का चित्त पुष्प की तरह कोमल होता है।

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः—सज्जनों के सन्देहास्पद विषयों में उनके अन्तःकरण की वृत्तियाँ ही प्रमाण हैं।

अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख—अरसिकों को कविता सुनाना मेरे भाग्य में मत लिखना।

सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः— सबके मन को रुचिकर बात कहना कठिन है।

सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्—संसार में सुन्दरता सुलभ है गुणों का अर्जन करना कठिन है।

अविवेकः परमापदां पदम्—अविवेक बड़ी आपत्तियों का घर है।

हर्षस्थाने अलं विषादेन—हर्ष के स्थान पर दुःख न करो।

क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः—दृढ़ निश्चय वाले मन को कौन रोक सकता है।

गण्डस्योपरि पिटिका संवृत्ता—पहिले अनर्थ के ऊपर यह एक और नया अनर्थ आकर उपस्थित हो गया।

गुणास्तावत्तस्य नैव विद्यते—गुण तो उसमें एक भी नहीं है।

आपतति हि संसारपथमवतीर्णानामेते वृत्तांताः—इस प्रकार की घटनाएं संसारी मनुष्यों के ऊपर पड़ती हैं।

विच्छेदमाप कथाप्रबन्धः—कथा में भङ्ग हो गया।

अप्रस्तुतं किमिति अनुसंधीयते—क्यों गोलमाल बातें करते हो?

सूचिभेद्यं तमः—घना अंधकार।

दीर्घसूत्री विनश्यति—बहुत देर लगाने वाला नाश को प्राप्त होता है।

शिष्य उपदेशं मलिनयति—शिष्य उपदेश की बदनामी करता है।

श्रवणगोचरे तिष्ठ—ऐसे स्थान पर खड़े होओ जहाँ बात सुनाई पड़े।
कुतूहलेन तस्य चेतसि पदं कृतम्—उसके हृदय में उत्सुकता पैदा हो गई।
तत्कार्यं साधयितुमलं सः—वह इस कार्य को करने में समर्थ है।
अप्रबोधाय सा सुष्वाप—वह सदा के लिए सो गई।
दृष्टदोषा मृगया—शिकार के दोष विदित हैं।
सचेतसः कस्य मनो न दूयते—किस कोमल हृदय व्यक्ति का मन दुःखी नहीं होता।
आत्मानं मृतवत्संदर्शयामास—अपने को मरा हुआ सा दिखला दिया।
सुश्लिष्टमेतत्—यह ठीक जँचता है।
महतां पदमनुविधेयम्—बड़ों के मार्ग का अनुसरण कीजिये।
अधुना मुञ्च शय्याम्—अब बिस्तर छोड़ दीजिए।
शुचो वशं मा गमः—शोक मत करो।
यौवनपदवीमारूढः—वह युवावस्था को प्राप्त हो गया।
त्रिशंकुरिवांतरा तिष्ठ—त्रिशंकु की तरह बीच ही में लटके रहो।
अहो दारुणो दैवदुर्विपाकः—हाय रे दुर्भाग्य।
इति कर्णपरम्परया श्रुतमस्माभिः—हमने लोगों के मुखों से यह बात सुनी है।
मानुषीं गिरमुदीरयामास—मनुष्य की सी बोली बोला।
ब्रह्मसायुज्यं प्राप्तः—ब्रह्म में लीन हो गया।
जानकी करुणस्य मूर्तिः—जानकी करुण रस की साक्षात् अवतार हैं।
बुद्धिर्यस्य बलं तस्य—बुद्धि ही बल है।
कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीः—जवानी की शोभा केवल थोड़े दिन रहती है।
विषयसुखविरतो जीवितमत्यवाहयद्—विषय वासनाओं से रहित जीवन बिताया।
शान्ते पानीयवर्षे—वृष्टि शान्त हो जाने पर।
मनुष्याः स्खलनशीलाः—मनुष्य से त्रुटियाँ होती ही हैं।
अलमन्यथा गृहीत्वा—मेरे विषय में गलत धारणा न करो।
अणुं पर्वतीकरोति—वह राई का पर्वत बना देता है।
मूर्धानं चालयति—अपना सिर हिलाता है।
प्रकाशं निर्गतः—प्रकाशित हो गया।
स्थिरप्रतिबंधो भव—विरोध करने में दृढ रहो।
तदुभयथापि घटते—यह दोनों प्रकार से सम्भव है।
शासनात् करणं श्रेयः—कहने से करना अच्छा।
प्रस्तूयतां विवादवस्तु—झगड़े वाला मामला बताओ।
किं निमित्तं ते संतापः—तुम्हारे दुःख का क्या कारण है ?
आपदर्थे धनं रक्षेत्—आपत्ति काल के लिए धन को बचा रखना चाहिए।
तद्वचो मम हृदये शल्यं जातम्—वे बातें मेरे हृदय में काँटे के समान चुभती हैं।

वाक्यानि प्रतिसमादधाति—कथनों का समाधान करता है।

किमपि सानुक्रोशः कृतः—वह कुछ कोमल पड़ा।

कियदवशिष्टं रजन्याः—कितनी रात बाकी रह गई है?

विषयेषु मनो मा संनिवेशय—विषयों में मन मत लगाओ।

गुणा विनयेन शोभन्ते—गुण की शोभा विनय से होती है।

केन वान्येन सह साधारणीकरोमि दुःखम्—किस दूसरे पुरुष के साथ अपना शोक बटाऊँ।

सीदति मे हृदयम्—मेरा हृदय बैठा जाता है।

संशयस्थं जीवितं तस्य—उसके प्राण संकट में थे।

चित्ते भयं जनयति—मन में भय पैदा करता है।

यदि नवसीदति गुरु प्रयोजनम्—यदि किसी बड़े कार्य की हानि न हो।

कथं जीवितं धारयिष्यामि—मैं कैसे जिऊँगा?

गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्—शोक के कारण बहुत बड़ी लगने वाली रात्रि को बिताता है।

नगरगमनाय मतिं न करोति—नगर में जाने का मन नहीं करता है।

सहस्व मासद्वयम्—दो मास तक प्रतीक्षा कीजिए।

धारासारैर्महती वृष्टिर्बभूव—मूसलाधार पानी बरसा।

हृदयं संस्पृष्टमुत्कंठया—हृदय उत्कण्ठा से प्रभावित हो गया।

किं स्वातंत्र्यमवलम्बसे—क्या तुम मनमानी कर रहे हो?

त्वं मम जीवितसर्वस्वीभूतः—तुम मेरे जीवन के सर्वस्व हो।

अनुरूपभर्तृगामिनी—अपने अनुरूप पति वाली।

मित्राणां तत्त्वनिकषग्रावा विपत्—विपत्ति मित्रता की कसौटी है।

समवायो हि दुस्तरः—मेल में शक्ति है।

किमत्र चित्रम्—इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

लघुसंदेशपदा सरस्वती—संक्षिप्त संदेश।

अपत्यमन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः—सन्तान माँ बाप का पारस्परिक बन्धन है।

कालानुवर्तिन्—समय देखकर काम करने वाला।

चारचक्षुषो महीपालाः—राजा लोग गुप्तचरों द्वारा देखते हैं।

कथैव नास्ति—क्या कहना है।

भर्तुः प्रतीपं मास्म गमः—पति के विरुद्ध न होना।

ततः परं कथय—आगे कहो।

(च)

संस्कृत सूक्तियों का हिन्दी अनुवाद

अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति—श्रेष्ठजन अङ्गीकृत वचन को पूरा करते हैं।

अतिलोभो न कर्तव्यः—अत्यधिक लोभ नहीं करना चाहिए।

अति सर्वत्र वर्जयेत्—सब बातों में 'अति' त्याज्य है।

अनाश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः—विद्वान्, स्त्रियाँ, और लताएँ आश्रय के बिना शोभा नहीं देतीं।

अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः—नम्रता शौर्य का भूषण है।

अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि—आयु समाप्त हो जाने पर वैद्य धन्वन्तरि भी कुछ नहीं कर सकता।

अपुत्रस्य गृहं शून्यम्—पुत्रहीन व्यक्ति के लिए घर सूना होता है।

अपेक्षन्ते हि विपदः किं पेलवमपेलवम्—विपत्तियाँ लक्ष्य की कोमलता व कठोरता नहीं देखतीं।

अबला यत्र प्रबला—जहाँ स्त्री सबल हो।

अमृतं शिशिरे वह्निः—जाड़ों में अग्नि अमृत है।

अर्थमनर्थं भावय नित्यं, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्—सदा ही धन को दुःखरूप समझो, वस्तुतः तनिक भी सुख नहीं।

अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम्—अधजल गगरी छलकत जाए।

अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः—समय थोड़ा है और विघ्न बहुत।

अविद्याजीवनं शून्यम्—अविद्यापूर्ण जीवन सूना है।

अस्थिरं जीवितं लोके—जगत् में जीवन अस्थिर है।

अस्थिरे धनयौवने धन और यौवन अस्थिर हैं।

आचारः प्रथमो धर्मः—आचार सर्वोत्तम धर्म है।

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः—दुष्टों के साथ सरलता का व्यवहार नीति नहीं है।

आलस्योपहता विद्या—आलस्य विद्या का विनाशक है।

इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः—न इधर रहे न उधर के रहे।

ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी—ईर्ष्या विवेक की शत्रु है।

उदारस्य तृणं वित्तम्—उदार व्यक्ति के लिए धन तृण तुल्य है।

उद्योगः पुरुषलक्षणम्—उद्योग ही पुरुष का लक्षण है।

उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्—गर्म अङ्गार हाथ को जलाता है, ठण्डा कलुषित करता है।

ऋणकर्ता पिता शत्रुः—ऋण लेने वाला पिता शत्रु है।

क उष्णोदकेन नवमल्लिकां सिञ्चति—नवमल्लिका के पौधे को गर्म जल से कौन सींचता है?

कर्मणो गहना गतिः—कर्म की गति गहन है।

कलासीमा काव्यम्—कला की सीमा काव्य है।

कष्टः खलु पराश्रयः—दूसरे का भरोसा दुःखदायक होता है।

कस्य नेष्टं हि यौवनम्—यौवन किसे अच्छा नहीं लगता।

कान्ता रूपवती शत्रुः—सुन्दर पत्नी शत्रु है।

कामिनश्च कुतो विद्या—कामी को विद्या कहाँ?

कायः कस्य न वल्लभः—शरीर किसे प्यारा नहीं होता?

कालस्य कुटिला गतिः—काल की चाल टेढ़ी होती है।

किं हि न भवेदीश्वरेच्छया—ईश्वर की इच्छा से क्या नहीं हो सकता?

कुरूपता शीलतया विराजते—सुन्दर शील से कुरूपता भी खिल उठती है।

कुरूपो बहुचेष्टिकः—कुरूप मनुष्य बहुत चेष्टायें करता है।

कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते—फटे पुराने वस्त्र भी स्वच्छ रहने से अच्छे लगते हैं।

कृशे कस्यास्ति सौहृदम्—निर्बल से कौन मित्रता करता है?

कोऽतिभारः समर्थानाम्—बलवानों के लिए कोई भी भार अधिक नहीं है।

क्वाश्रयोऽस्ति दुरात्मनाम्—दुष्टों को आश्रय कहाँ?

क्षान्तितुल्यं तपो नास्ति—क्षमा के तुल्य कोई तप नहीं।

क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति—निर्धन लोग निर्दय बन जाते हैं।

गतस्य शोचनं नास्ति—बीती बात का शोक व्यर्थ है।

चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः—योग्य से ही योग्य का मेल अच्छा लगता है।

चिन्ता जरा मनुष्याणाम्—चिन्ता मनुष्यों का बुढ़ापा है।

चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम्—चिन्ता के समान शरीर को कोई भी नहीं सुखाता।

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः—बूँद बूँद करके घड़ा भर जाता है।

जामाता दशमो ग्रहः—दामाद दसवां ग्रह है।

जीवो जीवस्य जीवनम्—जीव जीव का जीवन है।

दरिद्रता धीरतया विराजते—निर्धनता धैर्य से शोभा पाती है।

दूरतः पर्वता रम्याः—दूर के ढोल सुहावने।

न कामसदृशो रिपुः—काम के समान शत्रु नहीं।

न तोषात् परमं सुखम्—संतोष से बड़ा सुख नहीं।

न भूतो न भविष्यति—न हुआ है न होगा।

नवा वाणी मुखे मुखे—प्रत्येक मुख में वाणी नई होती है।

न हि सर्वविदः सर्वे—सब लोग सब कुछ नहीं जानते।

नारीणां भूषणं पतिः—पति स्त्रियों का भूषण है।

नास्ति मोहसमो रिपुः—मोह के समान कोई शत्रु नहीं।

निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्—प्रायः निकम्मी वस्तु का आडम्बर बहुत होता है।

निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते—वृक्षहीन देश में रेंड़ भी वृक्ष माना जाता है।

निर्धनता सर्वापदामास्पदम्—दरिद्रता सभी दुःखों का कारण है।

निर्वाणदीपे किमु तैलदानम्—दीपक बुझ जाने पर तेल डालने से क्या?

निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्—राग-रहित के लिए घर ही तपोवन है।

पयोगते किं खलु सेतुबंधः—बाढ़ के उतर जाने पर बाँध-बाँधने से क्या लाभ?

परोपकाराय सतां विभूतयः—सज्जनों की सम्पत्तियाँ परोपकार के लिए होती हैं।

बलं मूर्खस्य मौनित्वम्—मौन मूर्ख का बल है।

बहुरत्ना वसुन्धरा—पृथ्वी में बहुत रत्न हैं।

मतिरेव बलाद् गरीयसी—बल से बुद्धि बड़ी है।

मद्यपस्य कुतः सत्यम्—शराबी में सत्य कहाँ?

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः—मन ही मनुष्यों के बन्धन और मुक्ति का कारण है।

मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणम्—माता के समान शरीर का पोषक कोई नहीं।

मूर्खस्य हृदयं शून्यम्—मूर्ख का हृदय विचार रहित होता है।

मौनं विधेयं सततं सुधीभिः—बुद्धिमानों को निरन्तर चुप रहना चाहिए।

मौनं सर्वार्थसाधकम्—मौन से सब काम सिद्ध होते हैं।

यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति—जहाँ रूप है वहाँ गुण भी हैं।

यथा देशस्तथा भाषा—जैसा देश वैसी भाषा।

याचनान्तं हि गौरवम्—याचना गौरव को समाप्त कर देती है।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्—वन में भी दोष राग युक्तों को दवा लेते हैं।

विक्रीते करिणि किमङ्कुशे विवादः—हाथी के बेच देने पर अङ्कुश के बारे में विवाद कैसा?

विद्या रूपं कुरूपिणाम्—कुरूप लोगों का रूप विद्या है।

विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति—चन्दन मलय पर्वत के सिवाय कहीं नहीं उगता।

विरक्तस्य तृणं भार्या—विरक्त को पत्नी तृण सम लगती है।

वीरो हि स्वाम्यमर्हति वीर ही स्वामी बनने के योग्य होता है।

वृद्धस्य तरुणी विषम्—बूढ़ों के लिये युवती विष है।

वृद्धा नारी पतिव्रता—वृद्ध स्त्री पतिव्रता होती है।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्—धर्म का प्रथम साधन शरीर ही है।

सर्वः कालवशेन नश्यति—समय पाकर सब नष्ट होते हैं।

सुखार्थिनः कुतो विद्या—सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ?

स्तोत्रं कस्य न तुष्टये—प्रशंसा से कौन प्रसन्न नहीं होता?

स्त्री विनश्यति रूपेण—स्त्री रूप से नष्ट होती है।

हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः—यौवन की मधुर शोभा मन को हर लेती है।

हितोपदेशो मूर्खस्य कोपायैव न शान्तये—हितकारी उपदेश मूर्ख को कुपित करता है, शान्त नहीं।

(ख)

हिन्दी सूक्तियों के संस्कृत पर्याय

अंगूर खट्टे हैं—अलभ्यं हीनमुच्यते, दुष्प्रापा द्राक्षा अम्लाः।

अंधा—क्या चाहे? दो आँखें—इष्टलाभः परं सुखम्।

अंधे के हाथ बटेर लगना—अन्धस्य वर्तकीलाभः।

अंधों में काना राजा—निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।

अक्ल बड़ी कि भैंस?—मतिरेव बलाद् गरीयसी।

अपना हाथ जगन्नाथ—स्वातन्त्र्यमिष्टप्रदम्।

अपनी करनी पर उतरनी—कृत्यैः स्वकीयैः खलु सिद्धिलब्धिः।

अपनी गली में कुत्ता भी शेर होता है—निजसदननिविष्टः श्वा न सिंहायते किम्?

अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत—गते शोको निरर्थकः।

अरहर की टट्टी गुजराती ताला—पाषाणे मृगमदलेपः।

आँखों के अन्धे नाम नयनसुख—वित्तेन हीनो नाम्ना नरेशः।

आगे कूआँ पीछे खाई—इतः कूपस्ततस्तटी।

आधी छोड़ सारी को धावे।—यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।

ऐसा डूबे थाह न पावे॥—ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि॥

आम के आम गुठलियों के दाम—एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा।

ईंट का जवाब पत्थर से—शठे शाठ्यं समाचरेद्।

ऊधो मन माने की बात—तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।

उल्टे बाँस बरेली को—गङ्गां हिमाचलं नयति।

ऊँट के मुँह में जीरा—दाशेरस्य मुखे जीरः।

ऊँची दूकान फीका पकवान—निस्सारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्।

एक अनार सौ बीमार—एकः कपोतपोतः श्येनाः शतशोऽभिधावन्ति।

एक तो करेला दूजे नीम चढ़ा—अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः।

एक पंथ दो काज—एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा।

काला अक्षर भैंस बराबर—निरक्षरभट्टाचार्यः।

चार दिन की चाँदनी और फिर अँधेरा पाख—तिष्ठत्येकां निशां चन्द्रः श्रीमान् संपूर्णमण्डलः।

जो गरजते हैं वे बरसते नहीं—नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव।

थोथा चना बाजे घना—गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति।

दूर के ढोल सुहावने—दूरतः पर्वता रम्याः ।

बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद—किमिष्टमन्नं खरसूकराणाम् ।

बिन घरनी घर भूत का डेरा—भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं मतम् ।

भैंस के आगे बीन बजावे भैंस खड़ी पगुराय—अन्धस्य दीपः ।

मन के हारे हार है मन के जीते जीत—जिते चित्ते जितं जगत् ।

मन चंगा तो कठौती में गंगा—निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ।

माँगन गए सो मर गए—याचनान्तं हि गौरवम् ।

लालच बुरी बला है—नास्ति तृष्णासमो व्याधिः ।

लोभ पापों की खान—लोभः पापस्य कारणम् ।

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप—नहि सत्यात्परो धर्मः, नानृतात् पातकं परम् ।

सार सार को गहि रहे थोथा देय उड़ाय—सारं गृह्णन्ति पण्डिताः ।

सारी जाती देखकर आधा लेय बटाय—सर्वनाशे समुत्पन्ने, अर्द्धं त्यजति पण्डितः ।

सीख न दीजै बानरा जो बए का घर जाय—उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।

सीधी उँगलियों से घी नहीं निकलता—शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ।

(द)

अंग्रेजी लोकोक्तियों के संस्कृत पर्याय

A bad descendent destroys the line—कुपुत्रेण कुलं नष्टम् ।

A bad workman quarrels with his tools—कञ्चुकमेव निन्दति शुष्कस्तनी नारी ।

A bird in hand is better than two in the bush—वरमद्य कपोतो न श्वो मयूरः, अध्रुवात्तु ध्रुवं वरम् ।

A drop in the ocean—दाशेरस्य मुखे जीरः ।

A figure among cyphers—निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ; यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि ।

A fog cannot be dispelled by a fan—न तारालोकेन तमिस्रनाशः, प्रालेयलेहान्न तृषाविनाशः ।

A friend in need is a friend indeed—स सुहृद् व्यसने यः स्यात् ।

A light purse is a heavy curse—दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी, कष्टं निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते ।

An empty vessel makes much noice—अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् ।

A nine day's wander—तिष्ठत्येकां निशां चन्द्रः श्रीमान् संपूर्णमण्डलः ।

A variane is the root of all evils—नास्ति तृष्णासमो व्याधिः।

As you sow so shall you reap—यो यद्वपति बीजं हि लभते सोऽपि तत्फलम्।

A wolf in lamb's clothing—विषकुम्भं पयोमुखम्।

Barking dogs seldom bite—ये गर्जन्ति मुहुर्मुहुर्जलधरा वर्षन्ति नैतादृशाः।

Birds of the same feather flock together—मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति।

Calamity is the touch-stone of brave mind—अश्नुते स हि कल्याणं व्यसने यो न मुह्यति।

Christmas comes but once a year—कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।

Coming events cast their shadows before—आमुखापाति कल्याणं कार्यसिद्धिं हि शंसति।

Content is happiness—संतोषः परमं सुखम्।

Cry is the only strength of a child—बालानां रोदनं बलम्।

Cut your eoat according to your cloth—हिताहितं वीक्ष्य निकाममाचरेत्।

Death forgives none—मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्।

Dependence is indeed painful—कष्टः खलु पराश्रयः।

Diligence is mother of good luck—उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।

Distance lends eachancement to the view—दूरस्थाः पर्वता रम्याः।

Do at Rome as the Romans do—वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति मनीषिणः।

Do what the great men do—महाजनो येन गतः स पन्थाः।

East or west home is the best—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

Every cock fights best on its own dung-hill—निजसदननिविष्टः श्वा न सिंहायते किम्?

Every potter praises his own pot—सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति।

Example is better than percept—परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्। धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः॥

Familiarity breads cantempt—अतिपरिचयादवज्ञा भवति।

Fortune favours the brave—उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।

Gather thistles and expect pickles—यादृशमुप्यते बीजं तादृशं फलमाप्यते ।

God's will be done—इश्वरेच्छा बलीयसी ।

Good men prove their usefulness by deeds not by words —नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव ।

Great cry, litle wool—निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान् ।

Half a loaf is better than no bread—अभावादल्पता वरा ।

If the sky falls we shall catch lasks—न मुनिः पुनरायातो न चासौ वर्धते गिरिः ।

It is a great sin to harm a person who comes for shelter —अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किं नाम पौरुषम् ।

It is of no use to cry over spilt milk—निर्वाणदीपे किमु तैलदानम् ।

It is too late to lock the stable door when the steel is stolen—न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ।

It is wise to take refuge under the great—कर्त्तव्यो महदाश्रयः ।

It takes two make a row—एकस्य हि विवादोऽत्र दृश्यते न तु प्राणिनः ।

Let by gone, be by gone—गतस्य शोचनं नास्ति ।

Light sorrows speak but deeper ones are dumb—अगाध-जलसञ्चारी न गर्वं याति रोहितः ।

Little knowledge is dangerous thing—अल्पविद्या भयंकरी ।

Many a little makes a mickle—जलविन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।

Might is right—वीरभोग्या वसुन्धरा ।

Misfortunes never come alone—छिद्रेष्वनर्था वहुलीभवन्ति ।

New lords new laws—नवाङ्गनानां नव एव पन्थाः ।

No pity without mercy—को धर्मः कृपया विना ।

No pains no gains—न हि सुखं दुःखैर्विना लभ्यते ।

None would like to be friend of a wicked person—अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ।

One trying for better got worst—रत्नाकरो जलनिधिरित्यसेवि धनाशया । धनं दूरेऽस्तु वदनमपूरि क्षारवारिभिः ॥

Out of the frying pan into the fire—बन्धनभ्रष्टो गृहकपोतश्चिल्लाया मुखे पतितः ।

Prevention is better than cure—प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।

Pride goeth before a fall—अतिदर्पे हता लङ्का।

Slow and steady wins the race—शनैः पन्थाः शनैः कन्था शनैः पर्वतलङ्घनम्।

The king is the strength of the weak—दुर्बलस्य बलं राजा।

There are men and men—नवा वाणी मुखे मुखे।

The virtuous make good their promise—अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।

Those palmy days are gone—हा हन्त सम्प्रति गतानि दिनानि तानि।

Time once past cannot be recalled—गतः कालो न चायाति।

Tit for tat—कण्टकेनैव कण्टकम्।

To kill two birds with one stone—एका क्रिया द्वयर्थकरी प्रसिद्धा।

Two of the trades seldom agree—याचको याचकं दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते।

Wealth is the root of all calamities—अर्थमनर्थं भावय नित्यम्।

Wealth is great attraction—को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः।

When good cheer is lacking, the friends will be pacifing —एतन्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।

When there is peace at home, there is no need of judge —यत्र चौरा न विद्यन्ते तत्र किं स्यान्निरीक्षकैः।

Wicked persons commit fault and good men suffer—खलः करोति दुर्वृत्तं तद्धि फलति साधुषु।

(य)

अंग्रेजी संस्कृत शब्दावली

Academy	शिक्षालयः	Agitation	आन्दोलनम्
Accountant	संख्यातृ	Air-Conditioned	नियन्त्रितताप
Acknowledgment	प्राप्तिपत्रम्	Application	आवेदनपत्रम्
Act	अधिनियमः	Appointment	नियुक्तिः
Administration	प्रशासनम्	Assembly	सभा
Administrator	प्रशासकः	Ballot-Box	मतपेटिका
Adult	वयस्कः	Bank	अधिकोषः
Agency	अधिकरणम्	Biology	जीवविज्ञानम्
Agenda	कार्यसूची	Blood-Pressure	रक्तचापः

Board	मण्डली
Board District	मण्डलमण्डली
Board Municipal	नगरमण्डली
Bond	बन्धपत्रम्
Broad-cast	प्रसारणम्
Budget	आयव्ययकम्
Bye-Election	उपनिर्वाचनम्
Cabinet	मन्त्रिमण्डलम्
Cadet	सैन्यच्छात्रः
Calendar	तिथिपत्रम्
Casting vote	निर्णायकं मतम्
Census	जनगणना
Century	शती
Chairman	सभापति
Chancellor	कुलपति
Chancellor, Vice	उपकुलपतिः
Charge-Sheet	आरोपपत्रम्
Chief-judge	मुख्यन्यायाधीशः
Chief-justice	मुख्यन्यायाधिपतिः
Chief-minister	मुख्यमंत्रिन्
C. I. D.	गुप्तचरविभागः
Circular	परिपत्रम्
Civilization	सभ्यता
Code	संहिता
Commerce	वाणिज्यम्
Commiossin	आयोगः
Commossioner	आयुक्तः
Committee	समितिः
Commonwealth	राष्ट्रमण्डलम्
Communism	साम्यवादः
Complaint	अभियोगः
Conference	सम्मेलनम्
Constituency	निर्वाचनक्षेत्रम्
Context	सन्दर्भः, प्रकरणम्
Continent	महाद्वीपः-पम्
Control	नियन्त्रणम्
Convention	रूढिः
Copy	प्रतिलिपिः-प्रति
Copy-right	प्रकाशनाधिकारः
Council	परिषद्
Court	न्यायालयः
Culture	संस्कृतिः
Declaration	घोषणा
Decree	आज्ञप्तिः
Defence	प्रतिरक्षा
Delegate	प्रतिनिधिः
Democracy	लोकतन्त्रम्
Direction	निर्देशः
Election	निर्वाचनम्
Elector	निर्वाचकः
Emigration	परावासः
Finance	वित्तम्
Financial	वित्तीय
Function	कृत्यम्
Gazette	राजपत्रम्
Germ	कीटाणुः
Government	शासनम्
Governor	राज्यपालः, शासकः
Grant	अनुदानम्
Handicrafts	हस्तशिल्पम्
House	सदनम्
Immigrant	आवासिन्
Industry	उद्योग
Institution	संस्था
Law	विधिः
Major	वयस्क
Majority	बहुमतम्, बहुसंख्या
Member	सदस्यः

Nation	राष्ट्रम्
Nationalisation	राष्ट्रीयकरणम्
Nationality	राष्ट्रीयता
Notice	सूचना, सूचनापत्रम्
Office	कार्यालयः
Ordinance	अध्यादेशः
Organization	संघटनम्
Pact	वचनपत्रम्
Passport	पारपत्रम्
Patron	संरक्षकः
Petition	याचिका
Portfolio	संविभागः
Publicity	प्रचारः
Recommendation	अनुशंसा
Representative	प्रतिनिधिः
Republic	गणराज्यम्
Revenue	राजस्वम्
Rule	नियमः
Session	सत्रम्
Suspension	निलम्बनम्
Tax	करः
Technology	शिल्पविज्ञानम्
Theory	सिद्धान्तः
Training	प्रतिक्षणम्
Tribe	जनजातिः
Union	संघ
Unit	एककम्
Vacency	रिक्तस्थानम्
Vice President	उपराष्ट्रपतिः
Vote	मतम्
Voter	मतदातृ
Warrant	अधिपत्रम्
Will	इच्छापत्रम्
Writ	आदेशलेखः

सप्तदश सोपान

संस्कृत-व्यावहारिक-शब्द

अन्न वर्ग

अणुः—बासमती चावल ।
अन्नम्—अन्न ।
आढकी—अरहर ।
कलायः—मटर ।
कोद्रवः—कोदो ।
गोधूमः—गेहूँ ।
चणकः—चना ।
चणकचूर्णम्—बेसन ।
चूर्णम्—आटा ।
तण्डुलः—चावल ।
तिलः—तिल ।
द्विदलम्—दाल ।
धान्यम्—धान ।
प्रियंगुः—बाजरा ।
मसूरः—मसूर ।
माषः—उड़द ।
मिश्रचूर्णम्—मिस्सा आटा ।
मुद्गः—मूंग ।
यवः—जौ ।
यवनालः—ज्वार ?
रसवती—रसोई ।
वनमुद्गः—लोभिया ।
व्रीहिः—धान ।
शस्यम्—अन्न (खेत में विद्यमान) ।
श्यामाकः—सावां ।
सर्षपः—सरसों ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—बाजार में गेहूँ, चना, दाल, चावल, जौ, मटर, ज्वार और बाजरा की दूकानें हैं। २—मुझे अरहर की दाल अच्छी लगती है, उड़द की दाल नहीं। ३—मूँग की दाल और मसूर की दाल स्वादिष्ट होती है। ४—आजकल गेहूँ का आटा आसानी से नहीं मिलता है। ५—जाड़े में गेहूँ का आटा और बेसन की रोटी अधिक स्वादिष्ट लगती है। ६—बासमती चावल का ही भात अच्छा होता है, कोदो और सावां का नहीं। ७—भात और दाल एक साथ खाया जाता है। ८—आज रसोई में अरहर और उड़द की दालें नहीं बनी हैं। ९—पंजाब के लोग भात की अपेक्षा रोटी अधिक पसन्द करते हैं। १०—तिल से तेल निकलता है। ११—मटर की दाल स्वादिष्ट नहीं होती, इसलिए मूँग की दाल खानी चाहिए। १२—आजकल अनाज का भाव बढ़ गया है।

आयुधवर्ग

आयुधम्—शस्त्रास्त्र ।
आयुधागारम्—शस्त्रागार ।
आहवः—युद्ध ।
कबन्धः—धड़ ।
करवालिका—गुप्ती ।
कारा—जेल ।
कार्मुकम्—धनुष ।
कौक्षेयकः—कृपाण ।

गदा—गदा । छुरिका—चाकू । जिष्णुः—विजयी । तूणीरः—तूणीर । तोमरः—गँड़ासा । धन्विन्—धनुर्धर । प्रहरणम्—शस्त्र । प्रासः—भाला ।

वर्मन्—कवच । विशिखः—बाण । वैजयन्ती—पताका । शरव्यम्—लक्ष्य । शल्यम्—बर्छी । सांयुगीनः—रणकुशल । सादिन्—घुड़सवार । हस्तिपकः—हाथीवान ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—रणकुशल विजयी कवच धारण कर हाथों में धनुष और बाण लेकर शत्रुओं को परास्त करते हैं। २—दुर्गा ने तलवार, बर्छी, भाले लेकर राक्षसों को नष्ट किया। ३—उसने शत्रुओं को हराकर अपनी विजय-वैजयन्ती फहरायी। ४—प्राचीनकाल में लोग घोड़ों पर, हाथियों पर और रथों पर बैठकर युद्ध करते थे। ५—उर्वशी इन्द्र का हथियार है। ६—बदमाश लोग अपने पास छुरी और गुप्ती रखते हैं। ७—पंजाब के लोग कृपाण धारण किए रहते हैं। ८—भीम गदा से युद्ध करते थे, अर्जुन धनुष और बाण धारण किया करते थे। ९—पराजित शत्रुओं को जेल में बन्द कर दिया जाता है। १०—अब गँड़ासा से युद्ध नहीं किया जाता। ११—राणा प्रताप का भाला शत्रुओं के वक्षस्थल में घुस जाता था। १२—उसके युद्ध-कौशल की प्रशंसा नहीं की जा सकती। १३—शस्त्रागार की देखभाल करो। १४—तुम्हारे अतिरिक्त और किसी ने मेरे शस्त्रों को नहीं सहा है। १५—जो हाथी पर चलता है उसे हाथीवान कहते हैं। १६—घुड़सवार घोड़े पर चलता है।

~ कृषि वर्ग

उर्वरा—उपजाऊ । ऊषरः—ऊसर । कणिशः—बाल । कोटिशः—ढुंढुश । कृषिः—खेती । कृषियन्त्रम्—खेती का औजार । कृषीवलः—किसान । क्षेत्रम्—खेत । खनित्रम्—फावड़ा, कुदाल । खनियन्त्रम्—ट्रैक्टर । खलम्—खलिहान । खाद्यम्—खाद । तुषः—भूसी ।

तोत्त्रम्—चाबुक । दात्रम्—दरांती । पलालः—पराल । फालः—हल की फाल । बुसम्—भूसा । मृत्तिका—मिट्टी । लाङ्गलम्—हल । लोष्टम्—ढेला । लोष्टभेदनः—मुंगरी, पटरा । वसुधा—पृथ्वी । शाद्वलः—शस्य-श्यामल । सीता—जुती भूमि ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। २—खेती हमारा मुख्य व्यवसाय है। ३—किसान हलसे खेत जोतता है। ४—जुती हुई भूमि के ढेलों को मुँगरी से पीटकर और पटरा चलाकर सम करता है। ५—इसके बाद बीज बोता है। ६—फसल तैयार होने पर दरांती से बालों को काट लेता है। ७—कभी कभी फसल को जड़ से ही काट लेते हैं। ८—इस प्रकार किसान खेती करता है। ९—हरे-भरे खेतों को देखकर चित्त प्रसन्न होता है। १०—आजकल ट्रैक्टर से भी जुताई होती है। ११—गाय और बैल भूसा खाते हैं। १२—हमारे देश की भूमि उपजाऊ है। १३—कुशल और फावड़ा खेती के औजार हैं। १४—किसान चाबुक से बैलों को मारता है। १५—हल की फाल लम्बी होती है। १६—भूसी भैंसों को दी जाती है। १७—खाद डालने से फसल अच्छी होती है। १८—किसान खेत में परिश्रम करके अनेक प्रकार के अन्न पैदा करता है जिससे प्राणी जीवित रहते हैं। १९—अतएव ग्रामीण किसान धन्य हैं।

क्रीडासन वर्ग

आसन्दिका—कुर्सी।
उपस्करः—फर्नीचर।
कन्दुकः—गेंद।
काष्ठपरिष्कारः—रैकेट।
काष्ठमञ्जूषा—अलमारी।
काष्ठासनम्—बेञ्च।
क्रीडाप्रतियोगिता—मैच।
क्षेपककन्दुकः—वालीवाल।
खट्वा—खटिया।
जालम्—नेट।
निर्णायकः—रेफरी।
निवारः—निवाड़।
पत्रिन्—चिड़िया।
पत्रिक्रीडा—बैडमिण्टन।
पर्पः—चारों ओर मुड़ने वाली कुर्सी।
पर्यङ्कः—सोफा।
पल्यङ्कः—पलंग।
पादकन्दुकः—फुटबाल।
पुस्तकाधानम्—बुकरैक।
प्रक्षिप्त-कन्दुक-क्रीडा—टेनिस का खेल।
फलकम्—मेज।
मञ्जूषा—सन्दूक।
यष्टि-क्रीडा—हाकी का खेल।
लेखनपीठम्—डेस्क।
संवेशः—स्टूल।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—अँग्रेजी खेलों में (आंग्लक्रीडासु) फुटबाल, बैडमिण्टन, वाली वाल, हाकी और टेनिस के खेल प्रसिद्ध हैं। २—पलंग निवाड़ से बुनी जाती है (ऊयते)। ३—आज विद्यालय में हाकी का मैच है। ४—मैच में रेफरी को निष्पक्ष होना चाहिए। ५—हाकी गेंद से, बैडमिण्टन चिड़िया से और टेनिस गेंद से खेले जाते हैं। ६—पाठशाला की कक्षाओं में मेज, कुर्सियाँ, डेस्क और बेंच होती हैं। ७—घर में

अल्मारी, सोफा, पलंग, खटिया, कुर्सी, टेबुल और आराम कुर्सी आदि होते हैं। ८—पुस्तकालय में बुक रैक है। ९—कार्यालयों में मुड़ने वाली कुर्सियाँ होती हैं। १०—धनवान् लड़के ही टेनिस खेल सकते हैं क्योंकि यह महँगा खेल है। ११—बैडमिण्टन का रैकेट हल्का और टेनिस का रैकेट भारी होता है। १२—इस विद्यालय में फर्नीचर नहीं है। १३—विद्यार्थी के लिए पढ़ाई की मेज (लेखनफलकम्) आवश्यक है। १४—धनी आदमी डाइनिंग टेबुल (भोजनफलकम्) पर ही भोजन रखकर खाते हैं। १५—मेरे पास एक अच्छी सेफ (लौहमञ्जूषा) है।

गृह वर्ग

अर्गलम्—अर्गला।
अश्मचूर्णम्—सीमेण्ट।
कपाटम्—किवाड़।
कक्षा—कमरा।
काचः—काँच।
कीलः—चटकनी।
कुट्टिमम्—फर्श।
खर्परः—खपड़ा।
खर्परावृत्तम्—खपड़ैल का।
गवाक्षः—खिड़की।
छदिः—छत।
तृणम्—फूस।
त्रपुः—टीन।
त्रपुफलकम्—टीन की चद्दर।
दारु—लकड़ी।
नागदन्तः—खूटी।
पटलगवाक्षः—स्काईलाइट।
प्रकोष्ठः—पोर्टिको।
प्रणालिका—नाली।
प्रलेपः—प्लास्टर।
महाकक्षः—हाल।
लघुकक्षः—कोठरी।
लौहफलम्—लोहे की चद्दर।
वरण्डः—बरामदा।
स्तम्भः—खम्बा।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—निवास के लिए घरों की आवश्यकता पड़ती है। २—प्राचीन काल में घर फूस के या खपड़ैल के होते थे। ३—आजकल भी ग्रामों में अधिकांश घर फूस और खपड़ैल के ही होते हैं। ४—शहरों में मकान पक्की ईंटों के (पक्वेष्टकानिर्मितानि) होते हैं। ५—उनमें पक्की ईंटों की छतें भी होती हैं। ६—उनमें स्काईलाट, बरामदा, चटकनी, किवाड़, फर्श और खिड़कियाँ भी होती हैं। ७—कपड़े टाँगने के लिए खूटियाँ भी होती हैं। ८—पक्के घरों में सीमेण्ट का प्लास्टर होता है। ९—कुछ मकानों में लकड़ी और काँच का अधिक प्रयोग किया जाता है। १०—कुछ मकानों पर टीन या लोहे की चद्दरें भी लगाई जाती हैं। ११—खिड़कियों के बन्द होने पर भी रोशनी अन्दर आ सके इसीलिए कभी-कभी काँच अधिक प्रयुक्त होता है। १२—आँगन में खम्भे भी खड़े किए जाते हैं। १३—गर्मी के मौसम में पक्के मकान की अपेक्षा खपड़ैल का मकान अधिक सुखकर होता है। १४—गन्दे पानी की निकासी के लिए नालियों की भी आवश्यकता पड़ती है।

दिक्काल वर्ग

अपराह्णः—तीसरा पहर।
उदीची—उत्तर।
कला—मिनट।
काष्ठा—दिशा।
घटिका—घड़ी।
दक्षिणा—दक्षिण।
दिवसः—दिन।
दिवा—दिन में।
नक्तम्—रात में।
निदाघः—ग्रीष्म ऋतु।
निशीथः—आधी रात।
पराह्णः—दोपहर के बाद का समय (P. M.)।
पूर्वाह्णः—दोपहर के पहले का समय (A. M.)
प्रत्यूषः—प्रातः।
प्रदोषः—सूर्यास्त-समय।
प्रतीची—पश्चिम।
प्राची—पूर्व।
प्रावृष्—वर्षा-काल।
मध्याह्नः—दोपहर का समय।
रात्रिन्दिवम्—दिन-रात।
वादनम्—बजे।
विकला—सेकण्ड।
विभावरी—रात।
वेला—समय।
होरा—घण्टा।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण चार दिशाएँ हैं। २—उत्तम विद्यार्थी सवेरे उठता है। ३—नौ बजे विद्यालय जाता है, दोपहर को खाना खाता है। ४—फिर तीसरे पहर फलाहार करता है। ५—शाम को नदी के किनारे घूमता है। ६—रात में पढ़ता है और फिर १०—बजे सो जाता है। ७—वह कभी आधीरात में नहीं जागता। ८—परीक्षा के दिनों में वह रात-दिन अध्ययन में जुटा रहता है। ९—एक घण्टे में साठ मिनट होते हैं और एक मिनट में साठ सेकण्ड। १० उत्तर प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु में गर्मी अधिक पड़ती है। ११—वर्षा ऋतु में खूब पानी बरसता है। १२—इस समय क्या बजा है? १३—आज शाम को पाँच बजे मेरे यहाँ सत्यनारायण की कथा होगी। १४—सूर्यास्त का समय बड़ा ही सुहावन होता है। १५—रात बीत गई अब जाग। १६—यह घड़ी ठीक समय नहीं बताती।

देववर्ग

अच्युतः—विष्णु।
असुरः—राक्षस।
कृतान्तः—यम।
कृशानुः—अग्नि।
त्र्यम्बकः—शिव।
नाकः—स्वर्ग।
पविः—वज्र।
पीयूषम्—अमृत।
पुष्पधन्वन्—कामदेव।
पौलोमी—इन्द्राणी।
प्रचेतस्—वरुण।
मनुष्यधर्मन्—कुबेर।
मातरिश्वन—वायु।
लक्ष्मीः—लक्ष्मी।
वेधस्—ब्रह्मा।
शतक्रतुः—इन्द्र।
शर्वाणी—पार्वती।
सुरः—देवता।
सेनानीः—कार्तिकेय।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—देवता स्वर्ग में निवास करते हैं। २—प्राचीन काल में देवों और असुरों में घोर संग्राम हुआ। ३—इन्द्र ने वज्र से राक्षसों का विनाश किया। ४—अमृत पाकर देवता अमर हो गए। ५—इन्द्र ने इन्द्राणी को, विष्णु ने लक्ष्मी को और शिव ने पार्वती को पत्नी के रूप में स्वीकार किया। ६—कुबेर धनाधिपति हैं। ७—विष्णु का शंख पांचजन्य हैं। ८—इन्द्र की नगरी अमरावती है। ९—ब्रह्मा सृष्टि-कर्ता है। १०—यम जीवों का प्राण हरता है। ११—वरुण जल के स्वामी हैं। १२—अग्नि वन को जलाती है। १३—कामदेव का बाण फूल है। १४—कार्तिकेय शिव के पुत्र हैं। १५—गणेश विघ्नों को नष्ट करते हैं। १६—उच्चैःश्रवा इन्द्र का घोड़ा है। १७—विष्णु सुदर्शन चक्र धारण किए रहते हैं। १८—दधीचि की हड्डियों का वज्र बनाकर देवताओं ने राक्षसों का संहार किया था। १९—भारतभूमि में जन्म लेने के लिए देवता भी इच्छा करते हैं। २० इन्द्र ने पर्वतों के पंखों को काट डाला था। २१—नारायण ने वामन का रूप धारण किया था।

नाट्यवर्ग

अवरोहः—उतार। पटहः—ढोल।
आरोहः—चढाव। मञ्जीरम्—मंजीरा।
क्वणः—मिजराव। मध्यः—मध्यमस्वर।
जलतरङ्गः—जलतरंग। मनोहारिवाद्यम् हारमोनियम।
डिण्डिमः—डिंढोरा। मन्द्रः—कोमलस्वर।
ढोलकः—ढोलक। मुरजः—तबला।
तन्त्रीकवाद्यम्—पियानो। मुरली—बाँसुरी।
तानपूरः—तानपूरा। वादित्रगणः—बैण्ड।
तारः—तीव्रस्वर। वीणावाद्यम्—बीनबाजा।
तूर्यम्—तुरही सहनाई। सप्तस्वराः—सातस्वर।
दुन्दुभिः—नगाड़ा। सारङ्गी—वायोलिन, सारंगी।
नवरसाः—नवरस। संज्ञाशंखः—बिगुल।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—जीवन को सरस और मधुर बनाने में संगीत का विशेष योग है। २—संगीत से विहीन मनुष्य पशु के समान है। ३—शृङ्गार हास्य आदि नौ रस हैं। ४—रति आदि नौ स्थायिभाव हैं। ५—विभाव, अनुभाव और संचारिभावों के योग से रस की निष्पत्ति होती है। ६—प्राचीन काल में बाँसुरी, सितार, सारङ्गी, तानपूरा, नगाड़ा, ढोल, डिंढोरा, तबला, सितार का प्रचलन था। ७—आजकल हारमोनियम, वीनबाजा और जलतरंग का अधिक प्रचलन है। ८—निषाद, ऋषभ,

गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पंचम ये सात स्वर हैं। ९—इनके प्रथम अक्षरों को लेकर स रे ग म आदि सरगम बना है। १०—संगीत में कोमल, मध्यम और तीव्र स्वरों के तीन सप्तक होते हैं। ११—स्वरों का आरोह और अवरोह होता है। १२—विवाह के अवसर पर सहनाई बजती है। १३—हारमोनियम भी लोगों को मुग्ध कर देता है। १४—कृष्ण भगवान् को मुरली से विशेष प्रेम था। १५—तानसेन एक अच्छा संगीतज्ञ था। १६—बिगुल बजने पर सैनिक अपनी ड्यूटी पर चले जाते हैं।

पक्षिवर्ग

कीरः—तोता।	ध्वाङ्क्षः—कौआ।
कुक्कुटः—मुर्गा।	परभृतः—कोयल।
कुलायः—घोंसला।	पारावतः—कबूतर।
कौशिकः—उल्लू।	बकः—बगुला।
खञ्जनः—खञ्जन।	बर्हिन्—मोर।
गृध्रः—गिद्ध।	मरालः—हंस।
चकोरः—चकोर।	लावः—बटेर।
चटका—चिड़िया (गौरैय्या)।	वर्तकः—बतख।
चक्रवाकः—चकवा।	वरटा—हंसी।
चातकः—चातक।	शलभः—टिड्डी, पतंगा।
चाषः—नीलकण्ठ।	श्येनः—बाज।
चिल्लः—चील।	षट्पदः—भौंरा।
टिट्टिभः—टिटिहीर।	सरघा—मधुमक्खी।
तित्तिरिः—तीतर।	सारसः—सारस।
दार्वाघाटः—कठफोड़ा।	सारिका—मैना।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—पक्षियों की मधुर ध्वनि सबके मन को हर लेती है। २—वनों में पक्षी मधुर संगीत करते हैं। ३—तोता, खञ्जन, गिद्ध, चातक, नीलकण्ठ, चील, कठफोड़ा, कौआ, कोयल, कबूतर, बगुला ये सभी आकाश में उड़ते हैं। ४—बादलों को देखकर मोर नाचता है। ५—चिड़ियों पर बाज झपटता है। ६—हंस सफेद होता है। ७—मधुमक्खी शहद तैयार करती है। ८—सारस के पैर लम्बे होते हैं। ९—चकोर अग्नि की चिनगारी चुगता है। १०—बतख अण्डे देती है। ११—मैना घरों में पाली जाती है। १२—भौंरे और मधुमक्खी पुष्पों का पराग ले लेते हैं। १३—नीलकण्ठ का दिखाई पड़ना शुभ होता है। १४—साहित्य में चकवा पक्षी का विशेष वर्णन मिलता है।

१५—टिटिहीर तालाब के किनारे रहता है। १६—उल्लू दिन में नहीं दिखाई पड़ता। १७—नेत्रों की उपमा खञ्जन से दी जाती है। १८—मुर्गा बड़े तड़के बोलता है। १९—पक्षी वृक्षों में घोंसला बनाकर रहते हैं।

पशुवर्ग

अजः—बकरा।	द्वीपिन्—व्याघ्र, बघेरा।
अश्वः—घोड़ा।	नकुलः—नेवला।
उक्षन्—बैल।	भल्लूकः—भालू।
कर्णजलौका—कानखजूरा, गोजर।	महिषः—भैंसा।
कुरङ्गः—मृग।	महिषी—भैंस।
केसरिन्—शेर।	मार्जारी—बिल्ली।
कौलेयकः—कुत्ता।	मेषः—भेड़।
खरः—गदहा।	लूता—मकड़ी।
गजः—हाथी।	लोमशा—लोमड़ी।
गण्डकः—गैंडा।	वराहः—सूअर।
गोधा—गोह।	वृकः—भेड़िया।
गोमायुः—गीदड़।	वृश्चिकः—बिच्छू।
गौः—गाय।	शाखामृगः—बन्दर।
गृहगोधिका—छिपकली।	सरमा—कुतिया।
तरक्षुः—तेंदुआ।	हरिणकः—हिरनका बच्चा।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—अकारण ही बकरा, बैल, मृग, शेर, कुत्ता, गीदड़ लोमड़ी, सूअर और हिरन के बच्चे को नहीं मारना चाहिए। २—वफ़ादार जानवर है। ३—गाय मीठा दूध देती है। ४—बन्दर वृक्षों पर दौड़ते हैं। ५—भालू पेड़ पर भी चढ़ जाता है। ६—बिच्छू गोबर से उत्पन्न होता है। ७—साँप बिल में रहते हैं। ८—बैल से खेती की जाती है। ९—बरयात्रा में हाथी आगे चलता है। १०—गदहा मैले वस्त्रों को घाट पर ले जाता है। ११—अपरिचित जनों को देखकर कुत्ता भूकता है। १२—कहीं-कहीं भैंसों से भी खेती की जाती है। १३—भैंस खूब दूध देती है। १४—बिल्ली चूहा पकड़ती है। १५—लोमड़ी खेती को नुकसान पहुँचाती है। १६—नेवला साँप का वैरी है। १७—भेड़िया मांस खाता है। १८—गैंडे की खाल से ढाल बनती है। १९—पशु-हत्या घृणित कार्य है। २०—मनुष्य के समान पशु भी दया के पात्र हैं।

पुरवर्ग

अट्टः—अटारी।	अजिरम्—आँगन।
अन्तःपुरम्—रनवास।	अलिन्दः—घर के बाहर का चबूतरा।

आपणः—दूकान ।
उटजः—झोपड़ी ।
उपवेशगृहम्—ड्राइंग रूम ।
कुटी—कुटिया ।
कोटपालिका—कोतवाली ।
गोपुरम्—मुख्यद्वार ।
ग्रामः—गाँव ।
चतुःशालम्—चारों ओर मकान, बीच में आँगन ।
चतुष्पथः—चौक, चौराहा ।
चत्वरम्—चबूतरा ।
जनमार्गः—आमरास्ता ।
त्रिभूमिकः—तिमंजिला ।
द्वारम्—द्वार ।
द्विभूमिकः—दुमंजिला ।
दृढमार्गः—पक्की सड़क ।
नगराध्यक्षः—म्युनिसिपल चेयरमैन ।
नगरपालिका—म्युनिसिपैलिटी ।
नगरम्—शहर ।
नगरी—कस्बा ।
निगमः—कार्पोरेशन ।
निगमाध्यक्षः—मेयर ।
निश्रेणिः—सीढ़ी, काठ आदि की ।
पथिकालयः—मुसाफिरखाना ।
पुरोद्यानम्—पार्क ।
प्रपा—प्याऊ ।
प्राकारः—परकोटा ।
प्रासाद—महल ।
भवनम्—मकान ।
भाण्डागारम्—स्टोररूम ।
भित्तिः—दीवार ।
भोजनगृहम्—डाइनिंग रूम ।
मण्डपः—मण्डप ।
महाहट्टः—मण्डी ।
मार्गः—सड़क ।
मृन्मार्गः—कच्ची सड़क ।
रथ्या—चौड़ी सड़क ।
रक्षिस्थानम्—थाना ।
राजमार्गः—मुख्य सड़क ।
वलभी—छज्जा ।
विपणिः—बाजार ।
वीथिका—गली, गैलरी ।
वेदिका—वेदी ।
वृतिः—बाड़, घेरा ।
सोपानम्—सीढ़ी ।
स्नानागारम्—बाथरूम ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—गाँवों की शोभा देखने योग्य होती है । २—गाँव में किसान रहता है । ३—नगर में धनिक, निर्धन, बड़े-छोटे सभी रहते हैं । ४—नगर में बड़ी चहल-पहल रहती है । ५—सत्य, प्रेम, अहिंसा और सहानुभूति से मनुष्य का जीवन सुखमय होता है, अतएव इन गुणों को अपनाना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है । ६—बड़े शहरों में बाजार, मण्डी और दूकानें होती हैं । ७—शहरों में दुमंजिले, तिमंजिले मकान होते हैं । ८—मनुष्य सीढ़ियों के द्वारा ऊपर की मंजिलों पर पहुँचते हैं । ९—प्राचीन काल में नगरों के चारों ओर परकोटा या बाड़ होती थी जिससे दुश्मनों के आक्रमण से बचाव होता था । १०—घरों में दीवार, चबूतरा, मुख्य द्वार, आँगन, सीढ़ी, अटारी, द्वार, छज्जा, रनवास और मण्डप होते थे । ११—नगरों में प्याऊ,

मुसाफिरखाने आदि भी होते थे। १२—गाँव में झोपड़ियाँ और कुटिया होती हैं, परन्तु शहरों में पक्के मकान होते हैं। १३—अच्छे शहरों में पक्की सड़कें, चौड़ी सड़कें, मेन रोड और गलियाँ भी होती हैं। १४—गाँवों में कच्ची सड़कें होती हैं। १५—शहरों मे पार्क, थाना और कोतवाली भी होते हैं। १६—छोटे शहरों में म्युनिसिपलिटी होती है और उसका अध्यक्ष म्युनिसिपल चेयरमेन होता है। १७—गाँव का प्रबन्ध डिस्ट्रिक्टबोर्ड करता है। १८—बड़े शहरों में कार्पोरेशन होता है और उसका अध्यक्ष मेयर होता है। १९—कार्पोरेशन का काम होता है कि नगर की उन्नति के लिए सभी साधनों को जुटावें। २०—शहरों में हर एक मकानों में प्रायः ड्राइंग रूम, बाथ रूम, डाइनिंग रूम, स्टोर रूम और अतिथिगृह होते हैं। २१—कुछ मकानों में बगीचे भी होते हैं। २२—आजकल हमारी सरकार नगरों की उन्नति के लिए प्रयत्न शील है।

पुष्पवर्ग

इन्दीवरम्—नीलकमल।
कर्णिकारः—कनेर।
कल्हारम्—सफेद कमल।
कुन्दम्—कुन्द।
कुमुदम्—श्वेत कमल।
कुमुदिनी—कुमुद की लता।
कुवलयम्—नीलकमल।
कोकनदम्—लाल कमल।
गन्धपुष्पम्—गेंदा।
चम्पकः—चम्पा।
जपापुष्पम्—जवाकुसुम।
नलिनी—पद्मसमूह।
नवमालिका—नेवारी।
पुण्डरीकम्—सफेद कमल।
प्रसूनम्—फूल।
बकुलः—मौलसरी।
बन्धुकः—दुपहरिया।
मकरन्दः—पराग।
मल्लिका—बेला।
मालती—चमेली।
यूथिका—जूही।
शेफालिका—हार-सिंगार।
स्तवकः—गुलदस्ता।
स्थलपद्मम्—गुलाब।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—उपवन में हारसिंगार, जूही, चम्पा, चमेली, बेला, गुलाब, गेंदा, केवड़ा, कनेर, कुन्द, जवाकुसुम और नेवारी के फूल खिले हैं। २—फूलों पर भौंरे गुंजार कर रहे हैं। ३—कमल कई प्रकार का होता है, यथा—नील कमल, लाल कमल, सफेद कमल। ४—गुलाब फूलों का राजा है और चम्पा फूलों की देवी है परन्तु कमल सबका सिरताज है। ५—मेज पर गुलदस्ता रक्खा है जिसमें कई प्रकार के फूल हैं। ६—चमेली खिली है। ७—तालाब में रंग-बिरङ्गे कमल खिले हैं। ८—पङ्कज से सरोवर की शोभा बढ़ती है, भौंरे पङ्कज की शोभा बढ़ाते हैं। ८—वसन्त ऋतु में उद्यान फूलों से सुगन्धित रहता है। ९—सभी पुष्प झड़ने के लिए ही खिलते हैं। १०—सुन्दर फूल डाली पर झूला झूलते हैं। ११—हार-सिंगार भी फूला है।

पात्रवर्ग

उखा—सास-पेन ।
उदञ्चनम्—बाल्टी ।
उद्ध्मानम्—स्टोव ।
ऋजीषम्—तवा ।
कटोरम्—कटोरा ।
कटोरा—कटोरी ।
करकः—लोटा ।
काचकंसः—काँच का गिलास ।
काचघटी—जार ।
कंसः—गिलास ।
घटः—घड़ा ।
चमसः—चम्मच ।
चषकः—प्याला ।
दर्वी—कलछुल, चमचा ।
द्रोणिः—टब ।
धिषणा—तसला ।
पिष्टपचनम्—तई, जलेबी आदि पकाने की
वारिधिः—कण्डाल ।
शरावः—प्लेट, तस्तरी ।
सन्दंशः—चिमटा ।
स्थालिका—थाली ।
स्थाली—पतेली ।
स्वेदनी—कड़ाही ।
हसन्ती—अंगीठी ।
हस्तधावनी—चिलमची ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—जीवन की अनिवार्य आवश्यकता खाना-पीना है। २—भूख और प्यास के निवारणार्थ बर्तनों की आवश्यकता होती है। ३—जल पीने और रखने के लिए लोटा, काँच का गिलास, घड़ा और जार की आवश्यकता होती है। ४—जल टब, कंडाल और बाल्टी में रक्खा जाता है। ५—खाना बनाने और खाने के लिए थाली, कटोरा, कटोरी, तवा, कड़ाही, पतीली, चीमटा, चमचा, चम्मच, तसला और तई की आवश्यकता होती है। ६—खाना अंगीठी या स्टोव पर बनाया जाता है। ७—सास-पेन शाकादि बनाने के लिए, प्लेट खाना रखने के लिए और कप चाय पीने के लिए होते हैं। ८—कलश,[1] सुराही,[2] गगरी,[3] गागर[4] और कमण्डलु[5] पानी पीने और रखने के लिए होते हैं।

पानादिवर्ग

अभ्यूषः—डबलरोटी ।
अवदंशः—चाट ।
कन्दुः—केतली ।
कफघ्नी—कॉफी ।
कूलपी—कुल्फी ।
गुल्यः—टाफी, मीठी गोली ।
चायम्—चाय ।
चायपात्रम्—टी पाट ।
चायपानम्—चाय पानी ।
जलपानम्—जलपान ।
दधिवटकः—दही-बड़ा ।
दाल्मुद्गः—दालमोट ।

---

१. कलशः । २. भृङ्गारः । ३. गर्गरी । ४. गर्गरः । ५. कमण्डलुः ।

पक्ववटिका—पकौड़ी ।
पक्वालुः—आलू की टिकिया ।
पिष्टकः—बिस्कुट ।
पिष्टान्नम्—पेस्ट्री ।
पुलाकः—पुलाव ।
भ्रष्टापूपः—टोस्ट ।
लवणान्नम्—नमकीन ।
व्यञ्जनम्—मसाला, मसालेदार पदार्थ ।
सग्धिः—सहभोज ।
सपीतिः—टी पार्टी ।
समोषः—समोसा ।
सहभोजः—डिनरपार्टी ।
सूत्रकः—नमकीन सेव ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—आजकल चाय पीने का बहुत रिवाज[1] है । २—अमीर लोग काफी भी पीते हैं । ३—अंग्रेजी ढंग से चाय पीने वाले केतली में पानी उबालकर[3], टी पॉट में चाय डाल कर, उस पर उबला हुआ पानी डालकर उसे पाँच मिनट बाद छान लेते[4] हैं । ४—चाय के साथ पेस्ट्री, मक्खन, टोस्ट, डबलरोटी और बिस्कुट भी खाते हैं । ५—सहभोज और टी पार्टी में मिठाइयों के साथ समोसा, सेव, पकौड़ी और दालमोट भी चलते हैं । ६—आजकल विद्यार्थियों को चट, पकौड़ी, दही-बड़ा, कुल्फी और मसाले वाली चीजें अधिक अच्छी लगती[5] हैं ।

प्रसाधन एवं आभूषण वर्ग

अङ्गुलीयकम्—अंगूठी ।
अलक्तकः - लाक्षारस ।
आभरणम्—आभूषण ।
उद्वर्तनम् - उबटन ।
एकावली—एक लड़का हार ।
ओष्ठरञ्जनम्—लिपिस्टिक ।
कङ्कणम्—कंगन ।
कज्जलम् - काजल ।
कटकः—सोने का कड़ा ।
कण्ठाभरणम्—कण्ठा ।
कर्णपूरः—कनफूल ।
काचवलयम्—चूड़ी ।
किंकिणी—घुघरू ।
कुण्डलम्—कान की बाली ।
केयूरम्—बाजूबन्द, ब्रेसलेट ।
ग्रैवेयकम्—हसुली ।
गन्धतैलम्—इत्र ।
चूर्णकम्—पाउडर ।
तिलकम्—तिलक ।
त्रोटकम्—हाथ का तोड़ा ।
दन्तचूर्णम्—मंजन, टूथ पाउडर ।
दन्तधावनम्—दाँत का ब्रुश ।
दन्तपिष्टकम्—टूथ पेस्ट ।
दर्पणः—शीशा ।
नखरञ्जनम्—नेल पालिश ।
नासापुष्पम्—नाक का फूल ।
नासाभरणम्—नथ, बुलाक ।
नूपुरम्—पाजेब ।

१—प्रचलनम् ।
२—आङ्ग्लपद्धत्या ।
३—क्वथित्वा ।
४—पातयन्ति ।
५—अधिकं रोचन्ते ।

पत्रलेखा—पत्रलेखा।
पादाभरणम्—लच्छा।
प्रसाधनी—कंघी।
फेनिलम्—साबुन।
बिन्दुः—बिन्दी।
मुकुटम्—मुकुट।
मुक्तावली—मोती की माला।
मुद्रिका—नामांकित अंगूठी।
मूर्धाभरणम्—वेणी।
मेखला—करधन।
मेन्धिका—मेंहदी।
रोममार्जनी—ब्रुश।
ललाटाभरणम्—टिकुली।
ललाटिका—टीका।
शरः—क्रीम।
शृङ्गारधानम्—सिंगार दान।
शृङ्गारफलकम्—ड्रेसिंग टेबुल।
सिन्दूरम्—सिन्दूर।
स्रज्—पुष्प-माला।
हारः—मोती का हार।
हैमम्—स्नो।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—स्त्रियाँ शृङ्गार-प्रिय होती हैं। २—वे सज-धज कर रहना चाहती हैं (अलंकरिष्णवो भवन्ति।)। ३—वे सिर में सिन्दूर लगाती हैं। ४—मस्तक पर टीका और बेंदी लगाती हैं। ५—आँखों में काजल लगाती हैं। ६—देह में उबटन लगाती हैं। ७—ओठों पर लिपस्टिक और नाखूनों में नेल पालिश लगाती हैं। ८—गालों पर रूज, मुख पर स्नो और क्रीम लगाती हैं। ९—हाथों में मेंहदी और पैरों में महावर लगाती हैं। १०—कुछ स्त्रियाँ जूड़ा बाँधती हैं (वेणीबन्धं बध्नन्ति)। ११—कुछ जूड़े की जाली लगाती हैं (वेणीजालं युञ्जन्ति)। १२—कुछ स्त्रियां बालों में काटा (केशशूकान्) लगाती हैं। १३—सिंगारदान और शृङ्गार का सामान ड्रेसिंग टेबुल पर रखा जाता है। १४—स्त्रियां अलङ्कारप्रिय भी होती हैं। १५—वे अपने शरीर को अलंकृत रखना चाहती हैं। १६—अलंकार शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। १७—विवाहिता स्त्रियां ही प्रायः आभूषण पहनती हैं। १८—वे सिर पर वेणी, माथे पर मुकुट और टिकुली लगाती हैं। १९—नाक में नथ और नाक का फूल पहनती हैं। २०—कान में कनफूल और बाली, गले में हँसुली पहनती हैं। २१—गले में कण्ठा, मोती का हार और फूल-माला भी पहनती हैं। २२—कलाई में कंगन और चूड़ी, अंगुलियों में अंगूठी, बांह में बाजूबन्द, कमर में करधन, पैरों में पाजेब, लच्छे और घुँघरू पहनती हैं।

फल वर्ग

अक्षोटम्—अखरोट।
अंकोलम्—पिस्ता।
अंजीरम्—अंजीर।
आर्दालुः—आड़ू।
आम्रम्—आम।
आम्रचूर्णम्—अमचूर।
आम्रातकम्—अमावट।
आम्रलम्—अमरूद।

आलुकम्—आलू बुखारा।
उदुम्बरम्—गूलर।
कदम्बः—कदम्ब।
कपित्थम्—कैथा, कैत।
करमर्दकम्—करौंदा।
कर्कटिका—ककड़ी।
कर्मरङ्गम्—कमरख।
कसेरुः—कसेरू।
काजवम्—काजू।
क्षीरिका—खिरनी।
क्षुवाहरम्—छुहारा।
खर्जूरम्—खजूर।
खर्बुजम्—खरबूजा।
तारबूजम्—तरबूज।
तूतम्—शहतूत।
दाडिमम्—अनार।
द्राक्षा—अंगूर।
नारिकेलम्—नारियल।
नारंगम्—नारंगी।
निम्बूकम्—कागजी नीबू।
पनसः—कटहल।
पीलुफलम्—पीलू।
पूगः—सुपारी।
पौष्टिकम्—पोस्ता।
पुंनागफलम्—फालसा।
प्रियालम्—चिरौंजी।
बदरीफलम्—बेर।
बिल्वम्—बेल।
मखान्नम्—मखाना।
मधुरिका—मुनक्का।
मातुलुंगः—मुसम्मी।
लकुचम्—बड़हल।
लीचिका—लीची।
शलाटुः—कच्चाफल।
शुष्कफलम्—मेवा।
शृङ्गाटकम्—सिंघाड़ा।
सेवम्—सेव।
स्वर्णक्षीरी—मकोय।
हरीतकी—हर्र।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—फल स्वास्थ्य और बुद्धि को बढ़ाते हैं। २—शारीरिक और बौद्धिक उन्नति के लिए फलों का सेवन अनिवार्य है। ३—यह आवश्यक नहीं है कि महँगे फल ही खाए जायँ, ऋतुओं में उत्पन्न सस्ते फल भी लाभदायक हैं। ४—अपनी स्थिति के अनुसार फलों का सेवन करना चाहिए। ५—ऋतु के अनुसार आम, सेब, केला, अनार, मकोय, आलू बुखारा, शहतूत और जामुन आदि फल खाना चाहिए। ६—रोगी के लिए मुसम्मी और संतरा अधिक लाभदायक है। ७—फल रक्त को शुद्ध करके लाल बनाता है। ८—भोजन के बाद अथवा तीसरे पहर फल खाना चाहिए। ९—आड़ू, शरीफा, फालसा, ककड़ी, तरबूज, खरबूजा, कमरख, सिंघाड़ा और बिदाना सभी लाभप्रद हैं। १०—आम सभी फलों में श्रेष्ठ है। ११—आगरा और प्रयाग के अमरूद विश्व भर में प्रसिद्ध हैं। १२—लखनऊ और सुलतानपुर के खरबूजे भी प्रसिद्ध हैं। १३—शरीफा अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। १४—पका हुआ कटहल भी अच्छा होता है। १५—कच्चे कटहल की तरकारी बनती है। १६—गर्मियों में तरबूज खाना चाहिए जिससे ठंडक रहे। १७—अंगूर रक्त वर्द्धक है।

कढ़ी भी बनती है। १२—नाश्ते में चाय, मट्ठा, लस्सी और पराठा या दूध चलता है। १३—होली के दिन घर पर स्त्रियाँ लड्डू, पूए, मालपूए, रसगुल्ले, गुझिया, शक्कर पारे आदि मिठाइयाँ बनाती हैं। १४—हलवाई अपनी दूकानों पर लड्डू, पूआ, पेड़ा, जलेबी, बताशे, गुझिया, इमरती, गुलाबजामुन, पेठे की मिठाई, बर्फी, रबड़ी, कलाकन्द, घेवर, मोहनभोग, मोहनभोग, और पपड़ी बेच रहे हैं। १५—लोग मित्रों के घर मिठाइयाँ भेजते हैं।

रोग वर्ग

अजीर्णम्—कब्ज।
अतिसारः—दस्त।
अर्शस्—बवासीर।
उपदंशः—गरमी, सिफलिस।
कासः—खाँसी।
ज्वरः—बुखार।
पाण्डुः—पीलिया।
पक्षाघातः—लकवा मारना।
पिटकः—फोड़ा।
पिटिका—फुंसी।
प्रतिश्यायः—जुकाम।
प्रमेहः—प्रमेह।
प्रलापकज्वरः—निमोनिया।
प्रवाहिका—पेचिश, संग्रहणी।
मधुमेहः—बहुमूत्र, डाएबिटीज।
मन्थरज्वरः—मोतीझरा।
रक्तचापः—ब्लड प्रेशर।
राजयक्ष्मन्—तपेदिक, T. B.
वमथुः—कै।
विद्रधिः—केन्सर।
विषमज्वरः—मलेरिया।
विषूचिका—हैजा।
शीतज्वरः—इनफ्लुएञ्जा, फ्लू।
शीतला—चेचक।
संनिपातज्वरः—टाइफाइड।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—शरीर व्याधियों का घर है अतएव स्वस्थ रहने का प्रयत्न करना चाहिए। २—कहा भी गया है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सर्वोत्तम मूल आरोग्य है। ३—अनियमित आहार-विहार से खाँसी, जुकाम, मलेरिया, बुखार, निमोनिया, इन्फ्लुएञ्जा, तपेदिक, चेचक, टाइफाइड, पेचिश, दस्त, मोतीझरा, फोड़ा, फुंसी, हैजा, संग्रहणी, मधुमेह, प्रमेह, बवासीर और कब्ज आदि रोग होते हैं। ४—अतएव आरोग्य के लिए समुचित आहार-विहार, सात्विक भोजन और व्यायाम आवश्यक हैं। ५—केन्सर, लकवा मारना, तपेदिक और दिल के रोग (हृद्रोगाः), ये रोग घातक हैं। ६—विशेषज्ञों के कथनानुसार रोगों का कारण जीवन की अनियमितता है। ७—शरीर ही धर्म का प्रथम साधन है। ८—अतएव वेदों में प्रार्थना की गई है कि हम नीरोग होकर सौ वर्ष तक जीवें, सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब सुख देखें और कोई दुःखी न हो[1]।

---

१. जीवेम शरदः शतम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

वनवर्ग

इन्धनम्—ईंधन ।	भद्रदारुः—चीड़ ।
करीरः—करील ।	मूलम्—जड़ ।
काननम्—वन ।	वल्लरिः—बौर ।
किसलयम्—कोंपल ।	विटपिन्—वृक्ष ।
गुग्गुलः—गूगल ।	व्रततिः—लता ।
तमालः—आबनूस ।	वृन्तम्—डंठल ।
दारु—लकड़ी ।	श्लेष्मातकः—लिसौड़ा ।
देवदारुः—देवदार ।	सर्जः—सर्ज ।
पर्णम्—पत्ता ।	सालः—साल का पेड़ ।
प्रियालः—प्याल ।	सिन्दूरः—चाँझ का पेड़ ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—वन भूमि को रेगिस्तान होने से[1] बचाते हैं। २—इस प्रकार वे भूमि के रक्षक हैं। ३—वृक्ष मानव के लिए बहुत उपयोगी हैं। ४—वृक्षों से वृष्टि होती है। ५—कुछ पेड़ फल देते हैं। ६—इनके फलों को खाकर मनुष्य स्वस्थ रहते हैं। ७—कुछ पेड़ों की लकड़ी ईंधन के रूप में काम आती है। ८—वृक्षों के पत्ते, बौर, डण्ठल, कलियाँ[2], लकड़ी, जड़ फूल और फल सभी की अनेकों कामों में आते हैं। ९—पहाड़ों पर देवदार, सर्ज, चाँझ, चीड़ और साल के पेड़ अधिक होते हैं। १०—जुकाम में लिसौड़ा की पत्ती बहुत लाभप्रद है। ११—गूगल, प्याल और लिसौड़ा पर फल भी होते हैं। १२—आबनूस की लकड़ी काली होती है। १३—बबूल की दातून[3] से दाँत स्वच्छ किया जाता है।

वारि वर्ग

अर्णवः—समुद्र ।	नक्रः—मगर ।
आपगा—नदी ।	नौः—नाव ।
आवर्तः—भौंर ।	पोतः—पानी का जहाज ।
आहावः—हौज, टैंक ।	भेकः—मेढक ।
कच्छपः—कछुआ ।	मीनः—मछली ।
कर्णधारः—नाविक, खिवैया ।	वीचिः—तरंग ।
कर्दमः—कीचड़ ।	सरस्—तालाब ।
कुलीरः—केकड़ा ।	सरसी—झील ।
कूलम्—तट ।	सैकतम्—रेतीला ।
तोयम्—जल ।	ह्रदः—बड़ी झील ।

१. मरुः, (पञ्च० 'मरुत्वं' की)। २. कलिकाः । ३. दन्तधावनानि ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—जल के अभाव में मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है। २—अतएव जल को जीवन कहा गया है। ३—तालाब, झील, नदी और समुद्र, इन सब की शोभा जल से ही है। ४—समुद्र का जल ही भाप बनकर[1] बादल और मानसून[2] का रूप धारण करता है और तदनन्तर बरसता है। ५—कछुआ, केकड़ा, मगर, मछली और मेढक जल में सुख से विचरते हैं। ६—जल में तरंगे उठती हैं। ७—जल में भंवर और कीचड़ भी होते हैं। ८—नाविक जहाज और नौका को जल में चलाते हैं[3]।

विद्यालय वर्ग

अङ्कः—नम्बर।
अध्यापकः—अध्यापक।
अध्येता—छात्र।
अध्येत्री—छात्रा।
अनुपस्थितः—गैरहाजिर।
अन्तेवासी—शिष्य।
अवकाशः—छुट्टी।
अश्मपट्टिका—स्लेट।
आचार्यः—प्रिंसपल।
उपकुलपतिः—वाइसचांसलर।
उपशिक्षासंचालकः—डिप्टीडाइरेक्टर।
उपस्थितः—हाजिर।
कक्षा—जमात क्लास।
कलमः—कलम।
कागदः—कागद।
कुलपतिः—चान्सलर।
घर्षकः—रबड़।
तूलिका—पेन्सिल।
धारालेखनी—फाउण्टेनपेन।
पत्रम्—कागज।
पट्टिका—पट्टी।
परीक्षा—इम्तिहान।
पत्रावली—फाइल।
पाठशाला—पाठशाला।
पाठ्यपुस्तकम्—पाठ्यपुस्तक।
प्रधानलिपिकः—हेडक्लर्क।
प्रबन्धकर्ता—मैनेजर।
प्रश्नः—सवाल।
प्रस्तोता—रजिस्ट्रार।
प्राध्यापकः—प्रोफेसर।
प्रावरणम्—जिल्द।
पृष्ठम्—पेज, सफा।
पंजिका—रजिस्टर।
मन्दधीः—नालायक, मूर्ख।
मसी—स्याही।
मसीपात्रम्—दवात।
मसीशोषः—ब्लाटिंग पेपर सोख्ता।
महाविद्यालयः—कालेज।
मार्जकः—डस्टर।
लिपिकः—क्लर्क।
लेखनीमुखम्—निब।
विद्यालयः—विद्यालय।
विवादः—झगड़ा।
विश्वविद्यालयः—यूनिवर्सिटी।
वेष्टनम्—बस्ता।
श्यामफलकः—ब्लैकबोर्ड।
सतीर्थ्यः—सहपाठी।
समयसारिणी—टाइम टेबुल।
सुलेखः—अच्छा लेख।
संचालकः—डाइरेक्टर।
संचिका—कापी।

---

१. वाष्परूपेण परिणम्य। २. जलदागमस्य। ३. संचालयन्ति।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—यह विज्ञान का युग है। २—अतएव पढ़ाई भी अब वैज्ञानिक ढंग से ही होती है। ३—प्राचीन और नवीन शिक्षा-पद्धति में बहुत अन्तर है। ४—कुछ विद्यार्थी पाठशाला में, कुछ कालेज में और कुछ यूनिवर्सिटी में पढ़ते हैं। ५—डाइरेक्टर शिक्षा-विभाग का प्रधान अधिकारी है। ६—इन्सपेक्टर पाठशालाओं का निरीक्षण करता है। ७—रजिस्ट्रार परीक्षाओं का टाइमटेबुल बनाता है। ८—वही परीक्षा फल भी घोषित करता है। ९—अध्यापक, प्रोफेसर और आचार्य अपने शिष्यों को पढ़ाते हैं। १०—हेडक्लर्क टाइपराइटर से टाइप करता है[1]। ११—अकारण ही स्कूल से अनुपस्थित नहीं रहना चाहिए। १२—फाउण्टेनपेन में स्याही भरकर ही लिखो। १३—उसे बार-बार डुबोने की आवश्यकता नहीं है। १४—मैं दूकान से कागज खरीदने जा रहा हूँ। १५—तुम एक रजिस्टर, एक फाइल, एक निब और रबड खरीदने जाओ। १६—कापी पर स्याही गिर जाने पर उसे ब्लाटिंग पेपर या चाक[2] से सुखा लो। १७—शोर मत करो, वह गणित के प्रश्नों को हल कर रहा है[3]। १८—अध्यापक लिख चुकने पर डस्टर से ब्लैकबोर्ड को पोंछता है[4]। १९—सहपाठियों के साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहिए। २०—उत्तम विद्यार्थी का सभी आदर करते हैं और नालायक को सभी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। २१—गुरुकुलों की प्रणाली में विद्यार्थियों एवं गुरुओं में परस्पर प्रेम की भावना होती है। २२—आजकल के विद्यार्थी अनुशासन हीन होते जा रहे हैं, परन्तु यह अच्छी बात नहीं है। २३—छात्रों में अनुशासन और अध्यापकों के प्रति आदर होना चाहिए।

वैश्य वर्ग

अधमर्णः—कर्जा लेने वाला।
आपणः—दूकान।
आपणिकः—दूकानदार।
आये—आधमध्ये।
उत्तमर्णः—कर्जा देने वाला।
कुसीदम्—सूद।
कुसीदवृत्तिः—साहूकारा, बैंकिंग।
कुसीदिकः—साहूकार।
ग्राहकः—लेने वाला, गाहक।
दैनिकपञ्जिका—रोजनामचा।
नामानुक्रमणिका—लेखा-बही।
नाम्नि—उधार खाते।

पण्यम्—सामान, सौदा।
राशिः—धन, रकम ढेर।
ऋणम्—कर्जा।
लेखकः—मुनीम।
वणिज्—वैश्य।
वणिक्पञ्जिका—बही।
वाणिज्यम्—व्यापार।
विक्रयः—बिक्री।
विपणिः—बाजार।
विक्रेतृ—बेचने वाला।
वृत्तिः—जीविका।
संख्यानम्—हिसाब।

---

१. टंकणयन्त्रेण टंकयति। २. कठिनी। ३. साधयति। ४. मार्जयति।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—वाणिज्य सुख का [1]मूल और [2]कर्ता है। २—बनिया साहूकारे का काम करता है। ३—वह लोगों को रुपया उधार देता है[3]। ४ वह सूद भी वसूल करता है[4]। ५—मेले में दूकानें सजी रहती हैं, बनिए गाहकों को सामान बेचते हैं और गाहक नगद खरीदते हैं। ६—कर्जा लेने वाला हमेशा दुःख का ही अनुभव करता रहता है। ७—कर्जा देने वाला खुशहाल रहता है। ८—बनियों की दूकानों पर मुनीम रहते हैं। ९—मुनीम दूकान की आमदनी और खर्च का पूरा हिसाब बही में लिखते हैं। १०—आमदनी आयमध्ये लिखी जाती है और उधार को उधार खाते लिखते हैं। ११—रोजनामचा में दैनिक आय व्यय का विवरण रहता है।

वस्त्र वर्ग

अधोवस्त्रम्—धोती।
अन्तरीयम्—पेटीकोट।
अर्धोरुकम्—अण्डरवीयर।
आप्रपदीनम्—पैण्ट।
आस्तरणम्—दरी।
उपधानम्—तकिया।
ऊर्णावरकम्—स्वेटर।
कञ्चुकः—कुर्ता।
कञ्चुलिका—ब्लाउज।
कार्पासम्—सूती।
कौशेयम्—रेशमी।
तूलसंस्तरः—गद्दा।
नक्तकम्—नाइटड्रेस।
नवलीनकम्—नाइलोन का।
नीशारः—रजाई।
पादयामः—पायजामा।
प्रच्छदः—चादर।
प्रच्छदपटः—ओढ़नी-चुन्नी।
प्रावारः—कोट।
प्रावारकम्—शेरवानी।
बृहतिका—ओवरकोट।
रल्लकः—लोई।
राङ्कवम्—ऊनी।
शाटिका—साड़ी।
स्यूतवरः—सलवार।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—वस्त्र शरीर को ढकते हैं। २—धुले हुए वस्त्र शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। ३—भारतवासी प्रायः कुर्ता और धोती पहनते हैं। ४—पाश्चात्य पद्धति को अपनाने वाले लोग कोट, पैण्ट या शेरवानी और पायजामा पहनते हैं। ५—भारतीय स्त्रियां प्रायः ब्लाउज, साड़ी और पेटीकोट पहनती हैं। ६—पंजाब में स्त्रियां कुर्ता और सलवार पहनती हैं, दुपट्टे का भी प्रयोग करती हैं। ७—आजकल सूती, रेशमी ऊनी और नाइलोन के कपड़ों का अधिक प्रचार है। ८—स्त्रियाँ रेशमी और नाइलोन के कपड़े अधिक पसन्द करती हैं। ९—बिस्तर में दरी, गद्दा, चादर, तकिया, रजाई, लोई ये काम में आते हैं। १०—जाड़े के मौसम में कम्बल[5] बड़ा ही उपयोगी है।

---

१. मूलम्। २. कर्तृ। ३. धनम् ऋण रूपेण यच्छति।
४. गृह्णाति। ५. कम्बलः।

व्यापार वर्ग

अभिकर्तृ—एजेन्ट, आढ़ती ।
अभिकरणम्—आढ़त, एजेन्सी ।
अर्घः—भाव, रेट ।
अर्घापचितिः—भाव गिरना ।
अर्घोपचितिः—भाव चढ़ना ।
आयकरः—इनकम टैक्स ।
आयातः—बाहर से आना ।
आयातशुल्कम्—आयात पर चुंगी ।
उपहारः—भेंट ।
ऋणम्—उधार ।
करः—टैक्स ।
कितवः—धोखेबाज ।
क्रयः—खरीद ।
तुला—तराजू ।
तोलः—तोल ।
तोलनम्—तोलना ।
निर्यातः—बाहर जाना ।
निर्यातशुल्कम्—निर्यात पर चुंगी ।
नैष्किकः—टकसालाध्यक्ष ।
न्यासः—धरोहर ।
प्राड्विवाकः—वकील ।
प्रतिभूः—जामिन ।
प्रतिद्वन्द्विता—होड़ ।
प्रतिश्रुतिः—प्रतिज्ञा ।
मन्दायनम्—मन्दी ।
मुद्रा—सिक्का ।
मूलधनम्—पूंजी ।
मूल्यम्—मूल्य ।
मृत्युपत्रम्—वसीयतनामा ।
विक्रयकरः—सेल्सटैक्स ।
विनिमयः—अदल-बदल ।
शणपुटः—बोरा ।
शुल्कम्—कमीशन, दलाली ।
शुल्काजीवः—दलाल ।
शौल्किकः—चुंगी का अध्यक्ष ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१ आढ़ती आढ़त करता है और दूसरे के लिए सामान मंगाता है। २—दूकानदार तराजू पर बाट रखकर सामान तौलता है। ३—दलाल कमीशन लेकर एक का सामान दूसरे के हाथ बिकवाता है। ४—कुछ दूकानदार कम तोल देते हैं और डन्डी भी मार देते हैं। ५—उधार लेना और उधार देना अनुचित है। ६—सरकार ने बिक्री पर सेल्स टैक्स, आयात पर आयात-कर, निर्यात पर निर्यात-कर और अमदनी पर इन्कम टैक्स लगाया है। ७—चीनी बोरे में रक्खी है। ८—धोखेबाज दूकानदार ग्राहक को ठग लेते हैं। ९—चुंगी का अध्यक्ष चुंगी वसूल कर रहा है। १०—भाव कभी गिरता है, कभी चढ़ता है और कभी मन्दी भी आती है। ११—हमेशा नगद ही लेना चाहिए।

व्योम वर्ग

अवग्रहः—अवृष्टि ।
अवश्यायः—हिम, बर्फ ।
आतपः—धूप ।
आसारः—मूसलाधारवर्षा ।
इन्द्रायुधम्—इन्द्रधनुष ।
उत्तरायणम्—उत्तरायण ।

करकाः—ओले ।
गभस्तिः—किरण ।
ज्योत्स्ना—चाँदनी ।
दक्षिणायनम्—दक्षिणायन ।
दर्शः—अमावस्या ।
द्वादशराशयः—बारह राशियाँ ।
नक्षत्रम्—नक्षत्र ।
नवग्रहाः—नवग्रह ।
राका—पूर्णिमा ।
वियत्—आकाश ।
वृष्टिः—वर्षा ।
शीकरः—जल-कण ।
सप्तसप्तिः—सूर्य ।
सप्ताहः—सप्ताह ।
सुधांशुः—चन्द्रमा ।
सौदामिनी—विद्युत् ।
स्तनितम्—मेघगर्जन ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—एक ओर सूर्य उदय हो रहा है और दूसरी ओर चन्द्रमा अस्त हो रहा है। २—हरिदश्व, उष्णरश्मि, विवस्वान्, तिग्मदीधिति, द्युमणि, तरणि, दिवाकर, सहस्रांशु, भानुमान, विभावसु आदि सूर्य के नाम हैं। ३—शशाङ्क, इन्दु, शीतगु, सुधांशु, कलानिधि, ओषधीश, निशाकर आदि चन्द्रमा के नाम हैं। ४—वर्षा ऋतु में आकाश में बादल छा जाते हैं, बिजली चमकने लगती है, बादल गरजते हैं, मूसलाधार वर्षा होती है। ५—जाड़े की ऋतु में कभी-कभी ओले पड़ते हैं। ६—इन्द्रधनुष बड़ा ही सुन्दर लगता है। ७—उत्तरायण में दिन बड़ा हो जाता है और रात छोटी। ८—दक्षिणायन में रात बड़ी होती है और दिन छोटा। ९—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन ये बारह राशियाँ हैं। १०—रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह हैं। ११—सात दिन का एक सप्ताह होता है। १२—सूर्य की किरणें गर्म होती हैं और चन्द्रमा की किरणें शीतल होती हैं।

वृक्षवर्ग

अपामार्गः—चिरचिटा ।
अर्कः—आक ।
अश्वत्थः—पीपल ।
आमलकी—आँवला ।
एरण्डः—एरण्ड ।
खदिरः—खैर ।
जम्बूः—जामुन ।
तालः—ताड़ ।
धत्तूरः—धतूरा ।
नारिकेलः—नारियल ।
निम्बः—नीम ।
नीपः—कदम्ब ।
न्यग्रोधः—बड़ ।
पनसः—कटहल ।
पलाशः—ढाक ।
प्लक्षः—पाकड़ ।
फेनिलः—रीठा ।
बिल्वः—बेल ।
मधूकः—महुआ ।
रसालः—आम ।

विभीतकः—बहेड़ा । शिंशपा—शीशम ।
वेतसः—बेंत । हरीतकी—हर्रे ।
शाल्मलिः—सेमर ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—वृक्षों में भी प्राण हैं, अन्य प्राणियों की भाँति उन्हें भी सुख-दुःख का अनुभव होता है । २—वृक्षों की उपयोगिता बहुत है । ३—उपवन में वृक्षों की पंक्तियाँ देखते ही बनती हैं । ४—हर्रे, बहेड़ा और आँवला त्रिफला कहा जाता है । ५—सेमर के वृक्ष से रूई मिलती है । ६—महुआ से शराब बनती है । ७—महुआ का पेड़ बहुत ऊँचा होता है । ८—आम के पेड़ भी बहुत लाभदायक हैं । ९—इसका फल बहुत ही स्वादिष्ट होता है । १०—शीशम की लकड़ी से मेज और कुर्सियाँ बनाई जाती हैं । ११—यमुना के किनारे कदम्ब की शोभा देखने योग्य है । १२—एरण्ड वृक्षों में निकृष्ट है । १३—वन में ढाक फूला है । १४—पीपल के पेड़ की छाया घनी होती है । १५—आम, जामुन, पाकड़, बड़, सेव, खैर, ताड़, नारियल, नीम, बेल और कटहल के वृक्ष फूलों और फलों से युक्त हैं ।

शरीर वर्ग

अधरः—नीचे का होठ ।
अन्त्रम्—आँत ।
आमिषम्—मांस ।
आस्यम्—मुँह ।
ऊरुः—जंघा ।
ओष्ठः—ओठ ।
कण्ठः—गला ।
कपोलः—गाल ।
कफोणिः—कोहनी ।
करभः—कलाई से कनी अँगुली तक हाथ का बाहरी भाग ।
कुक्षिः—पेट ।
कूर्चम्—दाढ़ी ।
गात्रम्—शरीर ।
गुल्फः—टखना, पैर के जोड़ की हड्डी ।
ग्रीवा—गर्दन ।
घ्राणम्—नाक ।
चपेटः—चपत ।

जत्रु—कंधे की हड्डी ।
जानुः—घुटना ।
नाडिः—नाड़ी ।
पक्ष्मन्—पलक ।
पलितम्—सफेद बाल ।
प्लीहा—तिल्ली ।
पृष्ठम्—पीठ ।
पृष्ठास्थि—रीढ़ ।
फुफ्फुसम्—फेफड़ा ।
बाहुः—बाँह ।
भ्रूः—भौंह ।
मज्जा—हड्डी के अन्दर की चर्बी ।
मणिबन्धः—कलाई ।
मुष्टिः—मुट्ठी ।
यकृत्—जिगर ।
रजस्—रज ।
रदनः—दाँत ।
रसना—जीभ ।

रुधिरम्—खून ।
ललाटम्—माथा ।
लोचनम्—नेत्र ।
वक्षस्—छाती ।
वसा—चर्बी ।
शिखा—चोटी ।
शिरस्—सिर ।
शिरा—नस ।
शिरोरुहः—बाल ।
शुक्रम्—वीर्य ।
श्मश्रु—मूँछ ।
श्रोत्रम्—कान ।
श्रोणिः—कमर ।
स्कन्धः—कंधा ।
हृदयम्—हृदय ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—शरीर को स्वस्थ रखना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है, क्योंकि शरीर ही धर्म का साधन है। २—स्वच्छ वायु में घूमने से शरीर स्वस्थ रहता है। ३—कसरत करने से भी शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है। ४—हाथ, नाक, आंख, कान, गर्दन, कन्धा, छाती, पेट, जाँघ, पैर और मुँह को जल अथवा साबुन से धोना चाहिए। ५—नाक में अंगुली नहीं करनी चाहिए। ६—कान में तिनका भी नहीं करना चाहिए। ७—दांत को रोज साफ करना चाहिए। ८—आंख में काजल लगाना चाहिए। ९—शिर में तेल डालना चाहिए। १०—दाढ़ी को उस्तरे से साफ करना चाहिए। ११—नाखूनों को नेल-कटर से (नखनिकृन्तनेन) काटना चाहिए। १२—अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा अंगुलियों को पुष्ट रखना चाहिए। १३—आरोग्य के लिए प्राणायाम आवश्यक है। १४—प्राणायाम से फेफड़े सबल होते हैं। १५—आंत, नस, घुटना, टखना, पीठ, कमर, कलाई, हृदय, मुट्ठी, नाड़ियां, शरीर के प्रत्येक अङ्गों को प्राणायाम से लाभ होता है। १६—समुचित आहार-विहार से शरीर स्वस्थ रहता है। १७—पतली कमर वाली स्त्री देखने में अच्छी लगती है। १८—शिर को उत्तमाङ्ग कहते हैं। १९—महात्मा गांधी की भुजाएँ घुटनों तक लम्बी थीं। २०—उसकी बांह हाथी की सूड़ की तरह है। २१—कुछ बोलने के लिए उसके अधर कांप रहे हैं। २२—उसके गाल पर लालिमा छाई है। २३—जठराग्नि प्रज्वलित हो रही है। २४—बुड्ढों के बाल सफेद हो जाते हैं। २५—वर्षा की प्रथम बूँदें पहले पार्वती के भौंहों पर रुक जाती थीं। २६—दांतों को मत किटकिटाओ। २७—माथे पर तिलक लगाओ। २८—वह आंखों को बन्द किए हुए हैं। २९—उसकी छाती चौड़ी है। ३०—वीर्य को नष्ट नहीं करना चाहिए। ३१—पलक भाँजते ही वह भाग गया।

शाकादि वर्ग

अलाबुः—लौकी ।
आर्द्रकम्—अदरक ।
आलुः—आलू ।
एला—इलायची ।
करमर्दकः—करौंदा ।
कर्कटी—ककड़ी ।

कलायः—टमाटर ।
कारवेल्लः—करैला ।
कुन्दरुः - कुन्दरु ।
कूष्माण्डः—कद्दू ।
खादिरः—कत्था ।
गोजिह्वा—गोभी ।
गृञ्जनम्—गाजर ।
चूर्णः—चूना ।
जालिनी - तोरई ।
जीरकः—जीरा ।
टिण्डिशः—टिण्डा ।
ताम्बूलम्—पान ।
तिन्तिडीकम्—इमली ।
त्रिपुटा - छोटी इलायची ।
धान्यकम्—धनिया ।
दारुचचम्—दालचीनी ।
पनसम्—कटहल ।
पटोलः - परवर ।
पलाण्डुः—प्याज ।
पालकी - पालक ।
पिप्पली—पीपर ।
पूगम्—सुपारी ।
भण्टाकी—भाँटा ।
भिण्डकः—भिंडी ।
मधुरा—सौंफ ।
मरीचम्—मिर्च ।
मूलकम्—मूली ।
रक्ताङ्गः—टमाटर ।
रौमकम् - सांभर नमक ।
लवङ्गम्—लवङ्ग ।
लवणम्—नमक ।
लशुनम्—लहसुन ।
वृन्ताकः—बैंगन ।
वास्तुकम्—बथुआ ।
व्यञ्जनम्—मसाला ।
शर्दः—सलाद ।
शाकम्—साग ।
शुण्ठी—सोंठ ।
श्वेतकन्दः—शलगम ।
सिम्बा—सेम ।
सुसिम्बः—फरासबीन ।
सैन्धवम्—सेंधानमक ।
हरिद्रा—हल्दी ।
हिङ्गु—हींग ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—हरा साग स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। २—पालक का साग खून बढ़ाता है। ३—कुछ लोग बथुए का भी साग बहुत चाव से खाते हैं। ४—किसी को कोई साग अच्छा लगता है, किसी को कोई। ५—जाड़े की ऋतु में आलू, मटर और टमाटर मिलाकर स्वादिष्ठ तरकारी बनाई जाती है। ६—अमीर लोग गोभी, बैंगन, फरासबीन, करेला और कटहल का साग बदल-बदल कर खाते हैं। ७—गरीब लोग तरकारी के बिना ही खाना खा लेते हैं। ८—कुछ लोग दो-तीन साग को मिलाकर बनाते हैं या एक ही समय दो-तीन साग बनाते हैं। ९—गर्मियों में मूली अधिक लाभप्रद है। १०—रोगी को परवल की तरकारी अधिक लाभप्रद है। ११—लौकी से रायता बनाया जाता है और गाजर से हलुआ। १२—अब भिण्डी बहुत महँगी हो गई है। १३—वे दाल में हल्दी, धनिया, नमक के साथ ही प्याज, लहसुन, इमली और

मिर्च भी डालते हैं। १४—रायता में जीरा पड़ता है। १५—साग में भी मसाला डाला जाता है[1]। १६—अमीर लोग चाय में भी काली मिर्च, सोंठ या अदरक और दालचीनी डालते हैं। १७—पनवारी[2] पान में चूना और कत्था लगाता है[3]। १८—वह बाद मे छोटी इलायची और सुपारी डालकर[4] देता है। १९—पान खाने वाले पानदान[5] में पान रखते हैं। २०—पान द्वारा अतिथि-सत्कार किया जाता है। २१—आजकल पान मुख का भूषण माना जाता है।

शिल्पि वर्ग

अयस्—लोहा।
अयोघनः—हथौड़ी।
अश्मचूर्णम्—सीमेण्ट।
आविधः—बर्मा।
इष्टक—ईंट।
उपक्षुरम्—सेफ्टीरेजर।
(व्यंग्य) चित्रम्—कार्टून।
करपत्रम्-आरी।
कर्तरी—कैंची।
कारुः—शिल्पी।
कुलिकः—शिल्पिसंघ का अध्यक्ष।
क्षुरम्—छूरा।
क्षुरकम्—ब्लेड।
चित्रकारः—पेण्टर, चित्रकार।
तक्षणी—वसूला।
तन्तुवायः—जुलाहा।
तैलकारः—तेली।
त्वष्टा—बढ़ई।
नापितः—नाई।
निर्णेजक-ड्राईक्लीनर।
नीली—नील।
पादूरञ्जकः—पालिश।
भस्त्रा—धौंकनी।
भ्राष्ट्रम्—भाड़।
यन्त्रम्—मशीन।
यान्त्रिकः—मिस्त्री, मैकनिक।
रजकः—धोबी।
रञ्जकः—रंगरेज।
रसयन्त्रम्—कोल्हू।
लोहकारः—लुहार।
वर्तिका—ब्रश।
वेतनम्—वेतन।
व्रश्चनः—छेनी।
शाणमार्जः—धार धरनेवाला।
शिल्पशालः—फैक्टरी।
शौल्विकः—तांबे के बर्तन, बनाने वाला।
सूचिका—सूई।
सूत्रम्—धागा।
सौचिकः—दर्जी।
स्थापितः—बढ़ई।
स्यूतिः—सिलाई।
स्वर्णकारः—सुनार।

---

१. शाकमपि उपस्क्रियते।
२. ताम्बूलिकः।
३. लिम्पति।
४. निक्षिप्य।
५. ताम्बूलकरङ्के।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—शिल्पि-संघ शिल्पियों का संगठन करता है। २—शिल्पियों को उचित कार्यों में लगाता है। ३—धोबी मैले वस्त्रों को धोता है। ४—ड्राईक्लीनर ऊनी और रेशमी वस्त्रों को मशीन से धोता है और उस पर लोहा करता है। ५—जुलाहा सूत से वस्त्रों को बुनता है। ६—दर्जी कैंची से कपड़ों को काटकर सिलाई की मशीन से सीता है। ७—चित्रकार ब्रुश से चित्र रंगता है और कार्टून बनाता है। ८—बढ़ई खटिया और मूसल बनाता है। ९—वह आरी से लकड़ी चीरता है, उसे बसूले से छीलता है और हथौड़ी से कीलों को ठोकता है। १०—मिस्त्री सीमेण्ट से ईंटों को जोड़कर मकान बनाता है। ११—नाई बाल काटने की मशीन से बाल बनाता है। १२—वह उस्तरे से दाढ़ी और मूँछ बनाता है। १३—आजकल अधिक लोग सेफ्टी-रेज़र से स्वयं ही दाढ़ी बना लेते हैं। १४—धोबी कपड़ों को साफकर नील लगाता है, कलफ करता है और फिर लोहा करता है। १५—मिस्त्री फैक्टरी में मशीनों को ठीक करता है। १६—मिल में मजदूर काम करते हैं। १७—तेली कोल्हू के द्वारा तिलों से तेल निकालता है। १८—धार रखने वाला उस्तरे पर धार रखता है। १९—लुहार छेनी से लोहा काटता है। २०—बढ़ई बर्मा से लकड़ी में छेद करता है। २१—लड़की सूई-धागे से वस्त्र सीती है। २२—भड़भूजा भाड़ में चना भूजता है। २३—जूता बनाने वाला जूते पर पालिश करता है। २४—कुम्हार घड़ा बनाता है। २५—सुनार आभूषण बनाता है। २६—रंगरेज कपड़ा रंगता है। २७—हाथ की सिलाई अच्छी होती है।

शूद्रवर्ग

अजाजीवः—गडरिया।
अनुपदीना—गमबूट।
अन्त्यजः—हरिजन।
उपानत्—जूता।
कर्मकरः—नौकर।
कुलालः—कुम्हार।
ग्रन्थिभेदः—गिरहकट।
चर्मकारः—चमार।
चर्मप्रभेदिका—जूता सीने की सूई।
तस्करः—चोर।
पाटच्चरः—डाकू।
पादुका—चप्पल।
प्रेष्यः—चपरासी।
मायाकारः—जादूगर।
मार्जनी—झाड़ू।
मालाकारः—माली।
मृगयुः—शिकारी।
मृगया—शिकार।
लेपकः—पुताई वाला।
वागुरा—जाल।
वैतनिकः—वेतन पर नियुक्त नौकर।
शाकुनिकः—बहेलिया।
शौण्डिकः—सुरा-विक्रेता।
संमार्जकः—भंगी।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—शूद्र समाज के सेवक हैं, समाज उनसे बराबरी का व्यवहार करे। २—चमार जूतों की मरम्मत करता है, सीने की सूई से जूता सीता है। ३—गडरिया भेंड़ पालता है। ४—पुताई वाला मकानों को पोतता है। ५—कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता है। ६—चपरासी यथास्थान संवाद पहुँचाता है। ७—भंगी सड़कों को साफ करता है। ८—माली माला बनाता है। ९—जादूगर जादूगरी दिखाता है। १०—गिरहकट जेब काटता है। ११—शिकारी हिरनों को मारता है। १२—बहेलिया जाल डालकर पक्षियों को मारता है। १३—सुराविक्रेता शराब पीता है। १४—चोर चोरी करता है। १५—डाकू राहगीरों के धन को लूटता है। १६—कुली भार ढोता है। १७—बुरा काम करने से ही मनुष्य निन्दनीय हो जाता है।

शैल वर्ग

अद्रिः—पर्वत।
अद्रिद्रोणी—घाटी।
अधित्यका—पठार।
उत्सः—सोता।
उपत्यका—तराई।
खनिः—खान।
गह्वरम्—गुफा।
ग्रावा—पत्थर।
दरी—दर्रा।
निकुञ्जः—झाड़ी।
निर्झरः—पहाड़ी नाला।
प्रपातः—झरना।
शिला—चट्टान।
शृङ्गम्—चोटी।
हिमसरित्—(ग्लेशियल) बर्फीला।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—हिमालय पर्वतों का राजा है। २—पहाड़ की चोटी से झरना बहता है। ३—घाटी में नाले बहते हैं। ४—पहाड़ों की सघन गुफाओं में ऋषि तपस्या करते हैं। ५—पठार की भूमि सम होती है, अतएव वहां वृक्ष आदि भी होते हैं। ६—दर्रे के मार्ग से यातायात होता है। ७—झाड़ी में उलझकर बारहसिंघे झुंझलाते हैं। ८—नन्दिनी हिमालय पर्वत की गुफा में घुस गई। ९—पहाड़ पर रहने वाले लोग झरनों का पानी पीते हैं। १०—सोता का जल प्रायः स्वास्थ्यकर होता है।

संबन्धि वर्ग

अग्रजः—बड़ा भाई।
अनुजः—छोटा भाई।
अरिः—दुश्मन
आत्मजः—पुत्र।
आत्मजा—पुत्री।
आलिः—सखी।
आवुत्तः—बहनोई।
उपपतिः—जार।
गणिका—वेश्या।
जनकः—पिता।
जननी—माता।
जामाता—दामाद।
दूती—दूती।

देवरः—देवर ।
ननान्दृ—ननद ।
नप्तृ—नाती ।
पतिः—पति ।
पितामहः—दादा ।
पितामही—दादी ।
पितृव्यः—चाचा ।
पितृव्यपत्नी—चाची ।
पितृव्यपुत्रः—चचेरा भाई ।
पितृष्वसृ—फूआ ।
पितृष्वसृपतिः—फूफा ।
पैतृष्वस्रीयः—फुफेरा भाई ।
पौत्रः—पोता ।
पौत्री—पोती ।
प्रपितामही—परदादी ।
प्रमातामहः—परनाना ।
प्रमातामही—परनानी ।
बन्धुः—रिश्तेदार ।
भागिनेयः—भानजा ।
भृत्यः—नौकर ।
भ्रात्रीयः—भतीजा ।
भ्रातृसुता—भतीजी ।
मातामहः—नाना ।
मातामही—नानी ।
मातुलः—मामा ।
मातुली—मामी ।
मातृष्वसृ—मौसी ।
मातृष्वसृपतिः—मौसा ।
मातृष्वस्रीयः—मौसेरा भाई ।
यातृ—देवरानी ।
योषित्—स्त्री ।
वयस्यः—मित्र ।
विश्वस्ता—रण्डा ।
वृद्धप्रपितामहः—वृद्धपरनाना ।
श्यालः—साला ।
श्वश्रूः—सास ।
श्वशुरः—ससुर ।
सम्बन्धिन्—समधी ।
सम्बन्धिनी—समधिन ।
साध्वी—पतिव्रता ।
सौभाग्यवती—सोहागिन ।
स्वसृ—बहिन ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—मेरे घर में मेरे माता-पिता, दादा-दादी, चाचा और चाची हैं । २—भानजे और भतीजों से प्रेम का व्यवहार करो । ३—अबला स्त्रियों का चित्त फूल के तुल्य सुकुमार होता है । ४—बड़े भाई की स्त्री माता के तुल्य होती है । ५—पिता की बहिन को फूआ कहते हैं । ६—फूआ के लड़के फुफेरे-भाई होते हैं । ७—दामाद को ससुराल में अधिक दिन तक नहीं रहना चाहिए । ८—नौकर की सेवा से मालिक प्रसन्न होता है । ९—दूती सखी के संदेश को पति तक पहुँचाती है । १०—मेरी भतीजी और भानजी का विवाह इसी वर्ष होगा । ११—समधी ने समधी और समधिन से समधिन प्रेमपूर्वक मिले । १२—वेश्याओं की संगति करने से स्त्रियों का विनाश हो जाता है । १३—घर में पतोहू की इज्जत होनी चाहिए । १४—दुष्ट स्त्री का विश्वास नहीं करना चाहिए । १५—नाती-नातिनों को खूब प्यार करना चाहिए । १६—मेरा मौसेरा भाई विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहा है । १७—मेरी मौसी

प्रयाग में रहती है। १८—मेरे मौसा बड़े ही सरल हैं। १९—स्त्री का भाई साला होता है। २०—मेरे दो बड़े भाई हैं और चार छोटे। २१—ननद को अपनी भौजाई के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। २२—धनी लोगों के घर में कई नौकरानियाँ होती हैं। २३—भाई-बन्धु मिठाई ही चाहते हैं। २४—सगा भाई मिलना बड़े सौभाग्य की बात है। २५—आपत्तिकाल मित्र की मित्रता की कसौटी है। २६—कैकेयी भरत की माँ थी। २७—मेरे विवाह में मेरे मामा और मामी आ रहे हैं।

सैन्यवर्ग

अग्निचूर्णम्—बारूद।
आग्नेयास्त्रम्—बम।
आग्नेयास्त्रक्षेपः—बम फेंकना।
एकपरिधानम्—एकवेष, यूनिफार्म।
गुलिका—गोली।
जलपरमाण्वस्त्रम्—हाइड्रोजन बम।
जलान्तरितपोतः—पनडुब्बी।
धूमास्त्रम्—टीयर गैस।
नौसेनाध्यक्षः—जलसेनापति।
पदातिः—पैदल सेना।
परमाण्वस्त्रम्—एटम बम।
परिखया परिवेष्ट्य—मोर्चा बाँधना।
पोतः—पोत।
भुशुण्डिः—बन्दूक।
भूसेनाध्यक्षः—भू-सेनापति।
युद्धपोतः-लड़ाई का जहाज।
युद्धविमानम्—लड़ाई का विमान।
रक्षिन्-सिपाही।
लघुभुशुण्डिः—पिस्तौल।
वायुसेनाध्यक्षः—वायुसेनापति।
विमानम्—विमान।
शतघ्नी – तोप।
शिरस्त्रम्—लोहे का टोप।
सैनिकः—फौजी आदमी।
सैन्यवेषः—वर्दी।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—सिपाही वर्दी पहन कर व्यायाम करते हैं। २—अंग्रेजों का जहाजी बेड़ा प्रसिद्ध है। ३—हमारे सैनिक मोर्चे पर डटे हैं। ४—अब युद्ध का निर्णय अणुशक्ति पर निर्भर है। ५—एक ही बम से लाखों प्राणियों का संहार हो जाता है। ६—आधुनिक लड़ाइयों में अटमबम, हाइड्रोजन बम और हवाई जहाजों का अत्यधिक महत्त्व है। ७—पनडुब्बियाँ पानी के नीचे जाकर शत्रु का संहार कर डालती हैं। ८—विद्रोहियों को दबाने के लिए फौजी लोगों ने पहले टीयर गैस छोड़ा, बाद में बन्दूक, पिस्तौल और तोपों का प्रयोग करके उनको भस्मसात् कर दिया। ९—सिपाही सिर पर लोहे का टोप धारण करते हैं। १०—भू-सेनापति ने फौज को आगे बढ़ने का आदेश दिया। ११—बारूद से मकानों को उड़ाया जा सकता है। १२—युद्ध में मोर्चाबन्दी होती है।

धातुवर्ग

अभ्रकम्—अभ्रक ।	पीतलम्—पीतल ।
आयसम्—लोहा ।	पुष्परागः—पुखराज ।
इन्द्रनीलः—नीलम ।	प्रवालम्—मूँगा ।
कार्तस्वरम्—सुवर्ण, सोना ।	मरकतम्—पन्ना ।
कांस्यम्—कांसा ।	माणिक्यम्—चुन्नी ।
कांस्यकूटः—कसकूट ।	मौक्तिकम्—मोती ।
गन्धकः—गन्धक ।	यशदम्—जस्ता ।
चन्द्रलौहम्—जर्मनसिलवर ।	रजतम्—चाँदी ।
ताम्रकम्—ताँबा ।	वैदूर्यम्—लहसुनिया ।
तुत्थाञ्जनम्—तूतिया ।	सीसम्—सीसा ।
निष्कलङ्कायसम्—स्टेनलेस स्टील ।	स्फटिका—फिटकरी ।
पारदः—पारा ।	हीरकः—हीरा ।
पीतकम्—हरताल ।	

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—धातुओं से ही सभी वस्तुएँ बनती हैं, अतएव धातुओं का बड़ा महत्त्व है। २—सोना और चाँदी से आभूषण बनता है। ३—मोती, नीलम, लहसुनिया, पुखराज, मूँगा, हीरा, पन्ना और चुन्नी बहुमूल्य धातुएँ हैं। ४—जर्मन सिल्वर, लोहा, स्टेनलेस स्टील, ताँबा, पीतल, काँसा, कसकूट, जस्ता और शीशे के वर्तन आदि बनते हैं।

अष्टादश सोपान

पत्रादि-लेखन-प्रकार

(१) अवकाशार्थं प्रार्थनापत्रम्

श्रीमन्तः प्रधानाचार्यमहोदयाः,

दयानन्द-ऍंग्लो-वैदिक-महाविद्यालयः, लक्ष्मणपुरम् ।

मान्यवर !

अहं गतदिवसात् शीतज्वरेण पीडितोऽस्मि, बलवती शिरःपीडा च मां व्यथयति । ज्वरकृततापेन कार्श्यमुपगतोऽस्मि । अतोऽद्य विद्यालयमागन्तुमसमर्थोऽस्मि । कृपया दिवसद्वयस्यावकाशं स्वीकृत्य मामनुग्रहीष्यन्ति श्रीमन्तः ।

प्रार्थयते—

सुरेशदत्तः नवमकक्षास्थः ।

(२) पुस्तकप्रेषणाय आदेशः

श्रीप्रबन्धकमहोदयाः,

चौखम्बाप्रकाशनम् , वाराणसी ।

भवत्प्रकाशितं 'प्रौढ-अनुवादचन्द्रिका' नामकं पुस्तकं मे दृष्टिपथमुपागतम् । ग्रन्थस्यास्योपयोगितां समीक्ष्य नितरां प्रसन्नोऽस्मि । कृपया पुस्तकपञ्चकम् अधोलिखितस्थाने वी० पी० पी० द्वारा शीघ्रं प्रेषणीयम् ।

भावत्कः—

डा० सत्यव्रतसिंहः, एम० ए०, पीएच० डी०, डी०, लिट्

संस्कृतविभागाध्यक्षः, लखनऊ विश्वविद्यालयः ।

(३) दर्शनार्थं समययाचना

श्रीमन्तो राष्ट्रपतिमहोदयाः डा० राधाकृष्णनमहाभागाः

देहली ।

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः,

अहं कालिदास-जयन्ती-समारोहविषयमाश्रित्य भवद्भिः सह किञ्चिदालपितुमिच्छामि । आशासे भवन्तो पञ्चकलामात्रसमयप्रदानेन मामनुग्रहीष्यन्ति । भवन्निर्दिष्टकाले भवद्दर्शनमभिधाय भवत्परामर्शलाभेन कृतार्थमात्मानं मंस्ये ।

दिनाङ्कः–६-१ ६५ ई०

भवद्दर्शनाभिलाषी

शिवनाथः

(४) निमन्त्रणपत्रम्

श्रीमन्महोदय !

एतदवगत्य नूनं भवन्तो हर्षमनुभविष्यन्ति यत् परेशस्य महत्यानुकम्पया मम ज्येष्ठ-पुत्रस्य एम॰ ए॰ इत्युपाधिविभूषितस्य श्रीरमेशचन्द्रस्य परिणयनसंस्कारः काशीवास्तव्यस्य श्रीमतः रामप्रसादगुप्तस्य ज्येष्ठपुत्र्या बी॰ ए॰ इत्युपाधिविभूषितया विमलादेव्या सह दिनाङ्के २-१-६४ ईसवीये रात्रौ दशवादनसमये भविष्यति। अतः सर्वेऽपि भवन्तः सादरं सविनयं च प्रार्थ्यन्ते यत्सपरिवारमस्मिन् मङ्गलकार्ये निर्दिष्टसमये समागत्य वरवधूयुगलं स्वाशीर्वादप्रदानेनानुग्रहीष्यन्त्यस्मान्।

२०४, रिकाबगञ्जः, भवतां दर्शनाभिलाषी—

साकेतः रामनाथगुप्तः

दिनाङ्कः—१-१२-६३

(स्वीकृति-सूचनयाऽनुग्राह्यः)

(५) पित्रे पत्रम्

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयतः

तिथिः—श्रावण-शुक्ला ७, २०२२ वि०

श्रीमत्पितृचरणेषु प्रणतयः सन्तुतराम्।

अत्र शं तत्रास्तु। भावत्कं कृपापत्रम् मया प्राप्तम्। अद्यत्वेऽध्ययनकर्मण्येव नितरां व्यापृतोऽस्मि, यतः अस्माकं परीक्षा नातिदूरं विद्यते। गतार्धवार्षिकपरीक्षायां मया प्रायः समस्तेषु भाषाविज्ञानेतरविषयेषु उच्चाङ्काः प्राप्ताः। इदानीं भाषाविज्ञानविषये नितरां परिश्रमं करोमि। आशासे कृतभूरिपरिश्रमः वार्षिकपरीक्षायां प्रथमश्रेण्यामुत्तीर्णो भवि-ष्यामि। मान्याया मातुश्चरणयोः प्रणतिर्मे वाच्या।

भवतामाज्ञाकारी सूनुः,

रामचन्द्रः।

(६) भ्रात्रे पत्रम्

लखनऊ-विश्वविद्यालय-महमूदाबादच्छात्रावासतः

दिनाङ्कः १-२-६२

प्रिय राजेन्द्रकुमार !

सस्नेहं नमस्ते।

अत्र कुशलं तत्रास्तु। एतद् विज्ञाय भवान्नूनं हर्षमनुभविष्यति यदहं संवत्सरेऽस्मिन् आचार्यपरीक्षामुत्तीर्णः। तत्र च प्रथमा श्रेणिः संप्राप्ता। साम्प्रतमहं दर्शनविषये एम॰ ए॰ परीक्षां दित्सामि। आशासे परमात्मनः प्रसादात् तत्रापि साफल्यमाप्स्यामि। श्रीचन्द्रोऽपि भवन्तमनुस्मरति। परिचितेभ्यो नमः।

भावत्कः प्रियबन्धुः-सतीशचन्द्रः।

(७) सुहृदे पत्रम्

वारणसीतः

दिनाङ्कः २१-४-६५ ईसवीयः

प्रियमित्र रामलाल !

सप्रेम नमस्ते ।

अहं परेशस्य महत्याऽनुकम्पया सकुशलोऽस्मि, तत्रापि कुशलं वाञ्छामि । भावत्कं प्रेमपत्रं प्राप्य मानसं मेऽतीव मोदमावहति । अधुना उष्णकालावकाशेषु भवान् क्व जिगमिषति । अपि रोचते भवते नैनीतालगमनम् ? तत्रोषित्वा स्वास्थ्यं शोभनं भविष्यति । नैनीतालनगरम् हिमाच्छादितम् , उत्तरप्रदेशालङ्कारभूतम् , नैसर्गिकसुषमायाः सर्वस्वम् , कृत्रिमाकृत्रिमोभयोपकरणं संकुलम् , सततशीतलसदागतिमनोहरं रमणीयं च । तत्रौषधयः, उत्तमकाष्ठादीनि च वस्तून्युपलभ्यन्ते । किं बहुना । ततोऽस्माकं महाँल्लाभो भविष्यति । कुशलमन्यत् । ज्येष्ठेभ्यो नमः, कनिष्ठेभ्यश्च स्वस्ति । भ्रमणविषये त्वरितमुत्तरं देयम् ।

अभिन्नहृदयः

शिवप्रसादः ।

(८) परिषदः सूचना

श्रीमन्तो मान्याः,

सविनयमेतद् निवेद्यते यद् आस्माकीनाया महाविद्यालयीय अमरभारतीपरिषदः वार्षिकोत्सवः आगामिन्यां नवम्बरमासस्य पञ्चदशतारिकायां संपत्स्यते । उत्सवे सर्वेषामपि विद्यार्थिनामुपाध्यायानां चोपस्थितिः सविनयं प्रार्थ्यते ।

दिनाङ्कः—१४-११-६४

निवेदिका—

(कु०) उषा गुप्ता (मन्त्रिणी)

(९) जयन्तीसमारोहः

एतत् संसूचयन्त्या मया भूयान् हर्षोऽनुभूयते यदागामिन्याम् अक्तूबरमासस्य पञ्चदशतारिकायां विश्वविद्यालयस्य मालवीयमहाकक्षे सायंकाले पञ्चवादने कालिदास-जयन्तीसमारोहः संयोजयिष्यते । उत्सवे सर्वेषामपि संस्कृतज्ञानां संस्कृतप्रेमिणां च समुपस्थितिः प्रार्थ्यते । आशासे यत् सर्वे यथासमयं समागत्य महाकवये श्रीमते कालिदासाय श्रद्धाञ्जलिं समर्प्य, तद्विरचितानि हृद्यानि पद्यानि च श्रावं श्रावं सुखमनुभविष्यन्ति ।

दिनाङ्कः—१४-१०-६४

(कु०) चन्द्रावती

सभासंयोजिका

(१०) पुरस्कार-वितरणम्

श्रीयुताय.........(घनश्यामशर्मणे), (बी० ए०) कक्षायाः (प्रथम)......... वर्षस्याय......(व्याख्यानप्रतियोगितायां सर्वप्रथमस्थानप्राप्त्यर्थं) निमित्तं (प्रथमं) पारितोषिकमिदं सहर्षं प्रदीयते ।

....

मन्त्री समासंचालकः (समाध्यक्षः)

(११) व्याख्यानम्

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः परिषत्पतयः ! आदरणीयाः समासदश्च !

अद्याहं भवतां समक्षे............विषयमङ्गीकृत्य किंचिद् वक्तुकामोऽस्मि। संस्कृत-भाषाभाषणस्यानभ्यासवशाद् भावाभिव्यक्त्या भाषितुम् न संभाव्यते, पदे पदे स्खलनमपि च संभाव्यते ।

'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥'

अतः प्रमादप्रभूतास्त्रुटयो मे भवद्भिः क्षन्तव्याः ।

(तदनन्तरं व्याख्यानस्य प्रारम्भः) ।

ऊनविंश सोपान

अशुद्धि-प्रदर्शन

कुछ सामान्य अशुद्धियाँ

अशुद्धवाक्य	शुद्धवाक्य
१ मया चन्द्रः पश्यते ।	१ मया चन्द्रः दृश्यते ।
२ नदीभ्यो गङ्गा श्रेष्ठा ।	२ नदीषु गङ्गा श्रेष्ठा ।
३ व्याघ्राः हरिणान् निहन्ति ।	३ व्याघ्राः हरिणान् निघ्नन्ति ।
४ मातृपितृहीनः बालोऽयम् ।	४ मातापितृहीनः बालोऽयम् ।
५ त्रिः कन्याः आगच्छन्ति ।	५ तिस्रः कन्याः आगच्छन्ति ।
६ रामः रावणमहनत् ।	६ रामः रावणमहन् ।
७ एषो भगवान् शंकरः ।	७ एष भगवान् शंकरः ।
८ मम न रोचते तक्रम् ।	८ मह्यं न रोचते तक्रम् ।
९ पश्चिमस्यां दिशि ।	९ पश्चिमायां दिशि ।
१० अद्य प्रातः वृष्टिर्बभूव ।	१० अद्य प्रातः वृष्टिरभवत् ।
११ कदापि मृषां मा वदेत् ।	११ कदापि मृषा मा वदेत् ।
१२ आनय मे सखिम् ।	१२ आनय मे सखायाम् ।
१३ बालिका रोदति ।	१३ बालिका रोदिति ।
१४ दधिना जनास्तृप्यन्ति ।	१४ दध्ना जनास्तृप्यन्ति ।
१५ पुस्तकमेतत् गृहीतव्यम् ।	१५ पुस्तकमेतत् ग्रहीतव्यम् ।
१६ मृतभर्ता इयं नारी ।	१६ मृतभर्तृका इयं नारी ।
१७ जीवनाय धिक् ।	१७ जीवनं धिक् ।
१८ भृत्याय क्रुध्यति ।	१८ भृत्यं क्रुध्यति ।
१९ वर्द्धन्तं रोगं नोपेक्षेत ।	१९ वर्द्धमानं रोगं नोपेक्षेत ।
२० मरणस्य भयम् नास्ति ।	२० मरणाद् भयम् नास्ति ।
२१ गृहे अधितिष्ठन्ति ।	२१ गृहमधितिष्ठन्ति ।
२२ वचने विश्वसिति ।	२२ वचनं विश्वसिति ।
२३ बहुपन्था अयं ग्रामः ।	२३ बहुपथोऽयं ग्रामः ।
२४ नरपत्युरादेशं पालय ।	२४ नरपतेरादेशं पालय ।
२५ पर्वते अवस्थित्वा ।	२५ पर्वते अवस्थाय ।
२६ विधिर्बलवती ।	२६ विधिर्बलवान् ।
२७ साध्विमौ बालकौ ।	२७ साधू इमौ बालकौ ।

अशुद्धवाक्य	शुद्धवाक्य
२८ सुन्दरी रमणीगतः विचरन्ति ।	२८ सुन्दरो रमणीगणः विचरति ।
२९ महातेजोऽसौ ।	२९ महातेजा असौ ।
३० ब्रह्मपुत्रः वेगवती ।	३० ब्रह्मपुत्रः वेगवान् ।
३१ आसमुद्रस्य राजा ।	३१ असमुद्रं राजा ।
३२ सम्राटस्य आज्ञा ।	३२ सम्राज आज्ञा ।
३३ अनुजानाहि गमनाय ।	३३ अनुजानीहि गमनाय ।
३४ अरण्येऽधिवस्तुमिच्छन्ति ।	३४ अरण्यम् अधिवस्तुमिच्छन्ति ।
३५ एकविंशतयः बालकाः ।	३५ एकविंशतिः बालकाः ।
३६ अष्टानि पुस्तकानि आनय ।	३६ अष्टौ (अष्ट) पुस्तकानि आनय ।
३७ दक्षिणां प्रतिगृहीत्वा ।	३७ दक्षिणां प्रतिगृह्य ।

कुछ विशेष अशुद्धियाँ

विभक्तियों की अशुद्धियाँ

१ अधिवसति वैकुण्ठे हरिः ।	१ अधिवसति वैकुण्ठं हरिः ।
२ आत्मनः पदं विमानात् विगाहमानः ।	२ आत्मनः पदं विमानेन विगाहमानः ।
३ पादस्य खञ्जः ।	३ पादेन खञ्जः ।
४ प्राणघातेन निवृत्तिः ।	४ प्राणघातात् निवृत्तिः ।
५ लोकापवादस्य भयम् ।	५ लोकापवादाद् भयम् ।
६ आरात् वनस्य ।	६ आरात् वनात् ।
७ प्राणाय कृते ।	७ प्राणानां कृते ।

---

१ उपान्वध्याङ् वसः ।१।४।४८। से द्वितीया होकर "वैकुण्ठम्" शुद्ध रूप होगा ।

२ गत्यर्थक धातुओं के योग में वाहन या साधन करण होता है, अतएव "विमानेन" शुद्ध रूप होगा ।

३ येनाङ्गविकारः ।२।३।२०। से तृतीया होकर "पादेन" शुद्ध रूप होगा ।

४ जुगुप्सा विराम प्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वा०) से पञ्चमी होकर "प्राणघातात्" शुद्धरूप होगा ।

५ भीत्रार्थानां भयहेतुः ।१।४।२५। से पञ्चमी होकर "लोकापवादात्" रूप शुद्ध होगा ।

६ अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहि युक्ते ।२।३।२९। से पञ्चमी होकर "वनात्" शुद्ध रूप होगा ।

७ 'कृते' के योग में षष्ठी होती है अतएव "प्राणानां" शुद्धरूप होगा ।

८ बालकः नृपेण पुस्तकं याचते ।	८ बालकः नृपं पुस्तकं याचते ।
९ कृष्णः धेनोः दुग्धं दोग्धि ।	९ कृष्णः धेनुं दुग्धं दोग्धि ।
१० कृष्णस्य विना कः रक्षेत् ।	१० कृष्णं विना कः रक्षेत् ।
११ मासत्रयात् प्रवृत्तस्य विवादस्याद्य अन्तो जातः ।	११ मासत्रयं प्रवृत्तस्य विवादस्याद्य अन्तो जातः ।
१२ न जाने किं तेन करिष्यति नृशंसो दुरात्मा ।	१२ न जाने किं तं करिष्यति नृशंसो दुरात्मा ।
१३ नाटिका हि प्रायेण चतुर्ष्वङ्केषु पूर्यते ।	१३ नाटिका हि प्रायेण चतुर्भिरङ्कैः पूर्यते ।
१४ दयासागरोऽपि त्वं कथं न दयसे मयि ।	१४ दयासागरोऽपि त्वं कथं न दयसे मम मां वा ।
१५ त्वं दरिद्र वस्त्रं प्रतिशृणोषि ।	१५ त्वं दरिद्राय वस्त्रं प्रतिशृणोषि ।
१६ पुत्रस्य हितमिच्छति ।	१६ पुत्राय हितमिच्छति ।
१७ रामस्य स्वागतम्, कुशलं, भद्रं, सुखम् वा ।	१७ रामाय स्वागतम्, कुशलं, भद्रं सुखम् वा ।

---

८ याच् धातु द्विकर्मक है, द्विकर्मक धातुओं के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। अतएव "नृपम्" रूप ही शुद्ध होगा ।

९ दुह् धातु द्विकर्मक है अतएव "धेनुम्" रूप होगा ।

१० 'विना' इस अव्यय के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। अतएव "कृष्णम्" रूप होगा ।

११ अत्यन्तसंयोगे च । २।१।२९। इस सूत्र से मासत्रयम् द्वितीया ही शुद्ध है ।

१२ तेन इसमें तृतीया शुद्ध नहीं है, किं तं करिष्यति यही शिष्ट प्रयोग है। महाभारत में भी "क्रुद्धः किं मां करिष्यति" प्रयुक्त है।

१३ अपवर्गे तृतीया । २।३।६। से तृतीया हुई, "चतुर्भिरङ्कैः" यही शुद्ध है ।

१४ अधीगर्थदयेशां कर्मणि । २।३।५२। से कर्म की शेषत्व विवक्षा में षष्ठी होती है, अतएव षष्ठी का रूप 'मम' होगा। पुनश्च दयति सकर्मक है, अतएव द्वितीया माम् भी शुद्ध है ।

१५ आ पूर्वक श्रु धातु के योग में जिसके लिए देने की प्रतिज्ञा की जाती है, वह चतुर्थी विभक्ति में रक्खा जाता है। अतएव यहाँ "दरिद्राय" रूप ही शुद्ध होगा ।

१६ हित के योग में जिसके लिए हित हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है, अतएव यहाँ "पुत्राय" शुद्धरूप होगा ।

१७ "स्वागतम्", "कुशलम्", "भद्रम्", "सुखम्" इत्यादि शब्दों के योग में जिसके लिए इनका प्रयोग हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है, अतएव यहाँ "रामाय" रूप शुद्ध होगा ।

१८ किमिति वृथा प्रकुप्यसि गुरौ ।	१८ किमिति वृथा प्रकुप्यसि गुरवे ।
१९ ननु प्रभवन्त्यार्यः शिष्यजनम् ।	१९ ननु प्रभवत्यार्यः शिष्यजनस्य ।
२० रामेषु दयमानोऽसावध्येति त्वां लक्ष्मणः ।	२० रामस्य दयमानोऽसावध्येति तव लक्ष्मणः ।
२१ कायः कं न वल्लभः ।	२१ कायः कस्य न वल्लभः ।
२२ अध्ययनेन पराजयते ।	२२ अध्ययनात् पराजयते ।
२३ नद्यामाप्लवमानस्य कूपेभ्यः किं प्रयोजनम् ।	२३ नद्यामाप्लवमानस्य कूपैः किं प्रयोजनम् ।
२४ अस्मभ्यं तु शंकरप्रभृतयः अधिक-प्रज्ञानाः प्रतीयन्ते ।	२४ अस्माकं तु शंकरप्रभृतयः अधिक-प्रज्ञानाः प्रतीयन्ते ।
२५ प्रद्युम्नः कृष्णस्य प्रति ।	२५ प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति ।
२६ सूर्यस्य उदिते कृष्णः प्रस्थितः ।	२६ सूर्ये उदिते कृष्णः प्रस्थितः ।
२७ हरीतकीं भुङ्क्ष्व पान्थ मातेव हितकारिणीम् ।	२७ हरीतकीं भुङ्क्ष्व पान्थ मातरमिव हितकारिणीम् ।

---

१८ क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः । १।४।३७। द्वारा प्रकुप्यसि के साथ चतुर्थी होगी । अतएव "गुरवे" रूप ही शुद्ध होगा ।

१९ प्र + भू धातु तथा इसके समान अर्थ रखनेवाली धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है । अतएव "शिष्यजनस्य" रूप होगा ।

२० दय् और अधि + इ धातुओं और इनका सा अर्थ रखने वाली धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है ।

२१ "प्रिय—" अर्थ वाची शब्द के साथ षष्ठी विभक्ति आती है । अतएव यहाँ "कस्य" होगा ।

२२ पराजेरसोढः ।१।४।२६। सूत्र के द्वारा यहाँ पञ्चमी विभक्ति होकर "अध्ययनात्" शुद्ध रूप होगा ।

२३ 'गम्यमानापि क्रिया कारक विभक्तेः प्रयोजिका' वामन के इस वचन से "कूपैः" कारण में तृतीयान्त होगा ।

२४ "अस्माकम्" में शैषिकी षष्ठी है ।

२५ 'प्रतिनिधि' अर्थ के वाचक 'प्रति' शब्द के योग में जिसका 'प्रतिनिधित्व' दिखाया जाता है उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है । इसीलिए "कृष्णात्" ठीक है ।

२६ जिस क्रिया के काल से दूसरी क्रिया का काल निरूपित होता है उस क्रिया तथा उसके कर्ता में सप्तमी विभक्ति होती है परन्तु दोनों क्रियाओं का भिन्न-भिन्न कर्ता होना चाहिए ।

२७ "मातेव" प्रथमा अनुपयुक्त है, मातरमिव शुद्ध है ।

८ बालकः नृपेण पुस्तकं याचते ।	८ बालकः नृपं पुस्तकं याचते ।
९ कृष्णः धेनोः दुग्धं दोग्धि ।	९ कृष्णः धेनुं दुग्धं दोग्धि ।
१० कृष्णस्य विना कः रक्षेत् ।	१० कृष्णं विना कः रक्षेत् ।
११ मासत्रयात् प्रवृत्तस्य विवादस्याद्य अन्तो जातः ।	११ मासत्रयं प्रवृत्तस्य विवादस्याद्य अन्तो जातः ।
१२ न जाने किं तेन करिष्यति नृशंसो दुरात्मा ।	१२ न जाने किं तं करिष्यति नृशंसो दुरात्मा ।
१३ नाटिका हि प्रायेण चतुर्ष्वङ्केषु पूर्यते ।	१३ नाटिका हि प्रायेण चतुर्भिरङ्कैः पूर्यते।
१४ दयासागरोऽपि त्वं कथं न दयसे मयि ।	१४ दयासागरोऽपि त्वं कथं न दयसे मम मां वा ।
१५ त्वं दरिद्र वस्त्रं प्रतिशृणोषि ।	१५ त्वं दरिद्राय वस्त्रं प्रतिशृणोषि ।
१६ पुत्रस्य हितमिच्छति ।	१६ पुत्राय हितमिच्छति ।
१७ रामस्य स्वागतम् , कुशलं, भद्रं, सुखम् वा ।	१७ रामाय स्वागतम् , कुशलं, भद्रं सुखम् वा ।

---

८ याच् धातु द्विकर्मक है, द्विकर्मक धातुओं के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। अतएव "नृपम्" रूप ही शुद्ध होगा ।

९ दुह् धातु द्विकर्मक है अतएव "धेनुम्" रूप होगा ।

१० 'विना' इस अव्यय के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। अतएव "कृष्णम्" रूप होगा ।

११ अत्यन्तसंयोगे च । २।१।२९। इस सूत्र से मासत्रयम् द्वितीया ही शुद्ध है ।

१२ तेन इसमें तृतीया शुद्ध नहीं है, किं तं करिष्यति यही शिष्ट प्रयोग है। महाभारत में भी "क्रुद्धः किं मां करिष्यति" प्रयुक्त है ।

१३ अपवर्गे तृतीया । २।३।६। से तृतीया हुई , "चतुर्भिरङ्कैः" यही शुद्ध है ।

१४ अधीगर्थदयेशां कर्मणि । २।३।५२। से कर्म की शेषत्व विवक्षा में षष्ठी होती है, अतएव षष्ठी का रूप 'मम' होगा। पुनश्च दयति सकर्मक है, अतएव द्वितीया माम् भी शुद्ध है।

१५ आ पूर्वक श्रु धातु के योग में जिसके लिए देने की प्रतिज्ञा की जाती है, वह चतुर्थी विभक्ति में रक्खा जाता है। अतएव यहाँ "दरिद्राय" रूप ही शुद्ध होगा ।

१६ हित के योग में जिसके लिए हित हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है, अतएव यहाँ "पुत्राय" शुद्धरूप होगा ।

१७ "स्वागतम्", "कुशलम्", "भद्रम्", "सुखम्" इत्यादि शब्दों के योग में जिसके लिए इनका प्रयोग हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है, अतएव यहाँ "रामाय" रूप शुद्ध होगा ।

४ देव नः पाहि सर्वदा ।	४ देवास्मान् पाहि सर्वदा ।
५ सा लक्ष्मीत्यभिधीयते ।	५ सा लक्ष्मीरित्यभिधीयते ।
६ गेहे केन विनीतौ वाम् ।	६ गेहे केन विनीतौ युवाम् ।
७ अनृतादितरं महत्तरं पातकं नास्ति ।	७ अनृतादितरद् महत्तरं पातकं नास्ति ।
८ तपसैव सृजत्येनाम् ।	८ तपसैव सृजत्येताम् ।
९ वीणायास्तन्त्री विच्छिन्ना ।	९ वीणायास्तन्त्रीर्विच्छिन्ना ।
१० समासदानामाचारशुद्धिः ।	१० समासदाम् आचारशुद्धिः ।
११ मायाविनं मित्रं त्यजेत् ।	११ मायावि मित्रं त्यजेत् ।
१२ ख्यातिमधिगन्तुमना जना यथा तथा प्रयतन्ते ।	१२ ख्यातिमधिगन्तुमनसो जना यथा तथा प्रयतन्ते ।
१३ विंशतयः पुस्तकानि ।	१३ विंशतिः पुस्तकानि ।
१४ या ब्राह्मणी सुरापी नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति ।	१४ या ब्राह्मणी सुरापी नैतां देवाः पतिलोकं नयन्ति ।
१५ ग्राम्याश्चतुष्पदो विनाशितास्तैर्नृशंसैः ।	१५ ग्राम्याश्चतुष्पादो विनाशितास्तैर्नृशंसैः ।

---

४ सम्बोधन के ठीक अनन्तर अस्मद् के वैकल्पिक रूप नहीं आ सकते ।

५ "लक्ष्मी" शब्द दीर्घ ईकारान्त औणादिक है, न कि ङी प्रत्यय । अतएव 'सु' का लोप नहीं हुआ, विसर्ग होकर प्रथमा के एक वचन में "लक्ष्मीः" रूप हुआ ।

६ पाणिनि के मतानुसार "वाम्" के स्थान पर 'युवाम्' होना चाहिए ।

७ स्वमोरद्डादेश विधान होने से "इतरद्" ही शुद्ध रूप है ।

८ अन्वादेश के न होने से 'एनाम्' के स्थान पर 'एताम्' होगा ।

९ 'तन्त्री' शब्द ईकारान्त औणादिक है, अतः प्रथमा के एक वचन में "तन्त्रीः" होगा ।

१० समासद् शब्द दान्त प्रातिपदिक ।

११ सुहृद् वाचक मित्र शब्द के नपुंसकलिङ्ग होने से उसका विशेषण "मायावि" शब्द भी नपुंसकलिङ्ग में हुआ ।

१२ यहाँ बहुवचन "मनसः" शुद्ध है ।

१३ एकत्व अर्थ के बोध होने पर ऊनविंशति (१९) से लेकर ऊपर तक जितने संख्यावाची शब्द हैं, उनका एक वचन ही में प्रयोग होता है ।

१४ एतद् शब्द में अन्वादेश न होने के कारण "एताम्" होगा ।

१५ प्रथमा के एक वचन में "चतुष्पादः" होगा ।

२८ कौसल्यया रामो जातः, सुमित्रया च लक्ष्मणः।	२८ कौसल्यायां रामो जातः सुमित्रायां च लक्ष्मणः।
२९ दुराचारो नार्हति भवार्णवादुत्तरीतुम्।	२९ दुराचारो नार्हति भवार्णवमुत्तरीतुम्।
३० गोविन्दो रामेण लक्षं धारयति।	३० गोविन्दो रामाय लक्षं धारयति।
३१ आमूलम् श्रोतुमिच्छामि।	३१ आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि।
३२ मात्रा निलीयते बालकः।	३२ मातुर्निलीयते बालकः।
३३ दुष्टानां नाशोऽवश्यं भाव्यः।	३३ दुष्टानां नाशेनावश्यं भाव्यम्।
३४ मृगान् शरान् मुमुक्षोः।	३४ मृगेषु शरान् मुमुक्षोः।
३५ देवभाषाव्यवहारो हिन्दुजात्यै न सुपरिहरः।	३५ देवभाषा व्यवहारो हिन्दुजात्या न सुपरिहरः।

संज्ञा एवं सर्वनाम की अशुद्धियाँ

१ जराजीर्णेन्द्रिये पतौ स्त्रीणां मनो न रमते।	१ जराजीर्णेन्द्रिये पत्यौ स्त्रीणां मनो न रमते।
२ मेनका नामाप्सरा स्वर्गस्यालङ्कारः।	२ मेनका नामाप्सराः स्वर्गस्यालङ्कारः।
३ हा मे मन्द भाग्यम्।	३ हा मम मन्दभाग्यम्।

---

२८ यहाँ अधिकरण की विवक्षा ही लोक में प्रसिद्ध है।

२९ तॄ सकर्मक है, अतः भवार्णवम् यही प्रयोग शुद्ध है।

३० धारेरुत्तमर्णः ।१।४।३५ में "रामाय" शुद्ध रूप होगा।

३१ 'से' का अर्थ बताने वाला 'आ' पञ्चमी के साथ प्रयुक्त होता है अतएव "आमूलात्" शुद्ध रूप होगा।

३२ अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ।१।४।२८। सूत्र के द्वारा "मातुः" शुद्ध रूप होगा।

३३ भाव्य शब्द कृत्य प्रत्ययान्त है। 'ओरावश्यके' ।३।१।१२५। सूत्र से ण्यत् होता है क्योंकि, भाव में यह प्रत्यय हुआ है। अतः अनुक्त कर्ता में तृतीया होती है। इसीलिए "नाशेन" शुद्ध है।

३४ मुच् धातु के योग में जिस पर कोई चीज फेंकी जाती है, वह सप्तमी में रक्खा जाता है। इसीलिए "मृगेषु" रूप होगा।

३५ भाव में तथा अकर्मक क्रिया से ही खलर्थ प्रत्यय होते हैं, अतः कर्ता के अयुक्त होने पर 'हिन्दुजात्या" यही शुद्ध रूप होगा।

१ सप्तमी के एकवचन में "पत्यौ" होगा, क्योंकि पतिशब्द मात्र की घि संज्ञा नहीं है।

२ अपसरस् शब्द सकारान्त है, अतः "अप्सराः" होगा।

३ अस्मद् का वैकल्पिक रूप "मे" "हा" के ठीक पूर्व नहीं आ सकता है। अतएव "मम" ही होगा।

४ देव नः पाहि सर्वदा ।	४ देवास्मान् पाहि सर्वदा ।
५ सा लक्ष्मीत्यभिधीयते ।	५ सा लक्ष्मीरित्यभिधीयते ।
६ गेये केन विनीतौ वाम् ।	६ गेये केन विनीतौ युवाम् ।
७ अनृतादितरं महत्तरं पातकं नास्ति ।	७ अनृतादितरत् महत्तरं पातकं नास्ति ।
८ तपसैव सृजत्येनाम् ।	८ तपसैव सृजत्येताम् ।
९ वीणायास्तन्त्री विच्छिन्ना ।	९ वीणायास्तन्त्रीर्विच्छिन्ना ।
१० सभासदानामाचारशुद्धिः ।	१० सभासदाम् आचारशुद्धिः ।
११ मायाविनं मित्रं त्यजेत् ।	११ मायावि मित्रं त्यजेत् ।
१२ ख्यातिमधिगन्तुमना जना यथा तथा प्रयतन्ते ।	१२ ख्यातिमधिगन्तुमनसो जना यथा तथा प्रयतन्ते ।
१३ विंशतयः पुस्तकानि ।	१३ विंशतिः पुस्तकानि ।
१४ या ब्राह्मणी सुरापी नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति ।	१४ या ब्राह्मणी सुरापी नैतां देवाः पतिलोकं नयन्ति ।
१५ ग्राम्यास्चतुष्पदो विनाशितास्तैर्नृशंसैः ।	१५ ग्राम्याश्चतुष्पादो विनाशितास्तैर्नृशंसैः ।

---

४ सम्बोधन के ठीक अनन्तर अस्मद् के वैकल्पिक रूप नहीं आ सकते ।

५ "लक्ष्मी" शब्द दीर्घ ईकारान्त औणादिक है, न कि स्त्री प्रत्यय । अतएव 'सु' का लोप नहीं हुआ, विसर्ग होकर प्रथमा के एक वचन में "लक्ष्मीः" रूप हुआ ।

६ पाणिनि के मतानुसार "वाम्" के स्थान पर 'युवाम्' होना चाहिए ।

७ स्वमोरद्ड्डादेश विधान होने से "इतरत्" ही शुद्ध रूप है ।

८ अन्वादेश के न होने से 'एनाम्' के स्थान पर 'एताम्' होगा ।

९ 'तन्त्री' शब्द ईकारान्त औणादिक है, अतः प्रथमा के एक वचन में "तन्त्रीः" होगा ।

१० सभासद् शब्द दान्त प्रातिपदिक ।

११ सुहृद् वाचक मित्र शब्द के नपुंसकलिङ्ग होने से उसका विशेषण "मायावि" शब्द भी नपुंसकलिङ्ग में हुआ ।

१२ यहाँ बहुवचन "मनसः" शुद्ध है ।

१३ एकत्व अर्थ के बोध होने पर ऊनविंशति (१९) से लेकर ऊपर तक जितने संख्यावाची शब्द हैं, उनका एक वचन ही में प्रयोग होता है ।

१४ एतत् शब्द में अन्वादेश न होने के कारण "एताम्" होगा ।

१५ प्रथमा के एक वचन में "चतुष्पादः" होगा ।

अजादि सन्धियों की अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध
१ आयुः कामः पथ्याशी, व्यायामी, स्त्रीषु जितात्मा च भवेत् ।	१ आयुष्कामः पथ्याशी, व्यायामी, स्त्रीषु जितात्मा च भवेत् ।
२ प्रनश्यति यशो दुराचारस्य ।	२ प्रणश्यति यशो दुराचारस्य ।
३ अहोऽस्मि परमप्रीतो ।	३ अहो अस्मि परमप्रीतः ।
४ तऽअब्रुवन् मुनिम् ।	४ तेऽब्रुवन् मुनिम् ।
५ त्वं वहिः प्रदेशे तिष्ठ ।	५ त्वं वहिष्प्रदेशे तिष्ठ ।
६ भो तात सदुपदेशम् गृहाण ।	६ भोस्तात सदुपदेशम् गृहाण ।
७ उभेऽपि युवत्यौ सङ्गीते विशारदे ।	७ उभे अपि युवत्यौ सङ्गीते विशारदे ।
८ गुरुमुपेष्यामीति प्रतिजाने ।	८ गुरुमुपैष्यामीति प्रतिजाने ।
९ स्वतेजसा सुरासुरलोकान्नप्यभूवन् ।	९ स्वतेजसा सुरासुरलोकानप्यभूवन् ।
१० प्रात एवागच्छ ।	१० प्रातरेवागच्छ ।
११ परामर्शेण दूयते ।	११ परामर्शेन दूयते ।
१२ कः कोऽत्र भोः ।	१२ कस्कोऽत्र भोः ।
१३ विषोढुं क्षमः ।	१३ विसोढुं क्षमः ।
१४ अस्माकं परिस्थितिर्न शुभा ।	१४ अस्माकं परिष्ठितिर्न शुभा ।
१५ ते हि श्रेयान्सो ये स्वार्थाविरोधेन परहितं कुर्वन्ति ।	१५ ते हि श्रेयांसो ये स्वार्थाविरोधेन परहितं कुर्वन्ति ।

---

१ नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य ।८।३।४५। से षकार हो गया ।

२ उपसर्गादसमासेऽपि ।८।४।१४। सूत्र के द्वारा 'प्रणश्यति' में णत्व हो गया ।

३ ओत् ।१।१।१५। से प्रगृह्यसंज्ञा होकर प्रकृतिभाव हो गया ।

४ एङः पदान्तादति ।६।१।१०९। से पूर्वरूप सन्धि होती है ।

५ 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' ।८।३।४१। से विसर्ग को ष् हो गया ।

६ विसर्जनीयस्य सः ।८।३।३४। से विसर्ग को स् हो गया ।

७ ईदूदेद् द्विवचनम् प्रगृह्यम् ।१।१।११। से प्रगृह्य संज्ञा होकर प्रकृतिभाव हो गया ।

८ "उपैष्यामि" में 'एत्येधत्यू ठ्सु ।६।१।८९। से वृद्धि होती है ।

९ नकार के पूर्व ह्रस्व न होने के कारण "ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्" ।८।३।३२। सूत्र यहाँ नहीं लगेगा ।

१० प्रातर् रकारान्त अव्यय है ।

११ शकार का व्यवधान होने के कारण णत्व नहीं होगा ।

१२ 'कस्कादिषु च' ।८।३।४८। से 'स्' होगा, ष् नहीं ।

१३ सोढः ।८।३।११५। सूत्र के द्वारा 'स' को मूर्धन्यादेश नहीं होगा ।

१४ उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौति० ।८।३।६५। से स् को ष् हो गया ।

१५ नश्चापदान्तस्य झलि ।८।३।२४। सूत्र के द्वारा "श्रेयांसः" में न् का अनुस्वार हो गया ।

लिङ्ग सम्बन्धी अशुद्धियाँ

१ द्वौ द्वौ चत्वारो भवन्ति ।
२ शुचौ शुष्यन्ति पल्वलाः ।
३ मम शरीरः व्ययते ।
४ पत्राः पतन्ति ।
५ एषा ध्वनिः श्रवणयोर्मूर्च्छति ।
६ सीदन्ति गात्राः ।
७ इमानि कन्दराणि ।
८ यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनः खरः ।
९ विवादास्पदो विषयः ।
१० गम्भीरमिदं जलाशयम् ।
११ अक्षतानि अपेक्षन्ते ।
१२ कोकिलायाः कण्ठस्वरमतिमधुरमस्ति ।
१३ अतीते महायुधि असंख्याः योधाः मृताः ।

१ द्वे द्वे चत्वारि भवन्ति ।
२ शुचौ शुष्यन्ति पल्वलानि ।
३ मम शरीरं व्ययते ।
४ पत्राणि पतन्ति ।
५ एष ध्वनिः श्रवणयोर्मूर्छति ।
६ सीदन्ति गात्राणि ।
७ इमे कन्दराः ।
८ यादृशी शीतला देवी तादृशं वाहनं खरः ।
९ विवादास्पदं विषयः ।
१० गम्भीरोऽयं जलाशयः ।
११ अक्षताः अपेक्षन्ते ।
१२ कोकिलायाः कण्ठस्वरोऽतिमधुरोऽस्ति ।
१३ अतीतायां महायुधि असंख्याः योधाः मृताः ।

---

१ 'सामान्ये नपुंसकम्' इस नियम के अनुसार नपुंसकलिङ्ग होगा ।
२ अमरकोश के अनुसार नपुंसकलिङ्ग होगा ।
३ शरीर शब्द नपुंसकलिङ्ग है ।
४ जिन शब्दों के अन्त में 'त्र' होता है वे नपुंसकलिङ्ग होते हैं अतएव प्रथमा-विभक्ति, ब० व० में 'पत्राणि' रूप होगा ।
५ 'शब्दे निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनाः' अमरकोश के अनुसार ध्वनि शब्द पुंलिङ्ग है ।
६ 'त्र' में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं ।
७ कन्दर शब्द पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग है, नपुंसकलिङ्ग नहीं ।
८ वाहन शब्द नपुंसकलिङ्ग और खर शब्द विशेषण भी नहीं है जिससे सार्थक हो ।
९ 'आस्पद' शब्द नित्य नपुंसकलिङ्ग है ।
१० जलाशय शब्द में 'एरच्' ।३।३।५६। सूत्र से अच् प्रत्यय हुआ एवं घाजन्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं ।
११ "लाजाः अक्षताः" आदि शब्द पुँल्लिङ्ग में ही प्रयुक्त होते हैं ।
१२ स्वर शब्द पुल्लिङ्ग है ।
१३ युद्ध शब्द स्त्रीलिङ्ग है ।

१४ तव गमनः कदा भविष्यति ।	१४ तव गमनम् कदा भविष्यति ।
१५ दुष्टः परकार्येषु बहूनि विघ्नानि कुर्वन्ति ।	१५ दुष्टाः परकार्येषु बहून् विघ्नान् कुर्वन्ति ।

पद तथा वाक्य की अशुद्धियाँ

१ आक्रमति सूर्यः ।	१ आक्रमते सूर्यः ।
२ वाजी विक्रमति ।	२ वाजी विक्रमते ।
३ न जातु दुष्टः कदापि स्वभावं त्यजति ।	३ न जातु दुष्टः स्वभावं त्यजति ।
४ कोसल्याया रामो नाम पुत्ररत्नमजनि ।	४ कोसल्यायां रामो नाम पुत्ररत्नमजनि ।
५ संक्रीडन्ति मणिभिः यत्र कन्याः ।	५ संक्रीडन्ते मणिभिः यत्र कन्याः ।
६ संक्रीडंते शकटानि ।	६ संक्रीडन्ति शकटानि ।
७ ममादेशं मस्तके न निदधाति ।	७ ममादेशं शिरसा न वहति ।
८ नास्ति मे लवणस्य प्रयोजनम् ।	८ नास्ति मे लवणेन प्रयोजनम् ।
९ न कोऽपि सहजं स्वभावमतिक्रमितुं समर्थः ।	९ न कोऽपि स्वभावमतिक्रमितुं समर्थः ।
१० धर्मसुच्चरति ।	१० धर्मसुच्चरते ।

---

१४ भावार्थक ल्युट् प्रत्यय से बने शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं । अतएव "गमनम्" रूप ही शुद्ध होगा ।

१५ 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' अमरकोश के अनुसार विघ्न शब्द पुंल्लिङ्ग है ।

१ आ पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है और किसी नक्षत्र का उदय होना सूचित करती है ।

२ चलने अथवा कदम रखने के अर्थ में वि उपसर्ग पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है ।

३ जातु तथा कदापि का एक ही अर्थ है, अतः इन दोनों में से एक ही का प्रयोग करना उचित है ।

४ 'कोसल्यायां' ऐसा व्यवहार है ।

५ सम पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होती है ।

६ शोर करने के अर्थ में सम् पूर्वक क्रीड् धातु परस्मैपदी होती है ।

७ शिष्ट व्यवहार के अनुसार तृतीया होनी चाहिए, सप्तमी नहीं ।

८ 'नास्ति मे लवणेन प्रयोजनम्' ऐसा ही लोकव्यवहार है ।

९ स्वस्य भावः स्वभावः, स सहजः सहभूरेव भवति इस प्रकार विशेषण से कोई अर्थ नहीं निकलता ।

१० उद्पूर्वक चर् धातु जब सकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है तो आत्मनेपदी होती है ।

११ चक्षुर्नेचक्रमम्बुजं विजयति ।	११ चक्षुर्नेचक्रमम्बुजं विजयते ।
१२ न हि कारणं विना कार्योत्पत्तिः सम्भवा ।	१२ न हि कारणं विना कार्योत्पत्तिः संभविनी ।
१३ सुखसंवादमिमं श्रुत्वा सर्वे ते प्राहृष्यन् ।	१३ कुशलवृत्तान्तमिमं श्रुत्वा सर्वे ते प्राहृष्यन् ।
१४ दण्डमुन्नयति ।	१४ दण्डमुन्नयते ।
१५ तत्त्वं नयति ।	१५ तत्त्वं नयते ।
१६ आरमते उद्याने ।	१६ आरमति उद्याने ।
१७ शास्त्रे वदति ।	१७ शास्त्रे वदते ।
१८ वल्गां संनियम्य मन्दीकुरु रथवेगम् ।	१८ वल्गाः संनियम्य मन्दीकुरु रथवेगम् ।
१९ आगतेषु दुर्दिनेषु मित्राण्यपि त्यजन्ति ।	१९ समुपस्थिते विषमे समये मित्राण्यपि त्यजन्ति ।
२० सम्प्रवदन्ति ब्राह्मणाः ।	२० सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणाः ।
२१ गोपी कृष्णाय तिष्ठति ।	२१ गोपी कृष्णाय तिष्ठते ।
२२ बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठति ।	२२ बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते ।
२३ विविधाभिः खेलाभिर्व्यत्येति बालानां बाल्यम् ।	२३ विविधाभिः खेलाभिर्व्यत्येति बालानां वयः (बालानां कालो वा) ।

---

११ विपराभ्यां जेः ।१।३।१९। द्वारा "विजयते" ही शुद्ध रूप है ।

१२ संभवनं संभवः ।३।३।५७। से अप् प्रत्यय हुआ । पचाद्यजन्त भी नहीं है, जिससे संभवा स्त्रीलिङ्ग रूप बन जाय । इस कारण 'संभविनी' शब्द का प्रयोग करना उचित है ।

१३ 'संवाद' 'संलाप' होता है, 'वृत्तान्त' नहीं होता, अतः 'कुशलवृत्तान्तमिमं श्रुत्वा' ऐसा कहना चाहिए ।

१४ 'उठाना' अर्थ में नी धातु आत्मनेपदी होती है ।

१५ अन्वीक्षण अर्थ में भी नी धातु आत्मनेपदी होती है ।

१६ आ उपसर्ग पूर्वक रम् धातु परस्मैपदी हो जाती है ।

१७ बुद्धिवैचक्षण्य दिखलाने के अर्थ में वद् धातु आत्मनेपदी होती है ।

१८ रश्मि के समान ही वल्गा का प्रयोग बहुवचन में होता है ।

१९ मेघाच्छादित दिन को ही दुर्दिन कहते हैं, अतः 'विषमे समये समुपस्थिते' ऐसा कहना चाहिए ।

२० सम्प्रपूर्वक वद् धातु मनुष्यों के समान जोर से तथा स्पष्ट बोलने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है ।

२१ अपना अभिप्राय प्रकाशन करने के अर्थ में स्था धातु आत्मनेपदी होती है ।

२२ सम् पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है ।

२३ बालानां भाव एव बाल्यं भवति । अतः या तो बालानाम् हटा देना चाहिए अथवा वयः का प्रयोग करना चाहिए ।

२४ मठाधीशस्य चरणं स्पृशन्ति।	२४ मठाधीशस्य चरणौ स्पृशन्ति।
२५ मुक्तावुत्तिष्ठति।	२५ मुक्तावुत्तिष्ठते।
२६ पैतृकमश्वा अनुहरन्ति।	२६ पैतृकमश्वा अनुहरन्ते।
२७ कृष्णश्चाणूरमाह्वयति।	२७ कृष्णश्चाणूरमाह्वयते।
२८ तावत् सेव्यादभिनिविशति सेवकजनम्।	२८ तावत् सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम्।
२९ नायमर्थो जनसाधारणस्य गोचरः।	२९ नायमर्थो जनसमान्यस्य (जनसमष्टेर्वा) गोचरः।
३० अभिनये विद्यालयस्य अध्यापकाः सूत्रधारस्य पात्रं वहन्ति।	३० अभिनये विद्यालयस्य अध्यापकाः सूत्रधारस्य वेषं परिगृह्णन्ति।
३१ परदारान् प्रकरोति।	३१ परदारान् प्रकुरुते।
३२ शतमपजानाति।	३२ शतमपजानीते।
३३ श्येनो वर्तिकामुदाकरोति।	३३ श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते।

स्त्रीप्रत्यय की अशुद्धियां

१ पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरी।	१ पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरा।
२ अहो रम्येयं रशना त्रिसूत्री।	२ अहो रम्येयं रशना त्रिसूत्रा।

---

२४ चरण आदि शब्द प्रायः द्विवचनान्त होते हैं।

२५ उठने के अर्थ में उत् पूर्वक स्था धातु परस्मैपदी होती है परन्तु आलंकारिक अर्थ में यह आत्मनेपदी हो जाती है।

२६ निरन्तर अभ्यास करने के अर्थ मे अनुपूर्वक हृ धातु आत्मनेपदी होती है।

२७ ललकारने के अर्थ में आ पूर्वक ह्वे धातु आत्मनेपदी होती है।

२८ अभिनिपूर्वक विश् धातु आत्मनेपदी होती है।

२९ 'जनसामान्यस्य जनसमष्टेर्वा' कहना उचित है। 'जनसाधारणम् जनैः साधारणम्'।

३० पात्र का अर्थ अभिनेता है, अतः सूत्रधारस्य पात्रम् इसका ऊटपटांग अर्थ हो जायगा।

३१ उपसर्गपूर्वक कृ धातु बलात्कार करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है।

३२ अपपूर्वक ज्ञा धातु इनकार करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है।

३३ उपसर्गपूर्वक कृ धातु विजय के अर्थ में आत्मनेपदी होती है।

१ सहोदरी में किसी नियम से भी ङीप् नहीं हो सकता, अतः टाप् होकर सहोदरा शुद्ध रूप बनता है।

२ त्रीणि सूत्राणि यस्याः इस प्रकार बहुव्रीहि होने से ङीप् नहीं हो सकता, अतः त्रिसूत्रा ही शुद्ध रूप है।

३ नैजां क्षमतां विचार्यैव कार्यसम्पादने मतिं कुरु ।	३ नैजीं क्षमतां विचार्यैव कार्यसम्पादने मतिं कुरु ।
४ पार्याचं नापिती ।	४ पापेयं नापिती ।
५ इयं क्षीरपी क्षत्रिया ।	५ इयं क्षीरपा क्षत्रिया ।

प्रकीर्ण अशुद्धियां

१ कदानीं भवान् यास्यसि ?	१ कदानीं भवान् यास्यति ?
२ स्वामिनं प्रार्थयित्वा गृहं गच्छत ।	२ स्वामिनं प्रार्थ्य गृहं गच्छत ।
३ देवी खड्गेन शुम्भस्य शिरोऽप्रहरत् ।	३ देवी खड्गेन शुम्भस्य शिरः प्राहरत् ।
४ रामश्च अहञ्च खेलामि ।	४ रामश्च अहञ्च खेलावः ।
५ मया परश्वो गमिष्यते ।	५ मया परश्वो गंस्यते ।
६ सुरापानेषु देशेषु ब्राह्मणा न यान्ति ।	६ सुरापाणेषु देशेषु ब्राह्मणा न यान्ति ।

---

३ नैज शब्द अणन्त है, अतः नैजीम् ही शुद्ध है ।

४ पापा नापिती शुद्ध रूप है, केवलमामकभागधेयपाप० । ४।१।३०। से संज्ञा एवं छन्द में ही ङीप् होता है ।

५ 'क्षीरपा' ही शुद्धरूप है क्योंकि टक् की प्राप्ति नहीं, आतोऽनुपसर्गे कः । ३।२।३। से क प्रत्यय होता है और तदनन्तर टाप् हो जाता है ।

१ भवत् के साथ प्रथम पुरुष की क्रिया होती है क्योंकि भवत् की गणना प्रथम पुरुष में है ।

२ प्रार्थयित्वा अशुद्ध है, यहाँ पर त्वा को ल्यप् हो जाता है, अतः "प्रार्थ्य" रूप बनेगा ।

३ लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ।६।४।७१। लुङ् आदि के परे रहने पर धातु के पूर्व में व्यवधानरहित अट् का आगम होता है। अतः प्र + अहरत् (प्राहरत्) रूप बनेगा ।

४ यदि वाक्य में प्रथम, मध्यम, उत्तम सभी पुरुषों के पद हों अथवा मध्यम और उत्तम पुरुष के पद हों तथा उत्तम और अन्य पुरुष के पद हों तो इन सभी अवस्थाओं में क्रिया उत्तम पुरुष की होती है ।

५ गमेरिट् परस्मैपदेषु ।७।२।५८। इस सूत्र से परस्मैपद में इट् होता है, आत्मनेपद में नहीं, अतः गंस्यते रूप ही शुद्ध है ।

६ पानं देशे ।८।४।९। सूत्र के द्वारा न को ण हो गया, अतः "सुरापाणेषु" रूप बना ।

७ वाराङ्गना विलसद्भ्यां दृग्भ्यां वीक्षते ।	७ वाराङ्गना विलसन्तीभ्यां दृग्भ्यां वीक्षते ।
८ क्रीडन्तं बालं दृष्ट्वा माता अहासीत् ।	८ क्रीडन्तं बालं दृष्ट्वा माता अहसीत् ।
९ बिडालोऽयं नित्यं भोजनसमये उपतिष्ठति ।	९ बिडालोऽयं नित्यं भोजनसमये उपतिष्ठते ।

---

७ यहाँ पर 'विलसत्' शब्द दृश् (स्त्रीलिङ्ग) का विशेषण है । अतः स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए उगितश्च ।४।१।६। सूत्र के द्वारा ङीप् होकर 'विलसन्तीभ्याम्' रूप बनेगा ।

८ ह्मयन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ।७।२।५। सूत्र के द्वारा वृद्धि का निषेध हो गया । अतः "अहसीत्" रूप बना ।

९ उपपूर्वक स्थाधातु को आत्मनेपद हो गया ।

विंशतितम सोपान

वाक्यविश्लेषण तथा वाक्यसंकलन

वाक्यविश्लेषण से संस्कृत निबन्ध-लेखन में बड़ी सहायता मिलता है। अतः इस विषय का निरूपण भी आवश्यक है।

परस्पर साकाङ्क्ष (एक दूसरे के साथ समन्वय की इच्छा रखने वाले) सुबन्त तिङन्त पदों के समूह को जिससे वक्ता के मनोभाव का पूर्ण प्रकाश हो, वाक्य कहते हैं। यथा—बालकः धावति। सः पुस्तकं पठति। कहा भी गया है "सुप्तिङन्तचयो वाक्यम्।" (परस्पर साकाङ्क्ष सुबन्त तथा तिङन्त पदों का समूह ही वाक्य है।)

इसके अतिरिक्त वाक्य के पदों में परस्पर आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति इन तीनों का रहना भी आवश्यक है। पदों के परस्पर के अन्वय की इच्छा को आकांक्षा कहते हैं। इसके अभाव में चाहे कितने भी पद क्यों न इकट्ठे कर दिए जायं उनसे वाक्य नहीं बन सकता है। यथा—पुरुषः हस्ती बालकः अथवा गच्छति, पठति, हसति आदि। एक पद को दूसरे सहगामी पद के अर्थ को मिलाकर पूरा करने की सामर्थ्य को योग्यता कहते हैं। समुचित अर्थ के उपस्थित न होने के कारण वाक्य नहीं बन सकता है। यथा—वह्निना सिञ्चति (आग से सींचता है।) यहाँ वह्नि में सींचने की योग्यता नहीं है, अतएव इसे वाक्य नहीं कहा जा सकता है। वाक्य में आसत्ति का होना भी आवश्यक है। पदों की परस्पर समुचित समीपता को आसत्ति कहते हैं। एक पद के उच्चारण या लेखन के बाद अनुचित विलम्ब या दूरी पर दूसरा पद उच्चरित किया जाय अथवा लिखा जाय तो उन पदों से वाक्य नहीं बन सकता है। उदाहरणार्थ यदि 'श्यामः' कहने के एक घण्टे के बाद 'पठति' कहा जाय अथवा 'श्यामः' लिखने के दो पृष्ठ बाद 'पठति' लिखा जाय तो वह वाक्य नहीं होगा।

प्रत्येक वाक्य में दो भाग होते हैं—उद्देश्य तथा विधेय। जिसके विषय में जो कुछ कहा जाता है वह उद्देश्य कहलाता है। उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है, उसे विधेय कहते हैं। यथा बालकः पठति। यहाँ 'बालक' उद्देश्य है और 'पठति' विधेय है।

वाक्य के मुख्यतया निम्नलिखित तीन प्रकार होते हैं—साधारण, मिश्रित (संकीर्ण) और संयुक्त।

साधारण वाक्य वह है जिसमें एक उद्देश्य कर्ता और एक प्रधान क्रिया हो अथवा जो विधेय का काम करता हो वह हो। यथा—अहं पापकारिणी महाभागमद्राक्षम्; धिक् ताम्।

मिश्रित वाक्य वह है जिसमें एक प्रधान और एक या एक से अधिक अङ्गभूत वाक्य (उपवाक्य) हों। यथा, यां चिंतयामि सततं मयि सा विरक्ता।

जिस वाक्य में दो या दो से अधिक सरल वाक्य या मिश्रित वाक्य होते हैं, उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। संयुक्त वाक्य स्वाधीन रहते हैं। ये वाक्य किन्तु, परन्तु, अथवा एवं तथा आदि अव्ययों के द्वारा जोड़े जाते हैं। यथा—दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवं (दुदोह च)।

उद्देश्य-विचार

उद्देश्य प्रायः संज्ञा अथवा सर्वनाम होता है।

'मरणं' प्रकृतिः शरीरिणाम्। 'त्रैलोक्यमपि' पीडितम्। 'सो'ऽप्याचक्षते।

विशेष—(क) क्रिया से ही जहाँ कर्ता के वचन तथा पुरुष का ज्ञान हो जाता है, प्रायः ऐसे स्थलों में उद्देश्य का प्रयोग नहीं किया जाता है। यथा—कथं मन्दभाग्यः करोमि (अहम्)। (भवान्) अपनयतु नः कुतूहलम्।

(ख) प्रायः विशेषण अपने विशेष्य के विना ही प्रयुक्त होता है। यथा—'विद्वान्' सर्वत्र पूज्यते।

संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता बताने वाले जितने प्रकार के शब्द हैं उन सबों के द्वारा उद्देश्य का विस्तार किया जा सकता है।

(१) विशेषण द्वारा—विशेषण चाहे सार्वनामिक हो, चाहे कृदन्तीय हो, चाहे गुणबोधक हो, चाहे परिमाणबोधक हो।

'स' राजा किमारम्भः सम्प्रति। एवम् 'अभिधीयमानः' स प्रत्यवादीत्। 'चतुर्दश' सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् हतानि। का 'इयमन्या विभीषिका'।

(२) षष्ठयन्त संज्ञापद अथवा सर्वनाम पद से; यथा—'रामस्य' करुणो रसः। अपि कुशली 'ते' गुरुः।

(३) समानाधिकरण संज्ञा द्वारा; जैसे, नरपतिः सुदर्शनः आयाति।

विशेष—सकर्मक क्रियाओं से बने जो कृदन्तीय विशेषण हैं उनके साथ आया हुआ कर्मपद भी उद्देश्य के विस्तार में आ जाता है। यथा—

'आसेदिवान्' रत्नवत् 'आसनं' स गुहेनोपमेयकान्तिरासीत्।

'रसिकमनांसि समुल्लासयन्' वसन्तसमयः समाजगाम।

संज्ञा और सर्वनाम के विस्तार में सबसे अधिक प्रयोग तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि समासों का होता है।

साधारण विशेषण के स्थान पर व्यधिकरण तत्पुरुष, कर्मधारय, उपपद तत्पुरुष और बहुव्रीहि का प्रयोग किया जा सकता है।

ताम्बूलकरंकवाहिनी तरलिका। क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता।

षष्ठीतत्पुरुष प्रायः सम्बन्ध सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। "कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः।" "नष्टाशंका हरिणशिशवः।"

कर्म अथवा विधेय की पूर्ति

जिस वाक्य का विधेय कोई सकर्मक क्रिया हो अथवा गत्यर्थक क्रिया हो अथवा कर्मप्रवचनीय के कारण सकर्मक की जैसी क्रिया हो इन सभी स्थलों में बिना कर्मपद के विधेय का पूर्ण अर्थ प्रकाशित नहीं होता। ऐसे वाक्यों में विधेय का अर्थ पूर्ण करने के लिए कर्मपद का प्रयोग आवश्यक होता है। उद्देश्य की तरह कर्म के लिए भी संज्ञापद, सर्वनाम पद अथवा कोई भी ऐसा पद जो संज्ञा का काम कर सके प्रयोग में लाया जा सकता है। "याति अस्तशिखरं पतिरोषधीनाम् ।" "आखंडलः काममिदं बभाषे ।"

कर्म का भी विस्तार उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार कर्ता का "मेघम् आश्लिष्टसानुम् वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ।" "इदम् अव्याजमनोहरं वपुः तपः-क्षमं साधयितुं य इच्छति "

बनाना, नाम रखना, पुकारना, सोचना, विचारना, नियुक्त करना—इन अर्थों को प्रकट करने वाली धातुओं का, मुख्य कर्म के अतिरिक्त एक पूरक कर्म भी होता है। यथा—

तमात्मजन्मानम् अजं चकार ।

आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते, दर्शनप्रदानमपि अनुग्रहं गणयन्ति ।

अर्थदृष्टि से सकर्मक की श्रेणी में गिनी जाने वाली धातुएँ कभी-कभी नियम-विशेष के कारण चतुर्थ्यन्त अथवा पंचम्यन्त अथवा षष्ठ्यन्त अथवा सप्तम्यन्त पद लेती हैं। ऐसे प्रयोगों को विधेय का पूरक समझना चाहिए क्योंकि उनके बिना अर्थ पूर्ण नहीं होता।

"असूयन्ति मह्यं प्रकृतयः ।" "कुप्यन्ति हितवादिने ।"

विधेय

विधेय में अकेली क्रिया हो सकती है; यथा, 'आज्ञापयतु' भवान् ।

गम्यमान अथवा प्रत्यक्ष 'अस्'-धातु-युक्त कोई विशेषण पद या विशेष्यपद या संज्ञापद भी विधेय हो सकता है। यथा—

अविवेकः परमापदां 'पदम्' ।

वत्से, किमेवं 'कातरा' असि ।

गृहीतः सन्देशः ।

अस् धातु जब 'सत्ता' का बोध कराती है, तब अकेली ही आती है। यथा—

हिमालयो नाम नगाधिराजः अस्ति ।

इसी प्रकार भू धातु भी जब अस्तित्व का बोध कराती है तब अकेली ही आती है परन्तु जब 'होना' अर्थ में प्रयुक्त होती है तब अपूर्ण विधेया रहती है। यथा—

'बभूव' योगी किल कार्तवीर्यः ।

कहीं-कहीं अस्, विद् और वृत धातुएँ सर्वथा लुप्त रहती हैं। यथा—

मातले कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रमः ।

इस वाक्य में अस्ति अथवा विद्यते लुप्त है।

भू, वृत् (होना), जन् (होना), भा (मालूम पड़ना), दृश् कर्म० वा० (मालूम पड़ना), लक्ष् कर्म० (मालूम पड़ना) आदि धातुएँ भी अपूर्ण विधेया हैं। विनेय को पूर्ण करने के लिए इन्हें भी संज्ञापद अथवा विशेषण पद की अपेक्षा होती है। यथा—

तेऽपि 'यथोक्ताः' 'संवृत्ताः'

अयं पाण्ड्यः 'अद्रिराजः' इवाभाति।

'मदनक्लिष्टा' इयमालक्ष्यते।

कर्मवाच्य में मन् (समझना, सोचना) और कृ धातु का भी प्रयोग इसी प्रकार होता है। यथा—

नलिनी 'पूर्वनिदर्शनं गता'।

व्याघ्रः कुक्कुटः कृतः।

यदा-कदा अव्ययों का प्रयोग करके वाक्य को संक्षिप्त कर लिया जाता है तथा उद्देश्य और विधेय दोनों ही छिपे रहते हैं।

उन्हीं अव्ययों में से निकालकर वे प्रकट किए जाते हैं। यथा—

'धिक्' तां च तं च = 'सा' च 'स' च 'निन्द्यौ' स्तः।

अलं यत्नेन = प्रयत्नेन न 'किमपि' साध्यम्।

प्रायः अव्ययपद विधेय का काम देते हैं। यथा—

विषवृक्षोऽपि छेत्तुम् 'असाम्प्रतम्' = न युज्यते।

कष्टं खलु अनपत्यता।

विधेय का विस्तार

जिन शब्दों से विधेय की क्रिया का काल, स्थान, प्रकार या ढंग, क्रम, करण या साधन, कारण या अभिप्राय सूचित हो उन शब्दों को क्रिया का विस्तार कहते हैं।

विधेय का विस्तार निम्नलिखित साधनों से होता है—

(अ) अव्यय द्वारा।

(ब) जिस किसी में क्रियाविशेषण अव्यय की क्षमता हो उसके द्वारा।

(स) जो भी क्रियाविशेषण अव्यय के तुल्य हो उसके द्वारा।

कालवाचक क्रियाविशेषण विस्तार

कालवाचक क्रियाविशेषण वाले विस्तारों से निम्नलिखित वस्तुएँ प्रकट होती हैं—

(१) कब—इस प्रश्न का उत्तर प्रकट होता है। यथा—

यास्यति 'अद्य' शकुन्तला।

'ततः' प्रविशति कंचुकी।

विशेष—(क) भावसप्तमी से बने हुए वाक्यांश प्रायः कालवाचक क्रियाविशेषण अव्यय माने जा सकते हैं। यथा—

'गते च केयूरके' चन्द्रापीडमुवाच ।

(ख) क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्द भी कालवाचक क्रियाविशेषण हैं । वे जब सकर्मक क्रियाओं से बने होते हैं तब उनका कर्म होता है । यथा—अचिरात् 'पावनं तनयं प्रसूय' मम विरहजां शुचं न गणयिष्यसि ।

(२) कब तक, कहाँ तक—इस प्रश्न का उत्तर । यथा—

उन्नदृष्टिः 'सुचिरं' व्यचरम् ।

स्तन्यत्यागं यावत् अवेक्षस्व ।

(३) कितनी बार—इस प्रश्न का उत्तर । यथा—

'वारं वारं' तिरयति दृशोरुद्गमं बाष्पपूरः ।

स्थानवाचक क्रियाविशेषण विस्तार

ये तीन बातें सूचित करते हैं—

(१) किसी स्थान में रहना । इससे 'कहाँ'—इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त होता है । यथा—अस्ति 'अवंतीषु' उज्जयिनी नाम नगरी ।

(२) किसी स्थान की ओर गति प्रकट करना । इससे 'किस ओर'—इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त होता है । यथा—

"नीचैः" गच्छति "उपरि" च दशा ।

(३) किसी स्थान से पृथक्त्व प्रकट करना । इससे 'कहाँ से'—इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त होता है । यथा—

'वनस्पतिभ्यः' कुसुमान्याहरत ।

प्रकार वाचक क्रिया-विशेषण विस्तार

ये निम्नलिखित बातें प्रकट करते हैं—

(१) किसी क्रिया का प्रकार या ढंग । यथा—

चन्द्रापीडः 'सविनयम्' अवादीत् ।

(२) मात्रा । यथा—

तमवेक्ष्य सा 'भृशं' रुरोद ।

(३) किसी क्रिया का करण या साधन । यथा—

संचूर्णयामि 'गदया' न सुयोधनोरू ।

(४) सहगामिनी परिस्थितियाँ । यथा—

'त्वया सह' निवत्स्यामि ।

कार्य कारण वाचक क्रियाविशेषण विस्तार

इनसे निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

(१) किसी क्रिया का कारण या अभिप्राय । यथा—

लज्जेऽहम् 'अनेन प्रागल्भ्येन' ।

'मद्गतचिन्तया' आत्मानमपि नैषा विभावयति ।

(२) किसी क्रिया का अंतिम कारण अथवा निमित्त । यथा—

'समिदाहरणाय' प्रस्थिता वयम् ।

(३) विरोध (Concession) शर्त । यथा—

नन्दा हताः 'पश्यतो राक्षसस्य' ।

साधारण वाक्यों का विश्लेषण

साधारण वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण करने की निम्नलिखित विधि है—

(१) सर्वप्रथम वाक्य का कर्ता ढूंढ़िये ।

(२) तब कर्ता के विस्तारों को ढूंढ़ लीजिए ।

(३) विधेय (प्रधान क्रिया) को ढूंढ़िये ।

(४) कर्म बतलाइये (यदि प्रधान क्रिया सकर्मक है) ।

(५) कर्म के विस्तारों को लिख डालिए ।

(६) अन्त में, प्रधान क्रिया के क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों को लिख दीजिए ।

उदाहरण

विश्वंभरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने ।
प्राप्तप्रसवनात्मानं गङ्गादेव्यां विमुंचति ॥

कर्ता	कर्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	क्रिया के क्रियाविशेषण विस्तार
देवी	विश्वंभरात्मजा, राज्ञा महावने त्यक्ता	विमुंचति	आत्मानं	प्राप्तप्रसवं	गङ्गादेव्यां (स्थान)

मिश्रित वाक्य

मिश्रित वाक्य में एक मुख्य कर्ता होता है और एक मुख्य क्रिया, इनके अतिरिक्त दो अथवा दो से अधिक आश्रित क्रियाएँ हो सकती हैं ।

'यस्यार्थाः' तस्य मित्राणि ।

जिस अंश में प्रधान कर्ता और प्रधान क्रिया होते हैं, उसे प्रधान उपवाक्य कहते हैं, शेष को आश्रित अथवा अधीन उपवाक्य कहते हैं ।

आश्रित उपवाक्य के तीन भेद हैं

(१) संज्ञा उपवाक्य ।

(२) विशेषण उपवाक्य ।

(३) क्रियाविशेषण उपवाक्य ।

संज्ञा उपवाक्य

संज्ञा उपवाक्य संज्ञा के स्थान पर आता है। वह निम्नलिखित कार्य करता है—

(१) प्रधान क्रिया का कर्ता।

(२) प्रधान क्रिया का कर्म।

(३) प्रधान उपवाक्य स्थित किसी संज्ञापद का समानाधिकरण।

(४) प्रधान उपवाक्य में आई हुई किसी क्रिया का कर्म—

(१) 'अयं पुनरविरुद्धः प्रकार इति' वृद्धेभ्यः श्रूयते। 'श्रूयते' (का कर्ता)।

(२) प्रकोष्ठं निर्गतस्तावदवलोकयामि 'कियदवशिष्टं रजन्याः इति'—'अवलोकयामि' का कर्म।

(३) 'अप्रतिष्ठ रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः'। इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोऽपरे॥ दुःखेन का समानाधिकरण।

(४) 'तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तौ यावच्छक्तितो निवारणीय इति मनसा' अवधार्य अब्रवम्—अवधार्य का कर्म।

विशेषण उपवाक्य

विशेषण उपवाक्य किसी संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता बताता है, और विशेषणधर्मा होता है। इसका प्रारम्भ सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'यद्' के स्वरूपों से होता है।

विशेषण उपवाक्य निम्नलिखित के साथ प्रयुक्त हो सकता है—

(१) कर्ता के साथ—'यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलताम्'।

(२) कर्म के साथ—'यस्यागमः केवलजीविकायै' तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।

(३) प्रधान क्रिया के विस्तार के साथ—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत। तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः॥

('ममुः' का विस्तारसूचक शब्द 'तनौ' की विशेषता बताता है।)

क्रियाविशेषण उपवाक्य

क्रिया विशेषण उपवाक्य क्रियाविशेषण अव्यय का समानधर्मा होता है और क्रिया की विशेषता बताता है। यह क्रियाविशेषण अव्यय के स्थान पर आता है और उसी के समान यह भी काल, स्थान, प्रकार, कारण और कार्य सूचित करता है। उसी की रचना के समान इसकी भी रचना होती है।

कालवाचक—क्रियाविशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य के अन्दर आई हुई क्रिया का काल बताता है। यथा—सन्दरं निवेदय 'यावत् दंष्ट्रान्तर्गतो न भवसि'। स्थानवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य किसी स्थान में किसी वस्तु की स्थिति अथवा किसी स्थान के प्रति वस्तु की गति सूचित करता है।

'यत्र यत्र धूमः' तत्र तत्र वह्निः।

प्रकारवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित बातें सूचित करते हैं—

(१) समानता—यह 'इव' और 'यथा' से प्रकट की जाती है। यथा—

पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पिता 'इव'।

(२) मात्रा अथवा सम्बन्ध (समानता, अगाधता आदि)। यथा—

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे (वितरति)

बहुव्रीहि समासों को क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर प्रयुक्त कर क्रियाविशेषण वाक्यों को सूचित किया जाता है। यथा—

राजा सविलक्षस्मितम् आह 'यथा विलक्षस्मितं स्यात्' तथा आह।

कार्य-कारण वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित बातें सूचित करते हैं:—

(१) कारण—कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके 'त्वं हि तस्य प्रियेति'।

(२) शर्त। यथा—श्रूयतां 'यदि कुतूहलम्'।

(३) विरोध (Concession) शर्त। यथा—

'काममननुरूपमस्या वपुषो वल्कलं' न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति।

(४) अभिप्राय, प्रयोजन। यथा—

दोषं तु मे कंचित् कथय येन स प्रतिविधीयेत।

(५) परिणाम। यथा—

कुमार, तथा प्रयतेथाः 'यथा नोपहस्यसे जनैः'।

आश्रित उपवाक्य बनाने वाले शब्द

संज्ञा उपवाक्य—'इति', 'यथा', इति-सहित अथवा इति-रहित 'यद्'।

विशेषण उपवाक्य—यद् शब्द के रूप।

क्रियाविशेषण उपवाक्य—

(१) कालवाचक—यदा, यावत्, यावत् न······तावत्, यदा, यदा।

(२) स्थानवाचक—यत्र, यत्र यत्र।

(३) प्रकारवाचक—इव, यथा—तथा वा तद्वत् यथैव······तथैव, यथा यथा।

(४) कारणवाचक—(क) इति यतः······ततः, यद्, यथा······तथा, हि।

(ख) यदि······तर्हि, तद्; ततः, चेद्, अथ।

(ग) यद्यपि, कामं (तु, पुनः)।

(घ) येन, इति, यथा, मा (लृट्, लुट् अथवा लोट् के साथ)।

(ङ) यथा, येन।

संयुक्त वाक्य

संयुक्त वाक्य में दो अथवा दो से अधिक साधारण अथवा मिश्रित वाक्य होते हैं जो आपस में एक दूसरे के समानाधिकरण होते हैं।

संयुक्त वाक्य के अंशों में परस्पर निम्नलिखित सम्बन्ध हो सकते हैं—

(१) सामूहिक सम्बन्ध (Cumulative relation)। यह सम्बन्ध च तथा अपि च से सूचित किया जाता है। इसमें दो या दो से अधिक कथन साथ-साथ जोड़े जा सकते हैं।

(२) प्रतिकूल सम्बन्ध (Adversative relation)। यह सम्बन्ध वा, तु पुनः, परन्तु आदि अव्ययों से सूचित किया जाता है। इसमें दूसरा वाक्य पूर्वगामी वाक्य का विरोधी होता है।

(३) आनुमानिक सम्बन्ध। यह सम्बन्ध अतः, तत्, ततः से सूचित किया जाता है। इसमें किसी पूर्वगामिनी घटना से किसी परिणाम अथवा कार्य का प्रादुर्भूत होना दिखलाया जाता है।

सामूहिक सम्बन्ध (Cumulative relation)

सामूहिक सम्बन्ध में उक्तियों का तीन प्रकार से परस्पर सम्मिलन हो सकता है—

(१) उक्ति के ऊपर समान बल देकर—

तृणमिव वने शस्ये (सा) त्यक्ता न 'चापि' अनुशोचिता।

(२) दूसरे उपवाक्य के ऊपर अधिक बल देकर—

पुण्यानि नामग्रहणान्यपि मुनीनां किं पुनः दर्शनानि।

(३) विचारों में उत्तरोत्तर उत्थान दिखलाकर—

उदेति पूर्वं कुसुमं 'ततः' फलम्।

प्रतिकूल सम्बन्ध

प्रतिकूल सम्बन्ध तीन प्रकार से सूचित किया जाता है—

(१) बहिष्कार सूचक समुच्चय बोधक अव्ययों द्वारा, जिनसे पहिली परिस्थिति का बहिष्कार प्रकट होता है:—

व्यक्तं नास्ति कथम् 'अन्यथा' वासंत्यपि तां न पश्येत्।

(२) Alternative Conjunction—द्वारा, वा-वा; किम्-अथवा; उत; आहो, आहोस्वित्:—

सूतो 'वा' सूतपुत्रो 'वा' यो 'वा' को 'वा' भवाम्यहम्।

(३) Arrestive Conjunctions के द्वारा, तु, किन्तु, परम्, पुनः, तथापि, केवलम्—

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं 'तु' पौरुषम्।

अनुदिवसं परिहीयसे अंगैः 'केवलं' लावण्यमयी छाया त्वां न मुंचति।

आनुमानिक सम्बन्ध (Illative relation)

आनुमानिक सम्बन्ध अतः, तस्मात्, ततः, अनेन हेतुना, एवं च, तेन हि, शब्दों से सूचित किया जाता है। यथा—

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां भर्तृमतीं जनोऽन्यथा विशंकते, 'अतः' प्रमदा स्वबंधुभिः परिणेतुः समीपे इष्यते ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को ढूंढ़ा जा सकता है ।

वाक्यों में शब्दों का क्रम—

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्राक्कथन में यह पहले ही कहा जा चुका है कि संस्कृत रचना में कौन पद कहाँ रखा जाय इसका कोई विशेष नियम नहीं है । इस भाषा की रचना में क्रमविशेष नाम की वस्तु का कोई विशेष महत्व नहीं है । इसका कारण यह है कि संस्कृत भाषा Inflectional language है अर्थात् संस्कृत में अव्ययों के अतिरिक्त सभी शब्दों में प्रत्यय लगे रहते हैं और प्रत्ययों से स्वयं ही मालूम हो जाता है कि एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ क्या सम्बन्ध है । उदाहरणार्थ विद्या विनय देती है इसका अनुवाद संस्कृत में यदि निम्नलिखित किसी भी क्रम से किया जाय तो उससे अर्थ में किसी प्रकार का भेद नहीं होगा :—(१) विद्या विनयं ददाति । (२) विनयं विद्या ददाति । (३) ददाति विद्या विनयम् । (४) विद्या ददाति विनयम् । (५) विनयं ददाति विद्या । (६) ददाति विनयं विद्या ।

इस प्रकार यद्यपि उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने सुसम्बद्ध व्याकरण के नियमों से सुसंयत संस्कृत वाक्यों में रचना के मूलविषय के समन्वय और क्रम स्वयं सिद्ध हो जाते हैं, तथापि संस्कृत-रचना में यथेष्ट स्वेच्छाचारिता का अवसर नहीं रहता है । संस्कृत साहित्य की परम्परा देखने से ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि रचना में पद-विन्यास क्रम के लिए संस्कृत व्याकरण में विशेष निश्चित नियमों के अभाव में भी अन्य भाषाओं की तरह उसमें किसा न किसी परम्परागत क्रम का पालन अवश्य होता है । अतएव छात्रों की सुविधा के लिए अब पदयोजना के कुछ उपयोगी और आवश्यक निर्देश दिए जाते हैं ।

(१) सर्व प्रथम उल्लेखनीय साधारण नियम यह है कि शब्दों का विन्यास इस प्रकार किया जाय कि एक विचार दूसरे विचार के पीछे अपने प्राकृतिक क्रम में आता चले । तात्पर्य यह है कि आश्रित पद साधारणतः अपने प्रधान पद के पूर्व आवें, जिन पर वे निर्भर हैं अथवा जिनसे वे नियमित हैं । इस प्रकार विशेषण और विशेष्य को, सकर्मक क्रिया और उसके कर्म को, क्रियाविशेषण तथा क्रिया को, सम्बन्धसूचक अव्यय तथा उसके सम्बन्धियों को जहाँ तक हो सके बिलकुल समीप रखना चाहिए ।

(२) जब किसी वाक्य में केवल एक कर्ता और एक क्रिया हो तो कर्ता को पहले और क्रिया को बाद में रखना चाहिए । यथा—रघुपतिस्तिष्ठति ।

(३) विशेषण को विशेष्य के पूर्व ही रखना चाहिए । यथा—'उपात्तविद्यः' 'गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः तं प्रपेदे' ।

(४) जब किसी वाक्य में सार्वनामिक तथा गुणबोधक विशेषण दोनों ही आते हैं तो, सार्वनामिक विशेषण पहले रक्खा जाता है । यथा—तस्याम् अतिदारुणायां हत-

निशायाम्' परन्तु कभी-कभी गुणबोधक विशेषण सार्वनामिक विशेषण के पूर्व आता है। यथा—विचक्षणो वर्मा सः।

(५) समानाधिकरण संज्ञा पहले आनी चाहिए—

अथ 'मीनकेतनसेनानायकेन' 'दक्षिणानिलेन मन्मथानलमुज्ज्वलयन्'।

(६) सम्बन्धवाची अर्थात् षष्ठी विभक्ति से युक्त पद सम्बन्धवान् अर्थात् जिससे उसका सम्बन्ध होता है उससे पहले आता है। यथा—

'जगतः' पितरौ वन्दे।

(७) जब संज्ञा की विशेषता बताने वाला कोई विशेषण होता है तब प्रायः निम्नलिखित क्रम रहता है—

विशेषण, षष्ठी, तब संज्ञा। यथा—अयम् अस्या देव्याः सन्तापः।

(८) सम्बोधन पद को वाक्य में सर्वप्रथम रखना चाहिए। यथा—हे कृष्ण! जलमानय।

(९) विधेय को सर्वदा वाक्य के अन्त में ही रखना चाहिए।

(१०) वर्णनों में 'अस्' और 'भू' धातुएँ सर्व प्रथम आती हैं। यथा—

'अस्ति' गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः।

'अभूत्' अभूतपूर्वो राजा चिन्तामणिर्नाम।

(११) कभी-कभी बल देने के लिए, प्रभावशाली बनाने के लिए विधेय को पहले रक्खा जाता है। यथा—

'भवितव्यमेव' तेन।

(१२) प्रश्नवाचक शब्दों का प्रयोग न होने पर प्रश्नवाचक वाक्यों में भी यही बात होती है। यथा—जात 'अस्ति' ते माता 'स्मरसि' वा तातम्।

(१३) उपसर्ग जब कर्मप्रवचनीय बनकर आते हैं, तब जिस शब्द पर शासन करते हैं उसके बाद आते हैं। यथा—अयोध्याम् 'अनु' जलानि वहति।

(१४) सह, ऋते, विना, अलम् आदि शब्द भी जिन शब्दों पर शासन करते हैं, उनके बाद प्रयुक्त होते हैं। यथा—रामेण सह ईश्वरात् ऋते, मां विना संतोषाय अलम्।

(१५) कालवाचक, स्थानवाचक, प्रकारवाचक, कारणवाचक तथा परिणाम-वाचक क्रियाविशेषण अव्यय प्रायः उन शब्दों के समीप रक्खे जाते हैं जिनकी वे विशेषता बताते हैं। यथा—

हंसधवलशयन 'तले' निषण्णं पितरमपश्यम्।

'आलोकमात्रेणैव' (कारणवाची क्रियाविशेषण) अपगतश्रमो मनसि (स्थानवाची क्रियाविशेषण) एवम् (प्रकारवाची क्रियाविशेषण) अकरोत्।

(१६) जब क्रियाविशेषण शब्द विधेय की विशेषता बतलाते हैं तब वे कर्ता के पहले भी प्रयुक्त हो सकते हैं, कर्ता के बाद में भी प्रयुक्त हो सकते हैं अथवा यदि कोई कर्म हो तो कर्म के बाद भी परन्तु अन्त में नहीं प्रयुक्त हो सकते।

अनेकवारम् (समय) अपरिस्खलयम् (प्रकार) मां परिष्वजस्व।

प्रजानामेव भूत्यर्थम् (अभिप्राय) स ताभ्यो (स्थान) बलिमग्रहीत्।

(१७) 'च', 'वा', 'तु', 'हि', 'चेत्'—ये कभी भी प्रारम्भ में नहीं प्रयुक्त होते। 'अथवा', 'अथ', 'अपि च', 'किंच' प्रायः आदि में आते हैं। इतरेतर-सम्बन्ध-बोधक-समुच्चयवाची अव्यय, जैसे, यथा-तथा, यावत्-तावत्, यद्-तद्, यतः-ततः जिन उपवाक्यों को जोड़ते हैं उनके प्रारम्भ में आते हैं। यथा—

यावत् स द्रष्टुं गच्छति तावत् पलायितः।

यत् करोषि तत् अहं पश्यामि।

यथा रूपं तथा गुणः।

यतः दुःखम् भवति ततः सुखम् अपि भवति।

(१८) प्रश्न-वाचक शब्द वाक्य के प्रारम्भ में आते हैं। यथा—

'अपि' कुशली ते गुरुः।

'कच्चिद्' वा वचः।

(१९) हा, हन्त, अहह आदि विस्मयादि-बोधक अव्यय तथा अहो, अये, अयि सम्बोधन सूचक शब्द प्रायः वाक्य के आरम्भ में आते हैं। यथा—

हा हतोऽस्मि।

हन्त! त्वम् अपि माम् तिरस्करोषि?

अहो! महाराज! विद्वान् भूत्वा कथम् अयमेवं ब्रवीति।

अयि देवि! किं रोदिषि।

भोः सभ्याः! इदं शृणुत।

(२०) पुनरुक्त शब्द अथवा किसी पूर्व प्रयुक्त शब्द का सजातीय शब्द यथा-सम्भव उसी शब्द के समीप रक्खा जाना चाहिए। यथा—

गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः।

एकविंश सोपान

हिन्दी-संस्कृत अनुवाद के उदाहरण

(१)

(१) नौकर भी वे ही हैं जो दौलत से गरीबी में अधिक सेवा करते हैं।
भृत्या अपि ते एव ये सम्पत्तेः विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते।

(२) बोलने पर विरुद्ध नहीं बोलते।
उच्यमाना न प्रतीपं भाषन्ते।

(३) दान के समय भागकर पीछे छिप जाते हैं।
दानकाले पलाय्य पृष्ठतो निलीयन्ते।

(४) देखते हुए भी अन्धे के समान हैं, सुनते हुए भी बहरे हैं।
पश्यन्तोऽपि अन्धा इव, शृण्वन्तोऽपि बधिरा इव वर्तन्ते।

(५) बड़े युद्ध में आगे झण्डे के समान दीखते हैं।
महाहवेष्वग्रतो ध्वजभूता इव लक्ष्यन्ते।

(२)

(१) आप तेज के आधार हैं।
त्वमसि महसां भाजनम्।

(२) धन विपत्तियों का घर है।
सम्पदः पदमापदाम्।

(३) निपुणता और सत्यवादिता वार्तालाप से प्रकट होती है।
पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते।

(४) चाहे वे लोग चाहे यह आदमी इनाम ले।
ते वा अयं वा पारितोषिकं गृह्णातु।

(५) तू और सौमदत्ति और कर्ण रहें।
त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव तिष्ठत।

(६) या तो वे लोग या हम लोग इस कठिन कार्य को कर सकते हैं।
ते वा वयं वा इदं दुष्करं कार्यं सम्पादयितुं शक्नुमः।

(७) माता, मित्र और पिता—ये तीनों स्वभाव से ही हितैषी होते हैं।
माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम्।

(८) मुझे न तो मेरे पिता बचा सकते हैं, न मेरी माता, न आप ही।
न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती।

(९) शूद्रक नाम का राजा था।
आसीद्राजा शूद्रको नाम।
(१०) राजा और रानी मागधी दोनों ने उनके पाँव पकड़े।
तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी।
(११) दिन और रात, दोनों गोधूलियाँ और धर्म भी मनुष्यों के कार्य को जानते हैं।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम्।

(३)

(१) रोगी की सावधानी से सेवा करो।
यत्नादुपचर्यतां रुग्णः।
(२) मैं समझता हूँ कि यह बात उसको स्वीकार होगी।
यथाहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतं भवेत्।
(३) पक्षी आकाश में उड़कर जाते हैं।
खगाः खमुद्गच्छन्ति।
(४) आपका छात्रों पर अधिकार है।
प्रभवति भवान् छात्राणाम्।
(५) घर जाने का समय हो रहा है, जल्दी करो।
प्रत्यासीदति गृहगमनकालः, त्वर्यताम्।
(६) यदि मैं काम नहीं करूँगा तो ये लोग नष्ट हो जाएँगे।
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
(७) नीति की व्यवस्था ठीक न होने पर सारा संसार विवश हो दुःखित होता है।
विपन्नायां नीतौ सकलमवशं सीदति जगत्।
(८) जहाँ जाकर नहीं लौटते, वह मेरा परमधाम है।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम।
(९) भाग्य से ही ऐसा युद्ध क्षत्रियों को मिलता है?
सुखिनः क्षत्रियाः लभन्ते युद्धमीदृशम्।
(१०) ऐसे पुत्र से क्या लाभ, जो पिता को दुःख दे।
पुत्रेण किम्, यः पितृदुःखाय वर्तते।

(४)

(१) उत्तर दिशा में पर्वताधिपति हिमालय है।
अस्त्युत्तरस्यां दिशि हिमालयो नाम नगाधिराजः।
(२) जो अन्न देता है, वह स्वर्ग जाता है।
योऽन्नं ददाति स स्वर्गं याति।

(३) लालच छोड़ो, क्षमा धारण करो, घमण्ड त्यागो।
तृष्णां छिन्धि, भज क्षमां जहि मदम्।

(४) यह आसन है, कृपया बैठ जाइये।
एतदासनमास्यताम्।

(५) भगवान करे, तुम अपने ही अनुरूप पुत्र पाओ।
पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपम्।

(६) ईश्वर से इच्छा करता हूँ कि सफल होऊँ।
कृतार्थो भूयासम्।

(७) मेरा कोई दोष बतलाओ ताकि वह सुधारा जाय।
दोषं तु मे कंचित् कथय येन स प्रतिविधीयेत।

(८) आपके भोजन करने का समय है।
कालः यद् भवान् भुंजीत।

(५)

(१) शकुन्तला आज विदा हो जायगी।
यास्यत्यद्य शकुन्तला।

(२) किस ऋतु के बारे में गाऊँगा।
अथ कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि।

(३) पता नहीं, मरूँगा कि जीऊँगा।
मरणजीवितयोरन्तरे वर्ते।

(४) तुम थोड़ी देर में अपने घर पहुँच लोगे।
क्षणात् स्वगृहे वर्तिष्यसे।

(५) न जाने क्या विचार करेंगे।
न जाने किं प्रतिपत्स्यते।

(६) मैं इसे पढ़ूँगा ही।
अहम् एतत् पठिष्याम्येव।

(७) मैं पहाड़ भी उखाड़ डालूँगा।
अहं पर्वतमपि उत्पाटयामि।

(६)

(१) छिन्नमूल होने पर भी कभी विषाद नहीं करना चाहिए।
विपरिच्छिन्न-मूलोऽपि न विषीदेत् कथंचन।

(२) चाहे असमय टूट जाय, पर संसार में किसी के सामने न झुके।
अप्यपर्वाणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित्।

(३) हे संजय ! क्षत्रिय युद्ध के लिए और जय के लिए बनाया गया है ।
हे संजय ! क्षत्रियः युद्धाय जयाय च सृष्टः ।

(४) वह रोई, मलिन हुई, चिल्लाई, खिन्न हुई, घूमी, खड़ी विलाप करने लगी, चिंतित हुई, रोषित हुई ।
रुरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ, बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ, चकार रोषम् ।

(५) मालाओं को उसने बिगाड़ा, मुख को नोचा, वस्त्र को खींचा ।
विचकार माल्यं, चकर्त वक्त्रम्, विचकर्ष वस्त्रम् ।

(६) उसने दूसरे के दुःख के लिए विद्या नहीं पढ़ी ।
नाध्यैष्ट दुःखाय परस्य विद्याम् ।

(७) अधीर की तरह काम-सुख में लिप्त नहीं हुआ ।
अधीरवत् कामसुखे न ससंजे ।

(८) आँसू रोक, तुष्ट मन हो ।
नियच्छ वाष्पं भव तुष्टमानसो ।

(९) तेरा श्रम सफल हुआ ।
सफलः श्रमस्तव ।

(१०) इस राजमहल में अवन्तिसुन्दरी नामक एक यक्षिणी रहती है ।
अस्मिन् राजकुलेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति ।

(११) चतुःशाला में प्रवेश करें ।
चतुःशालं प्रविशावः ।

(७)

(१) आपको न दीखे हुए बहुत दिन हो गए ।
कापि महती वेला तवादृष्टस्य ।

(२) यह मुझे कुछ नहीं समझता ।
न मामयं गणयति ।

(३) उसकी याद करके मुझे शान्ति नहीं है ।
तं संस्मृत्य न मे शान्तिरस्ति ।

(४) नौकरों को प्रिय मित्रों के तुल्य मानता है ।
सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनो दर्शयते ।

(५) इसकी उत्कण्ठा बहुत बढ़ गई है ।
अतिभूमिं गतोऽस्या रणरणकः ।

(६) आपने यहाँ से सबको भगा दिया ।
कृतं भवता निर्मक्षिकम् ।

(७) प्रत्येक पात्र की देखभाल करो ।
प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः ।

(८) जो हित की बात नहीं सुनता वह नीच स्वामी है।
हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः।
(९) समय ज्ञात करने के लिए मुझसे कहा गया है।
वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि।
(१०) क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, बड़ी विपत्ति में पड़ा हूँ।
किं करोमि क्व गच्छामि, पतितो दुःखसागरे।

(८)

(१) वनियों का टका ही धर्म और टका ही कर्म है।
वणिजो वित्तधर्माणो वित्तकर्माणश्च भवन्ति।
(२) कौए की आवाज कानों को अच्छी नहीं लगती है।
काकानां रवो न श्रुतिसुखदः।
(३) गुणवान् को कन्या देनी चाहिए, यह माता-पिता का मुख्य विचार होता है।
गुणवते कन्या प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् पित्रोः प्रथमः संकल्पः।
(४) बड़े सवेरे बहेलियों के शोर से जगा दिया गया हूँ।
महति प्रत्यूषे शाकुनिक-कोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि।
(५) मुझे ऋषियों के तुल्य समझो।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यम्।
(६) पुराने कर्म-फलों को कौन उलट सकता है।
पुरातन्यः स्थितयः केन शक्यन्तेऽन्यथाकर्तुम्।
(७) गुणों से ही सर्वत्र स्थान बनाया जाता है।
पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते।
(८) तू मृत्यु से क्यों डरता है।
किं मृत्योर्बिभेषि।
(९) वह अभी तक अपने आप को नहीं सँभाल पाया।
स नाद्यापि पर्यवस्थापयति आत्मानम्।

(९)

(१) लोभ में पड़े हुए को कर्तव्य-अकर्तव्य का विचार नहीं होता।
कार्याकार्यविचारो लोभाक्रष्टस्य नास्त्येव।
(२) दिन के चोर ये बनिये खुश हो लोगों को लूटते हैं।
एते हि दिवसचौरा वणिजः मुदा जनं मुष्णन्ति।
(३) सारे दिन नाना प्रकार की धोखा-धड़ियों से लोगों के धन को हर कर कंजूस घर में मुश्किल से तीन कौड़ी खर्च करता है।
अखिलं दिनं विविधकूटमायाभिः जनानां धनं हृत्वा किराटः कष्टेन वराटक-त्रितयम् गृहे वितरति।

(४) वह द्वादशी को, श्राद्धके दिन, संक्रान्ति और चन्द्र-सूर्य के ग्रहणों में देर तक स्नान करता है, पर दान एक कौड़ी नहीं देता है।

स द्वादश्यां, पितृदिवसे, संक्रमणे, सोमसूर्ययोर्ग्रहणे सुचिरं स्नानं कुरुते; कपर्दिकामेकाम् न ददाति।

(५) हे भाई, सवेरे बेगार का दिन है, आज क्या करूँ।

भ्रातः, परं प्रभाते विष्टिदिनं किं करोम्यद्य।

(१०)

(१) धरोहर को देर तक रखना कठिन है।

कठिनम् चिरं न्यासपालनम्।

(२) हे साधु, देश और काल बुरा है, तो भी मैं तेरा दास हूँ।

विषमौ च देशकालौ साधोस्तव दासोऽहम्।

(३) पहले किसी मित्रने ही भद्रा के दिन कुछ धरोहर रखी।

पुरा केनापि मित्रेण विष्टिदिने किमपि न्यस्तम्।

(४) कंजूस बनियों के बिना भोगे खजानों के धनों से भरे घड़े, बाल-विधवाओं के दुःखदायक स्तन-तटों की तरह पड़े रहते हैं।

कदर्यवणिजां पूर्णाः निधानधनकुम्भाः बालविधवानाम् दुःखफलाः कुचतटा इव सीदन्ति।

(५) धरोहर सहित हाथ वाले पुरुष को देखकर धार्मिक कथा कहता है।

निःक्षेपपाणिं पुरुषं दृष्ट्वा संभाषणं कुरुते।

(६) भद्रा धरोहर के लिए क्षेमकारिणी कही गई है।

भद्रा निःक्षेपक्षेमकारिणी शस्ता।

(११)

(१) उल्लू के समान कंजूस का दर्शन मंगलकारक नहीं होता है।

उलूकस्येव लुब्धस्य न कल्याणाय दर्शनम्।

(२) उसी उपकार के लिए यह मेरा अपना परिश्रम है।

तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यमः।

(३) धन, भूमि, घर, स्त्री, जन्म भर का संचित सब कुछ कंजूस और वृद्ध का अन्त में दूसरे के लिए ही है।

धनं, भूमिगृहं, दाराः सर्वथाऽऽजन्मसंचितम्, परार्थमेव कदर्यस्य जीनस्य च पर्यन्ते।

(४) कंजूस अकस्मात् घर पर आए स्वजन को देखकर, गृहिणी से कलह के बहाने अनशन व्रत कर लेता है।

कदर्यः गृहे यदृच्छोपनतं स्वजनं दृष्ट्वा दारकलहव्याजेनानशनव्रतम् करोति।

(५) कंजूस अपने धन के नाश की रक्षा में बड़ा आचार्य है।
कदर्यः स्वधननिधनरक्षाचार्यवर्यः।

(१२)

(१) लोग मालिक की इच्छा के अनुसार चलते हैं।
प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते।
(२) वह सूर्य की पूजा करता है।
सः आदित्यमुपतिष्ठते।
(३) वे शब्द को नित्य मानते हैं।
ते शब्दं नित्यमातिष्ठन्ते।
(४) शेर छोटा होने पर भी हाथियों पर टूटता है।
सिंहः शिशुरपि निपतति गजेषु।
(५) शत्रुओं का सिर झुका देना।
अवनमय द्विषतां शिरांसि।
(६) मोहन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ।
मोहनः परीक्षामुदतरत्।
(७) प्रतिज्ञारूपी नदी पार कर ली।
निस्तीर्णा प्रतिज्ञासरित्।
(८) वह भात खाता है।
सः भक्तमभ्यवहरति।
(९) मैं तुम्हारा और अधिक क्या उपकार करूँ।
किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि।
(१०) उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है।
उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।

(१३)

(१) वह हाथ का तकिया लगाकर सोई।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी।
(२) महल के ऊपर से धुँआ निकलता है।
आक्रामति धूमो हर्म्यतलात्।
(३) मजदूरों को किराए पर रखता है।
कर्मकरानुपनयते।
(४) उसका एकान्त में मन लगता है।
स रहसि रमते।

(५) आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है ?
कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति ।

(६) हाथ से पटकी हुई भी गेंद उछलती है ।
पातितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।

(७) पुत्र पिता को प्रणाम करता है ।
स पितरं प्रणिपतति ।

(८) धैर्य धारण करो ।
धृतिमावह ।

(९) वह मुझ पर विश्वास करता है ।
स मयि प्रत्येति ।

(१०) स्त्रियों में बिना शिक्षा के भी पटुत्व देखा जाता है ।
स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वं संदृश्यते ।

(१४)

(१) अपने बड़ों के उपदेश की अवहेलना न करो ।
गुरूणामुपदेशान् माऽवमंस्थाः ।

(२) माता-पिता और गुरुजनों का सम्मान करना उचित है ।
पितरौ गुरुजनाश्च सम्माननीयाः ।

(३) वह सदैव मेरे उन्नति-मार्ग में रोड़ा अटकाता है ।
स मे समुन्नतिपथं सदैव प्रतिबध्नाति ।

(४) मैं उसके सामने नहीं झुकूँगा ।
नाहं तस्य पुरः शिरोऽवनमयिष्यामि ।

(५) उसकी मुट्ठी गरम करो, फिर तुम्हारा काम हो जायगा ।
उत्कोचं तस्मै देहि तेन तव कार्यं सेत्स्यति ।

(६) तुम सदा मन के लड्डू खाते हो ।
मनोरथमोदकप्रायानिष्टानर्थान् नित्यं भुङ्क्षे ।

(७) आजकल प्रत्येक मनुष्य अपना उल्लू सीधा करना चाहता है, दूसरों के हित की उसे चिन्ता नहीं ।
अद्यत्वे सर्वः स्वार्थमेव समीहते परहितं तु नैव चिन्तयति ।

(८) उन्होंने कई युग तक पृथ्वी को उठा रखा ।
स कतिपययुगानि यावत् पृथ्वीमुदस्थापयत् ।

(१५)

(१) उसके मुँह न लगना वह बहुत चलता-पुरजा है ।
तेन सार्कं नातिपरिचयः कार्यः, कितवोऽसौ ।

(१५)

(२) जिसका काम उसी को साजे, और करे तो ठेंगा बाजे।
यद् यस्योचितं तत् समाचरन् स एव शोभते इतरस्तु प्रवृत्तो लोकस्य हास्यो भवति।

(३) पक्षियों ने चहचहाना आरम्भ किया।
पक्षिणः कलरवं कर्तुमारभन्त।

(४) चन्द्रमा के निकलने पर अंधकार दूर हो गया।
आविर्भूते शशिनि अन्धकारस्तिरोऽभूत्।

(५) सूर्य निकल रहा है और अंधेरा दूर हो रहा है।
भानुरुद्गच्छति तिमिरश्चापगच्छति।

(६) स्कूल जाने का यही समय है।
विद्यालयं गन्तुमयमेव समयः।

(७) बड़े भाई की प्रतिकूल आज्ञा भी छोटे भाई को माननी चाहिए।
अनभिप्रेतेऽपि ज्यायसः आदेशे कनीयसा अवज्ञा न कार्या।

(८) राजा एक साथ बहुत शत्रुओं से न लड़े।
राजा युगपत् बहुभिररिभिर्न युध्येत।

(९) बुरों का साथ छोड़ और भलों की संगति कर।
त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।

(१०) विद्वान् गाल बजाने वाले नहीं होते।
विद्वांसोऽपि अविकत्थना भवन्ति।

(११) दैव को मूर्ख प्रमाण मानते हैं।
दैवं अविद्वांसः प्रमाणयन्ति।

(१२) बँधी हुई शिखा को फिर छोड़ने के लिए यह हाथ दौड़ रहा है।
शिखां मोक्तुं बद्धामपि पुनरयं धावति करः।

(१३) प्रतिज्ञा पर आरूढ़ होने के लिए यह चरण फिर चल रहा है।
प्रतिज्ञामारोढुं पुनरपि चलत्येष चरणः।

(१४) उत्सव में तल्लीन हम लोगों ने संध्या के बीतने को भी नहीं जाना।
उत्सवापहृतचेतोभिरस्माभिः सन्ध्याऽतिक्रमोऽपि नोपलक्षितः।

(१५) विरह में विषम-प्रतिकूल कामदेव शरीर को दुबला कर देता है।
विरह-विषमो वामः कामः तनुं तनूकरोति।

(१६) प्रिया से रहित इसके हृदय में चिन्ता आगई।
प्रिया-विरहितस्यास्य हृदि चिन्ता समागता।

(१६)

(१) प्राचीनकाल में जरासंध नामक कोई एक क्षत्रिय था। वह दुष्टाशय बड़े शूर क्षत्रियों को युद्ध में जीत कर अपने घर में बन्द करके प्रत्येक महीने में कृष्ण चतुर्दशी के दिन एक-एक को मार करके भैरव के लिए उनकी बलि करता था।

पुरा किल जरासंधो नाम कोऽपि क्षत्रियः आसीत्। स दुरात्मा महावीरान् क्षत्रियान् युद्धे निर्जित्य स्ववेश्मनि निरुध्य मासि-मासि कृष्णचतुर्दश्यां एकैकं हत्वा भैरवाय तेषां बलिम् अकरोत्।

(२) इस प्रकार सम्पूर्ण देश के क्षत्रियों का वध करने की दीक्षा लिए हुए, उस दुरात्मा के वध की इच्छा करने वाला श्रीकृष्ण, भीम तथा अर्जुन के साथ उसके घर में ब्राह्मण के वेष में प्रविष्ट हुआ।

एवं सकल-जनपद-क्षत्रियवधे दीक्षितस्य तस्य दुष्टाशयस्य वधम् अभिकाङ्क्षन् श्रीकृष्णः भीमार्जुनसहितः तस्य गृहं विप्रवेषेण प्रविवेश।

(३) वह तो उनको सचमुच ब्राह्मण ही समझकर दण्डवत् प्रणाम करके यथायोग्य आसनों के ऊपर बिठाकर मधुपर्क देकर पूजा करके, धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, किसलिए आप मेरे घर आए, यह कहिए।

स तु तान् वस्तुतो विप्रान् एव मन्वानो दण्डवत् प्रणम्य यथोचितम् आसनेषु समुपवेश्य मधुपर्कदानेन सम्पूज्य, धन्योऽस्मि, कृतकृत्योऽस्मि, किमर्थं भवन्तो मद्गृहम् आगताः तद्वक्तव्यम्।

(४) जो जो आपको इच्छित होगा वह सब आपको दूँगा, ऐसा कहा। यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उस राजा से कहा।

यद् यद् अभिलषितं तत्सर्वं भवतां कृते प्रदास्यामि इति उवाच। तद् आकर्ण्य भगवान् श्रीकृष्णः पार्थिवं तम् अब्रवीत्।

(५) भद्र! हम कृष्ण, भीम, अर्जुन युद्ध के लिए आए हैं। हमारे में से किसी एक को द्वन्द्वयुद्ध के लिए चुनो।

भद्र, वयं कृष्ण-भीमार्जुनाः युद्धार्थं समागताः। अस्माकम् अन्यतमं द्वन्द्वयुद्धार्थं वृणीष्व इति।

(१७)

(१) उस महाबली ने भी 'ठीक' ऐसा कहकर मल्लयुद्ध के लिए भीमसेन को चुना। पश्चात् भीम और जरासंध का भयंकर मल्लयुद्ध पच्चीस दिन हुआ। अन्त में उस भीमसेन ने उसके शरीर के दो हिस्से करके भूमि पर गिराए।

सोऽपि महाबलः 'तथा' इति वदन् द्वन्द्वयुद्धाय भीमसेनं वरयामास। अथ भीम-जरासंधयोः भीषणं मल्लयुद्धं पञ्चविंशतिवासरान् प्रवर्तते स्म। अन्ते स भीमः तस्य शरीरं द्विधा कृत्वा भूमौ निपातयामास।

(२) इस प्रकार बलवान जरासंध को पाण्डु के उस पुत्र द्वारा मरवाकर, जेलखाने में बन्द किए हुए राजाओं को श्रीकृष्ण ने छोड़ दिया।

एवं बलिष्ठं जरासन्धं पाण्डुपुत्रेण घातयित्वा तेन कारागृहीतान् पार्थिवान् वासुदेवो मोचयामास।

(१८)

(१) राजा ने उसको धन दिया।

नृपेण तस्मै धनं दत्तम्।

(२) कृष्ण के उपदेश से अर्जुन का मोह नष्ट हो गया।

कृष्णस्य उपदेशेन अर्जुनस्य मोहः नष्टः।

(३) उस मूर्ख बधिर को नौकर ने गला पकड़ कर बाहर निकाल दिया।

स बधिरो मन्दधीः परिजनेन गलहस्तिकया बहिः निस्सारितः।

(४) विरुद्ध भाषण सुनकर उस रोगी ने असह्य क्रोध से युक्त होकर नौकर को आज्ञा की।

प्रतिकूलं प्रतिवचनं श्रुत्वा स रोगी दुःसहेन कोपेन समाविष्टः परिजनम् आदिशत्।

(५) वह मित्र के पास जाकर, अनुकूल भाषण करके, बाद में उससे पूछ कर घर लौट आएगा।

स मित्रसकाशं गत्वा, अनुकूलं संभाष्य, पश्चात् तम् आपृच्छय गृहम् आगमिष्यति।

(६) इस प्यास से त्रस्त हाथियों के समूह को हरदिन यहाँ आना है।

अनेन गजयूथेन पिपासाकुलेन प्रत्यहम् अत्र आगन्तव्यम्।

(७) पेट के बिना हमारी गति नहीं।

उदरेण विना वयम् अगतिकाः।

(८) हाथी सूँड़ और पाँवों की रगड़ से सब पदार्थों को चूर कर रहा है।

करी कर-चरण-रदनेन अखिलं वस्तुजातं विदारयन्नास्ते।

(१९)

(१) गोदावरी नदी के तट पर एक विशाल सेमर का पेड़ है। वहाँ रात्रि में चारों ओर से आकर पक्षिगण निवास करते हैं। एक दिन रात के बीत जाने पर कुमुदिनीनायक चन्द्रमा जब अस्ताचल पर चले गए तब लघुपतनक नामक एक कौए ने यमराज की तरह भयङ्कर व सामने आते हुए एक बहेलिए को देखा।

अस्ति गोदावरी तीरे विशालः शाल्मलि तरुः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिदवसन्नायां रात्रावस्ताचलचूडा-वलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः कृतान्तमिव द्वितीयमटन्तं व्याधमपश्यत्।

(२) उसको देखकर सोचने लगा—आज प्रातःकाल ही यह अनिष्ट दर्शन हुआ है न जाने आज क्या होगा ? ऐसा विचार कर वह कौआ उसके पीछे-पीछे घबड़ाया हुआ चलने लगा।

तमवलोक्याचिन्तयत्—अद्य प्रातरेवाऽनिष्टदर्शनं जातं, न जाने किमनभिमतं दर्शयिष्यति ? इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः।

(३) इसके बाद उस बहेलिये ने चावल के कणों को छींट कर अपना जाल फैला दिया और पास में ही कहीं छिपकर बैठ गया। उसी समय अपने परिवार के साथ आकाश में जाते हुए चित्रग्रीव नामक कबूतरों के राजा की नजर उन चावल के कणों पर पड़ी। तब चित्रग्रीव तण्डुलकण के लोभी कबूतरों से कहा कि इस निर्जन वन में भला चावल के कणों की सम्भावना कहाँ ?

अथ तेन व्याधेन तण्डुलकणान्विकीर्य जालं विस्तीर्णम्। स च प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः। तस्मिन्नेव काले चित्रग्रीवनामा कपोतराजः सपरिवारो वियति विसर्पंस्तांस्तण्डुलकणानवलोकयामास। ततः कपोतराजस्तण्डुलकणलुब्धान्कपोतान्प्रत्याह—'कुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकणानां सम्भवः ?

(२०)

(१) यह द्वितीय आश्रम में प्रवेश करने का समय है।
कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयमाश्रमम्।

(२) हाय, देवी मेरा हृदय विदीर्ण होता है।
हा हा देवि स्फुटति हृदयम्।

(३) हाय, मुझ अभागे को धिक्कार है।
हंत, धिङ् मामधन्यम्।

(४) अथवा दूसरे किस व्यक्ति के कहने के अनुसार मैं व्यवहार करूँ।
कस्य वान्यस्य वचसि मया स्यातव्यम्।

(५) ज्यों ही मैंने एक विपत्ति का पार पाया त्यों ही मेरे ऊपर दूसरी आ उपस्थित हुई।
एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छामि तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे।

(६) सरोवर से इनके उड़ जाने के पूर्व ही मुझे इनसे समाचार प्राप्त कर लेना चाहिए।
यावदेते सरसो नोत्पतन्ति तावदेतेभ्यः प्रवृत्तिरवगमयितव्या।

(७) ज्यों ज्यों वह जवान होता गया त्यों त्यों सन्तानहीनताजनित उसका सन्ताप बढ़ता ही गया।
यथा यथा यौवनमतिचक्राम तथा तथा अनपत्यताजन्मा महानवर्धतास्य संतापः।

(८) चित्रकार द्वारा हमारी जीवन-घटना कहाँ तक चित्रित की गई है ?
कितन्तमवधिं यावदस्मच्चरितं चित्रकारेणालिखितम् ।

(९) चारों बहुओं में सीता उन्हें इतनी प्यारी थीं जितनी कि उनकी कन्या शान्ता ।
वधूचतुष्केऽपि यथैव शान्ता प्रिया तनूजास्य तथैव सीता ।

(१०) जाड़ा मुझको उतना नहीं सता रहा है जितना 'बाधति' शब्द ।
न तथा बाधते शीतं यथा बाधति बाधते ।

(११) जितना मुझे दिया गया उतना सब मैंने खा डाला ।
यावद् दत्तं तावद् भुक्तम् ।

(१२) मैं अपने भाई को घर से निकाल दूंगा क्योंकि वह बहुत ही दुराचारी है ।
अहं भ्रातरं गृहान्निष्कासयामि यत् सोऽतीव दुर्वृत्तः ।

(१३) ओहो तेरी वीरता कैसी स्पृहणीय है ।
अहो बतासि स्पृहणीयवीर्यः ।

(१४) योगियों को कोई भी भय नहीं है ।
योगिनां न किमपि भयम् ।

अनुवादार्थ गद्य-संग्रह

(१)

संसार में पाप कुछ भी नहीं है। वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनः-प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमञ्च पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मनः-प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा ? (चित्रलेखा)

संकेत—(१) संसार के रंगमञ्च पर—अवनिरङ्गे ।
दुहराता है—आवर्तयति ।
अपना स्वामी—स्वस्य प्रभुः ।
वह केवल साधन है—साधनमात्रं सः ।

(२)

मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। परन्तु व्यक्तियों के सुख के केन्द्र भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ सुख को मदिरा में देखते हैं, कुछ सुख को सत्कर्म में देखते हैं और कुछ दुष्कर्म में, कुछ सुख को त्याग में देखते हैं और कुछ संग्रह में, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। कोई भी व्यक्ति संसार में

अपनी इच्छानुसार ऐसा काम नहीं करेगा, जिससे दुःख मिले। यही मनुष्य की मनःप्रवृत्ति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है। संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम वही करते हैं जो हमें करना पड़ता है। (चित्रलेखा)

संकेत—(२) नहीं हो सकी और न हो सकती है—न भूता न भविष्यति। जो हमें करना पड़ता है—यद् विवशत्वेन विधेयं भवति।

(३)

आचार्य शिष्य को वेद पढ़ाकर अन्त में उपदेश देते हैं—सत्य बोलना, धर्म पर चलना, प्रमादवश स्वाध्याय मत छोड़ना। आचार्य को प्रिय-धन लाकर सन्तान-परम्परा को नष्ट न करना। सत्य में प्रमाद मत करना, मङ्गलकार्य में प्रमाद मत करना। ऐश्वर्यप्रद कार्य में प्रमाद मत करना, स्वाध्याय में प्रमाद मत करना। देवकार्य एवं माता-पिता के कार्य में प्रमाद मत करना। माता को देवता समझना, पिता को देवता समझना, आचार्य को देवता समझना, अतिथि को देवता समझना। श्रेष्ठ कार्य ही करना, इससे इतर नहीं। अपने आचार्यों के सुचरितों का अनुसरण करना, दूसरों का नहीं। अच्छे ब्राह्मणों के आसन में न बैठना। श्रद्धा से ही दान देना, अश्रद्धा से न देना। अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही दान देना, दान देते हुए लज्जा और सहानुभूति के भाव रखना। जब कभी किसी विषय में या आचार के सम्बन्ध में शङ्का हो तो वहाँ के ब्राह्मणों का, जो विचारशील, धर्मपरायण, साधु तथा कर्मवीर हों, अनुसरण करना। यह हमारी आज्ञा है, उपदेश है और यही वेद का रहस्य है, यही शिक्षा है। इस पर आचरण करना।

संकेत—(३) वेद पढ़ाकर—वेदमनूच्य। शिष्य को उपदेश देते हैं—अन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्य बोलना आदि—सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्य को···नष्ट न करना—आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्य में प्रमाद आदि—सत्यान्न प्रमदितव्यम्, कुशलान्न प्रमदितव्यम्, भूत्यै न प्रमदितव्यम्, स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम्। अपने आचार्यों के सुचरितों का अनुसरण करना, दूसरों का नहीं—यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। जो विचारशील आदि—ये तत्र संमर्शिनः, युक्ताः, आयुक्ताः, अलूक्षाः, धर्मकामाः स्युः यथा ते वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः। उपदेश है—एष उपदेशः। यही वेद का रहस्य है—एषोपनिषत्।

(४)

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम

भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं। कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का सञ्चार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है। (चिन्तामणि)

संकेत—(४) समकक्ष मानते हैं—समकक्षत्वेन मन्यामहे । ऊपर उठाकर-उन्नीय । इस भूमि पर पता नहीं रहता—भूमिमेतामारूढस्य मानवस्य आत्मावबोधोऽपि न जायते । लीन किए रहता है—विलाययति ।

(५)

दूध दही के रूप में परिणत होता है और पानी बर्फ के रूप में। उसी प्रकार ब्रह्म जगत् के रूप में बदल जाता है। उष्णता आदि दूध से दही बनने में सहायक होते हैं। दूध से ही दही बनेगा, पानी से ही बर्फ, अन्य वस्तु से नहीं। इससे विदित होता है कि वस्तु विशेष से ही वस्तु विशेष बनती है, अन्य वस्तुएँ उसमें सहायक का काम करती हैं। ब्रह्म सर्वसाधन-सम्पन्न है, अतएव विचित्र शक्तियों के मेल से एक ब्रह्म से ही विचित्र परिणामयुक्त यह जगत् उत्पन्न होता है। (ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य)

संकेत—(५) दही के रूप में बदल जाता है—दधिरूपेण परिणमते । बर्फ के रूप में—हिम रूपेण । मेल से—योगात् । उत्पन्न होता है—उत्पद्यते ।

(६)

मनुष्य और मनुष्य के बीच, वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा विचारों को व्यक्त करती है, पर विचारों से अधिक सम्बन्ध उसके वक्ता के भाव, इच्छा, प्रश्न आदि मनोभावों से रहता है। भाषा सदा किसी न किसी वस्तु के विषय में कुछ कहती है, वह वस्तु चाहे बाह्य भौतिक जगत् की हो अथवा सर्वथा आध्यात्मिक और मानसिक। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। भाषा का शरीर प्रधानतः उन व्यक्त ध्वनियों से बना है, जिन्हें वर्ण कहते हैं। इसके अतिरिक्त संकेत, मुख-विकृति और स्वर-विकार भी भाषा के अङ्ग माने जाते हैं। स्वर, बल-प्रयोग और उच्चारण का वेग या प्रवाह भी भाषा के

संकेत—(६) घरेलू बोली से—परिवारेषूपयुज्यमानया गिरा ।

तनिक भी—नाममात्रमपि ।

विशेष अङ्ग है। 'बोली' से अभिप्राय स्थानीय और घरेलू बोली से है, जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलने वालों के मुख में ही रहती है। (भाषाविज्ञान, श्यामसुन्दरदास)

(७)

सच्चा कवि वही है, जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य-जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है। भाव और विभाव दोनों पक्षों के सामंजस्य के बिना पूरी और सच्ची रसानुभूति हो नहीं सकती। काव्य का विषय सदा 'विशेष' होता है, 'सामान्य' नहीं, वह 'व्यक्ति' सामने लाता है, 'जाति' नहीं। काव्य का काम है कल्पना में बिम्ब या मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं। (चिन्तामणि)

संकेत—(७) हृदय की पहचान हो—हृदयं परिचिनोति।
लीन होने की—लयस्य।
सामने लाता है—उपस्थापयति।
उपस्थित करना—उपस्थापनम्।
लाना—आहरणम्।

(८)

यौवन के आरम्भ में शास्त्र-जल के प्रक्षालन से निर्मल हुई बुद्धि भी प्रायः मलिन हो जाती है। युवकों की दृष्टि धवलता को बिना छोड़े भी रागयुक्त होती है। यौवन के समय उत्पन्न रज के भ्रमवाला स्वभाव अपनी इच्छा से पुरुष को, सूखे पत्ते को आँधी की तरह, बहुत दूर उड़ा ले जाता है। इन्द्रियरूपी हरिण को हरने वाली इस उपभोग मृगतृष्णा का कभी अन्त नहीं होता। नवयौवन से कषाययुक्त पुरुष के मन को जल की तरह वही आस्वादित विषय अतिमधुर लगते हैं। विषयों में अत्यन्त आसक्ति विपथ में ले जाने वाले दिशामोह की तरह पुरुष को नष्ट करती है। आप जैसे ही उपदेशों के पात्र होते हैं। स्फटिक मणि में चन्द्र-किरणों की तरह, निर्मल मन में उपदेश के गुण प्रविष्ट होते हैं। अयुक्त को गुरु का वचन, कान में स्थित जल की तरह, निर्मल भी बड़ा शूल पैदा करता है। दूसरे को तो हाथी के शंख आभूषण की तरह वह अधिकतर शोभा देता है।

(कादम्बरी)

संकेत—(८) मलिन हो जाती है—कालुष्यमुपयाति। धवलता को बिना छोड़े भी—अनुज्झितधवलतापि। लगते हैं—आपतन्ति। पैदा करता है—उपजनयति।

(९)

विषयरस को न चखे तुम्हारे लिए यही उपदेश का काल है। कामदेव के बाण के प्रहार से जर्जरित हृदय पर उपदेश, जल की तरह ढल जाता है। दुःस्वभाव वाले के लिए

कुल व्यर्थ है और शिक्षा अविनय के लिए है। क्या चन्दन से उत्पन्न आग जलाती नहीं। क्या प्रशांत करने वाले जल के साथ बडवानल अधिक प्रचण्ड नहीं होता? गुरुओं का उपदेश पुरुषों के लिए समस्त मलों को धो सकने वाला बिना जल का स्नान है। बाल की सफेदी आदि विरूपता के बिना जरा-रहित वृद्धता है, बिना सुवर्ण बना अग्रामीण कर्णाभरण है, प्रकाश बिना आलोक है, न उद्वेग करने वाला जागरण है।

संकेत—(९) विषय रस को·····काल है—अयमेव अनास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य। गुरुओं का ·····स्नान है—गुरूपदेशः पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्। बाल को·····वृद्धता है—अनुपजातादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्। बिना ·····आभूषण है—असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्। न·····है—नोद्वेगकरः प्रजागरः।

(१०)

भगवान् आत्रेय ने अग्निवेश से कहा कि जैसे रथ की धुरी अपनी विशेषताओं से युक्त होती है और वह उत्तम तथा सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी चलते-चलते समयानुसार अपनी शक्ति के क्षीण हो जाने से नष्ट हो जाती है, इसी प्रकार बलवान् मनुष्य के शरीर में आयु स्वभावतः शनैः शनैः उपयोग में आने पर अपनी शक्ति के क्षीण होने पर नष्ट हो जाती है। जैसे वही धुरी बहुत बोझ लदने से, ऊंचे-नीचे मार्ग पर चलने से, पहिए के टूटने से, कील निकल जाने से और तेल न देने से बीच में ही टूट जाती है, इसी प्रकार शक्ति से अधिक काम करने से, उचित रूप से भोजन न करने से, हानिकारक भोजन खाने से, इन्द्रियों के असंयम से, कुसंगति से, विष आदि के खाने से और अनशन आदि से बीच में ही आयु समाप्त हो जाती है इसको अकाल मृत्यु कहते हैं।

(चरक संहिता)

संकेत—(१०) धुरी—अक्षः। समयानुसार·····से—यथाकालम् स्वशक्तिक्षयात्। बहुत बोझ·····है—अतिभाराधिष्ठितत्वात्, विषमपथात्, चक्रभङ्गात्, कीलमोक्षात्, तैलादानात्, अन्तरा व्यसनमापद्यते। शक्ति से अधिक काम करने से—अयथाबलमारम्भात्।

(११)

पहले लक्ष्मी को ही देखो। खड्गों के कमल वन में रहने वाली भ्रमरी इस लक्ष्मी ने क्षीरसागर से पारिजात के पल्लवों से राग को, चन्द्रखण्ड से पूरी कुटिलता को उच्चैःश्रवा से चंचलता को, कालकूट से बेहोश करने की शक्ति को, वारुणी से मद को, कौस्तुभमणि से निष्ठुरता को लिया। इस संसार में ऐसा अजनबी कोई नहीं, जैसी कि यह नीचा। मिलने पर भी कठिनाई से रक्षित होती है। न परिचय को मानती, न कुलीनता की प्रतीक्षा करती, न रूप को देखती, न विद्वत्ता को गिनती, न त्याग का

आदर करती, न विशेषज्ञता का विचार करती है। यह लक्ष्मी गन्धर्व-नगर की लेखा जैसी देखते-देखते नष्ट हो जाती है। कठोरता सिखलाने के लिए ही मानो तलवार की धारों पर निवास करती है, बहुरूपता धारण करने के लिए ही मानो नारायण के शरीर में आश्रित है। सरस्वती द्वारा स्वीकृत पुरुष-बाहुको ईर्ष्या से आलिंगन नहीं करतीं, दाता को दुःस्वप्न की तरह याद नहीं करती है। (कादम्बरी)

संकेत—(११) खड्गों······वाली—खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी। जैसी कि यह नीचा—यथेयमनार्या। कठोरता······आश्रित है—पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति, विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रितां नारायणमूर्तिम्।

(१२)

कुमार, अधिकतर, इस प्रकार अतिकुटिल, कठिन प्रयत्न से सहने लायक, दारुण राजतंत्र में, इस यौवन में, वैसा प्रयत्न करना, जिसमें कि लोगों द्वारा उपहसित न किये जाओ, सज्जनों द्वारा निन्दित न हो, गुरुओं द्वारा धिक्कारे न जाओ, सुहृदों द्वारा उलाहना न दिए जाओ, विद्वानों द्वारा सोचे न जाओ, बुराइयों द्वारा प्रतारित न किए जाओ, धूर्तों द्वारा वंचित न हो, वनिताओं द्वारा प्रलोभित न हो, मद से नचाए न जाओ, कामदेव द्वारा उन्मत्त न किए जाओ, विषयों द्वारा प्रेरित न हो, राग द्वारा खींचे न जाओ, सुख द्वारा अपहृत न हो। (कादम्बरी)

संकेत—(१२) वैसा प्रयत्न करना—तथा प्रयतेथा।

(१३)

मित्र, बहुत कहने से क्या? सब प्रकार से तुम स्वस्थ हो। सर्प के विष के वेग से भी भयंकर कामदेव के इन बाणों के तुम लक्ष्य नहीं हुए, अतः दूसरे को भले उपदेश दो। उपदेश का काल दूर चला गया। धैर्य का अवसर जाता रहा। अध्यात्म-ज्ञान की वेला गत हो चुकी। ज्ञान द्वारा नियमन का समय बीत चुका। मेरे अंग पक से रहे हैं, हृदय उबल सा रहा है, नेत्र भुन से रहे हैं, शरीर जल सा रहा है। यहाँ जो करना चाहिए, उसे आप करें। (कादम्बरी)

संकेत—(१३) बहुत कहने से क्या—किं बहूक्तेन। दूसरे को भले उपदेश दो—सुखमुपदिश्यते परस्य। यहाँ······करें—अत्र यत्प्राप्तकालं तत्करोतु भवान्।

(१४)

शब्द उसे कहते हैं जिसके उच्चारण से तत्तद्गुणादिविशिष्ट वस्तु का ज्ञान हो। व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन हैं—रक्षा, ऊह (तर्क) आगम, लघुत्व और असन्देह। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। वेद के मन्त्रों में उचित स्थान पर विभक्ति आदि के परिवर्तन के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। यह आदेश भी है

कि ब्राह्मण को निःस्वार्थ भाव से धर्म-स्वरूप षडङ्ग वेद पढ़ना और जानना चाहिए। व्याकरण द्वारा शब्दार्थ ज्ञान में संशय नहीं रहता कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है। (महाभाष्य-नवाह्निक)

संकेत—(१४) व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन—रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्। आदेश भी है—आगमः खल्वपि ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।

(१५)

शब्द-ज्ञान के बिना संसार में कोई ज्ञान नहीं हो सकता। समस्त ज्ञान शब्द से मिश्रित होकर ही प्रकाशित होता है। शब्द और अर्थ ये दोनों एक ही आत्मा के अपृथक् भेद हैं। अनेकार्थ शब्दों के अर्थों का निर्णय इन साधनों से होता है—संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, प्रयोजन, कारण, चिह्न, विशेष, अन्य शब्दों की संनिधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, लिङ्ग विशेष, स्वर आदि। (वाक्यपदीय)

संकेत—(१५) शब्द ज्ञान के बिना······

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।

शब्द और अर्थ ये दोनों—

एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक् स्थितौ।

अनेकार्थ शब्दों के अर्थों का निर्णय ·····

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य संनिधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

(१६)

मनुष्यों की हिंसावृत्ति की सीमा नहीं है। पशु-हत्या उनके लिए खेल है। वे खिन्न मन के विनोद के लिए महावन में आकर इच्छानुसार और निर्दयतापूर्वक पशुवध करते हैं। जिस प्रकार भौतिक सुख की इच्छा से मनुष्य उत्साहपूर्वक जीवहिंसा करके अपने हृदय को अति निष्ठुर क्रूरता को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार पार-लौकिक सुख की आशा से वे महोत्सवपूर्वक निरपराध पशुओं को इष्ट देवता के आगे बलि देकर अपनी क्रूरता का परिचय देते हैं। ये निरन्तर अपनी उन्नति को चाहते हुए प्रतिक्षण सर्वथा स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं। ये न धर्म को मानते हैं, न सत्य का अनुष्ठान करते हैं, अपितु तृणवत् स्नेह की उपेक्षा करते हैं, विश्वासघात करते हैं, पापाचरण से थोड़ा भी नहीं डरते, झूठ बोलने में नहीं लज्जित होते, सर्वथा अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं। (प्रबन्धमंजरी, उद्भिज्जपरिषत्)

संकेत—(१६) सीमा नहीं है—निरवधिः। खेल—आक्रीडनम्। प्रकट करते हैं—प्रकटयन्ति। उपेक्षा करते हैं—उपेक्षन्ते। डरते हैं—बिभ्यति। नहीं लज्जित होते—न लज्जन्ते।

सिद्ध करना चाहते हैं—सिसाधयिषन्ति।

(१७)

प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। श्रद्धा का व्यापारस्थल विस्तृत है, प्रेम का एकान्त। प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार। प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण। प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं, श्रद्धा में तीन। प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं, पर श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है। प्रेम एकमात्र अपने ही अनुभव पर निर्भर रहता है, पर श्रद्धा दूसरों के अनुभव पर भी जगती है। (चिन्तामणि)

संकेत—(१७) इतना ही बस है—पर्याप्तमेतदेव। अच्छा लगे-रोचेत। किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण—कमपि विषयमवलम्ब्य समुन्नतया। एकान्त—एकान्तम्। जगती है—उद्बुध्यते।

(१८)

वह उन्मत्ता सी, अन्धी सी, बहरी सी, गूंगी सी, सूनी सी, सारे इन्द्रियों के बिना सी, मूर्छित सी, भूत-पकड़ी सी, यौवन-सागर के चंचल तरंगों में लीन सी, रागरूपी रस्सी से वेष्टित सी, कंदर्प के पुष्पवाणों से जड़ी सी, शृङ्गार-भावना के विषरस से घूमते सिर वाली सी, तरुण के रूप की परिभावना रूपी शल्य से कीलित सी, मलयानिल द्वारा जीवन हरी जाती सी, सखियों से कहने लगी—हा प्रिय सखी अनंगलेखा, मेरी छाती पर अपने पाणि-पंकज को रख, विरह का संताप दुस्सह हो रहा है। मुग्धा मदनमंजरी, चंदन-जल से अंगों को भिगो। भोली वसंतसेना, मेरे केशों को बाध। चंचल तरंगवती, अंग में केवड़े के केसर को बिखेर। सुन्दरी मदनमालिनी, सेवार का कंकण बना। चपला चित्रलेखा, मेरे चित्तचोर को चित्रपट पर लिख। भामिनी विलासवती, अवयवों में मोती के चूर्ण डाल। रागिनी रागलेखा, कमलिनी के पत्रों से स्तनों को ढांक दे। भगवती निद्रा, आओ, मेरे ऊपर अनुग्रह करो। दूसरी इन्द्रियों को धिक्कार।

(सुबंधु, वासवदत्ता)

संकेत—(१८) जड़ी सी—कीलितेव। केशों को बांध—संवृणु केशपाशम्। अंग में केवड़े के केसर को बिखेर—विकिरांगेषु कैतकधूलिम्। चित्तचोर को चित्रपट पर लिख—चित्रपटे विलिख चित्तचौरम्। मेरे ऊपर अनुग्रह करो—अनुगृहाण माम्।

(१९)

यहाँ न कलिकाल है, न असत्य है और न कामविकार है। यह त्रिलोक से वन्दित है, गायों से अधिष्ठित है, नदी, स्रोत और प्रपातों से युक्त है, पवित्र है, उपद्रव-रहित है। यहाँ मलिनता हवि-धूम में है, चरित्र में नहीं। मुख की लालिमा तोतों में है, क्रोध में नहीं। तीक्ष्णता कुशाग्रों में है, स्वभाव में नहीं। चंचलता कदली-दलों में है, मनों में नहीं। भ्रमण (भ्रान्ति) अग्नि-प्रदक्षिणा में है, शास्त्रों के विषय में भ्रान्ति नहीं। मुख-विकार वृद्धावस्था के कारण है, धन के अभिमान से नहीं। (कादम्बरी)

संकेत—(१९) यहाँ··· नहीं—यत्र मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु। मुख··· नहीं—मुखरागः शुकेषु न कोपेषु। वृद्धावस्था के कारण—जरया। धन के अभिमान से नहीं – न धनाभिमानेन।

(२०)

विभाव तथा व्यभिचारिभाव आदि के द्वारा परिपोष को प्राप्त होने वाला, स्पष्ट अनुभावों के द्वारा प्रतीत होने वाला, स्थायिभाव सुख-दुःखात्मक रस होता है।

इनमें से इष्ट विभावादि के द्वारा स्वरूप-सम्पत्ति को प्रकाशित करने वाले शृङ्गार, हास्य, वीर, अद्भुत और शान्त ये पाँच सुख-प्रधान रस हैं। अनिष्ट विभावादि के द्वारा स्वरूप-लाभ करने वाले करुण, रौद्र, बीभत्स और भयानक ये चार दुःखात्मक रस हैं। कुछ आचार्यों के द्वारा जो सब रसों को सुखात्मक बतलाया जाता है वह प्रतीति के विपरीत है। मुख्य विभावों से उत्पन्न काव्य के अभिनय में प्राप्त विभाव आदि से उत्पन्न हुआ भी भयानक, बीभत्स, करुण अथवा रौद्ररस आस्वादन करने वालों की कुछ अवर्णनीय सी क्लेशदशा को उत्पन्न कर देता है। इसीलिए भयानक आदि रसों से सामाजिकों को घबराहट होती है। सुखास्वाद से तो किसी को उद्वेग नहीं होता है। और जो इन करुणादि रसों से भी सहृदयों में चमत्कार दिखलाई देता है वह रसास्वाद के समाप्त होने के बाद यथास्थित जैसे-तैसे पदार्थों को दिखलाने वाले कवि और नटजनों के कौशल के कारण होता है क्योंकि वीरता के अभिमानी जन भी सिर को काट डालने वाले, प्रहार-कुशल वैरी से भी विस्मय का अनुभव करते हैं। सम्पूर्ण अङ्गों को आनन्द प्रदान करने वाले, कवि और नटजनों की शक्ति से उत्पन्न चमत्कार के द्वारा धोखे में आकर बुद्धिमान लोग भी दुःखात्मक करुण आदि रसों में भी परमानन्दरूपता समझने लगते हैं। (नाट्यदर्पण)

संकेत—(२०) विभाव··· होता है—स्थायी भावः श्रितोत्कर्षो विभाव व्यभिचारिभिः। स्पष्टानुभावनिश्चेयः सुख-दुःखात्मको रसः॥ इनमें··· वाले—तत्रेष्टविभावादि-प्रथितस्वरूपसम्पत्तयः। वह प्रतीति के विपरीत है—तत् प्रतीति-बाधितम्। सुखास्वाद··· होता है—न नाम सुखास्वादादुद्वेगो घटते। वीरता के··· करते हैं—विस्मयन्ते हि शिरश्छेदकारिणापि प्रहारकुशलेन वैरिणा शौण्डीरमानिनः। सम्पूर्ण····· हैं—अनेनैव

च सर्वाङ्गाह्लादकेन कविनटशक्तिजन्मना चमत्कारेण विप्रलब्धाः परमानन्दरूपतां दुःखात्मकेष्वपि करुणादिषु सुमेधसः प्रतिजानते ।

(२१)

कविगण तो सुख-दुखात्मक संसार के अनुरूप ही रामादि के चरित्र की रचना करते समय सुख-दुःखात्मक रसों से युक्त ही रचना करते हैं । पन्ने का माधुर्य जैसे तीखे आस्वाद से और अधिक अच्छा प्रतीत होता है इसी प्रकार दुःख के आस्वाद से मिलकर सुखों की अनुभूति और भी अधिक आनन्ददायिनी बन जाती है । और सीता के हरण, द्रौपदी के केश और वस्त्रों के खींचे जाने, हरिश्चन्द्र की चाण्डाल के यहाँ दासता, रोहिताश्व के मरण, लक्ष्मण के शक्तिभेदन, मालती के मारने के उपक्रम आदि के अभिनय को देखने वाले सहृदयों को सुखकर आस्वाद कैसे हो सकता है ? और अनुकार्यगत करुणादि विलापादियुक्त होने के कारण निश्चित रूप से दुःखात्मक ही होते हैं । यदि उनको अनुकरण में सुखात्मक माना जाय तो वह सम्यक् अनुकरण नहीं हो सकता है । विपरीत रूप में प्रतीत होने से राम के वृत्त का यथार्थ अनुकरण नहीं बनेगा । और इष्ट जन के विनाश से दुःखियों के सामने करुणादि का वर्णन किए जाने अथवा अभिनय किए जाने पर जो सुखास्वाद होता है वह भी वास्तव में दुःखास्वाद ही होता है । दुःखी व्यक्ति दूसरे दुःखी व्यक्ति की दुःख-वार्ता से सुख सा अनुभव करता है और प्रमोद की वार्ता से उद्विग्न होता है । इसलिए भी करुण आदि रस दुःखात्मक ही होते हैं ।

(नाट्यदर्पण)

संकेत—(२१) सुख-दुःखात्मक रसों······हैं—सुख-दुःखात्मकरसानुविद्धमेव ग्रथ्नन्ति । पन्ने का माधुर्य—पानकमाधुर्यम् । तीखे आस्वाद से—तीक्ष्णास्वादेन । देखने वाले······हो सकता है—पश्यतां सहृदयानां को नाम सुखास्वादः ? दुःखात्मक ही होते हैं—दुःखात्मका एव । और इष्टजन······होता है—योऽपीष्टादिविनाशदुःखवतां करुणे वर्ण्यमानेऽभिनीयमाने वा सुखास्वादः सोऽपि परमार्थतो दुःखास्वाद एव । दुःखी······होता है—दुःखी हि दुःखितवार्तया सुखमभिमन्यते, प्रमोदवार्तया तु ताम्यति ।

(२२)

विश्रृङ्खल वाणी वाले कवियों की, रसादि में तात्पर्य की अपेक्षा किए बिना ही काव्यरचना की प्रवृत्ति देखने से ही हमने चित्रकाव्य की कल्पना की है । उचित काव्यमार्ग का निर्धारण कर दिए जाने पर आधुनिक कवियों के लिए तो ध्वनि से भिन्न और कोई काव्यप्रकार है ही नहीं । रसादितात्पर्य के बिना परिपाकवान् कवियों का व्यापार ही शोभित नहीं होता । रसादितात्पर्य होने पर तो कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो अभिमत रस का अङ्ग बनाने पर चमक न उठे । अचेतनपदार्थ भी कोई ऐसे नहीं हैं जो कि ढंग से, उचित रस के विभावरूप से अथवा चेतन व्यवहार के सम्बन्ध द्वारा रस का अङ्ग न बन सकें । जैसा कि कहा भी गया है—अनन्त काव्य जगत् में केवल कवि ही एक

प्रजापति है। उसे जैसा अच्छा लगता है वह विश्व उसी प्रकार बदल जाता है। यदि कवि रसिक है तो यह सारा जगत् रसमय हो जाता है और यदि वह वैरागी है तो यह सब ही नीरस हो जाता है। सुकवि काव्य में अचेतन पदार्थों को भी चेतन के समान और चेतन पदार्थों को भी अचेतन के समान जैसा चाहता है वैसा व्यवहार कराता है। इसलिए पूर्णरूप से रस में तत्पर कवि की ऐसी कोई वस्तु नहीं हो सकती है जो उसकी इच्छा से उसके अभिमत रस का अङ्ग न बन जाय अथवा इस प्रकार उपनिबद्ध होकर चारुत्वातिशय को पोषित न करे। (ध्वन्यालोक)

संकेत—(२२) विशृङ्खल वाणी वाले कवियों को—विशृङ्खलगिरां कवीनाम्। कल्पना की है—परिकल्पितम्। ध्वनि से……नहीं—नास्त्येव ध्वनिव्यतिरिक्तः काव्यप्रकारः। अनन्त……बदल जाता है—अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः। यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥ यदि कवि……जाता है—शृङ्गारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्। स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्॥ सुकवि……है—भावानचेतनानपि चेतनवच्चेतनानचेतनवत्। व्यवहारयति यथेष्टं सुकविः काव्ये स्वतन्त्रतया।

(२३)

हम कवि लोग किसी के राजत्व, वीरता, तेजस्विता और धनाढ्यता की परवाह नहीं करते हैं। हम लोग किसी के साभिमान भ्रूभंग को और कोपयुक्त गर्व की बर्बरता को नहीं सहन कर सकते हैं। उसका पृथ्वी पर ऐसा राज्य नहीं है, जैसा कि हमारा साहित्य-जगत् पर। उसके खरीदे हुए गुलाम भी उसकी इच्छा होते ही हाथ जोड़कर उसके सामने खड़े नहीं हो जाते, जैसे कि हमारे सामने इच्छा होते ही पद, वाक्य, छन्द, अलंकार, रीतियाँ, गुण और रस उपस्थित हो जाते हैं। वह अशर्फी देकर भी दूसरों को उतना सन्तुष्ट नहीं कर सकता, जितना की हम केवल कविता से सन्तुष्ट कर सकते हैं। हमारी वीररस की कविता को सुनकर मरता हुआ भी युद्ध में खड़ा हो जाता है। जिसके भाग्य में चिरस्थायिनी कीर्ति होती है, वही हमारा आदर करता है।

(शिवराजविजय)

संकेत—(२३) परवाह नहीं करते हैं—गाढोआमहे। साभिमान भ्रूभंग को—साभिमानभ्रूभङ्गन्। कोपयुक्त……हैं—कोपाञ्चितगर्वबर्बरतां न सहामहे। ऐसा—तादृशम्। साहित्यजगत् पर-सारस्वतसृष्टौ। खरीदे……ही-क्रीत-दासा अपि तदीहासमकालमेव। अशर्फी देकर भी—दीनारसंभारैरपि। उतना……सकता—न तथा तोषयितुमलम्। मरता हुआ भी-म्रियमाणोऽपि।

(२४)

कुछ समय बाद वर्षा ऋतु आई। उस समय आकाश रूपी सरोवर में कामदेव की स्वर्ण और रत्नजटित नौका की तरह, आकाशरूपी महल के मुख्य द्वार की रत्न-माला

के तुल्य, आकाशरूपी कल्पवृक्ष की सुन्दर कली के तुल्य, कामदेव की रत्न-जटित क्रीडा-यष्टि के तुल्य, इन्द्रधनुषरूपी लता शोभित हुई। क्यारीरूपी खानों में उछलते हुए पीले हरे मेढकरूपी मोहरों से मानो वर्षा ऋतु बिजली के साथ शतरंज खेल रहा था। (वासवदत्ता)

संकेत—(२४) स्वर्ण······की तरह—कनकरत्ननौकेव। आकाशरूपी······के तुल्य—नभःसौधतोरणरत्नमालिकेव। कली के तुल्य-कलिकेव। इन्द्रधनुषरूपी लता—इन्द्रधनुर्लता। क्यारी···या—केदारिका—कोष्ठिकासु समुत्पतद्भिः पीतहरितैर्दर्दुरैर्नयद्यूतैरिव चक्रीड विद्युता समं घनकालः।

(२५)

याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी को ब्रह्म का ज्ञान था, किन्तु कात्यायनी सामान्य ज्ञानवाली स्त्री थी। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा—मैं संन्यास लेना चाहता हूँ और तुम्हें कुछ बताना चाहता हूँ। मैत्रेयी ने कहा-यदि यह सारी पृथिवी धन से भर जाय तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया-नहीं, नहीं। धन से अमरत्व की कोई आशा नहीं है। तब मैत्रेयी ने कहा—जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उसको लेकर क्या करूँगी। जिससे अमरत्व प्राप्त हो ऐसा ज्ञान मुझे दीजिए। याज्ञवल्क्य ने कहा—पति, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, ब्राह्मण, क्षत्रिय, जनता, देवता, वेद और प्राणियों के हित के लिए ये वस्तुएँ प्रिय नहीं होती हैं, वरन् अपनी आत्मा की भलाई के लिए ये वस्तुएँ प्रिय होती हैं। इसलिए आत्मा को देखो, सुनो, मनन और चिन्तन करो। आत्मा के देखने, सुनने, मनन और चिन्तन से सब कुछ ज्ञात हो जाता है। (-बृहदारण्यक उप०)

संकेत—(२५) संन्यास लेना चाहता हूँ—प्रव्रजिष्यन् अस्मि। तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी—स्यां न्वहं तेनामृता। धन से अमरत्व की कोई आशा नहीं—अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन। हित के लिए—कामाय। अपनी आत्मा की भलाई के लिए-आत्मनस्तु कामाय। आत्मा को देखो····· आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। आत्मा को देखने···आत्मनि दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्।

(२६)

पर्वत की कन्दराओं से निकली हुई वायु वृक्षों को नचाती हुई सी, मत्त कोकिलों की ध्वनि से गान सी कर रही है। सुगन्धित कमल जल में तरुण सूर्य के तुल्य चमक रहे हैं। वायु एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमती हुई अनेक रसों का आस्वादन करके आनन्दित सी घूम रही है। भौरा फूलों का रसास्वादन कर प्रेम-मत्त हो पुष्पों में ही लीन है।

संकेत—(२६) नचाती हुई सी—नर्तयन्निव। गान सी कर रही है—गायतीव। वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर—पादपाद् पादपं। घूमती हुई—गच्छन्। आस्वादन करके—आस्वाद्य। घूम रही है—वाति। बुलाते हुए से प्रतीत होते हैं—आह्वयन्त इव भान्ति।

अनुवादार्थ गद्य-पद्य-संग्रह

(१) स्वैरिणो विविधाश्च लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च । महद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम् । नार्हसि मामन्यथा संभावयितुमविशिष्टमिव । (हर्षचरित)

(२) एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति । (कादम्बरी)

(३) अभिजातमहिमिव लंघयति । शूरं कण्टकमिव परिहरति । विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति । मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति । परस्परविरुद्धं चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम् । (कादम्बरी)

(४) सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहुमन्यन्ते : योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति । (कादम्बरी)

(५) सखे पुण्डरीक, नैतदनुरूपं भवतः । क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः । धैर्यधना हि साधवः । किं यः कश्चन प्राकृत इव विक्लवीभवन्तमात्मानं न रुणत्सि ? क्व ते तद्धैर्यम् ? क्वासाविन्द्रियजयः ? क्व तद्वशित्वम् ? क्व तत्कुलक्रमागतं ब्रह्मचर्यम् ? क्व ते गुरूपदेशाः ? (कादम्बरी)

(६) सर्वथा निष्फला प्रज्ञा, निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यासः, निरर्थकः संस्कारः, निरुपकारको गुरूपदेशविवेकः, निष्प्रयोजना प्रबुद्धता, इदमत्र भवादृशा अपि रागाभिषङ्गैः कलुषी क्रियन्ते, प्रमादैश्चाभिभूयन्ते । (कादम्बरी)

(७) तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा इव कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका नवमालिका नाम कन्यका । (दशकुमारचरित)

---

(१) स्वैरिणो—मनमानी । प्रवादाः—किंवदंतियाँ ।

(२) दुराचारया—दुराचारिणी द्वारा । परिगृहीता—पकड़े गए ।

(३) अभिजातम्—कुलीन को । अहिमिव—साँप की तरह । उपहसति—उपहास करती है ।

(४) अहर्निश......दैवतमिव—बराबर हाथ जोड़कर इष्टदेवता की तरह ।

(५) क्षुद्रजनक्षुण्ण—क्षुद्र जनों द्वारा सेवित । प्राकृत इव—साधारण मनुष्य की तरह । न रुणत्सि—नहीं रोकता है । कुलक्रमागतम्—वंशपरंपरा से आया हुआ ।

(६) निर्गुणः—व्यर्थ । निरुपकारकः—अनुपकारक । रागाभिषङ्गैः—राग के संसर्ग से । अभिभूयन्ते—पराजित होवें ।

(७) प्रत्यादेश—प्रत्याख्यान । सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका—सुकुमारता में नव-मालिका (चमेली) को मात करने वाली ।

(८) अविश्वासता हि जन्मभूमिरलक्ष्म्याः। यावता च नयेन विना न लोकयात्रा स लोक एव सिद्धः नात्र शास्त्रेणार्थः। स्तनंधयोऽपि हि तैस्तैरुपायैः स्तनपानं जनन्या लिप्यते। (दशकुमार०)

(९) न शक्नोमि चैनामत्र पित्रोरनभ्यनुज्ञयोपयम्य जीवितुम्। अतोऽस्यामेव यामिन्यां देशमिमं जिहासामि, को वाहम्, यथा त्वमाज्ञापयसि। (दशकुमार०)

(१०) तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु तया सह तानि तान्यपरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि न केवलं चन्द्रमाः कादम्बर्या सह, कादम्बरी महाश्वेतया सह, महाश्वेता तु पुण्डरीकेण सह, पुण्डरीकोऽपि चन्द्रमसा सह सर्वम् एव सर्वकाले सर्वसुखान्यनुभवन्तः परां कोटिमानन्दस्याध्यगच्छन्। (कादम्बरी)

(११) अलमनया कथया। संह्रियतामियम्। अहमप्यसमर्थः श्रोतुम्। अतिक्रान्तान्यपि संकीर्त्यमानान्यनुभवसमां वेदनामुपजनयन्ति सुहृज्जनस्य दुःखानि। (काद०)

(१२) लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः, यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति। (हर्षचरित)

(१३) अहो मे कृतापकारेणापि विधिनोपकृतिरेव कृता, यदयं लोचनगोचरतां नीतः समुद्रः। तदत्र देहमुत्सृज्य प्रियाविरहाग्निं निर्वापयामि। (वासवदत्ता)

(१४) अथ सहर्षं समुत्थाय मकरन्दस्तां तमालिकामाहूय विदितवृत्तान्तामकरोत्, सा तु तस्मै कृतप्रणामा तां पत्रिकामुपानयत्। अथ मकरन्दस्तमादाय पत्रिकां विस्रस्य स्वयमेवावाचयत। (वासवदत्ता)

(१५) एतदपि सुविदग्धजनजलभरितशृङ्गकजलप्रहारमुक्तसीत्कारमनोहरं वारविलासिनीजनविलसितमालोकयतु प्रियवयस्यः। (रत्नावली)

(१६) तावदेतत् खलु मलयमारुतान्दोलितमुकुलायमानसहकारमंजरीरेणुपटलप्रतिबद्धपटवितानं मत्तमधुकरमुक्तझंकारमिलितकोकिलालापसंगीतसुखावहं तवागमनदर्शितादरमिव मकरन्दोद्यानं लक्ष्यते। (रत्नावली)

(१७) हन्त हन्त, संप्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं

---

(८) अलक्ष्म्याः—दरिद्रता की। स्तनंधयोऽपि—दुधमुहा बच्चा भी।
(९) यामिन्यां—रात में। जिहासामि—छोड़ देना चाहता हूँ।
(११) वेदनाम्—दुःख को।
(१२) तिर्यञ्चोऽपि—पशु-पक्षी भी। एवमाचरन्ति—ऐसा करते हैं।
(१३) निर्वापयामि—बुझाऊंगा।
(१४) आहूय—बुलाकर। विस्रस्य—खोलकर।
(१५) वारविलासिनी—वारांगना।
(१७) अद्यावसितम्—आज समाप्त हो गया। जीर्णारण्यम्—पुराना जंगल।

रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः। कष्टप्रायं शरीरम्। अशरणोऽस्मि। किं करोमि? का गतिः? (उत्तररामचरित)

(१८) तात जानकि! किं करोमि? दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलं हतजीवितं मां मन्दभागिनीं न परित्यजति। (उत्तररामचरित)

(१९) कुमार, कृतं कृतमश्वेन। तर्जयन्ति विस्फारितशरासनाः कुमारमायुधीयश्रेणयः। दूरे चाश्रमपदमितः। तदेहि, हरिणप्लुतैः पलायामहे। (उत्तरराम०)

(२०) एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते। सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते। (अभिज्ञानशाकुन्तल)

(२१) तौ कुशलवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्म वस्तुतः परिगृह्य पोषितौ परिरक्षितौ च वृतचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्याः सावधानेन परिपाठितौ। समनन्तरञ्च गर्भादेकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीं विद्यामध्यापितौ। (उत्तरराम०)

(२२) हा दयित माधव! परलोकगतोऽसि स्मर्तव्यो युष्माभिरयं जनः। न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति। (मालतीमाधव)

(२३) अलमत्यन्तशोकावेगेन। वीरपुरुषोचितां विपत्तिमुपगते पितरि त्वमपि तदनुरूपेणैव वीर्येण शोकसागरमुत्तीर्य सुखी भव। (वेणीसंहार)

(२४) यद्येवं त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिदं चेतस्तत्प्रतीकारजलावगाहनाय। तदहं गत्वा तातवधविषण्णमानसं कुरुपतिं सैनापत्यस्वयंग्रहणप्रणयसमाश्वासनया मन्दसंतापं करोमि। (वेणीसंहार)

(२५) आः दुरात्मन्, द्रौपदीकेशाम्बरकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रापसद, चिरस्य खलु कालस्य मत्संमुखीनमागतोऽसि। क्षुद्रपशो, क्वेदानीं गम्यते। अपि च, भो भो राधेय-दुर्योधन-सौबल-प्रभृतयः पाण्डवविद्वेषिणश्चापपाणयो मानधनाः, शृण्वन्तु भवन्तः। (वेणीसंहार)

---

(१८) हतजीवितम्—हतभागा यह जीवन। मां मन्दभागिनीम्—मुझ अभागिनी को।

(१९) कृतमश्वेन—रहने दो घोड़े को। आयुधीयश्रेणयः—शस्त्रधारियों की पंक्ति।

(२०) सहकार—आम। अतिमुक्तलता—माधवीलता। पल्लव—पत्र।

(२१) कल्पेन—शास्त्रविधि से।

(२३) शोकसागरमुत्तीर्य—शोक रूपी समुद्र को पार कर।

(२४) त्वरते—जल्दी कर रहा है। मन्दसंतापं करोमि—संताप कम करता हूँ।

(२५) मत्संमुखीनमागतोऽसि—मेरे सम्मुख आये हो।

(२६) आः, का शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम् ? वत्स, न भेतव्यं न भेतव्यम् । कः कोऽत्र भोः ? रथमुपनय । (वेणीसंहार)

(२७) श्रियोऽपि दानोपभोगाभ्यामुपयोगं नयेत् । न लोभं कुर्यात् । बहुलोभानुगतः किरणकलापोऽपि संतापयति जनम् । (नलचम्पू)

(२८) यत्र च विपत्त्राः सन्ति साधवो न तु तरवः, विजृम्भमाणकमलानि सरांसि न जनमनांसि, कुवलयालंकाराः क्रीडादीर्घिका न सीमन्तिन्यः, विपदाक्रान्तानि सरित्कूलानि न कुलानि । (नलचम्पू)

(२९) यत्र, शास्त्रे शस्त्रे च वेदे वैद्ये च भरते भारते च कल्पे शिल्पे च प्रधानो, धनी, धन्यो, धान्यवान्, विदग्धो वाचि, मुग्धो मुखे, स्निग्धो मनसि, वसति निरन्तरमशोको लोकः । (नलचम्पू)

(३०) स्वयमेवोत्पद्यन्ते एवंविधाः कुलपांसवो निःस्नेहाः पशवो येषां क्षुद्राणां प्रज्ञा पराभिसन्धानाय न ज्ञानाय, पराक्रमः प्राणिनामुपघाताय नोपकाराय, धनपरित्यागः कामाय न धर्माय, किं बहुना, सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय । (काद॰)

(३१) अति प्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि । अलमप्रभुरस्म्यात्मनः । सीदति मे हृदयम् । अन्धकारतामुपयाति चक्षुः । अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैवोपपादयेत् । (काद॰)

(३२) तस्य तरुषण्डस्य मध्ये मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः क्वचित् त्र्यम्बकवृषभविषाणकोटिखण्डिततटशिलाखण्डं क्वचिदैरावतदशनमुसल-खण्डितकुमुददण्डमच्छोदं नाम सरो दृष्टवान् । (काद॰)

(३३) कीटोऽपि सुमनःसङ्गादारोहति सतां शिरः ।
अश्माऽपि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥

---

(२६) छायामप्याक्रमितुम्—छाया को लांघ सकने में भी ।

(२७) बहुलोभानुगतः—बहुलोभानुगत (बहुत लोभी या बहुत सूर्य में अवस्थित) ।

(२८) विपत्त्राः—बिना पत्र या विपद । विजृम्भमाणकमलानि—फूलते कमलों वाले, फैलते मल वाले । कुवलय—कमल, खराब वलय । विपदाक्रान्तानि—पक्षियों के चरण, विपत्ति से आक्रान्त ।

(३०) अभिसन्धान—धोखा ।

(३१) अवसन्न—समाप्त । सीद्—दुःखित होना ।

(३२) तरुषण्ड—वृक्षवन । त्र्यम्बकवृषभ-शिवजी का बैल । विषाण—सींग । ऐरावत—इन्द्र का हाथी ।

(३३) अश्माऽपि-पत्थर भी ।

(३४) गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति, ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः ।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः, समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥

(३५) इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥

(३६) विपदि धैर्यमथाऽभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाऽभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

(३७) निर्वाणदीपे किमु तैलदानं चौरे गते वा किमु सावधानम् ।
वयो गते किं वनिताविलासः पयोगते किं खलु सेतुबन्धः ।

(३८) गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥

(३९) शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ।

(४०) निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि ॥

(४१) परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥

(४२) संलापितानां मधुरैर्वचोभिर्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम् ।
आशावतां श्रद्दधतां च लोके किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति ॥

(४३) प्राक्पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥

(४४) दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम् ॥

(४५) नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः ।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः ॥

---

(३४) आस्वाद्यतोयाः—पीने योग्य जल वाली ।

(३५) इज्या-यज्ञ । धृतिः-धैर्य ।

(३६) सदसि-सभा में ।

(३८) आटोप—कृत्रिम वेष ।

(३९) मतिमतां—बुद्धिमानों को ।

(४०) सत्त्वेषु—जीवों पर । वेश्मनि—घर में ।

(४२) आशावताम्—आशा रखने वाले लोगों को ।

(४३) प्राक्—पहले । पृष्ठमांसम्—पीठ का मांस । कलम्—सुमधुर । रौति—गुनगुनाता है । अशङ्कः—निर्भय ।

(४५) बदरिकाकाराः—बेर के फल की तरह ।

(४६) तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥

(४७) मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति ।
अपि निर्वाणमायाति नाऽनलो याति शीतताम् ॥

(४८) सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम् ।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः ॥

(४९) वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं, द्रुमालयं पक्वफलाम्बुभोजनम् ।
तृणानि शय्याः, परिधानवल्कलं न वन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥

(शाकुन्तले)

(५०) यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥

(५१) पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

(५२) शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥

---

(४६) अर्थोष्मणा—धन की गर्मी से ।

(४७) कार्पण्यम्—दीनता । निर्वाणमायाति—बुझ जाती है ।

(४८) चर्मावृत—चर्म से आच्छादित ।

(५०) स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः—अन्तर्निरुद्ध आँसुओं के उद्गम के कारण गद्गद । वैक्लव्यम्-व्याकुलता । अरण्यौकसः—जंगल में रहने वाले का । तनयाविश्लेषदुःखैः—बेटी की जुदाई के दुःखों से ।

(५१) प्रियमण्डना-अलंकारों को पसन्द करने वाली । कुसुमप्रसूतिसमये—पुष्पों के उत्पन्न होने के समय ।

(५२) प्रियसखीवृत्तिम्-प्यारी सखी का सा बर्ताव । सपत्नीजने-सौतों में । विप्रकृता-तिरस्कृत । प्रतीपम्-प्रतिकूल । दक्षिणा-उदार । अनुत्सेकिनी-गर्वरहित । वामाः-प्रतिकूल आचरण करने वाली । कुलस्याधयः—कुल के लिए मानसिक रोग की भाँति कष्टदायक ।

(५३) अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात्प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनम्
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥

(५४) अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥

(कुमारसम्भवे)

(५५) अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥

(५६) अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥

(५७) लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः ।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥ ५७ ॥

(५८) भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥

(रघुवंशे)

(५९) कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम् ।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः ॥

(६०) क्वचित्पथा संचरते सुराणां क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च ।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ॥

(६१) सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥

(६२) त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥

---

(५६) अनन्तरत्नप्रभव— अनन्त रत्नों के उत्पादक । निमज्जति—विलीन हो जाता है ।

(५७) चन्द्रमरीचिगौरैः—चन्द्र-किरणों के समान श्वेत ।

(५८) भागीरथीनिर्झरसीकराणाम्—भागीरथी के निर्झर की फुहारों को ।

(५९) करभोरु—करभ सी ऊरुवाली ।

(६१) विचिन्वता—खोजते हुए ।

(६२) वक्तुमशक्नुवत्यः—बोलने में असमर्थ ।

(६३) क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥

मृच्छकटिकात्

(६४) सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ।
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृतः स जीवति ॥

(६५) एतत्तु मां दहति यद् गृहमस्मदीयं क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति ।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम् ॥

(६६) सत्यं न मे विभवनाशकृतास्ति चिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति ।
एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य
यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति ॥

(६७) दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो
निस्तेजाः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते ।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥

(६८) निवासश्चिन्तायाः परपरिभवो वैरमपरं
जुगुप्सा मित्राणां स्वजनजनविद्वेषकरणम् ।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात्परिभवो
हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च ॥

(६९) दारिद्र्यात्पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते
सुस्निग्धा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फारीभवन्त्यापदः ।
सत्त्वं ह्रासमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते
पापं कर्म च यत्परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ॥

---

(६३) सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव—नील कमलों से भीतर खचित श्वेतपंकजों की ।

(६५) संशुष्कसान्द्रमदलेखम्—सूखी हुई घनी दानजल की रेखा वाले । कालात्यये—समय के बीत जाने पर ।

(६६) नष्टधनाश्रयस्य—जिसके घर का धन नष्ट हो गया है ।

(६७) ह्रियम्—लज्जा को । परिभूयते—तिरस्कृत होता है । निर्वेदम्—दुःख को । शुचम्—शोक को ।

(६८) कलत्रात्—पत्नी से ।

(६९) सुस्निग्धाः—अत्यधिक स्नेहशील व्यक्ति ।
स्फारीभवन्ति—बढ़ जाती हैं । शीलशशिनः—शीलरूपी चन्द्रमा की ।

(७०) यद्दं नैव हि कश्चिदस्य कुरुते सम्भाषणे नादराद्
सम्प्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोक्यते ।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया
मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम् ॥

(नैनवे)

(७१) धिगस्तु तृष्णातरलं भवन्मनः समीक्ष्य पक्षान्मम हेमजन्मनः ।
तवार्णवस्येव तुषारसीकरैर्भवेदमीभिः कमलोदयः कियान् ॥

(७२) पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा न तेषु हिंसारस एष पूर्यते ।
धिगीदृशं ते नृपते कुविक्रमं कृपाश्रये यः कृपणे पतत्रिणि ॥

(७३) मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्, अहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि न ॥

(७४) मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम ।
निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्त्वयैव मातः सुतशोकसागरः ॥

(७५) ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा त्वया विचित्राङ्गि विपद्यते यदि ।
तदास्मि दैवेन हतोऽपि हा हतः स्फुटं यतस्ते शिशवः परासवः ॥

(७६) सुताः कमाहूय चिराय चूङ्कृतै-
विधाय कम्प्राणि मुखानि कं प्रति ।
कथासु शिष्यध्वमिति प्रमील्य स
स्रुतस्य सेकाद् बुबुधे नृपाश्रुणः ॥

(७७) अपां विहारे तव हारविभ्रमं करोतु नीरे पृषदुत्करस्तरन् ।
कठोरपीनोच्चकुचद्वयीतटत्रुटत्तरः सारवहारयोगजः ॥

नीति सम्बन्धी रोचक श्लोक

(कोष्ठकों के भीतर १९५४ आदि अङ्कों से हाईस्कूल परीक्षा के वर्षों का संकेत है ।)

(१) घर्मार्तं न तथा सुशीतलजलैः स्नानं न मुक्तावली
न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यङ्गमप्यर्पितम् ।
प्रीत्या सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसः
सद्युक्त्या च पुरस्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमन्त्रोपमम् ॥

---

(७०) अल्पच्छदः—कम कपड़े पहने हुए । षष्ठं महापातकम्—छठवाँ महापाप ।
(७१) कमलोदयः—लक्ष्मी की वृद्धि ।
(७२) कृपाश्रये—कृपापात्र । पतत्रिणि-पक्षी में ।
(७६) चूङ्कृतैः—चूँ-चूँ करने से ।
(७७) कठोर...त्रुटत्तरः—कठोर स्थूल उच्चस्तनों के पास अधिक टूटा ।

(२) को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
यद्दंष्ट्रानखलांगुलप्रहरणैः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ॥

(३) उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः ॥

(४) स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी ।
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणासौ
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ॥

(५) वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥ ५ ॥

(६) कस्यादेशात् क्षपयति तमः सप्तसप्तिः प्रजानां
छायाहेतोः पथि विटपिनामञ्जलिः केन बद्धः ।
अभ्यर्थ्यन्ते जललवमुचः केन वा वृष्टिहेतोः
जात्यैवैते परहितविधौ साधवो बद्धकक्ष्याः ॥

(७) तुल्यान्वयेत्यनुगुणेति गुणोन्नतेति दुःखे सुखे च सुचिरं सहवासिनीति ।
जानामि केवलमहं जनवादभीत्या सीते ! त्यजामि भवतीं न तु भावदोषात् ॥

(८) घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुकाण्डम् ।
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं,
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ॥

(९) यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

(१०) सारङ्गाः सुहृदो गृहं गिरिगुहा शान्तिः प्रिया गेहिनी,
वृत्तिर्वन्यलताफलैर्निवसनं श्रेष्ठं तरूणां त्वचः ।
तद्ध्यानामृतपूतमग्नमनसां येषामियं निर्वृति-
स्तेषामिन्दुकलाऽवतंसयमिनां मोक्षेऽपि नो न स्पृहा ॥

(११) आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्णतप्तमुद्दामदावविधुराणि च काननानि ।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमश्रीः ॥

(१२) महाराज श्रीमन् ! जगति यशसा ते धवलिते
पयःपारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते ।
कपर्दी कैलासं करिवरमभौमं कुलिशभृत्
कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना ॥

(१३) मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत् सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रं हि तद्दुर्लभम् ।
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला-
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥ (१९५२)

(१४) दूरादुच्छ्रितपाणिरार्द्रनयनः प्रोत्सारितार्धासनो
गाढालिङ्गनतत्परः प्रियकथाप्रश्नेषु दत्तादरः ।
अन्तर्भूतविषो बहिर्मधुमयश्चातीव मायापटुः
को नामायमपूर्वनाटकविधिर्यः शिक्षितो दुर्जनैः ॥ (१९५३)

(१५) लक्ष्मि क्षमस्व वचनीयमिदं यदुक्तमन्धीभवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन ।
नो चेत्कथं कमलपत्रविशालनेत्रो नारायणः स्वपिति पन्नगभोगतल्पे ॥
(१९५४)

(१६) न चौरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि ।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥

(१७) कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिनिहतानां हा विचित्रो विपाकः ॥ (१९५४)

(१८) कनकभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्त्रपुणि प्रणिधीयते ।
न स विरौति न चापि स शोभते भवति योजयितुर्वचनीयता ॥ (१९५४)

(१९) उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥ (१९५४)

(२०) उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः ।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां
न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम् ॥

(२१) व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥

(२२) रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजालिः ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार ॥

(२३) जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव
येषां प्रसादात्सुविचक्षणोऽहम् ।
यदा यदा मे विकृतिं लभन्ते
तदा तदा मां प्रतिबोधयन्ति ॥

(२४) नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥

(२५) पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

(२६) सुजीर्णमन्नं, सुविचक्षणः सुतः, सुशासिता स्त्री, नृपतिः सुसेवितः ।
सुचिन्त्य चोक्तं, सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ॥

सरल हिन्दी में व्याख्या कीजिए—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १ ॥ (१९५१)

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ २ ॥ (१९५२)

जातमात्रं न यः शत्रुं व्याधिं च प्रशमं नयेत् ।
अतिपुष्टाङ्गयुक्तोऽपि स पश्चात्तेन हन्यते ॥ ३ ॥ (१९५२ ,

नाद्रव्ये निहिता काचित् क्रिया फलवती भवेत् ।
न व्यापारशतेनापि शुकवत् पाठयते बकः ॥ ४ ॥ (१९५३)

अर्थाऽऽगमो, नित्यमरोगिता च, प्रिया च भार्या, प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या, षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥ ५ ॥

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥ ६ ॥

असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ॥ ७ ॥

धनेन किं यो न ददाति चाश्नुते बलेन किं यो न रिपून् बाधते ।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत् किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥ ८ ॥

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ॥

श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः ।
यस्यार्थिनो वा शरणागतो वा नाऽऽशाभिभङ्गाद्विमुखाः प्रयान्ति ॥ १० ॥

जनयति हृदि खेदं मङ्गलं न प्रसूते
परिहरति यशांसि ग्लानिमाविष्करोति ।
उपकृतिरहितानां सर्वभोगच्युतानां
कृपणकरगतानां संपदां दुर्विपाकः ॥ ११ ॥

अर्थातुराणां न पिता न बन्धुः
कामातुराणां न भयं न लज्जा ।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा
क्षुधातुराणां न बलं न तेजः ॥ १२ ॥

द्वाविंशतितम सोपान

सुभाषितसंग्रहः

सुभाषितमतद्रव्यसंग्रहं न करोति यः।
स तु प्रस्तावयज्ञेषु कां प्रदास्यति दक्षिणाम् ॥
द्राक्षा म्लानमुखी जाता शर्करा चाम्लतां गता।
सुभाषितरसस्याग्रे सुधा भीता दिवं गता ॥

(अ)

सुभाषितपद्यखण्डमाला

रघुवंशात्

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा ।१।१०।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ।२।३४।
पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ।३।६२।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ।४।८६।
रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ।६।७९।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ।८।४३।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।८।४६।
तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ।११।१।
आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ।१४।४३।

कुमारसंभवात्

क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ।१।१२।
विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।१।५९।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ।५।५।
शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम् ।५।३३।
न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।५।४५।
अलोकसामान्यचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ।५।७५।

मेघदूतात्

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।१।६।
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ।१।२०।
आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ।१।५३।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।२।४६।

किरातार्जुनीयात्

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।१।४।
विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।१।३७।
सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।२।३०।
आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः ।९।६४।
प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि ।९।७०।
उपनतमवधीरयन्त्यभव्याः ।१०।५२।

शिशुपालवधात्

श्रेयसि केन तृप्यते ।१।२९।
सदाभिमानैकधना हि मानिनः ।१।६७।
महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ।२।१३।
सर्वः स्वार्थं समीहते ।२।६५।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।४।१७।
स्फुटमिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव ।७।३८।

नैषधात्

कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते ।३।१७।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा ।३।९३।
कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते ।५।६।
आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः ।५।१०३।
मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता ।९।८।
चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः ।९।५९।
अदोषतामेव सतां विवृण्वते द्विषां मृषादोषकणाधिरोपणाः ।१५।४।

कथासरित्सागरात्

अकाण्डपातोपनता न कं लक्ष्मीर्विमोहयेत् ।
अचिन्त्यो बत दैवेनाप्यापातः सुखदुःखयोः ।
अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः ।
अश्नुते स हि कल्याणं व्यसने यो न मुह्यति ।
अहो दैवाभिशप्तानां प्राप्तोऽप्यर्थः पलायते ।
आपदि स्फुरति प्रज्ञा यस्य धीरः स एव हि ।
एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिति ।

करुणार्द्रा हि सर्वस्य सन्तोऽकारणबान्धवाः ।
कामं व्यसनवृक्षस्य मूलं दुर्जनसङ्गतिः ।
जितक्रोधेन सर्वं हि जगदेतद्विजीयते ।
दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्वशालिनाम् ।
पङ्को हि नभसि क्षिप्तः क्षेप्तुः पतति मूर्धनि ।
प्राणिनां हि निकृष्टापि जन्मभूमिः परा प्रिया ।
प्राणेभ्योऽप्यर्थमात्रा हि कृपणस्य गरीयसी ।
यो यद्वपति बीजं हि लभते सोऽपि तत्फलम् ॥
सत्त्वानुरूपं सर्वस्य धाता सर्वं प्रयच्छति ।
हितोपदेशो मूर्खस्य कोपायैव न शान्तये ॥

पञ्चतन्त्रात्

इह लोके हि धनिनां परोऽपि स्वजनायते ।
किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा ॥
अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।
जठरं को न बिभर्ति केवलम् ।
पैशुन्याद्भिद्यते स्नेहः ।
महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम् ।
उपायेन हि यत्कुर्यात् तन्न शक्यं पराक्रमैः ॥
यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥
यद्भविष्यो विनश्यति ।
अनिर्वेदः श्रियो मूलम् ॥
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ।
अत्यादरः शङ्कनीयः ॥
पण्डितोऽपि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥
छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ।
तुषैरपि परिभ्रष्टा न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥
कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥
अनागतं यः कुरुते स शोभते ।
लुब्धस्य नश्यति यशः, पिशुनस्य मैत्री ॥
कण्टकेनैव कण्टकम् ।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः ॥
मौनं सर्वार्थसाधनम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।

हितोपदेशात्

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
ज्ञानं भारः क्रियां विना ॥
न गणस्याग्रतो गच्छेत् ।
अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ॥
कायः सन्निहितापायः ।
जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ॥
काचः काचो मणिर्मणिः ।
अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ।

चरकसंहितायाः

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
सम्यक् प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम् ॥
सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः ॥

(ब)

सुभाषितगद्यावली

दशकुमारचरितात्

जलबुद्बुदसमाना विराजमाना संपत् तडिल्लतेव सहसैवोदेति, नश्यति च ।
अवज्ञासोदर्यं दारिद्र्यम् ॥
इह जगति हि निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते ।
श्रेयांसि च सकलान्यनलसानां हस्ते नित्यसांनिध्यानि ॥
दैव्याः शक्तेः पुरो न बलवती मानवी शक्तिः ।
न ह्यलमतिनिपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम् ॥

हर्षचरितात्

कुपितस्य प्रथममन्धकारीभवति विद्या, ततो भ्रुकुटिः ।
निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः ॥
अतिरोषणश्चक्षुष्मानप्यन्ध एव जनः ।
भुजे वीर्यं निवसति न वाचि ॥

अतिद्रुतवाहिनी चानित्यतानदी ।
धनोष्मणा म्लायत्यलं लतेव मनस्विता ॥
सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या ।
संपत्कणिकामपि प्राप्य तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति ।
न किंचिन्न कारयत्यसाधारणी स्वामिभक्तिः ॥
उपयोगं तु न प्रीतिर्विचारयति ।

कादम्बर्याः

अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः ।
सर्वथा न कंचिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा ॥
अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम् ।
सुखमुपदिश्यते परस्य ।
बहुप्रकाराश्च संसारवृत्तयः ।
सर्वथा दुर्लभं यौवनमस्खलितम् ॥
सत्योऽयं लोकवादो यत्संपत्संपदं विपद्विपदमनुबध्नातीति ।
आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रपातीनि शुभानि निमित्तानि ॥
जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि ।
प्रायेण च निसर्गत एवानायतस्वभावभङ्गुराणि
सुखानि आयतस्वभावानि च दुःखानि ॥
नास्ति खल्वसाध्यं नाम भगवतो मनोभुवः ।
अनतिक्रमणीया हि नियतिः ॥
बहुभाषिणो न श्रद्दधाति लोकः ।
लोकेऽपि च प्रायः कारणगुणभाञ्ज्येव कार्याणि दृश्यन्ते ।
स्वप्न इवाननुभूतमपि मनोरथो दर्शयति ।

विक्रमोर्वशीयात्

अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः ।
नास्त्यगतिर्मनोरथानाम् ॥
छिन्नबन्धे मत्स्ये पलायिते निर्विण्णो धीवरो भणति धर्मो मे भविष्यति ॥

अभिज्ञानशाकुन्तलात्

न कदापि सत्पुरुषाः शोकपात्रात्मानो भवन्ति ।
अतिस्नेहः पापशङ्की ।
स्निग्धजनसंविभक्तं खलु दुःखं सह्यवेदनं भवति ।
अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् ।

मृच्छकटिकात्

न चन्द्रादातपो भवति ।

साहसे श्रीः प्रतिवसति ।

अहो धिग्वैषम्यं लोकव्यवहारस्य ।

पुण्यभाग्यानामचिन्त्याः खलु व्यापाराः ।

चरकसंहितायाः

परीक्ष्यकारिणो हि कुशला भवन्ति ।

न नियमं भिन्द्यात् ।

नापरीक्षितमभिनिविशेत ।

न कार्यकालमतिपातयेत् ।

नान्यदोषान् ब्रूयात् ।

न सिद्धावौत्सुक्यं गच्छेत् । ना सद्धौ दैन्यम् ।

न सर्वविश्रम्भी, न सर्वाभिशङ्की ।

(ख)

अब सुभाषित विषयानुसार अकारादि क्रम से दिये जा रहे हैं। जिस ग्रन्थ से सुभाषित संकलित किया गया है, उस ग्रंथ का नाम सुभाषितों के आगे संक्षेप में दिया गया है । संक्षेपार्थ ग्रन्थों के निम्नलिखित संकेत दिए गए हैं—

अ०—अनर्घराघव ।

उ०—उत्तरामचरित ।

क०—कथासरित्सागर ।

का०—कादम्बरी ।

का० नी०—कामन्दकीय नीति ।

काव्य०—काव्यादर्श ।

कि०—किरातार्जुनीय ।

कु०—कुमारसम्भव ।

कुव०—कुवलयानन्द ।

गी०—भगवद्गीता ।

भा०—भागवतपुराण ।

म०—मनुस्मृति ।

महा०—महाभारत ।

मा०—मालतीमाधव ।

मृ०—मृच्छकटिक ।

मे०—मेघदूत ।

र०—रघुवंश ।

गु०—गुणरत्न ।

घ०—घटखर्परकाव्य ।

च०—चरकसंहिता ।

चा०—चाणक्यनीति ।

चौ०—चौरपंचाशिका ।

द०—दशकुमारचरित ।

नै०—नैषधीयचरित ।

प०—पञ्चतन्त्र ।

प्र०—प्रसन्नराघव ।

भ०—भर्तृहरिशतकत्रय ।

रा०—रामायण ।

वि०—विक्रमोर्वशीय ।

शा०—शाकुन्तल ।

शा० प०—शार्ङ्गधरपद्धति ।

शि०—शिशुपालवध ।

ह०—हर्षचरित ।

हि०—हितोपदेश ।

अध्यात्म

अमृतायते हि सुतपः सुकर्मणाम् (कि०)। इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावत्तिष्ठते जनः (कि०)। किमिवास्ति यन्न तपसामदुष्करम् (कि०)। छाया न मूर्छति मलोपहतप्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा (शा०)। ज्ञानमार्गे ह्यहंकारः परिघो दुरतिक्रमः (क०)। तपोधीनानि श्रेयांसि ह्युपायोऽन्यो न विद्यते (क०)। तपोधीना हि संपदः (क०)। दृष्टतत्त्वश्च न पुनः कर्मजालेन बध्यते (क०)। नहि महतां सुकरः समाधिभङ्गः (कि०)। निरुत्सुकानामभियोगभाजां समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धिः (क०)। निवृत्तपापसंपर्काः सन्तो यान्ति हि निर्वृतिम् (क०)। निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् (हि०)। मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः (गी०)। लब्धदिव्यरसास्वादः को हि रज्येद् रसान्तरे (क०)। शीलयन्ति यतयः सुशीलताम् (कि०)। साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः (उ०)। साधने हि नियमोऽन्यजनानां योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः (नै०)। स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः (शा०)।

आरोग्य

अजीर्णे भोजनं विषम् (हि०)। पित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते (नै०)। प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते (र०)। विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य (शा०)। शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (कु०)। सर्वथा न कञ्चन न स्पृशन्ति शरीरधर्माणमुपतापाः (का०)। स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति (शि०)।

उद्यम

अचिरांशुविलासचञ्चला, ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् (कि०)। अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः (क०)। अर्थो हि नष्टकार्यार्थैर्नायत्नेनाधिगम्यते (रा०)। इह जगति हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते (द०)। उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु (रा०)। उद्यमेन विना राजन्न सिध्यन्ति मनोरथाः (प०)। उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः (प०)। उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः (प०)। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन (गी०)। किं दूरं व्यवसायिनाम् (चा०)। कोऽतिभारः समर्थानाम् (प०)। गुणसंहतेः समतिरिक्तमहो निजमेव सत्त्वमुपकारि सताम् (कि०)। नहि दुष्करमस्तीह किंचिदध्यवसायिनाम् (कि०)। निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः (कि०)। प्राप्नोतीष्टमविक्लवः (क०)। यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः (हि०)। यदनुद्वेगतः साध्यः पुरुषार्थः सदा बुधैः (क०)। सत्त्वानुरूपं सर्वस्य, धाता सर्वं प्रयच्छति (क०)। साहसे श्रीः प्रतिवसति (मृ०)। सुकृती चानुभूयैव दुःखमप्यश्नुते सुखम् (क०)।

काम (भोग निन्दा)

अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः (र०)। अहो अतीव भोगाशा कं नाम न विडम्बयेत् (क०)। आकृष्टः कामलोभाभ्यामपायः को न पश्यति

(क०) आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (कि०)। कामक्रोधौ हि विप्राणां मोक्षद्वारार्गलावुभौ (क०)। कामातुराणां न भयं न लज्जा (भ०)। कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु (मे०)। कोऽवकाशो विवेकस्य हृदि कामान्धचेतसः (क०)। को हि मार्गममार्गं वा व्यसनान्धो निरीक्षते (क०)। दुर्जया हि विषया विदुषापि (नै०)। भोगान् भोगानिवाहेयान् अध्यास्यापन्न दुर्लभा (कि०)। वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम् (प०)। विषयाकृष्यमाणा हि तिष्ठन्ति सुपथे कथम् (क०)। सङ्गात् संजायते कामः (गी०)।

गुण-प्रशंसा

अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते (र०) एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः (कु०)। कमिवेशते रमयितुं न गुणाः (कि०)। गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः (उ०)। गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः (कि०)। गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः (कि०)। नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान् (कि०)। पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते (र०)। परिजनताऽपि गुणाय सद्गुणानाम् (कि०)। प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः (कु०)। वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः (कि०)। सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् (कि०)। सुलभो हि द्विषां भङ्गो दुर्लभा सत्स्ववाच्यता (कि०)। हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः (शा०)।

दुर्जन-निन्दा

अकृत्यं मन्यते कृत्यम् (प०)। अत्युच्चैर्भवति लघीयसां हि धाष्टर्यम् (शि०)। अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयंकरः (प०)। अश्रेयसे न वा कास्य, विश्वासो दुर्जने जने (क०)। असद्वृत्तेरहोवृत्तं दुर्विभाव्यं विधेरिव (कि०)। असन्मैत्री हि दोषाय, कूलच्छायेव सेविता (कि०)। उष्णो दहति चाङ्गारः, शीतः कृष्णायते करम् (प०)। कयापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः (शि०)। किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०)। कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति (शा०)। को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान् (प०)। दुःखान्ता हि पतन्त्येव, विपच्छ्वभ्रेषु कातराः (क०)। दुर्जनः परिहर्तव्यो, विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन् (भ०)। दोषग्राही गुणत्यागी पल्लोलीव हि दुर्जनः (प०)। न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् (शि०)। किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०)। प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः (कि०)। प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते (प०)। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः (भ०)। मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि (कि०)। ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे (भ०)। विचित्रमायाः कितवा ईदृशा एव सर्वदा (क०)। विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः (कि०)। विश्वासः कुटिलेषु कः (क०)। शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः (कु०)। सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः, सर्पात् क्रूरतरः

खलः (चा०)। साहसं नैरन्तर्यं च, कितवानां निसर्गजम् (क०)। स्पृशन्ति न नृशंसानां, हृदयं बन्धुबुद्धयः (नै०)। स्पृशन्नपि गजो हन्ति (प०)। हिंसाबलम-साधूनाम् (महा०)।

दैव-स्वरूप

अनतिक्रमणीया हि नियतिः (का०)। असंभाव्या अपि नृणां भवन्तीह समागमाः (क०)। असाध्यं साधयत्यर्थं हेलयाऽभिमुखो विधिः (क०)। अहह कष्टमपण्डितता विधेः (भ०)। अहो दैवाभिशप्तानां प्राप्तोऽप्यर्थः पलायते (क०)। अहो नवनवाश्चर्य-निर्माणे रसिको विधिः (क०)। अहो विधेरचिन्त्यैव गतिरद्भुतकर्मणाम् (क०)। अहो विधौ विपर्यस्ते न विपर्यस्यतीह किम् (क०)। ईदृशी भवितव्यता (कि०)। कल्पवृक्षोऽप्यभव्यानां प्रायो याति पलाशिताम् (क०)। किं हि न भवेदीश्वरेच्छया (क०)। को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे (उ०)। को हि स्वशिरसश्छायां विधेश्चोल्लंघयेद् गतिम् (क०)। दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्व-शालिनाम् (क०)। दैवे निरुन्धति निबन्धनतां वहन्ति, हन्त प्रयासपरुषाणि न पौरु-षाणि न (नै०)। दैवेनैव हि साध्यन्ते सदर्थाः शुभकर्मणाम् (क०)। न भवि-ष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः (र०)। न ह्यलमति निपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम् (द०)। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि-क्रमेण (मे०)। नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम् (भ०)। प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता (शि०)। प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति (हि०)। प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः (भ०)। फलं भाग्यानुसारतः (महा०)। बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा (महा०)। भवितव्यता बलवती (शा०) यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः (हि०)। यद्भावि न तद्भावि, भावि चेन्न तदन्यथा (हि०)। विधिर्हि घटयत्यर्थानचिन्त्यानपि संमुखः (क०)। शक्या हि केन निश्चेतुं दुर्ज्ञाना नियतेर्गतिः (क०)।

धननिन्दा

अकाण्डपातोपनता न कं लक्ष्मीर्विमोहयेत् (क०)। अकालमेघवद् वित्तमकस्मादेति याति च (क०)। आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः (प०)। कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः (प०)। जलबुद्बुदसमानविराजमाना संपत् तडिल्लतेव सहसैवो-देति, नश्यति च (द०)। धनोष्मणा म्लायत्यलं लतेव मनस्विता (ह०)। मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु (शा०)। शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः (कि०)। सम्पत्कणिकामपि प्राप्य तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति (ह०)।

धन-प्रशंसा

अर्थेन बलवान् सर्वः (प०) निर्गलिताम्बुगर्भं, शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि (र०)। लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् । (शा०)। सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् (कि०)।

धर्म

अचिन्त्यो बत दैवेनाप्यापातः सुखदुःखयोः (क०)। अधर्मविषवृक्षस्य पच्यते स्वादु किं फलम् (क०)। अनपायि निवर्हणं द्विषां, न तितिक्षासममस्ति साधनम् (कि०)। अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म (कु०)। धर्मः कीर्तिर्द्वयं स्थिरम् (महा०)। धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः (र०)। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् (महा०)। धर्मस्य त्वरिता गतिः (प०)। धर्मेण चरतां सत्ये नास्त्यनभ्युदयः क्वचित् (क०)। धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः (हि०)। धर्मो हि सान्निध्यं कुरुते सताम् (क०)। न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (कु०)। नाधर्मश्चिरमृद्धये (क०)। नास्ति सत्यसमो धर्मः (महा०)। निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः (ह०)। पयः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् (र०)। प्रमाणं परमं श्रुतिः (महा०)। महेश्वरमनाराध्य न सन्तीप्सितसिद्धयः (क०)। योगिनां परिणमन् विमुक्तये, केन नाऽस्तु विनयः सतां प्रियः (कि०)। वित्तेन रक्ष्यते धर्मो, विद्यायोगेन रक्ष्यते (चा०)। व्यक्तिमायाति महतां माहात्म्यमनुकम्पया (क०)। श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति (महा०)। स धार्मिको यः परमर्म न स्पृशेत्। सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् (चा०)। स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः (गी०)।

नश्वरता

अतिद्रुतवाहिनी चानित्यतानदी (ह०)। अस्थिरं जीवितं लोके (हि०)। अस्थिराः पुत्रदाराश्च (हि०)। अस्थिरे धनयौवने (हि०)। जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च (गी०)। धिगिमां देहभृतामसारताम् (र०)। न वस्तु दैवस्वरसाद् विनश्वरं सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वरः (नै०)। मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः (र०)। सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः (महा०)।

निर्धनता

अवज्ञासोदर्यं दारिद्र्यम् (द०)। कृशे कस्यास्ति सौहृदम् (प०)। क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति (प०)। दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी (घ०)। दारिद्र्यं परमाञ्जनम् (भा०)। निधनता सर्वापदामास्पदम् (मृ०)। बुभुक्षितः किं न करोति पापम् (प०)। रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय (मे०)। सर्वं शून्यं दरिद्रस्य (प०)।

नीति

अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता कि०)। आदौ साम प्रयोक्तव्यम् (प०)। आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः (नै०)। इष्टं धर्मेण योजयेत् (प०)। उच्छ्रायं नयति यदृच्छयाऽपि योगः (क०)। उपायं चिन्तयेत् प्राज्ञः (प०)। उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः (शि०)। उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः (प०)। ऋणकर्ता पिता शत्रुः (प०)। एको वासः पत्तने वा वने वा (भ०)। क उष्णोदकेन

नवमालिकां सिञ्चति (शा०)। कण्टकेनैव कण्टकम् (प०)। के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः (मे०)। चलति जयान्न जिगीषतां हि चेतः (कि०)। त्यजेदेकं कुलस्यार्थे (प०)। न काचस्य कृते जातु युक्ता मुक्तामणेः क्षतिः (क०)। न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे (हि०)। न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारतस्य (र०)। नयहीनादपरज्यते जनः (कि०)। निपातनीया हि सतामसाधवः (शि०)। नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता (प०)। पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् (पु०)। परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति (भ०)। प्रकृत्या ह्यमणिः श्रेयान् नालंकारश्च्युतोपलः (कि०)। प्रच्छन्नमप्यूह्यते हि चेष्टा (कि०)। प्रतीयन्ते न नीतिज्ञाः कृतावज्ञस्य वैरिणः (क०)। प्रभुश्च निर्विचारश्च नीतिज्ञैर्न प्रशस्यते (क०)। प्रायोऽशुभस्य कार्यस्य कालहारः प्रतिक्रिया (क०)। प्रार्थनाऽधिकबले विपत्फला (कि०)। बहुविघ्नास्तु सदा कल्याणसिद्धयः (क०)। भवन्ति क्लेशबहुलाः सर्वस्यापीह सिद्धयः (क०)। भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता, ध्रुवं प्रविरपष्टफलोदयाय (कु०)। भेदस्तत्र प्रयोक्तव्यो यतः स वशकारकः (प०) महोदयानामपि संघवृत्तितां, सहाय-साध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः (कि०)। मायाचारो मायया वर्तितव्यः, साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः (महा०)। मुख्यमङ्गं हि मन्त्रस्य विनिपात-प्रतिक्रिया, (क०)। मुह्यत्येव हि कृच्छ्रेषु संभ्रमज्वलितं मनः (कि०)। यदि वाऽत्यन्तमृदुता न कस्य परि-भूयते (क०)। यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य, तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् (अ०)। रत्नव्ययेन पाषाणं को हि रक्षितुमर्हति (क०)। श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः (कि०)। सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः (कि०)। सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः (म०)। सन्धि कृत्वा तु हन्तव्यः, संप्राप्तेऽवसरे पुनः (क०)। संमुखीनो हि जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् (र०)। सर्वनाशे समुत्पन्नेऽर्धं त्यजति पण्डितः (प०)।

परोपकार

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् (शा०)। आपन्नत्राणविकलैः किं प्राणैः पौरुषेण वा (क०)। आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे०)। उपकृत्य निसर्गतः परेषामुपरोधं नहि कुर्वते महान्तः (शि०)। उपदेशपराः परेष्वपि, स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः (शि०)। किमदेयमुदाराणामुपकारिषु तुष्यताम् (क०)। धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् (प०)। नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः (कि०)। परार्थप्रतिपन्ना हि नेक्षन्ते स्वार्थमुत्तमाः (क०)। मिथ्या परोपकारो हि कुतः स्यात् कस्य शर्मणे (क०)। युक्तानां खलु महतां परोपकारे, कल्याणी भवति रुजत्स्वपि प्रवृत्तिः (कि०)। रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी (कु०)। स्वत एव सतां परार्थता, ग्रहणानां हि यथा यथार्थता (नै०)। स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (शि०)। स्वामापदं प्रोज्झ्य विपत्तिमग्नं, शोचन्ति सन्तो ह्युपकारिपक्षम् (कि०)।

प्रेम (प्रेम-स्वभाव)

अनुरागान्धमनसां विचारः सहसा कुतः (क०)। अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः (र०)। अपायो मस्तकस्थो हि विषयग्रस्तचेतसाम् (क०) अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि, बलात् प्रह्लादते मनः (कि०)। आशु बध्नाति हि प्रेम, प्राग्जन्मान्तरसंस्तवः (क०)। गुणः खल्वनुरागस्य कारणं न बलात्कारः (मृ०)। चित्तं जानाति जन्तूनां प्रेम जन्मान्तरार्जितम् (क०)। दयितं जनः खलु गुणीति मन्यते (शि०)। दयितास्वनवस्थितं नृणां, न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने (कु०)। प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि (कि०)। भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (शा०)। लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः (ह०)। वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (कि०)। व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः (उ०)। सर्वं स्नेहात् प्रवर्तते (महा०)। सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति (शा०)। सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः (शि०)। स्नेहमूलानि दुःखानि (महा०)।

मित्रता

आकरः स्वपरभूरिकथानां प्रायशो हि सुहृदोः सहवासः (नै०)। आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत् (प०)। एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा (भ०)। किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृतः कृतिनो भवन्ति सुहृदः सुहृदाम् (शि०)। कुवाक्यान्तं च सौहृदम् (प०)। तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः (उ०)। नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः (महा०)। परोऽपि हितवान् बन्धुः (प०)। मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः (मे०)। मित्रलाभमनु लाभसम्पदः (कि०)। मित्रार्थगणितप्राणा दुर्लभा हि महोदयाः (क०)। विदेशे बन्धुलाभो हि मरावमृतनिर्झरः (क०)। विप्रलम्भोऽपि लाभाय, सति प्रियसमागमे (कि०)। समानशीलव्यसनेषु सख्यम् (हि०)। समीरणो नोदयिता भवेति, व्यादिश्यते केन हुताशनस्य (कु०)। स सुहृद् व्यसने यः स्यात् (प०)। स्वं जीवितमपि सन्तो न गणयन्ति मित्रार्थे (प०)। स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते (र०)।

राजकर्म

अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि (कि०)। अल्पीयसोऽप्यामयतुल्यवृत्तेर्महापकाराय रिपोर्विवृद्धिः (कि०)। अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः (शा०)। आपन्नस्य विषयवासिन आर्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम् (शा०)। आश्वस्तो वेत्ति दुर्वृत्त प्रभुः को हि स्वमन्त्रिणाम् (क०)। ईश्वराणां हि विनोदरसिकं मनः (कि०)। ऊर्ध्वं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः (र०)। को नाम राज्ञां प्रियः (प०)। गणयन्ति न राज्यार्थेऽपत्यस्नेहं महीभुजः (क०)। नयवर्त्मगाः प्रभवतां हि धियः (कि०)। महीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् (कु०)। नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता (प०)। नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मः (र०)। परमं

लाभमरातिभङ्गमाहुः (कि०)। प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते (शि०)। प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य (कु०)। प्रभूणां हि विभूत्यन्धा धावत्यविषये मतिः (क०)। प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु (कु०)। प्रायेण भूमिपतयः, प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प०)। भजन्ति वैतसीं वृत्ति राजानः कालवेदिनः (क०)। राजा सहायवान् शूरः सोत्साहो जयति द्विषः (क०)। बहुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः (र०)। वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा (प०)। व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः, शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः (कि०)। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव (शा०)। स्वदेशे पूज्यते राजा (चा०)। हतं सैन्यमनायकम् (चा०)।

सज्जनप्रशंसा

अक्षोभ्यतैव महतां महत्त्वस्य हि लक्षणम् (क०)। अनुगृह्णन्ति हि प्रायो देवता अपि तादृशम् (क०)। अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः (वि०)। अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी (शि०)। अयशोभीरवः किं न, कुर्वते बत साधवः (क०)। अयातपूर्वा परिवादगोचरं, सतां हि वाणी गुणमेव भाषते (कि०)। अरुन्तुदत्वं महताम् ह्यगोचरः (कि०)। अहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः (भ०)। आदानं हि विसर्गाय, सतां वारिमुचामिव (र०)। आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे०)। उत्तरोत्तरशुभो हि विभूनां कोऽपि मञ्जुलतमः क्रमवादः (नै०)। उत्सहन्ते न हि द्रष्टुमुत्तमाः स्वजनापदम् (क०)। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (हि०)। कथमपि भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः संभवन्ति (मृ०)। कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति (शा०)। करुणार्द्रा हि सर्वस्य, सन्तोऽकारणबान्धवाः (क०)। केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु (मे०)। क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने, ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव (कु०)। ग्रहीतुमार्यान् परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः (शि०)। चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता। जितशान्तेषु धीराणां स्नेह एवोचितोऽरिषु (क०)। दुर्लक्ष्यचिह्ना महतां हि वृत्तिः (कि०)।

देवद्विजसपर्या हि, कामधेनुर्मता सताम् (क०)। देहपातमपीच्छन्ति, सन्तो नाविनयं पुनः (क०)। धनिनामितरः सतां पुनर्गुणवत्संनिधिरेव संनिधिः (शि०)। न्यायाधारा हि साधवः (कि०)। परिजनताऽपि गुणाय सज्जनानाम् (कि०)। पुण्यवन्तो हि सन्तानं पश्यन्त्युच्चैः कृतान्वयम् (क०)। प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् (र०)। प्रतिपन्नार्थनिर्वाहं सहजं हि सतां व्रतम् (क०)। प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव (मे०)। प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां, प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती (कि०)। प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि (र०)। प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः (र०)। प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति (भ०)। बताश्रितानुरोधेन किं न कुर्वन्ति साधवः (क०)। ब्रुवते हि फलेन साधवो, न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् (नै०)। भजन्त्यात्मंभरित्वं हि, दुर्लभेऽपि न साधवः (क०)। भवति महत्सु न निष्फलः प्रयासः

(शि०)। मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् (हि०)। महतां हि धैर्यमविभाव्यवैभवम् (कि०)। महतां हि सर्वमथवा जनातिगम् (शि०)। महतामनुकम्पा हि विरुद्धेषु प्रतिक्रिया (क०)। महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः, सुजनो न विस्मरति जातु किंचन (शि०)। महते रुजन्नपि गुणाय महान् (कि०)। महान् महत्येव करोति विक्रमम् (प०)। मोघा हि नाम जायेत महत्सूपकृतिः कृतः (क०)। रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते (उ०)। रिपुष्वपि हि भीतेषु सानुकम्पा महाशयाः (क०)। वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि, को हि विज्ञातुमर्हति (उ०)। विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिताः (कु०)। विवेकधाराशतधौतमन्तः, सतां न कामः कलुषीकरोति (नै०)। व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया (कि०)। संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् (भ०)। सतां महत्संमुखधावि पौरुषम् (नै०)। सतां हि चेतः शुचितात्मसाक्षिका (नै०)। सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या (ह०)। सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते (शि०)। सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते (मालविका०)।

सत्संगति

कस्य नाभ्युदये हेतुर्भवेत् साधुसमागमः (क०)। कस्य सत्सङ्गो न भवेच्छुभः (क०)। कामं न श्रेयसे कस्य संगमः पुण्यकर्मभिः (क०)। किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता, तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् (शा०)। गुणमहतां महते गुणाय योगः (कि०)। ध्रुवं फलाय महते महतां सह संगमः (क०)। प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते (भ०)। बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति (शि०)। विश्वासयत्याशु सतां हि योगः (कि०)। सङ्गः सतां किमु न मङ्गलमातनोति (भा०)। सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति (उ०)। सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूयते (भा०)। सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् (भ०)। समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् , वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः (कि०)।

सौन्दर्य

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (शा०)। केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः, किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः (र०)। क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः (शि०)। न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् (कि०)। न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं, सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते (कु०)। प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः, प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् (र०)। प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु०)। भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां, वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः (कु०)। रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति (कि०)। सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् (द०)। हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः (कि०)।

स्त्रीचरित-निन्दा

अधरेष्वमृतं हि योषितां, हृदि हालाहलमेव केवलम्। अनुरागपरायत्ताः कुर्वते किं न योषितः (क०)। अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः (प०)। कठिनाः खलु स्त्रियः (कु०)। कष्टा हि कुटिलश्वश्रूपरतन्त्रवधूस्थितिः (क०)। किं न कुर्वन्ति योषितः (भ०)। न स्त्रीचलितचारित्रा निम्नोन्नतमवेक्षते (क०)। प्रत्ययः स्त्रीषु-मुष्णाति विमर्शं विदुषामपि (क०)। वेश्यानां च कुतः स्नेहः। संनिकृष्टे निकृष्टेऽपि कष्टं रज्यन्ति कुस्त्रियः (क०)।

स्त्रीशील-प्रशंसा

अचिन्त्यं शीलगुप्तानां चरितं कुलयोषिताम् (क०)। असाध्यं सत्यसाध्वीनां किमस्ति हि जगत्त्रये (क०)। आपद्यपि सतीवृत्तं, किं मुञ्चन्ति कुलस्त्रियः (क०)। का नाम कुलजा हि स्त्री, भर्तृद्रोहं करिष्यति (क०)। किं नाम न सहन्ते हि, भर्तृभक्ताः कुलाङ्गनाः (क०)। क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम् (कु०)। न पतिव्यतिरेकेण सुस्त्रीणामपरा गतिः (क०)। नास्ति भर्तुः समो बन्धुः (वि०)। पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति (उ०)। पेशलं हि सतीमनः (क०)। भर्तारं हि विना नान्यः सतीनामस्ति बान्धवः (क०)। भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः (कु०)। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः (म०)। सतीधर्मो हि सुस्त्रीणां चिन्त्यो न सुहृदादयः (क०)। स्निग्धमुग्धा हि सत्स्त्रियः (क०)। स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव (शि०)। स्वसुखं नास्ति साध्वीनां तासां भर्तृसुखं सुखम् (क०)।

स्त्री-स्वभावादि वर्णन

अहो विनेन्द्रजालेन स्त्रीणां चेष्टा न विद्यते (क०)। आदावसत्यवचनं पश्चाज्जाता हि कुस्त्रियः (क०)। उदारसत्त्वं वृणुते, स्वयं हि श्रीरिवाङ्गना (क०)। को हि वित्तं रहस्यं वा, स्त्रीषु शक्नोति गूहितुम् (क०)। क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतोर्लीलाभिः किमु सति कारणे रमण्यः (शि०)। तदेव दुःसहं स्त्रीणामिह प्रणयखण्डनम् (क०)। न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति (महा०)। न स्नेहो न च दाक्षिण्यं, स्त्रीष्वहो चापलादृते (क०)। निसर्गसिद्धो नारीणां, सपत्नीषु हि मत्सरः (क)। प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणम् (शा०)। प्रायः स्त्रियो भवन्तीह निसर्गविषमाः शठाः (क०)। प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प०)। वत स्त्रीणां चञ्चलाश्चित्त-वृत्तयः (क०)। युवतिजनः खलु नाप्यतेऽनुरूपः (कि०)। स्त्रीचित्तमहो विचित्रमिति। स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः (कु०)। स्त्रीणां भावानुरक्तं हि, विरहासहनं मनः (क०)। स्त्रीणामलीकमुग्धं हि, वचः को मन्यते मृषा (क०)। स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः (भ०)। स्त्रीषु वाक्संयमः कुतः (क०)।

विविध सुभाषित

अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम् (का०)। घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले, क्वचिद् बुधैरप्यपथेन गम्यते (नै०)। दिशत्यपायं हि सतामतिक्रमः (कि०)। नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति (प०)। ननु तैलनिषेकबिन्दुना, सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् (र०)। न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् (शा०)। नहि प्रफुल्लं सहकारमेत्य, वृक्षान्तरं, कांक्षति षट्पदालिः (र०)। नाल्पीयान् बहुसुकृतं हिनस्ति दोषः (कि०)। फणाटोपो भयंकरः (प०)। भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः (कि०)। स्यालको गृहनाशाय (चा०)। स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः।

निबन्ध रत्नमाला

आवश्यक-निर्देश

(१) किसी विषय पर अपने विचारों और भावों को सुगठित, सुबोध, सुन्दर एवं क्रमबद्ध भाषा में लिखना ही निबन्ध है। इसके लिए दो बातों की आवश्यकता होती है—निबन्ध की सामग्री। २—निबन्ध की शैली। निबन्ध की सामग्री एकत्र करने के तीन साधन हैं—

(अ) निरीक्षण :—प्रकृति का निरीक्षण करना और ज्ञानार्जन करना।

(ब) अध्ययन :—पुस्तकों के अध्ययन आदि से विषय का ज्ञान प्राप्त करना।

(स) मनन :—स्वयं उस विषय पर विचार या चिन्तन करना।

(२) निबन्ध-लेखन में निम्नलिखित बातों का सदा ध्यान रखना चाहिए—

(अ) प्रस्तावना—प्रारम्भ में विषय का निर्देश और उसका लक्षण आदि रखना चाहिए। (ब) विवेचन—बीच में विषय की विस्तृत विवेचना करनी चाहिए। उस वस्तु के गुण, अवगुण, उपयोगिता, अनुपयोगिता, लाभ, हानि आदि का विस्तृत रूप से वर्णन करना चाहिए। कथन की पुष्टि के लिए श्लोक, सूक्ति अथवा पद्यों को उद्धरण रूप में उद्धृत कर सकते हैं। (स) उपसंहार—अन्त में अपने कथन का सारांश संक्षेप में प्रस्तुत करना चाहिए।

(३) निबन्ध की शैली के विषय में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—(अ) निबन्ध में अनावश्यक विस्तार तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन एवं क्लिष्टता का त्याग करना चाहिए। (ब) भाषा सरल, सरस, सुबोध एवं व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होनी चाहिए। (स) भाषा में प्रवाह एवं स्वाभाविकता होनी चाहिए तथा प्रारम्भ से अन्त तक एक-सी होनी चाहिए। (द) लोकोक्ति एवं अलङ्कारों का भी यथावसर एवं समुचित प्रयोग करना चाहिए।

(४) निबन्ध के मुख्यतया तीन भेद हैं :—

(अ) वर्णनात्मक—इसमें पशु, पक्षी, नदी, नगर, ग्राम, समुद्र, पर्वत एवं ऋतु आदि का विस्तृत वर्णन होता है। (ब) विवरणात्मक—इनमें जीवनचरितों, घटित घटनाओं, प्राचीन कथाओं आदि का वर्णन होता है। (स) विचारात्मक—इनमें आध्यात्मिक, मनोविज्ञान सम्बन्धी, सामाजिक, राजनीतिक एवम् अमूर्तविषयों सत्य, परोपकार, अहिंसा आदि का संग्रह होता है। इन निबन्धों में इन विषयों के गुण, दोष, लाभ, हानि आदि का विचार होता है।

१—वेदानां महत्त्वम्

'वेदशब्दस्य कोऽर्थः ? इति प्रश्ने विविधमतानि पुरतः समुपस्थाप्यन्ते। ज्ञानार्थकाद् विद्धातोर्घञि वेद इति रूपं निष्पद्यते। सत्तार्थकाद् विचारणार्थकात् प्राप्त्यर्थकाद्

विद्वांसोऽपि स्वमेतद् निश्चयते । विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्था यैस्ते वेदाः । सायणेन भाष्यभूमिकायामुक्तम्—अपौरुषेयं वाक्यं वेदः । इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः । तत्रैव प्रमाणमप्युपन्यस्तम्—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते ।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥"

अतः वेदा हि अशेषज्ञानविज्ञानराशयः, कर्तव्याकर्तव्यावबोधकाः, शुभाशुभनिदर्शकाः, सुखशान्तिसाधकाः, चतुर्वर्गप्राप्तिसोपानस्वरूपाश्च । आम्नायः, आगमः, श्रुतिः, वेदः इति सर्वे शब्दाः पर्यायाः ।

सोऽयं वेदस्त्रयीति पदेनापि व्यवह्रियते । अत्र वेदरचनायास्त्रैविध्यमेव कारणम् । या खलु रचना पद्यमयी सा ऋक्, या गद्यमयी सा यजुः, या पुनः समग्रा गानमयी रचना सा सामेति कथ्यते । यत्तु कैश्चन 'ऋग्यजुः सामाख्यास्त्रय एव वेदाः पूर्वमासन्, अतो वेदानां त्रित्वादेव तत्र त्रयीति व्यवहारः' इत्युच्यते तदयुक्तम्, ऋग्वेदेऽपि अथर्ववेदनामोल्लेखदर्शनात् । भगवता पतञ्जलिनापि 'चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः' इति स्पष्टमुक्तम् ।

वेदानां महत्त्वं मन्वादिना बहुधा गीयते । 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' इति वेदा धर्ममूलत्वेन गण्यन्ते । 'यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः । स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥' इति वेदानां सर्वज्ञानमयत्वं निगद्यते । 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति महाभाष्योक्त्या 'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥' इति मनुस्मृत्युक्त्या च वेदाभ्यसनं विप्राणां परमं तपोऽगण्यत ।

वेदेषु भारतीयसंस्कृतेरङ्गभूता विषयाः प्रतिपादिताः । तद्यथाहि—

(१) अध्यात्मवर्णनम्—आत्मनः स्वरूपादिवर्णनमत्रोपलभ्यते । तद्यथा—यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः० । स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्० । (यजु० ४०–७, ८) । अध्यात्मम् (अथर्व० ११–८, १३. २–९), तद्यथा—स एष एक एकवृदेक एव०, न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते० । (अ० १३–८–१२, १६), आत्मा (अ० ५–९, ७–१, १९–५१), आत्मविद्या (अ० ४–२), ब्रह्म (अ० ७–६६), ब्रह्मविद्या (अ० ४–१, ५–६), विराट् (अ० ८–९–१०) ।

(२) धार्मिकी भावना—धर्मभावनयैव मानवाः पशुभ्योऽतिरिच्यन्ते । धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः । वेदेषु प्रतिपादितो धर्मो वैदिकधर्म इत्युच्यते । तस्मिन्नजरोऽमरो व्यापको जगन्नियन्ता सर्वज्ञ ईश्वर एव उपास्य इति स्पष्टीकृतम् ।

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥'

(३) समाजचित्रणम्—प्राचीनतमस्य समाजस्य चित्रणं वेदेष्वेवोपलभ्यते। यथा—आश्रमादिवर्णनं तत्कर्तव्यं विधानं च। मानवजीवनं चतुर्षु विभागेषु विभक्तं विद्यते। चत्वारो विभागाः चत्वार आश्रमा उच्यन्ते—ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यासलक्षणाः। प्रथमः ब्रह्मचर्याश्रमः मानवजीवनस्याधारभूतः। अथर्ववेदे एतद्विषयकं विवरणमुपलभ्यते। यथा—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत (अ० ११–५–१९), ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति (अ० ११–५–१७)।

वेदेषु मनुष्याणां कर्मादिभेदतः पञ्चश्रेणिविभागा दृश्यन्ते-ब्राह्मणः, क्षत्रियः, वैश्यः, दासः, दस्युश्च। परं सर्वैर्जनैः परस्परं प्रीतिभावेन वर्तितव्यम्—

'प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यतः उतशूद्र उतार्ये॥ (अथर्व०)

वेदेषु स्त्री-पुरुषयोः सम्बन्धः अविच्छेद्योऽग्निसाक्षिकः मैत्रीभावरूपः मन्त्रैर्नियन्त्रितः। पाणिग्रहणानन्तरं वधूवरौ जगदतुः—

'समञ्जन्तु विश्वे देवा समापो हृदयानि नौ।
सम्मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥

अपरञ्च—

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः (अ० १४–१–५०)

(४) राष्ट्रभावना—वेदे राष्ट्रभावनाविषयकं विवरणमुपलभ्यते। राष्ट्रस्य राजा तादृशो भवेत् यं सर्वाः प्रजाः वाञ्छेयुः। तद्यथा—

"ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।"
"ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्"। ऋक्
"भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥" (अथर्व०)

(५) काव्यशास्त्रम्—अनेकेऽलंकाराः छन्दोवर्णनं चात्र प्राप्यते। तद्यथा—अनुप्रासः (ऋ० १०. १५९. ५) उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः (ऋ० १०, १४५. ३), यमकम्—पृथिव्यां निमिता मिता०, कविभिर्निमितां मिताम्० (अ० ९–३–१६, १९), छन्दोनामानि (यजु० १–२७ ; १४–९, १०, १८), पर्यायवाचिनः—दशगोनामानि (यजु० ८-४३), अश्वपर्यायाः (यजु० २२–१९)।

(६) दार्शनिकविचाराः—वेदेषु तत्त्वज्ञानमीमांसाम् श्रित्य विषयवर्णनं प्राप्यते। तद्यथा—सृष्ट्युत्पत्तिः (ऋ० १०–१२९-१३०)। तथा हि—

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीम्०।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि०।
कामस्तदग्रे समवर्तताधि०, (ऋ० १०–१२९–१, २, ४)।

वागाम्भृणीवर्णनम् (ऋ० १०, १२५, १-८)। तथा हि—

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्० ।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्० ।

अहमेव वात इव प्रवामि० (ऋ० १०, १२५-३, ५, ८)।

कालमीमांसा (अ० १९, ५३-५४), तद्यथा—

सप्तचक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः (अ० १९-५३-२)।

द्वादशप्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।

तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्नचलाचलासः (ऋ० १-१६४-४८)।

(७) मांसभक्षणनिषेधः, द्यूतनिषेधः, कृषिप्रशंसा च—गोमांस—मनुष्यमांस—अश्वादि-मांसभक्षणस्य चात्र निषेधः। तद्यथा—

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसा वि वृश्च ॥ (ऋ०)

'अक्षाख्यद्यूतक्रीडाया' निन्दानिषेधश्च ऋग्वेदस्य दशममण्डले उपदिष्टः। तथा हि—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।

तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ॥ (ऋ०)

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित्।

ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥ (ऋ०)

एवंविधाः उपदेशाः परामर्शाश्चात्र निर्दिष्टाः सन्ति। तेषामनुष्ठानेन मानवानां नितरां कल्याणं भवति।

(८) नाट्यशास्त्रम्— नाट्यशास्त्रस्य मूलं संवाद ऋग्वेदे गीतं सामवेदेऽभिनयो यजुर्वेदे रसा अथर्ववेदे च प्राप्यन्ते। उक्तं च —

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ (भरतस्य नाट्यशास्त्रात्)

(९) मोक्षस्यानन्दः—अत्र मोक्षानन्दस्वरूपस्य विवेचनं प्राप्यते। तद्यथा—

'यत्र ज्योतिरजस्रं अस्मिन् लोके स्वर्हितम्। तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव'। (ऋ०)।

'एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः। एकैवोषा सर्वमिदं विभात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम्।' (ऋ०)।

(१०) पुनर्जन्म—वेदे पुनर्जन्मसम्बन्धि अतिरमणीयं तत्त्वं दृश्यते—'आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुते पुरूणि। धास्युर्योनिं प्रथम आविवेश यो वाच-मनुदितां चिकेत। अथर्व०।

एवं वेदा हि सत्यतायाः सरणयः, शुभाशुभनिदर्शकाः, सुखशान्तिसाधकाश्च। प्राचीनानि धर्म-समाज-व्यवहार-प्रभृतीनि वस्तुजातानि बोधयितुं श्रुतय एव क्षमन्ते।

२—वेदाङ्गानि तेषामुपयोगिता च

वेदस्य षड् अङ्गानि, यथोक्तं पाणिनिना स्वशिक्षायाम्—

'छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ पा० शि० ४१-४२।

पतञ्जलिनाप्युक्तम्—

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च॥' (पस्पशाह्निके)

वेदार्थाविबोधाय तत्स्वराद्यवगमाय तद्विनियोगज्ञानाय एव जनिरभवद् वेदाङ्गानाम्। शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्दो ज्योतिषमिति षड् वेदाङ्गानि। तथा चोच्यते—

'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु॥'

वेदाङ्गानां विवरणं तेषामुपयोगिता च समासतोऽत्र प्रस्तूयते।

(१) शिक्षा—शिक्षाग्रन्था वर्णोच्चारणविधिं वर्णयन्ति। तच्छास्त्रं शिक्षा नाम येन वेदमन्त्राणामुच्चारणं शुद्धं सम्पाद्यते। तैत्तिरीयोपनिषदारम्भे शिक्षाशास्त्रप्रयोजन-मुक्तम्। यथा—

'अथ शिक्षां व्याख्यास्यामः—वर्णः, स्वरः, मात्रा, बलम्, साम, सन्तान इत्युक्तः शिक्षाऽध्यायः।' तत्र वर्णोऽकारादिः, स्वर उदात्तादिः, मात्रा ह्रस्वादिः, बलं स्थान-प्रयत्नौ, साम निषादादि, सन्तानो विकर्षणादिः। एतदवबोधनमेव शिक्षायाः प्रयोजनम्। अधुना शिक्षाया ग्रन्थास्त्रिंशत्संख्याका उपलभ्यन्ते। तेषु याज्ञवल्क्यशिक्षा, वाशिष्ठी शिक्षा, कात्यायनी शिक्षा, पाराशरी शिक्षा, अमोघानन्दिनी शिक्षा, नारदी शिक्षा, शौनकीय शिक्षा, गौतमी शिक्षा, माण्डूकी शिक्षा, पाणिनीयशिक्षा च मुख्याः। पाणिनीय-शिक्षैव आद्रियते विद्वद्भिः।

वेदभेदेन शिक्षाभेदो भवति, यथा—याज्ञवल्क्यशिक्षा शुक्लयजुर्वेदस्य, नारदी शिक्षा सामवेदस्येत्यादि।

(२) कल्पः—कल्पसूत्रेषु विविधाध्वराणां संस्कारादीनां च वर्णनं प्राप्यते। मन्त्राणां विविधकर्मसु विनियोगश्च तत्र प्रतिपाद्यते।

कल्पसूत्राणि द्विविधानि श्रौतसूत्राणि स्मार्तसूत्राणि च। श्रुत्युक्त-यागविधि-प्रकाशकानि श्रौतसूत्राणि। स्मार्तसूत्राण्यपि द्विधा—गृह्यसूत्राणि धर्मसूत्राणि च।

श्रौतसूत्रेषु अग्नित्रयाधानम्, अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, पशुयागः, नानाविधाः सोमयागाश्चेति विषयाः समुपपादिताः। आश्वलायन-श्रौतसूत्रम्, शाङ्खायन-श्रौतसूत्रम्, बौधायन०, आपस्तम्ब०, कात्यायन०, मानव०, हिरण्यकेशी०, लाट्यायन०, द्राह्यायण०,

वैतानश्रौतसूत्रं च प्रमुखाणि श्रौतसूत्राणि सन्ति । इमानि श्रौतसूत्राणि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते ।

गृह्यसूत्रेषु षोडशसंस्काराणां पञ्चमहायज्ञानां सप्तपाकयज्ञानामन्येषां च गृह्यकर्मणां सविस्तरं वर्णनमाप्यते । आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, पारस्कर०, शांखायन०, बौधायन०, आपस्तम्ब०, मानव०, हिरण्यकेशी०, भारद्वाज०, वाराह०, काठक०, लौगाक्षि०, गोभिल०, द्राह्यायण०, जैमिनीय०, खदिरगृह्यसूत्रं च प्रमुखाणि गृह्यसूत्राणि सन्ति इमानि सूत्राण्यपि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते ।

धर्मसूत्रेषु धार्मिकनियमाः, प्रजानां राज्ञां च कर्तव्यचयाः, चत्वारो वर्णाः, चत्वार-आश्रमाः, तेषां धर्माः पूर्णतया निरूपिताः । बौधायनधर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब०, हिरण्य-केशी०, वसिष्ठ०, मानव०, गौतमधर्मसूत्रं च प्रमुखाणि धर्मसूत्राणि सन्ति ।

शुल्वसूत्रेषु यज्ञवेद्या मानादिकं वेदीनिर्माणविध्यादिकं च वर्ण्यते । बौधायन-शुल्व-सूत्रम्, आपस्तम्ब०, कात्यायन०, मानवशुल्वसूत्रं च मुख्या ग्रन्थाः सन्ति ।

(३) व्याकरणम् —

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥

भाषा लोकव्यवहारं चालयति, यदि भाषा न स्यात्, जगदिदमन्धे तमसि मज्जेत् । भाषां विना लोका निजभावं प्रकाशयितुम् न प्रभवेयुः । साधुशब्दा हि प्रयुक्ताः यथार्थमर्थं प्रकटयन्ति । साधुशब्दप्रयोगे व्याकरणमेव मूलभूतं कारणम् । नहि व्याकरणज्ञानशून्यः साधून् शब्दान् प्रयोक्तुमीशः । वेदस्य रक्षार्थं व्याकरणाध्ययनमत्यावश्यकम्, यथोक्तं पतञ्जलिना—

रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्, लोपागमवर्णविकारज्ञो हि पुरुषः सम्यक् वेदान् परिपालयिष्यति

व्याकरणस्य सर्वाणि प्रयोजनान्युक्तानि महाभाष्ये, 'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम् ।' रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम् । ऊहः खल्वपि, न सर्वैलिङ्गैर्न सर्वाभिर्विभक्तिभिर्वेदे निगदिताः, ते चावश्यं यज्ञगतेन पुरुषेण यथायथं विपरिणमयितुम् । तस्मादध्येयं व्याकरणम् । एवमन्यान्यपि प्रयोजनानि व्याख्यातानि भाष्ये ।

पाणिनेरष्टाध्यायी, कात्यायनस्य वार्तिकं भाष्यकृतो भाष्यञ्चेति त्रिमुनिव्याकरणं प्रसिद्धम् । व्याकरणान्यष्टौ—

'प्रथमं प्रोच्यते ब्राह्मं द्वितीयमैन्द्रमुच्यते ।
याम्यं प्रोक्तं ततो रौद्रं वायव्यं वारुणं तथा ॥
सावित्रं च तथा प्रोक्तमष्टमं वैष्णवं तथा ॥' (भविष्यपुराणे ब्राह्मपर्व)

लघु-त्रिमुनि-कल्पतरुकारः नव व्याकरणानि स्मरन्ति —

'ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम् ।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम् ॥

व्याकरणानामष्टविधत्वमेव प्रसिद्धम् , यथोक्तं भास्करेण—

'अष्टौ व्याकरणानि षट् च भिषजां व्याचष्ट ताः संहिताः ।'

संस्कृत-व्याकरणावबोधाय पाणिनेरष्टाध्यायी सर्वप्रमुखा ।

(४) निरुक्तम्—निरुच्यते निःशेषेणोपदिश्यते निर्वचनविधया तत्तदर्थबोधनाय पदजातं यत्र तन्निरुक्तम् । निरुक्ते क्लिष्टवैदिकशब्दानां निर्वचनं प्राप्यते । व्याकरण-साध्यकतिपयकार्यविधायित्वाच्च शास्त्रमिदं पृथक् प्रणीतम् । तदुक्तं यास्केन—'अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते । अर्थमप्रतियतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः, तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं स्वार्थसाधकञ्च । नहि निरुक्तार्थवित् कश्चिन्मन्त्रं निर्वक्तुमर्हतीति वृद्धानुशासनम् निरुक्तप्रक्रियानुरोधेनैव निर्वक्तव्या नान्यथा ।' विषयेऽस्मिन् यास्कप्रणीतं निरुक्तमेव प्रमुखो ग्रन्थः । अत्र मन्त्राणां निर्वचनमूलाया व्याख्यायाः प्रथमः प्रयासः समासाद्यते । निरुक्तं पञ्चविधम्—

'वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ ।

धात्रोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥'

(इति भर्तृहरिः)

(५) छन्दः—वेदेषु मन्त्राः प्रायशश्छन्दोबद्धा एव । मन्त्राणां छन्दोबद्धतया-छन्दसां ज्ञानं विना वेदमन्त्राः साधु उच्चारयितुं न शक्यन्ते, अतएव छन्दःशास्त्रमनिवा-र्यम् । छन्दःशास्त्रस्य पिङ्गलच्छन्दःसूत्रनामा ग्रन्थः सर्वाधिकप्रसिद्धः । अत्र वैदिकानि लौकिकानि च छन्दांसि विवेचितानि ।

(६) ज्यौतिषम्—वेदाङ्गेषु ज्यौतिषशास्त्रस्यापि नितरां महत्त्वं वर्तते । तथाहि—

'वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान् ॥'

(आर्चज्यौतिषम् ३६)

शुभं मुहूर्तमाश्रित्यैव विशिष्टोऽध्वरः प्रावर्ततेति शुभमुहूर्ताकलनाय ज्यौतिषस्योदयोऽभूत् । इदं कालविज्ञापकं शास्त्रम् । चतुर्णामपि वेदानां पृथक् पृथक् ज्यौतिषशास्त्रमासीत् , तेषु सामवेदस्य ज्यौतिषशास्त्रमासीत् , तेषु सामवेदस्य ज्यौतिषशास्त्रं नोपलभ्यते, अन्या-णामितरेषां वेदाना ज्यौतिषाण्यवाप्यन्ते । विषयेऽस्मिन् आचार्य 'लगध' प्रणीतं 'वेदाङ्ग-ज्यौतिषम्' इति ग्रन्थ एव साम्प्रतमुपलभ्यते ।

२—कालिदास-भारती—उपमा कालिदासस्य

अस्पृष्टदोषा नलिनीव दृष्टा हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः ।

प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी ॥ श्रीकृष्णः ।

कविकुलललामभूतः कविताकामिनीकान्तः महाकविः कालिदासः कस्य सचेतसः चेतः नावर्जयति । अयं संस्कृतसाहित्यमहाकाशे अम्बरमणिरिव प्रकाशते । अस्य महाकवेः काव्यमाधुरी तथा प्रसिद्धा यथा नार्हति प्रस्तावनाम् । कालिदासो निजे काव्ये वस्तु-वर्णनावसरे रसस्य प्राञ्जलमुपस्थापनं तथा मनोरमपद्धत्या विधत्ते यथा स नातिमन्थर-

चपलः कामपि विचित्रां कमनीयतामावहन्नास्वादः पाठकानां हृदयानि हर्षस्तिमितवृत्तीनि विधत्ते। तस्य सूक्तयः सुवासिका मञ्जर्य इव चेतोहराः सन्ति। तद्यथा—

'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥ (हर्षचरिते)

उपमायां यादृक् सिद्धहस्तः प्रशस्तः कविः कालिदासोऽस्ति न तादृगन्यः कश्चित्कविः। अतः साधूच्यते—'उपमा कालिदासस्य।' एतदेवात्र विविच्यते।

कालिदासस्योपमाप्रयोगेऽपूर्वं वैशारद्यम्। उपमा त्वस्य निसर्गसिद्धा प्रेयसीव प्रतीयते। उपमाप्रयोगे चातुर्येणैव स 'दीपशिखा-कालिदास' इति प्रसिद्धिमाप। अस्य काव्येषु उपमालता यादृशी पुष्पिता पल्लविता च न तादृशी कवीश्वराणामन्येषां काव्येषु। उपमा कालिदासस्येति कथनं तु न प्रमाणमपेक्षते—

'पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुः दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या॥'
'सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥'
कामदेवो दीप इवास्ते, रतिश्च कामविहीना दीपदशेव भृशं दुःखमाप।
'गत एव न ते निवर्तते, स सखा दीप इवानिलाहतः॥
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम्।'

'रघुः पितुर्दिलीपस्य मनोहरैः शरीरावयवैः सूर्यरश्मेरनुप्रवेशात् बालचन्द्रमा इव वृद्धिं पुपोष। तथाहि—

पितुः प्रयत्नात् स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः॥

भारतीय-संस्कृतिपरम्परयानुकूलां 'रघूणां जीवनपद्धतिं कविकुलगुरुः कालिदासः इत्थं वर्णयति—

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्॥
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्॥
त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

भारतीयपरम्परोपनतस्त्रीजनस्य भर्तृजनं प्रति प्रेमदर्शनमित्थं वर्णयति—

किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन्।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः॥

साऽहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥
नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।
निर्वासिताऽप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमपेक्षणीया ॥

अजविलापमप्यतीव मार्मिकं प्रतिभाति । तथा हि—

पतिरंकनिषण्णया तया करणापायविभिन्नवर्णया ।
समलक्ष्यत बिभ्रदाविलां मृगलेखामुषसीव चन्द्रमाः ॥
विललाप सबाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ॥
कुसुमान्यपि गात्रसङ्गमात् प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः ॥
स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥
अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥

गीतिमयं काव्यं मेघदूतं हि काव्याम्बुधौ समुपगतं परमोज्ज्वलं रत्नम् । अत्र कश्चिद्यक्षः स्वपत्न्यामनुरक्तो गुह्यकेश्वरस्य स्वभर्तुर्नियोगं शून्यं कुर्वन् तेन 'वर्षमेकं कान्ता-विच्छेददुःखमनुभवन् रामगिर्याश्रमे तिष्ठ' इति कोपेन शप्तस्ततो वर्षाकाले समागते नितान्तविधुरोऽसौ यक्षो ज्ञानरहित एव मेघमेव दौत्येन सम्प्रेष्य स्वप्रियाया निकटे आत्मनः कुशलावस्थां प्रापयितुमिच्छन् स्वनगर्या अलकाया गमनमार्गं व्यजिज्ञपत् । अतः परमुत्तरमेघे—अलकानिवासिनां तथा स्वप्रियायाश्चाभिज्ञानं केन प्रकारेण च तस्या आश्वासनादिकमिति युक्तं वर्णितम् ।

मेघदूतस्य भाषा अतीव प्राञ्जला, सुमधुरा, प्रसादगुणशालिनी च । मेघं प्रति याचना-प्रकारः अतीव रोचकः । तथा हि—

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥
धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाऽचेतनेषु ॥

प्रायः श्लोकशतकमितोऽयं ग्रन्थः किमपि अलौकिकं मादकं तत्त्वं रक्षति येन लोको 'माघे मेघे गतं वयः' इति साभिमानं वक्तुमुत्सहते। इदमेव हि मेघदूतस्य वैशिष्ट्यं यत्तत्र वर्णनप्रवृत्तानि पद्यान्यपि मनोगतान् विरहिजनभावानभिव्यञ्जयन्ति—

'वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छायातटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः।
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः॥

पद्येऽत्र सिन्धोर्दशा दूरं गच्छति, विरहिण्या दशैव पुर उपेत्य विरहिणो हृदये कामपि पीडामवतारयति, याऽध्येतृरसिकानां हृदये विप्रलम्भशृङ्गारं प्रवाहयति।

कालिदासेन मेघदूते सौन्दर्यसृष्टेः परा काष्ठा प्रकाशिता—

'तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी'। इति सर्वाणि विशेषणान्युपन्यस्याप्यपरितुष्यता।

अस्य महाकवेश्चत्वारि महाकाव्यानि—ऋतुसंहार-कुमारसम्भव-रघुवंश-मेघदूताभिधानानि तथा त्रीणि नाटकानि—मालविकाग्निमित्र—विक्रमोर्वशीय—अभिज्ञानशाकुन्तलाभिधानि, तेषु शाकुन्तलं सर्वोत्कृष्टम्। इदं नाटकं कालिदासस्य सर्वस्वमभिधीयते।

कालिदासः स्वीये शाकुन्तले सौन्दर्यभावनायां रससिद्धौ च परां सिद्धिं प्राप्तवान्। प्रकृतिक्रोडे व्यतिगतवाल्यायाः शकुन्तलायाः स्वरूपे वर्ण्यमाने—

'अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥'

पुनश्च—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥

पद्यमिदं पठन् सहृदयः बाह्यप्रकृतेरन्तःप्रकृत्या सामञ्जस्यं प्रतियन् शकुन्तलां कमनीयलतारूपां प्रत्यक्षीकुरुते। सौन्दर्यभावनायां सौकुमार्यमावेदयितुं कविरयं यत्र तत्र कृतप्रयासः—

'पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।'

रससिद्धौ पुनरयमाचार्य एव। यद्यपि सर्वत्रैव शकुन्तलानाटकं रम्यं, तथापि तच्चतुर्थेऽङ्के ललनाधुरीणाया महिषीमङ्गलमयगुणप्रवीणायाः सुन्दरीसकललावण्यसमन्वितायाः स्वीयसौन्दर्यसमस्तभुवनव्यामोहिकायाः प्रियदर्शनायाः शकुन्तलायाः प्रस्थानानेहसि सर्वत्र भारतीकोष भगवतीतोपोपलब्धिविकासेन उपमाविलासेन अकृतवह्वायासेन श्रीमता कविकालिदासेन काश्यपमुखाद्यत् पद्यचतुष्कं प्रतिपादितम्, तत्र खलु भावस्य

प्रस्फोटनं, सांसारिकव्यवहारस्य प्रदर्शनम्, अचेतनाशानिसत्त्वैः सह प्रेमप्रकटनं, यन्न्यधायि पद्यचतुष्कमध्ये तदेव सर्वस्वान्तद्रावके प्रशमितचित्तदुःखपावके वरीवर्ति।

(अवलोकनीयौ)

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥

\+ \+ \+

शकुन्तला—(पितरमाश्लिष्य) कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवनं धारयिष्ये?

काश्यपः—किमेवं कातरासि?

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे,
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि।

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति)

गौतमी—जाते परिहीयते गमनवेला निवर्तय पितरम्।

शकुन्तला—कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये?

काश्यपः—गच्छ वत्से! शिवास्ते पन्थानः सन्तु।

अहो! कीदृशोऽयं मर्मस्पर्शी संवादः।

यत्र कालिदासीयनाटकेषु पात्राणि जीवनशक्तिसम्पन्नानि, उपमाः स्थानीयशोभावर्जनायेव विन्यस्ताश्च भवन्ति, तत्रैव हृदयपक्षोऽपि नानादरभाजनतां नीयते।

शब्दविन्यासोऽपि कवेरस्य कव्यन्तरविलक्षण एव, दृश्यताम्—

'ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारिः॥'
'तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुर्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम्।
विस्माययन् विस्मितमात्मवृत्तौ सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः॥'
'इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिरावेदितो वेदविदां वरेण।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं जगाद भूयो जगदेकनाथः॥'

किमीदृशी शब्दसज्जा क्वचिदपरकविकृतावपि दृष्टा श्रीमद्भिः?

विविधरूपधारिणी अस्योपमाऽपि चेतश्चमत्करोति—

तां हंसमाला शरदीव गङ्गां महौषधिं नक्तमिवात्मभासः।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः॥ (कुमार०)

कालिदासस्य वर्णविन्यासमाधुर्यं, भाषायाः प्राञ्जलता च नान्यत्राभिलक्ष्यते ।

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे, कनिष्ठिकाऽधिष्ठितकालिदासा ।

अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥

४—भासनाटकचक्रम्

महाकवेर्भासस्य कृतित्वेन त्रयोदश रूपकरत्नानि समुपलभ्यन्ते । 'भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्' इति राजशेखरभणितिमाश्रित्य भासनाटकचक्रमिति तत्कृतनाटकानां नाम व्यवह्रियते । त्रयोदशनाटकानां परिचयः समासतोऽत्र प्रस्तूयते । (१) मध्यमव्यायोगः—नाटकमिदमेकाङ्कि । अत्र हिडिम्बानामकराक्षस्या सह भीमस्य प्रणयः, घटोत्कचनामकपुत्रद्वारा चिरविरहितयोस्तयोः सङ्गश्च वर्णितः । (२) दूतघटोत्कचम्—एकाङ्कि नाटकमदः । हिडिम्बाभीमयोरात्मजस्य घटोत्कचस्य दौत्यमाश्रित्य धृतराष्ट्रान्तिकं गमनम् । दुर्योधनकृतस्तस्यावमानः । दुर्योधनकृतस्तस्यावमानः । दुर्योधनोक्तिश्च—'प्रतिवचो दास्यामि ते सायकैरिति ।' (३) कर्णभारम्—नाटकमिदमेकाङ्कि । कर्णस्योदात्तं चरितम्, तेन इन्द्राय कवचकुण्डले दत्ते । (४) ऊरुभङ्गम्—नाटकमेतदेकाङ्कि । भीमेन प्रियापरिभवप्रतनेन गदायुद्धे दुर्योधनोरुभञ्जनं वस्तु प्रतिपाद्यते । संस्कृत साहित्ये शोकान्तनाटकस्येदमेकं निदर्शनम् । (५) दूतवाक्यम्—एकाङ्कि नाटकम् । अत्र दूतभूतस्य श्रीकृष्णस्य सदाशयतया सहैव दुर्योधनस्याभिमानित्वं वर्णितम् । (६) पञ्चरात्रम्—अङ्कत्रयमत्र । कल्पिता कथा । द्रोणेन कौरवाणां यज्ञे आचार्यत्वं कृतम्, दक्षिणायां स पाण्डवानां राज्यं याचितवान् । पञ्चदिनाभ्यन्तरेऽन्वेषणे क्रियमाणे लभ्यं तदिति दुर्योधनस्याश्वासने द्रोणेन तथा कृतम् । (७) बालचरितम्—अङ्कपञ्चकमत्र । श्रीकृष्णस्य जन्मारभ्य कंसवधान्तं चरितमिह वर्ण्यते । (८) अविमारकम्—अङ्कषट्कमत्र । अविमारके—या कथा सा सम्भवतो गुणाढ्यकृतबृहत्कथातो गृहीता । राजकुमारस्याविमारकस्य कुन्तिभोजकुमार्या कुरङ्गया सह प्रणयोऽत्र वर्णितः । (९) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्—अङ्कचतुष्टयमत्र । मन्त्रिणो यौगन्धरायणस्य नीतिरुदयनवासवदत्तयोः प्रणयकथा चात्रोपनिबद्धा ।

(१०) स्वप्नवासवदत्तम्—अङ्कषट्कमत्र । मन्त्री यौगन्धरायणः पद्मावत्या मगधराजभगिन्या सहोदयनस्य विवाहं कारयित्वा राजशक्तिं वर्द्धयितुमैच्छत् । भ्रियमाणायां च वासवदत्तायां न सम्भवतीदमिति कदाचिदुदयने मृगयार्थं गते मन्त्रिसम्मत्या वासवदत्ता दग्धेति प्रचार्यते । राज्ञा चिरं विपद्यापि न तत्प्रेमणि मालिन्यमानीयते पश्चात् पद्मावत्यां परिणीतायां स्वप्नकल्पेनैव वासवदत्ता लभ्यते ।

(११) दरिद्रचारुदत्तम्—वसन्तसेनाचारुदत्तयोः प्रणयकथाऽत्र वर्णिता । अस्य चत्वार एवाङ्का उपलभ्यन्ते ।

(१२) अभिषेकनाटकम्—अङ्कषट्कमत्र । रामायणोक्ता वालिवधादारभ्य रामराज्याभिषेकान्ता कथाऽत्र वर्णिता ।

(१३) प्रतिमानाटकम्—अङ्कसप्तकमिह । रामायणप्रोक्तं रामस्य पूर्वचरितमुपनिबद्धम् ।

नाटकानामेतेषां प्रणेता भास एवान्यो वेति विविधा विप्रतिपत्तिर्विषयेऽस्मिन्। भास एवैतेषां नाटकानां प्रणेतेति विद्वद्भिरधिकैरङ्गीक्रियते। उपरिनिर्दिष्टनामानि नाटकरत्नानि समानकर्तृकाणि यत एषु आश्चर्यजनकं साम्यं प्रतिभासते। यथा—

(१) नाटकानि सर्वाण्यपि 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' एभिरेव शब्दैः प्रारभ्यन्ते। (२) एषु नाटकेषु क्वापि रचयितुर्नाम परिचयादिकं नोपलभ्यते। (३) प्रायः सर्वत्र नाटकभूमिकार्थं प्रस्तावनाशब्दस्थापने 'स्थापना' शब्दप्रयोगः। (४) भरतवाक्यं प्रायशः सममेव सर्वत्र। (५) एषां नाटकानां भाषाऽऽश्चर्यजनकं साम्यं वहति। (६) सर्वेष्वप्येषु रूपकेषु पताकास्थानस्य मुद्रालङ्कारस्य च समानः प्रयोगः। (७) अप्रधानपात्राणां नाम-साम्यम्, व्याकरणलक्षणहीनप्रयोगप्राचुर्यम्, समानं वाक्यं, सर्वत्र बाहुल्येन लभ्यते। (८) भरतकृतनाट्यशास्त्रीयनियमानां सर्वत्र समभावेनानादरः। (९) नाट्यनिर्देशस्य अभावः सर्वत्र समानः। (१०) एषां सर्वेषां रूपकाणां नामानि केवलमन्त एव ग्रन्थस्य लभ्यन्ते नान्यत्र क्वापि।

बाणभट्टः स्वीये हर्षचरिते 'सूत्रधारकृतारम्भैः' इति भासनाटकवैशिष्ट्यमाचष्टे। तच्च सर्वत्रेहावाप्यते। राजशेखरोऽभिधत्ते—'भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्। स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।' भोजदेवो रामचन्द्रगुणचन्द्रौ च स्वप्नवासवदत्तं भासकृतिमामनन्ति। अतो भास एव सर्वेषां प्रणेतेत्यवगम्यते।

भासस्य जनिकालश्च ४५० ई० पूर्वादनन्तरं २५० ई० पूर्वात्प्राक् च स्वीक्रियते। बहूनां रूपकाणां लेखको भासो जीवनस्य विविधानि क्षेत्राणि दृशोः पात्रतां नीतवानिति वक्तुं सुशकम्, अतएव चास्य रूपकेषु विविधता समायाता। अभिनेयताहेतवश्च—एषां रूपकाणामादितोऽन्तं यावदभिनये सौकर्यम्, सुबोधा सरला संक्षेपवती च वाक्यावलिः, वर्णनविरहः, अविस्तृतानि पात्राणां कथनोपकथनानि, इत्यादिकाः सर्वेषु रूपकेषु दृश्यन्ते। उपमारूपकोत्प्रेक्षार्थान्तरन्यासालंकाराणां प्रयोगो विशेषतोऽवाप्यते तस्य रूपकेषु। अनुप्रासादिकं विशेषतः प्रियं तस्य। यथा—हा वत्स राम जगतां नयनाभिराम (प्रतिमा०)। स मनोवैज्ञानिकविवेचने अतीव निपुणः। यथा—दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः (स्वप्नवासव०), प्रद्वेषो बहुमानो वा० (स्वप्नवासव०)। स उपमाप्रयोगेऽपि दक्षः। यथा—सूर्य इव गतो रामः (प्रतिमा०), विचेष्टमानेव० (प्रतिमा०)। भारतीया भावाः तस्मै सविशेषं रोचन्ते। यथा—पितृभक्तिः, पातिव्रत्यम्, भ्रातृप्रेमादिकम्। भर्तृनाथा हि नार्यः (प्रतिमा०), कुतः क्रोधो विनीतानाम्० (प्रतिमा०), 'अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम्' (स्वप्न०) स यथावसरम् व्याकरणादिवैदग्ध्यमपि प्रदर्शयति यथा—घनः स्पष्टो धीरः (प्रतिमा०), स्वरपद० (प्रतिमा०)।

भासस्य कृतयोऽन्येषां कृतिभिः सह साम्यं बिभ्रति। यथा—शाकुन्तले चतुर्थेऽङ्के वृक्षलतादीन् प्रति शकुन्तलायाः यः कोमलो मनोभावः—'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या' इत्यादिना वर्णितस्तत्तुल्य एव भासस्याभिषेके 'यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी' इत्यादौ मनोभावो वर्ण्यते। यथैव शाकुन्तले—'तव सुचरितमङ्गुली

यदूनं प्रतनु मनेव विभाव्यते फलेन' इति दुष्यन्तेनाङ्गुरीयकं प्रत्युच्यते, तथैव स्वप्नवासवदत्ते —'श्रुतिसुखनिनदे कथं न देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता' इति वीणादौर्भाग्यमाक्रुश्यते। एवमेव शूद्रकस्य मृच्छकटिकेन सह चारुदत्तस्य सर्वांशगतं साऽऽदृश्यमाशाद्यते।

५—विद्ययाऽमृतमश्नुते

जगति 'सर्वद्रव्येषु विद्यैव अहार्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा सर्वश्रेष्ठं द्रव्यम्' इत्याहुः विद्वांसः। अतः 'विद्याविहीनः पशुरि'ति लोकोक्तिः प्रसिद्धाऽस्ति। विद्याविहीनो मानवः पशुरिव धर्माधर्मयोः पापपुण्ययोः कर्त्तव्याकर्त्तव्ययोः निर्णयेऽशक्तः मानवताविरोधिनमाचारं करोति। धनादिना असाध्यानि सर्वाणि अभीप्सितानि विद्यया अनायासेन सिद्ध्यन्ति अत उक्तम्—

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

सर्वधनेभ्यः विद्याधनरूपप्राधान्ये अस्य वैचित्र्यमेव कारणम्। अन्यधनानि व्ययतः क्षयं यान्ति किन्तु विद्याधनम् व्ययतः संवर्द्धते।

अन्यधनानि संचयात् वर्धन्ते, विद्याधनं संचयान्नश्यति। अन्यानि धनानीव विद्याधनं चौरेण चोरयितुं न शक्यते, नापि राज्ञा हर्तुं शक्यते, नापि भ्रातृभिः संविभज्य ग्रहीतुं शक्यते, नापि अन्यधनराशिरिव विद्याधनं भारेण बाधते। उक्तं च—

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात्॥

अन्यदपि—

न चौर्यहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्॥

अन्यच्च—

वसुमतीपतिना न सरस्वती बलवता रिपुणापि न नीयते।
समविभागहरैर्न विभज्यते विबुधबोधबुधैरपि सेव्यते॥

विद्याबलेनैव कालिदासभवभूतिबाणप्रभृतयो विद्वांसो महर्षयः कवयश्च अमरा बभूवुः, ते स्वसरसपदावलीभिरधुनापि जीवन्ति। उक्तं च—

विद्ययाऽमृतमश्नुते। (श्रुतिः)

अन्यदपि—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

राजानो महाराजा अपि विद्बुधामग्रे नमयन्ति स्वशिरांसि। उक्तं च—

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

विद्यैव धर्मार्थकाममोक्षरूपपुरुषार्थ-चतुष्टय-प्राप्तिसाधनम्। यस्यायं क्रमः—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

मानवः विद्यया ब्रह्मज्ञानं प्राप्य मुक्तो भवति। किन्तु एतदप्यवधारणीयम् यत् क्रियान्वितैव विद्या संसिद्ध्यै कल्पते। क्रियाकलापरहिता विद्या निष्फला, तादृश्या विद्यया युक्तो विद्वानपि मूर्ख एव गण्यते। उक्तं च—

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।

तद्विद्याऽमृतं पातुं सततं सुखं तिरस्कृत्य, आलस्यं विहाय सततं गुरु संसेव्य च सचेष्टो भवेत्। उक्तं च—

सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत्सुखम्॥

विद्यया मानवः विपुलां कीर्तिं धनञ्च लभते। आधुनिकयुगेऽपि कवीन्द्रो रवीन्द्रनाथ-ठाकुरः, जगदीशचन्द्रवसुः, राधाकृष्णश्चेत्यादयः भारतीयविद्वांसः जगति विपुलं यशः प्रभूतं धनं च लब्ध्वा देशस्य गौरवमवर्धयन्त। केनचित्कविना एकेनैव श्लोकेन सम्यक् विद्यामहत्त्वं प्रदर्शितम्—

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥ इति॥

६—बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वयजलधिकौस्तुभो बाणः।
नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखरंगलासिका वाणी॥ (पार्वतीपरिणये)

देव्याः सरस्वत्या वरदः पुत्रो महाकविबाणभट्टो संस्कृतगद्यलेखकेषु सर्वमूर्द्धाभिषिक्तः महामहिमशाली असाधारणप्रतिभासम्पन्नो महामेधावी चासीत्। स्वजीवनविषये स्ववंश-परिचयविषये अयं हर्षचरितस्यादौ विस्तरेण लिखितवान्। तथा हि—

'स बाल एव विधेर्बलवतो वशादुपसम्पन्नया व्ययुज्यत जनन्या।
जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत्॥ (हर्षचरिते)

बाणभट्टस्य कालविषये कतिपयैः प्रमाणैर्निश्चीयते यदयं कान्यकुब्जाधिपस्य श्रीहर्ष-देवस्य सभापण्डित आसीत्। यतो हि—

'श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।
श्रीहर्ष एव निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः॥'

राजशेखरोऽप्येवं वदति—

> अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्ग-दिवाकरः ।
> श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः ॥'

अतो हर्षकालीन एव बाणभट्ट इति निर्विवादम् ॥

अयं कविधुरवः शोणनदस्य पश्चिमे तटे प्रीतिकूटनाम्नि ग्रामे वात्स्यायनवंशे चित्रभानो राजदेव्यां समुत्पन्न इति निर्विवादं जानीमः। तच्चैतदीयहर्षचरितेन कादम्बरीगद्यस्योपक्रमश्लोकैश्च सुस्पष्टमवगम्यते ।

अयं महादेवोपासनायां पूर्णतया आग्रही बभूवेति सम्भावयामः, यतोऽयं हर्षभ्रात्रा कृष्णेनाहूतः श्रीहर्षसभायां प्रवेशाय प्रास्थानिकानि मङ्गलानि प्रयुञ्जानो भगवन्तं विरूपाक्षमेव समादरेण पूजयाम्बभूव ।

तथाहि—

'देवदेवस्य विरूपाक्षस्य क्षीरस्नपनपुरःसरम् सुरभिकुसुमधूपगन्धध्वजबलिविलेपनप्रदीपकबहुलां विधाय पूजाम् ॥'

इत्यादि हर्षचरितस्य द्वितीयोल्लासे तेन स्वोपासनावर्या स्वयमेव स्पष्टीकृतेति तत एवाधिकं कर्णेहत्य निरीक्षणीयम् ।

यत्तु—

> जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
> प्रागल्भ्यमधिकं माप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥

पूर्वं यथा शिखण्डिनी द्रुपदपुत्री शिखण्डी-द्रुपदपुत्ररूपा बभूव तथा वाणी सरस्वत्यपि अधिकप्रागल्भ्यप्राप्त्यर्थं बाणवाणी-कादम्बरीकर्तृरूपा बभूव । 'करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्' इति हर्षचरितोक्तदिशा हर्षचरितस्याख्यायिकाग्रन्थरूपत्वं प्रतीतम् । नेदं साधारणं चरितपुस्तकमपि तु सरसं काव्यमिति वर्णनेषु सजीवतामानेतुमत्र प्रयासः कृतो वेद्यः। हर्षचरिते कवेर्वर्णनचातुरी बहुशोऽवलोक्यते। तेषु मुख्यत उल्लेख्याः प्रसङ्गाः सन्ति–मुमूर्षोर्नृपस्य प्रभाकरस्य वर्णनम्, वैधव्यदुःखपरिहाराय सतीत्वमाश्रयन्त्या यशोवत्या वर्णनम्, सिंहनादस्योपदेशः, दिवाकरमित्रस्य राज्यश्रीसान्त्वनम् । बाणस्य कादम्बरीवद् हर्षचरितस्यापि वर्णनशैली, कविकल्पनापूर्णवाग्धारा सहृदयानां मनः चमत्कृतं करोति । तथा—"यस्मिंश्च राजनि निरन्तरयूपनिकरैरङ्कुरितमिव कृतयुगेन, दिङ्मुखविसर्पिभिरध्वरधूमैः पलायितमिव कलिना, सुधुवैः सुरालयैरिवावतीर्णमिव स्वर्गेण, सुरालयशिखरोद्धूयमानैर्धवलध्वजैः पल्लवितमिव धर्मेण...' 'स्थानेषु स्थानेषु च मन्दमन्दमास्फाल्यमानालिङ्गयकेन, शिञ्जानमञ्जुवेणुकेनानुनालानुवीणिन, कलकांस्यकोशीक्वणितकोलाहलेन समकालदीयमानानुतालतानकेनातोद्यवाद्येनाऽनुगम्यमानाः, पदेपदे भगवद्गणितरवैरपि सहृदयैरिवानुवर्त्यमाना तालरवाः कोकिला इव मदकलकाकलीकोमलालापिन्यः, विटानां

कर्णामृतान्यश्लीलरासकपदानि गायन्त्यः, कुङ्कुमप्रमृष्टरुचिरकायाः काश्मीरकिशोर्य इव वलान्त्यः......'

ऐतिहासिकांशं वर्जयित्वा सन्दर्भोऽयं सर्वथा काव्यलक्षणोपेतः। यदा वयं हर्षचरिते वेषभूषयोः आचारविचारयोः सेनासंस्थानस्य च वर्णनं पठामः, राज्यश्रियो विवाहावसरे शिल्पिभिः स्वानुरूपाणि यावन्ति भूषणानि समर्पितानि, रजकैश्च यादृशानि निबध्य रञ्जितानि वस्त्राणि प्रस्तुतानि तेषां वर्णनेन तात्कालिकी भारतीया सांस्कृतिकी स्थितिः करामलकवद् भासते।

कादम्बरी बाणभट्टस्य अद्वितीया द्वितीया रचना। कवेर्गरिमा कमनीयां कादम्बरीमेवाश्रित्याऽवतिष्ठते इत्यत्र नास्ति विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। पात्राणि खल्वत्र तावत्या सजीवतया चित्रितानि यया तानि प्रत्यक्षदृश्यतामिव यान्ति। एकत्र पाठको यदि शबरसेनाप्रयाणं पठित्वा विस्मयाविष्टो जायते, जाबालेराश्रमं दृष्ट्वा स्तिमितान्तःकरणो भवति, तदाऽपरत्र स एव कादम्बर्या महाश्वेताया वा वर्णनं पठित्वा लोकान्तरसमुपस्थित इवाच्छोदसरसो वर्णनं श्रुत्वा कुतुकाकुल इव सुवासिक इव च जायते। एकतो यदि शुकनासोपदेशमधीत्य हृदयं निर्मलदर्पणतां नयति तदाऽपरत्र राजान्तःपुरवर्णनं श्रुत्वा हृदयं रञ्जयति। प्राकृतिकवस्तूनां वर्णनेऽपि बाणस्य कादम्बरी न कुतोऽपि हीयते। अत एवाह धर्मदास इत्थम्—

'रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥

अन्योऽपि कश्चिद्

'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरुच्यते।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥

वस्तुतस्तु बाणस्य गद्यं महाविशालसप्तभूमराजप्रासादोपमम्, यत्र क्वचन प्रकोष्ठे रमणीयाकृतिविशिष्टपरिधानोपबृंहितं रमणीचित्रम्, क्वचिन्मृगयोपयुक्तनानाजीवस्य चित्राणि, क्वचित्कलकलनादिनी नदी चित्रिता, क्वचित्तपोभूमिर्निदर्शिता, क्वचिच्च निष्पतच्छरभीषणा रणभूमिरङ्किता। समासतः कानिचिदुदाहरणान्यत्र प्रस्तूयन्ते। अच्छोदसरोवरवर्णनं यथा—'प्रविश्य च तस्य तरुखण्डस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः, स्फटिकभूमिगृहमिव वसुन्धरादेव्याः, निर्गमनमार्गमिव सागराणाम्, निस्यन्दमिव दिशाम्, अंशावतारमिव गगनतलस्य, कैलासमिव द्रवतामापन्नम्, तुषारगिरिमिव विलीनम्, चन्द्रातपमिव रसतामुपेतम्, हाराट्टहासमिव जलीभूतम्.....मदनध्वजमिव मकराधिष्ठितम्, मलयमिव चन्दनशिशिरवनम्, असत्लावननिवाष्टान्तम्, अतिमनोहरम्, आह्लादनं दृष्टेः, अच्छोदं नाम सरो दृष्टवान्।' सन्ध्यावर्णनं यथा—अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थिते मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुदवहत्।......त्वक्सर्पिर्वायस्पर्शोपरि-

जिहीर्षयेव संहृतपादः पारावतचरणपाटलरागो रविरम्बरतलादलम्बत।...विहाय धरणितलमुन्मुच्य कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तपोवनशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत।' प्रभातवर्णनं यथा—एकदा तु प्रभातसन्ध्यारागलोहिते गगनतलकमलिनीमधुरक्तपक्षसंपुटे वृद्धहंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि,..... सन्ध्यामुपासितुमुत्तराशावलम्बिनि मानससरस्तीरमिवावतरति सप्तर्षिमण्डले,...इतस्ततः संचरत्सु वनचरेषु, विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासरःकलहंसकोलाहले,...क्रमेण च गगनतलमार्गमवतरतो दिवसकरवारणस्यावचूलचामरकलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठरागलोहिते किरणजाले, शनैः शनैरुदिते भगवति सवितरि०'। जाबालिवर्णनं यथा—'स्थैर्येणाचलानां, गाम्भीर्येण सागराणां, तेजसा सवितुः, प्रशमेन तुषाररश्मेर्निर्मलतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्वाणम्, ' शरत्कालमिव क्षीणवर्षम्, शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्, ...बाडवानलमिव सततपयोभक्षम्, शून्यनगरमिव दीनानाथविपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्टशरीरं भगवन्तं जाबालिमपश्यम्'। कादम्बरीवर्णनं यथा—पृथिवीमिव समुन्सारितमहाकुलभूभृद्व्यतिकरा शेषभोगेषु निषण्णाम्, गौरीमिव श्वेतांशुकरचितोत्तमाङ्गाभरणाम्, इन्दुमूर्तिमिवोद्दाममन्मथविलासगृहीतगुरुकलत्राम्, आकाशकमलिनीमिव स्वच्छाम्बरदृश्यमानमृणालकोमलोरुमूलाम्, कल्पतरुलतामिव कामफलप्रदाम्,...कादम्बरीं ददर्श।'

विषयानुरूपमेव बाणस्य शब्दावल्यपि विलोक्यते। यथा विन्ध्याटवीवर्णने ओजःसमासभूयस्त्वम्। 'उन्मदमातङ्गकपोलस्थलगलितसलिलसिक्तेनेवानवरतमेलावनेन मदगन्धिनान्धकारिता, प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालंकृता च।' वसन्तवर्णनावसरे मृदुलामतिकोमलाञ्च पदावलीं प्रयुङ्क्ते। यथा—'कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानङ्गध्वजांशुकेषु, मधुकरकुलकलङ्ककालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु, मधुमासदिवसेषु।'

बाणस्य कादम्बर्यां उपमारूपकोत्प्रेक्षाश्लेषविरोधाभासपरिसंख्यैकावल्यादयोऽलंकाराः पदे पदे प्राप्यन्ते। उदाहरणरूपेण कतिचनोद्धरणानि प्रस्तूयन्ते। एकावली यथा महाश्वेताजन्मवर्णने—'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।' परिसंख्या यथा जाबाल्याश्रमवर्णने—'यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु,...मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, ...रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन। 'यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितं, ' शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातो, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।' परिसंख्या यथा शूद्रकवर्णने—'यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः,

शास्त्रेषु चिन्ता'। उत्प्रेक्षा यथा सन्ध्यावर्णने—'अपरसागराम्भसि पतिते दिनकरे पतनवेगोत्थितमम्भःसीकरनिकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्'। श्लेषो यथा सन्ध्यावर्णने-'क्रमेण च रविरस्तमुपागत इन्दुरुदन्तमुपलभ्य जातवैराग्यो धौतदुकूलवल्कलधवलाम्बरः सतारान्तःपुरः पर्यन्तस्थिततनुतिमिरतमालवनलेखं सप्तर्षिमण्डलाध्युषितम् अरुन्धती-संचरणपवित्रम् उपहिताषाढम् आलक्ष्यमाणमूलम् एकान्तस्थितचारुतारकमृगम् अमर-लोकाश्रममिव गगनतलम्'''अमृतदीधितिरध्यतिष्ठत्'। श्लेषो यथा राजभवनवर्णने—'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसंचयम्, नाटकमिव पताकाङ्क-शोभितम्, पुराणमिव विभागावस्थापितसकलभुवनकोशम्, व्याकरणमिव प्रथममध्यमोतम-पुरुषविभक्तिस्थितानेकादेशकारकाख्यातसंप्रदानक्रियाव्ययप्रपंचसंस्थितम्'। विरोधाभासो विन्ध्याटवीवर्णने 'अपरिमितबहुलपत्रसंचयापि सप्तपर्णोपशोभिता, क्रूरसत्त्वापि मुनिजन-सेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा'। उपमा यथा विन्ध्याटवीवर्णने—'चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्ष-सार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च।' विरोधाभासो यथा शबरसेनापतिवर्णने—'अभिनवयौवनमपि क्षपितबहुवयसम्, कृष्ण-मप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दचारमपि दुर्गैकशरणम्'। श्लेषमूलोपमा तथा चाण्डालकन्या वर्णने—'नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्, मूर्च्छामिव मनोहारिणीम्, दिव्य-योषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अमूर्तामिव स्पर्शवर्जिताम्'। विरोधा-भासो यथा शूद्रकवर्णने—'आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणा-धिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम्'।

अयं बाणो यत्र दीर्घसमासां वाक्यावलिं विन्यस्य पाठकाना पुरतो वर्णनबाहुल्य-स्तूपमुपस्थापयति तत्रैव लघुवाक्यानां प्रयोगेऽपि न मन्दायते। कपिञ्जलः पुण्डरीकं काम-पीडितमुपदिशति—

"नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः। धैर्यधना हि साधवः। किं यः कश्चित्प्राकृत इव विकलीभवन्तमात्मानं न रुणत्सि? क्व ते तद् धैर्यम्, क्वासा-विन्द्रियजयः।

एवमेव शुकनासोपदेशे लक्ष्मीस्वरूपवर्णने—'न परिचयं रक्षति। नाभिजनम् ईक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति।'

एवमेव जाबालिवर्णने—'प्रवाहः करुणरसस्य, संतरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्,'' सागरः सन्तोषामृतस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य,'''सखा सत्यस्य, क्षेत्रम् आर्जवस्य, प्रभवः पुण्यसंचयस्य०।'

भाषासमृद्धिमालोक्यैव पाश्चात्या बाणस्य कादम्बरीमरण्यानीं मन्वते। तेषां मते बाणस्य गद्यं खलु तद्भारतीयमरण्यं यत्र क्षुपोच्छेदं विना मार्गो दुर्लभः, यत्र च बहवः अप्रतीतार्थाः शब्ददन्दशूकास्तत्र प्रविविक्तून् प्रतीक्षमाणाः निलीय स्थिताः। उक्तं च—

'आः सर्वत्र गभीरधीरकविता-विन्ध्याटवी-चातुरी-
संचारी करिकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

अत एवेयमुक्तिः सम्यक् घटते—

'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' ।

७—सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्

सतां सज्जनानां सङ्गतिः संपर्कः मानवेषु गुणोत्कर्षाय परमश्रेष्ठं वस्त्वस्तीति कवि-प्रवरस्याशयः । यथा काञ्चनसंसर्गे काचोऽपि मारकतीं द्युतिं धत्ते, पद्मपत्रस्थितं तोयमपि मुक्ताफलश्रियम्, तथैव गुणिजनसंसर्गात् मूर्खोऽपि जनः गुणवान् जायते । अतः सत्य-मुक्तं कविना—

काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीर्द्युतीः ।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ॥

संसर्गशीलो मानवः । सर्वं हि चेतनाचेतनेषु संसर्गप्रभावमध्यक्षयामः । प्रतिदिनं पश्यामोऽङ्गारागारं भ्राम्यतो जनस्य वासांसि कच्चराणि भवन्ति । शौण्डिकीहस्ते पयोऽपि वारुणीत्यभिधीयते लोकेन । अलोहितोऽपि मणिरुपाश्रयवशाल्लोहितः प्रतीयते लौहितीक इति चोच्यते । सत्यमुक्तम्—

यादृशो यस्य संसर्गो भवेत्तद्गुणदोषभाक् ।
अयस्कान्तमणेर्योगादयोऽप्याकर्षको भवेत् ॥

वस्तुतः सत्सङ्गवशादेव मानवः समुन्नतो भवति । सतां संसर्गेण जनः सज्जनः भवति, दुर्जनानां सम्पर्केण च दुर्जनः । उक्तं च—

संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।

अतएव जनेन सर्वदा सतामेव सङ्गतिर्विधेया । उक्तमपि—

सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम् ।
सद्भिर्विवादं मैत्रीञ्च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत् ॥

सज्जनानां संसर्गेण पुरुषस्य मान उन्नमति, पुण्ये रुचिरुदेति, पापाच्चोद्विजते मनः । कामक्रोधादयो मदमात्सर्यादयश्च दिशो विदिशश्च भजन्ते तेनास्य चेतः प्रसीदति, कृत्येषु च विहितेषु विलम्बं प्रवर्तते । उक्तं च सत्सङ्गतिफलं केनापि कविना—

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

किञ्च—

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते सा कामधुक् कामितमेव दोग्धि ।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते सतां तु सङ्गः सकलं प्रसूते ॥

अतः सज्जनानां सङ्गतिरेव समुपास्या। तेन जनः प्रख्यायते च लोके नाभ्याख्यायते, उद्गीयते नावगीयते, विश्वस्यते न त्वभिशङ्क्यते। सुजनो हि विमलधीर्भवति, साधु चिन्तयति, व्यथितोऽपि सत्यं न जहाति, नानृतं ब्रवीति। यदि सुजनः संसृज्यते तर्हि क्रमेणात्मानं परिष्करोति। हीनोऽपि जनः सत्संसर्गवशात् महान् जायते, चौरोऽपि परोपकारप्रवणो भवति। वाल्मीकिसदृशाः सत्संसर्गवशान्मुनिवृत्तिपरा महर्षयोऽभूवन्।—श्रीविवेकानन्दस्य महाभागस्य वृत्तान्तः कस्य न परिचितः साक्षरस्यैतद्देशजस्य। एवमेव असत्संसर्गेण मानवोऽपि दानवो भवति। विविधविद्याभूषितोऽपि सत्कुलीनोऽपि सकलगुणालङ्कृतोऽपि निन्दनीयतां व्रजति। साधुभिः समवहेल्यते। उक्तं च—

असतां सङ्गदोषेण को न याति रसातलम्।

किञ्च—

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥

अतः सद्भिरेषणीयः संसर्गोऽसद्भिश्च परिहरणीयः। परं सत्सङ्गतिः कथमपि पुण्येन भवति। यदा च भवति तदा महते कल्याणाय कल्पते। कविवरैः सत्सङ्गतेर्माहात्म्यवर्णनं मुक्तकण्ठं कृतमवलोक्यते। तद्यथा—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

वेदेऽपि च सत्सङ्गतेर्महती प्रशंसा कृताऽवलोक्यते।

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमतिसमं क्राम॥ अ० वेदे॥

येषां चित्ते सत्सङ्गप्रणयिनी वृत्तिः अनवरतं जागर्ति ते स्वजीवने कल्याणकल्पद्रुमामृतमयं रसं रसयन्ति, ते एव सर्वदा जनैः पुष्पमालाधानैः सम्मान्यन्ते। अत एव आत्मकल्याणाभिलाषुकेण जनेन सदा सर्वदा सत्सङ्गतिरेवोपास्या। सत्सङ्गतेर्गुणगणान् गायं गायमनेकैः कवीश्वरैः स्वीया काव्यकला निर्मलीकृता—

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।
स्वात्यां सागरशुक्तिसंपुटगतं तज्जायते मौक्तिकम्
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते॥

किञ्च—

गङ्गेवाघविनाशनी जनमनःसन्तोषसच्चन्द्रिका
तीक्ष्णांशोरपि सत्प्रभेव जगदज्ञानान्धकारापहा।

छादेवाखिलतापनाशनकरी स्वर्धेनुवत् कामदा
पुण्यैरेव हि लभ्यते सुकृतिभिः सत्सङ्गतिर्दुर्लभा ॥

यथा निष्कल्मषाणां सौजन्यशालिनां धर्मानुरागिणां सन्निधिरुपकरोति लोकस्य न तथेतरत् किञ्चित् । सत्सङ्गति-वचानेनानेन निर्धूतसकलकल्मषाः शुद्धान्तःकरणा मानवा यशसः कीर्तेश्च पराकाष्ठां गच्छन्तो जन्मसाफल्यं भजन्ते । किं बहुना—

वरं गहनदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न दुष्टजनसम्पर्कैः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥

अतः सत्सङ्ग एवोपादेयः हेयश्च दुसङ्गः ।

८—कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूतेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥ (गोवर्द्धनाचार्यः)

संस्कृतभाषायां नाटकानां प्रणेतृषु प्रधानान्यतमस्य भवभूतेर्वास्तविकं नाम श्रीकण्ठ इत्यासीत् । 'गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ' इति पद्यप्रणयनमूलकमस्य भव-भूतिनाम्ना प्रथनं श्रूयते । विदर्भदेशवासी श्रोत्रियविप्रवंशश्चायं विविधागमशास्त्रपार-दृश्वाऽऽसीत् ।

हर्षचरिते बाणभट्टः भवभूतेर्नाम कीर्तयति । (अष्टमशतकोत्पन्नो वामनश्च तदीय-ग्रन्थतः स्वग्रन्थे उदाहरणं ददाति । राजशेखरोऽपि भवभूतिं स्वपूर्वभवं प्रख्यापयति —

'स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स राजते सम्प्रति राजशेखरः ।'

राजतरङ्गिण्याम्—

'कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥'

इति निर्दिशन् कल्हणो भवभूतेर्यशोवर्मकालिकतां प्रत्येति, यशोवर्मा च ७३६ मिते खीष्टाब्दे म्रियते स्म । एभिः साक्ष्यैर्भवभूतेः समयः सप्तमशतकासन्नः प्रतिपन्नः ।

अस्य पिता नीलकण्ठः, माता च जातुकर्णी विदर्भराज्ये पद्मपुरेऽयं कविरासीत् । कान्यकुब्जस्य यशोवर्मणः सभायामयमासीत् । पण्डितप्रकाण्डो यजुर्वेदी चायम् । अयं कश्यपगोत्रीयः कुमारिलस्य शिष्यश्चासीत् । करुणरससमावेशोऽस्यातितरं साधारण्यं सामर्थ्यम् । एतत्कृत उत्तररामचरिते—

'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥

इत्यादिना श्लोकेन प्रतीयते ।

उत्तररामचरिते तु करुणरसः पराकाष्ठां गत इव प्रतिभाति । तद्यथा—

हा हा देवि स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥

करुणरसप्रवाहपरीक्षया परीक्ष्यते तर्हि नाटकत्रयमस्य उत्तररामचरितमेव सर्वातिशायि । यथाऽत्र कारुण्यरसनिस्यन्दो, न तथाऽन्यत्र । अत्रोदाहरणरूपेण कतिचनोद्धरणानि प्रस्तूयन्ते ।

उत्तररामचरितस्य प्रथमेऽङ्के आदावेव पितृवियोगविषण्णां जानकीं दाशरथिः आश्वासयति । गृहस्थधर्मस्य विघ्नव्याप्तत्वं व्याचष्टे । 'संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ।' विषण्णां जानकीमाश्वासयति—'क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरञ्जनीयस्तन्नो यदुक्तमशिवं नहि तत्क्षमं ते ।' प्रियवियोगजन्मा दुःखाग्निः कथं पीडयति मानसमिति व्याहरति—'दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति ।' रामस्य विक्लवत्वं विलोक्य ग्रावाणोऽप्यरुदन् । 'अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना, तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि । जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितैरपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।' यदैव रामबाहुलतोपधायिनी सीता निर्भयं स्वपिति, तावदेव जनप्रवादजन्यो विषमो विषादहेतुर्विप्रयोगः समुपतिष्ठते । 'हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्, वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः । एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम् ।' जानकीसहवासं स्मरन् रामोऽभिधत्ते—'चिराद् वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः, कुतश्चित् संवेगात् प्रचल इव शल्यस्य शकलः । व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः, पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव ।' रामः स्वावस्थां वर्णयति—'दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते, वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् । ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्, प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ।' सीता करुणस्य मूर्तिरस्ति, दीर्घशोकः शरीरं शोषयति । 'करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी, विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।' 'किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद् विप्रलूनं, हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः । ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं, शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम् ।' रामं दुःखाग्निरुत्पीडयति । 'अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः । उत्पीड इव धूमस्य, मोहः प्रागावृणोति माम् ।' वासन्ती रामं पृच्छति यत्—'अयि कठोर यशः किल ते प्रियं, किमयशो ननु घोरमतः परम् । किमभवद् विपिने हरिणीदृशः, कथय नाथ कथं बत मन्यसे ।' रामः सशोकमुत्तरति । 'त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेस्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः । ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा, क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता ।' सीतापरित्यागविषण्णो रामः रोदितितराम् । 'न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं ततस्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनु-

शोचिता । चिरपरिचितास्ते ते भावास्तथा द्रवयन्ति माम्, इदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते ।' पूर्वकृतकर्मजं दुःखं दुर्निवारम् । 'सोऽयश्चिरं राक्षसमध्यवासस्त्यागो द्वितीयस्तु सुदुःसहोऽस्याः । को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ।' जानकी-परित्यागाद् राम आत्मानं दयापात्रं न मनुते । 'जनकानां रघूणां च, यत् कृत्स्नं गोत्र-मङ्गलम् । तत्राप्यकरुणे पापे, वृथा वः करुणा मयि ।' प्रियावियोगे जगदतितरां दुःखार्णव भवति— जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते, कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ।' प्रियानाशे जगदरण्यमिव प्रतीयते । 'विना सीता देव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः, प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं भवति ।' संबन्धिवियोगजानि दुःखानि प्रियजनदर्शने नितरां वर्धन्ते । 'सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां, दुःखानि संबन्धिवियोग-जानि । दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि, स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते ।' अत एव सत्यमुक्तम्— कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते ।

कालिदास-भवभूत्योस्तुलना—उभावपि कवीश्वरौ संस्कृतसाहित्यस्य मूर्धाभिषिक्तौ नाट्यकारौ । कालिदासः शृङ्गाररसस्य आचार्यः भवभूतिश्च करुणरसस्य । उभावपि स्वविषये निरुपमौ नाट्यकलाकारौ । कालिदासस्य रचनायां कल्पनावृत्तिरेव मुख्या, भवभूतेः रचनायामभिधावृत्तिरेव मुख्या । कालिदासस्य सर्वमपि वाक्यं प्रायः लक्ष्यव्यङ्ग्यार्थ-योर्बोधकं वर्तते । यथा शकुन्तलामवलोक्य दुष्यन्तः 'अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम् ।' अत्र नेत्रनिर्वाणजन्यरसास्वादो वाचकसामाजिकानुभवगम्यः । भवभूतेस्तु पदेऽनुभवोऽपि वाच्यत्वेन स्पष्टतरा सहृदयानां तादृग् हृदयङ्गमः यथा मालतीविषये माधवः—

'अविरलमिव दाम्ना पौण्डरीकेण बद्धः
स्नपित इव च दुग्धस्रोतसा निर्भरेण ।

अत्र चक्षुर्दर्शनजन्यानुभवस्य कविनैव स्पष्टशब्दैर्वर्णनाद्वाच्यतया तादृक् सामाजिका-नुभवगम्यत्वम् ।

यत्र कालिदासः प्रकृतेर्ललितं कोमलं च पक्षं स्वकविताया विषयतां नयति तत्र भवभूतिः प्रकृतेर्विकटमुग्रं चांशं स्वकविताया विषयतां प्रापयति । कालिदासः—

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।'

इति वर्णयति तत्र भवभूतिः—

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः ।
सीमानः प्रदरोदरेषु विलसत्स्वल्पाम्भसो या स्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते ॥

कालिदासस्य रामः सत्यपि दृढे सीतानुरागे लोकाचारं पालयति, परं लोकाचार-पालनप्रवृत्तेः पूर्वं दोलाचलचित्तवृत्तित्वं प्रतिपद्यते—

'किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे सीतामदोषामुत सन्त्यजामि ।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत् स दोलाचलचित्तवृत्तिः ॥'

भवभूतेस्तु रामः किमप्यविचार्यैव कर्त्तव्यमवधारयति, वाढं तेन स्वाचरणेनाजीवनं पुटपाकप्रतीकारां सन्तापमनुभवति—

'स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥'

गुणगौरवेण भवभूतेरन्यद्रूपकद्वयमतिक्रम्य वर्तते तदीयमुत्तररामचरितमित्युक्तमपि केनचित्—'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।' अत्र नाटके पात्राणां चरित्राणि नितान्तोज्ज्वलानि चित्रितानि । यद्यपि कतिपये समालोचका अत्रापि क्रियावेगस्याभावं कथयन्ति परन्तु तन्नात्र तथा प्रकटम् । अन्तिमाङ्के भवभूतिना यो नाटकान्तरसमावेशः कृतस्स तु कालिदासकृतीनामपि मुखं मलिनयति ।

९—धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्

धर्मो हि नाम इन्द्रियविषयप्राप्तिजन्यां क्षणिकां सन्तुष्टिमनपेक्ष्य वस्तुत आत्मकल्याणसाधनस्य चरणम् । 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' इति काणादाः । अभ्युदयः लौकिकोन्नतिः निःश्रेयसश्च पारलौकिकी सिद्धिः । शास्त्रकारैः धर्मस्य विविधानि लक्षणानि कृतानि दृश्यन्ते, तद्यथा—

चोदनालक्षणो धर्मः इति जैमिनिः ।
यत्त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मः ।
यद्गर्हन्ते सोऽधर्मः । इत्यापस्तम्बाचार्याः ।

भगवान् मनुः धर्मस्य लक्षणमाह—

'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

धारणाद् धर्म इत्याहुः । इदं च कालत्रयेप्यबाधं वचः । धर्मो द्विविधः—वास्तविकस्तत्साधनरूपश्च । तत्र वास्तविकः धर्मः सर्वकालेषु सर्वदेशेषु च समानः । धृतिः क्षमा शमो दानमहिंसा सत्यमित्यादिरूपो धर्मः वास्तविकः धर्मोऽस्ति । द्वितीयः पुनस्तत्तद्देशकालाद्युपाधिभेदेन भिद्यते । परम्परागतः सम्प्रदायगतः कर्मकाण्डरूपः द्वितीयस्तु । यथा तत्तत्प्रकारेण सन्ध्याविधिः, तत्तत्तीर्थयात्रा इत्यादि ।

ऐहिकामुष्मिकसुखसाधनं मनुष्यस्य च परमः सखा यत्खलु धर्मानुष्ठानम् । धर्मेणैव सुखमेधते । एष एव पशुमनुष्ययोर्भेदो यत्पशवस्तत्तदिन्द्रियवशानुगा हि प्रतिक्षणं व्यवहरन्ति । उक्तं च—

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

सत्यमेवेदं साधारणाः पामरा मानवाः पशुनिर्विशिष्टा एव निजव्यवहारेषु । केचिदेव बुद्धिमन्तः ।

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य-
मापातमात्रमधुरो विषयोपभोगः ।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणां
धर्मः सखा परमहो परलोकयाने ॥

इह जगति सर्वेषामेव प्राणिनामियं स्वाभाविक्यभिवाञ्छा यत्कथमपि सुखमधिगच्छाम इति । जनानां सर्वेऽपि यत्नाः तस्यैव लाभाय भवन्ति । सुखाभिलाषेणैव केचिन्मानवा अर्थोपार्जनमेव तत्साधनं मन्यमानास्तदासादनार्थं प्रयतन्ते । ते हि सर्वप्रकारकैर्न्याय्यैर-न्याय्यैर्वा साधनैः सुखमासिसादयिषवो परधनहरणाद्यपि नानुचितं मन्यन्ते । परं ते सुखं नाधिगच्छन्ति । ते शान्तिमप्राप्य 'अशान्तस्य कुतः सुखम्' इति न्यायेन सुखम-नधिगत्यैव तिष्ठन्ति । तदत्र किं निदानमिति मीमांसायामेतदेव वक्तव्यं यत् धर्मस्याज्ञानमेव तत्कारणम् । धर्मे मतिः दुर्लभा भवति । अल्पीयांस एव जना धर्मं प्रति बद्धादरा दृश्यन्ते । सत्यमेवोक्तं केनापि अभियुक्तेन —

मानुष्ये सति दुर्लभा पुरुषता पुंस्त्वे पुनर्विप्रता
विप्रत्वे बहुविद्यताऽतिगुणता विद्यावतोऽर्थज्ञता ।
अर्थज्ञस्य विचित्रवाक्यपटुता तत्रापि लोकज्ञता
लोकज्ञस्य समस्तशास्त्रविदुषो धर्मे मतिर्दुर्लभा ॥

प्रायशः सांसारिकक्षणिकसुखानुरक्तानामेवं प्रतीयते यद्धर्माचरणमतीव कष्टसाध्यं भवति । विमूढधियोऽनेके प्रमादग्राहगृहीता न धार्मिककार्यं सम्पादयितुं शक्नुवन्ति । ते एवं व्याजह्रुः—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

कालिदासोऽपि शाकुन्तले निगदति—
'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।'

परन्तु अन्तःकरणमपि यदा तमःस्तोमाच्छादितं भवति तदपि अन्धदर्पणमिव न यथार्हं रूपं प्रतिबिम्बीकरोति, तदा किं करणीयमिति प्रश्नः उदेति । तत्राह बोधाय-नाचार्यः—

धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ।
क्रीडार्थमपि यद् ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥

वास्तविकं तु सुखसाधनं धर्म एव । यतः श्रूयते तैत्तिरीये—
'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठेति ।'

दूरदर्शिनः तात्कालिकं क्षणिकम् इन्द्रियतृप्तिजन्यं सुखं तिरस्कृत्य पारमार्थिकं सुखमेवेप्सन्तस्तदधिगत्यै एव प्रयत्नपरा भवन्ति । ते एव विजयिनो भवन्ति खलु संसारसंघर्षे । दूरदर्शिनः परोक्षं सुखमेव स्वलक्ष्यं मन्यन्ते । मूढाः प्रत्यक्षमेव क्षणिकं तात्कालिकं सुखमाद्रियन्ते । तदत्रैषा श्रुतिर्भवति—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
स्ते उभे नानार्थे पुरुषᳬंसिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति
हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥
श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥

विदुषां हि दृष्टौ नहि ऐहिकवस्तुषु महत्त्वम्, अपितु आत्मकल्याणसाधने धर्माचरण एव। इह खलु विचित्रचरित्रचित्रिते जगति ये धनसम्पन्नास्ते पुत्राभावेन दुःखिनः, ये सन्ततिमन्तो ते धनाभावेन दुःखिता । सतोरप्येनयोः मानविहीनाः केचित्संतप्ताः । एवमेव जगति जना भ्रान्त्यान्यान्यपि सुखसाधनानि मन्यन्ते । सुखस्य वास्तविकं कारणं धर्म एव । धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् । उक्तञ्च—

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥

अन्यच्च—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

१०—माघे सन्ति त्रयो गुणाः

शिशुपालवधप्रणेतुर्महाकवेर्माघस्य पितामहः सुप्रभदेवः गुर्जरशासकस्य वर्मलातनाम्नो नृपस्य मन्त्री असीत् । माघस्य पिता दत्तको विद्वान् दानप्रसिद्धश्चासीत् । अस्य माता ब्राह्मी पितृव्यश्च शुभङ्कर आसीत् । अस्य जन्म विद्यापीठतया राजधानीभावेन च पुरा प्रथिते भीनमल्लाख्यनगरे अभवत् पितुर्दानशीलतायाः प्रभावो माघस्याप्युपरि पतितः । असीमदानदोषेणायं निर्धनत्वं गतः ।

माघस्य शिशुपालवधे द्वाविंशतिः सर्गाः सन्ति । महाकाव्येनैतेनैवास्य कवेर्महती महनीया कीर्तिः । माघकवेर्विपुला वर्णनशक्तिरत्र पल्लविता जाता, महती चोत्प्रेक्षासमर्थता स्वप्रभावं प्रकाशितवती ।

'माघस्य शास्त्राध्ययनं माघकाव्ये समहन्यतेव ।
माघकाव्येऽलङ्कारयोजनासौन्दर्यं दुरपह्नवम् ॥'

'काव्येषु माघः कविकालिदासः' इति प्राच्योक्तिः केषामविदिता, भूतलेऽत्र माघस्य काव्यकौशलं परान्मुदमातनोतीत्यपि नाज्ञातम् ।

'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते ।'

शब्दकाठिन्ये भारवेरेव कविचये मान्यत्वम् । परन्तु—

'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः ।'

यावन्माघमासस्य नोदयस्तावदेव पद्मिनीपतेर्भा भाति तथा च भारवेस्तदाख्यस्य कवेस्तावदेव भा भाति यावन्माघस्य तदभिधेयकवेर्नोदयः । माघकविकाव्ये उपमानोपमेय-शब्दकाठिन्यं पदलालित्यं च विद्वज्जनविदितमेवेति । अतः केनापि कविनोक्तमपि ।

'माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमम् ।'
'मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु ।'
'माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ।'

अन्यच्च—

'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥'

तथा हि न्यक्कृतकपिमानः कालिदासः उपमापरः न चार्थगौरववरः, न च पदलालित्यकरः । इतरच्च भारविस्तु अर्थगौरवकरणे सिद्धहस्तः, उपमाप्रयने च त्रस्तः, पदलालित्ये चाप्रशस्तः । दण्डी तु पदलालित्ये योग्यः उपमायामयोग्यः अर्थगौरवादयोग्यः । निराकृतदोषाग्र्यो माघ उपमाधारकः, अर्थगौरवकारकः पदलालित्यस्यापकश्चेति त्रिगुणसत्त्वात् प्रशस्यः । प्रथमं तावदुपमैव विचारचर्चामारोहति । समुपलभ्यते उत्कृष्टानामुपमानां प्रादुर्भवमत्र । हरेः प्रतिविशेषणम् उपमाप्रायबद्धम् तथा च तस्य हरेः द्युतिततिप्रदर्शनाय तस्मै अकूपारस्योपमा प्रादायि खलु निरघेन माघेन ।

'स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः ।
विदिद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः ॥'

गौराङ्गो नारदः कृतपीतोपवीतो विद्युत्परीतः शरदि घन इव चकाशे । 'कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडितां गणैरिव ।' यथा सत्कविः शब्दमर्थमनुभयमादत्ते तथैव विपश्चिदपि दैवं पुरुषार्थमुभयमाश्रयते । 'नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे । शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥' यथा स्थायिभावं संचारिभावाः पोषयन्ति, तथैव विजिगीषुं भूपतमन्ये सहायकाः । 'स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा । रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः ॥' यथा अल्पवयस्का बालिका मातरमनुगच्छति, तथैव प्रातःकालिकी सन्ध्या रजनिमन्वेति । 'अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती, रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ।' शिशुपाल आदिवराह इवासीत् । 'क्षिप्तबहुलजलबिन्दु वपुः, प्रलयार्णवोत्थित इवादिशूकरः ।' गजेषु बाणास्तथाऽपतन्, यथा सर्पेषु

मयूराः। 'अधिनागं प्रजविनो......पेतुर्बर्हिणदेशीयाः शङ्कवः प्राणहारिणः।' सज्जनाः न चौरवदाचरन्ति। 'न परेषु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव।' जटा दधानो नारदो लतावेष्टितो गिरिरिवाराजत। 'दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः......धरावरेन्द्रं व्रततीततीरिव।'

महती संख्याऽर्थगौरवान्वितानां श्लोकानाम्। कतिपयेऽत्र प्रस्तूयन्ते।

'सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः।'

अपि च—

'जगत्पवित्रैरपि तन्न पादैः स्प्रष्टुं जगत्पूज्यमयुज्यतार्कः।
यतो बृहत्पार्वणचन्द्रचारु तस्यातपत्रं बिभराम्बभूवे॥'

अत्र भगवान् मरीचिमाली भगवन्तं हरिं जगदर्च्यं विभाव्य जगत्पवित्रैरपि स्वीयैः पादैः किरणैश्च स्प्रष्टुं नार्हति, प्रत्युत हरेः पूर्णेन्दुदीप्तिनिभमातपत्रं दध्रे, इति स्वान्त-सन्तोषकं भृशं रम्यमर्थगौरवं निवेशितं विनष्टावेन माघेन।

सत्प्रबन्धस्य को गुणः? 'अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः।' मानिनः स्वमानं नोज्झन्ति। 'सदाभिमानैकधना हि मानिनः।' किं नाम सौन्दर्यम्? 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।' सांख्यसिद्धान्तवर्णनम्—पुरुषः प्रकृतेः पृथग् विकृतेश्च पृथग् वर्तते। 'उदासितारं...वहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग् विदुः, पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः।' 'तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः। कर्तृता तदुप-लम्भतोऽभवद्वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि॥' योगशास्त्रप्रावीण्यं प्रकटीकरोति कविरस्मिन्—

मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय।
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः॥

बौद्धशास्त्रप्रावीण्यं पद्येऽस्मिन् राजते—

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥

स्फुटं कामशास्त्रपांडित्यमत्र कवेः—

वर्जयन्त्या जनैः सङ्गमेकान्ततस्तर्कयन्त्या सुखं सङ्गमे कान्ततः।
योषयैष स्मरासन्नतापाङ्गया सेव्यतेऽनेकयासन्नतापाङ्गया॥

तादृशमेव मानवशास्त्रपाण्डित्यमपि विलसत्यस्मिन्पद्येऽपि—

पूर्वमेष किल सृष्टवानपस्तासु वीर्यमनिवार्यमादधौ।
तत्र कारणमभूद्धिरण्मयं ब्रह्मणोऽसृजदसाविदं जगत्॥

सङ्गीतशास्त्रपरिशीलनकौशलमप्यस्ति—

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग् विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः॥

श्लेषसौन्दर्यसमलङ्कृतनाट्यशास्त्रनैपुण्यस्याप्युदाहरणम्—

दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षि वसो मुखे विशालाः ।
भरतज्ञकविप्रणीतकाव्यग्रथिताङ्गा इव नाटकप्रपञ्चाः ॥

इत्थं सकलशास्त्राभिज्ञपरीक्षणनिकषो माघ एव नान्य इति मे मतिः ।
पदलालित्यं तु पदे पदे प्राप्यते माघे । केचन श्लोका एवात्रोदाह्रियन्ते ।

'नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥'
'मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥'
'वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसंभ्रमसंभृतशोभया ।
चलितया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया ॥'
'क्षोभमाशु हृदयं नयदूनां, रागवृद्धिमकरोन्न यदूनाम् ।'
'स शरदं शरदन्तुरदिङ्मुखाम् ।' 'अनुदधच्चन्द्रमसोऽभिरामताम् ॥'

'न रौहिणेयो न च रोहिणीशः ।' 'विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्गमालाः, सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः ।' अत एव सत्यमुक्तम्—

माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।

११—नैषधं विद्वदौषधम्

श्रीहर्षो नाम महाकविरखिलतन्त्रस्वतन्त्रस्तर्कपीयूषपारावारगम्भीरतास्पृशावीरेयः चिन्तामणिमन्त्रोपासकः सकलदर्शनटीकाकारवाचस्पतिमिश्रादुत्तरभाविन उदयनाचार्यस्य परवर्ती समभूदित्यत्र न कोऽपि विवादः प्रतीयते, यत् उदयनस्य मतं खण्डनखण्डखाद्य-ग्रन्थे श्रीहर्षेण सोपहासं खण्डितम् । तथाहि—

शङ्का चेदनुमास्त्येव न चेच्छङ्का ततस्तराम् ।
व्याघातवधिराशङ्का तर्कः शङ्कावधिर्मतः ॥

इतीयं कारिका कुसुमाञ्जलिग्रन्थे तृतीये स्तबके । इमां कारिकां प्रथमे परिच्छेदेऽ-नुमानखण्डनावसरे इत्थमखण्डयत्—

तस्मादस्माभिरप्यस्मिन्नर्थेन खलु दुष्टता ।
त्वद्गाथैवान्यथाकारमक्षराणि कियन्त्यपि ॥
व्याघातो यदि शङ्कास्ति न चेच्छङ्का ततस्तराम् ।
व्याघातावधिराशङ्का तर्कः शङ्कावधिः कुतः ॥

महाकवेरेतस्य जनकः श्रीहीरो माता मामल्लदेवी च । तथाहि—

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालंकारहीरः सुतं,
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम् ।

गौडाधिपतिना महाशूरेण कान्यकुब्जदेशादानीतानां ब्राह्मणानामन्यतमोऽयं ब्राह्मणः कान्यकुब्जदेशाधीश्वरस्य जयचन्द्रस्य सभायां मान्यो महाकविषु गणितो बभूव ।

'ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात् ।'

श्रीहर्षस्य नैषधीयचरितं नितान्तप्रसिद्धं विशालकायं महाकाव्यम् । अस्य ग्रन्थस्य सरसा वर्णनपद्धतिः शृङ्गारप्रकर्षपूर्णकथा च सहृदयहृदयान्यावर्जयतः । यथैव श्रीहर्षस्य खण्डनखण्डखाद्यमद्वितीयं तथैव नैषधीयमपि स्वक्षेत्रेऽनुपमम् । या प्रतिभा दर्शनरहस्यानि सरलीकरोति सैव शृङ्गारधारामपि प्रवाहयति । स्वयमुक्तं श्रीहर्षेण—

साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढन्यायग्रहग्रन्थिले
तर्के वा मयि संविधातरि समं लीलायते भारती ।
शय्या वाऽस्तु मृदूत्तरच्छदवती दर्भाङ्कुरैरास्तृता
भूमिर्वा हृदयङ्गमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम् ॥

यथा रमणीलावण्यं हरति चेतः सचेतसो यून एव न तु किशोराणाम्, तथैव श्रीहर्षकृतिः सुधीभिरेवास्वादनीया, न तु प्राज्ञंमन्यैः ।

यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी,
कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते ।
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः,
किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरैः ॥

श्रीहर्षस्य कविता सरसया पद्धत्या प्रचलन्ती मध्ये मध्ये दार्शनिकतत्त्वान्युपन्यस्य कविना कठिनीकृता । एतदेव मनसिकृत्य कविना स्वयमुक्तम्—

ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया
प्राज्ञम्मन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु ।
श्रद्धाराद्धगुरुः श्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः ॥

अनुपमवैदुष्यवैभवाविर्भावात् पाण्डित्यपुष्टपरिपाकप्रतीकाशः प्रतीयते प्रबन्धोऽस्य । नैकशास्त्रनिष्णातस्यानुपहता गतिरत्रेति 'नैषधं विद्वदौषधम्' इत्युद्घोष्यते यशोऽस्य सुधीभिः ।

श्रीहर्षे ललितललिताभिः पदावलीभिः किं न चित्रयति सहृदयमानसान् ? सत्यमेवोक्तं केनचित् नैषधे पदलालित्यमिति । पदलालित्यवन्तः केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्रमुदाह्रियन्ते । 'शृङ्गारभृङ्गारसुधाकरेण वर्णस्रजानूपय कर्णकूपौ ।' 'नलिनं मलिनं विवृण्वती पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे ।' 'सकलया कलया किल दंष्ट्रया समवधाय यमाय विनिर्मितः ।' 'चलन्नलंकृत्य महारयं हयं स्ववाहवाहोचितवेषपेशलः' 'दिने दिने त्वं तनुरेधि रेऽधिकं पुनः पुनर्मूर्च्छ च तापमृच्छ च ।' 'मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं निशि क्व सा न स्वपती स्म

पश्यति ।' 'अवारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे । तदास्य-दास्येऽपि गतोऽधिकारितां न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः ।' 'मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।' 'मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम ।'

अत्र केवलं पदलालित्यमेव प्रशस्यतरं न, प्रत्युत कवेः काव्यकौशलमपि लोकोत्तरं विद्वत्तापरिपूर्णञ्चेति विभावयन्तु सहृदयाः । काव्येऽत्र सर्वत्रैव कविकौशलं प्रतिभाति तत्र संक्षेपतो यथा—तार्किकत्वे स्वस्य 'तर्केष्वप्यसमश्रमस्य वर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः' इति स्वयमुद्घोषितवतः स्वाभाविकं स्वारस्यं काव्यस्यास्यानुशीलनशालिनां न परोक्षम् । विविधदर्शनसिद्धान्तानाम् उल्लेखात् संजायते नैषधचरिते महत् काठिन्यम् । अतो विद्वदौषधमेतत् काव्यमुच्यते । एतदेवात्र निरूप्यते ।

श्लेषप्रयोगः—'चेतो नलं कामयते मदीयम्० ।' 'स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य कोऽपि क्षमः ।' 'रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा० ' 'विदर्भजाया मदनस्तया मनोनलावरुद्धं वयसैव वेशितः ।'

श्रीहर्षः स्वीयस्य शास्त्रज्ञानस्य परिचयं प्रतिसर्गं ददाति, परन्तु सप्तदशसर्गे तु तेन स्वीयं नास्तिकास्तिकसकलदर्शनप्रवीणत्वं व्याकरणनिष्णातत्वं च सडिण्डिमनादं घोषितम् । चार्वाकसिद्धान्तवर्णनम्—न कश्चनेश्वरः । 'देवश्चेदस्ति सर्वज्ञः, करुणा-भागवन्ध्यवाक् । तत् किं वाग्व्ययमात्रान्नः कृतार्थयति नार्थिनः ॥' न मृतस्य पुनर्जन्म । 'कः शमः क्रियतां प्राज्ञाः, प्रियाप्रीतौ परिश्रमः । भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।' भोगोपभोगार्थं शरीरमिदम् । 'सुकृते वः कथं श्रद्धा, सुरते च कथं न सा । तत्कर्म पुरुषः कुर्याद् येनान्ते सुखमेधते ॥' वेदान्तसिद्धान्तवर्णनम्—अद्वैतवादस्य तात्त्विकत्वम्—'श्रद्धां दधे निषधराड् विमतौ मतानाम्, अद्वैततत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकः ।' ब्रह्मसाक्षात्कार—'प्रापुस्तमेकं निरुपाख्यरूपं ब्रह्मेव चेतांसि यतव्रतानाम् ।' सांख्य-सिद्धान्तवर्णनम्—सत्कार्यवादः—'नास्ति जन्यजनकव्यतिभेदः ।' मीमांसासिद्धान्त-वर्णनम्—देवानामरूपित्वं मन्त्ररूपित्वं च—'विश्वरूपकलनादुपपन्नं, तस्य जैमिनिमुनित्व-मुदीये ।' 'विग्रहं मखभुजामसहिष्णुः० ।' श्रुतीनां प्रामाण्यम्—'श्रुतिं श्रद्धत्थ विक्षिप्ताः प्रक्षिप्तां ब्रूथ च स्वयम् । मीमांसामांसलप्रज्ञास्तां यूपाद्विपदापिनीम् ॥' जैनसिद्धान्त-वर्णनम्—जैनाभिमतरत्नत्रयम्—'न्यवेशि रत्नत्रितये जिनेन यः, स धर्मचिन्तामणि-रुज्झितो यया । कपालिकोपानलभस्मनः कृते, तदेव भस्म स्वकुले स्तृतं तया ॥' बौद्धसिद्धान्तवर्णनम्—बौद्धाभिमतः शून्यवादो विज्ञानवादः साकारतावादश्च—'या सोमसिद्धान्तमयाननेव, शून्यात्मतावादमयोदरेव । विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव, साकार-तासिद्धिमयाखिलेव ॥' न्यायवैशेषिकसिद्धान्तवर्णनम्—न्यायाभिमतमोक्षस्य परिहासः—'मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् । गोतमं तमवेत्यैव यथा वित्थ तथैव सः ॥' वैशेषिकाभिमततमः स्वरूपपरिहासः—'ध्वान्तस्य वामोरु विचारणायां वैशेषिकं चारुमतं मतं मे । औलूकमाहुः खलु दर्शनं तत् क्षमं तमस्तत्त्वनिरूपणाय ॥' मनसोऽणुत्वम्—'मनोभिरासीदनणुप्रमाणैः ।' व्याकरणसिद्धान्तवर्णनम्—'क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता

व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया। या स्वौजसां साधयितुं विलासैः०' अत्र 'अपदं न प्रयुञ्जीत' इत्यस्य वर्णनम्। 'अपवर्गे तृतीयेति भणितः पाणिनेरपि' इत्यत्र 'अपवर्गे तृतीया' सूत्रस्य वर्णनम्। 'किं स्थानिवद्भावमधत्त दुष्टं तादृक्कृतव्याकरणः पुनः सः।' अत्र 'स्थानिवदादेशो०' सूत्रस्य वर्णनम्। विविधशास्त्रादिप्रतिपादितसिद्धान्तवर्णनादेव नैषधमहाकाव्यस्य क्लिष्टत्वमालक्ष्यते। अतएव साधूच्यते—

'नैषधं विद्वदौषधम्'

१२—भारतीयसंस्कृतेः स्वरूपम्

अथ का नाम संस्कृतिः? किं तस्याः स्वरूपम्? कथमिवैषोपकरोत्यात्मनो मनसो जनस्य देशस्य संसृतेर्वा? तत्रोच्यते। संस्करणं परिष्करणं चेतस आत्मनो वा संस्कृतिरिति समभिधीयते। सम्पूर्वक-कृधातोः 'क्तिन' प्रत्ययेन रूपमिदं सिद्ध्यति। संस्कृतिः व्यपनयति मलं, स्वान्तं प्रसादयति, संस्थापयति स्थैर्यं चेतसि, हरति चित्त-भ्रमम्, चेतः प्रसादयति, सुखं साधयति, भूतिं भावयति, गुणान् गमयति, शान्तिं समादधाति, सत्यवृत्तिं संस्थापयति, ज्ञानज्योतिः प्रकाशयति, अविद्यातमः संहरति, धृतिं धारयति, दुःखद्वन्द्वानि दहति, पापान्यपाकुरुते च। संस्कृतिरेवात्मनो मनसो लोकस्य राष्ट्रस्य संसृतेश्चोपकरोति। संस्कृतिमन्तरा न कोऽपि मानवः समाजो वा राष्ट्रं वा शान्तिमधिगन्तुं समर्थम्। भारतीया संस्कृतिः समस्तविश्वसंस्कृतिवियन्मण्डले सावित्रं ज्योतिरिव देदीप्यते।

भारतीयसंस्कृतेः मुख्या विशेषताऽत्र प्रस्तूयते। (१) धर्मप्राधान्यम्—धर्म एव पशुमनुष्ययोर्भेदो यत्पशवस्तत्तदिन्द्रियवशानुगाहि प्रतिक्षणं व्यवहरन्ति। अत उक्तम्—'धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।' धर्मो हि नामेन्द्रियविषयप्राप्तिजन्यां क्षणिकां सन्तुष्टिमनपेक्ष्य वस्तुत आत्मकल्याणसाधन-स्याचरणमिति। 'धारणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥' 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।' ततश्चैहिकामुष्मिक-सुखसाधनं मनुष्यस्य च परमः सखा यत्खलु धर्मानुष्ठानम्। सा एव धर्मभावना मानवेषु विशेषा, सा च पशुषु नैव विद्यते।

(२) सदाचारपालनम्—सताम् आचारः सदाचार इत्युच्यते। सदाचारस्य सत्तयैव संसारे जन उन्नतिं करोति। देशस्य राष्ट्रस्य समाजस्य जनस्य च उन्नत्यै सदा-चारस्य महती आवश्यकता वर्तते। यः सदाचारेण हीनोऽस्ति स वस्तुतः पतितोऽस्ति, धनहीनो न पतितोऽस्ति।

> वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
> अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥

अत एव पूर्वैः महर्षिभिः 'आचारः परमो धर्मः' इत्युक्तम्।

(२) पारलौकिकी भावना—इह सर्वं परिवर्ति। नात्रार्था एकेन रूपेणावतिष्ठन्ते। अस्ति च शरीरावस्थापरिवर्तो यौवनादिः, कीर्तिरेवैकाऽविनाशिनी। भौतिकाः विषयाः

परिभोगरम्याः किन्तु अन्ते परितापिनः सन्ति। 'आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः।' एषामाश्रयणेन दुःखावाप्तिः सुलभा, सुखं तु नितरां दुर्लभम्। अतएव धीरा भौतिकविषयेषु विरता अभूवन्, कर्त्तव्यपालनं च कुर्वन्तस्ते न प्राणानपि गणयामासुः।

(४) अध्यात्मिकी भावना—अध्यात्मप्रवृत्त्या जीवनमुन्नतं भवति। निखिलं संस्कृतवाङ्मयं व्याप्तं भावनयाऽनया। भावनैषा मानवं देवत्वं प्रापयति। समग्रमपि प्राणिजातं परमेश्वरेणैवोत्पादितमिति विचारं विचारं तत्रैकत्वमनुभवति। जगदिदं परमात्मना व्याप्तम्। 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' (ईशोपनिषद्)। 'यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ईशोप०)। 'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥' अध्यात्मप्रवृत्त्या मनसि सहानुभूतिः सहृदयता औदार्यादिकं च प्रवर्तते।

(५) वर्ण-व्यवस्था—वर्णाश्चत्वारः सन्ति—ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रभेदात्। वेदानां वेदाङ्गानां चाध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं विद्याया धनस्य च दानं धनादिदानस्य स्वीकरणं च ब्राह्मणस्य परमो धर्मः। 'अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' (मनुस्मृति)। 'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिराजर्वमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' (गीता)। क्षत्रियस्य परमो धर्मः राष्ट्रस्य रक्षणमस्ति। उक्तं कालिदासेन—'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः' क्षत्रियः क्षतात् लोकं त्रायते। 'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाऽप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्' (गीता)। कृषिर्गोरक्षवाणिज्यं च वैश्यस्य प्रमुखं कर्म। 'कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।' शारीरिकं कार्यं शूद्रस्य परमं कर्त्तव्यम्। 'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्' (गीता)। यदा सर्वेऽमी ब्राह्मणादयो वर्णाः स्वस्वधर्ममनुतिष्ठन्ति तदानीमेव विश्वसमुन्नतिः सम्भवा नान्यथा।

(६) आश्रमव्यवस्था—आश्रम्यते स्थीयते यस्मिन् स आश्रमः। ब्रह्मचर्यगृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यासाश्चत्वार एते आश्रमाः। पञ्चविंशतिवर्षपर्यन्तमेकस्मिन् आश्रमे विश्रम्य चत्वारोऽपि आश्रमाः सेव्याः। ब्रह्मचर्याश्रमे विद्याध्ययनं तपोमयजीवनयापनं च प्रधानं कर्त्तव्यम्। गृहस्थाश्रमे भौतिकी शारीरिकी मानसिकी चोन्नतिः दाम्पत्यजीवनयापनं च विशिष्टं कर्म। वानप्रस्थाश्रमे संयमपालनं, सपत्नीकेनेश्वराराधनम् प्रमुखं कर्म। संन्यासाश्रमे ऐहिकविषयान् परित्यज्य योगाभ्यासे प्रीतिः समाधौ मनसः स्थितिः प्रथमं कर्त्तव्यम्।

(७) वैदिकधर्मनिष्ठा—वेदप्रतिपादितो धर्मः वैदिकधर्मः। धर्मेऽस्मिन् ईश्वर एव सर्वशक्तिमान्, सृष्टिस्थितिप्रलयकर्त्ता, अमरः अजरः, शुद्धः, बुद्धः, सर्वज्ञः शुभाशुभकर्मफलप्रदाता, व्यापकः, न्यायशीलश्च वर्तते।

(८) पुनर्जन्मवादः—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' (गीता)। यो हि जायते तस्य मरणं ध्रुवमस्ति। कर्मानुरूपमेव सर्वस्यापि जन्तोः पुनर्जन्म भवति।

(९) मोक्षावाप्तिः परमः पुरुषार्थः । मोक्षमधिगम्य न पुनरावर्तन्ते मानवाः । मोक्षानन्दस्य वर्णनं वेदेषु दृश्यते—

'यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव ।' (ऋक्)

(१०) अभयत्वभावना—कापुरुषाः मरणाद् पूर्वमेव बहुशो म्रियन्ते, न हि शरीरेण धृता अपि मृता एव जीवन्ति । निर्भयो जन एव लोकोत्तराणि कार्याणि कर्तुं समर्थः । अतएव श्रुतौ प्रार्थना —

'अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।'

अपि च—

'यतो यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्यः अभयं पशुभ्यः ॥'

(११) अहिंसापालनम्—इह जगति अहिंसया महती उपयोगिता वर्तते । मानवस्य आत्मा अहिंसया सुखमनुभवति । अहिंसायाः प्रतिष्ठायां सर्वे सर्वत्र सुखं निर्भयं च विचरन्ति । ऋषिभिः महर्षिभिश्च 'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यङ्गीकृतः । अतएव सर्वैरपि सर्वदा सर्वभावेन अहिंसाधर्मः पालनीयः

विश्वहितस्य विश्वोन्नतेश्च सर्वा भावना भारतीयसंस्कृतावेव उपलभ्यन्ते । एतासामाश्रयणेन सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा विश्वस्य राष्ट्रस्य च ।

१३—संस्कृतभाषाया वैशिष्ट्यं सौष्ठवं च

'संस्कृतम्' इति पदं सम्+कृ+क्त इति व्युत्पादितम् । संस्कृतभाषा देवभाषा कथ्यते । इयं संस्कृतभाषाऽन्याभ्यः सर्वाभ्योऽपि भाषाभ्यः प्रकारे विस्तरे च महती, सौन्दर्ये विचारपवित्रतायां चान्यूना विद्यते । सत्यपि मन्दतमे विकासक्रमे क्रमोपनते च बाधासमुदये इतिहासारम्भसमयत एव संस्कृतभाषा विश्वस्यान्यासां भाषाणां जननीं कुर्वती समायाति । अन्याभिर्विश्वस्य भाषाभिरस्याः प्रतिस्पर्धा गुणगणकृतैव । भारतेऽजायन्त विविधानि सामाजिकपरिवर्तनानि, धार्मिकाभ्युत्थानपतनानि, वैदेशिकाक्रमणानि च तथापि संस्कृतं सर्वदा समभावेन सर्वत्र व्यवहारवर्त्मन्यवर्तत ।

भाषाऽर्थेऽस्य शब्दस्य प्रयोगः प्रथमतो वाल्मीकिरामायणे एव प्राप्यते—

'यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥'

ततः पूर्वं तदर्थे भाषाशब्द एव व्यवह्रियते स्म । यास्केन पाणिनिना चापि लोकव्यवहृतभाषायै भाषाशब्द एव व्यवहृतः—

'भाषायामन्वध्यायञ्च' निरुक्त १।४
'भाषायां सदवसश्रुवः' पा० सू० ३।२।१०८
'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्' पा० सू० ७।२।८८

मन्ये।

संस्कृतभाषायां मानवसंस्कृतेरितिहासः सुरक्षितोऽस्ति। प्रायः सर्वेषामप्यार्यधर्मावलम्बिनां धार्मिकं साहित्यं प्राचुर्येण देववाण्यामेव विद्यते। प्रायेण सर्वेषामपि आर्यधर्माणामनुयायिभिः आजीवनं तपांसि तपद्भिराचार्यैः संग्रथितानि ग्रन्थरत्नानि देववाण्याः साहित्यसमृद्धिं सम्पादयन्ति। प्रायेण सर्वासामेव भारतीयभाषाणामुद्गमस्थानभूता चैषा देववाणी। एतद्द्वारैव विभिन्नदेशेषु लैटिन, ग्रीक, इंग्लिश, फ्रेंच, जर्मन—इत्यादिरूपेणोपलभ्यमानया आर्यभाषयाऽस्माकं संबन्धः भुवि सर्वत्र विश्रुतः। अस्यामेव सभ्यजगतः प्राचीनतमं साहित्यं समुपलभ्यते। संसारे नहि काचिदेतादृशी भाषा यस्याः साहित्यं प्राचीनतादृष्ट्यास्याः साहित्यस्य समतामासादयेत्। विस्तृत्यपेक्षयापि 'ग्रीक', 'लेटिन' इत्यादि परमप्रसिद्धप्राचीनोत्कृष्टभाषाणां कयोरपि द्वयोः साहित्यमेकत्रीकृतमपि न तावद्विस्तृतं यावद्देववाण्याः। न चापि देववाणीसाहित्यं साकल्येनाद्य यावत् समुपलभ्यते। अर्थगाम्भीर्यभावसौन्दर्याद्यपेक्षयापि संसारभाषाणां—न केवलं प्राचीनानां किन्तु आधुनिकीनामपि शिरोमणीभूतैव नो देववाणी। उपनिषदो, भगवद्गीता, दर्शनशास्त्राणि, भागवतम्, शाकुन्तलम्, उत्तररामचरितम् इत्याद्यलौकिकसाहित्यरत्नैरलंकृता सा सहसैवान्या भाषा अतिक्रामति। धर्मार्थकाममोक्षाख्यानखिलानेव च पुरुषार्थान् लक्ष्यीकृत्य प्रवृत्तं तत्साहित्यम्। अतएव च सर्वाङ्गसम्पूर्णम्। संस्कृतं सदा जीवितभाषाभावमभजत यतोऽत्रैव पूर्वतनाः सर्वेपि ग्रन्था अलिख्यन्त। आस्तां पुराणी कथा, संस्कृतस्य सम्प्रत्यपि जीवितभाषात्वे प्रमाणमिदं यदद्यापि संस्काराः प्रायोऽधिकसंख्यकभारतीयानां संस्कृत एव सम्पाद्यन्ते, महाभारतप्रभृतयो धर्मग्रन्था अधीयन्ते। स्वीया विचारा लोकविशेषैः संस्कृते प्रकाश्यन्ते, कविता विरच्यन्ते च।

भाषाविज्ञानपण्डितानां मते आर्यभाषा सेमेटिकभाषा चेति द्वयोरेव भाषयोर्न्यवहृतारः सभ्यतां संस्कृतिञ्च सृष्टवन्तः। आर्यभाषापि पाश्चात्यपौरस्त्यभेदेन द्विविधा। अस्मिन्नार्यभाषायाः पाश्चात्यप्रभेदे यूरोपदेशस्य प्राचीना आधुनिक्यश्च ग्रीक-लैटिन-फ्रेञ्च-जर्मन-इङ्गलिशप्रभृतयो भाषाः समायान्ति। आर्यभाषायाः पौरस्त्यप्रभेदे ईरानीभाषा संस्कृतभाषा च समागच्छतः।

अतिव्यापकं संस्कृतसाहित्यम्। इदं सर्वाङ्गपूर्णं यतोऽत्र मानवजीवनोद्देश्यभूताः धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽपि पुरुषार्थाः विवेचिताः। धर्मशास्त्रं प्रथत एव, अर्थशास्त्रमपि कौटिल्यादि प्रणीतमत्र न कुतोऽपि हीयते। कामशास्त्रमपि परमप्रसिद्धमत्रत्यम्, मोक्षशास्त्रस्यापि परमप्रकृष्टता सर्वसम्मता। एवं संस्कृते मानवजीवनोपयोगिनः सर्वेऽपि विषयाः साधु विवेचिता इति कथनं समुचितमेव। अत्र प्रेयःशास्त्रं श्रेयःशास्त्रं चोभयं समभावेन समेधितम्, अतएव चात्र भोगमोक्षयोरुभयोः सत्तया सकलसाहित्यापेक्षया विशिष्टता विद्यते।

अतिमहत्त्वपूर्णमिदं संस्कृतसाहित्यम्। इदं प्राचीनतायां सर्वातिशायीति पूर्वमावेदितमेव। एतन्महत्त्वे प्रमाणानि यथा—

संस्कृतसाहित्यं न केवलं भारतवर्ष एव किन्तु भारताद् बहिरपि विभिन्नदेशेषु प्रचारातिशयमुपभुञ्जाना सर्वासामपि जीवनयात्रानिर्वाहिकाणां विद्यानामाश्रयीभूता अखिलपुरुषार्थसाधनोपयोगिविस्तृतवाङ्मयेन च समेता समुन्नतिशिखरमधिष्ठिता आसीदेषास्माकं देववाणी। इदं साहित्यं चीन–जापान–कोरियाप्रभृतिवासिनामपि लोकानामितिवृत्तं लङ्का–मलयद्वीपादिवासिनाञ्च इतिवृत्तं सुरक्षितरूपेण गोपायति।

धर्मविज्ञानं तदुपचयश्च यथा संस्कृतभाषाश्रयेण परिचीयते न तथा भाषान्तराश्रयेण। मननशक्तिसमुद्भवानि नानादर्शनानि संस्कृते महत्त्वमानयन्ति।

यावत् संस्कृतसाहित्यं प्राप्यते, तावदेव रोम–यवनोभयसाहित्यापेक्षया परिणाहेऽत्यधिकम्।

सूत्रकृतसाहित्यं क्वापि परस्यां भाषायां न जातम्, इदमनन्यसाधारणं संस्कृतसाहित्यस्य महत्त्वम्।

मङ्गोलियादेशेऽपि संस्कृतस्य प्रसार आसीत्। तत्रानेके संस्कृतग्रन्था लब्धाः, महाभारताधाराणि तद्रूपानिवद्धानि बहूनि नाटकान्यपि तत्र लब्धानि, येषु हिडिम्बवधं प्रधानम्। तदेवं संस्कृतस्य सांस्कृतिकं महत्त्वं प्रमापितं जायते।

विशुद्धकलादृष्ट्यापि संस्कृतसाहित्यमतिमहत्त्वशालि, अत्र कालिदाससदृशः कविः, भवभूतितुल्यो नाटककारः, बाणभट्टसमो गद्यलेखकः, जयदेवसदृशो गीतप्रणेता चाजायन्त, यदीयाभिस्तत्तत्काव्यसृष्टिभिः शुद्धकलारूपेणापि विनोदितं विनोद्यते च भुवनम्।

सेयं संस्कृतकाव्यधाराऽविच्छिन्ना चिरायानुवृत्ताऽग्रेऽपि सततं शतधारतामुपैतु।

१४—दण्डिनः पदलालित्यम्

महाकवेर्दण्डिनो जनिकालविषये सन्ति बहवो विप्रतिपत्तयः। कोऽयं कविः कदा ह्ययं कस्मिन् प्रदेशे समभूदिति निर्णयोऽद्यावधि न जातः। मन्यन्ते च बहवो विद्वांसो यदयं खृष्टस्य षट्शतकान्तिमभागे काञ्चीवरे वीरदत्तस्य धर्मपत्न्यां गौर्यां जन्म लेभे, बाल्य एव च मात्रा पित्रा वियुज्य इतस्ततो भ्रमंश्चानन्तरं पल्लवनरेशस्य सभायामागत्य तत्रैव तस्थौ। अन्ये च किरातप्रणेतुर्दामोदरस्य (भारवेः) प्रपौत्रोऽयमिति मत्वा सप्तमशतकान्तिमभागे तज्जन्मस्थितिरभूदित्यामनन्ति।

'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः' एतदुक्तिमनुसृत्य 'काव्यादर्शः', 'दशकुमारचरितम्', 'अवन्तिसुन्दरीकथा' इति त्रयो ग्रन्था दण्डिनः कथ्यन्ते। केचित्—'छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चः प्रदर्शितः' इति दण्डिवचनेन 'छन्दोविचिति' नामकमपि दण्डिग्रन्थमेकं कल्पयन्ति, परं तन्न युक्तम्, छन्दोविचितिशब्दस्य छन्दःशास्त्रपरत्वात्, अत एव—छन्दोविचितिविषये 'सा विद्या नौर्विविक्षूणाम्' इति तच्छास्त्रस्य विद्यात्वमुक्तम्। एष एव न्यायः कला-परिच्छेदविषयेऽपि बोध्यः। केचित्तु छन्दोविचितिमेकं ग्रन्थमेव मन्यन्ते।

'याते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत् ।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि ॥'

इत्येवमादिभिः प्राचीनसहृदयवचनैः संस्कृतसाहित्ये दण्डिनो महती प्रतिष्ठाऽनुमीयते । गद्यलेखकेषु दण्डी स्वं विशिष्टं स्थानं रक्षति । दशकुमारचरितमाश्रित्यैवास्य महती महनीयतेति नास्ति विप्रतिपत्तिः । दशकुमारस्य कथाग्रन्थतया कथानककृतं मनोरञ्जकत्वमत्रोचितमात्रायां निहितं, वर्णनानां स्वल्पतया कथासूत्रस्य व्यवच्छेदो न जायते । दशकुमारगता गद्यशैली सुबोधा सरसा प्रवाहशालिनी च । वस्तुतो दण्डी गद्ये व्यञ्जनाक्षमस्य सरससरलस्य च प्रवाहस्य प्रवर्त्तको मन्यते । अर्थस्य स्पष्टता, मनोरमा अभिव्यञ्जनशक्तिः, पदानां लालित्यं चेति दशकुमारस्यासाधारणा गुणाः । सत्यमुक्तम्—

'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः ।'

पदलालित्ये विख्यातः सरस्वत्या परिज्ञातस्तु निश्चितपदलालित्यकरणशक्तिविज्ञानमार्गपथिः कविर्दण्डी एव बभूव । यादृशं पदलालित्यं तत्काव्ये तादृशं पदलालित्यं नहि कस्यचित्कवेः—काव्ये विद्यते यथा तत्कृतदशकुमारचरिते—'देव ! दीयतामनुग्रह हार्दश्च चित्तम्, अहमस्मि सोमरश्मिसम्भवा सुरतमञ्जरी नाम—'सुरसुन्दरी' एतादृशं मनोमोहनं हृद्द्रावकं पदलालित्यं तत्कवेर्विदुषां मनो नितरां रञ्जयति । सुधीभिरास्वादनीयं सर्वोऽप्यर्णीयं चैतस्या माधुर्यम् । राजहंसस्येव राज्ञो राजहंसस्य सुषमां समवलोकयन्तु सन्तः । 'अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुरभूसुरनिकरः······राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव ।' तस्य महिषी वसुमती ललनाकुलललामभूताऽभूत् । 'तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावती कुलशेखरमणी रमणी बभूव ।' मालवेश्वरस्य प्रस्थानवर्णनं कुर्वताऽभिधीयते तेन—'मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रहः सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम ।'

कवितायां यावत्कलापकस्य विभावनं तावच्छ्लेषेऽलङ्काराणां सन्निवेशोऽर्थचयने शब्दगुम्फने च न केवलं गद्यकाव्यान्येवापि तु समस्तमपि संस्कृतभाषानिबद्धं वाङ्मयमतिशय्य वर्तते दशकुमारचरितमिति कथनं नात्युक्तिं स्पृशति । विजयार्थं प्रस्थातुकामानां कुमाराणां यमकालंकारालंकृतं वर्णनं दण्डिनो वाग्वैभवमेवाविर्भावयति । 'कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः ।' राजकन्याया वर्णनं दण्डिनः सूक्ष्मेक्षिकयेक्षणं वर्णनचातुरीं चाविष्करोति । 'अवगाह्य कन्यान्तःपुरं प्रज्वलत्सु मणिप्रदीपेषु······कुसुमलवच्छुरितपर्यन्ते पर्यङ्कतले······ईषद्विवृतमधुरगुल्मसंधि, असुप्तश्रोणिमण्डलम्, अतिश्लिष्टचीनांशुकान्तरीयम्, अनतिवलिततनुतरोदरम्, अर्धलक्ष्यापरकर्णपाशनिभृतकुण्डलम्, आमीलितलोचनेन्दीवरम्, अविभ्रान्तभ्रूपताकम्—निर्वाविलसनखेदनिश्चलां शरदम्भोधरोत्सङ्गशायिनीमिव सौदामिनीं राजकन्यामपश्यन् ।'

गिरिवरं वर्णयति—'अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः, कान्ततरेयं गन्धपाषाणवत्युपत्यका, शिशिरमिदमिन्दीवरारविन्दमकरन्दबिन्दु चन्द्रकोतरं गोत्रवारि, रम्योऽ-

यननेकवर्णकुसुममञ्जरीभरस्तरुवनाभोगः ।' धर्मवर्धनस्य दुहितरं वर्णयन्नाह—'तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा इव कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका, नवमालिका नाम कन्यका ।' मृगयालाभांश्च वर्णयति—यथा मृगया ह्योपकारिकी, न तथान्यत् । मेदोऽपकर्षादङ्गाना स्थैर्यकार्कश्यातिलाघवादीनि, शीतोष्णवातवर्षक्षुत्-पिपासा-सहत्वम्, सत्त्वानामवस्थान्तरेषु चित्तचेष्टितज्ञानम् ।'

ओष्ठ्यवर्णपरिहारोऽपि उत्तरपीठिकायां दृश्यते । यथा—'चिरं चरितार्थं दीक्षा 'बहुश्रुते विश्रुते विकचराजीवसदृशं दृशं चिक्षेप देवो राजवाहनः ।' 'आर्ये, कदर्थस्यास्य कदर्थनान्न कदाचिन्निद्रायाति नेत्रे ।' 'सखे, सैषा सज्जनाचरिता सरणिः, यदर्णावनि कारणेऽनर्णवानादरः संदृश्यते ।' 'कष्टा चेयं निःसङ्गता, या निरागसं दासजनं त्याजयति ।'

अतएव तत्कवितामृततृप्तस्य कस्यचिदुक्तिरियं समुचिताऽऽभाति—दण्डिनः पद-लालित्यम् ।

१५—कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा

इह जगति कस्यापि सर्वदैकावस्थायामेवावस्थितिर्नितरामसम्भवा । रात्रिदिवसयोरिव सुखदुःखयोः पर्यायेण समुपस्थितिः कस्याविदिता । महाशक्तिसम्पन्ना लोकोत्तरप्रभाव-संयुता अपि सुखदुःखपर्यायनियमनमतिक्रमितुमशक्ताः । तथा चोच्यते ।

'कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।'

'अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन्नैकान्तदुःखः पुरुषः पृथिव्याम् ।'

'कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना,
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ।'

'भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति'

'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ।'

अहो अकलनीयः कालमहिमा । क्षणेनैव जनो दुःखसागरे प्रक्षिप्यते, क्षणेन च सुखसम्पत्तिमासाद्य सुखी संजायते । योऽद्य मोदमानस्तिष्ठति अन्येद्युः सहसैव तस्योपरि महद् दुःखमापतति । चिराय महता दुःखेन कथंचित्कालमतिवाहयन्तो बहवोऽकस्मादेव सुखसम्पदमासादयन्ति । वस्तुतो नैवैकान्ततः कस्यचिद् दुःखाविगतिः सुखसमागमो वाकल्यते । य आर्याः स्वेन पुरुषकारेण बुद्धिप्रकर्षेण च परां समृद्धिमापन्, यथेष्टं च सुखमन्वभूवन्, मन्त्रतसुनर्मभारेषु विशालेष्वगारेषु न्यवसन्, नानारसानि भोज्यभक्ष्य-पेयचूष्यलेह्यानि चाश्नन्, तेषां यावदिह मानुष्यकोपपायं सर्वं तद्वस्तुगतमासीत् इदानीं यायावरा इवानिकेतना अकिञ्चना दैवमात्रशरणाः कथं कथमपि कालं क्षपयन्ति 'नीचैर्गच्छ-त्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेणे'ति च प्रमाणयन्ति ।

शुभाशुभयोरकस्मादेव समुपस्थानं न केवलं साधारणमनुष्याणां विषये अद्यत्व एव वा दरीदृश्यते अपितु महामहिमशालिनामितिहासपुराणेषु प्रख्यातयशसां महतामपि

विषये तयोस्तादृश्येव स्थितिः। सुखं लालितस्य राजप्रासादे पूषितस्य सर्वस्य सम्भावितस्य रामस्य दैवे पराचि वनप्रवासः, पाण्डुपुत्राणां विविधं कदर्थितानां वनाद्वनं पर्यटितानां चिरस्य राज्यलक्ष्मीपरिग्रहः, आश्रमललामभूतायाः कण्वदुहितुः शकुन्तलाया दुर्वाससः शापात् पत्या निराकरणं तज्जन्यं न्यक्करणं च स्मृतिलाभे पुनरङ्गीकारो बहुमानश्चेत्यादयो व्यतिकराः प्रकृतार्थं पर्याप्तं समर्थयन्ते। राजराजो नलः प्रथमं पितृपितामहपरम्पराप्राप्तां राज्यसम्पत्तिमासाद्य शुभमन्वभूत्। तदनन्तरं च सहसैव स्वसम्पत्तिविरहितो महत्या दुःखश्रेण्या सङ्गतोऽरण्यादरण्यानीं भ्राम्यन् क्लेशमतिशयमासिषेवे। पुनरपि च तामासाद्य पूर्ववदेव सुखं भेजे। एतदेव तथ्यं समीक्ष्य सन्दिशति शाकुन्तले महाकविकालिदासः—

'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम् आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्याम् लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥'

सम्पत्तिर्विपत्तिः, उत्कर्षोऽपकर्षः, जन्म मृत्युः, उत्थानं पतनम्, सुखं दुःखमिति च परिवृत्तेरवस्थान्तरमेव नान्यत्। यथा शैशवं तदनु यौवनं तदनु वार्धकं तदनु देहावसानं तदनु जन्मान्तरम्, एवमेव जीवने सुखदुःखे परिवर्तेते।

तदेतादृशं सुखदुःखयोरस्थैर्यं सहसैव च पुरुषकारादि साक्षात्कारणमन्तरेणैव तयोरुपस्थितिः क्रियते इति विचारे काचिल्लोकोत्तरा शक्तिरेव पृष्ठत इवागत्य कार्यनिर्वाहिकेति सपदि मनसि समायाति। सैष लोकोत्तरा शक्तिर्भवितव्यता विधिर्नियतिर्दैवमित्यादिशब्दैरभिधीयते। इयं भगवती महाशक्तिसंपन्ना। न केवलमल्पशक्तियुक्ता मानवा अन्येऽवराः प्राणिन एव चास्याः शासनमनुवर्तन्ते, किन्तु सर्वमेव जडचेतनात्मकमाब्रह्माण्डं जगदस्या वशे वर्तते। इह सर्वं परिवर्ति। नात्रार्था एकेन रूपेणावतिष्ठन्ते। अत एवास्य लोकस्य जगदिति समाख्या संगच्छते। अस्तीह भूसंनिवेशपरिवर्तः स्रोतसः स्थाने पुलिनं पुलिनस्य च स्रोत इत्यादिः। अस्ति च कालपरिवर्त ऋतुपर्ययादिः। अस्ति च दशापरिवर्तः सम्पन्नस्य विपन्नत्वं सुखिनो वा दुःखित्वं तद्विपर्ययो वेत्यादिः।

परं दुःखोदधौ निमग्नेन धैर्यमेवावलम्बनीयम्। धैर्यमाश्रित्यैव धीरा दुःखोदधेः पारङ्गन्तुं पारयन्ति। उक्तं च—

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले धैर्यात्कदाचित्स्थितिमाप्नुयात्सः।
जाते समुद्रेऽपि हि पोतभङ्गे सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव॥

धैर्यधना हि साधवः। ते सम्पदि न हृष्यन्ति, न च विपदि विषीदन्ति। सम्पदि विपदि च महतामेकरूपतैव लक्ष्यते। अत उच्यते—

उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥

अतः सपदि न हृष्येत्, न च विपदि विषीदेत्। विपदि जनैः धैर्यधारणं विधेयम्।

परिशिष्ट (अ)

लेखोपयोगी चिह्न

अल्प-विराम-चिह्नम्	,	(Comma)
अर्धविराम-चिह्नम्	;	(Semi-Colon)
पूर्णविराम-चिह्नम्	।	(Full stop)
प्रसङ्गसमाप्तिचिह्नम्	॥	
प्रश्नबोधकचिह्नम् (काकुचिह्नम्)	?	(Sign of Interrogation)
विस्मयादिबोधकचिह्नम् सम्बोधनाऽऽश्चर्यखेदचिह्नम्	!	(Sign of admiration, surprise etc)
उद्धरणचिह्नम्	" "	(Inverted commas)
निर्देशचिह्नम्	:—	
योजकचिह्नम्	-	(Hyphen)
कोष्टक-(पाठान्तर) चिह्नम्	[ ] ( )	(Parenthesis)
सन्धिविच्छेदचिह्नम्	+	
पर्यायचिह्नम्	=	
त्रुटिनिर्देशचिह्नम्	∧	

परिशिष्ट (ब)

रोमन अक्षरों में संस्कृत लिखने की विधि

यूरोपीय विद्वान् संस्कृतभाषा का अध्ययन बड़े चाव से करते हैं। इन विद्वानों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर उपादेय ग्रन्थ भी लिखे हैं जिनसे हम भी उपकृत हो सकते हैं। यूरोपीय विद्वान् संस्कृत शब्दों को रोमन अक्षरों में लिखते हैं। उस विधि का ज्ञान हम लोगों के लिए भी नितान्त आवश्यक है। पुरातत्त्व का अन्वेषण करते समय इस ज्ञान का पग-पग पर काम पड़ता है।

a	ā	i	ī	u	ū	ṛ	ṝ	ḷ	e	o	ai	au
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ए	ओ	ऐ	औ

अनुनासिक (स्वर के ऊपर) अथवा अनुस्वार—ṁ अथवा ṃ

विसर्ग—ḥ

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
k	kh	g	gh	ṅ
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
c	ch	j	jh	ñ
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
ṭ	ṭh	ḍ	ḍh	ṇ
त्	थ्	द्	ध्	न्
t	th	d	dh	n
प्	फ्	ब्	भ्	म्
p	ph	b	bh	m
य्	र्	ल्	व्	
y	r	l	v	
श्	ष्	स्	ह्	
ś	ṣ	s	h	

कभी कभी ऋ, ॠ, ऌ को क्रमशः ṛi ṛ'i ḷri च्, छ् को ch, chh श्, ष् को c, sh भी लिखा जाता है।

इस प्रकार इन अक्षरों को जोड़कर शब्द लिखे जाते हैं, उदाहरणार्थ—

रश्मि	raṣmi
क्षत्रिय	kṣatriya
क्लृप्त	kḷpta

हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोश

आवश्यक-निर्देश

(१) इस पुस्तक में प्रयुक्त शब्दों का ही इस शब्दकोष में संग्रह है।

(२) जो शब्द बालकः, रमा, फलम् के तुल्य हैं, उनके रूप बालक आदि के तुल्य चलावें। : से पुं०, आ से स्त्री०, अम् से नपुं० समझना चाहिए। शेष शब्दों के आगे पुं० आदि का निर्देश किया गया है। उनके रूप शब्द रूप संग्रह में दिए तत्सदृश शब्दों के समान चलावें। संक्षेपार्थ निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग किया गया है—

पुं० = पुंल्लिङ्ग। स्त्री० = स्त्रीलिङ्ग। न० = नपुंसकलिङ्ग।

(३) धातुओं के आगे संकेत किया गया है कि वे किस गण की हैं और उनका किस पद में प्रयोग होता है। धातुओं के रूप चलाने लिए 'धातुरूप संग्रह' में दी गई प्रत्येक गण की विशेषताओं को देखें तथा उस गण की विशिष्ट धातुओं को भी देखें। उन्हीं के अनुसार रूप चलावें। संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेत प्रयुक्त हैं—

१ = भ्वादिगण। २ = अदादिगण। ३ = जुहोत्यादिगण। ४ = दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७ = रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = क्र्यादिगण। १० = चुरादिगण। प० = परस्मैपद। आ० = आत्मनेपद। उ० = उभयपद।

(४) अव्ययों के रूप नहीं चलते हैं। उनमें कोई भी परिवर्तन नहीं होता है। अ० = अव्यय।

(५) विशेषणों के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं। विशेष्य के अनुसार ही विशेषणों का लिङ्ग होता है। वि० = विशेषण।

(६) जहाँ एक शब्द के लिए एक से अधिक शब्द दिए हैं, वहाँ कोई एक शब्द चुन लें।

अ

अंक = चिह्नम्, अभिज्ञानम्
अंकुर = अंकुरः, प्ररोहः
अंकुश = अंकुशः
अँगरेज = आंग्लदेशीयः
अँगरेजी = आंग्लभाषा
अंगार = अंगारः-रम्
अँगिया = कञ्चुलिका
अंगीठी = हसन्ती (स्त्री०)
अंगूठी = अङ्गुलीयकम्
अंगूठी नामांकित = मुद्रिका
अंगूर = द्राक्षा, मृद्वीका
अंगोछा = अंगप्रोञ्छनम्
अंजन = कज्जलम्

अटारी = अट्टः
अण्डर-वीयर = अधोरुकम्
अतिथि = अतिथिः, प्राघुणः
अतिथि-सत्कर्ता = आतिथेयः
अदरक = आर्द्रकम्
अदल-बदल = विनिमयः
अदालत = न्यायालयः
अधिकार = प्रभुत्वम्
अधिकार करना = प्र + भू (१ प०)
अधीन = आयत्तः (वि०)
अधेला = अर्द्धपणः
अध्यक्ष = अधिष्ठातृ, अधिकारिन्
अध्ययन = पठनम्
अध्यापक = अध्यापकः, उपाध्यायः
अनर्थ = अब्रह्मण्यम्
अनाज = अन्नम्, शस्यम्, धान्यम्
अनार = दाडिमम्
अनुभव करना = अनु + भू (१प०)
अनुसन्धान करना = अनु + सं + धा (३ उ०)
अन्दर = अन्तः (अ०), अन्तरे (अ०)
अपना = स्वीय, स्वकीय
अपनाना = स्वी + कृ (८ उ०)
अपमान करना = अव + ज्ञा (९ उ०)
अप्राप्ति = अनुपलब्धिः
अफवाह = लोकापवादः
अभिनय करना = अभि + नी (१ उ०)
अभ्रक = अभ्रकम्
अमचूर = आम्रचूर्णम्
अमरूद = आम्रलम्, दृढबीजम्
अमावट = आम्रातकम्
अमावस्या = दर्शः, अमावास्या
अमृत = पीयूषम्, सुधा
अरहर = आढकी (स्त्री०)
अर्गला = अर्गलम्
अलग होना = वि + युज् (४ आ०)
अलमारी = काष्ठमञ्जूषा
अवश्य = ननु, नूनम्, न······न (अ०)
असमर्थ = अक्षमः (वि०)
असेम्बलीहाल = आस्थानम्

आ

आँख = चक्षुष् (न०), नेत्रम्, लोचनम्
आँखें चार करना = परस्परावलोकनम्
आँगन = अजिरम्, अङ्गनम्, प्राङ्गणम्
आँचल = पटान्तः, वस्त्रप्रान्तः
आँत = अन्त्रम्
आँधी = प्रवातः
आँव = श्लेष्मन् (पुं०)
आँवड़ा = आम्रातकम्
आँवला = आमलकी (स्त्री०)
आँसू = अश्रु (न०), अस्रम्
आक = अर्कः
आकाश = व्योमन् (न०), वियत् (न०)
आग = हुतवहः, कृशानुः (पु०), वह्निः
आगन्तुक = आगन्तुः (पुं०), आगन्तुकः
आगामी = भाविन्, भविष्यत्
आगे = अग्रे (अ०), ततः (अ०)
आग्रह = निर्बन्धः
आघात = प्रहारः, आक्रमणम्
आचरण = आचारः, व्यवहारः
आचार्य = गुरुः, उपाध्यायः
आजकल = अद्यत्वे (अ०)
आज्ञा = शासनम्, नियोगः आदेशः
आज्ञा देना = अनु + ज्ञा (९ उ०)
आटा = चूर्णम्
आटे का हलुआ = यवागूः (स्त्री०)
आडू = आर्द्रालुः (पुं०)
आढ़ = आढकः-कम्
आढ़त = अभिकरणम्
आढ़ती = अभिकर्तृ (पुं)
आदत = शीलम्, स्वभावः
आदर = संमानः, सत्कारः
आदर पाना = आ + दृ (६ आ०)
आदान = ग्रहणम्, स्वीकारः
आदेश = निदेशः, शासनम्
आधीरात = निशीथः
आना = आगम् (१ प०), अभ्यागम् (१ प०), आ + या (२ प०)
आपड़ना = आ + पत् (१ प०)

आपत्तिग्रस्त = आपन्नः (वि०)
आबनूस = तमालः
आभूषण = आभरणम्, आभूषणम्
आम का वृक्ष = रसालः, सहकारः, आम्रः
आम का फल = आम्रम्
आम, कलमी = राजाम्रम्
आमदनी=आयः, धनागमः
आमरास्ता = जनमार्गः
आयरन (लोहा) = अयस् (न०)
आयात पर चुंगी = आयातशुल्कम्
आयु = आयुष् (न०), वयस् (न०)
आराम = सुखम्, विश्रामः
आराम कुर्सी = सुखासन्दिका
आरी = करपत्रम्
आलस्य करना = तन्द्रय (णिच्)
आलू = आलुः (पुं०)
आलू की टिकिया = पक्वालुः (पुं०)
आलूबुखारा = आलुकम्
आशंका करना = आ + शङ्क् (१ आ०)
आशा करना = आ + शंस् (१ आ०)

इ

इंधन = एधस् (न०)
इंस्पेक्टर = निरीक्षकः
इकट्ठा करना = सं + चि (५ उ०), अर्ज् (१० उ०)
इच्छा = अभिलाषः, मनोरथः
इच्छुक = स्पृहयालुः (वि०), इच्छुकः
इत्र = गन्धतैलम्
इनकमटैक्स = आयकरः
इमरती = अमृती (स्त्री०)
इमली = तिन्तिडीकम्
इमारत = भवनम्, गृहम्
इम्तहान = परीक्षा
इम्पोर्ट = आयातः
इलायची = एला
इस्तरी = स्तरणी
इस्तीफा = त्यागपत्रम्

ई

ईंट = इष्टका
ईंट, पक्की = पक्वेष्टका
ईर्ष्या = मत्सरः
ईश्वर = परमेश्वरः

उ

उगलना = उद् + गॄ (६ प०)
उगला हुआ = उद्वान्तम् (वि०)
उग्र = तीक्ष्णम्
उचित-अनुचित = सदसत् (न०)
उचित है = स्थाने (अ०)
उठना = उत्था (१ प०), उच्चर् (१ प०), उत् + नम् (१ प०)
उठाना = उन्नी (उद् + नी, १ उ०)
उड़द = माषः
उड़ना = उत्पत् (१ प०), उड्डी (१ प०)
उतरना = अव + तॄ (१ प०)
उतार = अवरोहः
उत्कण्ठित = उत्कः, उत्कण्ठितः
उत्तर, दिशा = उदीची (स्त्री०)
उत्तर की ओर = उदक् (उद् + अञ्च्) (पुं०)
उत्तरायण = उत्तरायणम्
उत्तीर्ण होना = उत्तॄ (उद् + तॄ १ प०)
उत्थान-पतन = पातोत्पातः
उत्पन्न होना = सं + भू (१ प०)
उधार = ऋणम्
उधार खाते = नाम्नि (नामन्, स०)
उपजाऊ = उर्वरा
उपभोग करना = उप + भुज् (७ आ०)
उपयोग = विनियोगः, उपयोगः
उपवास करना = उप + वस् (१ प०)
उपेक्षा करना = उपेक्ष् (उप + ईक्ष, १ आ०)
उबटन = उद्वर्तनम्
उबालना = क्वथ् (१ प०)
उल्लंघन करना = उच्चर् (१ आ०), लङ्घ् (१० उ०), अति + वृत् (१ आ०)
उल्लू = कौशिकः, उलूकः
उस्तरा = क्षुरम्

ऊ

ऊँचा = प्रांशुः (वि०)
ऊँट = क्रमेलकः, उष्ट्रः
ऊखल = उलूखलम्
ऊधम = उपद्रवः
ऊधमी = उत्पातिन्
ऊन = ऊर्णम्
ऊनी = राङ्कवम्
ऊपर = ऊर्ध्वम्
ऊपर फेंकना = उत्+क्षिप् (६ उ०)
ऊसर = ऊषरः

ए

एक एक करके = एकैकशः (अ०)
एक ओर से = एकतः (अ०)
एक प्रकार से = एकधा (अ०)
एक बात = एकवाक्यम्
एक राय वाले = एकमतिः (स्त्री०)
एकान्त में = रहसि (रहस् , स०)
एजेन्ट = प्रतिनिधिः
एजेन्सी = अभिकरणम्
एटम = अणुः
एटमबम = अणुबंबम्
एडिटर = सम्पादकः
एडिशनल डाइरेक्टर = अतिरिक्त-शिक्षा-संचालकः
एरंड = एरण्डः

ओ

ओट = व्यवधानम्
ओढ़नी = प्रच्छदपटः
ओम् = उद्गीथः, प्रणवः
ओला = करकाः
ओवरकोट = लंबकंचुकः, बृहतिका
ओस = तुषारः, प्रालेयम्
ओहो = अहो, ही, हंहो

क

कंगन = कङ्कणम्
कंघा = कंकतम्
कंघी = कंकतिका
कंचन = सुवर्णम्
कंजूसी = कार्पण्यम्
कंठ = गलः, गरः
कंठा = कण्ठाभरणम्
कंद = खंडमोदकः
कंधा = स्कन्धः
कंधे की हड्डी = जत्रु (न०)
ककड़ी = कर्कटिका, कर्कटी (स्त्री०)
कक्षा का साथी = सतीर्थ्यः
कचनार = कोविदारः
कचहरी = न्यायालयः
कचालू = पत्रालुः (पुं०)
कचौड़ी = पिष्टिका
कछुआ = कच्छपः
कटहल का पेड़ = पनसः
कटा हुआ = लूनम् (वि०)
कटोरा = कटोरम्
कटोरी = कटोरिका, कचोलः
कठघरा = काष्ठावेष्टनम्
कठपुतली = पुत्रिका
कठफोड़ा = दार्वाघातः
कड़ा, सोने आदि का = कटकः
कड़ाह = कटाहः
कड़ाही = स्वेदनी (स्त्री०)
कढ़ी = क्वथिता
कण = लवः, लेशः, अणुः
कतरनी = कर्तरी, कर्तनी
कत्था = खदिरः
कथा = आख्यानम्, आख्यायिका
कथोपकथन = संभाषणम्
कदम्ब = नीपः, भृङ्गवल्लभः, मदिरागंधः
कद्दू = कूष्माण्डः
कनखजूरा = कर्णजलूका
कनफूल = कर्णपूरः
कनेर = कर्णिकारः
कप् = चषकः
कपट = कैतवम्
कपटी = छलिन्

कपड़ा = वसनम्
कपूत = कुसूनुः
कपूर = घनसारः
कफ = श्लेष्मन् (पुं०)
कबाब = शूलिकम्, शूल्यमांसम्
कबाबी = मांसाशिन्
कबूतर = पारावतः, कपोतः
कब्ज = अजीर्णः
कमर = श्रोणिः (स्त्री०), कटिः (स्त्री०)
कमरख = कर्मरंगम्
कमरा = कक्षः
कमल, नीला = इन्दीवरम्, कुवलयम्
कमल, लाल = कोकनदम्
कमल, श्वेत = कुमुदम्, पुण्डरीकम्
कमीशन = शुल्कम्
कमीशन एजेण्ट = शुल्काजीवः
कम्बल = कम्बलः, कम्बलम्
करधन = मेखला
करना = वि + धा (३ उ०), चर् (१प०) अनु + ष्ठा (१ प०)
करील = करीलः
करेला = कारवेल्लः
करौंदा = करमर्दकः
कर्जा = ऋणम्
कर्जा देने वाला = उत्तमर्णः
कर्जा लेने वाला = अधमर्णः
कलई, पुताई की = सुधा
कलफ करना = मण्डा + कृ (८ उ०)
कलम = कलमः
कलवार = शौण्डिकः, सुराजीविन्
कलश = कलशः
कलह = विवादः, वाग्युद्धम्
कलाई = मणिबन्धः
कलाई से कनी अँगुली तक = करभः
कलाकन्द = कलाकन्दः
कली = कलिका
कवच = वर्मन्
कष्ट करना = आयासः
कसकूट = कांस्यकूटः
कहना = अभि + धा (३ उ०), भाष् (१ आ०), उद् + गॄ (६ प०), उद् + ईर् (१० उ०)
कहाँ = क्व, कुत्र (अव्यय)
काँच = स्फटिकः
काँटा = कंटकः, कंटकम्
कांति = द्युतिः, दीप्तिः
काँपना = कम्प् (१ आ०), वेप् (१ आ०)
काँसा = कंसम्
काई = शैवालः
काक = वायसः
कागज = पत्रम्
काच = स्फटिकः
काजल = अंजनम्
काजू = काजवम्
काटना = कृत् (६ प०), छिद् (७ उ०), लू (९ उ०)
कान = श्रोत्रम्, श्रवणम्, कर्णः ।
कान की बाली = कुण्डलम्
कापी = संचिका
काफल = श्रीपर्णिका
कॉफी = कफव्नी (स्त्री०)
काम = कर्मन् (न०), कार्यम्
काम आना = उप + युज् (४ आ०)
कामदेव = मदनः, स्मरः, अनङ्गः
कार्टून = उपहासचित्रम्
कार्तिकेय = सेनानीः (पुं०)
कार्पोरेशन = निगमः
कालेज = महाविद्यालयः
कितने = कति (वि०)
किनारा = तीरम्, तटम्
किरण = मयूखः, गभस्तिः (पुं०), दीधितिः (स्त्री०)
किवाड़ = कपाटम्
किवाड़ के पीछे का डण्डा = अर्गलम्
किशमिश = शुष्कद्राक्षा
किसान = कृषीवलः, कृषकः
कीचड़ = पङ्कः, कर्दमः
कीर्तन = गुणकथनम्

कीर्ति = यशस् (न०), विश्रुतिः (स्त्री०)
कील = कीलकः
कुँदरू = कुन्दरुः (पुं०)
कुआँ = कूपः
कुकर्म = कुकृत्यम्
कुकुरमुत्ता = कुच्छत्रकः
कुटिया = उटजः, पर्णशाला
कुतिया = शुनी
कुत्ता = कुक्कुरः, श्वन् (पुं०)
कुदाल = खनित्रम् , कुद्दारः
कुदिन = आपत्कालः
कुन्द = कुन्दम्
कुप्पी = कुतूः
कुबड़ा = कुब्जः
कुबेर = कुबेरः, धनदः
कुमुद की लता = कुमुदिनी (स्त्री०)
कुम्हार = कुलालः- चक्रिन्
कुर्ता = कञ्चुकः
कुर्सी = आसन्दिका
कुलपरम्परा = कुलक्रमम्
कुलफी = कुल्पी (स्त्री०)
कुली = भारवाहः, भारहरः
कुलीन = अभिजनः, कुलीनः
कुल्हड़ = करकः, क्षुद्रमृत्पात्रम्
कुश = दर्भः
कुशलता = पाटवम्
कुसुम = पुष्पम्, प्रसूनम्
कुहनि = कफोणिः
कुहरा = तुषारः
कूटना = अवहननम्, ताडनम्
कूड़ा = अवस्करः
कूदना-कुर्द्, कूर्द् (१ आ०)
कूबड़ = ककुदः
कूल्हा = नितम्बास्थि (न०)
कृपया = सानुकम्पम्, सानुग्रहम्
कृपा = प्रसादः, उपकारः
कृपाण = कौक्षेयकः
केकड़ा = कुलीरः
केतली = कन्दुः (पुं०, स्त्री०)
केबिनेट = मन्त्रिपरिषद् (स्त्री०)
केन्सर = विद्रधिः (पुं०), विषव्रणम्
केला = कदलीफलम्
केवड़ा = केतकी (स्त्री०)
कैंची = कर्तरी (स्त्री०)
कै = वमथुः (पुं०)
कोंपल = किसलयम्
कोट = प्रावारः
कोठरी = लघुकक्षः
कोतवाल = कोटपालः
कोतवाली = कोटपालिका
कोमलस्वर = मन्द्रस्वरः
कोयल = परभृतः, कोकिलः
कोल्हू = रसयन्त्रम्
कौवा = ध्वाङ्क्षः, वायसः, काकः
क्या = किम्, किंतु, ननु (अ०)
क्या लाभ = को लाभः, किं प्रयोजनम्,
किम्
क्रीड़ा करना = क्रीड् (१ प०), रम्
(१ आ०)
क्रीम = शरः
क्रोध करना = क्रुध् (४ प०), कुप्
(४ प०)
क्रोधी = अमर्षणः
क्लर्क = लिपिकारः
क्षत्रिय—क्षत्रियः, द्विजातिः, द्विजन्मन्
(पुं०)
क्षमा करना = मृष् (१० उ०), क्षम्
(१ आ०, ४ प०)

ख

खंजन = खंजरीटः, खंजखेलः, खञ्जनः
खजूर = खर्जूरम्
खड्ग = खड्गः
खजानची = अर्थाधिकारिन्
खजाना = निधानम्
खटिया = खट्विका
खड़ाऊँ = पादुका
खपड़ा = खर्परः
खपड़ैल्का = खर्परावृतम् (वि०)

खम्बा = स्तम्भः
खरबूजा = खर्बुजम्
खरीद = क्रयः
खरीदता = पण् (१ आ०), क्री (९ उ०)
खर्च करना = विनियोगः, व्ययः
खलिहान = खलम्
खस्ता पूड़ी = शष्कुली (स्त्री०)
खाँसी = कासः
खाजा = मधुशीर्षः
खाट = खट्वा
खाद = खाद्यम्
खान = खनिः (स्त्री०)
खाना = भक्ष् (१० उ०), खाद् (१ प०), भुज् (७ आ०)
खाया हुआ = जग्धम्, भुक्तम्
खिचड़ी = कृशरः
खिड़की = गवाक्षः
खिन्न होना = सद् (१ प०)
खिरनी = क्षीरिका
खींचना = कृष् (१ प०)
खीर = पायसम्
खील = लाजाः (लाज, ब० व०)
खुमानी = क्षुमानी (स्त्री०)
खूँटी = नागदन्तकः
खून = रुधिरम्
खेत = क्षेत्रम्
खेती = कृषिः (स्त्री०)
खेती के औजार = कृषियन्त्रम्
खेल का मैदान = क्रीडाक्षेत्रम्
खैर = खदिरः
खोजना = गवेष् (१० उ०)
खोदना = खन् (१ उ०)
खोवा = किलाटः

ग

गंगा = त्रिपथगा, सुरसरित् (स्त्री०)
गंडासा = तोमरः
गगरा = कलशः, घटः, गर्गरः
गगरी = गर्गरी
गज = हस्तिन् (पुं०)
गजक = गजकः
गज्जा = खल्वाटः
गड़रिया = अजाजीवः
गदा = गदा
गद्दा = तूलसंस्तरः
गधा = गर्दभः, खरः
गन्धक = गन्धकः
गरजना = गर्जनम्
गर्दन = ग्रीवा, कण्ठः
गली = वीथिका
गवेषणा करना = गवेष् (१० उ०)
गाँव = ग्रामः
गाजर = गृञ्जनम्
गाय = गो (स्त्री०)
गाल = कपोलः
गाहक = ग्राहकः
गिद्ध = गृध्रः
गिनना = गण् (१० उ०)
गिरना = पत् (१ प०), निपत् (१ प०), भ्रंश् (१ आ०)
गिरहकट = ग्रन्थिभेदकः
गिलास = कंसः, काचकंसः
गीदड़ = गोमायुः (पुं०)
गुझिया = संयावः
गुणगान करना = कृत् (१० उ०)
गुप्त = निभृतम् (वि०)
गुफा = गह्वरम्
गुर्दा = गुर्दः
गुलदस्ता = स्तवकः, पुष्पगुच्छः
गुलाब = स्थलपद्मम्
गुलाम = दासः
गुलामी = दासत्वम्
गुस्सा करना = क्रुध् (४ प०), कुप् (४ प०)
गूँगा = मूकः
गूगल = गुग्गुलः
गूलर = उदुम्बरम्
गेंद = कन्दुकः, गेन्दुकम्
गेंदा = गन्धपुष्पम्

गोठरी = वीथिका
गोंद = गोबूलः
गैंडा = गंडकः
गोत्र = कुलम्
गोबर = गोमयम्
गोर्ना = गोविद्धा
गोली = गोलिका, गुलिका
गोह = गोधा
ग्रीनरुतु = निदाघः
ग्लेशियर = हिमसरित् (स्त्री०)

घ

घंटा (समय) = होरा
घटना (होना) = घट् (१ आ०)
घटना (कम होना) = अप + चि (५ उ०)
घटिया = अनु (अ०), उप (अ०)
घड़ा = घटः, कुम्भः
घड़ी = घटिका
घर = सदनम्, गृहम्, भवनम्
घरेलू फर्नीचर = गृहोपस्करः
घाट = घट्टः
घाटी = अद्रिद्रोणी (स्त्री०)
घात = प्रहारः
घातक = मारयितृ, हंतृ (पुं०)
घायल = आहतः (वि०)
घाव = व्रणम्
घास = तृणम्
घी = आज्यम्
घुँघरू = किंकिणी (स्त्री०)
घुटना = जानुः (पुं, न०)
घुड़सवार = सादिन् (पुं०), अश्वा-रोहिन् (पुं०)
घूमना = भ्रम् (४ प०), चर् (१ प०), संचर् (१ प०)
घेरा = परिधिः (पुं०)
घेवर = घृतपूरः, वार्तिकः
घोंसला = कुलायः
घोड़ा = अश्वः, वाजिन् (पुं०)
घोषणा करना = घुष् (१० उ०)

च

चंडाल = चांडालः
चकवा = कोकः, चक्रवाकः
चकोतरा (फल) = मधुकर्कटी (स्त्री०), मधुकर्कटीरम्
चक्कर खाना = परि + वृत् (१ आ०)
चचेरा भाई = पितृव्यपुत्रः
चटकनी = कीलः, अर्गलम्
चटनी = अवलेहः
चटाई = किलिंजकः
चट्टान = शिला
चढ़ाव = आरोहः
चतुःशाला = चतुःशालम्
चतुर = विदग्धः (वि०)
चना = चणकः
चन्द्रमा = सुधांशुः (पुं०)
चपत = चपेटः
चपरासी = लेखाहारकः, प्रेष्यः
चपाती = रोटिका
चप्पल = पादूः (स्त्री०), पादुका
चबूतरा = स्थण्डिलम्, वेदिः (स्त्री०)
चबेना = चर्वणम्
चबेनी = भृष्टान्नोपहारः
चमक = कांतिः
चमकना = भास् (१ आ०), द्युत् (१ आ०), दिव् (४ प०)
चमचम (मिठाई) = चमनम्
चमचा = दर्वी (स्त्री०)
चमड़ा = चर्मन् (न०)
चमार = चर्मकारः
चमेली = मालती (स्त्री०)
चम्पा = चम्पकः
चरना = चर् (१ प०)
चर्बी = वसा
चर्बी, हड्डी की = मज्जा
चलना = चल् (१ प०), प्र + वृत् (१ आ०) प्र + स्था (१ आ०)
चाँदनी = कौमुदी (स्त्री०), ज्योत्स्ना

चॉक, लिखने की = कठिनी (स्त्री०)
चाकर = किंकरः, दासः
चाकू = छुरिका, कृपाणिका
चाचा = पितृव्यः
चाची = पितृव्या
चाट = अवदंशः
चातक = चातकः
चादर = प्रच्छदः
चान्सलर = कुलपतिः (पुं०)
चापलूसी = स्नेहभणितम्
चाबुक = तोत्रम्
चाय = चायम्
चावल = व्रीहिः (पुं०)
चावल, भूसी-रहित = तण्डुलः
चाहना = ईह् (१ आ०), वाञ्छ् (१प०), काङ्क्ष् (१ प०)
चिड़िया = चटका, पत्रिन् (पुं०)
चित्त = चेतस् (न०), चित्तम्
चित्रकार = चित्रकारः
चिनगारी = स्फुलिंगारः-रम्
चिमटा = संदंशः
चिरचिटा (ओषधि) = अपामार्गः
चिरौंजी = प्रियालम्
चिलमची = हस्तधावनी (स्त्री०), करसालिनी
चिह्न = अङ्कः, लक्ष्मन् (न०)
चीड़ (वृक्ष) = भद्रदारुः (पुं०)
चीनी = सिता
चीफ़ = प्रधानपुरुषः
चीफ़ मिनिस्टर = मुख्यमन्त्रिन् (पुं०)
चीरना = छिद् (७ उ०)
चील = चिल्लः
चुंगी = शुल्कः, शुल्कशाला
चुंगी का अध्यक्ष = शौल्किकः
चुगना = चि (५ उ०)
चुगलखोर = पिशुनः, कर्णेजपः
चुगलखोरी = पैशुन्यम्
चुड़िहारा = चूडाहारः
चुनना = चि (५ उ०), अव+चि (५ उ०)
चुराना = मुष् (९ प०), चुर् (१० उ०)
चूड़ी = काचवलयम्
चूल्हा = चुल्लिः (स्त्री०)
चेचक = शीतला
चेष्टा करना = चेष्ट् (१ आ०)
चोंच = चञ्चुः (स्त्री०), चञ्चूः (स्त्री०)
चोकर = कडंगरः, तुषः
चोट = क्षतम्
चोटी = शिखा, सानुः (पुं०, न०), शृङ्गम्
चोर = पाटच्चरः, स्तेनः, तस्करः, चौरः
चौक = चतुष्पथः, शृङ्गाटकम्
चौकन्ना = प्रत्युत्पन्नमतिः (वि०)
चौमंजिला = चतुर्भूमिकः
चौराहा = शृङ्गाटकम्, चतुष्पथ

छ

छज्जा = वलभिः (स्त्री०), वलभी (स्त्री०)
छटाँक = पट्टंकः
छटा = द्युतिः (स्त्री०)
छड़ी = यष्टिः (स्त्री०)
छत = छदिः (स्त्री०)
छाता (छत्र) = आतपत्रम्
छाती = वक्षस् (न०), उरस् (न०)
छात्र = छात्रः, अध्येतृ (पुं०), विद्यार्थिन् (पुं०)
छात्रा = छात्रा, अध्येत्री (स्त्री०)
छानना = स्रावय (णिच्)
छाल = त्वच् (स्त्री०)
छाला = पिटिका, त्वक्स्फोटः
छावनी = स्कन्धावारः, शिबिरम्
छिपकली = गृहगोधिका
छिप जाना = तिरो+भू (१ प०)
छिपना = ली (४ आ०), नि+ली (४ आ०), अन्तर्+धा (३ उ०)
छीलना = शो (४ प०), त्वच् (६ प०)
छीला हुआ = त्वष्टम् (वि०)
छुट्टी = विसृष्टिः (स्त्री०), अवकाशः

छुरी = क्षुरी, क्षुरिका
छुहारा = क्षुधाहरम्
छेद करना = छिद्र् (१० उ०)
छेनी = वृश्चनः
छोटा भाई = अनुजः
छोड़ना = त्यज् (१ प०), मुच् (६ उ०), हा (३ प०), अस् (४ प०), अप + अस् (४ प०)
छोड़ा हुआ = परित्यक्तः (वि०), प्रत्याख्यातः

ज

जंगल = अरण्यम्, काननम्, वनम्, विपिनम्
जंगली चावल = श्यामाकः (साँवा)
जंघा = ऊरुः (पुं०)
जंजीर = शृङ्खला
जंतु = प्राणिन्, जीवः
जंभाई = जृम्भणम्
जंवाई = जामातृ (पुं०)
जड़ = मूलम्
जड़ से = मूलतः
जन्म लेना = प्रादुर् + भू (१ प०)
जरा = तावत् (अ०)
जर्मनसिल्वर = चन्द्रलौहम्
जल = तोयम्, अम्बु (न०), वारि (न०)
जणकण = शीकरः
जलतरंग (बाजा) = जलतरङ्गः
जलन = तापः, दाहः
जलना = ज्वल् (१ प०), इन्ध् (७ आ०)
जलपान = जलपानम्
जल-सेनापति = नौसेनाध्यक्षः
जलाना = दह् (१ प०)
जलूस = जनयात्रा
जलेबी = कुण्डली (स्त्री०)
जवाकुसुम = जवाकुसुमम्, जवापुष्पम्
जस्त = यशदम्
जहाज, पानी का = पोतः
जहाज (विमान) = व्योमयानम्, विमानम्
जागना = जागृ (२ प०)
जागने वाला = जागरकः, जागरितृ (पुं०)
जागरूक = जागरितृ, जागरूकः
जाति = वर्णः, कुलम्, वंशः
जादू = इन्द्रजालम्
जादूगर = ऐन्द्रजालिकः, मायाविन् (पुं०)
जानना = अव + गम् (१ प०), अधि + गम् (१ प०), ज्ञा (९ उ०)
जानने वाला = अभिज्ञः
जाना = गम् (१ प०), इ (२ प०), या (२ प०)
जामुन = जम्बु (स्त्री०), जम्बूः (स्त्री०)
जार, काँच का = काचघटी (स्त्री०)
जाल = जालम्, वागुरा
जाला = लूतिका
जिगर = यकृत्
जितेन्द्रिय = दान्तः
जिद = निर्बन्धः
जिद्दी = आग्रहिन्, हठिन्
जिल्द = प्रावरणम्
जीजा (बहनोई) = भगिनीपतिः, आवुत्तः
जीतना = वि + जि (१ आ०), जि (१ प०)
जीभ = रसना, जिह्वा
जीरा = जीरकः
जीविका = वृत्तिः (स्त्री०), जीविका
जुआ = पणः, द्यूतक्रीडा
जुआरी = द्यूतकारः, कितवः
जुकाम = प्रतिश्यायः, श्लेष्मस्रावः
जुगनू = खद्योतः
जुगाली = रोमन्थः
जुगुप्सा = अरुचिः (स्त्री०)
जुती हुई भूमि = सीता
जुरमाना = अर्थदण्डः
जुलाहा = तन्तुवायः, कुविन्दः
जूड़े की जाली = वेणीजालम्
जूता (बूट) = उपानह् (स्त्री०)
जूता सीने की सूई = चर्मप्रभेदिका
जूही (फूल) = यूथिका
जेल = कारागारम्, वन्दिगृहम्
जोड़ना = सं + योजय (णिच्)

जोतना = कृष् (१ प०, ६ उ०)
जौ = यवः
ज्वार = यवनालः
ज्वाला = शिखा, अर्चिस् (न०)

झ

झंझट = कृच्छ्रम् , आयासः
झंझा = झंझावातः
झंडी = वैजयन्ती, पताका
झक्की = प्रजल्पकः, वावदूकः
झगड़ा = कलहः
झगड़ालू = कलहप्रियः, कलहकामः
झट = तत्क्षणम् , शीघ्रम्
झड़प = कलहः, क्रोधः, आवेशः
झरना = प्रपातः
झाड़ी = कुञ्जः, निकुञ्जः
झाड़ू = मार्जनी (स्त्री०)
झील = सरसी (स्त्री०)
झील, बड़ी = ह्रदः
झुकना = नम् (१ प०)
झुकाना = अवनमय (णिच्)
झोपड़ी = उटजः, कुटीरः
झोला = पुटः, प्रसेवः

ट

टकसाल = टङ्कशालः
टकसाल का अध्यक्ष = टङ्कशालाध्यक्षः
टखना = गुल्फः
टमाटर = रक्ताङ्गः
टब, पानीका = द्रोणिः (स्त्री०), द्रोणी (स्त्री०)
टाइप करना—टङ्क् (१० उ०)
टाइप-राइटर = टङ्कणयन्त्रम्
टाइफाइड = संनिपातज्वरः
टाइम-टेबुल = समय-सारणी (स्त्री०)
टॉफी = गुल्यः
टिंचर = टिंचरः
टिंडा = रोमशफलः, डिंडिशः, टिण्डिशः
टिकट = पत्रकम्
टिकठी = त्रिकाष्ठी, त्रिपादी
टिकुली (बेंदी) = चक्रकम् , ललाटाभरणम्
टिकिया = वटिका
टिटिहरा = टिट्टिभकः
टिटिहरी = टिट्टिभकी
टिड्डी = शलभः
टीयर-गैस = धूमास्त्रम् , अश्रुधूमः
टी (चाय) = चायम्
टी० बी० (तपेदिक) = राजयक्ष्मन् (पुं०), राजयक्ष्मः
टीका (मंगलार्थ) = ललाटिका
टीन = त्रपु
टी पॉट = चायपात्रम्
टी पार्टी = सपीतिः (स्त्री०)
टूटा हुआ = भग्नम् (वि०)
टूथ पाउडर = दन्तचूर्णम्
टूथपेस्ट = दन्तपिष्टकम्
टेनिस का खेल = प्रक्षिप्तकन्दुकक्रीडा
टेलर (दर्जी) = सौचिकः
टेलिग्राम = विद्युत्-संदेशः
टेसू = किंशुकः, पलाशम्
टेक = आहावः
टैक्स = करः
टोकने वाला = निवारकः, प्रतिबन्धकः
टोकरा = करंडः, कंडोलः
टोकरी = कंडोलकः
टोपी = शिरस्कम्
टोस्ट = अष्टापूपः
ट्रंक = लौहपेटिका
ट्रेडमार्क = पण्यमुद्रा
ट्रैक्टर = खनियन्त्रम्

ठ

ठंडाई = शीतपेयम्
ठग = कितवः, वंचकः
ठगना = वञ्च् (१० आ०), अभि+सं०+धा (३ उ०)
ठीक = परमार्थतः (अ०)
ठीक बटना = उप+पद् (४ आ०)
ठुकराना = वि+हन् (२ प०)
ठोंकना – कील् (१ प०)

ठोकर = स्खलनम्
ठोड़ी = चिबुकम्

ड

डंका = यशःपटहः, डिंडिमः
डंठल = वृन्तम्
डंडा = लगुडः
डंडी मारना=कूटमानं+कृ (८ उ०)
डँसना = दंश् (१ प०)
डबलरोटी = अभ्यूषः
डर = भयम्
डसने वाला = दंशकः
डस्टर = मार्जकः
डाँट = तर्जनम्
डाँटना = भर्त्स् (१० आ०)
डाइनिंग टेबुल = भोजनफलकम्
डाइनिंग रूम = भोजनगृहम्
डाइरेक्टर (एजुकेशन) = शिक्षासंचालकः
डाएबिटीज़ = मधुमेहः, मधुप्रमेहः
डाकगाड़ी = द्रुतयानम्
डाकबँगला = विश्रान्तिगृहम्
डाका = लुण्ठनम्
डाकू = लुण्ठाकः, परिपन्थिन् (पुं०)
डाक्टर = भिषग्वरः
डाढ़ = दंष्ट्रा
डायरी = दैनंदिनी
डायरेक्टस्पीच = प्रत्यक्षवर्णनम्
डायस = मञ्चः
डालना = नि+क्षिप् (६ उ०)
डाह = मत्सरः
डिक्शनरी = शब्दकोषः
डिनरपार्टी = सहभोजः
डिपटीकमिश्नर = उपायुक्तः
डिपटी डाइरेक्टर (शिक्षा) = उपशिक्षा-
संचालकः
डिपार्टमेण्ट = विभागः
डिपो = भाण्डागारम्
डूबना = मस्ज् (६ प०)
डेस्क = लेखनपीठम्
ड्राइंगरूम = उपवेशगृहम्
ड्राईक्लीनर = निर्णेजकः
ड्रिल = व्यायामः
ड्रिलमास्टर = व्यायामशिक्षकः

ढ

ढंग = पद्धतिः (स्त्री०)
ढकना = सं+वृ (५ उ०)
ढका हुआ = प्रच्छन्नः (वि०)
ढकोसला = आडम्बरः
ढक्कन = पिधानम्
ढहाने वाला = विध्वंसकः
ढाक = पलाशः
ढिंढोरा = डिण्डिमः
ढीठ = धृष्टः
ढूँढ़ना = गवेष् (१० उ०)
ढेला = लोष्टम्
ढाल = पटहः
ढोलक = ढोलकः
ढोलकिया = ढोलकवादकः

त

तंतु = सूत्रम्
तंदुरुस्ती = स्वास्थ्यम्
तंबोली = ताम्बूलिकः
तई (जलेबी आदि पकानेकी) = पिष्टपचनम्
तकिया = उपधानम्
तट = तटः, कूलम्
तनैया = वरटा
तन्दूर (रोटी पकाने का)=कन्दुः (स्त्री०)
तपाना = तप् (१ प०)
तपेदिक = राजयक्ष्मन् (पुं०)
तबला—मुरजः
तरंग = वीचिः (स्त्री०), ऊर्मिः (स्त्री०)
तरबूज = तर्बुजम् , कालिन्दम्
तराई = उपत्यका
तराजू—तुला
तरीका—प्रकारः
तलवार—खड्गः
तलाश = अन्वेषणम्

तवा = ऋजीषम्
तश्तरी = शराविका
तसला = धिषणा (स्त्री०)
तहमद = प्रावृतम्
ताँबा = ताम्रकम्
ताँबे के बर्तन बनाने वाला = शौल्विकः
ताड़ = तालः
तानपूरा (बाजा) = तानपूरः
तारा = तारा, ज्योतिष् (न०)
तालाब = सरस् (न०), तडागः
तिजोरी = लौहमञ्जूषा
तिपाई = त्रिपादिका
तिमंजिला (मकान) = त्रिभूमिकः
तिरस्कार = अवज्ञा
तिरस्कार होना = तिरस् + कृ (कर्म०)
तिरस्कृत करना = परि + भू (१ प०), तिरस् + कृ (८ उ०)
तिल = तिलः
तिलक = तिलकम्
तिल्ली = प्लीहा
तीव्र = तीक्ष्णम् (वि०)
तीव्रस्वर = तारः
तीसरा पहर = अपराह्णः
तुरही (बाजा) = तूर्यम्
तूणीर = तूणीरः
तूतिया = तुत्थाञ्जनम्
तृप्त करना = तर्पय (णिच्)
तृप्त होना = तृप् (४ प०, १० उ०)
तेंदुआ = तरक्षुः (पुं०)
तेज = तीव्रम् , शातम्
तेज (ओज) = तेजस् (न०)
तेली = तैलकारः
तैरना = तॄ (१ प०), सं + तॄ (१ प०)
तैयार = निष्पन्नम् , संपन्नम् , सज्जः
तैयार होना = सं + पद् (४ आ०), सं + नह् (४ उ०)
तो = तावत् , तु; ततः (अ०)
तोड़ना = त्रुट् (१० आ०), खण्ड् (१० उ०), भञ्ज् (७ प०), भिद् (७ उ०)
तोता = शुकः, कीरः
तोप = शतघ्नी (स्त्री०)
तोरई = जालिनी (स्त्री०)
तोल = तोलः
तोलना = तोलनम्
तोलना = तुल् (१० उ०)
त्रास = भयम् , भीतिः
त्रिशूल = त्रिशिखम्
त्रुटि = स्खलितम्
त्वचा = त्वच् (स्त्री०), त्वचा

थ

थकान = क्लमः, श्रमः
थन = पयोधरः
थाना = रक्षिस्थानम्
थाला = आलवालम्
थाली = स्थालिका
थूक = ष्ठीवनम्
थूकना = ष्ठीव् (१ प०, ४ प०)
थोड़ी देर = मुहूर्तम्

द

दक्षिण, दिशा = दक्षिणा
दक्षिण की ओर = दक्षिणा, दक्षिणतः
दक्षिणायन = दक्षिणायनम्
दग्ध (जला हुआ) = प्लुष्टम् (वि०)
दण्ड देना = दण्ड् (१० उ०)
दफ्तर = कार्यालयः
दबाना = अभि + भू (१ प०), दम् (४ प०), धृष् (१० उ०)
दया = अनुग्रहः, कृपा
दया करना = दय् (१ आ०)
दरकिनार = दूरे आस्ताम् , पृथक् तिष्ठतु, का कथा
दराँती = लवित्रम् , खड्गीकम्
दरिद्रता = दारिद्र्यम्
दरी = आस्तरणम्
दर्जन = द्वादशकम्
दर्जा = श्रेणी (स्त्री०), श्रेणिः (स्त्री०)

दर्जी = सौचिकः
दर्द = व्यथा, दुःखम् , वेदना
दर्प = अभिमानः
दर्पण = मुकुरः
दर्शन = ईक्षणम् , साक्षात्करणम्
दल = गणः, समूहः
दलदल = कर्दमः
दलाल = शुल्काजीवः
दलाली = शुल्कम्
दवा = ओषधिः (स्त्री०)
दवात = मसीपात्रम्
दस्त = अतिसारः
दस्त, आँवयुक्त = आमातिसारः
दस्त, खूनयुक्त = रक्तातिसारः
दस्ता (कागज का) = दस्तकः
दस्ताना = करच्छदः
दही-बड़ा = दधिवटकः
दाँत = दन्तः, दशनः, रदः
दाढ़ी = कूर्चम्
दातून = दन्तधावनम्
दादी = पितामही (स्त्री०)
दाना = कणः
दानी = वदान्यः
दाल = सूपः
दालमोट = दालमुद्गः
दिन = दिवसः, दिनम् , अहन् (न०)
दिन में = दिवा
दिनरात = अहोरात्रम् , नक्तन्दिवम्
दिशा = ककुभ् (स्त्री०), आशा, दिशा
दीक्षा देना = दीक्ष् (१ आ०)
दीदी = भगिनी
दीन = दीनः (वि०)
दीपक = दीपः
दीवार = भित्तिः (स्त्री०)
दुःख देना = पीड् (१० उ०), तुद् (६ उ०)
दुःखित होना = विषद् (वि+सद्, १ प०),
व्यथ् (१ आ०)
दुःखी होना = वि+पद् (४ आ०)
दुपहरिया (फूल) = बन्धूकः
दुमंजिला (मकान) = द्विभूमिकः
दुराचारी = दुराचारः, दुर्वृत्तः (वि०)
दुलारा = दुर्ललितः (वि०)
दुहराना = आवृत्तिः (स्त्री०)
दूकान = आपणः
दूकानदार = आपणिकः
दूत = चरः, दूतः
दूध = दुग्धम् , पयस् (न०)
दूर = दूरम् , आरात् (अ०)
दूषित होना = दुष् (४ प०)
दूसरे दिन = अन्येद्युः, परेद्युः
दूसरी माँ = विमातृ (स्त्री०)
देखना = दृश् (१ प०), अव+लोक्
(१० उ०) समीक्ष् (१ आ०),
अवेक्ष् , प्रेक्ष् , ईक्ष् (१ आ०)
देखभाल = निरीक्षणम्
देना = दानम् , वितरणम् , विश्राणनम्
देना = उप+नी (१ उ०), वि+तृ (१
प०), दा (३ उ०)
देर = विलम्बः, अतिकालः
देर करना = कालहरणम्
देवता = अमरः, देवः, त्रिदशः, सुरः
देवदार = देवदारुः (पु०)
देवर = देवरः
देवरानी = यातृ (स्त्री०)
देवालय = मन्दिरम्
देश = जनपदः, प्रदेशः
देह = कायः
देहली = इन्द्रप्रस्थम्
देहली (द्वार की) = देहली (स्त्री०)
देहान्त = मरणम्
दैव = भाग्यम्
दैववश = दैववशात्
दो-तीन = द्वित्राः (वि०)
दोनों प्रकार से = उभयथा (अ०)
दोपहर = मध्याह्नः
दोपहर के बाद का समय=अपराह्न (P. M.)
दोपहर से पहले का समय=पूर्वाह्न (A. M.)
दो प्रकार से = द्विधा (अ०)

दोष लगाना = कुत्स् (१० आ०)
द्रोह करना = द्रुह् (४ प०)
द्वार = द्वारम्
द्वारपाल = प्रतीहारी (स्त्री०), प्रतीहारः
द्वेष = वैरम्

ध

धंधा = आजीवः
धड़ = कबन्धः
धतूरा = धत्तूरः
धन = वित्तम् , धनम्
धनिया = धान्यकम्
धर्मार्थ यज्ञादि = इष्टापूर्तम्
धनुर्धर = धन्विन् (पुं०), धनुर्धरः
धनुष—कोदण्डम् , चापः
धमकाना = तर्ज् (१० आ०)
धागा = तन्तुः (पुं०), सूत्रम्
धान (भूसी सहित) = धान्यकम्
धार रखने वाला = शस्त्रमार्जः
धारण करना = धृ (१ उ०, १० उ०)
धूप = आतपः
धूल = पांसुः (पुं०), रेणुः (पुं० स्त्री०), धूलिः (स्त्री०)
धोखा = कैतवम्
धोखा देना = वञ्च् (१० आ०),वि+प्र+लभ् (१ आ०)
धोती = अधोवस्त्रम् , धौतवस्त्रम्
धोना=धाव् (१ उ०), प्र+क्षल् (१० उ०)
धोबिन = रजकी (स्त्री०)
धोबी = रजकः, निर्णेजकः
ध्यान देना = अव+धा (३ उ०)
ध्यान रखना = अपेक्ष् (अप+ईक्ष् १ आ०)
ध्यान से देखना = निरीक्ष् (१ आ०)
ध्येय = लक्ष्यम्
ध्वजा = केतुः (पुं०)

न

नक्षत्र = नक्षत्रम्
नगद = मूल्येन (तृतीया)
नगर = नगरम् , पत्तनम्
नगाड़ा = दुन्दुभिः
नट = शैलूषः
नटी = शैलूषिकी
नतीजा = परिणामः, फलम्
नदी = आपगा, सरित् (स्त्री०)
नदीश = समुद्रः, अब्धिः (पुं०)
ननँद = ननान्दृ (स्त्री०)
ननिहाल = मातामहालयः
नपुंसक = नपुंसक (क्लः), क्लीबम्
नफीरी (बीन बाजा) = वीणावाद्यम्
नमक = लवणम्
नमक, साँभर = रोमकम् , रौमकम्
नमक, सेंधा=सैन्धवम् , सैन्धवः
नमकीन (अन्न) = लवणान्नम्
नमकीन सेव = सूत्रकः
नम्र = नम्रः, विनीतः (वि०)
नवग्रह = नवग्रहाः
नष्ट होना = उत्+सद् (१ प०) ध्वंस् (१ आ०), नश् (४ प०)
नस = शिरा
नाइट्ड्रेस = नक्तकम्
नाइलोन का वस्त्र = नवलीनकम्
नाई = नापितः
नाक = नासा, घ्राणम् , नासिका
नाक का फूल = नासापुष्पम्
नाखून = नखः, नखम्
नागिन = सर्पिणी (स्त्री०)
नाच = नृत्यम् , नृत्तिः (स्त्री०)
नाचना = नृत् (४ प०)
नाड़ी = नाडिः (स्त्री०), नाडी (स्त्री०)
नातिन = नप्त्री (स्त्री०)
नाती = नप्तृ (पुं०)
नाना = मातामहः
नानी = मातामही (स्त्री०)
नापना = मा (२ प०, ३ आ०)
नारंगी = नारङ्गम्
नारियल = नारिकेलः (वृक्ष), नारिकेलम् (फल)
नाला (पहाड़ी) = निर्झरः, प्रणालः

नाली = प्रणालिका
नाव = नौः (स्त्री०), नौका
नाविक = नाविकः, कर्णधारः
नाश = प्रणाशः, विनाशः
नाशक = ध्वंसकः
नाशपाती = अमृतफलम्
नाश्ता = कल्यवर्तः, प्रातराशः
नास्तिक = निरीश्वरः
नास्तिकता = अनीश्वरवादः
निंदक = अभ्यसूयकः
निंदा करना = निन्द् (१ प०)
निंबू = निम्बूः (स्त्री०), जम्बीरम् (फल)
निःसंकोच = विस्रब्धम, निःशङ्कम्
निकलना = निः + सृ (१ प०) प्र + भू (१ प०), उद् + भू (१ प०), निर् + गम् (१ प०), उद् = गम (१ प०)
निकालना = निःसारय (णिच्)
निगलना = नि + गॄ (६ प०)
निचोड़ना = सु (५ उ०)
निन्दा करना = निन्द् (१ प०), अधि = क्षिप् (६ उ०)
निन्दित = अवगीतः, निन्दितः
निबन्ध = लेखः, प्रबन्धः
निब = लेखनीचञ्चुः (स्त्री०)
निमंत्रण = आमन्त्रणम्
निमोनिया = प्रलापकज्वरः
नियंत्रण = निरोधः, निग्रहः, प्रतिबन्धः
नियम = नियमः
निरन्तर = अभीक्ष्णम, अनवरतम्
निरपराध = निरपराधः, अनागस् (वि०)
निर्णय करना = निर् + णी (१ उ०)
निर्भय = निर्भयम्, नष्टाशङ्कः
निर्यात = निर्यातः
निर्यात पर शुल्क = निर्यातशुल्कम्
निवाड़ = निवारः
निशान लगाना = चिह्न् (१० उ०)
निश्चय करना = निश्चि (निस् + चि ५ उ०)
निश्चय से = खलु, नूनम् (अ०)
नीच = निकृष्टः, अपकृष्टः, अपसदः
नीचे = अधः, अधस्तात्
नींबू, बिजौरा = बीजपूरः
नीम = निम्बः
नील = नीली (स्त्री०)
नीलकण्ठ (पक्षी) = चाषः
नीलम (मणि) = इन्द्रनीलः
नील लगाना = नीली + कृ (८ उ०)
नेत्र = नेत्रम्, चक्षुष् (न०)
नेलकटर = नखनिकृन्तनम्
नेलपालिश = नखरञ्जनम्
नेवारी (फूल) = नवमालिका
नोक = अग्रम्, अग्रभागः
नोचना = लुञ्च् (१ प०)
नोट = नाणकम्
नोटिस = विज्ञप्तिः
नौकर = भृत्यः, किंकरः, कर्मकरः
नौका, छोटी = उडुपः
न्यायाधीश = आधिकरणिकः
न्योता देना = नि + मन्त्र् (१० आ०)

प

पंक = कर्दमः
पंख = पत्रम्
पंखड़ी = पुष्पदलम्
पंखा = व्यजनम्
पंखी = व्यजनकम्
पंजर = कंकालः
पंडित = बुधः, कोविदः, प्राज्ञः
पंथ = मार्गः, वर्त्मन् (न०)
पकवान = पक्वान्नम्
पकाना = पच् (१ उ०)
पका हुआ = पक्वम्
पकौड़ी = पक्ववटिका
परवल (साग) = पटोलः
पट्टी = पट्टिका
पठार = अधित्यका
पढ़ना = नि + पठ् (१ प०), पठ् (१ प०)
पतंगा = शलभः
पतला = अपचितः, कृशः

पताका = वैजयन्ती (स्त्री०)
पतीली = स्थाली (स्त्री०)
पत्ता = पर्णम्, पत्रम्
पत्थर = उपलः, अश्मन् (पुं०)
पथ—मार्गः, अध्वन् (पुं०)
पथिक = अध्वगः
पद्म = सरोजम्
पद्मसमूह = नलिनी (स्त्री०)
पनडुब्बी = जलान्तरितपोतः
पनवारी (पानवाला) = ताम्बूलिकः
पन्ना (रत्न) = मरकतम्
पपड़ी (मिठाई) = पर्पटी (स्त्री०)
पपीहा = चातकः
पपीता = स्थूलैरण्डः
पय = दुग्धम्, क्षीरम्
पयोधर = कुचः, स्त्रीस्तनः
परन्तु = परम्
परकोटा = प्राकारः
परवाह करना = ईक्ष् (१ आ०), प्र + ईक्ष् (१ आ०)
पराँठा = पूपिका
पराग = परागः, मकरन्दः
पराल (फूँस) = पलालः
परशु = कुठारः
परस्पर = मिथः, अन्योन्यम् (अ०)
पराक्रम = शौर्यम्, पौरुषम्, विक्रमः
परिजन = परिवारः
परिणाम = फलम्, अन्तः
परिधान = वसनम्
परिपाटी = परिपाटिः (स्त्री०)
परिपालन = रक्षणम्, पालनम्
परिभव = तिरस्कार करना
परिश्रम = श्रमः, उद्योगः
परीक्षा करना = परीक्ष् (परि + ईक्ष् १ आ०)
पर्वत = गिरिः (पुं०), भूभृत् (पुं०), अद्रिः (पुं०)
पलंग = पर्यङ्कः
पलक = पक्ष्मन् (न०)
पवित्र = पूतम्, पावनम्, पवित्रम्, (वि०)
पश्चिम = प्रतीची (स्त्री०)
पश्चिम की ओर = प्रत्यक् (अ०)
पहनना = परि + धा (३ उ०)
पहलवान = मल्लः
पहुँचना = आ + सद् (१ प०), प्र + आप् (५ प०)
पहुँचाना = प्रापय (णिच्)
पहुँची (आभूषण) = कटकः
पाउडर = चूर्णकम्
पाकड़ (पेड़) = प्लक्षः
पाखण्डी = पाषण्डिन् (पुं०)
पागल = उन्मत्तः, विक्षिप्तः
पाजामा = पादयामः
पाजेब (गहना) = नूपुरम्
पाठशाला = पाठशाला, विद्यालयः
पाठन = अध्यापनम्, शिक्षणम्
पाठ्यपुस्तक = पाठ्यपुस्तकम्
पान = ताम्बूलम्
पानदान = ताम्बूलकरङ्कः
पाना = समधि + गम् (१ प०), आप् (५ प०), प्र + आप् (५ प०), प्रति + पद् (४ आ०), विद् (६ उ०)
पानी का जहाज = पोतः
पापड़ = पर्पटः
पार करना = तॄ (१ प०), उत् + तॄ (१ प०), निस् + तॄ (१ प०)
पारा = पारदः
पार्क = पुरोद्यानम्
पार्वती = भवानी (स्त्री०), गौरी (स्त्री०)
पालक = पोषकः, रक्षकः
पालक (साग) = पालकी (स्त्री०)
पालन करना = भुज् (७ प०), तन्त्र् (१० आ०), पा (२ प०)
पाला = तुषारः
पालिश = पादुरञ्जकः, पादुरञ्जनम्
पाश = जालम्, बन्धनम्
पास जाना = उप + सद् (१ प०), उप + गम् (१ प०)

पासा (जूए का) = अक्षः (ब० व०)
पिघलाना = द्रावय (णिच्)
पिघला हुआ = द्रवीभूतम्, गलितम्
पिलाना = पायय (पा + णिच्)
पियानो (बाजा) = तन्त्रीकवाद्यम्
पिस्ता = अङ्कोटम्
पिस्तौल = लघुभुशुण्डिः (स्त्री०)
पीछा करना = अनु + पत् (१ प०)
पीछे चलना = अनु + चर् (१ प०), अनु + वृत् (१ आ०)
पीछे जाना = अनु + गम् (१ प०)
पीछे-पीछे = अनुपदम् (अ०)
पीठ = पृष्ठम्
पीड़न = क्लेशनम्
पीतल = पीतलम्
पीपल = अश्वत्थः
पीपर (ओषधि) = पिप्पली (स्त्री०)
पीलिया (रोग) = पाण्डुः (पुं०)
पीसना = पिष् (७ प०)
पुखराज (रत्न) = पुष्परागः, पुष्पराजः
पुताई वाला = लेपकः
पुत्र = आत्मजः, सूनुः (पुं०), तनयः
पुत्रवधू = स्नुषा
पुलाव = पुलाकः
पुष्ट करना = पुष् (४ प०)
पुष्पमाला = स्रज् (स्त्री०)
पूँजी = मूलधनम्
पूआ = पूपः
पूजा = सपर्या, अपचितिः (स्त्री०)
पूजा करना = अर्च् (१ प०), पूज् (१० उ०)
पूज्य = पूज्यः
पूरा करना = पृ (३ प०, १० उ०)
पूरी = पूलिका
पूर्व = प्राची (स्त्री०)
पूर्व की ओर = प्राक् (अ०)
पृथिवी = वसुधा
पेचिश = प्रवाहिका
पेट = कुक्षिः (पुं०), उदरम्

पेटीकोट = अन्तरीयम्
पेटू = औदरिकः
पेठे की मिठाई = कौष्माण्डम्
पेड़ा (मिठाई) = पिण्डः
पेन्टर = चित्रकारः
पेन्सिल = तूलिका
पेस्टरी = पिष्टान्नम्
पैदल चलने वाला = पदातिः (पुं०)
पैदलसेना = पदातिः (पुं०)
पैदा होना = उत् + पद् (४ आ०), उद् + भू (१ प०)
पैण्ट = आप्रपदीनम्
पैर = पादः
पैरेलिसिस = पक्षाघातः
पोंछना = मार्जय (णिच्)
पोतना = लिप् (६ उ०)
पोता = पौत्रः
पोती = पौत्री (स्त्री०)
पोर्टिको (बरामदा) = प्रकोष्ठः
पोशाक = परिधानम्
पोषक = पालकः
पोषण = पालनम्, भरणम्
पोस्ट आफिस = पत्रालयः
पोस्ट कार्ड = पत्रम्
पोस्ट मैन = पत्रवाहकः
पोस्ता = पौष्टिकम्
प्याऊ = प्रपा
प्याज = पलाण्डुः
प्याला = चषकः
प्रकट होना = आविर् + भू (१ प०)
प्रचार होना = प्र + चर् (१ प०)
प्रणाम करना = प्र + णम् (१ प०) वन्द् (१ आ०)
प्रतिज्ञा करना = प्रति + ज्ञा (९ आ०)
प्रतीत होना = आ + पत् (१ प०)
प्रमेह = प्रमेहः
प्रसन्न होना = प्र + सद् (१ प०) मुद् (१ आ०)

प्रसिद्ध = प्रसिद्धः, विश्रुतः
प्रसिद्धि = विश्रुतिः (स्त्री०), यशस् (न०)
प्रसून = कुसुमं, पुष्पम्
प्रस्ताव = प्रसंगः, विषयः
प्रस्तुत करना = प्र + स्तु (२ उ०)
प्रस्थान करना = प्र + स्था (१ आ०)
प्रहार = आघातः
प्रांगण = अजिरम् , अंगनम्
प्राइम मिनिस्टर = प्रधानमन्त्रिन् (पुं०)
प्राण = प्राणाः, असवः (असु, व० व०)
प्रातः = प्रातः (अ०)
प्रार्थी = याचकः, निवेदकः
प्रेक्षक = दर्शकः
प्रेम करना = स्निह् (४ प०)
प्रेमालाप = स्नेहसम्भाषणम्
प्रेमाश्रु = अनुरागबाष्पम्
प्रेयसी = प्रिया, वल्लभा, कान्ता
प्रेरक = प्रोत्साहकः, उत्तेजकः
प्रेरित = ईरितम् , प्रेरितम्
प्रेसिडेण्ट = सभापतिः, अध्यक्षः
प्रोग्राम = कार्यक्रमः
प्रोफेसर = प्राध्यापकः
प्रौढ = प्रौढः, प्रौढम् (वि०)
प्लास्टर = प्रलेपः
प्लीहा = प्लीहन् (पुं०)
प्लेट = शरावः
प्लेट फार्म = वेदिका, मञ्चः, पीठिका

फ

फंदा = पाशः, बन्धनम्
फड़कना = स्पन्द् (१ आ०), स्फुर् (६ प०)
फर्नीचर = उपस्करः
फर्श = कुट्टिमम
फलमिलना = वि + पच् (१ उ०)
फहराना = उत् + तुल् (१० उ०)
फाइल = पत्र संचयिनी (स्त्री०)
फाउन्टेनपेन = धारालेखनी (स्त्री०)
फालसा (फल) = पुंनागम्
फावड़ा = खनित्रम्
फासफोरस = भास्वरम्
फिटकरी = स्फटिका
फीस = शुल्कः
फंसी = पिटिका
फुटबॉल = पादकन्दुकः
फुफेरा भाई = पैतृष्वस्रीयः
फुलका (रोटी) = पूपला
फूँकना = ध्मा (१ प०)
फूँस = तृणम्
फूआ = पितृष्वसृ (स्त्री०)
फूल (धातु) = कांस्यम्
फूल = पुष्पम् , कुसुमम्, प्रसूनम्
फेंकना = अस् (४ प०), क्षिप् (६ उ०)
फेफड़ा = फुप्फुसम्
फेरना = आवर्ति (णिच्)
फैक्टरी = शिल्पशाला
फैलना = प्रथ् (१ आ०)
फैलाना = कृ (६ प०), तन् (८ उ०)
फोड़ा = पिटकः
फौजी आदमी = सैनिकः
फ्लु = शीतज्वरः

ब

बँटखरा (बाट) = तुलामानम्
बंदना = वन्दनम् , प्रणामः
बंदर = मर्कटः, शाखामृगः
बंदूक = गुलिकास्त्रम् , अग्न्यस्त्रम्
बकरा = अजः
बकवाद = प्रलापः, प्रजल्पः
बकवाद करना = प्र + लप् (१ प०)
बगुला = बकः
बच्चों का पार्क = बालोद्यानम्
बछड़ा = वत्सः
बजे = वादनम्
बटेर = वर्तकः
बटोही = पान्थः, पथिकः
बड़ (वृक्ष) = न्यग्रोधः
बड़हल (फल) = लकुचम्
बड़ाई = मानः, गौरवम्
बड़ा भाई = अग्रजः

बढ़ई = तक्षकः
बढ़कर = अति (अ०)
बढ़ना = एध् (१ आ०), उप + चि (५ उ०)
बतक = वर्तकः
बताशा = वाताशः
बथुआ (साग) = वास्तुकम् ; वास्तूकम्
बदमाश = जाल्मः
बदलना = परि + णम् (१ उ०)
बनाना = सृज् (६ प०), रच् (१० उ०)
बनावटी = कृत्रिमम्, कृतकम् (वि०)
बनिया = सार्थवाहः
बबूल = तीक्ष्णकण्टकः, युग्मकण्टकः
बम = आग्नेयास्त्रम् , अग्निगोलकास्त्रम्
बम फेंकना = आग्नेयास्त्रम् + क्षिप् (६ उ०)
बरतन = पात्रम् , भाजनम् , भाण्डम्
बरतना = व्यवहृ (१ प०)
बरताव = व्यवहारः, आचरणम्
बरताव करना = वृत् (१ आ०)
बरफ़ = हिमम्
बरफ़ी = हैमी (स्त्री०)
बरसना = वृष् (१ प०)
बराती = वरयात्रिकः
बराबर करना = समी + कृ (८ उ०)
बराबरी करना = प्र + भू (१ प०)
बर्मा (औजार) = आविधः
बवासीर = अर्शस् (न०)
बस = अलम् (अ०), कृतम् (अ०)
बसूला = तक्षणी (स्त्री०)
बस्ता = वेष्टनम्, प्रसेवः
बस्ती = आवासस्थानम्
बहना = वह् (१ उ०)
बहाना = व्यपदेशः, अपदेशः
बहाना करना = अप + दिश् (६ उ०)
बहाव = प्रवाहः
बहिन = स्वसृ (स्त्री०), भगिनी (स्त्री०)
बहिष्कार = अपसारणम्
बही = वणिक् पत्रिका
बहुधा = प्रायः, प्रायशः
बहुमूत्र = मधुमेहः
बहुरूपिया = वेशाजीविन्
बहेड़ा (ओषधि) = विभीतकः
बहेलिया = शाकुनिकः, व्याधः
बाँझ (वृक्ष) = सिन्दूरः
बाँधना = बन्ध् (९ प०)
बाँसुरी = वंशी (स्त्री०), मुरली (स्त्री०)
बाँह = भुजः, बाहुः (पुं०)
बाघ = व्याघ्रः
बाज (पक्षी) = श्येनः, शशादनः
बाजरा (अन्न) = प्रियङ्गुः (पुं०), वज्रकः
बाजा = वादित्रम् , वादनयन्त्रम्
बाजार = आपणः, हट्टः, विपणिः (स्त्री०)
बाजूबन्द (गहना) = केयूरम्
बाड़ = वृतिः (स्त्री०)
बाण = विशिखः, बाणः, शरः
बाणिज्य = वणिक्कर्मन् (न०)
बात = वचनम् , कथनम्
बातचीत = संवादः, वार्तालापः
बातूनी = बहुभाषिन् , वाचालः
बाथरूम = स्नानागारम्
बाद में = पश्चात् (अ०)
बादल = घनः, जलदः
बादाम = वातादम्
बाधा = विघ्नः, अन्तरायः, प्रत्यूहः
बारंबार = अनवरतम्, सततम्
बारबार = मुहुः (अ०)
बारीबारी से = पर्यायशः
बारूद = अग्निचूर्णम्
बारे में = अन्तरेण, अधिकृत्य (अ०)
बाल = शिरोरुहः, केशः
बाल (अन्न की) = कणिशः, कणिशम्
बाल काटने की मशीन = कर्तनी (स्त्री०)
बालटी = उदञ्चनम्
बालिका = कन्यका, कुमारिका
बालूशाही (मिठाई) = मधुमण्डः
बालों का काँटा = केशशूकः
बासमती चावल = अणुः (पुं०)
बाहर जाना (एक्सपोर्ट) = निर्यातः
बाहर से आना (इम्पोर्ट) = आयातः
बिकवाना = विक्रापय (णिच् , पर०)

बिक्री = पणनम् , विक्रयः
बिखरना = प्रसृ (१ प०)
बिगड़ना = दुष् (४ प०)
बिगुल (बाजा) = काहलः, संज्ञाशंखः
बिच्छू = वृश्चिकः
बिजली = विद्युत् (स्त्री०), सौदामिनी (स्त्री०)
बिजलीघर = विद्युद्गृहम्
बिताना = नी (१ उ०)
बिदाई लेना = आ + मन्त्र् (१० आ०)
बिना = अन्तरेण (अ०), विना (अ०)
बिन्दी = बिन्दुः (पुं०)
बिल = विवरम् , छिद्रम्
बिल्ली = मार्जारी (स्त्री०)
बिसकुट = पिष्टकः
बिस्तर = शय्या
बींधना = व्यध् (४ प०)
बीच में = अन्तरा, अन्तरे (अ०)
बीजक = पण्यसूची
बीड़ी = तमाखुवीटिका
बीतना (समय) = गम् (१ प०), अति + वृत् (१ आ०)
बीन (बाजा) = वीणावाद्यम्
बीमारी = रोगः, व्याधिः
बुंदा = लोलकम्
बुकरैक = पुस्तकाधानम्
बुखार = ज्वरः
बुनना = वे (१ उ०)
बुरका = निचोलः
बुलाक (गहना) = नासाभरणम्
बुलाना = आ + मन्त्र् (१० आ०), आ + ह्वे (१ उ०)
बेंत = वेतसः
बेचना = वि + क्री (९ आ०)
बेचने वाला = विक्रेतृ (पुं०)
बेणी (आभूषण) = मूर्धाभरणम्
बेन्च = काष्ठासनम्
बेर = कर्कन्धुः (स्त्री०), बदरीफलम्
बेल (फल) = श्रीफलम् , बिल्वम्
बेला (फूल) = मल्लिका
बेसन = चणकचूर्णम्
बैंकिंग = कुसीदवृत्तिः (स्त्री०)
बैंड = वादित्रगणः
बैंगन = भण्टाकी (स्त्री०)
बैठना = सद् (१ प०), नि + सद् (१ प०), आस् (२ आ०)
बैडमिन्टन = पत्रिक्रीडा
बैना = वायनम्
बैल = गो (पुं०), उक्षन् (पुं), अनडुह् (पुं०)
बोझा = भारः
बोना = वप् (१ उ०)
बौर = वल्लरी (स्त्री०)
ब्रह्म = उद्गीथः, ब्रह्मन् (पुं०, न०)
ब्रह्मा = ब्रह्मन् (पुं०), वेधस् (पुं०)
ब्राह्मणः = द्विजः, अग्रजन्मन् (पुं०)
ब्रुश = रोममार्जनी (स्त्री०)
ब्रुश, दाँत का = दन्तधावनम्
ब्रैसलेट = केयूरम्
ब्लडप्रेसर = रक्तचापः
ब्लाउज = कञ्चुलिका
ब्लाटिंगपेपर = मसीशोषः
ब्लेड = क्षुरकम्
ब्लैकबोर्ड = श्यामफलकम्
ब्लैडर = मूत्राशयः

भ

भंगी = संमार्जकः
भंडार = कोषः, निधानम्
भँवर = आवर्तः
भक्षण = अशनम् , आस्वादनम्
भड़भूजा = भृष्टकारः
भतीजा = भ्रातृव्यः, भ्रातृपुत्रः
भरना = पूर् (१० उ०)
भले ही = कामम् (अ०)
भाँटा = भण्टाकी (स्त्री०)
भाग्यवान् = सुकृतिन् (पुं०)
भाड़ = भ्राष्ट्रम्
भानजा = भागिनेयः

भाप = बाष्पम्
भाभी = भ्रातृजाया
भारी = गुरुः (वि०)
भाला = प्रासः
भालू = भल्लूकः
भाव (बाजार भाव) = अर्घः
भावगिरना = अर्घापचितिः (स्त्री०)
भाव चढ़ना = अर्घोपचितिः (स्त्री०)
भावर (तराई) = उपत्यका
भिण्डी (साग) = भिण्डकः
भीतर = अन्तः
भीरुता = कापुरुषत्वम्
भुक्ति = भोजनम् , आहारः
भूसा = बुसम्
भूख = बुभुक्षा, अशनाया
भूखा = बुभुक्षितः, अशनायितः (वि०)
भूचर = स्थलचरः
भूनना = भ्रस्ज् (६ उ०)
भूप = भूपालः, नृपः
भूल = विस्मरणम् , स्खलितम्
भूलना = वि + स्मृ (१ प०)
भूलोक = मर्त्यलोकः
भूषण = आभरणम् , अलङ्कारः
भूषा = प्रसाधनम्
भूसी = तुषः
भू-सेनापति = भूसेनाध्यक्षः
भेजना = प्र + हि (५ प०), प्रेषय (णिच् उ०)
भेड़ = मेषः
भेड़िया = वृकः
भैंस = महिषी (स्त्री०)
भैंसा = महिषः
भौंह = भ्रूः (स्त्री०)
भौंरा = भ्रमरः, षट्पदः, द्विरेफः
भ्रमण = पर्यटनम् , विचरणम्
भ्रान्ति = भ्रमः, मोहः
भ्रूण = गर्भस्थशिशुः, गर्भः
भ्रूणहत्या = गर्भपातनम्

म

मँगाना = आनायय (आनी + णिच्)
मंजन = दन्तचूर्णम्
मँजीरा = मँजीरम्
मंजूषा = पिटकः
मंडन = अलंकरणम्
मंडप = मण्डपः
मंडी = महाहट्टः
मंत्री = अमात्यः, सचिवः
मंथन = विलोडनम्
मंदता = आलस्यम्
मंदाग्नि = अजीर्णम् , अपचनम्
मंदिर = देवतायतनम्
मकई = कटिजः
मकड़ी = तन्तुनाभः, ऊर्णनाभः, लूता
मकान = निलयः, भवनम् , प्रासादः
मकोय (फल) = स्वर्णक्षीरी (स्त्री०)
मक्खन = नवनीतम् , हैयंगवीनम्
मगर = मकरः, नक्रः
मछली = मीनः, मत्स्यः
मजदूर = श्रमिकः
मटर = कलायः
मट्ठा = तक्रम्
मथना = मन्थ् (९ उ०)
मधुमक्खी = मधुमक्षिका
मन = मनस् (नं०)
मन लगना = रम् (१ आ०)
मनाना = अनु + नी (१ उ०)
मनुष्य = नरः, मर्त्यः
मनुष्यता = मनुष्यत्वम्
मनोकामना = अभिलाषः
मनोरञ्जक = चित्ताह्लादकः
मनोरञ्जन = मनोविनोदः
मनोविज्ञान = मानसशास्त्रम्
मनोहर = मनोज्ञम् , हृद्यम् , मञ्जुलम्
मनोहरता = सौन्दर्यम्
मरना = मृ (६ आ०), उप + रम् (१ आ०)
मरम्मत करना = सं + धा (३ उ०)

मर्म = मर्मन् (न०)
मलाई = सन्तानिका
मलेरिया = विषमज्वरः
मशीन = यन्त्रम्
मसाला = व्यञ्जनम् , उपस्करः
मसूर = मसूरः
महँगा = महार्घम्
महल = प्रासादः, हर्म्यम्
महावर = अलक्तकः
महुआ (वृक्ष) = मधूकः
माँजना = मृज् (२ प०, १० उ०)
मांस = आमिषम्, मांसम्
माथा = ललाटम्
मानना = मन् (४ आ०, ८ आ०), आ + स्था (१ आ०)
मानसून = जलदागमः
माप = मानम्
मामा = मातुलः
मामी = मातुलानी (स्त्री०)
मार = मारणम् , हननम्
मारना = हन् (२ प०), सो (४ प०), तड् (१० उ०)
मारनेवाला = घातकः, ताडकः, हिंसकः
मार्ग = सरणिः (स्त्री०), पथिन् (पुं०), वर्त्मन् (न०), मार्गः
मालपूआ = अपूपः
माला = माल्यम् , स्रज् (स्त्री०)
मालिश = मर्दनम् , घर्षणम्
माली = मालाकारः
मिजराब (सितार बजाने का) = कोणः
मिट्टी = मृत्तिका
मिठाई = मिष्टान्नम्
मिठास = माधुर्यम् , मिष्टत्वम्
मित्रता = सख्यम् , सौहार्दम् , सौहृदम्
मिनट = कला
मिर्च = मरीचम्
मिल (फैक्टरी) = मिलः
मिलना = सं + गम् (१ आ०), मिल् (६ उ०)
मिलाना = योजय (युज् + णिच्), सं + मिश्रय (णिच्)
मिस्त्री (कारीगर) = यान्त्रिकः
मिस्सा आटा = मिश्रचूर्णम्
मीठा मधुरम् (वि०)
मुंह = मुखम् , आननम् , वदनम्
मुकदमा = अभियोगः
मुकरना = अप + ज्ञा (९ आ०)
मुकाम = स्थानम्
मुकुट = मुकुटम् , किरीटम्-टः
मुक्का = मुष्टिः (पु० स्त्री०), मुष्टिका
मुक्ति = मोक्षः, कैवल्यम् , निर्वाणम्
मुखिया = नायकः
मुख्यद्वार = गोपुरम्
मुख्यसड़क = राजमार्गः
मुनि = मुनिः (पुं०), दान्तः
मुनीम = लेखकः
मुरब्बा = मिष्टपाकः
मुसम्मी (फल) = मातुलुङ्गः
मुसाफिर = पथिकः
मुसाफिरखाना = पथिकालयः
मूँग = मुद्गः
मूँगफली = भूचणकः
मूँगरी (मिट्टी तोड़ने की) = लोष्टभेदनः
मूँगा (रत्न) = प्रवालम्
मूँछ = श्मश्रु (न०)
मूँडना = मुण्ड् (१ प०)
मूँडने वाला = मुण्डकः, नापितः
मूर्ख = मूढः
मूर्खता = जाड्यम्
मूली = मूलकम्
मूल्य = मूल्यम्
मूसलाधार वर्षा = आसारः
मृग = मृगः, हरिणः, कुरङ्गः
मृत = हतः, मृतः, उपरतः
मृत्यु = निधनम् , मृत्युः (पुं०)
मृदंग = मुरजः, पटहः
मेंढक = दर्दुरः, मण्डूकः

मेंहदी = मेन्धिका
मेघ = वारिदः, जलदः, तोयदः
मेज = फलकम्
मेज, पढ़ाई की = लेखनफलकम्
मेयर = निगमाध्यक्षः
मेला = मेलकः
मेवा = शुष्कफलम्
मेंहा (खेत बराबर करने का) = लोष्टभेदनः
मैकेनिक = यान्त्रिकः
मैच = क्रीडाप्रतियोगिता
मैना = सारिका
मोजा = अनुपदीना
मोटा = उपचितः, गुरुः, पृथुः
मोती = मुक्ता, मौक्तिकम्
मोती की माला = मुक्तावली (स्त्री०)
मोतीझरा (रोग) = मन्थरज्वरः
मोर = बर्हिन् (पुं०), शिखिन् (पुं०), मयूरः
मोरचा = परिखा, खेयम्, खातम्
मोरचाबन्दी करना = परिखया + वेष्टय (णिच्)
मोह = भ्रमः, भ्रांतिः, अज्ञानम्
मोहनभोग (मिठाई) = मोहनभोगः
मौका = कार्यकालः
मौन = वाचंयमः, जोषम् (अ०)
मौलसिरी (वृक्ष) = वकुलः
मौसी = मातृष्वसृ (स्त्री०)
मौसेरा भाई = मातृष्वस्रेयः
म्युनिसिपल चेयरमैन = नगराध्यक्षः
म्युनिसिपलिटी = नगरपालिका
म्लानि = खेदः, अवसादः, शोकः
म्लेच्छ = अनार्यः

य

यंत्र (मशीन) = यंत्रम्
यंत्रणा = कष्टम्, क्लेशः, यातना
यंत्रालय = यंत्रालयः
यजमान = यज्ञपतिः
यज्ञ = अध्वरः, यज्ञः, क्रतुः (पुं०)
यज्ञकर्ता = यज्वन् (पुं०)
यत्न करना = यत् (१ आ०)
यम = कृतान्तः
यश = यशस् (न०), कीर्तिः (स्त्री०)
याद करना = स्मृ (१ प०), सं + स्मृ (१ प०), अधि + इ (२ प०)
यादगार = स्मृतिचिह्नम्, स्मारकम्
यामिनी = निशा
युक्ति = उपायः, युक्तिः (स्त्री०)
युद्ध = आहवः, आजिः (पु०, स्त्री०)
युवा = तरुणः, तलुनः
यूनानीलिपि = यवनानी (स्त्री०)
यूनिफार्म = एकपरिधानम्, एकवेषः
यूनिवर्सिटी = विश्वविद्यालयः
यों ही सही = एवमस्तु, तथास्तु, एवं भवतु
योग्य होना = अर्ह् (१ प०)
योद्धा = योधः
यौवन = तारुण्यम्

र

रंग = रागः, वर्णः
रंगना = रञ्ज् (१ उ०)
रंगविरंगे = नानावर्णानि (वहु०, वि०)
रंगरेज = रञ्जकः
रकम = राशिः, धनराशिः (पुं०)
रक्षक = शरण्यः
रक्षा करना = रक्ष् (१ प०), त्रै (१ आ०), पा (२ प०), पाल् (१० उ०)
रखना = नि + धा (३ उ०)
रगड़ना = घृष् (१ प०)
रगड़नेवाला = घर्षकः, मर्दकः
रज = रजस् (न०)
रजाई = नीशारः
रजिस्टर = पञ्जिका
रजिस्ट्रार = प्ररतोतृ (पुं०)
रथ = स्यन्दनम्
रवड़ = घर्षकः
रबड़ी (मिठाई) = कूर्चिका
रसोई = रसवती (स्त्री०), महानसम्

रहना = स्था (१ प०), वस् (१ प०), अधि + वस्, उप + वस् (१ प०)
रांगा = त्रपु (न०)
राक्षस = दानवः, असुरः, दैत्यः
राख = भस्मन् (न०)
राज (मिस्त्री) = स्थपतिः (पुं०)
राजदूत = राजदूतः
राजा = भूपतिः (पुं०), अवनिपतिः (पुं०) नृपः, भूभृत् (पुं०)
राजाज्ञा = नृपादेशः
राजाधिराज = राजराजेश्वरः
रात = क्षपा, रात्रिः (स्त्री०), विभावरी (स्त्री०)
रात में = नक्तम्
रायता = राज्यक्तम्
रास्ता = मार्गः
रिवाज = प्रचलनम्
रीछ = भल्लूकः
रीठा = फेनिलः
रीढ़ की हड्डी = पृष्ठास्थि (न०)
रुकना = वि + रम् (१ प०), स्था (१ प०), अव + स्था (१ प०)
रुई = तूलः, तूलम्
रेगिस्तान = मरुः (पुं०)
रेट (भाव) = अर्घः
रेतीला किनारा = सैकतम्
रेफरी = निर्णायकः
रेशमी = कौशेयम्
रोकना = रुध् (७ उ०)
रोग = रोगः, आमयः, रुज् (स्त्री०)
रोजनामचा = दैनिक-पत्रिका
रोटी = रोटिका
रोना = रुद् (२ प०), वि + लप् (१ प०)
रोम = रोमन् (न०)
रोमहर्ष = रोमाञ्चः
रोशनी = प्रकाशः आलोकः
रोष = कोपः, क्रोधः, मन्युः

ल

लँगोटी = कौपीनम्
लंच = सहभोजः, सन्धिः (स्त्री०)
लकड़ी = काष्ठम्
लकवा मारना = पक्षाघातः
लकीर = रेखा
लक्ष्मी = पद्मा, कमला, श्रीः (स्त्री०), लक्ष्मीः (स्त्री०)
लक्ष्य = शरव्यम्, लक्ष्यम्
लगना = प्र + वृत् (१ आ०)
लगाना—नि + युज् (१० उ०), सं + धा (३ उ०)
लच्छा (गहना) = पादाभरणम्
लज्जित = ह्रीणः (वि०)
लज्जित होना = त्रप् (१ आ०), ह्री (३ प०)
लड़ने का इच्छुक = कलहकामः
लड़ाई का जहाज (पानी का) = युद्धपोतः
लड़ाई का विमान = युद्धविमानम्
लड्डू = मोदकः, मोदकम्
लता = लता, वीरुध् (स्त्री०)
लपसी = यवागूः (स्त्री०)
लस्सी = दाधिकम्
लहसुन = लशुनम्
लहसुनिया (रत्न) = वैदूर्यम्
लांगूल = पुच्छम्
लांछन = कलङ्कः
लाक्षारस = अलक्तकः, लाक्षारसः
लाख (धातु) = जतु (न०)
लागत = मूल्यम्
लानत = धिक्कारः
लाना = आ + नी (१ उ०), हृ (१ उ०), आ + हृ (१ उ०)
लालटेन = प्रदीपः
लालनपालन = संवर्द्धनम्, पालनपोषणम्
लाली = लौहित्यम्
लिए = कृते (अ०)
लिपस्टिक = ओष्ठरञ्जनम्
लिसोड़ा (वृक्ष) = श्लेष्मातकः
लीची (फल) = लीचिका
लीपना = लिप् (६ उ०)
लेखावही = नामानुक्रमपञ्जिका

ले जाना = नी (१ उ०), हृ (१ उ०), वह् (१ उ०)
लेना = आ + दा (२ आ०), ग्रह् (९ उ०)
लेनेवाला = ग्राहकः
लोई (ऊनी) = रल्लकः
लोकसभा = लोकसभा, संसद् (स्त्री०)
लोटा = करकः, कमण्डलुः (पुं०)
लोप = क्षयः, विध्वंसः
लोभिया = वनमुद्गः
लोभी = लुब्धः, गृध्नुः (पुं०)
लोमड़ी = लोमशा
लोहा = अयस् (न०), आयसम्, लौहम्
लोहा करना (वस्त्रों पर) = अयस् + कृ (८ उ०)
लोहार = लौहकारः
लोहे का टोप = शिरस्त्रम्
लोहे की चादर = लोहफलकम्
लौंग = लवङ्गम्
लौकी = अलाबूः (स्त्री०)
लौटकर आना = आ + वृत् (१ आ०), प्रत्या + गम् (१ प०)
लौटना = नि + वृत् (१ आ०), परा + गम् (१ प०)

व

वंचक = प्रतारकः, धूर्त्तः
वंचना = वंचनम्, प्रतारणम्-णा, कपटम्
वंचित = विप्रलब्धः
वंश = अन्वयः, वंशः
वंशावली = वंशक्रमः
वकालत = वाक्कीलत्वम्
वकील = प्राड्विवाकः
वक्षःस्थल = उरःस्थलम्
वचन = वचस् (न०), वचनम्
वज्र = वज्रम्, कुलिशम्, पविः (पुं०)
वट = न्यग्रोधः
वटी = वटिका
वणिक् = पण्याजीवः
वदन = मुखम्, आननम्
वध = हननम्
वधक = नरघातकः, हिंसकः
वन = काननम्, वनम्, विपिनम्, अरण्यम्
वरुण = वरुणः, प्रचेतस् (पुं०), पाशिन् ([illegible]
वर्षा = वृष्टिः (स्त्री०)
वर्षाकाल = प्रावृष् (स्त्री०)
वस्तुतः = नूनम्, किल, खलु (अ०)
वहाँ से = ततः (अ०)
वाइसचान्सलर = उपकुलपतिः (पुं०)
वाणी = सरस्वती, वाणी (स्त्री०)
वायु = पवनः, अनिलः, मातरिश्वन् (पुं०)
वायुसेनापति = वायुसेनाध्यक्षः
वायोलिन (बाजा) = सारङ्गी (स्त्री०)
विचरण करना = वि + चर् (१ प०)
विजयी = विजयिन् (पुं०), जिष्णुः (पुं०)
विद्युत् = सौदामिनी (स्त्री०), विद्युत् (स्त्री०)
विद्वान् = विद्वस् (पुं०), विपश्चित् (पुं०), निष्णातः, कोविदः, बुधः
विपत्ति = व्यसनम्, विपत्तिः (स्त्री०)
विमान = विमानम्
विवाह करना = उप + यम् (१ आ०), परि + णी (१ उ०)
विश्राम = विश्रामः
विश्वास करना = वि + श्वस् (२ प०)
विष्णु = हरिः
विस्तृत = विततम्, प्रसृतम्
वीर्य = शुक्रम्
वृक्ष = पादपः, अनोकहः, विटपिन् (पुं०)
वृद्ध = वृद्धः
वेतन = वेतनम्
वेतन पर नियुक्त नौकर = वैतनिकः
वेदपाठी = श्रोत्रियः, वेदपाठिन् (पुं०)
वेदी = वेदिका, वेदी (स्त्री०)
वैश्य = वैश्यः
वाली बॉल = क्षेपकन्दुकः
व्यक्त करना = वि + अञ्ज् (७ प०)
व्याघ्र = व्याघ्रः
व्यर्थ ही = वृथा (अ०)

व्यवहार करना = आ + चर् (१ प०); व्यव + हृ (१ उ०)
व्यापार = वाणिज्यम्
व्याप्त होना = व्याप् (वि + आप् ५ प०), अश् (५ आ०)
व्याप्ति = व्यापनम् , परिपूरणम्
व्याल = सर्पः
व्रण = क्षतम्
व्रीडा = त्रपा, लज्जा
व्रीहि = शालिः

श

शंकर = शिवः, महादेवः
शंका = भयम् , भीतिः (स्त्री०)
शक = संदेहः, संशयः
शक्कर = शर्करा
शक्ति = बलम् , सामर्थ्यम्
शठता = दौर्जन्यम्
शपथ लेना = शप् (१ उ०)
शराबी = मद्यपः
शरीफा (फल) = सीताफलम्
शरीर = गात्रम्, कायः, विग्रहः, तनुः (स्त्री०), वपुष् (न०)
शर्त = समयः
शलगम = श्वेतकन्दः
शशांक = शशधरः, चन्द्रः
शस्त्र = प्रहरणम् , शस्त्रम्
शस्त्रागार = आयुधागारम् , शस्त्रागारम्
शस्य-श्यामल = शाद्वलः
शहतूत = तूतम्
शहद = मधु (न०)
शहनाई (बाजा) = तूर्यम्
शहर = नगरम् , पुरम्
शहरी = पौरः, नागरिकः
शान्त = शान्तः (वि०)
शाक्त = शाक्तिकः
शादी = विवाहः
शामियाना = महावितानः, चन्द्रातपः
शासन करना = शास् (२ प०), तन्त्र् (१० आ०)
शिकार खेलना = मृगया
शिकारी = आखेटकः, शाकुनिकः
शिक्षा देना = शिक्ष् (१ आ०), शास् (२ प०)
शिर = शिरस् (न०), मूर्धन् (पुं०)
शिला = शिला, शिलापट्टः
शिल्पी = शिल्पिन् (पुं०), कारुः (पुं०)
शिल्पी संघ का अध्यक्ष = कुलकः
शिव = त्र्यम्बकः, त्रिपुरारिः (पुं०)
शिशु = बालकः, स्तनपः
शिशुता = शिशुत्वम् , शैशवम्
शिष्य = शिष्यः, छात्रः, अन्तेवासिन् (पुं०), वटुः (पुं०)
शीघ्र = शीघ्रम् , द्रुतम् , सद्यः (अ०)
शीशम (वृक्ष) = शिंशपा
शीशा = मुकुरः, दर्पणः
शुक = कीरः
शुद्ध करना = शोधय (णिच्)
शूद्र = अन्त्यजः
शेरवानी = प्रावारकम्
शोभित होना = शुभ् (१ आ०), भा (२ प०)
श्रद्धा करना = श्रद् + धा (३ उ०)

स

संकट = दुःखम् , कष्टम्
संकोच = संकोचः
संग = मेलः, समागमः, संसर्गः
संगठन = संघटनम्
संग्रह = संग्रहणम्
संग्रहणी (पेचिश) = प्रवाहिका
संग्राम = रणम् , आहवः
संचालक = परिचालकः
संतरा = नारङ्गम्
संतोष = संतोषः, परितोषः
संदूक = मञ्जूषा
संदेश = संवादः, वार्ता
संदेह = संशयः
संवाद करना = सं + वद् (१ आ०)
संशय करना = सं + शी (२ आ०)
सज्जन = साधुः, (पुं०), सुमनस् (पुं०),

सचेतस् (पुं०)
सज्जनता = सौजन्यम्
सड़क = मार्गः, सरणिः (स्त्री०)
सड़क, (कच्ची) = मृन्मार्गः
सड़क, चौड़ी = रथ्या
सड़क, पक्की = दृढमार्गः
सड़क, मुख्य = राजमार्गः
सतीत्व = पातिव्रत्यम्
सत्कार = आदरः, सम्मानः
सत्ताधारी = आधिकारिकः
सत्तू = सक्तुकः
सत्पात्र = सुपात्रम्
सत्यरूप में = परमार्थतः, परमार्थेन
सदस्य = सभासद् (पुं०), सभ्यः, पारिषदः
सदाचारी = सद्वृत्तः
सदृश होना = अनु + हृ (१ आ०)
सधवा स्त्री = पुरन्ध्रिः (स्त्री०)
सन्तुष्ट होना = तुष् (४ प०)
सप्ताह = सप्ताहः
सफेद बाल = पलितम्
सभा = सभा, समितिः (स्त्री०)
सभागृह = आस्थानम्
समधिन = सम्बन्धिनी (स्त्री०)
समधी = सम्बन्धिन् (पुं०)
समर्थ = प्रभुः (पुं०), समर्थः, शक्तः
समर्थ होना = प्र + भू (१ प०)
समय = समयः, कालः, वेला
समाचार = वार्ता
समाप्त = अवसितः
समाप्त होना = सम् + आप् (५ प०)
समीक्षा करना = सम् + ईक्ष् (१ आ०)
समीप = उप, अनु, अभि, आरात् (अ०)
समीप आना = प्रत्या + सद् (१ प०), उप + या (२ प०)
समीपता = सन्निधानम्, सामीप्यम्
समुद्र = रत्नाकरः, अर्णवः
समुद्री = व्यापारी = सांयात्रिकः
समूह = संघः, संहतिः (स्त्री०)
समोसा = समोषः

सरकार = प्रशासनम्
सरसों = सर्षपः
सर्ज (वृक्ष) = सर्जः
सर्वथा = सर्वथा, एकान्ततः, नित्यम् (अ०)
सलवार = स्यूतवरः
सलाद = शदः
सस्ता = अल्पार्घम्
सहना = सह् (१ आ०)
सहपाठी = सतीर्थ्यः, सहपाठिन् (पुं०)
सहभोज = सहभोजः, सग्धिः (स्त्री०)
सहारा देना = अव + लम्ब् (१ आ०)
सहृदय = सहृदयः, सचेतस् (पुं०)
सांप = उरगः, भुजङ्गः, द्विजिह्वः
सांभर नमक = रौमकम्
साक्षी = साक्षिन् (पुं०)
साग = शाकः, शाकम्
साड़ी = शाटिका
सातस्वर = सप्तस्वराः
साथ = सह, साकम्, सार्धम्, समम्
साथी = सहाध्यायिन् (पुं०)
साधन = उपकरणम्
साफ करना = मृज् (२ प०, १० उ०), प्र + क्षल् (१० उ०)
साफ़ा = उष्णीषः, शिरोवेष्टनम्
साबुन = फेनिलम्
सामग्री = उपकरणम्, संभारः
सामने = समक्षम्
सामान = पण्यः
सामीप्य = सान्निध्यम्, नैकट्यम्
सारंगी (बाजा) = सारङ्गी (स्त्री०)
सारस = सारसः
साल का वृक्ष = सालः
साहूकार = कुसीदिकः, कुसीदिन् (पुं०)
साहूकारा = कुसीदम्, कुसीदवृत्तिः (स्त्री०)
सिंगारदान = शृङ्गारपिटकम्, शृङ्गारधानम्
सिंघाड़ा = शृङ्गाटकम्
सिंचाई = सेचनम्
सिक्का = मुद्रा
सिक्का ढालना = टङ्कनम्, टङ्क् (१० उ०)

सिगरेट = तमाखुवर्तिका
सितार = वीणा
सिद्ध होना = सिध् (४ प०)
सिन्दूर = सिन्दूरम्
सिपाही = रक्षिन् (पुं०)
सिफलिस (गर्मी, रोग) = उपदंशः
सिलाई = स्यूतिः (स्त्री०)
सिलाई की मशीन = स्यूतियन्त्रम्
सिला हुआ = स्यूतम्
सींचना = सिच् (६ उ०)
सीखना = शिक्ष् (१ आ०)
सीखने वाला = अधीतिन् (पुं०)
सीढ़ी (लकड़ी की) = निःश्रेणी (स्त्री०)
सीना = सिव् (४ प०)
सीमेण्ट = अश्मचूर्णम्
सीसा (धातु) = सीसम्
सुख = सुखम्
सुगन्ध = सुरभिः
सुगमता = सौकर्यम्
सुता = दुहितृ (स्त्री०)
सुनार = स्वर्णकारः, पश्यतोहरः
सुपरिटेंडेण्ट = अध्यक्षः
सुपारी = पूगम् , पूगीफलम्
सुराही = भृङ्गारः
सूअर = शूकरः, वराहः
सूई = सूचिका
सूखना = शुष्
सूजन = शोथः
सूत = सूत्रम्
सूती = कार्पासम्
सूद = कुसीदम्
सूर्यास्त समय = प्रदोषः, सायम् , गोधूलिवेला
सेंधा नमक = सैन्धवम्
सेंह (पशु) = शल्यः
सेकण्ड = विकला
सेक्रेटरी = सचिवः
सेना = चमूः (स्त्री०), वाहिनी (स्त्री०)
सेनापति = सेनापतिः(पुं०) सेनानीः (पुं०)

सेफ्टीरेजर = उपक्षुरम्
सेम = सिम्बा
सेमर (वृक्षः) = शाल्मलिः (पुं०)
सेल्स टैक्स = विक्रयकरः
सेव (फल) = सेवम्
सेवई = सूचिका
सेवा करना = सेव् (१ आ०), उप+स्था (१ प०)
सोंठ = शुण्ठी (स्त्री०)
सोचना = चिन्त् (१० उ०)
सोना = कार्तस्वरम् , जातरूपम्
सोना = स्वप् (२ प०), शी (२ आ०)
सोफा = पर्यङ्कः
सौंफ = मधुरा
सौदा (सामान) = पण्यः
स्कूल = विद्यालयः
स्कूल इन्सपेक्टर = विद्यालयनिरीक्षकः
स्टूल = उच्चपीठम्, संवेशः
स्टेनलेसस्टील = निष्कलङ्कायसम्
स्टेशन = यानावतारः
स्टोव = उद्ध्मानम्
स्त्री = दाराः (पुं०), कलत्रम् (न०), योषित् (स्त्री०)
स्तंभन = अवरोधनम्
स्तन = उरोजः
स्तन्य = क्षीरम्, दुग्धम्
स्थान = धामन् (न०)
स्नातक = स्नातकः
स्नो = हेमम्
स्पर्धा करना = स्पर्ध् (१ आ०)
स्मरण करना = स्मृ (१ प०), अधि+इ (२ प०)
स्लेट = अश्मपट्टिका
स्वच्छ होना = प्र+सद् (१ प०)
स्वभाव = सर्गः, निसर्गः, प्रकृतिः (स्त्री०)
स्वर्ग = नाकः, त्रिदिवः, त्रिविष्टपम्
स्वर्ण = कार्तस्वरम्, हिरण्यम्, जातरूपम्
स्वामी = प्रभुः, स्वामिन् (पुं०)
स्वीकार करना = ऊरी+कृ (८ उ०), उररी+कृ (८ उ०)

स्वीकृति = अनुमतिः (स्त्री०)
स्वेच्छा = निजाभिलाषः
स्वेच्छाचारी = स्वैरः, स्वैरिन् (पुं०)
स्वेटर = ऊर्णावरकम्
स्वेद = प्रस्वेदः

ह

हंटर (कोड़ा) = कशः, कशा
हंडी = हंडिका
हंता = घातकः, मारकः
हंस = मरालः
हंसी = वरटा
हंसी करना = परि + हस् (१ प०)
हटना = अप + सृ (१ प०), वि + रम्
(१ प०), या (२ प०)
हटाना = अप + नी (१ उ०)
हठ = दुराग्रहः
हठात् = दुराग्रहेण
हत्यारा = घातकः, मारकः
हथकण्डा = करकौशलम्
हथकड़ी = हस्तपाशः
हथियार = अस्त्रम्
हथेली = करतलः
हथौड़ी = अयोघनः
हनन = प्रहरणम्
हमला = आक्रमः
हमजोली = सहचरः
हमदर्दी = सहानुभूतिः
हरताल = पीतकम्
हराना = परा + भू (१ प०), परा + जि
(१ आ०)
हर्रे = हरीतकी (स्त्री०)
हल = हलम् , सीरः
हलवाई = कान्दविकः
हलुआ = लप्सिका

हल्दी = हरिद्रा
हवन करना = हु (३ प०)
हाँ = आम्
हाँकने वाला = वाहकः
हाइड्रोजन बम = जलपरमाणुवस्त्रम्
हाई कोर्ट = प्रधानन्यायालयः
हॉकी का खेल = यष्टिक्रीडा
हाथ का तोड़ा (आभूषण) = त्रोटकम्
हाथी = द्विपः, गजः, नागः, वारणः
हाथीवान = हस्तिपकः
हानि = क्षतिः (स्त्री०)
हार, मोती का = हारः
हार, एक लड़ का = एकावली (स्त्री०)
हारना = परा + जि (१ आ०)
हारमोनियम (बाजा) = मनोहारिवाद्यम्
हारसिंगार (फूल) = शेफालिका
हॉल = महाकक्षः
हिंसा करना = हिंस् (७ प०), हन् (२ प०)
हिनहिनाना = हेष् (१ आ०)
हिनहिनाहट = हेषितम्
हिम = हिमम् , अवश्यायः
हिसाब = संख्यानम्
हींग = हिङ्गुः (पुं०, न०)
हीरा = हीरकः
हृदय = हृदयम् , मानसम्
हुक्का = धूम्रनलिका
हैजा = विषूचिका
हैट = शिरस्त्राणम्
होंठ = ओष्ठः
होंठ, नीचे का = अधरोष्ठः, अधरः
होना = भू (१ प०), वृत् (१ आ०),
अस् (२ प०), विद् (४ आ०)
होली = होलिका
हौज = आहावः
ह्रास = अपकर्षः, अवनतिः (स्त्री०)

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१९	अ, इ, ई	अ, इ, उ
८	३३	ओ या और	ओ या औ
१२	२३	तो य र् को	तो यर् को
३१	१	(क्षामपिच्छतीति)	(क्षाममिच्छतीति)
३३	१८	'दाता:'	दाता
३४	३	गोभ्य:	गोभि:
३६	२४	वस्तुवो:	वस्तुनो:
३७	१९	कर्त्रे	कर्त्रे, कर्तृणे
४४	७	ऋग्	ऋच्
४८	२१	नदरी	नदी
७०	२१ २९	अन्यत्	अन्य
७१	२	अन्यत्	अन्य
७३	१७	'तत्र भवती'	अत्र भवती
७३	२४	सागच्छति	आगच्छति
९१	३३	माख	पाख
९७	१८	बहू	बहु
१०६	३	(स:) अत्	[त:] अतु
१०६	१६	लट्लकार	लोट्लकार
१७०	५	श्वसुरश्च = श्वसुरौ	श्वशुरश्च = श्वशुरौ
१७८	३	क्रिया में अभाव	क्रिया के अभाव में
१७८	२६	देवश्चेद् वर्षिष्यति.	देवश्चेद् अवर्षिष्यत् तर्हि सुभिक्षमभविष्यत्
१८३	३२	कामो मे भुञ्जीत्	कामो मे भुञ्जीत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८६	२५	अशंसायां	आशंसायां
२२४	२	[चलना]	[जलना]
३२५	९ व १०	अपप्तत् आदि लुङ्	अपतत् आदि
	व ११	का पूरा रूप अशुद्ध हैं,	होना चाहिये
२२७	३४	अरब्ध	लुङ् अरब्ध
२२७	३४	अलुङ्रप्सातम्	अरप्सातम्
२४०	३१	के रुव	के रूप
२४१	२३	²क्षेम्	²क्षम्
२५८	२८	असिषिताम् , असिधिन्	असिधताम्, असिधन्
२६८	१३	अकरिस्यः	अकरिष्यः
२७१	१३	अक्षिपतात्	अक्षिपताम्
२८३	७	अमुंक्ताम	अमुंक्ताम्
२९३	२०	मघ्नीयात्	मघ्नीयात्
३२५	१८	प्रकारों	लकारों
३८४	१४	विद्वसु	विद्वस्
४००	२८	सत् (बैठना)	सद् (बैठना)
४०१	२	धुसुत्	द्युसद्
०२	२	उ (अ)	ड (अ)
०२	५	उ जुड़ता है	ड जुड़ता है
४०२	८	उ लगता है	ड लगता है
४०२	९	(प्रजन् + उ + टाप्)	(प्रजन् + ड + टाप्)
०२	११	यदि उ प्रत्यय	ड प्रत्यय
४०२	१४	जन् में उ	जन् में ड
[illegible]	१५	···सर्वानन्तेषु उः	···सर्वानन्तेषु डः
[illegible]	१८	धातु में उ प्रत्यय	धातु में ड प्रत्यय
४०२	२९	अप् त्रप्	अपत्रप्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०३	६	कुल्	वुल्
४०३	२२	चीडने	चीड़ो
४०८	१०	प्रयमा	प्रयम
४११	२७	इमनिज्वर	इमनिज्वा
४१५	५	ढति च	डति च
४१५	६	ढति (अति)	डति (अति)
४१५	७	क्निम् + ढति	किम् + डति
४२५	२४	(कढ़ी का०)	(दही का०)
४३३	३	गुणिनि	गुणिनी
४३८	२६	गणितमय	गणितमय
५२०	१६	सत्रायाम्	सत्रायम्
५२०	२२	(अशुद्ध वाक्य वाला कालम) भृत्याय क्रुध्यति	भृत्यं क्रुध्यति
५२०	२२	(शुद्ध वाक्य वाला कालम) भृत्यं क्रुध्यति	भृत्याय क्रुध्यति
५२०	२६	(अशुद्ध वाक्य वाला कालम) वचने विश्वसितिि	वचनं विश्वसितिि
५२०	२६	(शुद्ध वाक्य वाला कालम) वचनं विश्वसिति	वचने विश्वसिति
५२१	३	रमणीगतः	रमणीगणः
५८१	१५	सुधातुराणां	क्षुधातुराणां